REGISTERED NO. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदास्तुसेयम् ॥



ब्राह्मणसर्वस्व

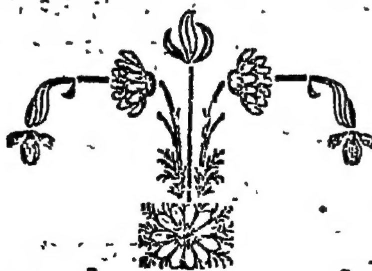
सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	मेष माघ सौर वि० १९७३ जनवरी १९१७	अङ्क १

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।



ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।



(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≶) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≶) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा ।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

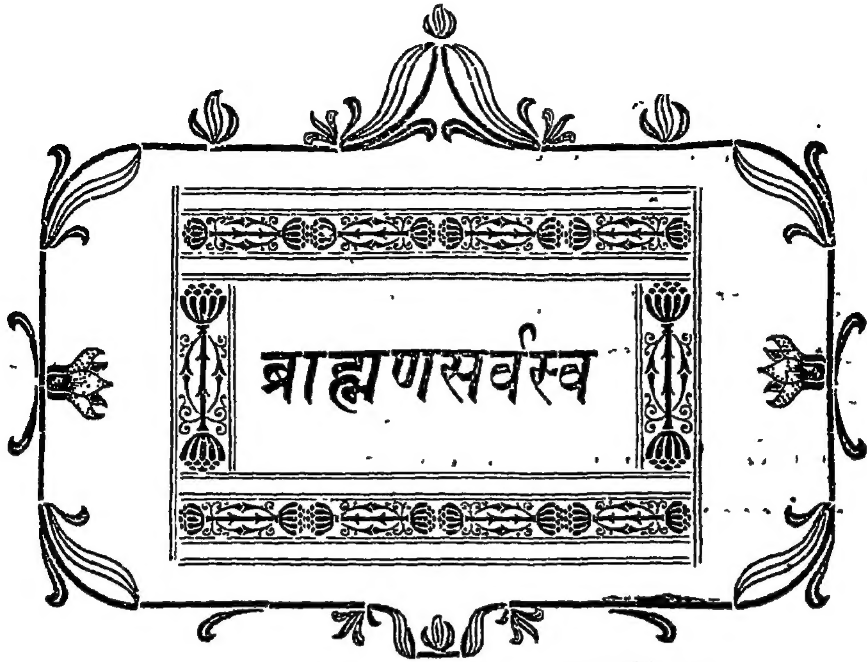
(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रवन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बटाई एक वार की ८) रुपया होगी- अश्लील और झूठे विज्ञापन नहीं बांटे जायगे ।

श्रीहरिः



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४ | मेष माघ सौर वि० १९७३ जनवरी १९१७ | अङ्क १

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

ब्रह्मचर्येणतपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति । आचार्योब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ ब्रह्मचर्येण कन्या युवानंवि-

न्दते पतिम्। अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति ॥ अथर्व० ११ । ५ ॥

अन्वितार्थः—तपसा तपोरूपेण ब्रह्मचर्येण युक्तो यद्वा तपसा ब्रह्मचर्येण च युक्तः सन् राजा राष्ट्रं प्रजासमूहं विरक्षति विशेषेण रक्षितुं शक्नोति नतु व्यभिचारपरायणः । आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते—यः पूर्वं ब्रह्मचर्यसाधनं ब्रह्मचर्याश्रमे कृतवान् भवति स ब्रह्मचर्यमहत्वं जानानः स्नातकः सन्नाचार्यो भूत्वा ब्रह्मचारिणं शिष्यं शिक्षितुमिच्छति नचाकृतब्रह्मचर्योऽनधिगतप्रथमाश्रममहिमा । या कन्या ब्रह्मचर्येणोपस्थेन्द्रियनिग्रहलक्षणेन युक्ता भवति सैव युवानं पतिं विन्दते प्राप्नोति न च व्यभिचारपरायणा वेश्यापुत्री कापि विवाहेन पतिं विन्दते । ब्रह्मचर्येण युक्तएवानड्वान् वृषभः स्वामिकार्यं साधयति न च गवा संयोगमिच्छन् किमपि कार्यं करोति किन्तु गवां पश्चादेव धावति । यदाऽश्वोऽपि वडवामपश्यन् ब्रह्मचर्येण युक्तो भवति तदैव घासं जिगीर्षति निगलितुमिच्छति वड़वासक्तमनास्तुभृशं ह्रेषते बन्धनान्मोचनं चेच्छति ॥

भा०—जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशेस्थापयितुं प्रजाः—इति सप्तमाध्याये मनुराह । यदारभ्य भारतवर्षीयेषु राजसु ब्रह्मचर्यं जितेन्द्रियत्वलक्षणं विनष्टं ते विषयभोगलम्पटाश्चाभवंस्तदारभ्य शौर्यधैर्यादिगुणानामभावादन्यैः परास्ताः पराधीना जाताः । अतस्तैः पुनरपि स्वाधिकारप्राप्तये स्वोन्नत्यै च जिते-

न्द्रियैर्भवितव्यम् । विषयवासनाद्या: स्वदारेषु प्रतिषिद्धकालवर्ज्ज यन्नियमनं तदपि गृहस्थानामेकविधं ब्रह्मचर्यमेवास्ति। लोकसिद्धं ब्रह्मचर्यमत्रानुवादरूपेण दर्शितम् । यदा पश्वादयोऽपि ब्रह्मचर्याद् भ्रष्टाः स्वकार्यं निर्वोढुमक्षमास्तदा मनुष्याणां का कथा । ब्रह्मचर्येण सर्वाणि कार्याणि सिध्यन्तीति तस्य महत्त्वमुक्तं भवति ॥

भाषार्थः-(ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति) प्रथमाश्रम के तपोरूप ब्रह्मचर्य से युक्त अथवा धर्मानुष्ठान रूप तप से और उपस्थेन्द्रिय निग्रह रूप ब्रह्मचर्य से युक्त राजा (अर्थात् गृहाश्रम होने पर भी विवाहित एक स्त्री व्रतरूप ब्रह्मचर्य से युक्त हुआ राजा) प्रजा समूह राष्ट्र की विशेष कर रक्षाकर सकता है किन्तु अनेक विवाहिता वा वेश्यादि स्त्रियों में लम्पट मनुष्य राजा होने योग्य भी नहीं होता और प्रजा की ठीक रक्षा भी नहीं कर सकता [पूर्व काल में राजा दशरथादि की अनेक स्त्रियां होने पर भी वे लोग जितेन्द्रिय धर्म मर्यादा पर दृढ़ता से आरूढ़ होते थे, इससे राज्य कर सके] (आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते) जिसने पहिले आश्रम में ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है वह ब्रह्मचर्य के महत्त्व को जानता हुआ स्नातक होजाने पर आचार्य बनकर ब्रह्मचारी शिष्य को शिक्षित करना चाहता है किन्तु जिसने पहिले ब्रह्मचर्य व्रत नहीं किया और उसकी महिमा नहीं जानी वह ब्रह्मचारी का रक्षक उपयुक्त गुरु नहीं हो सकता (कन्या ब्रह्मचर्येण युवानं पतिं विन्दते) जो कन्या उपस्थेन्द्रिय को वशीभूत रखने रूप ब्रह्मचर्यसे युक्त होती है वही विवाह द्वारा युवा पतिको प्राप्त होती है किन्तु व्यभिचारिणी वा वेश्या पुत्री कोई भी किसी युवा पति को प्राप्त नहीं होती (अनड्वान् ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य से युक्त ही बैल अपने स्वामी का काम करता है किन्तु जो बैल गौ के साथ संयोग का प्रबल अभिलाषी वा जब कामान्ध हो जाता है तब स्वामीका कुछ भी काम नहीं देता तथा गौओंके पीछे भागता है । और (अश्वो घासं जिगीर्षति) घोड़ा भी जब किसी घोड़ी को न देखना चाहता हुआ ब्रह्मचर्य से युक्त होता है तभी घास खाना चाहता है किन्तु जो अश्व किसी घोड़ीपर आसक्त मन हो जाता है वह बार २ हींसता रस्सी तोड़ देना चाहता है घास भी नहीं खाता है ।

भा०-ब्रह्मचर्य से युक्त होकर राजा प्रजा की रक्षा कर सकता है-इस कथन का अभिप्राय यही है कि जो अपनी एक विवाहित धर्मपत्नी से शास्त्र की आज्ञानुसार सम्बन्ध रखता है अन्य किसी भी स्त्री को विषय वासना की निगाह से कभी देखना भी नहीं चाहता वही पुत्र पौत्रादि उत्तरोत्तर सन्तति द्वारा चिरकालावधि स्वतन्त्र

राज्यैश्वर्य का अधिपति हो सकता है क्योंकि गृहस्थ की शास्त्रानुकूल एक धर्मपत्नी पर ही निष्ठा होना भी एक प्रकार का उपस्थेन्द्रिय निग्रह रूप ब्रह्मचर्य ही कहा जाता है। संसार भर की अन्य सभी स्त्रियों से हटाकर अपने मन को वशीभूत रखना ही उस पुरुष का सापेक्ष जितेन्द्रिय होना माना जायगा। सप्तमाध्याय के राजधर्म में मनु जी ने कहा है कि राजा जितेन्द्रिय रहता हुआ ही प्रजाको अपने अधिकार में रख सकता है। जब से भारतवर्षीय क्षत्रिय राजाओं में जितेन्द्रियता रूप ब्रह्मचर्य नष्ट हुआ और जब से राजा लोग विषय भोग में लम्पट हुए तभी से शूरता धीरतादि गुणों के न रहने से अन्य लोगों से परास्त होकर पराधीन हो गये हैं। इस कारण अपना पूर्णाधिकार प्राप्त करने और अपनी उन्नति के लिये उन लोगों को फिरभी जितेन्द्रिय होने की चेष्टा करनी चाहिये। निषिद्ध समय को छोड़ के विषय वासना को स्वस्त्री में नियत रखना भी गृहस्थों का एकविध ब्रह्मचर्य है। लोक में प्रसिद्ध राजा आचार्य कन्या बैल तथा घोड़े का ब्रह्मचर्य इन मन्त्रों में दिखाया गया है। जब कि वृषभादि पशुभी ब्रह्मचर्यसे भ्रष्ट होनेपर किसी कामके नहीं रहते तब मनुष्यका तो कहना ही क्या है॥ इन्द्रियों को अपने अधिकार में रखने रूप ब्रह्मचर्य से ससार परमार्थ के सभी कार्यों की सिद्धि होती है ऐसे अभिप्राय को प्रकाशित करने द्वारा ब्रह्मचर्य का महत्त्व जताया गया है।

वर्णाश्रमधर्म।

माघकृ० १० गुरुवार वि० संवत् १९७३ को प्रकाशित हुए दैनिक भारतमित्र समाचारपत्रमे "वर्णाश्रम चर्चा,, शीर्षक वाला लेख छपा है, जिस पर हमे कुछ अंशों में अपना मत प्रकाशित करनेकी इच्छा हुई। लेख सम्पादकीय है किन्तु प्रेरित नहीं है, हम यह मानते हैं कि स्वदेश हित साधनके आधार पर प्रकाशित होने वाले हिन्दी भाषा के समाचार पत्रों में भारतमित्र की प्रतिष्ठा अन्य प्रतिष्ठितो से अधिक न मानी जाय तो कम भी नही है। देशहितकी दृष्टि से इस पत्र मे प्रायः निष्पक्ष विचार छपते हैं, परन्तु कभी२ धर्म विषय पर भी कुछ लेख हो जाया करते हैं। यहा धर्मविषय कहने से हिन्दुधर्म वा वेदोक्त वेदानुकूल धर्म से हमारा प्रयोजन है, इस हिन्दुधर्म के घाडा से अनेकांशो मे मतभेद होने पर भी आर्यसमाज पृथक् नही है, क्योकि वह वेद

को मानने की प्रतिज्ञा करता है। इसी श्रुति स्मृति प्रतिपादित धर्मका द्वितीय नाम हिन्दुधर्म है। हिन्दु धर्म पर होने वाले भारतमित्र के अनेक लेखों में वेदादि शास्त्रों के मन्तव्य से विरुद्ध अनेक वार अनेक वातें निकल आया करती हैं। तदनुसार इस वर्णाश्रम के लेख में भी कई अंश विरुद्ध हैं॥

भा० मि० का अल्प अनुवाद।

"आज कल हमारे देश में वर्णाश्रम की चर्चा बहुत हो रही है, कोई २ वर्णभेद के कट्टर विरोधी हैं और उन की चले तो इस की जड़ उखाड कर ही पानी पियें। पर कोई २ उस के अनन्य भक्त हैं और जहां तक उन की चलती है उस की जड़ मजबूत [पुष्ट] करने की ही चेष्टा करते हैं। वर्ण भेद के विरोधियों में सामाजिक परिषद् में हो हल्ला मचाने वाले ही अधिक हैं और इन के प्रधान आचार्य, बम्बई हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज सरनारायण गणेशचन्द्रावर कर हैं। वर्णभेद के पक्षपातियोंकी संख्या वहुत अधिक है, और इन में प्रधान आन्दोलक दरभंगेके महाराज सर रमेश्वरसिंहजी हैं, अवशिष्ट हिन्दु उदासीन वा निरपेक्ष हैं और वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि वर्णाश्रम भेद रहने से लाभ होगा वा नहीं। उनके लिये उसका रहना न रहना समान है इत्यादि॥

समीक्षा-इस ऊपर के लेख में वर्णाश्रम भेद के शत्रु मित्र उदासीन तीन प्रकार में विभक्त सब भारतवासी ब्राह्मणादि को वताया है। इस पर सन्देह यह होता है कि इस लेखका लेखक इन तीनोंमें से कौन है! जो २ भारतवासी ब्राह्मणादिके अन्तर्गत अपने को मानते हैं वे इन तीन भेदों से पृथक् कदापि हो नहीं सकते और लेखक जब ब्राह्मणाभिमानी हैं तब तीन भेदों में से जिसमें अपने को संस्थापित करेंगे उसी प्रकार आने वाले आक्षेपोंके उत्तर दाता होने पड़ेगा। परन्तु लेखसे यह झलकता है कि इस लेखक इन तीनों से ही पृथक् हैं। इस लेख से यह भी झलकता है कि वर्णभेद के उड़ाने वाले शत्रु, उसके पक्षपाती मित्र और उदासीन ये तीनों ही अनुचित कर रहे हैं यदि लेखक की दृष्टि में कोई भी पक्ष अच्छा होता तो उसी पक्ष का समर्थन वा अनुमोदन वे अवश्य करते, ऐसी दशा में यही अनुमान होता है कि लेखक महाशय ने अपने मत को छिपाया है प्रकाशित करना उचित नहीं समझा॥

आगे चलकर लिखा है कि "हिन्दु समाज चारों वर्णोंमें विभक्त है और प्रत्येक हिन्दु के जीवन के चारों भाग चार आश्रम हैं"॥

समीक्षक-हिन्दुसमाज चारवर्णों में विभक्त है-यह कहना हिन्दु शास्त्रके अनुकूल नहीं है क्योंकि श्रुति स्मृति के अनेक प्रमाणों द्वारा हिन्दुसमाज पांच भागों में विभक्त है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में जहां २ [पञ्चजनाः] पद आया है वहां २ निरुक्तकार यास्कादि वेदव्याख्याताओं ने यह लिखा है कि—

पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम् ॥ (ऋ० सं० ८।१।१३।४)
गन्धर्वाः पितरो देवा असुरा रक्षांसीत्येके चत्वारो वर्णा
निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यव । यत्पाञ्चजन्यया विशा—
(ऋ० सं० ६।४।४३।१) पञ्चजनीनया विशा ॥ निरु० अ०
३ । ख० ८ ॥

भा०-ऋग्वेदी होता ऋत्विज् कहता है कि हे पञ्चजनो ! मेरे किये हुए स्तुत्यादि कर्म को प्रेम से ग्रहण करो अर्थात् शस्त्रादि नामक स्तुति का अनुमोदन करो। विचारणीय यह है कि वे पाच जन कौन हैंइस पर किन्हीं वेदवेत्ता आचार्यों का मत है कि गन्धर्व, पितर, देव, असुर, राक्षस इन्ही पांच का नाम पञ्चजन है परन्तु औपमन्यव नाम उपमन्यु गोत्री आचार्य का मत है कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चारवर्ण और पांचवां निषाद नाम अन्त्यज ये पांचों पञ्चजन कहाते हैं। इसी पिछले मत को मानते हुए महर्षि यास्क निरुक्तकार ने मनुष्य नामोंके व्याख्यानमे उक्त मन्त्रका प्रमाण दिया है और इसी पक्ष की पुष्टि के लिये (यत्पाञ्चजन्यया विशा) इस द्वितीय ऋचा का उदाहरण दिया है। उसका अर्थ यह है कि इन्द्र देवता के वर्षा न करने पर पांच प्रकार के जन समुदाय प्रजाके साथी हितैषी ऋत्विज् लोग यागानुष्ठान और स्तुतियों द्वारा इन्द्र देवता को संतुष्ट करते हैं। इस द्वितीय मन्त्रमे पांच प्रकार की मनुष्यों सम्बन्धिनी प्रजाके स्पष्ट ही पांच भेद कह दिये हैं। इससे सिद्ध हुआ कि हिन्दुसमाज चार वर्णों में विभक्त है यह कहना वेदानुकूल नहीं तव ऐसा कहना चाहिये था कि "हिन्दुसमाज पांच भागों में विभक्त है" सो हिन्दुओंके शास्त्र मतसे हिन्दुसमाज नहीं किन्तु मनुष्य मात्र [ईसाई, मुसलमान वौद्धादि तथा उन के सभी अवान्तर भेदों] का समाज पांच ही भागोंमें विभक्त है। चार वर्णों से भिन्न पाचवें भेदको मनुस्मृति के आरम्भ में ही तथा अ० २। १८ में अन्तरप्रभव वा अन्तराल पदों से वर्णन किया है कि–

भगवन्सर्ववर्णानां यथावदनुपूर्वशः।
अन्तरप्रभवाणांच धर्मान्नोवक्तुमर्हसि॥२॥
तस्मिन्देशेयआचारः पारम्पर्यक्रमागतः।
वर्णानांसान्तरालानां ससदाचारउच्यते॥१८॥

अर्थ–महर्षि लोगों ने मनुजी से प्रश्न किया है कि हे भगवन् मनो! सव नाम चारो वर्णों के और अन्तर प्रभव नाम वर्ण सकरों के धर्मों नाम कामों का क्रमशः यथावत्

व्याख्यान कीजिये। उस ब्रह्मावर्त देश में निवास करने वाले अन्तराल जातियों के सहित चारों वर्णों का जो २ आचरण परम्परा से चला आता है उसी का नाम सदाचार है। यहां मनुजी के मत में चार वर्णों में सब हिन्दुसमाजका समावेश नहीं होता यदि हो जाता तो अन्तर प्रभव और अन्तराल पदों को पृथक् कहना व्यर्थ हो जाता। इसमें वेदानुकूल मनुजी ने भी मनुष्य समुदाय के पांच ही भाग माने हैं। इसी पांचवें भाग को विद्वान् लोग जाति भी कहते हैं पहिले की अपेक्षा भी अब संकीर्ण जातियां अधिक बढ़ गयी हैं, जाति विवेकादि पुस्तकोंमें इन्हीं संकीर्ण जातियों का विशेष कर विचार किया गया है। निरुक्तमें कहा पांचवां निषाद पद उपलक्षणार्थ माना जायगा इस से निषादादि सभी संकर जातियों का ग्रहण जानो। इस प्रकार धर्मशास्त्रों में अन्तर प्रभव, अन्तराल, संकर, वर्णसंकर, संकीर्ण और जाति इत्यादि नामों द्वारा मनुष्य समष्टि मात्र का पांचवां भाग माना जाता है॥

मनुष्य समाज मात्र में चार वर्णों से भिन्न जो पांचवां भाग वर्णसंकर बन जाता है उसके लिये यदि कोई कहे कि जिन २ दो वर्णों को मिल कर जिस वर्णसंकर की सृष्टि हुई हो उन्हीं दो में से माता वा पिता के किसी वंश में उस वर्णसंकरको मान लिया जाय तो चार ही वर्ण में सब का समावेश हो सकता है। इसका संक्षेप से समाधान यही है कि यह विचार प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध है क्योंकि घोड़ा और गधा के मेलसे हुआ खिच्चर घोड़ा तथा गधा दोनोंमें से किसी भी एक जाति में नहीं माना जाता किन्तु खिच्चड़ की तीसरी भिन्न जाति मानी जाती है। तथा चूना वा हल्दीके संयोगसे बनी रोचना (रोली) चूना वा हल्दी दोनोंमेंसे किसीमें नहीं मानीजाती किन्तु दोनों से भिन्न एक तीसरा पदार्थ माना जाता है। इसीके अनुसार अनेक प्रकारके रंग आदि जिन २ के संयोग से बनते हैं उनसे भिन्न ही माने जाते हैं। जब ऐसे सैकड़ों प्रत्यक्ष सिद्ध उदाहरण हैं जिनमें दो के संयोगसे तृतीय का दोनों से भिन्न वस्त्वन्तर होना सिद्ध है तब दो वर्णों के संयोग से भी तृतीय संकर वर्ण होना भी स्वतः सिद्ध होगया॥

अन्तराल जातियों की सृष्टि केवल दो वर्णों के संयोग से होना नियत नहीं है किन्तु मनु अ० १०। २४ में वर्णसंकर सृष्टि होने के तीन कारण बताये हैं कि——

व्यभिचारेणवर्णानामवेद्यावेदनेन च।
स्वकर्मणांचत्यागेन जायन्तेवर्णसङ्कराः॥

भा०-ब्राह्मणादि वर्णों का परस्पर व्यभिचार होने से अपने गोत्र की वा निषिद्ध नीच कुल की कन्या के साथ विवाह कर लेने पर सन्तान होने से और अपने वर्ण के सभी कर्मों को त्याग देने से तथा हिंसादि निकृष्ट कर्म करने लगनेसे इन तीन कारणों

से मनुष्य वर्णसंकर होजाते हैं। इसी के अनुसार मनु० अ० १० । ४३ । ४४ में कहा गया है कि पौण्ड्रकादि नामक क्षत्रिय लोग अपने श्रुति स्मृत्युक्त कर्मों को छोड देने से और ब्राह्मणों का संग छूट जाने से द्वीपान्तरों में वसते २ धीरे २ नीच वा म्लेच्छ हो गये, उन्ही क्षत्रियोंके अन्तर्गत यूरोप तथा एशियाके निवासी ईसाई मुसलमानादि हैं। प्रयोजन यह कि स्वकर्म त्यागने से और विरुद्ध कर्मों के ग्रहण से अपने वर्ण से पतित भ्रष्ट हुए क्षत्रिय ही पीछे से ईसाई मुसलमान कहाने लगे उन के सदाचार छूट गये आसुरी राक्षसीपन क्रमशः बढ़ गया। इस प्रकार ये ईसाई आदि भी अन्तराल वा सकीर्ण नामक मनुष्य समाज के पांचवें भाग में माने जावेंगे। इस के अनुसार हिन्दु समाज के वा मनुष्य समाज के चार विभाग कहना मानना ठीक नहीं किन्तु पांच भाग मानना चाहिये॥

अव दूसरी वात यह है कि प्रत्येक हिन्दु के जीवन के चारों भाग चार आश्रम हैं,, इस कथन से भा० मि० सम्पादक का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि हिन्दु कहाने वाले सभी के लिये चारों आश्रम का भाग समान है। सो यह भी हिन्दुधर्म शास्त्रों से विरुद्ध है क्योंकि मनु० अ० ६ । ९७ में कहा है कि—

एषवोऽभिहितोधर्मो ब्राह्मणस्यचतुर्विधः॥

अर्थ-द्वितीयाध्याय से लेकर षष्ठाध्याय की समाप्ति पर्यन्त मनुजी ने चारों आश्रमों के कर्त्तव्य कहे हैं, वह चारोंप्रकारका आश्रम धर्म मुख्य ब्राह्मण के लिये कहा जानो। अन्य स्मृतिकारों ने मनु के अभिप्रायानुसार चार आश्रमोंकी व्यवस्था यह की है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास इन चारोंका पूरा २ अधिकारी एक ब्राह्मण ही है। सन्यासाश्रम को छोड़के पहिले तीन आश्रम क्षत्रियों के लिये हैं। इसी कारण पाण्डु आदि अनेक राजा लोगों ने संसार का त्याग करते समय वन में जाकर तप किया है अर्थात् वानप्रस्थ दशा में तप करते हुए देह त्याग किया है किन्तु क्षत्रियों के सन्यास का वर्णन प्रायः नहीं दीखता। यदि कहीं कुछ होगा तो प्रकरणानुसार उस की संगति लगेगी। वैश्य के लिये ब्रह्मचर्य गृहस्थ दो आश्रम हैं। इसी लिये स्मृति पुराणादि में कहीं भी वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम वैश्यों ने किये ऐसा लेख नहीं मिलता। और शूद्र वर्णके लिये केवल एक गृहस्थाश्रम है। ऐसी दशामें सभी कोरी चमारादि कहाने वाले हिन्दुमात्रके लिये चारों आश्रम कहना शास्त्रोंसे विरुद्ध है॥

भा० मि०-प्राचीन काल में वर्णों की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी इस झगड़े में न पड कर हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि किसी समय चारों वर्ण ऐसे स्वतन्त्र कमरे नहीं थे कि एक की हवा दूसरे में न जा सके, जैसे हम आज देख रहे हैं। यद्यपि ब्राह्मण का पुत्र ही ब्राह्मण होना था तथापि क्षत्रियादि अन्य वर्णों के मनुष्य

भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते थे। परन्तु पहिले ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वैमनस्य और युद्धों और फिर क्षत्रियों की आपस की मार काट के कारण एक वर्ण का दूसरे में प्रोमीशन अथवा वर्णान्तरित होना बन्द हो गया और जन्मसे वर्णका संबन्ध अनिवार्य माना गया। तब से जो जिस वर्ण के यहां जन्म लेता है, वह उसी वर्ण का कहाता है।

समीक्षक-प्राचीन कालमें वर्णों की उत्पत्ति जिस प्रकार हुई थी वैसा वर्णन श्रुति स्मृति शास्त्रों में विद्यमान है, हमारा अनुमान है कि सम्पादक भा० मि० भी वेद को मानने वालों में ही हैं। यदि यह सत्य है तो वर्णोत्पत्ति के प्रकार में झगड़ा क्यों है ?। झगड़ा कहने से वेद के मानने में सन्देह होता है। ऐसे स्वतन्त्र कमरे चारों वर्ण प्राचीन काल में न थे ऐसा कहने से सिद्ध होता है कि सब वर्णों का पहिले परस्पर घाल मेल था वा यों कहो कि कोई भी वर्ण विशुद्ध न था। परन्तु युक्ति प्रमाण कुछ भी न होने से सम्पादक जी का यह लिखना कल्पना मात्र है। फिर आगे आप लिखते हैं कि "यद्यपि ब्राह्मण का पुत्रही ब्राह्मण होता था" इस लेख में "ही" पद से सूचित होता है कि अन्य क्षत्रियादि का पुत्र ब्राह्मण नहीं होता था यदि होता था तो ही कहना सर्वथा अनुचित है, फिर आगे लिखा कि "तथापि क्षत्रियादि अन्य वर्णके मनुष्य भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते थे" ये दोनों लेख परस्पर विरुद्ध होनेसे अमान्य हैं। हमारा अनुमान है कि भा० मि० सम्पादक के मनमें भी सब से अधिक महर्षि विश्वामित्र का ही एक ज्वलन्त उदाहरण अन्यों के ब्राह्मण हो जाने में होगा और इसी आधार पर लिखा होगा परन्तु सम्भव है कि इसका जो अटूट समाधान पहिले किया जा चुका है उससे सं० भा० मि० अनभिज्ञ हों और आ० समाजियों के अनुगामी होने से वैसा लिखा हो अस्तु। वाल्मीकीय रामायणमें महर्षि विश्वामित्र की जो कथा लिखी है उस से तो यही प्रतीत होता है कि विश्वामित्र जन्म से क्षत्रिय थे पीछे तपोबल द्वारा ब्राह्मण होगये परन्तु वा० रामायण में विश्वामित्र की उत्पत्ति किस प्रकार हुई थी यह नहीं लिखा गया॥

महाभारत अनुशासन पर्व के तृतीयाध्याय में महाराजा युधिष्ठर ने शर शय्या पर शयान भीष्म जी से प्रश्न किया है कि विश्वामित्र जी क्षत्रिय से ब्राह्मण कैसे होगये ? भीष्म जी ने इस प्रश्न का उत्तर देते हुये महर्षि विश्वामित्र की उत्पत्ति सम्बन्धिनी कथा सुनायी है, उस कथाका सारांश यह है कि-विश्वामित्र के पिताका नाम गाधि था उनके कोई पुत्र नहीं था केवल एक कन्या थी, उस कन्या का विवाह ब्रह्मर्षि ऋचीक के साथ कर दिया था, ऋचीक ऋषि ब्राह्मण थे और परशुराम जी के पितामह थे। गाधि की कन्या ने दीर्घ काल तक जब अपने पति की सेवा की तब ऋषि

सन्तुष्ट हुये, यह सन्तुष्ट होने का वृत्तान्त हर्ष का समाचार गाधि की कन्याने अपनी माता से जाकर कहा क्योंकि किसी उग्र तपस्वी महर्षि का सन्तुष्ट कर लेना सर्वलोकाधिपतित्व प्राप्त होने से भी अधिक माना जाता था क्योंकि सिद्ध तपस्वीके वरदान से सभी कुछ प्राप्त हो सकता है। उस समाचार को सुनकर गाधिकी पत्नी ने कहा कि बेटी! तू जानती है कि तेरा कोई भाई नहीं है इस कारण तपस्वी महात्मा की कृपा से कोई प्रतापी पुत्र हो ऐसा उपाय कर। इसके पश्चात् उसने अपनी माता के कथनानुसार महर्षि ऋचीक से जाकर कहा कि एक ब्रह्मर्षि पुत्र मैं चाहती हूं और एक राजर्षि पुत्र मेरी माता चाहती है, कृपा करके दोनो का मनोरथ पूरा कीजिये। तब ऋचीक महर्षि ने यज्ञ किया उसमें दो प्रकार का चरु बनाया जिसमें वेद मन्त्रोंके द्वारा दो प्रकार की शक्ति स्थापित करके दोनों प्रकार के चरु स्वपत्नी को देकर कहा कि यह चरु तुम्हारे लिये है, इसको खाने से वेद वेत्ता तेजस्वी ब्रह्मर्षि ब्राह्मण उत्पन्न होगा, और यह द्वितीय चरु तुम्हारी माता के लिये है, इसके खाने से प्रतापी क्षत्रिय उत्पन्न होगा। तब वह गाधि पुत्री उभय विध चरु अपनी माता के समीप लेगई और ऋषि के बताये विधान सहित सब वृत्तान्त अपनी माता से उस ने कहा। इस पर माता ने कहा कि बेटी! तू जानती है कि तेरे लिये जो चरु दिया है वह अवश्य ही अधिक महत्त्व का होगा और तेरे भ्राता का अधिक महत्व हो यह तू भी अच्छा मानती ही होगी, तब तू अपना चरु मुझे देदे और मेरे लिये जो दिया है उस को तू खाले और विधान भी साथ ही परिवर्त्तन करलें। यह विचार लड़की ने मान लिया और परिवर्त्तित विधान के सहित बदला हुआ चरु दोनों ने खालिया और इसी चरु से दोनों गर्भवती हो गई॥

एक दो मास बीतने पर ऋचीक ऋषिको अपनी पत्नीकी चेष्टा देखकर वह गुप्त वृत्तान्त ज्ञात होगया, क्योंकि गर्भवतीकी आकृति पर गर्भका ब्रह्मतेज नही दीख पड़ा। तब महर्षि ऋचीकने कहा कि तुम लोगों ने बडा अनुचित किया जो चरु बदल लिया अब इस का परिणाम यह होगा कि तुम्हारी माता के गर्भ से ब्रह्मर्षि ब्राह्मण उत्पन्न होगा और तुम्हारा पुत्र क्षत्रिय तेज वाला होगा। फिर ऋचीक की पत्नी के अधिक प्रार्थना करने पर ऋषिने अपनी पत्नीसे कहा कि तुम्हारा पुत्र ब्राह्मण तो होगा परन्तु चरुमें जो क्षत्र तेज स्थापित किया गया है वह पुत्र मे प्रादुर्भूत न होकर पौत्र मे क्षत्र धर्म का उग्रप्रताप प्रकट होगा। इस कथन के अनुसार ऋचीकके पुत्र जमदग्नि महर्षि हुए और जमदग्नि के परशुराम हुए जो ऋचीक के पौत्र थे उनमें क्षत्र तेज प्रज्वलित हुआ सो प्रसिद्ध ही है। इस उपाख्यानसे सिद्ध है कि विश्वामित्रकी उत्पत्ति ऋचीक महर्षि के उस चरुसे हुई थी जो वेद वक्ता ब्रह्मर्षि उत्पन्न करने के लिये दिया गया था किन्तु क्षत्रिय के रजवीर्य से यह उत्पत्ति नही हुई इसी कारण विश्वामित्र जन्म सेही

ब्राह्मण थे। यदि ऐसा होना असंभव कहो तो इतिहास पुराणों का मानना ही नहीं बनता और उनको न माना जाय तो विश्वामित्र का क्षत्रिय से ब्राह्मण होना भी बन नहीं सकता। पर हमारा कहना यह है कि महर्षियों के तपोबल के प्रताप से वैसा हो सकता है उनके लिये असम्भव नहीं है किन्तु सर्वसाधारण के लिये असम्भव है॥

जिस इतिहास के आधार पर क्षत्रिय से ब्राह्मण होजाने की डुग्गी पीटी जाती है वह इतिहास जैसे उस अंश में माननीय है वैसे ही विश्वामित्र की उत्पत्ति का इतिहास भी मानने पड़ेगा। और इसको माननेसे विश्वामित्रका जन्मसे ब्राह्मण होना सिद्ध है, ऐसी दशामें क्षत्रियसे ब्राह्मण होजानेकी कथा का अभिप्राय हमारे मतमें यह होगा कि क्षत्रिया माता से उत्पन्न होने के कारण मातृ सम्बन्ध से विश्वामित्रमें जो क्षत्रिय पन आया था वा आवरण रूपसे प्रकट हुआ था, उसको तपोबलके द्वारा निवृत्त किया यही क्षत्रिय से ब्राह्मण होने की कथा का अभिप्राय है, इस प्रकार हमारे मत में दोनों कथाओं की संगति लगजाती है। परन्तु वादीके मतमें एक कथा मिथ्या ठहरेगी सिद्धान्त यह निकला कि कोई भी ऐसा मनुष्य अन्य वर्णसे अन्य वर्ण नहीं हो सकता न पहिले कभी हुआ न होगा जो कि अपने माता पिता के शुक्र शोणित से उत्पन्न हुआ है। विश्वामित्र क्षत्रिय माता पिता के शुक्र शोणित से नहीं हुए किन्तु ऋचीक महर्षि के चरु से हुए हैं इसीसे वे ब्राह्मण होगये। मतङ्ग अपनी ब्राह्मणी माता से उत्पन्न होने पर भी नापित के वीर्य से होने के कारण चाण्डाल माना गया, सैकड़ों वर्ष तप करने पर भी मतङ्ग ब्राह्मण नहीं होसका यह कथा भी महाभारत के अनुशासन पर्व में विद्यमान है। भा० मि० सम्पादक ने कहा है कि "क्षत्रियादि अन्यवर्ण के मनुष्य भी ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकते थे" इस पर उक्त महाशय से यह पूछना चाहिये कि क्षत्रिय का उदाहरण तो एक महर्षि विश्वामित्र का था जिसका समाधान यथावत् कर दिया गया। पर आदि पदसे आप किस को लेना चाहते हैं! क्या कोई वैश्य शूद्र भी ब्राह्मण होगये थे! यदि होगये तो ऐसा कहां लिखा है! यदि कहीं नहीं लिखा तो श्रुति-स्मृति और सदाचारसे विरुद्ध आपकी कल्पना मिथ्या क्यों नहीं है! अर्थात् सं०भा० मि० का उक्त लेख युक्ति प्रमाण से विरुद्ध है॥

यदि पूर्वकाल में क्षत्रियादि ब्राह्मण होजाते थे तो भीष्म युधिष्ठिरादि ब्राह्मण क्यों नहीं माने गये ?। क्या शम दम तितिक्षा ज्ञान विज्ञान तथा उत्तम कोटिकी विद्वत्ता भीष्म पितामहादिमें नहीं थी यदि थी तो ब्राह्मण न माने जानेका कारण क्या था! अथवा यों कहो कि विश्वामित्र के तुल्य अनेक महा विद्वान् तपस्वी राजर्षि हो गये वे सभी ब्राह्मण क्यों नहीं मान लिये गये वा एक विश्वामित्र ही ब्राह्मण क्यों हुए?। इन सब बातों का विचार पूर्वक आलोचन करने से सिद्ध होता है कि अन्य वर्ण का कोई भी

मनुष्य कभी अन्य वर्णमें प्रविष्ट नही हुआ। केवल एक विश्वामित्र हुए सो पूर्व लेखानुसार जन्म से ब्राह्मण थे। कोई मनुष्य अन्य वर्ण के कर्म करने लगने पर भी अन्य वर्ण नही बन सकता इसका ज्वलन्त उदाहरण द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा और परशुराम जी हैं कि जिन्हों ने शस्त्रास्त्र विद्या धनुर्वेद में अपूर्व योग्यता प्राप्त करके ऐसे बड़े २ संग्राम किये जो क्षत्रियों से चढ़ बढ़के थे तौ भी द्रोणाचार्यादि क्षत्रिय नहीं माने गये किन्तु ब्राह्मण ही रहे यह सभी जानते हैं इस से वर्णों के परिवर्त्तन का स्वप्न देखना बडी भूल है॥

सं० भा० मि० ने आश्रम के विषय में लिखा है कि "यह भेद मनुष्य कृत समझा जाता है, यदि वर्णाश्रम भेद वेदोक्त है तव मनुष्य कृत कदापि नहीं हो सकता। यदि अवस्था वा पन का नाम आश्रम माना जाय जैसा कि सं० भा० मि० ने लिखा है तो ये वाल्यपन यौवनपन और वृद्धपन तीनों अवस्था वा पन स्वतः सिद्ध होने से सर्वत्र स्वाभाविक हैं तव उन को मनुष्य कृत कहना वदतोव्याघात दोष ग्रस्त है। परन्तु अवस्था वा पन तीन ही प्रसिद्ध हैं और आश्रम चार हैं, तथा यदि अवस्था वा पनों का नाम आश्रम माना जाय तो वृद्धावस्था वाले ईसाई मुसलमान भगी चमारादि सभी संन्यासी कहाने चाहिये तथा वाल्यावस्था के सभी मनुष्य ब्रह्मचारी माने जाया करें परन्तु यह शास्त्रमर्यादा और लोक मर्यादा दोनों से ही विरुद्ध है इस से वैसा लिखना अनुचित है॥

वर्ण और आश्रम दोनों के ही नियम धर्म विगडे और आगे २ विगडते ही जाते हैं तथा विगडते ही जावेंगे सो यह कोई नयी वात नही किन्तु सृष्टि के आरम्भ से छः मन्वन्तर बीत चुके उस प्रत्येक मन्वन्तर की ७१। ७१। इकहत्तर २ चतुर्युगियों के प्रत्येक कलियुग में तथा इस वैवस्वत मन्वन्तर के इस अट्ठाईसवें कलियुगमें भी वर्णाश्रम व्यवस्था का विगडना स्वतः सिद्ध है, सो वैसा अवश्य होगा, किसी भी प्रकार सत्ययुग त्रेतायुगों की सी वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था अब हो नहीं सकती किन्तु कलियुग की समाप्ति होने पर फिर सत्ययुग का समय आने पर यथोचित होगी। परन्तु इस का अभिप्राय यह नहीं है कि हम लोगों को वर्णाश्रम धर्म की रक्षा और उन्नति के लिये उपाय करने की आवश्यकता नही, अर्थात् वर्णाश्रम धर्म की रक्षा का उपाय हम सब ब्राह्मणादि को अब भी अवश्य करना चाहिये यही वेदादि शास्त्रानुकूल विधि है और कलियुग मे वैसा होना सिद्धानुवाद है। जैसे रात्रि के समय व्यापी अन्धकार होना दैवकारित स्वतः सिद्ध है, उस की सर्वथा निवृत्ति कोई कर नही सकता। तथापि (तमसि प्रदीपमुपादधीथाः) अन्धकारमे दीपक जलाके स्थापित करो—ऐसा विधान होने से सब लोग अपने २ निवास स्थानादि में दीपक जला २ कर परिमित

स्थानों में अन्धकार की निवृत्ति कर लेते हैं इसी से उद्योग सफल हो जाता है। वैसे ही वर्णाश्रम धर्म की रक्षा और स्थिति रखने का उद्योग भी अल्पांश में सफल होगा, कुछ भी उद्योग न होने से होने वाली दशा की अपेक्षा बड़ा सुधार माना जायगा ॥

आगे लिखा है कि-अपने को ब्राह्मण कहने मानने वाले १००० ब्राह्मणोंमें मन्वादि स्मृतियोंके मतानुसार ९९९ नौ सौ निन्यानवे शूद्र और एक ब्राह्मण सिद्ध होगा, इस कारण वर्ण धर्म की दृष्टि से विचार करें तो संप्रति एक शूद्र वर्ण की सत्ता सिद्ध होती है। संक्षेप से इस का उत्तर यह है कि यह लेख भी धर्मशास्त्रों के मत से विरुद्ध है। क्योंकि मन्वादि स्मृतियों में जो ऐसे लेख हैं कि अमुक २ सन्ध्योपासन वेदाध्ययनादि काम न करने से वा अमुक २ निषिद्ध काम करने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है; वे ऐसे सब लेख शास्त्राज्ञानुकूल करने के निन्दार्थवाद मात्र हैं, जिन का अभिप्राय यही है कि ब्रह्मतेज घटकर शूद्र के तुल्य निस्तेज हो जाता है। किन्तु ऐसा अभिप्राय नहीं है कि वास्तव में शूद्र ही हो जाता है, यदि ऐसा अभिप्राय माना जाय तो परस्पर विरोध होगा कि—

अविद्वांश्चैवविद्वांश्च ब्राह्मणोदैवतंमहत् ।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च यथाग्निर्दैवतंमहत् ॥ ३१७ ॥
श्मशानेष्वपितेजस्वी पावकोनैवदुष्यति ।
हूयमानश्चयज्ञेषु भूयएवाभिवर्धते ॥ ३१८ ॥
एवंयद्यप्यनिष्टेषु वर्त्तन्तेसर्वकर्मसु ।
सर्वथाब्राह्मणाःपूज्याः परमंदैवतंहितत् ॥३१९॥अ०९
अवृत्तिकर्षितःसीदन्निमंधर्मंसमाचरेत् ॥१०१ ॥अ०१०
सर्वतःप्रतिगृह्णीयाद् ब्राह्मणस्त्वनयङ्गतः ।
पवित्रंदुष्यतीत्येतद्धर्मतोनोपपद्यते ॥ १०२ ॥
नाध्यापनाद्याजनाद्वा गर्हिताद्वाप्रतिग्रहात् ।
दोषोभवतिविप्राणां ज्वलनाम्बुसमाहिते ॥१०३ ॥
जीवितात्ययमापन्नो योऽन्नमत्तियतस्ततः ।
आकाशमिवपङ्केन नसपापेनलिप्यते ॥ १०४ ॥

भा०- मन्त्र विधानपूर्वक वा विधान किये विना स्थापित किया उभय विध अग्नि जैसे प्रशस्त देवता है वैसेही विद्वान् अविद्वान् दोनों प्रकारके ब्राह्मण देववत् पूज्य हैं। जैसे तेजस्वी अग्नि श्मशानमें मुर्दाको जलाता हुआ भी दूषित नहीं हो जाता किन्तु यज्ञों में होम करने पर फिर २ वैसा ही बढ़ता है। वैसे ही सब अनिष्ट निषिद्ध कर्म करने पर भी ब्रह्मत्वरूप देवतापन उनमें होने से ब्राह्मण सब प्रकारसे पूज्य हैं। यदि ब्राह्मण जीविकाके विना दुःखी हो तथा कुछभी उपाय न दीखे तो निम्न लिखित काम करे कि आपत्काल को प्राप्त हुआ ब्राह्मण सबसे दान ले लेवे अर्थात् असत्प्रतिग्रह भी कर लेवे क्योंकि उत्कृष्ट पवित्र गङ्गाजलादि अन्य निकृष्ट जल से दूषित नही होता किन्तु उस को भी पवित्र बना लेता है। इसी के अनुसार विद्या और तपोबल से प्रज्वलित ब्राह्मण असत्प्रतिग्रहादि से दूषित नही हो सकता। निषिद्ध अध्यापन याजन और दान लेने से अग्नि जल के तुल्य ब्राह्मण ऐसा दोषग्रस्त नही हो जाता जो नीच बन जावे अन्यथा जीवित रहना कठिन होने के समय आपत्कालमें जो ब्राह्मण निषिद्धों से अन्न ले २ कर खाता है वह आकाश में कीचड़ न लगने के तुल्य दूषित नही होता। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि निषिद्धाचरणों से ब्राह्मण को ऐसा दोष नही लगता जिससे शूद्र हो जावे किन्तु विशुद्ध सदाचारी ब्राह्मण की अपेक्षा दोष अवश्य लगता है। ये पूर्वोक्त श्लोकों में दिखाये स्वतः सिद्ध क्रमागत विशुद्ध ब्रह्मत्व के प्रशंसा रूप अर्थवाद हैं और (सशूद्रवद् बहिष्कार्यः) इत्यादि धर्मानुकूल आचरण न करने के निन्दार्थवाद हैं। इस से ब्राह्मणादि वर्ण नष्ट हो गये, एक शूद्र वर्ण रह गया यह लिखना शास्त्र विरुद्ध है॥

सम्पादक भा०मि० ने यह भी लिखा कि " जन्मानुसार वर्ण माना जाने लगा है" इस लिखने से जान पड़ता है कि पहिले कभी गुण कर्मानुसार वर्ण माना जाता था। हमारे पहिले लेखसे पाठक लोग समझ सकते हैं कि पहिले कभी भी गुण कर्मानुसार वर्ण नहीं माना जाता था किन्तु सदा ही जन्म से वर्ण व्यवस्था चली आती है जैसा महर्षि विश्वामित्रादि के विषय में हम ऊपर लिख चुके हैं॥

भा० मि० के इस विषय सम्बन्धी अन्तिम लेख से प्रतीत होता है कि भविष्य में वर्ण भेद का समूल नाश हो जायगा। इस पर हम इतना ही कहते हैं कि मनु० अ० ७ में लिखा है कि—

वर्णानामाश्रमाणां च राजा सृष्टोऽभिरक्षिता॥

वर्णाश्रम धर्मकी रक्षा करना राजाका काम है, जबतक वेदमतानुयायी स्वतन्त्र प्रतापी राजा रहे तबतक इस धर्मका ह्रास नही हुआ, अब वैसे राजाके अभावसे वर्णाश्रम दशा

विगड़ी है। यदि आगे हजारों वर्ष तक ऐसी ही दशा रही और धर्म राज्य न हुआ तो वर्णाश्रम व्यवस्था इतनी अधिक अवश्य नष्ट होगी जिस को कोई सर्व नाश हो गया ऐसा भी कह सकेगा। परन्तु वेदादि शास्त्र पर जिन लोगों का अटल विश्वास है वे लोग किसी प्रकार भी यह मानने को तयार नहीं हैं कि वेदोक्त हिन्दु धर्म, उस के प्रतिपादक वेदादि शास्त्र और वर्णाश्रम धर्म कभी समूल नष्ट हो जांयगे वा इन का समूल नाश कोई विरोधी कभी कर देगा। क्योंकि वेदादि शास्त्रों का मार्मिक सिद्धान्त जिन लोगों ने कुछ भी जान पाया है, उन का अटल विश्वास है कि वेदोक्त व्यापी सिद्धान्त रूप वृक्ष की जड़ पाताल तक चलीगयी है,इससे इसका समूल नाश कभी कोई कर नहीं सकता संस्कृत विद्या के परमोच्च कोटि के विद्वान् लोग यह अवश्य मानते हैं कि अध्यात्म अधिदेव और अधिभूत इन तीनों प्रकारों में देवासुर संग्राम अनादि काल से चला आता है और सदा चला जायगा। तथा कभी २ सहस्रों वर्षों तक आसुरी विजय ऐसा हो चुका है कि जिसको उस २ समय के विजेताओंने अपना अनादि अनन्त विजय मान लिया और दैवीशक्ति ऐसी दशा में पहुंच गई जिसके समूल नष्ट हो जाने का विश्वास भी उस २ समय के लोगों को हो गया परन्तु फिर भी देव दलका समूल नाश कभी नहीं हुआ अध्यात्मादि तीनों प्रकारों में देव दल का राज्य संसार में चिरस्थायी रहा और रहेगा। प्रकाश भी देव तथा अन्धकार असुर, सत्य-देव,असत्य-असुर हैं। बौद्ध और यवन वादशाहों के जाज्वल्यमान प्रतापके समय भी वैदिक धर्म नष्ट प्राय हो गया था और तत्काल के बौद्ध तथा यवन अपने विजयको अनादि अनन्त मानने लगे थे परन्तु वह समय भी पलटा खा गया, ऐसी ही सांप्रतिक अटल प्रतीत होने वाली दशा भी वास्तव में अटल नहीं हो सकती॥

अहीरतथागड़रियाजातिकिसवर्णमेंहै।

पाठक महाशयोंने पढ़ा देखा होगा कि "अहीर तथा गड़रिया जाति किस वर्ण में है" इस शीर्षक वाला प्रेरित लेख भगवान्दीन जाबाल मानपुर की ओर से ब्रा०स० भा० भाग १३ अं० ११ पृ० ५१६। ५१७ में छपा है उसका विषय स्पष्ट है, वह लेख लेखक के आग्रह से छपा दिया गया था। इसी कारण उस पर हमें संक्षेप से लिखना पड़ा। वहुत काल से हम,यह देख रहे हैं कि आ० समाज ने किसी चमार व भंगी को भी शुद्ध किया तो जनेऊ पहना दिया और शर्म्म वर्मान्त नाम रख दिया उन में भी प्रायः शर्मा बनाये हैं अन्य जिन २ शूद्र वा अति शूद्र जातियों

के मनुष्य आर्यसमाज मे सम्मिलित हुये हैं उन में कोई भी अपने को शूद्र वा अतिशूद्र मानना नहीं चाहता किन्तु सभी ब्राह्मण क्षत्रिय बनते हैं। यद्यपि अभी तक आर्यसमाजियों मे यह प्रश्न नहीं उठा है कि वेद प्रतिपादित वर्ण चार हैं तब हमारे समुदाय मे कोई शूद्र है वा नहीं? यदि है तो कौन २ शूद्र हैं?। आर्यसमाज में सम्मिलित होने वाले भगी तक को जब उन लोगों ने क्षत्रिय कहा माना तो अब वे किस को शूद्र कह सकते हैं?। अर्थात् किसी को नही, ऐसी दशा में मीमासा होनी चाहिये कि शूद्र वर्ण है वा नहीं। आर्यसमाज से निकला यही वायु सब देश भर की सब जातियों में फैल गया अर्थात् जो २ कुछ हिन्दी अंगरेजी आदि पढ़ने लगा और उसने ससार का वृत्तान्त सुना देखा कि अमुक २ जातियां अमुक वर्ग मे मानी गई उनके सस्कार भी होने लगे ऐसा जिस २ ने सुना जाना वह अपनी २ जाति भर को किसी उत्तम वर्ण में सम्मिलित करने की चेष्टा करने लगा इस प्रकार यही वायु देश भरमे फैल गया, इसी के अनुसार बा० भगवान्दीन जावाल का लेख जानो।

हमारी सम्मतिमें भगवान्दीन का यह सिद्ध करना युक्ति प्रमाए के अनुकूल सत्य नहीं है कि "अहीर अम्बष्ठकी कन्यामें उत्पन्न होनेसे अम्बष्ठ ही है" ब्राह्मणसे वैश्यकी कन्यामे उत्पन्न हुआ अम्बष्ठ मातृवशका वर्ण वैश्य है तदनुसार अम्बष्ठ कन्यामें उत्पन्न आभीर भी वैश्य हुआ तथा अहीर और गडरिया दोनों एक ही हैं, इसमें दोनों एक दूसरे का हुक्का कहीं कभी पीते थे यह प्रमाण दिया है। और मनु तथा विष्णुसहिता के निम्नलिखित प्रमाण आभीर के वैश्य होने में दिये हैं कि—

स्त्रीष्वनन्तरजातासु द्विजैरुत्पादितान्सुतान्।
सदृशानेवतानाहुर्मातृदोषविगर्हितान्॥ ६मनु०अ०१०
अनुलोमासु मातृवर्णाः॥ विष्णुसंहिता-"

इन दो प्रमाणों में विष्णुसहिता नाम का कोई पुस्तक है तो कहां छपा कहां मिलता है उसके किस अध्यायादि में ऐसा लिखा है ये सभी बातें सन्दिग्ध हैं। यदि उक्त नाम का कोई पु० हो और उसमें कुछ लिखाभी हो तो प्रकरण देखने पर उसकी व्यवस्था कर सकते हैं। अब रहा मनु० अ० १० का छठा श्लोक सो उसमें जावालजी का अभीष्ट कुछ भी सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत उनके विरुद्ध उक्त श्लोक अवश्य है। उक्त श्लोक का सीधा २ अक्षरार्थ यह है कि-ब्राह्मण ने अपने से अनन्तर क्षत्रिय कन्या में तथा क्षत्रिय ने अनन्तर वैश्य कन्या मे जिन २ सन्तानों को उत्पन्न किया है वे माता की हीन जातीयता के दोष से निन्दित हैं और अपने २ पिता के सदृश होते हैं ऐसा ऋषि लोग कहते हैं। इस पर पं० कुल्लूक भट्ट ने लिखा है कि—

पितृसदृशान्तु पितृजातीयान्मन्वादय आहुः ।

पितृ सदृश का अर्थ यह नहीं है कि पिता के वर्णके होजावें, ऐसा हो तो सदृश वा तुल्य कहना ही नहीं बनता । क्योंकि शास्त्रकारोंका मत है कि (सतिकस्मिंश्चिद् भेदे तुल्यमित्युच्यते) कुछ भेद होने पर ही उसके तुल्य कहा जाता है । इसीलिये मनु० अ० १० । के ५ वें श्लोक में कहा है कि (जात्या ज्ञेयास्तएवते) ब्राह्मण पितासे धर्मानुकूल विवाहिता ब्राह्मणी मातामें विशुद्ध ब्राह्मण सन्तान ही होता है इसी से तुल्य नहीं कहा। इससे सिद्ध हो गया कि ब्राह्मणसे अनन्तर वैश्य कन्या नहीं है किन्तु बीच में क्षत्रिय का अन्तर है इस कारण ब्राह्मण से वैश्य कन्या में उत्पन्न अम्बष्ठ पिता के तुल्य भी नहीं कहा जा सकता, और माता के वर्ण का कोई सन्तान होता है इस अंश का तो मनुस्मृति में कहीं नाम भी नहीं है । इसी के अनुसार अन्य स्मृतियों में भी वैसा लेख नहीं हो सकता क्योंकि सब स्मृतियां मनु के अनुकूल हैं ॥

इससे सिद्ध होगया कि बा० भगवान्दीन के पक्षका साधक कोई भी प्रमाण नहीं है, इस कारण उनका लिखना सभी धर्मशास्त्रों से विरुद्ध मनमाना है; तब इस पर विशेष लिखना व्यर्थ है । पाठक महाशयों को यह ध्यान रखना चाहिये कि ब्राह्मण पिता से विवाहिता क्षत्रिय वैश्य कन्याओं में और क्षत्रिय पिता से विवाहिता वैश्य कन्यामें उत्पन्न होने वाले मूर्द्धाभिषिक्तादि तीन और ब्राह्मणादि विशुद्ध वर्ण इन्हीं छः को मनुजीने अ० १० । ४१ में (षट्सुताद्विजधर्मिणः) कथन द्वारा उपनयन संस्कार के योग्य कहा है । इन छः से भिन्न अन्य अनुलोम से वा प्रतिलोम से उत्पन्न हुए पिता वा माता के सदृश सिद्ध होने पर भी उपनयन संस्कार के योग्य नहीं हैं यह मन्वादि सभी स्मृतियों का एक मत है । तथा यह भी स्मरण रखना उचित है कि जैसे घोड़ा तथा गर्दभजाति के संयोग से उत्पन्न हुआ खिच्चर अश्व वा गर्दभ किसी एक जातिमें नही गिना जाता किन्तु दोनों से भिन्न तृतीय जाति कहा जाता है । तथा हल्दी चूना के संयोग से बनी रोचना दोनोंसे भिन्न वस्तु मानी जाती है । वैसे ही दो वर्णों के स्त्री पुरुषों के संयोग से उत्पन्न हुई मूर्द्धाभिषिक्तादि सभी जातियां मन्वादि के सिद्धान्तानुसार किसी भी एक वर्ण में परिगणित नहीं हो सकतीं ॥

साइज के टाटिल सहित ४३२ पृष्ठ का पुस्तक है, इस नैघण्टुक काण्ड में प्रारम्भ के तीन अध्याय निरुक्तका दुर्गाचार्य कृत संस्कृत निरुक्त भाष्यके अभिप्रायानुसार हिन्दी भाषा में विस्तृत विवरण किया गया है। अन्त के विज्ञापन से यह भी सूचित होता है कि निरुक्त के नैगम काण्ड और दैवतकाण्डरूप शेष दो भागों का भी हिन्दीभाष्य क्रमशः शीघ्र छप कर प्रकाशित होगा। इस पुस्तक में देशी कागज यद्यपि १२। १४। वा १६ पौण्ड डिमाई श्वेत ही लगाया गया है, तथापि कागज की महर्घता को देखते हुए कागज अच्छा ही कहा जायगा। ४३२ पृ० के पुस्तक का जो १॥।=) मूल्य रक्खा है वह भी ऐसा अधिक नहीं है जो पुस्तक की योग्यता से विरुद्ध हो। छपने की शुद्धि और सफाई मध्यम कक्षा की कह सकते हैं क्योंकि इससे भी जो अधिक अशुद्ध तथा भरे हुए अक्षर वाले वा विन उठे आधे उठे अक्षर कही २ छपते हैं उन से दोनों अंश में पुस्तक अच्छा छपा है और निर्णयसागर मुम्बई आदि की शुद्धि तथा सफाई के सामने निकृष्ट भी अवश्य है इससे शुद्धि वा सफाई मध्य कक्षाकी ही हो सकतीहै।

अब मुख्य विचारणीय वा लेख्य यह है कि निरुक्तका यह हिन्दीभाष्य सर्वसाधारण के लिये कैसा उपयोगी है तो सामान्यतया हम यही कह सकते हैं कि इस हिन्दी व्याख्या में अनेक त्रुटि वा अनेक अशुद्धियां रह जाने पर भी सर्वसाधारण लोग जो वेद-वा वेदाङ्ग निरुक्त के विषय में कुछ भी नही जानते वे लोग इस हिन्दीभाष्य के द्वारा वेद और निरुक्त के विषय में सैकडों अच्छे २ अंशोंका वोध प्राप्त करके अवश्य उपकृत होंगे इस में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। और इस प्रकार के उपकार में वे त्रुटि वा अशुद्धियां वाधक नही हो सकती। जैसे अधिक कूड़ा कर्कट वाले गेहूं की अपेक्षा थोड़े कूड़ा वाले गेहूं उत्तम कहाते हैं और विशुद्ध गेहूं द्वारा जो काम वा उपकार हुआ करता है वही काम थोड़ा कूडा कर्कट होने पर भी हुआ करता है तथापि निकृष्ट गेहूं से वे अच्छे उत्तम भी माने जाते हैं उन से होने वाले उपकार में जैसे अल्प कूड़ा बाधक नही होता वैसे ही त्रुटियां वा अशुद्धियां हिन्दी निरुक्त से होने वाले उपकार में बाधक नहीं हो सकती। मनुष्य अल्पज्ञ है, उस के विचारों वा कामों में त्रुटि वा अशुद्धियां होना स्वतः सिद्ध है किन्तु त्रुटि न हो यही असम्भव सा है—भगवद्गीता में श्रीभगवान् जो ने कहा है कि—

सर्वारम्भाहिदोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।

जब परमार्थ सम्बन्धिनी परमशान्ति की अपेक्षा ससार के सभी कार्यारम्भ धूम से अग्नि के तुल्य दोषों से आवृत हैं तव यदि हिन्दी निरुक्त मे कुछ त्रुटियां हैं तो आश्चर्य भी कुछ नही। परमार्थापेक्षा से सभी के सदोष होने पर भी परस्पर की अपेक्षासे सदोष निर्दोष कहनेका व्यवहार बन जाता है। जो काम वा पदार्थ अपने

से किसी उत्तम की अपेक्षा से सदोष वा निकृष्ट है वही अपने से अतिनिकृष्ट की अपेक्षा निर्दोष वा उत्तम भी कहा जा सकता है, इसी के अनुसार हिन्दी निरुक्त भी अच्छा है ॥

अब सम्पादकीय कर्त्तव्यानुसार हिन्दी निरुक्त (नैघण्टुक काण्ड) में जो २ त्रुटि वा अशुद्धियां हुई हैं उन में से कुछ त्रुटियां उदाहरणार्थ हम यहां दिखाते हैं-जिस में पहिली बात यह है कि-निरुक्त के प्रत्येक अध्यायान्त में खण्डविभाग की सूचना दिखाने के लिये अध्याय भर के प्रत्येक खण्डों की प्रतीकें सभी पुस्तकों में लिखी तथा छपी हैं। इसी के अनुसार खण्ड विभाग होना चाहिये सो इस के अनुसार खण्ड विभाग प्रायः पुस्तकों में नहीं छपा। एसियाटिक सुसायटी कलकत्ता की ओर से जो निरुक्त बहुत पहिले छपा है उस में भी असली खण्ड विभाग की सूचना टिप्पणी में दी गयी है। इस हिन्दी निरुक्त में भी प्रत्येक अध्यायान्त में खण्ड विभाग की प्रतीकें तो छपी हैं परन्तु प्रत्येक खण्ड की समाप्ति अध्यायान्त की प्रतीकों से विरुद्ध ही छपी है टिप्पणी में कहीं कुछ नहीं लिखा गया। परन्तु पं० शिवदत्त शास्त्री दाधीच शोधित जो निरुक्त श्रीवेंकटेश्वरप्रेस मुम्बई में छपा है उस में अध्यायान्त की प्रतीकों के अनुसार ही बीच २ खण्ड समाप्ति भी की गयी है और उस के उपोद्घात में निरुक्त की पाद कल्पना भी पीछे किसी ने कल्पित की बतायी है इस पर हमारा भी अनुमान यही है कि अध्यायान्त में खण्ड संख्या समाप्त होनी चाहिये यदि प्रत्येक पाद में खण्ड संख्या विच्छिन्न कर देना यास्काचार्य का अभीष्ट होता तो अध्यायान्त के तुल्य प्रत्येक पादान्तमें भी खण्ड सूचना की प्रतीकें वे लिखते सो ऐसा नहीं किया इस से पाद कल्पना और पदान्तों में की खण्ड संख्या समाप्ति ठीक नहीं है।

आगे (अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरुप्य) इस का अर्थ पृष्ठ ७१ में जो यह छपा है कि "अगस्त्य ने इन्द्र के लिये हवि निर्वाप या घालकर" यह ठीक नहीं हुआ इससे अभिप्राय भी कुछ नहीं निकलता हवि क्या वस्तु है? निर्वाप क्या है, इत्यादि स्पष्ट होना चाहिये था। अभिप्राय यह है कि यव वा व्रीहि (धान) का नाम हवि है क्योंकि (व्रीहिभिर्यजेत यवैर्वा) इस श्रुति प्रमाण के अनुसार ये दोही अन्न यज्ञ के योग्य हैं प्रत्येक इष्टि में इन्हीं दोही अन्नों का पुरोडाश बनाया जाता है। पुरोडाश बनाने के आरम्भ में चार मुट्ठी उक्त हवि को अध्वर्यु उस २ देवता के नाम से (कि जिसके लिये यज्ञ करना चाहता है) ग्रहण करता अर्थात् पात्रीमें रक्खे हुये उक्तान्नमें से मुट्ठी भर २ के शूर्प में धरी अग्निहोत्र हवणी में रखता है इसी कर्म का नाम हविर्ग्रहण वा हविर्निर्वाप है। प्रत्येक पुरोडाश बनाने के लिये मन्त्र पूर्वक चार मुट्ठी हविष् लेने का नियम है यह भी नियम है कि जिस देवता के लिये हविर्ग्रहण किया जाय उसी के

नाम से उसकी आहुति देवे परन्तु अगस्त्य ऋषि ने इन्द्र देवता के नाम से हविर्ग्रहण करके मरुतों के लिये आहुति देने का विचार किया यही अनुचित था। अगस्त्य ऋषि साधारण कोटि के मनुष्य न थे फिर उन्हों ने ऐसा अनुचित वेद विरुद्ध करने का विचार क्यों किया ? इस का समाधान हिन्दी निरुक्त मे कुछ भी नहीं किया गया।

आगे हिन्दी निरु० अ०१ पाद ३ खं० १ पृष्ठ ७३में मूल निरुक्तका पाठ छपा है कि—

अपिवा प्रदक्षिणागमनात् ।

इस का अर्थ पृ० ७४ में छपा है कि—" अथवा दाहिनी ओर से आने के कारण दक्षिणा है" यह भी गोल माल है इस से कुछ भी अभिप्राय समझ में नहीं आसकता निरुक्तकार को यह दिखाना है कि यज्ञ मे ऋत्विजों को विधि पूर्वक जो सुवर्ण गौ तथा वस्त्रादि दिया जाता है उसका दक्षिणा नाम क्यों रक्खा गया ? अग्निष्टोमादि सोमयागों के माध्यन्दिन सवन के बीच दक्षिणा देने की आज्ञा है उस समय यह भी लेख है कि सौमिक वेदि के उत्तर भागमे स्थापित गौ आदि दक्षिणा को वेदि की प्रदक्षिणा करते हुए लावें इसी कारण उस सुवर्णादि दातव्य धन का नाम दक्षिणा हुआ है। यह अभिप्राय हिन्दी निरुक्त में कुछ भी स्पष्ट नहीं हुआ यही त्रुटि है।

आगे पृ० ७५ में ऋग्वेदकी (ऋचांत्वःपोषमास्ते पुपुष्वान्०) इस ऋचाका व्याख्यान निरुक्तकारने किया है। इस ऋचाका हिन्दी भाषार्थ पृष्ठ ७६। ७७ में छपा है उस मे होता ऋत्विज् सम्बन्धी अर्थ गोलमाल होगया है, जिससे मन्त्रका अभिप्राय पाठकों के समझ में ठीक २ नही आ सकता। उसमें पहिले पाद की भाषा पृ० ७६ में यों लिखी है कि " एक होता ऋत्विज् ऋचाओंकी पुष्टि को करता हुआ रहता है" आस्ते क्रिया का अर्थ बैठना प्रसिद्ध है,तब ऐसा लिखना था कि एक होता ऋत्विज् ऋचाओं की पुष्टि करता हुआ बैठता है क्योंकि ऐसे ही मन्त्र ब्राह्मण प्रमाणों के आधार पर सांखायन कल्पसूत्रकार ने कहा है कि—

आसीनन्यायं बाह्वृच्यम् ॥

ऋग्वेदी होता ऋत्विज् लोग बैठ कर अपना काम करते हैं, याज्ञिक लोगो में जैसे अध्वर्यु का खड़े हो कर अपना काम करना प्रसिद्ध है वैसे ही होताओं का काम बैठ कर होना भी प्रसिद्ध है। ऋचाओं की पुष्टि का अभिप्राय हिन्दी निरुक्तकार ने पृ० ७६ में यह दिखाया है कि (ऋचाओंकी यही पुष्टि है कि—उन का देवताओं के यथार्थ भाव के चिन्तन, मर्मस्थान के युक्त रखने और प्रयत्न के साथ साथ अध्ययन करना) ऋचाओं की पुष्टिका यह अभिप्राय ठीक नही है क्योंकि सर्व वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने लिखा है कि—

भिन्नप्रदेशेष्वाम्नातानामृचां संघमेकत्र सम्पाद्यैतद्दिदं शस्त्रमिति क्लृप्तिं करोति सेयं पुष्टिः ॥

भिन्न २ अष्टक अध्यायादिमें पठित उस २ शस्त्रमें कल्प द्वारा विनियुक्त ऋचाओं को विनियोग क्रम से एकत्र करके उस २ शस्त्रको कार्य साधन योग्य पूरा करना यही ऋचाओं की पुष्टि है। ऋचाओं की पुष्टि का यही अभिप्राय हम भी समझते हैं किन्तु हिन्दी निरुक्त में छपा अभिप्राय हमारी सम्मति में ठीक नहीं है ॥

आगे हिन्दी निरुक्त के पृष्ठ ७७ में उक्त ऋचा के ब्रह्मा सम्बन्धी तृतीय पादका अभिप्राय यह छपा है " एक ब्रह्मा ऋत्विज् जब २ प्रायश्चित्त प्राप्त होता है, अन्य ऋत्विजों के लिये अपने विज्ञान को कहता है" यह अभिप्राय भी ठीक नहीं है, क्योंकि सायणाचार्य ने कहा है कि-

ब्रह्मनामक एक ऋत्विग्जातेजाते तदातदोत्पन्ने प्रस्तुते प्रणयनादिकर्मणि विद्यामनुज्ञां वदति ब्रह्मन्नपः प्रणेष्यामीत्येवं संबोधितः सन् ओंप्रणयेत्यनुजानाति

(ब्रह्मा त्वो वदति जातविद्याम्) इसका अभिप्राय निरुक्तकार के अनुकूल यह है कि ब्रह्मा नामक एक ऋत्विक् क्रमशः प्रसङ्गानुसार होने वाले प्रणीता प्रणयनादि कर्मों में अध्वर्यु आदि के पूछने पर (ओंप्रणय) इत्यादि मन्त्र वाक्य पढ़ता हुआ प्रणीता प्रणयनादि कर्मकी आज्ञा कहता है याज्ञिक लोगोंमें सर्वत्र प्रसिद्ध है कि अन्य सभी ऋत्विज् ब्रह्मा की आज्ञा मिल जाने पर अपने २ नियत कर्मों को किया करते हैं, इससे मन्त्रांश का यही अभिप्राय ठीक है, यह आशय हिन्दी निरुक्त से स्पष्ट नहीं होता ॥

निरुक्तका खण्ड विच्छेद हिन्दी निरुक्तमें अशुद्ध छपा है ऐसा पूर्वमें हम लिख चुके हैं तदनुसार पृ०७९ के आरम्भमें छपे (अथापि समुच्चयार्थो भवति) इस पाठके साथ पृष्ठ ८० में हिन्दी व्याख्यान के पश्चात् छपा-

पर्यायाइव त्वदाश्विनम् । आश्विनं च पर्यायाश्चेति ॥

यह पाठ छपना चाहिये था क्योंकि खण्डकी समाप्ति आगे चलकर होना चाहियें सो वैसा न करके (अथापि समुच्चयार्थे भवति) पर खण्ड समाप्त किया गया इस से अनर्थ यह हुआ कि पृ० ८०की ८ वीं पङ्क्तिकी और पृ०८१ पं० ३ की भाषा परस्पर असंबद्ध हो गयी, जिसका अभिप्राय पाठकों को समझना असम्भव हो गया।

आगे हिन्दी निरुक्त अ० २ की व्याख्या के पृष्ठ ४१ में निम्न मन्त्र छपा है-

अंशुंदुहन्तो अध्यासते गवि [ऋ० सं० ८।४ ३०।४]

निरु०इत्यधिषवणचर्मणः ॥

इसका अर्थ पृष्ठ ५० में यह छपा है कि "गो के अवयवभूत अधिषवण चर्मके ऊपर सोमरस को निचोड़ते हुए डटे रहते हैं" यह अर्थ इसलिये ठीक नहीं है कि इससे गोचर्म के ऊपर सोमरस का निचोड़ना प्रतीत होता है किन्तु विशुद्ध अक्षरार्थ उक्त मन्त्र वाक्यका यह होगा कि "सोमरस को निचोड़ते हुए अध्वर्यु लोग गो नाम लाल

यैल के चर्म पर वैठते हैं,, । इस प्रकार गोचर्म वैठनेका आधार है किन्तु सोमरस नि-चोडने का आधार गोचर्म नही है । वैल को भी गौ कहते हैं यह तो प्रसिद्ध है, इसी के अनुसार कातीय श्रौत सूत्रादि में लाल वैल का चर्म लेना विहित है । यहभी वि-चारणीय है कि सोमरस किसी द्रोणकलशादि पात्र में निचोड़ा जासकता है किन्तु विछाये हुए चर्म पर निचोड़ा जाय तो फैल जायगा । आस–उपवेशने–धातु का अर्थ डटे रहना उचित नही, क्योंकि खड़े हुए को भी डटा है ऐसा कह सकते हैं इस से वैठते हैं, यही अर्थ ठीक है ॥

आगे पृष्ठ ६४ में मूल निरुक्त पाठ के साथ अन्त में १०।११ दो पङ्क्तियों में–

यद्दं चकार इति दीर्घतमस आर्षम् ।

इत्यादि दुर्गाचार्य का भाष्य भूलसे छपा है, उसको भी पाठक लोग मूल निरुक्त समझेंगे व किन्ही को भ्रम होगा और वे अन्य पुस्तकों से मिलाये विना कुछ निर्णय न कर सकेंगे ॥

आगे हिन्दी निरुक्त अ० ३ पृ० ५० पं० ११ में लिखा है कि "निष्केवल्यमें शस्त्र" यहां ऐसा होना चाहिये कि "निष्केवल्यशस्त्रमें विनियुक्त है" आगे इसी उक्त पृष्ठ की १५।१६ पङ्क्तियोंमें लिखा है कि "दोओं को भी आये हुओं को अकेला ही हरादेता है हमारी सम्मति है कि "आयेहुए दोको भी अकेला ही हरा देता है,, ऐसी इवारत हिन्दी भाषा की शैली के अनुसार होनी चाहिये ॥

आगे इसी अ० ३ के पृ० ७४ पं० १५।१६ में लिखा है कि "यह चर्म शिराः=(चम-ड़े का टोप पहनने वाले) आचार्य मानते हैं,, चर्मशिरा यह एक ऋषि नाम है, इसका निर्वचन यास्काचार्य निरुककारने कुछ नही किया । हमारी समझमें चर्मशिराः पदका उक्तार्थ लिखना आचार्य का अपमान वा लाघव सूचक है क्योंकि तपस्वी लोग च-मड़ेके हैट लगाते हों ऐसा किसी प्रमाण से सिद्ध नही होता । प्रथम तो नाम रूढि होते हैं, ऐसा मान लें तो अर्थ की आवश्यकता नही दीखती तथापि अर्थ किया जाय तो चर्म ही है शिर में जिनके वे चर्म शिरा कहाये ऐसा अर्थ हो सकता है । वर्त्तमान समय में भी जो लोग मस्तिष्क द्वारा शोच विचार का काम अधिक करते हैं उन के शिर के वाल अन्त्यावस्था में गिर जाते हैं, वैसे आचार्य्य के भी शिर के वाल गिरगये हों अथवा किसी कारण जन्म से ही शिर में केश न जमे हों इस से उन का नाम चर्म-शिरा हुआ हो यह सम्भव है ॥

अब इस समालोचना को यही समाप्त किया जाता है, और सूचित किया जाता है कि हमने हिन्दी निरुक्त की त्रुटियों का यह परिगणन नही किया है कि इसमें इतनी ही त्रुटि वा अशुद्धि है, किन्तु ऐसी त्रुटि अनेक हैं जिनमें से दिग्दर्शन मात्र हम ने

दिखा दी हैं मूलार्थ करनेमें हो अनेक त्रुटि हैं परन्तु निरुक्तके समझनेमें विशेष उपयुक्त अनेक ऊपरी बातें विशद रूपसे इस हिन्दी भाष्य निरुक्त में वर्णित हैं इस लिये यह उपयोगी अवश्य है, गुणावगुण सभी दिखाना समालोचकका कर्त्तव्य धर्म समझकर हमने लिखा है इस कारण निरुक्त हिन्दीभाष्य निर्माता महाशय क्षमा करें।

शोकाञ्जलिः ।

(१)

हा हन्त श्री पितृव्यवर अपराध हमने क्या किये।
जो हम बिलखते ही रहे पर आप तज कर चल दिये॥
माता, पिता, पत्नी, अनुज, पुत्रादि को हा छोड़ कर।
नहिं ध्यान था श्रीमन् गमन कर जायंगे मुख मोड़ कर॥

(२)

तव पूज्य जननी अति विकल मृतवत्स गोसम ही रहीं।
त्वच्चरण ध्यानामग्न हा शोकार्त्त चाची रो रहीं॥
ये करुण क्रन्दन हे प्रभो हम से सुना जाता नहीं।
व्यवहार सब संसार का तव दर्श विन भाता नहीं॥

(३)

थे यथा नाम तथा गुणः पितृव्य श्री सुखदेव वर।
आजन्म सर्वानन्द दे दुख दे गए क्यों क्लेश हर॥
गुरु जनक जननी पाद पङ्कज में सदा अनुरक्त थे।
नहिं की अवज्ञा स्वप्न में भी पूर्ण गुरुजन भक्त थे॥

(४)

जग जनक जननी जीर्ण नौका के प्रभो! पतवार थे।
आदर्श तब व्यवहार थे शुभगुणों के आगार थे॥
सेवा समय माता पिता के दैव तू ने क्या किया।
हा! गोद से प्रिय पुत्र ले अन्तिम समय दुख दे दिया॥

(५)

इस नाट्यशाला जगत में नाटक दिखाने थे कई।
पर हाय कुसमय आपकी जीवन जवनिका गिर गई॥

तब ब्रह्मचर्यादिक निरख हम को यही निश्चय रहा।
चिर काल तक संसार में सब सौख्य भोगेंगे महा॥

(६)

नर रत्न थे हम सम वयस्कों मे प्रभो एक आप ही।
सब यत्न करते ही रहे पर लुट गया हीरा वही॥
जगदीश के सब नियम निश्चल हैं न चल सकते कभी।
हा दैव पर दुर्भाग्य से उलटे हुए हम को सभी॥

(७)

जिस पूर्णिमा को पूर्ण होता चन्द्र जगदालोक है।
कमनीय जिस की कौमुदी सब नष्ट करती शोक है॥
उस सर्वनाशिनि शर्वरीमें चन्द्र अस्तङ्गत हुआ।
मम मुद कुमुद मुरझा गया।दुख कमल वन विकसित हुआ॥

(८)

यद्यपि दिखाया दुःख ये सब पूर्व सञ्चित पाप ने।
कुछ किन्तु धारण धैर्य करने के लिये प्रभु आपने॥
मरु तापत्रय सन्तप्त जगमें कल्पतरु दो सुत तजे।
आश्रय वही आशा लता के सुमन पल्लव युत तजे॥

(९)

जिनकी कि शीतल छांह में क्षण बैठ तव अर्द्धांगिनी।
कुछ मरण का दुख भूल जाती मन्द भागिनि भामिनी॥
हा किन्तु उन में ज्येष्ठ जो जिस का किया था आसरा।
दव वन्हि व्याधि प्रकोप से नहिं रह सका वह भी हरा॥

(१०)

डाला जले पर नमक दाहक और व्रण में व्रण किया।
"दैवोऽपि दुर्बलघातकः„ चरितार्थ अथवा ये किया॥
भय्या कहो लक्ष्मी सताया क्या वियोगानल तुम्हें।
जनकानुगामी जो हुए दो मास में ही तज हमें॥

(११)

हा चल दिया लक्ष्मी सभी तज कर तुम्हारे पास को।
पितृव्य वर यद्यपि अधम नहीं भूलना मुझ दास को॥
भव पन्थ तमसाकीर्ण है नहि ज्ञानदीपक साथ में।
अब दास का उद्धार करना नाथ के ही हाथ मे॥ ११॥

(१२)

आजन्म हम रोते रहेंगे आप के इस शोक में ।
बस कीर्त्ति ही अवशिष्ट है अब आप की इस लोक में ॥
करता प्रणति श्रीचरण में करबद्ध हो नत शीश से ।
बस आप को सद्गति मिले अन्तिम विनय जगदीश से ॥ १२ ॥

आपका हतभाग्य सेवक–रुद्रदत्त "मिश्र"



मूर्तिपूजा

गुरु शिष्य संवाद द्वारा

शिष्य–पण्डित जी यदि समय दें तो आज कुछ पूछना है ।

गुरु–क्यों क्या बात है ? कोई विशेष विषय है क्या ।

शि०–महाराज चित्त की अवस्था भी कई रंग दिखाती है मैं समझता हूं चित्त की अवस्था बदलने पर बुद्धि भी बदल जाती है ।

गु०–इस में क्या संदेह है चित्त की अवस्था का प्रभाव बुद्धि पर बड़ा विलक्षण होता है, चित्तकी अवस्था जो शिक्षा देती है वह कोटि बुद्धियों से नहीं दी जा सकती । विशेषतः कविता, प्रेम, और भक्ति पर तो यह बात पूरी २ घट सकती है; कविता जितनी स्पष्ट चित्त के भाव से समझी जाती है कोटि अर्थ करने पर भी वह इतनी हृदयङ्गम नहीं होती और प्रेम और भक्ति का तो कहना ही क्या ।

शि०–परन्तु संशय एक दफा घुसड़ा हुआ चैन नहीं लेने देता सारे आनन्द को मटिया मेट कर देता है । आज मैं यह बात प्रत्यक्ष देख रहा हूं, एक तरफ तो गत प्रातः कालों का स्मरण शुद्ध आनन्द रूपी गंगा का स्नान कराता है और एक तरफ दलील चैन नहीं लेने देती ।

गु०–बात क्या है ?

शि०–महाराज कुछ काल हुआ मैं विष्णु भगवान् की मूर्त्ति की उपासना किया करता था अब भी प्रातःकाल स्नान करके " तुलसीदास अति आनन्द निरखि कें मुखारविन्द प्राण धन जीवन सब मेरे तुम वारे " गाते हुये चन्दन घिसने का स्मरण रोमावली खड़ी कर देता है जब तक निश्चय रहा तब तक आनन्द रहा, परन्तु प्रतीत होता है कि वह भ्रम ही था । तर्क के आगे मूर्तिपूजा सिद्ध नहीं हो सकती, मैंने भी उसका त्याग किया किसी द्वेष के कारण नहीं केवल इस कारण कि शायद जो समाज मूर्तिपूजा के विरुद्ध बोलता है उस की ज्ञानोन्नति अधिक होगी और उस के

संसर्ग से अवश्य ही लाभ होगा। कुछ दिन तो बड़े प्रसन्न रहे मित्रों के रोज़ के प्रश्नों से छुटकारा पाया। छठे सातवें दिन इस विषय पर बहस छिड़ जाती थी, कि मूर्तिपूजा ठीक है या नही हम खण्डन किया करते थे। मूर्तिपूजा पर विश्वास रखने वालों को धूर्त्त और दस्यु की पदवी देनी प्रारम्भ करदी कुछ दिन तो इस तरह विता दिये परन्तु चित्त को लग्न लगी हुई थी यह विवाद बुरे प्रतीत होने लगे चित्त क्लेशित रहने लगा न केवल मूर्तिपूजा पर ही, भक्ति तथा ज्ञान पर भी आन्तरिक विश्वास न रहा। पहिले महात्माओं के,चरित्र पढ़कर आनन्द आता था उन पर भी श्रद्धा न रही। बहुत कहने से क्या लाभ, यह तो मैं मानता हूं कि पूजा में आनन्द तो आता था परन्तु दलील इस के विरुद्ध है और इस का करना असभ्यता का लक्षण माना जाता है परन्तु निराकार का ध्यान मेरी समझ में नही आता। हमारी समाज में मूढ़ विद्वान् धर्मात्मा अधर्मात्मा एक ही प्रकार का ध्यान करते हैं। सभी प्रकार के मनुष्यों का निराकार पर एक सा ध्यान जम जाता है इस में मुझे अत्यन्त संशय है। बातोंमें तो कुछ ही कहूं परन्तु कई बार व्याकुलता बहुत दबा लेती है। इधर पहुंचा नही जाता उधर मूर्तिपूजा पर मुझे बहुत सी शंकायें हैं। शङ्काओं को निवारण करदें तो आपका बड़ा अनुग्रह होगा।

गु०—मैं आपके वर्णनसे आपके मानसिक भावोंको बहुत कुछ समझ गया हूं आप की शंकाओंका समाधान बहुत कठिन न होगा क्योंकि आप उस विषयपर शंका करते हैं जिसको आपने कुछ अनुभव किया हुआ है। यह बातें करने से समझ में आती हैं हानि कारक यह वहां हैं जहां कि बिना किये इन पर हठपूर्वक विवाद किया जाता है आओ अब हम क्रम से शंका समाधान करें।

शि०—मूर्तिपूजा में आनन्द क्यों आता है, यह आनन्द सच्चा है या भ्रममूलक।

गु०—आनन्द का उद्भव क्या है ?

शि०—आनन्द कई तरह प्राप्त होता है पठन पाठन में, स्त्री पुत्र में, मित्रोंमें इत्यादि

गु०—यदि स्त्री में आनन्द होता तो सब भर्ता आनन्द युक्त दिखाई पड़ते यदि पुत्र में सुख होता तो सब पिता प्रसन्न रहते, यदि मित्रों में होता तो सब मित्रवान् सुखी रहते, यदि धन धान्यादि सच्चे आनन्द के देने वाले होते तो इन के भोक्ता अवश्य ही परम प्रसन्न दृष्टि आते परन्तु केवल स्त्री पुत्रादि के होने मात्र से कोई सुखी नहीं दीख पड़ता किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षा रखता है वह वस्तु क्या है जरा सोचो।

शि०—हां कइयों की आपस में बन जाती है कइयों की नहीं, कहीं प्रेम बड़ा होता है वहां आनन्द भी होता है कही नहीं होता वहां आनन्द भी नही होता।

गु० तो आनन्द का कारण स्त्री पुत्र हुए वा प्रेम ?

शि०—प्रेम ही आनन्द है यही निश्चय होता है।

गु०–सच है प्रेम से ही स्त्री आनन्द देती है प्रेम से ही पुत्र मित्र पठन पाठनादि । प्रेम मामूली चीज को बड़ी बना देता है । प्रेम के होते अवगुण गुण दृष्टि आते हैं दुःख सुख हो जाता है इसके अभाव में फल भी विपरीत होता है ।

शि०–तो प्रेम क्या वस्तु है ?

गु०–प्रेम चित्त का एक भाव है, प्रकार इसके कई हैं पुत्र का प्रेम अन्य प्रकार का है स्त्री का जुदा माता का जुदा इत्यादि ।

शि०–आप कहते हैं कि प्रेम जुदा २ है यह तो मैंने समझ लिया परन्तु चित्त का एक भाव है यह समझ में नहीं आता पिता को देखने स्मरणादि करने से ही पितृ प्रेम उपजता है स्त्री को देखने से ही स्त्री प्रेम उत्पन्न होता है यदि चित्त का एक भाव होता तो यों भी उत्पन्न होता ।

गु०–यही दलील मैं देना चाहता था कि पिता आदि की मूर्तिमें पितृ प्रेम उपजता है यों ही नहीं विना आधार के प्रेम नहीं । खास आधार खास प्रेम का सूचक होता है,

शि०–यह तो मान लिया कि ये जितने प्रेम हैं आधार के विना नहीं होते परन्तु चित्त का एक भाव है इसका उत्तर चाहता हूं ।

गु०–अपने उत्तर को खूब सोचलो फिर आग्रह अथवा शङ्का न हो ।

शि०—इसमें किञ्चित् मात्र भी संशय नहीं कृपा करके अगला उत्तर दें ।

गु०—सुनो, बालक को यदि असल पिताके देहान्त होने पर अन्य पुरुष दिखाकर कहें यही तेरा पिता है तो बालक में पितृवात्सल्य होगा या नहीं ।

शि०—हो जाता है ।

गु०–यदि किसी पुरुष का पिता परदेश में चला जाय और कई वर्षों के बाद रूप बढ़ा कर वापिस आवे तो क्या पुत्र को न जानते हुये कि यह मेरा पिता है पितृ प्रेम होगा ।

शि०–नहीं

गु०–तो फिर प्रेम चित्त का भाव ही हुआ पिता में यदि पितृ भाव न हो तो प्रेम नहीं होता और अपिता में भी यदि पितृश्रद्धा हो जाय तो पितृवात्सल्य पैदा हो जाता है इस कारण प्रेम चित्त का भाव ही है ।

शि०–हम अपने प्रश्न से दूर चले आये ।

गु०–दूर नहीं बल्कि समीप आगये हैं जरा इन विचारों को एकत्रित करिये आनन्द का कारण क्या है ।

शि०—प्रेम

गु०–प्रेम के प्रकार

शि०—मातृ प्रेम, पितृ प्रेम आदि.

गु०—प्रेम किस विना नही होगा।

शि०—आधार के विना

गु०-प्रेम क्या है ?

शि०-चित्त का एक भाव

गु०-इस कारण प्रेम, भाव, और आधार अन्योन्य सम्बन्ध रखते हैं जहां यह तीन होते हैं वहां ही आनन्द होता है भाव शुद्ध और अशुद्ध होने से कई प्रकार के होते हैं, भक्त को इष्टदेव की मूर्त्ति अतिशुद्ध प्रेमका आधार होती है, भाव शुद्ध होने के कारण आनन्द भी अपूर्व होता है।

शि०- आनन्द का कारण तो मैं समझ गया परन्तु यह भाव सच्चा होता है या भ्रममात्र एक प्रसिद्ध विद्वान् लिखते हैं कि यह भाव झूंठा होता है क्योंकि जो सच्चा है तो

(१) तुम्हारे भावके अधीन हो कर परमेश्वर बद्ध हो जायगा।

(२) और तुम मृत्तिका में सुवर्ण रजतादि पाषाण में हीरा पन्ना आदि समुद्रफेन में, मोती जल में घृत दुग्ध, दधिआदि और धूलि में मैदा शक्कर आदि की भावना करके उन को वैसे क्यों नही बनाते हो।

(३) तुम लोग दुःख की भावना कभी नही करते वह क्यों होता है इत्यादि।

गु०-सुनिये-परमेश्वर तो स्थाणु और और अचल होने के कारण सर्वत्र समवस्थित है चञ्चल तो चित्त है इसी को बद्ध करना होता है। इस की चञ्चलता की कई अवस्था हैं चञ्चलता की अवस्थानुसार साधन भी होना चाहिये मूर्त्तिपूजा से लेकर अन्य योग के कई साधन चित्त की चञ्चलताके स्थिर करने के ही उपाय हैं। चित्तको एक देश में बांधनेसे ही धारणा पाद साधन होता है न कि घुमानेसे, चित्तका घूमना तो स्वतः सिद्ध है। सम्पूर्ण आध्यात्मिक उन्नतिका पहला साधन चित्तको एकदेश में बद्ध करना है, ईश्वर तो जो है सो है, न वह बद्ध है न अबद्ध, सम्पूर्ण परिश्रम तो चित्त निरोधमें करना पडता है जिस को मूर्त्तिपूजा (मानसिक हो चाहे वाह्य) एक साधन है बाकी रहा यह प्रश्न कि मिट्टीमें सुवर्ण आदिकी भावना करनेसे सुवर्ण क्यों नहीं हो जाता, मिट्टी में सुवर्ण तो कोई बडी बात नही, भावना तो नास्ति में हस्ती (अस्तित्व) दिखाई देती है, स्वप्न के शेर, नदियां पर्वत पुत्र मित्र स्त्री सब भावनाके वश से दिखाई देते हैं॥

हिप्नाटिज़म (Hypnotism) में एक साधारण चित्र पर हाथी घोड़े आदि की भावना कराई जाती है अत्यन्त भक्तिभाव के वश भक्तों को इष्टदेव की मूर्त्ति देख पडती है (जैसे तुलसीदास को श्रीरामचन्द्र जी सानुज दीख पड़े वर्त्तमान में स्वामी रामतीर्थ जी को कईवार कालीनाग पर चढ़ी हुई श्रीकृष्ण जी की मूर्त्ति दिखाई देती

थी । यूरोप और अमेरिका के कई स्थानों में अपना तथा औरों का इलाज मन की भावनासे ही किया जाता है (यद्यपि इन विद्याओंका असली घर भारत ही था परन्तु श्रद्धा और पुरुषार्थकी हीनतासे और असदुपदेश और कुतर्कवादके कारण अब लोप सी होगई हैं) और कई हालतों में यह औषधियोंसे अधिक लाभदायक साबित हुआ है । संक्षेपतः भावना का फल समझने के लिये इतना पर्याप्त होगा ।

(३) तीसरा प्रश्न सुखकी भावना करते हो दुःख क्यों प्राप्त होता है, कामना और भावना में बड़ा अन्तर है । सुखकी भावना तो अवश्य ही सुखका कारण होती है । तीव्र, मृदु, मध्यम होने से फल भी उसी प्रकार का होता है । भावना के दृढ़ और नियमानुकूल होने से ही फल होता है, इस में या अभ्यास करो या सिद्ध महर्षियों के हाल श्रद्धा से पढ़ो, विना कुछ किये संसारके धर्मों का मध्यस्थ बनना ठीक नहीं । आप ही कहें कि विश्वास और कर्म दोनों से हीन, पुरुष जो वितण्डा वाद करता चला जाय तो इस की कहीं सीमा आ सकती है । विना रासायनिक विद्या पढ़े और विना तजरबा किये जो जल को दो गैसों का संयोग मानने में दुराग्रह करे उस की बुद्धि की हम कहां तक प्रशंसा करें ।

शि०–नहीं महाराज भावना बड़ी तीव्र शक्ति प्रतीत होती है परन्तु इसका साधना ज़रा कठिन है, अब यह बताइये खास मूर्त्ति की उपासना क्यों की जाती है ?

गु०–जो अतीन्द्रिय वस्तु हो उस का एक सूचक रख लिया जाता है और यह आदर्श का एक प्रकार का स्मारक हुआ करता है । कई राजा न्यायका स्मारक तराज़ू रख लिया करते थे ब्रिटिश गवर्नमेण्ट सारी राजधानी के एकत्व का स्मारक झण्डा रखती है—यह न्यायादि के भाव उत्तेजन और दृढ़ करने में बड़ी सहायता देते हैं—इसी प्रकार खास मूर्ति परमात्मा की किसी खास शक्ति की सूचक होती है और परमात्मा सम्बन्धी शुभ भावोंको उत्तेजन और दृढ करने में मदद देती है ।

शि०–यह तो चित्त की कल्पना मात्र है ।

गु०–हां कल्पना मात्र कह देना कोई कठिन बात नहीं यही शुद्ध अशुद्ध होने से मनुष्यों को ऊंचा नीचा बनाती है । इस कल्पना मात्र से बचने के लियेही महा परिश्रम करना पड़ता है । जरा देखना साधारण व्यक्ति पर नग्न स्त्रियों की तथा अन्य अश्लील चित्र देखने का क्या प्रभाव पड़ता है इस कल्पना मात्र का जरा फल सुनो ।

ध्यायतोविषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायतेकामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥
क्रोधाद्भवतिसंमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।

स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥

भगवद्गीता

चित्त का एक बुरा तरङ्ग कहां का कहां ले जाता है इसी तरह शुद्ध आदर्श स्मारक से शुद्ध तरंग ही उपजते हैं इसमें क्या कोई संशय है।

शि०—कोई नही तो क्या आप समयानुसार मूर्तिपूजामे सचमुच कोई लाभ समझते हैं?

गु०—समय का प्रभाव तो भाषा, खान, पान, लिवास में कुछ परिवर्त्तन कर सकता है, मानसिक तथा प्राकृतिक नियम तो वैसे के वैसे बने रहते हैं काम्य कर्म्म करने वाले यदि उत्कट पुरुषार्थ के साथ सश्रद्धा पूजा भी करें तो विश्वास है कि बहुत जल्दी सफलता प्राप्त हो और योग के आरम्भिक साधनमें किसी न किसी सूरत में मूर्तिपूजा अवश्य ही करनी पड़ती है।

शि०-कई कहते हैं कि भारत की अवनति इसी से हुई है।

गु०-यह काम दम्भ कपटके लिये न होना चाहिये एकान्तमें करने योग्य है। अवनति का कारण मू० पूजा नहीं किन्तु दम्भ कपट और विश्वास की शिथिलता।

शि०-इसमें सफलता का क्या कारण?

गु०-जिस मानसिक नियम के कारण महात्मा सन्त और वीरों के जीवन पढ़ते २ रोमावली खडी हो आती हैं और नेत्रों में अश्रु आ जाते हैं उसी नियम से जिस जिस भाव से देवता की उपासना की जाय वही भाव दृढ हो आता है। आचार सुधर सकते हैं। उत्तम भाव पैदा किये जा सकते हैं। पहिले मूर्ति की आवश्यकता रहती है फिर नहीं रहती करने वाले को स्वयं अपने अधिकार का पता लग जाता है।

तद्ब्रह्मेत्युपासीत ब्रह्मवान् भवति ॥

इसी प्रकार धीरे २ आचार विचार में परिवर्त्तन आ जाता है।

इसी नियम के अनुसार एकलव्य ने द्रोण की मूर्ति से धनुष विद्या सीखी॥

—— जयवन्तराम बी. ए. बी. टी.



हे ईश हे दयामय इसदेश को सुधारो।

कुत्सित कुरीतियोंके वशसे इसे उबारो॥ १॥

बंधजायें चित्त सबके अब एक सूत्रही में।
जोहो मनोमलिनता धोकर उसे निवारो ॥ २ ॥
जर्जर अधर्मसे यह दिनरात हो रहा है।
इसकी दशा पलटने को देव तुम पधारो ॥ ३ ॥
प्रह्लाद की प्रतीक्षा अब मत करो कृपाकर।
दुर्दैव दैत्य का वस आकर उदर विदारो ॥ ४ ॥
उत्कर्ष पूर्वका वह अपकर्ष अब कहां यह।
इस भेदकी दशा को तुमही विभो विचारो ॥ ५ ॥
लाखों विपत्तियां हैं कैसे उन्हें गिनाऊं।
सब जान बूझ करभी मुरदेको यों न मारो ॥ ६ ॥
धन धान्य बुद्धि विद्या सब नाम मात्रके ही।
भारत इसे कहो वा गारत इसे पुकारो ॥ ७ ॥
यह दीन इस समय है तुम दीन बन्ध हो ही।
भूलो न वान अपनी वाजी कहीं न हारो ॥ ८ ॥
अनुरोध है हमारा हे दीन दुःख मोचन।
ऐसी दशामें मुझको मनसे न तुम उतारो ॥ ९ ॥
हरिदेव भूलके यदि तुमको अचेत सोवे।
पर तुम इसे कभी भी जगदीश मत विसारो ॥ १० ॥

हरिदेव—ब्रह्मचारी।

क्या वर्ण परिवर्त्तन हो सकता है

आर्यसमाज का सिद्धान्त है कि ब्राह्मण का शूद्र और शूद्रका ब्राह्मण एक ही जन्म में गुण कर्मानुसार हो सकता है हमारा पक्ष है कि नहीं। इस अपने पक्ष की पुष्टिमें अन्य प्रमाण न लिखकर केवल स्वामी दयानन्द जी के ही प्रमाण लिखते हैं। जिससे

समाजी भाइयों को प्रक्षिप्तादि कहने का अवसर न मिले। स्वामी जी ने अनेक स्थलों पर ब्राह्मणादि को जाति वाचक माना है समाजी भाई देखें—

स० प्र० सन् ८७ समु० ११ पृ० ३८१-(प्रश्न) जाति भेद ईश्वर कृत है वा मनुष्य कृत ? (उत्तर) ईश्वर कृत और मनुष्य कृत भी जाति भेद है। (प्रश्न) कौन से ईश्वर कृत और कौन से मनुष्य कृत ! (उत्तर) मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जल, जन्तु आदि जातियां परमेश्वर कृत हैं जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति, आदि जातियां वृक्षों में पीपल, वट, आम्र, आदि पक्षियों में हंस काक बकादि जल जन्तुओं में मत्स्य मकरादि जाति भेद हैं वैसे मनुष्यों मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अन्त्यज, जातिभेद हैं ईश्वर कृत हैं परन्तु मनुष्योंमें ब्राह्मणादिको सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते है ॥

यहां स्वामी जी ने स्पष्टरूप से ब्राह्मणादि को ईश्वरकृत जातिवाचक माना है तथापि कोई कोई समाजी भाई कुछ खींचातानी करते हैं वे कृपया आगे के लेखों को देखकर सन्तोष करें।

सामासिक (वेदाङ्गप्रकाश) जातिरप्राणिनाम् । २ । ४ । ६ प्राणिवर्जित जाति-वाची सुबन्तोंका द्वन्द्व समास एक वचन हो ... ... अप्राणिनामिति किम्=ब्रह्म-क्षत्रिय विट् शूद्राः ।

उणादिकोष—पा० २ सू० १९ । शोचतीति शूद्रस्सेव-को वा पुंयोगे शूद्रस्य स्त्री शूद्री शूद्रा तज्जातिर्वा ।

स० प्र० सन् ७५ पृ० १४१ । अपनी जाति में देवर अथवा ज्येष्ठ जो सम्बन्ध से होय उस से विधवा का पाणिग्रहण होना चाहिये ।

उपदेश मंजरी (पूनाके व्याख्यान) पृ० २० । सारी जातियां वेदाभ्यास करनेका अधिकार रखती हैं देखो— यथेमां वाचम्० ।

(इस मंत्र के अर्थ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्रादि स्वामी जी ने लिखे हैं)

स० प्र० सन् ८७ पृ० ५२ । वेद निन्दक नास्तिकको जाति पंक्ति और देशसे बाह्य करदेना चाहिये ।

(यहां जाति करके ब्राह्मणादि ही लिये जायंगे अन्य अर्थ नहीं घट सकता है)

स० प्र० सन् ८७ समु० ११ पृ० ३६८ । तैलङ्ग देशमें उसको जाति में किसी ने न लिया । ....वैसा ही जाति बहिष्कृत ब्राह्मण काशी में रहता था ।

इसी प्रकार समाजी विद्वानों के भी प्रमाण इस विषय में अनेक मिल सकते हैं हमने विस्तार भय से नहीं लिखे अब विचार कर्त्तव्य है कि जाति बदलती है या नहीं इस विषय में अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं समाजी भाइयों को स्वामी दयानन्द रचित आर्योद्देश्य रत्न माला,का ३८ वां नम्बर अवलोकन करना चाहिये जिसमें जा-

तिको नित्य अर्थात् जन्म से लेकर मरण पर्यन्त माना है । यह अनेक शास्त्रों का सिद्धान्त है कि जाति नित्य है बदलती नहीं और ब्राह्मणादि ये जातिवाचक हैं इसी को हमने स्वामी दयानन्द के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखाया है। आर्यमित्र १ फरवरी सन् १५ पृ० २ में सम्पादक सत्नानन्द ने लिखा है कि 'जाति होती है जन्म से, सो ठीक है फिर ब्राह्मणादि जाति का बदलना कैसा।

आर्य शिरोमणि पं० आर्यमुनि भी इस बात को मानते हैं कि जाति बदलती नहीं इसी कारण स्वरचित वेदान्त दर्शन भाषाटीकामें 'जान श्रुति जावाल प्रकरण पर तीन स्थलोंपर लिखा है कि शूद्र 'जाति, नहीं। समाजियोंसे प्रार्थना है कि ऊपर लिखे स्वामी जी के प्रमाणों को देखकर विचार करें कि यह मामला क्याहै ।

आपका-तुलसीराम शर्मा
मु० सितारी पो०.सासनी (अलीगढ़)

संसारभरके आर्यसमाजियोंसे प्रश्न

सत्यार्थप्रकाश में लिखा है और आर्यसमाज का नियम है कि वर्ण व्यवस्था गुण कर्म, स्वभावसे है-ब्रह्मचारी जब गुरुकुल से पढ़ कर निकले उस समय राज सभा हो और राजसभा यह नियम करे कि ब्राह्मणके लड़के का स्वभाव यदि शूद्रका सा हो तो वह लड़का शूद्रको दे दिया जाय और यदि शूद्रके लड़के का स्वभाव ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य का हो तो वह स्वभाव के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रियादि कर दिया जाय, ऊपर लिखे हुए स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त पर नीचे लिखे हुए प्रश्न किये जाते हैं जिनका उत्तर सम्पूर्ण दयानन्दी भाइयों को प्रमाण सहित युक्तियुक्त देना चाहिये।

१-ऊपर लिखा हुआ नियम किस वेद के अनुसार है-कि ब्राह्मण शूद्र हो जाय शूद्र ब्राह्मण हो जाय इसका प्रमाण ठीक २ देना चाहिये।

२-महात्मा लाला मुन्शीराम जी के दो पुत्र गुरुकुल से पढ़ कर निकले उनमें से इन्द्रचन्द्र जी तो ब्राह्मण हो गये वह लाला मुन्शीराम जीके तो भिन्न वर्ण होने से पुत्र हो नहीं सकते क्योंकि मुन्शीरामजी तो स्वभाव के अनुसार खत्तरी लिखे और पुकारे जाते हैं तो बतावें कि लालाजीको इनके पुत्र के बदले इन के स्वभाव के अनुसार कौन पुत्र दिया गया या विचारे पुत्रसे वञ्चित ही रहे-या कि अपने गुरुके वचनको उल्लंघन कर दिया।

३-दूसरे पुत्र हरिश्चन्द्र तो नास्तिक होगये बतायें वह किस वर्णमें किये गये और किस के पुत्र बनाये गये अथवा किस को दिये गये और लाला जी को इन के बदले कौन पुत्र मिला।

४–आर्यसमाज जबसे जारी हुआ है-तबसे केवल भगी चमारों को ही शिर मूंड २ कर शर्म्मा वर्म्मा बना रहा है–क्या आर्यसमाज में जितने ब्राह्मण हैं वह सभी स्वभाव के ब्राह्मण हैं–अथवा कर्म करते हैं यदि नही तो क्यों स्वभाव के अनुसार शूद्रादि नही किये जाते यदि किये हैं तो उनका नाम ग्राम बतावे यदि नहीं किये तो यह कहां का कैसा नियम है कि शूद्र वर्णसकरादि तो हजारों ही वर्मा शर्मा कर दिये और ब्राह्मण शूद्र के कर्म करते हुए भी एक भी शूद्र नही किया इस दोष का भागी कौन होगा॥

५– आर्य समाज ने जितने भगी चमारादि शर्म्मा वर्मा किये हैं वह क्या सभी स्वभाव के शर्म्मा वर्म्मा ही हैं तो आपने कैसे जाना और गुरुकुल मे पढे और कौनसी राज सभा हुई यदि नही तो क्यों बनाये और उभय भ्रष्ट किये॥

इन प्रश्नोंके उत्तर जो महाशय जिस पत्र मे मुद्रित करावें उसकी एक प्रति मेरे नाम निम्नलिखित पते पर भेज देनी चाहिये इन प्रश्नोंके उत्तर आनेपर और प्रश्न किये जावेंगे उत्तर ठीक २ होने चाहिये वृथा श्रम करना ठीक नहीं है—

धर्म्मानुचर—

विद्यार्थी दुर्गादत्त शर्म्मा

सनातन धर्म्म पं० सं० विद्यालय दातारपुर जि० (होशियारपुर)

ऋग्वेद संहिता पर सम्मति।

हिन्दूधर्म तथा संस्कृत के साहित्य समुद्र का कर्णधार वेद है। वेदकी अनुपलब्धि (?) तथा अर्थ काठिन्य ने तो वैदिक संसार में ऐसी खलबली मचा रक्खी है जिसका ठिकाना ही नहीं। मेरी तो यही धारणा है कि वैदिक साहित्यका उद्धार होनेही से भारतवर्ष का उद्धार अवश्यम्भावी है। प्राचीन भाष्यकारों के आधार पर प्रकृत पण्डितों के द्वारा इसका सम्पादन होने से वैदिक साहित्य का उद्धार हो सकता है नहीं तो इसके व्यर्थ अर्थ करनेसे भविष्यत् मे बड़े २ अनर्थ होजाने की पूर्ण सम्भावना है। नही तो कहीं वेद की ऋचाओं से तार, टेलीफोन, कुर्सी, मेज़ वगैरह अर्थ निकलने लगेंगे तो भारतीय भावी सन्तान अंधेरी गिरिगुहा में ही बैठे २ टटोला करेगी।

वेद चार हैं। उनमें सब से प्राचीन ऋग्वेद है। इसमे दश मण्डल हैं। इस को यदि इतिहास कहा जाय तो भी कुछ अत्युक्ति नहीं होगी। क्योंकि भारतीय इतिवृत्त का सबंध ऋग्वेद ही से है। वैदिक मर्म के प्रकाश नहीं होने ही से भारतीय इतिहास का अबतक उद्धार नही होसका। इसीलिये कोई राम कहता है कोई श्याम इन्हीं सब बातों को सोच विचार कर वर्षों से देहरादून से 'ऋग्वेद संहिता, नाम की

एक मासिक पत्रिका निकलती है। इसमें पहिले समूची एक ऋचा लिखी हुई है, बाद इसके एक एक शब्दके आगे संस्कृत और हिन्दी अर्थ अलग२ कोष्ठकमें लिखा हुआ है उसके नीचे समूचे सूक्त का संस्कृत अर्थ एक जगह और हिन्दी अर्थ एक जगह है सब से नीचे सूक्त का हिन्दी में सरल भावार्थ है। विशेषता यह है कि सभी ऋचाओं के देवता और ऋषि भी दिये हुये हैं। केवल प्रथम मण्डल ११२ अङ्कों में तथा पांचहजार एकसौ छानवे ५१९६ पृष्ठमें समाप्त हुआ है। १०७ पृष्ठोंमें सभी सूक्तों की वर्णानुक्रम सूची और विषयसूची अन्तमें अलग देदीगई है। प्रथम मण्डल का मूल्य २० रु० और १२ अंकों का अर्थात् वार्षिक मूल्य २) रु० है।

इसका सम्पादन मुलतान निवासी पण्डित शङ्करदत्त शास्त्री जी की सहायता से पण्डित शिवनाथ आहिताग्नि जी कर रहे हैं। मैं समझता हूं कि ऐसी बहुमूल्य बहुधन तथा परिश्रम साध्य मासिक पत्रिका का यह तुच्छ मूल्य कुछ भी नहीं है। यों तो श्रुतिबोध आदि कई वैदिक मासिक पत्रिकायें निकलती हैं किन्तु हिन्दी जनता तथा संस्कृत जनताके लिये इस ऋग्वेद संहिता के समान अत्युपकारिणी दूसरी पत्रिका कोई है ही नहीं।मैं आशा करताहूं कि हमारे भारतीय राजामहाराजा इसके प्रधान पृष्ठ पोषक बनकर इसे चिरस्थायी तथा हमारे सर्वसाधारण हिन्दू भाई भी इसके ग्राहक होकर अपने सनातन वेद के उद्धार के यशोभागी बनेंगे। आहिताग्नि जी की करणी ऐसी है जैसी किसी ने नहीं की होगी। ये महाशय जी दरिद्र ब्राह्मणोंको तो यों ही विना मूल्य अपने ही डाकव्ययसे पुस्तकोंका दान करते हैं।मुझ दीन निष्किञ्चन ने इसका प्रेमी बनकर जो लाभ उठाया है वह अवर्णनीय है। जिसे ग्राहक होना हो अथवा प्रथम मण्डल के अङ्क मगवाने हों वे मुन्शीजयराम, मैनेजर ऋग्वेद संहिता देहरादून से पत्र व्यवहार करें। अन्तमें मैं इसके सम्पादक शास्त्री जी तथा आहिताग्नि जी से प्रार्थना करता हूं कि आप सब इस कार्य की उत्तरोत्तर उन्नति ही करने की चेष्टा करें।

रामविलास, आरा।

शिवदत्त शर्मा की धूर्त्तता।

गत ता० २३ दिसम्बर के सद्धर्मप्रचारक में किसी शिवदत्त शर्मा नाम के समाजी उपदेशक का एक लेख(पं० अखिलानन्दकी चालें)शीर्षक का छपा है। जिसमें अनेक असभ्य शब्दों में पं० अखिलानन्दका स्मरण किया गया है पर हमें इस बात से मतलब नहीं, यह तो वह जाने या पं० अखिलानन्द जानें। पर पं० अखिलानन्द के सम्बन्ध

में लिखते हुये इस समाजी-उपदेशक ने कुछ वातें माननीय पं० भीमसेन शर्मा जी की शान में कह डाली हैं जिनका मुंहतोड़ उत्तर देना हमें आवश्यक प्रतीत हुआ है।

इस शिवदत्त नामके समाजीने लिखा है कि "प०अखिलानन्द अपने ग्राम चंदुआ के नगला से चल कर जि० एटा-मौजा लालपुर में पहुंचा और पं० भीमसेन जी से मिला" इसके आगे उसने पं० जी को कृष्णकाय, शब्दसे सम्बोधित किया है इससे मालूम पडता है कि या तो इस समाजी उपदेशक के सर्वाङ्गमें श्वेतकुष्ठ हो गया है या यह यूरोपियन है और समाजियोंने इसे गुणकर्मके चक्करमें आकर शर्मा वना डाला है अन्यथा इस शब्द का प्रयोग यह मुंशीराम और इन्द्रके लिये क्यों न करता, अस्तु दूसरी वात यह कि इस समाजी उपदेशक ने यह लिखा है कि " पं० अखिलानन्द ने आर्यसमाज मीमांसा नामक पुस्तक प०भीमसेनजी महाराजको लालपुरमें दिखलाई" हरे हरे इस झूंठका भी कुछ ठिकाना है। सब जानते हैं कि पं०जी महाराजका अधिकाश निवास कलकत्ता में रहता है और छुट्टियों के दिनों में इटावा रहते हैं। न तो अखिलानन्द जी पं० जी से मिले, न पुस्तक दिखलाई नही मालूम यह सब झूंठी वातें किस लिये इससमाजी उपदेशकने गढी हैं। हम इस समाजी उपदेशकको चैलेंज देते हैं कि या तो वह इन वातोंको सिद्धकरे अन्यथा इस झूठ लिखनेका कुछ प्रायश्चित करे और क्षमा मांगे। आगे लिखा है कि" प० भीमसेनजी स्वामी दयानन्द को अपशब्द लिखते और कहते हैं, यह वात भी सर्वथा झूठ है, प० जी ने स्वामी दयानन्द के वेद शास्त्र विरुद्ध सिद्धान्तों का खण्डन किया है पर कही अपशब्द नही कहा है आज ब्राह्मणसर्वस्वको निकलते तेरहवर्ष वीत गये इतने समयमें स्वा०दयानन्दके सिद्धान्तोंकी यद्यपि ब्रा० स० मे धज्जी २ उडा दी गई हैं पर स्वा० दयानन्दके लिये व्यक्तिगत कोई अपशब्द नहीं कहा गया है, यदि प० जी की लेखनी से लिखा हुआ एक भी अपशब्द यह समाजी उपदेशक दिखादे तो इसकी वात सिद्ध मानी जायगी अन्यथा इस झूंठ का प्रतिफल भी उसे अवश्य भोगने पड़ेगा क्योंकि "अवश्यमेवभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्" इसको तो समाजी भी मानते हैं।

अन्तमें हम सद्धर्मप्रचारकके सम्पादक मुंशीरामको चैलेंज देतेहैं कि वे इस समाजी उपदेशक से इस वात को सिद्ध करावें क्योंकि पत्र सम्पादक का काम वडे महत्त्व का है उसका काम यह नही होना चाहिये कि चाहे जो लेख भेजे उसको विना विचारे छपा दे झूंठी वात छापने का वह भी जिम्मेदार है। सद्धर्म प्रचारककी उक्त सख्या में जो समाजी का लेख छपा है उसका दोष भागी सम्पादक भी है इसलिये या तो उस लेखकी सत्यता सिद्ध करे या अपने प्रेरित लेख प्रेषक का मिथ्या भाषण वताकर क्षमा प्रार्थना करे।

वेदतीर्थ—दाताराम पाठक

* समाचारावली *

श्री सनातनधर्मसभा तालग्राम ज़िला फ़रुखाबाद यू० पी० का वार्षिकोत्सव ता० २-३-४ मार्च सन् १९१७ को बड़े समारोह के साथ सुसम्पन्न हुआ उत्सव पर भारतवर्ष के प्रसिद्ध २ विद्वान् महोपदेशक जैसे कि श्रीमान् पं० कन्हैयालाल जी विद्यारत्न महोपदेशक यू० पी० मण्डल।मेरठ-श्रीमान् पं० कालूराम शास्त्री अमरौधा ज़िला कानपुर-श्रीमान् पं० लक्ष्मीनारायण शास्त्री मुख्याध्यापक श्रीमती सावित्री पाठशाला फ़रुखाबाद—श्रीमान् पं० आत्मारामजी उत्तरीय पूरा ज़िला कानपुर, श्रीमान् पं० मातादीन मिश्र भोगांव निवासी, श्रीमान् पं० गिरिजाशंकर शास्त्री संस्कृताध्यापक गवर्नमेण्ट हाईस्कूल मैनपुरी, श्रीमान् पं० गजानन्द राव नारायण जौहरी मैनपुरी श्रीमान् पं० नन्दकिशोर बाजपेई भजनोपदेशक कानपुर निवासी कृपा कर पधारे थे उपरोक्त महानुभावोंके प्रति दिवस मनुष्यधर्म, स्त्रीधर्म, भारतदशा, मूर्तिपूजा, संसार में शान्ति किस धर्ममें है, प्रेमभक्ति राजभक्ति आदि सनातनधर्म के सिद्धान्तों पर परम मनोहर व्याख्यान हुए जिस का कि सर्व साधारण पर अति प्रभाव पड़ा सनातनधर्मियों की कौन कहे भिन्नधर्मी तक सनातनधर्म की प्रशंसा करने लगे जन समुदाय सहस्राधिक एकत्रित होता था ता० ३ मार्च को बृहत् हवन द्वारा ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की विजय, और श्रीमान् सम्राट् पञ्चमजार्ज के दीर्घजीवी होने के वास्ते ईश्वरसे प्रार्थना की गयी, प्रति दिन ८ बजे से ११ बजे दिन तक शंका समाधान के वास्ते समय रक्खा गया था परन्तु कोई नहीं आया इस से प्रगट होता है कि अब सनातनधर्म के सिद्धान्तों पर किसी को कुछ शंकायें नहीं हैं अन्तिम दिवस श्रीमान् सम्राट् पञ्चमजार्ज को धन्यवाद देकर सभा विसर्जन की गई ।

निवेदक-बद्रीप्रसाद शर्मा मन्त्री सनातनधर्म सभा तालग्राम

ब्राह्मण सभा शिकोहाबाद का प्रथमोत्सव ।

गत शिवरात्रि अर्थात् ता० १९, २० फरवरी १९१७को शिकोहाबाद जिला मैनपुरी का प्रथम उत्सव आनन्द पूर्वक होगया । जिसमें ता० १९ यानी प्रथम दिवसको आये हुये पांच असमर्थ ब्राह्मण कुमारों का यज्ञोपवीत संस्कार कराया गया और भजन तथा उपदेश हुए । आगरे के श्रद्धेय पं० घनश्याम जी शर्मा संस्कृत प्रोफेसर तथा कुरावली ब्राह्मण सभाके प्रधान श्री कुंवरकल्याणसिंहजी भी कृपाकर पधारे थे जिन्हों ने अति उत्तम तथा जातिहित पूर्ण उपदेश दिये । सर्व साधारण की उपस्थिति अच्छी थी । आशा है सभा के सभासद् गण तथा मंत्री जी प्रतिज्ञानुसार उद्योग में कमी न करेंगे ।

सूरजपाल शर्मा उपमन्त्री,

समाजियों का झूंठ ।

समय के हेर फेर से सचाई एकदम उडगई है और झुठाई धोखेबाज़ी दुनियां मे अपना जलवा जमा रही है मालम हुआ है कि वहुत से आर्यसमाजी, समाचारपत्रों में फ़रुखाबाद में शुद्धि का मज़मून ले कर भोले भाले सनातनधर्मियों के दिल पर यह नाजायज़ असर डाल रहे हैं कि फ़रुखाबाद में शुद्धी हुई और वह भी मन्त्री सनातन-धर्मके स्थान पर और मन्त्री महोदय तथा अन्य सनातनधर्मी भी शामिल हुए थे यह समाचार विलकुल ग़लत है और इस के प्रतिवाद में प० लालमणि भट्टाचार्य मन्त्री सनातनधर्म सभा फरुखाबाद का उत्तर सनातन धर्म प्रचारक में निकल चुका है और उस से सनातन धर्मी महाशयों को शान्ति मिलेगी तथापि हम यहां पर यह कह देना उचित समझते हैं कि सनातनधर्मी इस में कोई भी शामिल न थे क्योंकि सनातनधर्म वेद के सिद्धान्तानुसार जन्म से जाति को मानता है वल्कि आठ रोज पहिले श्रीमान् प० लक्ष्मीनारायण जी शास्त्री सनातनधर्म विद्यालय फ़रुखाबाद ने एक 'शुद्धि पर शुद्ध विचार 'हेडिग, देकर नोटिस निकाला था और शुद्धि वाली ता० पर शास्त्रीजीने सभा की उस में सनातनधर्मी शामिल हुये थे यह फ़रुखाबादी समाजी भी जानते हैं फिर इन झूंठी वातोंको लिख कर समाजी पत्र अपने सफेद कालमों में कालिमा क्यों चढाते हैं क्या धोखा देना ही समाज का सिद्धान्त है ।

मन्नूलाल गोस्वामी भजनोपदेशक फरुखाबाद

सनातनधर्म सभा आझई (मथुरा) का द्वितीय वार्षिकोत्सव महन्त नारायणदास जी के सभापतित्व में फाल्गुण शुक्ला ६ । ७ । ८ सं० ७३ को सानद समाप्त हुआ जिसमें प० तुलसीराम शर्मा महोपदेशक सितारी (अलीगढ) पं० मोहनलाल जी शर्मा कराहरी महोपदेशक सनातनधर्म कार्यालय मथुरा के अत्यंत प्रभावशाली व्याख्यान हुये और सभाके दूसरे दिन आर्यसमाजियों की तरफसे विधवा विवाह विषयक प्रश्न किये गये थे जिनका उत्तर वेदादि शास्त्रोंसे देते हुये स्वामी दयानन्द कृत ग्रन्थोंसे भी विधवाविवाह को अयोग्य सिद्धकर श्रोताओंको प्रसन्न किया गया प्रश्नकर्त्ता का मुख अत्यन्त अधिक फीका पड़गया था तृतीय दिवस पूर्व दोनों दिनोंसे अधिक प्रभावशाली व्याख्यान हुए पहिले दिनके शास्त्रार्थमें समाजियोंके परास्त होनेके कारण जनसमुदाय अधिक इकट्ठा हुआ सम्राट् पंचमजार्जकी विजय प्रार्थना करते हुये सभाविसर्जित हुई तीनों दिन प्रातःकाल वेदोक्त विधि से गणेशादि पूजन जप हवन होता रहा व्याख्यानों के वीच २ में प्रवीण भजनमंडलियों के गान से श्रोता लोग अधिक प्रसन्न होते थे पं० लोकमणि शर्मा मन्त्रीजी के सराहनीय उद्योग से सभा स्थान तम्बू डेरा शामियाना चन्दनवार ध्वजा पताका सुन्दर दर्वाजे से ऐसा सुशोभित किया गया मानों किसी महासम्मेलन का जलसा है । एक दर्शक मथुरा ।

सिरसागञ्ज (मैनपुरी) यहां पर होली के उत्सव में ३-४ दिन नाच रंग हुआ करता था इस वर्ष यहां की सनातनधर्म सभा ने उक्त प्रथा को निवारण कर निज प्रबन्ध द्वारा प्रचार किया प्रथम दिवस चैत्रबदी २ को प्रथम पं० गोपालप्रसाद भजनोपदेशक सिरसागंज ने मङ्गल गान किया पश्चात् श्रीमान् पं० बाबूराम बिल्थरिया का होली की पुष्टता में मनोहर व्याख्यान हुआ तत्पश्चात् उक्त भजनोपदेशक जी ने व्याख्यान की पुष्टता करते हुए मधुर स्वर से गानकर उपस्थित जनता पर ऐसा भक्ति रस बरसाया कि सभा मण्डप जय २ ध्वनि से गरज उठा द्वितीय दिवस श्री आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र व श्री महादेव जी का तख्त निकाला गया उक्त भजनोपदेशक जी व व्याख्यानदाताने अपने मधुर २ स्वर से उपस्थित जनता को शिक्षा देते हुए ग्राम का भ्रमण किया पश्चात् सायंकाल के ८ बजे से ४ बजे तक रास हुआ। रास में पण्डित प्यारेलाल का प्रबन्ध सराहनीय था।

चौ० कन्हैयालाल

मिश्रजी का स्मारक।

साहित्यरत्नाकर विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र म० म० प० दे० जी के स्मारक की आवश्यकता के विषयमें ब्रा० स० के किसी गत अंक में हम लिख चुके हैं यह देखकर हर्ष होता है कि अन्य भी अनेक सज्जन इस प्रस्तावपर जोर देरहे हैं। गत पूर्वाङ्क में आगरा निवासी गोस्वामी पं० व्रजनाथ जी शर्मा ने ऋषिकुल भूमि में एक "लेक्चर हौल" व्याख्यानालय और पुस्तकालय मिश्रजी के स्मारक में बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया है, यह सर्वोत्तम प्रस्ताव है मैं इससे सहमत हूं मुझे आशा है कि अन्यभी धर्मप्रेमी सज्जनोंकी यही सम्मति होगी गंगातट और ऋषिकुल भूमिमें यह स्मारक विशेष शोभा देगा, इस शुभकार्य का शीघ्र आरंभ होजाना उचित है।

निवेदक—रामदत्त ज्योतिर्विद्।

बीड़ियों पर देवचित्र।

शोक है कि बीड़ियों के कितने ही व्यापारी बीड़ियों पर देवचित्र छपाते हैं क्या इससे उनका अनादर नहीं होता किन्तु क्या सनातनधर्मी इस ओर ध्यान दे रहे हैं, नहीं हमने हरगोविन्द मोहनलाल जबलपुर से विनय की थी उन्हों ने कृष्णछाप बदल कर मुरगा शेर छाप निकाली अब हम बीड़ी के व्यापारियों से सानुरोध विनय करते हैं कि वे देवचित्र बीड़ियों पर न छापावें और समस्त सनातनधर्म समाजों से प्रार्थना करते हैं कि इस प्रथा के बन्द करने में हमें सहायता दें।

मन्त्री—देश हितकारिणी समिति सदर बाज़ार जबलपुर।

विद्वानों से प्रश्न।

(१) स्वर्णकार (सुनार) अपने को क्षत्रिय कहते हैं। क्या यह बात सत्य है ? यदि नहीं तो इनका सम्बन्ध किस वर्ण से है ? भारतवर्षके विद्वानों को युक्ति प्रमाणों के द्वारा उत्तर देना चाहिये।

(२) वाल्मीकीय रामायण वाल्मीकि ऋषिने कब बनाया ? इसका उत्तर वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य ग्रंथों के प्रमाणों से देना चाहिये।

उत्तराभिलाषी—सोहनलाल गुप्त बल्लभगढ़।

२००) रुपया नक़द और एक स्वर्णपदक का इनाम।

यू०पी० आगरा और अवध के व्रत और सम्पूर्ण त्यौहारों पर जो महाशय सर्वोत्तम पुस्तक लिखेंगे उनको दो सौ रुपया नक़द और एक स्वर्णपदक पुरस्कार दिया जावेगा इस पुस्तकमें व्रत और सम्पूर्ण त्यौहारोंका लौकिक और शास्त्रीय कर्त्तव्य तिथि उत्पत्ति का समय तथा विज्ञान सरल हिन्दी भाषामें लिखा जाना चाहिये, इस पुस्तक के तीन भाग होने चाहिये पहिले भागमे व्रत दूसरेमें सार्वदेशिक त्यौहार और तीसरेमें भिन्न२ नगरों में लौकिक रीति से होने वाले त्यौहार और उत्सवों का वर्णन रहैगा। उक्त पुरस्कार सर्वोत्तम पुस्तक पर पण्डितों की कमेटी से निश्चय किया जाने के अनन्तर दिया जावेगा, श्रीयुत बाबू आनन्दस्वरूप डिपटी कलक्टर खेरी और साहित्य सम्मेलन कलकत्ते ने इस पुरस्कार का देना स्वीकार किया है।　निवेदक—अवधविहारीलाल बी०ए० एल०एल बी० वकील हाईकोर्ट महामंत्री यू० पी मंडल—
प्रधान कार्य्यालय—मेरठ

सूचना वा प्रार्थना।

श्री समस्त सज्जन पाठकगणों से सविनय निवेदन है कि " श्री खाण्डल विप्र महासभा " वा ऐसी जात्युन्नति सभा का प्रधान कार्यालय कहां है और प्रधान मन्त्री महोदय का नामादि वा उपरोक्त महासभा का भावी वार्षिक अधिवेशन कहां और कब नियत है, और इसी जातिका उन्नतिविषयक समाचार पत्रादि प्रकाशित होता हो तो भी ज्ञाता महोदय निम्नलिखित पते पर पत्र द्वारा सविस्तर वृत्त सत्वरही सूचित कर कृपापात्र बनेंगे।　　भवदीय—चरणाऽनुचरौ

खाण्डल वंशोद्भव ज्यो० पण्डित देवीलाल श्रीनिवास शर्मा मूण्डवा मारवाड़।

आवश्यकता है।

हमको एक ऐसे अध्यापक की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों को व्याकरण की प्रथमा परीक्षा दिला सके, वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा।

बांकेलाल गुप्त मैनेजर श्री धन्वन्तरि औषधालय विजयगढ़ जिला अलीगढ़।

PRINTED BY B. D. MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

षोडशसंस्कार विधि ।

हिन्दी भाषामें अब तक संस्कारों के विषय में साङ्गोपाङ्ग पुस्तक कोई नहीं छपी द्विजातियों के लिये संस्कार बड़ी ही उपयोगी वस्तु है और वर्त्तमानमें संस्कारों की दशा प्रत्येक हिन्दू गृहस्थके यहां बड़ी शोचनीय हो रही है शायद ही किसी भाग्यवान्के यहां सोलह संस्कार होते हों नही तो ४।६ मुख्य २ संस्कारों का कर लेनाही कर्त्तव्य समझा जाता हैं इसमें एक कारण यह भी है कि संस्कारोंकी अबतक पूर्ण कोई पुस्तकनहीं छपी संस्कारभास्कर आदि जो पुस्तक बम्बई आदि छपी हैं व संस्कृतमें होनेसे सर्वसाधारणके उपयोगी नहीं, ऐसी कठिनताओं को देख कर पं० भीमसेन जी शर्मा ने इस पुस्तककी रचना की है ऊपर मूल संस्कृत और नीचे भाषा में उनके करने की पूर्ण विधि लिखी गई है जिसके सहारे थोड़े पढ़े लिखे भी संस्कार करा सकते हैं बड़ी उपयोगी पुस्तक है मू० २) है पर सर्वसाधारणके सुभीते के लिये कीमत घटाकर१॥)ही कर दी है। हिन्दीके सभी प्रसिद्ध पत्रोंने इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

सनातन हिन्दू धर्मव्याख्यान दर्पण ।

स्वा० आत्माराम जी का नाम भारतवर्ष के सनातनधर्मी समुदायमें सुप्रसिद्ध है, स्वामी जी निःस्वार्थ भावसे सनातन धर्म्म की सेवाकर रहे हैं उन्हींके ३० व्याख्यानों का यह संग्रह है। पुस्तक दो खण्डों में विभक्त है। दोनों खण्डों में तीस तीस व्याख्यान है पुस्तक का पूर्वार्द्ध जिस में ३० व्याख्यान है छपकर तैयार होगया है इन में सनातनधर्म के सभी विषयों का मण्डन, प्रमाणों युक्तियों व दृष्टान्तों से किया गया है व्याख्यानों की इस से बड़ी पुस्तक दूसरी अब तक नहीं छपी कागज़ छपाई उत्तम है। टाइटिल तीन रङ्गों में दर्शनीय छपा है पृष्ठ संख्या बड़े सायजके पृष्ठों में ६०० है मूल्य केवल २) है, सनातनधर्म के प्रेमी इस पुस्तक को मंगाकर लाभ उठावें।

पुनर्जन्म

यह पुस्तक नया ही छपा है जगत् प्रसिद्ध पं० भीमसेन शर्मा ने इसकी रचना की है, कितने ही मतानुयायी पुनर्जन्म को नहीं मानते ऐसा मानने वाले इस देश में भी हैं और अन्यान्य देशोंमें भी है इस पुस्तकमें प्रश्नोत्तर द्वारा विस्तार रूप से इस विषय की आलोचना करके सिद्ध किया गया है कि पुनर्जन्म अवश्य होताहै इसमें प्रमाणों की भरमार नहीं किन्तु तर्क और दलीलों के द्वारा पुनर्जन्म विरोधियों के मत का खण्डन किया गया है। मू० ।)

पुस्तकें मिलनेका पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा ।

❋ ❋ ब्रह्मप्रेस इटावा की नवीन पुस्तकें ❋ ❋

आर्ष-कृषि-विज्ञान ।

भारतवर्ष का दारमदार खेती पर निर्भर है थोड़े से लोग भले ही नौकरी शिल्प आदि से जीविका करलें पर जब तक खेतीकी उन्नति न होगी जबतक ऋषिप्रणीत उपायों से काम न चलाया जायगा तब तक हजार हजार खेतीकी कलों और पाश्चात्य वैज्ञानिक उपायोंसे खेतीकी उन्नति नहीं हो सकती यूरोप और अमेरिका के लिये भले ही वे उपाय या योग अच्छे हों पर भारतवर्षकी कृषि और कृषकोंका सुधार ऋषिप्रणीत उपायों से ही होगा, इस पुस्तक में महर्षि पराशर, गर्ग और वराह आदि के मतानुसार कृषिविद्या के पुरातन सिद्धान्त तथा कुछ नवीन उपयोगी बातें भी लिखी गई हैं खेतीके सम्बन्ध में ऐसी कोई बात नहीं जो इसमें न मिले । हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक ठा० पूर्ण सिंह वर्मा ने इस पुस्तकको लिखा है। मू० ।)

शरणवत्सल हम्मीर ।

राजपूतानेके क्षत्रियवीरोंके इतिहास में हम्मीरसिंह का नाम प्रसिद्ध है "त्रिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार" यह दोहार्द्ध बहुतों ने सुना होगा, पर हम्मीर की अद्भुत वीरता का वृत्तान्त अभी तक पूर्णरूप से कहीं नहीं छपा, इस उपन्यास में हम्मीरकी अद्भुत वीरता, क्षत्रियोंके अद्भुत पराक्रम एक यवन वीर का अद्भुत स्वार्थत्याग इत्यादि बातें ऐसे दिलचस्प ढंगसे लिखी गयी हैं कि पढ़ते २ कभी आपकी आंखोंसे आंसू गिरने लगेंगे, कभी आपके हृदयमें क्रोधका आवेश होगा, यदि दो आने पैसे का मोह नहीं है तो दो घड़ी दिल बहलानेके लिये इस नवीन उपन्यास की कम से कम १ कापी हमारे कहने से मंगाइये मू० ≈)

अपूर्व नौका ।

पीलीभीतके ला० राधेलाल अग्रवालने इसे लिखा है इस छोटीसी पुस्तक में सात कहानियां छापी गई हैं कहानियां रोचक तो हैं ही पर साथ ही उनसे बहुत सा ज्ञान सम्बन्धी उपदेश भी मिलता है कोई कोई तो कहानियां ऐसी हैं कि पढ़ते समय हंसी आये विना नहीं रहती । मू० ≡)

हिन्दु शब्द मीमांसा ।

अमरौधाके पं० कालूरामजी शास्त्रीने इस पुस्तकको लिखा है इसमें अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दु नाम हमारा मुसलमानोंने नहीं रक्खा, यह शब्द मुसलमानी मतसे पहिले का है बड़ी अच्छी पुस्तक है मू०)॥।

विधवाधर्ममीमांसा ।

इस पुस्तक में विधवाओं को किन २ नियमों का पालन करना चाहिये कैसे वे सदाचारिणी रह सकती हैं इस का पूरा व्याख्यान है सम्पादक ब्रा० स० ने इसे लिखा है । मू०)॥।

पुस्तकें मिलनेका पता—मैनेजर—ब्रह्मप्रेस, इटावा ।

सनातनधर्म महा सम्मेलन ।

आगामी ईस्टर की छुट्टियों में छठी अप्रैल से ६ वी अप्रैल तक लाहौर में वड़े समारोहसे अखिल भारतवर्षीय श्री सनातनधर्म महा सम्मेलन का तृतीय महाधिवेशन होनेवाला है इस वार इसमें उत्तमोत्तम कोई वाईस प्रस्ताव पेश किये जावेंगे। इन्हीं दिनों में सम्मेलन के पण्डाल में ही संस्कृत साहित्य सम्मेलन का भी उत्सव विशेष समारोह से होगा।

अशुद्धि संशोधन ।

बड़े खेद से लिखना पड़ता है कि इस अंक में प्रेस कर्मचारियों की असावधानी से प्रारम्भ के तीन फार्मों (अर्थात् २४ पृष्ठों) में पृष्ठसंख्या अशुद्ध छपगई है। पर लेखों का सिलसिला ठीक है। पाठकों से निवेदन है कि वे ५७८ पृष्ठ से ६०० पृष्ठ तक पृष्ठसंख्या ठीक करलें अर्थात् इनके स्थानों में क्रमशः २ से लेकर २४ तक पृष्ठसंख्या डालदें आगे २५ पृष्ठ से संख्या ठीक है। आशा है सभी पाठक इस निवेदन के अनुसार पृष्ठ संख्या ठीक कर लेंगे तो भ्रम न पड़ेगा।

आवश्यकता ।

ब्रह्मप्रेस इटावा के लिये १ प्रेसमैन १ दफ़्री और ४ सुयोग्य कम्पोजीटरों की आवश्यकता है। जो लोग प्रेसके कामों में दक्ष हों और किसी प्रेस में काम करचुके हों वे प्रार्थनापत्र भेजें, दफ़्री को कटिंग मेशीन और जिल्दवन्दी आदि कामों में पूर्ण योग्यता होनी चाहिये।

निवेदक—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा।

सूचना ।

श्रीमान् पं० ब्रह्मदेव शर्मात्मज पं० गयाप्रसाद शर्मा के मृत्यु शोक के स्मरण में मेरा विचार प्रति वर्ष एक रजत पदक १० वर्ष तक उन महानुभाव को देने का है जो निम्नलिखित वातों की पूर्त्ति करेंगे।

(१) सव से उत्तम लेख जो महाशय ब्राह्मणसर्वस्व में प्रकाशनार्थ देंगे।

(२) लेख सनातन धर्म सम्बन्धी हो।

(३) लेखक ब्राह्मण हों अथवा क्षत्रिय हों।

लेखों की उत्तमता का विचार श्रीमान् विद्वद्वर पं० भीमसेन शर्मा, वेद व्याख्याता कलकत्ता विश्वविद्यालय करेंगे तथा ब्रा० स० की प्रतिवर्ष की १२ वीं संख्या के साथ पदक प्रदान किया जायगा, इस वर्ष पदक का निर्णय जुलाई १६१७ में होगा।

शोकार्त्त—प्रयागप्रसाद त्रिपाठी।

हमारा नवीन वर्ष।

परातपर परमेश्वर की परम अनुकम्पा से ब्राह्मणसर्वस्व आज अपना १३ वां वर्ष समाप्त कर १४ वें मे पैर रखता है, गत वर्ष यूरोपीय महायुद्ध के कारण कागज के अत्यधिक तेज हो जाने पर भी यह पहिले ही की तरह निकलता रहा इस के रूप रंग आकार प्रकार मे किसी प्रकार का अन्तर नही आया, यद्यपि वर्त्तमान वर्ष में भी पूर्वोक्त आपत्तियोंकी शान्ति नही दीखती तथापि इसके सञ्चालकोंका यही विश्वास है कि वर्त्तमान वर्ष में भी ब्राह्मणसर्वस्व मे भेद न आवेगा, केवल एक परिवर्त्तन हमने किया है वह यह कि अब इस अङ्क से इस का एक फार्म कम कर दिया गया है और जब तक कागज की तेजी रहेगी इसी उपाय का आश्रय लेते रहना पडेगा, यद्यपि कितने ही सज्जनो ने यह अनुरोध किया है कि ब्राह्मणसर्वस्व के मूल्य में ही ।) की और वृद्धि कर दी जाय पर हम जहां तक समझते हैं वह ठीक न होगा, क्योकि युद्ध के कारण भारतवर्ष के व्यापार में भी वहुत क्षति पहुंची है तथापि यदि पृष्ठ संख्या न घटा कर इस के मूल्य मे ही ।) की वृद्धि हमारे ग्राहकों को अभिलषित हो तो वे वैसी सूचना दें तो हम वैसा भी करने के लिये तय्यार हैं। यहां हम यह भी सूचना दे देना आवश्यक समझते हैं कि ब्राह्मणसर्वस्व के ग्राहकों का ध्यान हमने कई वार इस तरफ आकर्षित किया था कि वे इस कागज की महर्गी के समय मे ग्राहक बढा कर हमें सहायता पहुंचावें तो यह सम्भव है कि कागज की तेजी के कारण जो क्षति ब्रा० स० को पहुंचेगी वह अधिक ग्राहक संख्या होने के कारण न अखरेगी, पर दुःख की वात है कि कुछ गिने चुने सज्जनों को छोड कर और महाशयों ने इधर ध्यान न दिया और इसी का यह परिणाम हुआ है कि आज हम एक फार्म घटाने के लिये वाध्य हुए हैं यदि फार्म न घटने की अपेक्षा मूल्यवृद्धि ही ग्राहकों को पसन्द हो तो वे वैसी सूचना दें। वैसा किया जायगा।

देरी का कारण।

कई एक पारिवारिक विपत्तियों के कारण ब्राह्मणसर्वस्वके निकलने मे कई महीनों से देर हो रही है, इस में सन्देह नही कि ब्राह्मण सर्वस्व को निकलनेमे थोडा सा भी विलम्ब हमारे प्रेमी पाठकों को असह्य होता है पर क्या किया जाय, हम जान बूझ कर ऐसा नही करते, घटना चक्र में पडकर विवश हो हमे पत्र प्रकाशन की देरी का उपालम्भभाजन होना पडता है इस का दुःख जितना पाठको को होता है उस से कम हमे भी नही होता, अस्तु पाठक धैर्य रक्खें, भविष्यत् मे हम ऐसा प्रवन्ध कर रहे हैं जिस से विलम्ब न हो। यह जनवरी का अङ्क पाठको के समीप पहुंच रहा है आगे के अङ्क भी शीघ्र पहुंचेंगे। निवेदक—मैनेजर ब्राह्मणसर्वस्व इटावा।

REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेपांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४ | मीन चैत्र सौर वि० १९७३ मार्च १९१७ | अङ्क ३

सम्पादक–पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २।)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।



ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≠) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≠) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा ।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

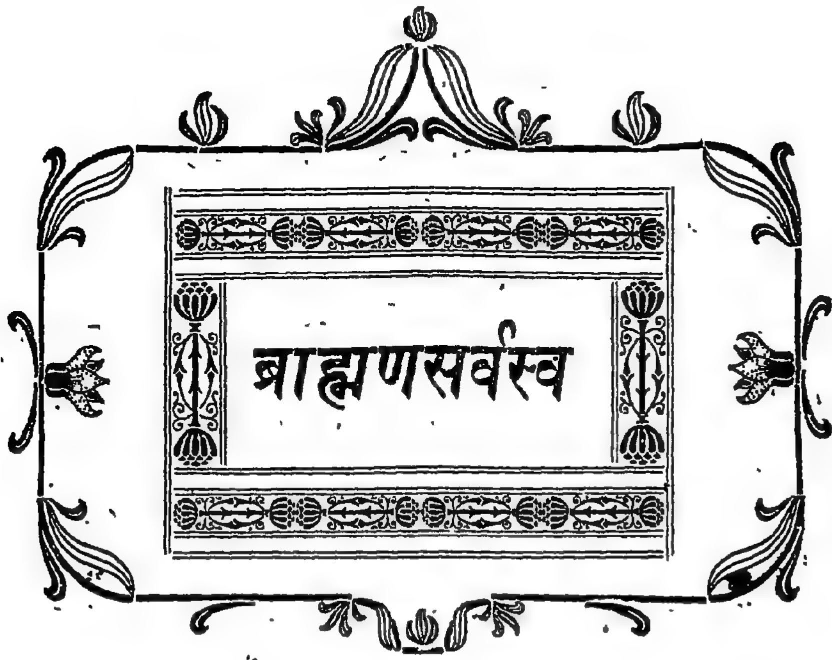
(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रवन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मासातक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नहीं बांटे जायगे ।

श्रीहरिः ।



ब्राह्मणसर्वस्व

उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	मीन चैत्र सौर वि० १९७३ मार्च १९१७	अङ्क ३

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

प्रीणीताश्वान्हितंजयाथ स्वस्तिवा-
हं रथमित्कृणुध्वम् ॥ द्रोणाहावमवतम-
श्मचक्र—मंसत्रकोशंसिञ्चतानृपाणम् ॥

ऋ० सं० ८।५।१६।१।

निरुक्तम्--प्रीणीताश्वान्त्सुहितं जयथ, जयनं वो हितमस्तु स्वस्तिवाहनं रथं कुरुध्वं द्रोणाहावं द्रोणं द्रुममयं भवति, आहावआह्वानादावह आवहनात्, अवतोऽवातितो महान् भवति। अश्मचक्रमशनचक्रमिति वा। अंसत्रकोशमंसत्राणि वः कोशस्थानीयानि सन्तु, कोशः कुष्णातेर्विकुपितो भवति, अयमपीतरः कोश एतस्मादेव सञ्चय आचितमात्रो महान् भवति। सिञ्चत नृपाणं नरपाणं कूपकर्मणा संग्राममुपमिमीते॥ निरु० ५। २६॥

अन्वयः--सोमपुत्रो बुधऋषिः सएव देवानुद्दिश्याह--हे देवाः! यूयमश्वान् प्रीणीत यवसोदकादिभक्ष्यपानीयोपयोगेन तर्पयत तैरुपजातबलोत्साहैरश्वैर्हितं युष्मदीयं यथास्यात्तथाऽसुरान् जयथ। यस्मिञ्जये मित्रभ्रातृपुत्रादयो वीराः शत्रुभिर्हन्यन्ते तादृशो विजयोऽपि विजेतुरहितो भवत्येव यथा पाण्डवानां कौरवैः सहाहितो विजयआसीत्तद्व्यावृत्त्यर्थं हितमित्युक्तम्। तथा स्वस्तिःकल्याणकरा वाहा वाहनानि यस्य तादृशमिदेव रथं कृणुध्वं कुरुध्वम्। द्रोणं द्रुममयं काष्ठनिर्मितं रथयानमाह्वानाहावस्थानीयमस्मिंस्तमश्मचक्रमश्मानि प्रवेशनशीलानि शत्रूनुद्दिश्य वा क्षिप्तानि चक्रादीन्यायुधानि यस्मिंस्तमंसत्रकोशमंसत्राणि धनूंषि कवचानि वा कोशस्थानीयानि निधिरूपाणि यस्मिंस्तादृशं नृपाणं नरः पिबन्त्युदकमत्र तादृशकूपमिवावतं संग्रामगर्त्तमुदकस्थानीयेन शवसमूहेन सिञ्चत पूरयत॥

भावार्थः-अत्र कूपोपमया संग्रामो वर्णितः देवपदेनात्र दैवीसम्पद्युक्ता देवभाविनो धार्मिका मनुष्या बोद्धुं शक्यास्तानुद्दिश्यायमुपदेशः सम्भवति । यथा चौरगृहस्वामिनोः संग्रामे चौरानन्तःप्रविष्टमन्यायभयं बाधते तेन योद्धुं नोत्सहन्तेऽतएव दस्युचौरादयः पराजयमाप्नुवन्ति । गृहस्वामिनश्च धर्मबलमन्तःप्रविष्टमुत्साहयति तेनैव ते विजयं लभन्ते । तथैव धार्मिकाधार्मिकयोः संग्रामे धार्मिकाएव विजयन्तेऽधार्मिकाश्च पराजयन्तेऽतएवोक्तम्-यतोधर्मस्ततोजयइति यस्य वस्तुन उपर्याधिपत्यं कर्त्तुं युध्यन्ते तत्र येषां न्यायानुकूलं स्वत्वं त एव धार्मिकाः, ये च दस्युवद्बलादन्यायेनान्यस्य वस्तुनि स्वत्वं चिकीर्षन्ति स्थापयन्ति वा तएवाऽधार्मिकाः । धार्मिकैः क्रमेण शनैः सम्भारान्संचित्य न्यायसंगतं स्वत्वं प्राप्तुं यतितव्यम् ॥

भाषार्थः-सोमदेवता के सन्तान बुध इस मन्त्र के ऋषि हैं, वेही दैवी सम्पत्तिके प्राणियों को संबोधित करके कहते हैं कि हे देवो ! तुम लोग (प्रीणीताश्वान्) दाना घास आदि खिला पिलाके घोड़ों को तृप्त करो, उन वलिष्ठ हुए अश्वादि वाहनों से (हितं जयाथ) जिस प्रकार तुम्हारा हित हो वैसा विजय प्राप्त करो। जिस विजय में विजेताके पुत्र मित्र भाई भतीजे आदि वीर पुरुष शत्रुओंके द्वारा मारे जाते हैं, वैसा विजय विजय कहाने परभी विजेताका अहितकारी होता है, जैसे कौरवोंके साथ हुए संग्राममें पाण्डवोंका अहितकारी विजय हुआ था। वैसे विजयाभास की निवृत्ति के लिये यहां हितं पद कहा गया है (स्वस्तिवाहं रथमित्कृणुध्वम्) कल्याणकारी अच्छे उत्तम शिक्षित अश्व वाहनों वाले रथों को ही युद्ध के लिये तयार करो तथा (द्रोणाहावमश्मचक्रमंसत्रकोशं नृपाणमवतं सिञ्चतम्) जिसमें काष्ठका रथही युद्ध के लिये बुलाने का स्थान है ऐसे, शत्रुओं के शरीर में प्रवेश करने वाले वा उनपर फेंके जाने वाले चक्रादि शस्त्र, जिसमें विद्यमान हों ऐसे तथा धनुष वा कवच निधिरूप हैं

जिसमें ऐसे कूप के तुल्य संग्रामरूप गर्त्त को जलस्थानी मृत मनुष्य शरीरों से भरो अर्थात् मुर्दों के ढेर लगाओ ॥

भा०-इस मन्त्र में कूप की उपमा से संग्राम का वर्णन किया है, देव कहने से भविष्यकाल में देवत्व को प्राप्त होने वाले दैवी सम्पद् से युक्त मनुष्य समझने चाहिये, उन्ही को संबोधित करके यह उपदेश किया गया है । जैसे चोर और घर के स्वामी का संग्राम होने पर चोरों के मन में प्रविष्ट हुआ अन्यायरूप अधर्म का भय चोरों को दबाता है, तिससे चोरों के मन में निर्भयता के साथ गृहस्वामी के साथ युद्ध करने का साहस वा उत्साह नही होता, इसी कारण डाकू चोर और साहूकार के परस्पर होने वाले संग्राम में चोर डाकू पराजय को प्राप्त होजाते हैं । और गृह स्वामियों के अन्तःकरण में प्रविष्ट धर्म का बल उनको उत्साहित करता है, इसी कारण उनका विजय होजाता है । इसी प्रकार धर्मात्मा और अधर्मी के संग्राम में धार्मिक दल ही विजय को प्राप्त होता और अधर्मी पराजित हो जाते हैं, इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि (यतो धर्मस्ततो जयः) जिस पक्ष में धर्म की अधिकता होती है, उसी का विजय होता है । जिस किसी वस्तु पर अपना २ आधिपत्य करने के लिये दो दलों वाले युद्ध करते हैं, उस वस्तु पर जिस दल का न्यायानुकूल स्वत्व होता है, उसी दल वाले मनुष्य वास्तवमें धार्मिक होते, वा कहे और माने जाते हैं। और जो लोग डाकू आदिके तुल्य बल पूर्वक अन्यायसे उस वस्तु पर अपना स्वत्व जमाना चाहते हैं, वेही अधर्मी कहाते हैं । धार्मिक दल के लोगोंको चाहिये कि वे क्रमशः शनैः शनैः साधनों का संचय करके न्याय संगत अपने स्वत्व को प्राप्त करने का दृढ़ तथा अटल उपाय करें धर्मके साथ ईश्वर देवता का सम्बन्ध अवश्यमेव रहता है, इसी कारण धार्मिक अधार्मिकों के युद्ध में ईश्वर देवता धार्मिक दलके सहायक अवश्य ही होते है । इससे धार्मिक लोग ईश्वर की दृढ उपासना और प्रबल उपायों द्वारा अपना अभीष्ट सिद्ध करें ॥



वेदसर्वस्वालोचन

[गताङ्क से आगे]

उपोद्घातके पश्चात् वैदिक मुनिने ऋग्वेद पर विचारारम्भ किया है, उसके प्रारम्भ में ऋक् का स्वरूप वा लक्षण उक्त महाशय ने यह लिखा है कि—

ऋच्यते स्तूयते प्रतिपाद्यार्थः (देवता) अनया सा ऋक् ॥

जिस मन्त्रके द्वारा मन्त्र प्रतिपाद्य देवता की स्तुति कीजाय उसका नाम ऋक् है, यह लक्षण अतिव्याप्ति दोष ग्रस्त है, क्योंकि ऋक्, यजुः, साम और निगद इन चारों

प्रकार के मन्त्रों द्वारा मन्त्र प्रतिपाद्य देवता की स्तुति की जाती है, तब यजुः साम और निगद नामक मन्त्रोंका भी ऋक् नाम होना चाहिये । परन्तु निरुक्तकार यास्का-चार्य ने लिखा है कि (ऋगर्चनी) अर्थात् अर्च्यते-पूज्यते देवताविशेषोऽनया सा ऋक्, भिन्न २ देवताओं की पूजा जिस के द्वारा होती है उस का नाम ऋक् वा ऋचा है, इस प्रकार यास्क ने अर्चा अर्थ वाले ऋच् धातु से ऋक् शब्दकी व्युत्पत्ति मानी है, यद्यपि स्तुति पूजा का ही एक अङ्ग है, इस से स्तुति भी पूजा कही जा सकती है, तथापि स्तुति का भी पूजा अर्थ होना गौण है और आहुति देना मुख्य पूजा है । और यह आहुत्यात्मक पूजा यजुः साम तथा निगद मन्त्रों से यज्ञों में नहीं होती, किन्तु ऐष्टिक पाशुक तथा सौमिक इन त्रिविध यज्ञों में आहुत्यात्मक देव पूजा प्रायः उन्हीं मन्त्रोंसे होती है जिनका नाम ऋक् है क्योंकि याज्या पुरोऽनुवाक्या पढ़े विना यागोंमें कोई आहुति होती नहीं, और याज्या पुरोनुवाक्या ऋचाही होती हैं, किन्तु यजु आदि याज्या पुरोनुवाक्या नहीं होतीं । इस प्रकार आहुत्यात्मक पूजा का साधन ऋचा ही होती है, ऐसा लक्षण होने पर अतिव्याप्ति दोष नहीं आसकता । यद्यपि कहीं २ कभी यजु आदि द्वारा भी आहुत्यात्मकपूजा होती है तथापि प्रधानता ऋचाओं की ही है, इससे लक्षण में कुछभी दोष नहीं आता । यदि वैदिक मुनि को यह भेद ज्ञात होता तो वे अतिव्याप्ति दोष ग्रस्त ऋक् का लक्षण कदापि न करते, इस से प्रतीत होता है कि उनने यह भेद नहीं जाना होगा ॥

आगे पृष्ठ २५ में "तस्मिन्नग्नौ सूक्तवाकेन देवाः" (ऋ० १० । ८८ । ७) इस मन्त्र पर वैदिक मुनिने सूक्तवाक शब्दका अर्थ स्तोत्र रूप वाणी लिखा है, इससे वेद विषय की अनभिज्ञता स्पष्ट सिद्ध है । क्योंकि सभी वेदवेत्ता जानते हैं कि हविर्यज्ञों में प्रस्त-राहुतिके लिये यह सूक्तवाक एक निगद मन्त्र है, उसीका ग्रहण सूक्तवाक कहनेसे होगा दर्शपौर्णमासादि प्रकृति विकृति रूप सैकड़ों इष्टियों में सूक्तवाक, शंयुवाकादि अंग प्रसिद्ध हैं, इन प्रसिद्ध बातों को भी वेद विषय में जो नहीं जानता वह यदि वेद विषय का जानकार बनता हुआ वेद की मीमांसा करने का दावा करे तो बड़ा ही अनर्थ है, जानने वालों की आंखोंमें धूलि झोंकना है । जैसे कोई व्याकरण जानने का अभिमान रखता हुआ भी वैयाकरणों के सामने कहे कि सकल शब्द भी सभी का नाम है, इस से संकल पदकी भी सर्वनाम संज्ञा होनी चाहियें, क्योंकि जो किसी खास का नाम न होकर सबका नाम हो वह सर्वनाम कहाता है, सकल, अखिल, निखिल, इत्यादि शब्द भी वैसे ही हैं, इससे ये भी सर्वनाम हैं । ऐसा सुनकर लघुकौमुद्यादि पढ़े सा-धारण वैयाकरण छात्र भी ऐसे मनुष्य की बुद्धि पर उपहास करेंगे । वैसे ही वैदिक प्रक्रिया जानने वालोंके समक्ष सूक्तवाक पदका उक्तार्थ भी उपहासके योग्य अवश्य है ।

आगे पृष्ठ २५में यह भी लिखा है कि-जैसे सूक्त शब्दका पर्याय स्तोत्र शब्द हैं, वैसे

स्तोत्र शब्दका पर्याय स्तोम शब्द, ब्रह्म शब्द तथा उक्थ शब्द है। स्तोत्र शब्दके उच्चारण करने से जिस अर्थ का बोध होता है, स्तोम, ब्रह्म तथा उक्थ शब्द के उच्चारण करने से भी उसी अर्थ का बोध होता है, कुछ विशेष नही है॥

समीक्षा-यहां भी वैदिक मुनि बहुत भूले हैं, क्योंकि सूक्तादि शब्द स्तोत्र के पर्यायवाचक वास्तव में नहीं हैं, किन्तु सबका अर्थ भिन्न २ है। मानलो कि किसी सूक्त में प्रार्थना है किन्तु स्तुति नाम प्रशंसा किसी की नही है तब उस सूक्त को भी स्तोत्र कहना वेद की मर्यादा से विरुद्ध है। यदि किसी सूक्तमे संवाद है जैसे यमयमी सूक्त, इसमें भी किसी की स्तुति नहीं है, वेद में ऐसे सैंकडों सूक्त हैं, जिनमे प्रार्थना तथा संवादादि विषयोंका वर्णन है, वे सभी सूक्त तो कहाते हैं परन्तु किसीकी स्तुति उनमें न होने से उनको स्तोत्र कहना मानना नितान्त भ्रम है। वेद मे योगरूढ़ और यौगिक दो प्रकार के शब्द माने जाते हैं, किन्तु रूढ़ शब्द वेद में नहीं हैं, उनमे योगरूढ़ मुख्य तथा यौगिक गौण हैं। जिस प्रसंग मे शब्दका योगरूढ़ अर्थ नही घटता वहां उसका यौगिकार्थ भी करलिया जाता है। जैसे देवदलके विरोधी प्राणिसमूह का बोधक असुर शब्द वेदमें प्रायः योगरूढ़ आता है, परन्तु जहां देवताओंका विशेषण असुर शब्द आता है वहां योगरूढ़ार्थ नहीं घटता किन्तु वहां यौगिकार्थ किया जाता है, यथा—

अस्यति प्रक्षिपति विनाशयति तमोऽधर्मं वा सोऽसुरोदेवः।

जो अन्धकारको वा अधर्मको नष्ट करता है उस देवका नाम असुर है, असु-क्षेपणे धातु से औणादिक उर प्रत्यय करने से यौगिक असुर शब्द बनेगा। सूक्त शब्द का लाक्षणिकार्थ यही है कि प्रत्येक मण्डल में जिन छोटे मन्त्रसमूहों की संख्या समाप्त की जाती है वे प्रत्येक मन्त्र समूह सूक्त कहाते हैं (नासदासीन्नोसदासीत्०) इत्यादि ऋचाओं का सूक्त पुराकल्परूप है उसमें भी किसी की स्तुति नही है. इसी कारण वह सूक्त कहाता हुआ भी स्तोत्र नही हैं तथा स्तोत्र शब्द स्तोम, उक्थ और ब्रह्म शब्दोंका भी पर्याय वाचक नहीं है, किन्तु अग्निष्टोमादि सोमयागों में होता लोगों के शस्त्रों से पहिले शस्त्रों के साथ २ उद्गाता लोगों द्वारा जो गाये जाते हैं अर्थात् गान पूर्वक स्तुतियां होती हैं वे ही स्तोत्र कहाते हैं, इसी लिये याज्ञिक आचार्य कहते हैं कि—

अग्निष्टोमसोमयागे द्वादश स्तोत्राणि, द्वादश शस्त्राणि भवन्ति। उद्गातारः स्तुवन्ति। होतारः शंसन्ति -इत्यैतरेयब्राह्मणे सायणः।

अग्निष्टोम सोमयाग में बारह स्तोत्र और बारह शस्त्र पढ़ना नियत है, गान प्रक्रिया के नियमानुसार सामवेदी उद्गाता लोग पहिले जिस स्तुति को पढ़ते हैं वही स्तोत्र

कहाती और ऋग्वेदी होता लोग जिस स्तुतिको गान प्रक्रियाके विना ऋग्वेदी चालसे पढ़ते हैं वही शस्त्र कहाती है स्तु धातु से स्तोत्र और शंसु धातुसे शस्त्र शब्द बना है, दोनों धातु एकार्थ हैं तथापि सामवेदियों की स्तुति ही स्तोत्र कहाती और ऋग्वेदियों की स्तुति शस्त्र कहाती है। इसी ऋग्वेदी स्तुतिका द्वितीय पर्याय शब्द उक्थ भी ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा गया है, इस लिये स्तोत्र का पर्याय उक्थ को लिखना भी भ्रमात्मक है; इसी के अनुसार स्तोत्रका पर्याय स्तोम भी नहीं है, क्योंकि-त्रिवृत्, पञ्चदश, सप्तदश, एकविंश, इत्यादि के साथ स्तोम शब्द योगरूढ़ है। त्रिवृत्स्तोम,पञ्चदशस्तोम इत्यादि स्तोमोंके लक्षण ताण्ड्य महाब्राह्मणादि में विद्यमान हैं, अर्थात् सामवेदोक्त त्रिवृदादि रूपसे नाना प्रकार की विष्टुतियों द्वारा होने वाली निज प्रकार की स्तुति ही स्तोम शब्दका वाच्यार्थ है किन्तु सामान्य स्तुति स्तोम नहीं है। और ब्रह्म शब्द भी स्तोत्र का पर्याय नहीं किन्तु वृद्धि अर्थ वाले वृहि धातुसे(वृंहेर्नलोपश्च) इस उणादि सूत्र द्वारा ब्रह्म शब्द बना है और वेदोक्त कर्मानुष्ठान करने पर उत्तम फल प्रापण द्वारा यजमान की वृद्धि(उन्नति)का हेतु होनेसे सामान्य रूपसे सभी वेदमन्त्र ब्रह्म कहाते हैं,परन्तु विशेषकर ब्रह्मा नामक ऋत्विजोंका विशेष संबन्धी होने से अथर्व वेद ब्रह्मवेद कहाता है, इसी से अथर्वका द्वितीय नाम ब्रह्म वेदभी है, इससे सिद्ध हुआ कि ब्रह्म शब्द भी स्तोत्र का पर्याय वाचक नहीं है॥

ये सब भूलें वैदिक मुनि से इसी कारण हुई हैं कि वेदविषय को उक्त महाशय ने यथावत् नहीं जान पाया है। इसका मुख्य कारण यही है कि आर्यसमाजी लोग जिस निराले मनमाने ढंग से वेदको मानते हैं उस ढंगसे वेद की प्रक्रिया को कभी कोई मनुष्य जान ही नहीं सकता सब पाठक महाशयों को तथा विशेष कर वैदिक मुनिको हम सूचित करना उचित समझते हैं कि-हमने जो कुछ अब तक लिखा है वा आगे लिखेंगे उस में द्वेष दृष्टिसे वा स्वकीय महत्त्व स्थापनार्थ लिखने की चेष्टा हमारी स्वप्न में भी नहीं है,किन्तु हमारा अभिप्राय यही है कि इस पुस्तक में जो २ भूलें हैं उनको देखने द्वारा वेद विषयमें जो वेदाभिप्राय से विपरीत समझ फैलना सम्भव है सो न हो कर सर्वसाधारण को वेद विषय में ठीक समझने का अवसर प्राप्त हो। सो यह लेख इसी लिये लिखा जाता है कि यह पुस्तक विशेषकर समालोचनार्थ हमारे पास भेजा गया है।स्तोत्र स्तोमादि शब्दोंके पर्याय वाचक होनेके लिये वैदिक मुनिने जो उदाहरण दिये हैं उन उदाहरणोंमें हमारा दिखाया अर्थ घट सकता है,इससे वे उदाहरण हमारे कथन के सर्वथा अनुकूल हैं॥

आगे पृष्ठ २६ से ३२ तक में सूक्त और संहिताके भेदों पर विस्तारसे लिखा है, जिस में अनेकांश ठीक नहीं तथापि हमारा अभिप्राय इस वेद सर्वस्व का सर्वांश में संशोधन करने का नहीं है किन्तु विशेषोपयोगी विषयों में हुई त्रुटियों को दिखाकर

वेदाभिप्रायानुकूल जैसा उचित होना चाहिये वैसा दिखा देना है, जिस से वेदविषय में पाठकों को ठीक २ विचार जानने का सुभीता हो सके । पृष्ठ ३२ में एक बात यह लिखी है कि "पदप्रकृतिः संहिता" (ऋक्प्रा० २।१) पदों की प्रकृति का नाम संहिता है। संहिता शब्द से शाकल संहिता और पद शब्द से पद संहिता विवक्षित है। मूल कारण को प्रकृति कहते हैं, शाकलसंहिता प्रकृति और पदसंहिता विकृति है।

यह लिखना निरुक्त और पार्षद सूत्रके भाष्य कर्त्ता उव्वटके लेखसे विरुद्ध है, निरु० अ० १

पद प्रकृतिः संहिता। पद प्रकृतीनि सर्वचरणानां पार्षदानि॥

(पद प्रकृतिः संहिता) इस शौनकीयपार्षद सूत्रका अर्थ निरुक्तकार यास्काचार्य ने यह माना है कि पद हैं प्रकृति जिस की उस को संहिता कहते हैं सब चरण नाम शाखाओं के पार्षदसूत्र अर्थात् प्रातिशाख्यों के पद ही प्रकृति हैं क्योंकि वेदों की सभी शाखाओं के प्रातिशाख्यों में वेद पदोंको ही वेद की प्रकृति नाम उपादान कारण मानकर विचार किया है। ऊपर लिखे निरुक्त का अर्थान्तर कुछ नही हो सकता क्योंकि वहां पद प्रकृति समस्त पद में बहुव्रीहिं समास स्पष्ट है। इस से पदों की प्रकृति को संहिता कहना वैदिकमुनि की सरासर भूल है। तब ऐसा कहना चाहिये था कि "शाकल संहिता विकृति और पद संहिता प्रकृति है" इस में शाकल शब्द लगाना भी वैदिकमुनि की भूल है क्योंकि सामान्य संहिता कहने से वेदों की सभी संहिता पदों की विकृति सिद्ध होती हैं ऐसे सर्व देशी अर्थ को त्याग कर एक देशी अर्थ करके अभिप्राय को संकुचित कर देना दोष है। जैसे कोई कहै कि वस्त्र प्रकृति और सूत विकृति है अर्थात् सूत का उपादान कारण वस्त्र है जैसे इस प्रत्यक्ष प्रमाण से विरुद्ध भ्रमात्मक मिथ्याज्ञान को कोई भी बुद्धिमान् नही मानेगा क्योंकि सूत से वस्त्र बनता हैं वस्त्र से सूत नही बनता, वस्त्र का प्रकृति नाम उपादान कारण सूत होना जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है, वैसे ही वेद के पद भी संहिता के उपादान होना प्रत्यक्ष सिद्ध हैं क्योंकि जैसे सूतों के संयोग का परिणाम वस्त्र कहाता है वैसे ही पदोंके संयोगका परिणाम संहिता है, इस लिये संहिता विकृति और पद प्रकृति हैं।

पृष्ठ ३४ में लिखा है कि-"ऋक् संहिता का प्रवक्ता शाकल और ऋक्संहिता का पद विभाग कर्त्ता शाकल्य ये दोनों एक ही हैं जिन पण्डितों का यह मत है उन का यह कथन इस लिये ठीक नहीं कि इन दोनों में काल का बहुत अन्तर है क्योंकि ऋक्संहिता का प्रवचन कर्त्ता शाकल बहुत प्राचीन और पद संहिता का आविष्कर्त्ता शाकल्य उसकी अपेक्षा अर्वाचीन है॥

यह पूर्वोक्त कथन भी ठीक नहीं है क्योंकि शकल शब्द गर्गादि गण में पढ़ा होने से शाकल्य शब्द बनता और शकल की ऋषित्व विवक्षा में अण् प्रत्यय होकर शाकल,

शब्द और शाकल्य शब्द एक ही पुरुष के वाचक होने में कुछ विरोध नहीं है। जब उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है कि-

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखेसमुत्थिते पञ्चात्मकेयोगगुणेप्रवृत्ते।
नतस्यरोगोनजरानमृत्युः प्राप्तस्ययोगाग्निमयंशरीरम् ॥

श्वेताश्व०।

भा०-पृथिव्यादि तत्त्वों का असार विनश्वर भाग योगाभ्यास द्वारा नष्ट होकर चिरस्थायी सार भाग रह जाता है, ऐसी दशा में योगाग्निमय शरीर अर्थात् कायकल्प को प्राप्त हुए योगी को रोग और जरा मृत्यु आ कर नहीं घेरते इस से वह योगीजन लाखों वर्ष जीवित रह सकता है तब यदि एक ही मनुष्य ने ऋक्संहिता का प्रवचन नाम अध्यापनादि द्वारा प्रचार करने के अनेक वर्षों बाद ऋक् का पदविभाग किया तो इसमें दोष ही क्या है? जिस के लिये दोनों कामों के कर्त्ता शाकल और शाकल्य भिन्न माने जावें?। अर्थात् अन्य पं० का मत खण्डन करने के लिये शाकल शाकल्य इन दो को भिन्न २ व्यक्ति मानने की चेष्टा अनुचित है। और वैदिक मुनि के पास इसका भी कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है कि ऋक् संहिता के पदों का आविष्कार अत्यर्वाचीन है॥

जब गर्गादि गण में शकल शब्द लिखा है, और गोत्रकी अनुवृत्ति होनेपर भी जैसे जमदग्नि शब्द से अनन्तरापत्य की विवक्षा में जामदग्न्य परशुराम का नाम हो जाता है और उस अनन्तरापत्य में, गोत्रत्वका आरोप कर लिया जाता है, तब उसी प्रकार शकल का अनन्तरापत्य रूप पुत्र शाकल्य सिद्ध क्यों नहीं हो सकता? और जब शकल का पुत्र शाकल्य हो सकता है तब सायणाचार्य्य के "शकलस्य पुत्रः शाकल्यः" इस लेख को पृष्ठ ३६ में वैदिक मुनिने अनुचित क्यों कहा? अर्थात् सायणाचार्य के कथन का खण्डन करना वैदिक मुनि का प्रमाद है अथवा अपना महत्त्व दिखाने के लिये वैसा किया होगा॥

आगे पृष्ठ ३७ से ४५ तक नौ पृष्ठोंमें वेदकी शाखाओं के भेद पर पुराणों के, स्वा० दयानन्द जीके तथा सत्यव्रत सामश्रमीके विचार भिन्न २ प्रकारके दिखाये हैं और तीनों प्रकार के विचारोंका खण्डन भी किया है।इससे यह पता अवश्य लगता है कि वैदिक मुनिने अनेक ग्रन्थ देख कर वेद विषयक विचारों को जानने में अच्छा परिश्रम किया है, और वेद की शाखाओं के विषय में उनका विवेचन अधिकांश ठीक जान पड़ता है। वैदिक मुनिने भागवतादि पुराणोक्त वेदशाखा विषयक विचार पर जो पृ० ३६ में लिखा है कि-

" भागवत् आदि पुराणोंका वेद सम्बन्धी उक्त लेख इस अंश में तो अवश्य मान्य हो सकता है कि व्यास भगवान् ने चारों शिष्यों को-चार वेद पढ़ाये और उन शिष्यो ने अपने २ शिष्यों को पढ़ाकर वेद का विस्तार किया। परन्तु इस अंश में कदापि मान्य नहीं हो सकता कि प्रथम वेद एक ही था, व्यास भगवान् ने उस के चार विभाग किये, आगे भी शिष्यप्रशिष्य आदि में विभक्त हो कर वृक्ष की भांति अनेक भागों में फैल गया, और वही एक २ भाग शाखा नामसे प्रसिद्ध हुआ। इसके मान्य न होनेमें अनेक कारण हैं उनमें मुख्य कारण यह है कि यदि शाखा ग्रन्थ वेद के भिन्न २ भाग हैं, प्रत्येक पूरा वेद नहीं, तो उन के मन्त्र और मन्त्रों के अवान्तर विभाग क्यों परस्पर समान देखने में आते हैं ? ॥

समीक्षा-इस ऊपर के लेख में वैदिक मुनिने वेदके एक होने और विभक्त होने का मुख्य अभिप्राय नही समझा इसी कारण उनसे भूल हुई ऐसा हमारा अनुमान है प्रथम वेद एक ही था इसका अभिप्राय यह नहीं है कि व्यास जी के विभाग करने से पहिले ऋग् यजुः, साम इनका भेद कोई न जानता हो वा ऋगादि नाम तथा उनके स्वरुप पृथक् २ न समझे जाते हों किन्तु अभिप्राय यह है कि ऋग्यजुः साम अथर्व चारों प्रकार के मन्त्र अपने २ स्वरूप से भिन्न २ होने परभी एक ही पुस्तकाकार में परस्पर मिले हुए थे, अर्थात् ऋक्संहिता, यजुःसंहिता साम संहिता इत्यादि प्रकारसे भिन्न २ पुस्तक नही थे। चाहें यों कहो कि ऋचाओं के बीच २ अध्वर्यु और उद्गाताओं के काममें आने वाले यजु और साम भी मिले हुए थे, परन्तु जब सब वेद मिश्रित एक में हो रहे थे तब भी ऋक्यजुः साम अथर्व ये चारों वेद लक्षण तथा कार्यके भेद से पृथक् २ ही समझे जाते थे। उस समय के सभी ऋषि लोग मिश्रित चारों वेदों को पढ़ते जानते थे। और दर्शपौर्णमासादि वा अग्निष्टोमादि यज्ञोंके लिये उसी ऋगादिरूप से मिश्रित वेदमें से होताओं का काम करने वाले ऋषि लोग याज्या पुरोऽनुवाक्या तथा शस्त्रादि गत ऋचाओं को विशेष रूप से कण्ठस्थ रखते और जान लेते थे तथा अध्वर्यु लोगों का काम करने वाले ऋषि लोग सामान्यतया ऋगादि सब वेद को पढ़ते जानते हुए भी विशेष कर अध्वर्यु के काम में विनियुक्त होने वाले यजुर्मन्त्रोंको तथा किन्ही २ ऋचा और सामों को भी विशेषतया जाना करते थे, इसी के अनुसार उद्गातृ प्रयोग सम्बन्धी सामगान को उसी मिश्रित वेद से उद्गाताओं का काम करने वाले ऋषि लोग विशेष कर जान लेते थे। और आभिचारिकादि काम करने वाले उसी एक मिश्रित वेद से अथर्व सम्बन्धी कामों में विनियुक्त मन्त्रों को विशेष कर जाना करते थे ॥

ऊपर लिखे विचार का अभिप्राय यह है कि जैसे गेहूं जौ चना तीनों एकत्र मिले अन्न समुदाय में भी तीनों अन्न अपने २ स्वरूप से भिन्न ही होते और सब लोग उनको

मिले होने पर भी तीनों को उन २ के स्वरूप से भिन्न२ ही समझते भी हैं। वैसे ही ऋग्यजुः साम अथर्व चारों वेद अपने २ स्वरूप से भिन्न २ होने पर भी अन्नों के तुल्य एक ही पुस्तकाकार में मिले हुये थे। और मिले होने पर भी होता अध्वर्यु उद्गाता तथा ब्रह्मा का काम करने वाले ऋषि लोग उन २ को भिन्न २ भी जानते मानते थे। जब तक सब वेद एक रूपमें मिश्रित थे तब तक सभी ब्राह्मण विशेष तपोबल से युक्त होनेके कारण तीव्र बुद्धि होते थे, इस कारण अल्प परिश्रम द्वारा सभी मिश्रित चारों वेदों को अल्पकाल में ही पढ़ और समझ लेते थे। तदनन्तर जब तपोबल घटने लगा तब मिश्रित सब वेदों को पढ़ समझ लेना कठिन होने लगा और होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा के उपयोगी मन्त्रों को एक ही मिश्रित वेद से पृथक्२ पढ़ने जानने में भी कुछ २ कठिनता होने लगी तब व्यास जी ने ऋग्, यजु, साम, और अथर्व सम्बन्धी मन्त्रों को पृथक् २ चार पुस्तकोंके आकार में विभक्त किया। तबसे होता लोगों के काममें आने वाला ऋचाओं का ऋग्वेद पुस्तक पृथक् हो गया, अध्वर्यु लोगों के काममें आने वाला यजुर्वेद पुस्तक पृथक् हो गया तथा वैसे ही उद्गातादि के काम में आने वाला सामभाग पृथक् पुस्तकाकार में हो गया। चारों वेदों का विभाग पृथक् २ पुस्तकाकार हो जानेपर ऋक्, यजु,साम और अथर्वके होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा रूप ऋत्विजों को अपने २ वेद का पढ़ना जानना सुगम हो गया, क्योंकि इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिये यह वेदों का विभाग किया गया था॥

अब इस विषय में एक यह प्रश्न हो सकता है कि यदि ऋगादि मिश्रित चारों वेदों में जितने मन्त्र मिश्रित दशा में थे वे ही सब छांट २ कर एकत्र कर दिये गये तो परिमाण में वेदों का विस्तार क्या हुआ? अर्थात् कुछ नहीं, और जब विस्तार कुछ न हुआ तो वेदव्यास नाम वेद का विस्तार करने वाले यह अर्थ कैसे घटेगा?। और यदि वास्तव में विस्तार हुआ है तो क्या व्यास जी ने विभाग करते समय कुछ नया मन्त्र भाग बनाकर मिला दिया? यदि ऐसा हुआ हो तो वेद का पौरुषेय तथा अर्वाचीन होना सिद्ध हो जायगा॥

संक्षेप से इस उक्त प्रश्न का समाधान यह है कि व्यासजी ने नूतन मन्त्र कुछ भी नहीं बनाये और विभाग करने से वेदों में सहस्रों मन्त्र अवश्य बढ़ गये यही वेदों का विस्तार हुआ। नये मन्त्र बनाये विना सहस्रों मन्त्र कैसे बढ़ गये? सो दिखाते हैं मान लीजिये कि इस समय की शुक्ल यजुः संहिता माध्यन्दिनी शाखा जो विद्यमान है, इसमें दो सहस्र कण्डिका हैं, जिनमें कम से काम ५०० वा कुछ न्यूनाधिक ऋचा ऐसी मिलेंगी जो ऋक्संहिता में भी ज्यों की त्यों विद्यमान हैं, वे ५०० ऋचा वेदका विभाग होने से पहिले एक ही वार वेद में लिखी गयी थीं, यजुर्वेद का विभाग होने के समय वे यजु में द्विवारा लिखी गयीं। इसी के अनुसार सामवेद और अथर्ववेद

में जितनी ऋचा ऐसी हैं जो ऋग्वेद में ज्यों की त्यों हैं, वे भी सब साम और अथर्व में विभाग होने से पहिले मिश्रित वेद में एक ही वार लिखी हुई थी। इस के अनुसार यजुः साम और अथर्व में अनुमान चार सहस्र ऋचा बढ़ गयी जो ऋग्वेद में भी विद्यमान हैं यही वेदों का विस्तार हुआ अब यह विचार शेष रहा कि यह पुनरुक्त दोष वेदों में क्यों नहीं है! इसका उत्तर यही होगा कि यह पुनरुक्त दोष नही क्योंकि जब तक वेदों का विभाग नही हुआ था तब तक भी वे यजुर्वेदादि में पुनः पुनः लिखी ऋचा ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा होता अध्वर्यु और उद्गाताओं के कामों में विनियुक्त थीं उनसे वे सभी वेदों के ऋत्विज् अपना २ काम वैसा ही लिया करते थे जैसा कि विभाग होने पर लेने लगे हैं। इससे सिद्ध हुआ कि काम लेने में वेद कुछ भी नही बढ़ा किन्तु ऋग् यजुः साम अथर्वका विभाग होने पर लिपिमें संख्या बढ़गयी, इसीको विस्तार कहना मानना चाहिये। न्याय दर्शन वात्स्यायन भाष्य अ० २। १। ५६ में लिखा है कि—

अनर्थकोऽभ्यासः पुनरुक्तः। अर्थवानभ्यासोऽनुवादः योऽयमभ्यासस्त्रिः प्रथमामन्वाह त्रिरुत्तमामित्यनुवाद उपपद्यतेऽर्थवत्त्वात्। त्रिर्वचनेन हि प्रथमोत्तमयोः पञ्चदशत्वं सामिधेनीनां भवति। तथा च मन्त्राभिवादः—इदमहं भ्रातृव्यं पञ्चदशावरेण वाधे योऽस्मान् द्वेष्टियञ्च वयं द्विष्मः। इति पञ्चदशसामिधेनीर्वज्रं मन्त्रोऽभिवदति॥

भा०—किसी शब्द वाक्य मन्त्र वा सूक्तादिको वार २ कहना वा लिखना यदि व्यर्थ निष्प्रयोजन किया जाय तो वह पुनरुक्त दोष है और यदि किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिये किसी मन्त्र वा सूक्तादि को वार २ कहा वा लिखा जाय उसका नाम पुनरुक्त नही किन्तु वह अनुवाद कहाता है। जैसे दर्शपौर्णमासादि ऐष्टिक यागों में सामिधेनी एकादश ऋचा ब्राह्मण ग्रन्थों में दिखायी हैं और वहीं यह भी कहा है कि सामिधेनी ऋचा प्रकृति यज्ञ में पञ्चदश होनी चाहिये। तब पन्द्रह संख्या पूरी करनेके लिये एकादश ऋचाओं में से पहिली और ग्यारहवी ऋचाको तीन २ बार बोलना कहागया इससे ग्यारह ऋचा पन्द्रह होजाती हैं। क्योंकि (इदमहं) इत्यादि मन्त्र में भी सामिधेनी ऋचा पञ्चदश कही हैं, वेही शत्रु के लिये वाणीरूप वज्र हैं इससे यहां पहिली पिछली ऋचा का तीन २ वार कहना सार्थक होने से जैसे पुनरुक्त नहीं किन्तु अभीष्ट कार्य सिद्धि के लिये वेदाभिप्रायानुकूल अनुवाद है, वैसे ही ऋक् संहितामें विद्यमान जितनी ऋचा यजुः संहिता में पुनर्वार पढ़ी गयी हैं वे सब उस २ वेद के ऋत्विज,

अध्वर्यु आदिके द्वारा होने वाले यज्ञ कार्योंमें भी विनियुक्त हैं, तब जैसे ऋग्वेदी होता ऋत्विजोंके काम में आने के लिये वे ऋचा ऋक्संहिता में समाविष्ट की गयीं हैं, वैसे ही यजुर्वेदी अध्वर्यु आदिके कामों में आने के कारण यजुः संहिता में, उद्गाताओं के कार्यार्थ साम संहिता में और अथर्व वेद के शान्तिक पौष्टिकादि में विनियुक्त होने के कारण अथर्व संहिता में लिखी गयीं हैं॥

यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्। इतिशु०यजुर्वेदे मन्त्रब्राह्मणे यज्ञस्य प्रमाणम्। इत्यापस्तम्बीययज्ञपरिभाषायाम्। आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम्। इति पूर्वमीमांसादर्शने। यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयः। इति न्यायभाष्ये॥

अति प्राचीन देवता लोगों ने भी यज्ञ के द्वारा ही यजनीय पूजनीय परमेश्वर का पूजन किया और करते आये हैं, वेदोक्त होनेसे ये यागानुष्ठानात्मक धर्म प्रथम अर्थात् मुख्य वा सब से श्रेष्ठ हुए और हैं। यज्ञस्वरूप मुख्य धर्म को साङ्गोपाङ्ग यथावत् जानने के लिये मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदही स्वतः प्रमाण है, क्योंकि वेद के द्वारा ही याग धर्म का तत्त्व जाना जाता है। यागानुष्ठान रूप कर्म की प्रक्रिया जानने द्वारा यज्ञकर्म करने के लिये मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद है, इसलिये कर्म में जिसका उपयोग नहीं वह भाग निरर्थक है, यह पूर्वमीमांसा दर्शन में कहा है। और न्याय दर्शन के वात्स्यायन भाष्यमें कहा है कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेदका मुख्य प्रतिपाद्य विषय यज्ञ है। मनुस्मृति अ० १ में कहा है कि (दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुः सामलक्षणम्) ब्रह्माजी ने सृष्टि के आरम्भ में यज्ञ की सिद्धि के लिये ऋग् यजुः और सामवेद को क्रमशः अग्नि वायु आदित्य से प्राप्त किया। अर्थात् यज्ञ सिद्धि के लिये ऋग्यजुः सामरूप से तीन वेद प्रकट हुए, यज्ञ का प्रतिपादन ही वेदों का मुख्य विषय है। इस प्रकार के प्रमाण वेदादिशास्त्रोंमें सैकड़ों विद्यमान हैं, जिनका स्पष्ट अभिप्राय यही है कि यज्ञोंके प्रतिपादनार्थ ऋग् यजुः साम वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है। तब यह बात अनायास सिद्ध हो गई कि सब वेदों की एक पुस्तकाकार मिश्रित दशामें भी होता, अध्वर्यु उद्गाता और ब्रह्मा के कार्यों का विभाग पूर्वक वर्णन करने के लिये ही वेदके ऋगादि भेद हुए हैं और भिन्न २ पुस्तकाकार में ऋगादि वेदों का विभाग होने की दशा में होतादि का अनुष्ठेय यज्ञ कर्मांश यथावत् पूरा २ सुगमतासे जानने करने के लिये व्यास भगवान् ने वेदों का विभाग भिन्न २ पुस्तकों में किया है॥

और वैदिक मुनि ने जो यह कहा है कि "यदि शाखा ग्रन्थ वेद के भिन्न २ भाग हैं, प्रत्येक पूरा वेद नहीं तो उनके मन्त्र और मन्त्रों के अवान्तर विभाग क्यों परस्पर

समान देखने में आते हैं ? " इसका संक्षेप से समाधान यही है कि एक २ ऋगादि वेद के भिन्न २ भाग शाखा ग्रन्थ नहीं हैं किन्तु प्रत्येक ऋगादि वेद का प्रत्येक शाखा ग्रंथ पूरा वेद अवश्य है, इसी कारण,प्रत्येक ऋगादि वेद के किसी भी एक २ शाखा ग्रन्थ को पढ़ लेने पर मनुष्य चतुर्वेद वक्ता हो सकता है। वेदके एक होने और विभाग करने का अभिप्राय वैदिक मुनि ठीक नहीं समझे, इसी से उनको शंका हुई है, उस का जो अभिप्राय विभाग से पूर्व दशा का तथा विभागानन्तर दशा का हमने विस्तार पूर्वक लिख दिया है उससे सब शका निवृत्त हो सकती हैं ॥

वेद के और शाखाओं के विभाग विषय में जैसा विचार पुराणों में है वैसा अन्य भी अनेक प्राचीन ग्रन्थों में विद्यमान है, सब का अभिप्राय एक ही है ॥

वेद की शाखाओं के विषय में हमने यही समझा है कि जब तक वेदों का विभाग नहीं हुआ था तब तक ऋगादि से मिश्रित एक ही वेद मे वे सब मन्त्र उस २ प्रकार के पाठान्तर सहित विद्यमान थे कि जो शाखा भेद होने पर भिन्न २ प्रकार के पाठान्तर सहित अनेक शाखाओं में उपलब्ध होते हैं। और जिन २ शाखाओं मे जो मंत्र सर्वथा नूतन हैं कि जो अन्य शाखाओं में उपलब्ध नहीं होते, जैसे पारस्कर गृह्यसूत्र के गर्भाधानादि संस्कारोंमें तथा अन्य कर्मोंमें ऐसे सैकड़ों मन्त्र हैं जैसे (अयाश्चाग्ने०) (यज्ञोपवीतं परमपवित्रं०) इत्यादि शुक्लयजुः संहिता माध्यन्दिनी शाखा में नहीं हैं उन सब को यजुर्वेद की अन्य शाखाओं से लेकर अपने सूत्र में पूरे २ लिख लिये हैं। और पारस्कर गृह्य तथा कातीय श्रौतसूत्रादि में जिन मन्त्रों को पूरा न लिखकर प्रतीकें मात्र लिख दी हैं वे सब अपनी २ शाखा के मन्त्र हैं, गृह्य तथा श्रौत दोनों प्रकार के कल्पसूत्रों में ऐसे सहस्रों मन्त्र अवश्य हैं जो उन २ सूत्रों की शाखाओं में नहीं हैं, इससे यह बात स्पष्ट सिद्ध है कि किन्हीं शाखाओं में किन्हीं २ मन्त्रों में पाठान्तर मात्र ही भेद होने पर भी अनेक वेद शाखाओं में अनेकानेक मन्त्र नूतन अधिक अवश्य हैं। और सामवेद की तलवकार शाखा से तलवकारोपनिषद् निकली परन्तु तलवकारोपनिषद् में लिखे मन्त्र सामवेद की विद्यमान कौथुमी शाखा में नहीं हैं। अथर्ववेद की मुण्डक शाखासे मुण्डकोपनिषद् निकली है, परन्तु मुण्डकोपनिषद् में लिखे मन्त्र विद्यमान अथर्ववेदकी शाखा में नहीं हैं। इसी के अनुसार कृष्ण यजुर्वेद की कठशाखा से कठोपनिषद् निकली है, उसके मन्त्र भी वर्त्तमान शुक्ल कृष्ण यजुःशाखाओं में पाठान्तर भेद से भी नहीं दीखते इस से सिद्ध हुआ कि सभी शाखाओं में मन्त्रों का पाठान्तर मात्र अल्पभेद ही नहीं किन्तु अनेक शाखाओं में अधिक भेद भी अवश्य है। इस ऊपर के लेख से हमारा अभिप्राय यह है कि जिन २ शाखाओं में जो २ मन्त्र अल्प भेदसे आते हैं और जो २ नूतन अधिक आते हैं वे सभी

वेदों का विभाग होने से पहिले एक-पुस्तकाकार वेद में भी विद्यमान थे, शाखा भेद होने के समय वे २ मन्त्र उन २ शाखाओं में विभाग पूर्वक रखलिये गये ॥

वेदों की अनेक शाखा भेद होनेके समय वेद का विस्तार इस कारण से हुआ कि ऋक् यजुः और साम की वा अथर्व की शाखाओं में जितना मन्त्रभाग समान है, वह सब शाखाभेद होने से पहिले उस २ ऋगादि वेद में एक ही वार लिखा गया था। और शाखा पृथक् २ होने पर जिस २ वेद की जितनी शाखा हुईं, उतनी वार समान मन्त्रभाग उन सब शाखाओं में वार-२ आवृत्ति रूपसे लिखा गया, इसी से विस्तार हो गया। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऋक् यजुः और सामरूप वेद रचनाका समान मन्त्र भाग ही अधिक है जिस की सब शाखाओं में आवृत्ति वार २ होनेसे ही वेद का विस्तार हुआ है। जिस वेद शाखा में अन्य शाखाओं से जितनी नूतनता वा न्यूनाधिकता है वही उस शाखा में अन्य शाखाओं की अपेक्षा निज शाखापन है। परन्तु वैदिक मुनिने यह बात ठीक लिखी है कि उस २ ऋगादि वेदकी प्रत्येक शाखा वह २ पूरा वेद माना जायगा। यह बात इसलिये ठीक है कि प्रत्येक वेद शाखा में उस २ वेद में कहा सभी कर्मकाण्ड भाग दर्शपौर्णमासादि आ जाता है, इस कारण उस २ शाखा को पूरा वेद कहना अनुचित नहीं है। जो मनुष्य वेदाङ्गोंके साथ और ब्राह्मण ग्रन्थ वा कल्पसूत्रों संहित चारों वेद की एक २ शाखा को पढ़ लेवे वह अवशिष्ट अन्य वेदशाखाओं को विना पढ़े ही अवश्य समझ सकता है, इसी कारण चारों वेद की चार शाखाओं को यथावत् पढ़ समझ लेने पर वह मनुष्य वेदपारकृत माना जायगा। सब पाठकों को और विशेष कर वैदिक मुनि को हम ध्यान दिलाते हैं कि जो मनुष्य वेद के प्रतिपाद्य यज्ञ विषय को पहिले निर्विकल्प मान लेगा कि पूर्वाचार्यों तथा महर्षियों के अनेक प्रमाणों के अनुसार वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय वास्तव में यज्ञ ही है। ऐसा अवधारण करलेने पर यह जिज्ञासा होगी कि यज्ञ वा याग तथा होम का लक्षण वा स्वरूप क्या २ है ? तथा यज्ञ के अवान्तर भेद और अङ्गोपाङ्ग क्या २ हैं, इन सब बातों को यथावत् जानने के लिये ऋग्वेद के ऐतरेय ब्राह्मण को, आश्वलायन श्रौतसूत्र को, यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण को तथा कातीय कल्पसूत्र को और सामवेद के ताण्ड्य महाब्राह्मण को तथा लाट्यायन श्रौत सूत्र को और आपस्तम्बीय यज्ञपरिभाषा सूत्रादि ग्रन्थों को किसी वेदवेत्ता अध्यापक से अथवा संस्कृत व्याकरण का अच्छा बोध हो तो उस की सहायता से ऐतरेय ब्राह्मणादि को पढ़ना समझना चाहिये। ऐसा करने से वेद विषय का ज्ञान हो सकता है। और जो मनुष्य केवल मन्त्रसंहिताओं को वेद मानता और वेद के मुख्य प्रतिपाद्य यज्ञ को ब्राह्मण कल्पसूत्रादि के द्वारा जानने का उद्योग नहीं करता वह वेद को कदापि जान नहीं सकता ॥

(अपूर्ण)

बातों का दुर्व्यसन।

पाठक सावधान हो सुनिये तुक बन्दी कुछ गाता हूं।
बातों का दुर्व्यसन चढ़ रहा उसका मर्म सुनाता हूं॥
प्रायः अति बाहुल्य दिनों दिन इसका होता जाता है।
जिस को देखो वही फेरमें इस के पड़ता जाता है॥ १॥
बातों का ही जमा खर्च अवशेष रह गया अहो यहां।
बातों का दुर्व्यसन बढ़ रहा ऐसा हा अन्यत्र कहां॥
बातों की भरमार हो रही सदसत् की परवाह नहीं।
जो बातूनी नहीं (शोक) उसकी होती है वाह नहीं॥ २॥
टट्टी को जाते हैं तौ भी बातें खूब उड़ाते हैं।
पाखाने फिरने में वे बातों बिन कष्ट उठाते हैं॥
कुल्ला करते जाते हैं पर बातें करते जाते हैं।
बातें होंय बन्द क्षण भर को तो वे अति घबड़ाते हैं॥ ३॥
खाना है तैय्यार आप मशगूल हो रहे बातों में।
तन मनकी किसको सुधि रहती लम्बी चौड़ी बातोंमें॥
ठंडा स्वाद रहित खाना हो जावै पर उठना कैसा।
लगी रहे अविराम झड़ी बातों की चुप रहना कैसा॥ ४॥
खाना खाया जी में आया चलो कहीं मन बहलावें।
मित्र-मंडली में गपशप कर दिन तो यह तय कर पावें॥
एकत्रित जो हुये चार जन हास्य विनोद अपार हुआ।
पाठक फिर बातों का पूरा पूरा गर्म बजार हुआ॥ ५॥
कोई कहता आम तथा कोई अमली ठहराता है।
कोई पत्तों पर कुलांट खाता है बात बनाता है॥
कहीं निशान लगे हमें क्या मतलब केवल बातों से।
असम्बद्ध हो पूर्वा पर-पर मतलब क्या इन बातों से॥ ६॥
प्रिय हों वा अप्रिय हों तद्यपि बातें करते जायेंगे।
बातें करने में त्रिकाल में भी हम हार न पायेंगे॥
श्रोता है इच्छुक उठने का बातें नहीं समाप्त हुईं।
जरा बैठिये और अभी क्या बातें हैं पर्याप्त हुईं॥ ७॥
इसी तरह बातोंका चरखा अहो अहर्निश चलता है।
बातों से बातूनी जन का समय मोद में टलता है॥
पाठक! अब इस तुकबन्दी का अन्त यहीं पर करते हैं।
वाचालों में गणना होगी इसी लिये हम डरते हैं॥ ८॥

बांकेबिहारीलाल वाजपेयी पुरावली।

मधुसूदन सरस्वती का प्रस्थानभेद
किंवा
हिन्दूधर्म का तत्त्व ।

(गताङ्क से आगे)

प्राशस्त्य (प्रशंसा अर्थात् स्तुति) वा निन्दा द्वारा विधि का शेषभूत (अर्थात् विधिपरतन्त्र) जो वाक्य उसे अर्थवाद कहते हैं । और वह अर्थ-वाद तीन प्रकार का है (१) गुणवाद (२) अनुवाद (३) भूतार्थवाद । जिस अर्थवाद में अन्य प्रमाणों के विरुद्ध अर्थ का बोध हो वह गुणवाद है यथा "आदित्यो यूपः,, "यजमानः प्रस्तरः" इत्यादि (यहां यूपस्तम्भ में आदित्य का अभेद प्रत्यक्ष विरुद्ध होने से आदित्य के समान उज्ज्वलत्व रूप गुण इस वाक्य से लक्षण द्वारा प्रतिपादित है, ऐसेही यजमान में प्रस्तर भावादि गुणवादों का अर्थ समझना चाहिये) अन्य प्रमाणसे सिद्ध अर्थ को कहने वाला अर्थवाद अनुवाद कहलाता है यथा "अग्निर्हिमस्य भेषजम्,, इत्यादि (यहां अग्निका हिमके प्रति विरोधित्व प्रत्यक्ष सिद्ध है) । जो अर्थवाद अन्य प्रमाण से विरोध रहित वा अन्य प्रमाण की प्राप्ति (अर्थात् अनुकूलता वा प्रतिपादकता) रहित अर्थ को कहे वह भूतार्थवाद है यथा "इन्द्रोवृत्रायवज्रमुदयच्छत्,, कि इन्द्र ने वृत्र के लिये वज्र उठाया था (यहां वृत्र के प्रति इन्द्रवज्रोद्यमन के अभाव को बताने वाला कोई प्रमाण न मिलने से अन्य प्रमाण से विरोध भी नहीं है और न अन्य प्रमाणसे सिद्ध अर्थका ही प्रतिपादन है क्योंकि इस प्रकारका कोई अन्य प्रमाण भी नहीं है) इस को संग्रह श्लोक में भी कहा है—

> विरोधेगुणवादःस्या-दनुवादोऽवधारिते ।
> भूतार्थवादस्तद्धानादर्थवादस्त्रिधामतः ॥

अर्थात् जैसा ऊपर प्रतिपादन किया है कि (प्रमाणान्तर से अवधारित) निश्चित या सिद्ध होने पर अनुवाद, उभय त्यागसे भूतार्थवाद इस प्रकारसे अर्थवाद त्रिविध माना है । यद्यपि तीनों अर्थवादों में विधिस्तुति परत्व समान है तथापि भूतार्थवाद स्वार्थ में स्वतः प्रमाण भी है (केवल विधि शेष नहीं) जैसा देवताधिकरण प्रकरणान्तर का पोषक होते हुए भी स्वार्थ द्योतक है । (स्वतः प्रमाण इसलिये कहा) क्यों कि बाध रहित (अव्यभिचारि) और अज्ञात अर्थ का ज्ञापक होना ही प्रमाण कहलाता है सो प्रमाणता गुणवाद वा अनुवाद में है नहीं क्योंकि दोनों बाधित (व्यभि-

चारी) अथवा ज्ञात अर्थ के ज्ञापक हैं, परन्तु भूतार्थवाद यद्यपि स्वार्थ मे तात्पर्य रहित होता है तथापि उस की स्वाभाविक प्रमाणता रुक नही सकती। इस प्रकार अर्थवाद भाग निरूपित हुआ ॥

वेदान्तवाक्य विधि और अर्थवाद दोनों से विलक्षण है। यद्यपि वह अज्ञात अर्थ का ज्ञापक होता है तथापि अनुष्ठान का प्रतिपादक न होने से विधि नही हो सकता। वह अर्थवाद भी नही क्योंकि वह अन्य का शेषभूत (परतन्त्रपोषक) नहीं, प्रत्युत वह स्वतः पुरुषार्थ परमानन्दज्ञानात्मक ब्रह्मरूप अपने अर्थ में उपक्रमोपसंहारादि छः प्रकार के तात्पर्य निर्णायक लिङ्गों से युक्त होने से स्वतः प्रमाण होता हुआ सब विधियों को स्वशेषभूत बनाता है क्योंकि अन्तःकरणशुद्धिरूप अवान्तर फल विधियों (अनुष्ठानों) का है जिसके अनन्तर वेदान्त वाक्य सम्यग्ज्ञानोत्पादक होकर मोक्षप्रापक होता है (अर्थात् वेदान्त का प्रयोजन परम पुरुषार्थ की सिद्धि है जिस में विधि फल अन्तःकरण शुद्धिरूप अवान्तरप्रयोजनतया अपेक्षित है, तद्विपरीत नही)। इसलिये वेदान्तवाक्य विधि और अर्थवाद दोनों से विलक्षण ही है। उस को कही कहीं अज्ञात के ज्ञापक मात्र रूपसे विधि ऐसा भी कहा है और कही कही प्रमाण वाक्यतया विधिपद रहित भी भूतार्थवाद ऐसा व्यवहार किया है सो (शब्द भेदमात्र होने से अर्थतः भेद न होने से) दोष नही। सो इस प्रकार से त्रिविध ब्राह्मण का निरूपण हुआ ॥

इस प्रकार कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्डात्मक वेद धर्म अर्थ, काम और मोक्ष का साधक है और वह तीन प्रकार के प्रयोगों से यज्ञसम्पादनार्थ ऋक् यजुः और साम भेदों में बंटा हुआ है। तहां होता सम्बन्धी प्रयोग ऋग्वेद से अध्वर्युसम्बन्धी प्रयोग यजुर्वेद से और उद्गाता सम्बन्धी प्रयोग सामवेदसे होता है। ब्रह्मा और यजमान सम्बन्धी प्रयोग इन्ही के अन्तर्गत हैं। अथर्ववेद यज्ञका उपयोगी न होते हुए भी शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक (परहिंसा सम्बन्धी) आदि कर्मों को प्रतिपादन करता हुआ अत्यन्त विलक्षण ही है। इस प्रकार प्रवचन भेदसे प्रत्येक वेदकी भिन्न २ बहुत शाखाएं हैं। एवं कर्मकाण्ड में व्यापार भेद होने पर भी वेदकी सभी शाखाओं की "ब्रह्मकाण्ड,, ऐसी एकरूपता ही है। यह प्रयोजन भेद से चारों वेदों का भेद कहा ॥

अब अङ्गों का भेद कहते हैं। उन में से (१) शिक्षा का प्रयोजन उदात्त अनुदात्त स्वरित, ह्रस्व दीर्घ प्लुतादि विशिष्ट स्वर–व्यञ्जनात्मक वर्णों के उच्चारण का विशेष ज्ञान है। क्योंकि सो न होने पर मन्त्रोंका अनर्थक फल होगा जैसा कहा है-

मन्त्रोहीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्॥

कि स्वरहीन वा वर्णहीन मिथ्याप्रयुक्त मन्त्र उस (विवक्षित) अर्थको नहीं कहता है वह वाणी वज्र होकर यजमानका नाश करता है जैसे इन्द्र शत्रुने स्वरव्यत्यय से अनिष्टाधिगम किया। तहां सब वेदोंकी साधारणतया उपकारक "अथशिक्षां प्रवक्ष्यामि" इत्यादि नवखण्डात्मक ग्रन्थ रूप शिक्षा पाणिनि मुनि से प्रकाशित हुई है और प्रत्येक वेद की शाखा के लिये भिन्न २ रूपवाली प्रातिशाख्य नामक शिक्षाएं अन्य मुनियों ने बनाई हैं। (२) एवं वैदिक पदों के साधुत्व ज्ञान से अर्थज्ञानादि व्याकरण का प्रयोजन है। वह "वृद्धिरादैच्" इत्यादि अष्टाध्यायात्मक महेश्वर के प्रसाद से भगवान् पाणिनि ने ही प्रकाशित किया है। तहां कात्यायन मुनिने पाणिनीय सूत्रों पर वार्तिक रचा है उन सूत्र वार्तिकों पर भगवान् पतञ्जलि ने महाभाष्य रचा है। सो यह त्रिमुनि व्याकरण वेदाङ्ग माहेश्वर कहलाता है। कौमारादि व्याकरण वेदाङ्ग नहीं किन्तु लौकिक प्रयोगमात्र के ज्ञान के लिये हैं ऐसा जानना। (३) एवं शिक्षा और व्याकरण द्वारा वर्णोच्चारण और पदसाधुत्व ज्ञान लेने पर वैदिकमन्त्रों के पदार्थ ज्ञान की अपेक्षा होने पर भगवान् यास्कमुनि ने "समाम्नायःसमाम्नातः स व्याख्यातव्यः" इत्यादि त्रयोदश अध्यायात्मक निरुक्त रचा। उसमें नाम, आख्यात निपात और उपसर्ग भेद से चार प्रकार के पदों का निरूपण करके वैदिक मन्त्रों के पदों का अर्थ दिखाया है। क्योंकि मन्त्र अनुष्ठेय अर्थ के प्रकाशन द्वारा ही करण होते हैं और वाक्यार्थज्ञान पदार्थज्ञान के विना हो नहीं सकता इसलिये मन्त्रस्थ पदों के अर्थ ज्ञान के लिये निरुक्त अवश्य अपेक्षित हुआ नहीं तो अनुष्ठान ही न बन सकता और एक बात यह भी है कि "सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतून" इत्यादि अत्यन्त दुरूह शब्दों का अर्थ अन्य प्रकार से जानना असम्भव था। इस प्रकार वैदिक द्रव्य देवतात्मक पदार्थों के पर्याय शब्दात्मक निघण्टु आदि भी निरुक्त के ही अन्तर्गत हैं। सो भी निघण्टुसंज्ञक पञ्चाध्यायात्मक ग्रन्थ भगवान् यास्क ने ही बनाया है। अन्य भी अमर हेमचन्द्रादि प्रणीत सभी कोषग्रंथ निघण्टुरूपतया निरुक्त के अन्तर्गत जानना चाहिये। (४) एवं ऋक् मन्त्रों को पादबद्ध छन्दोविशेषविशिष्ट होने से, उनके न जानने में निन्दाश्रवण होनेसे और छन्दोंविशेष के निमित्त अनुष्ठानविशेष का विधान होने से छन्दोज्ञानकी आकांक्षा में "धीश्रीस्त्रीम्" इत्यादि अष्टाध्यायात्मक छन्दःसमूह भगवान् पिङ्गलनाग ने रचा है। तहां प्रारम्भ से "अथ लौकिकम्" यहां तक तीन अध्यायोंमें गायत्री उष्णिक् अनुष्टुप् बृहती पंक्ति त्रिष्टुभ् और जगती इन सात छन्दों का अवान्तर भेदों सहित प्रसङ्ग से निरूपण किया है, और "अथ लौकिकम्" यहां से प्रारम्भ कर ५ अध्यायों में पुराण इतिहासादि ग्रन्थोपयोगी लौकिक छन्दों को व्याकरण शास्त्र में लौकिक पदों के निरूपण के समान प्रसङ्गवश निरूपण किया है। (५) एवं वैदिककर्म के अंगभूत दर्शादि का काल बताने के लिये ज्योतिष नामक

वेदाङ्ग भगवान् आदित्य और गर्गादि का बनाया हुआ बहुत प्रकार का है। (६) एवं शाखान्तरीय गुणोपसंहार द्वारा वैदिक अनुष्ठानों का क्रमविशेष बताने को कल्प सूत्र हैं और वे तीन प्रकार के प्रयोगभेद से त्रिविध हैं। तिनमें होता सम्बन्धी प्रयोग के प्रतिपादक आश्वलायन, शाङ्खायनादि प्रणीत सूत्र हैं। अध्वर्युसम्बन्धी प्रयोग प्रतिपादक बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायनादि प्रणीत हैं। और उद्गातासम्बन्धी प्रयोगप्रतिपादक लाट्यायन, द्राह्यायणादि प्रणीत हैं। इस प्रकार से छहों अंगों का प्रयोजनभेद निरूपित हुआ॥

अब चार उपाङ्गों का निरूपण करते हैं। तिनमें (१) पुराण सर्ग-प्रतिसर्ग वंश मन्वन्तर, वंशानुचरित प्रतिपादक भगवान् बादरायण (व्यास) ने बनाये हैं जैसा-कि कहा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ और
अष्टादशपुराणानां कर्ता सत्यवतीसुतः॥

और वे अठारह ब्राह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारद, मार्कण्डेय, अग्नि भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्ध, वामन कूर्म, मत्स्य, गरुड़ और ब्रह्माण्ड पुराण हैं। ऐसे ही उपपुराणों को भी अनेकविध जानना॥

(२) न्यायशास्त्र (आन्वीक्षिकीविद्या-) पांच अध्यायों में गौतम ने बनाया है तिसका प्रमाण प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त; अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान इन सोलह पदार्थों का उद्देश, लक्षण और परीक्षा द्वारा तत्त्वज्ञान होना प्रयोजन है। इसी प्रकार दश अध्याय का वैशेषिकशास्त्र कणाद ने बनाया है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छः पदार्थों का तथा सातवें अभावपदार्थ का साधर्म्य और वैधर्म्य द्वारा प्रतिपादन करना तिसका प्रयोजन है। यह वैशेषिक भी न्याय पद में आ जाता है॥

(३) एव मीमांसा भी दो प्रकार की है कर्ममीमांसा और शारीरिक मीमांसा। तिनमें कर्ममीमांसा "अथातोधर्मजिज्ञासा" इस सूत्रसे लेकर "अन्वाहार्ये च दर्शनात्" इस सूत्र तक बारह अध्यायों में भगवान् जैमिनि ने बनाई है। उनमें क्रमसे १ धर्म-प्रमाण, २ धर्मभेदाभेद, ३ शेषशेषिभाव, ४ क्रत्वर्थ और पुरुषार्थ भेद से प्रयोगविशेष ५ श्रुत्यर्थपाठनादि क्रमभेद, ६ अधिकारविशेष, ७ सामान्यातिदेश, ८ विशेषातिदेश, ९ ऊह, १० बाध, ११ तन्त्र १२ प्रसंग यह बारह अध्यायों के विषयार्थ हैं। और चार अध्यायात्मक संकर्षणकाण्ड भी जैमिनि ने ही बनाया है। वह यद्यपि देवता-काण्ड संज्ञा से प्रसिद्ध है, तथापि उपासनाख्य कर्म प्रतिपादक होने से कर्ममीमांसा के ही अन्तर्गत है।

तथा चार अध्याय की शारीरिक मीमांसा "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" इस सूत्रसे "अनावृत्तिःशब्दात्" इस सूत्रपर्यन्त जीव और ब्रह्म की एकता (अभेद) के साक्षात्कार के हेतु श्रवण नामक विचार प्रतिपादक न्यायों को दिखलाती हुई भगवान् बादरायण (व्यास) ने बनाई है। तिस में सभी वेदान्त वाक्यों का साक्षात् वा परम्परा द्वारा प्रत्यगात्मा से अभिन्न अद्वितीय ब्रह्म में तात्पर्य है ऐसा समन्वय प्रथमाध्याय में दिखाया है। तिस प्रथमाध्याय के भी प्रथमपाद में स्पष्ट ब्रह्मलिंगों से युक्त वाक्यों का विचार किया है। द्वितीय पादमें उपास्य ब्रह्मविषयक ऐसे वाक्यों का विचार है जिन में ब्रह्मलिंग स्पष्ट नहीं हैं। तृतीय पाद में ज्ञेय ब्रह्मविषयक अस्पष्ट ब्रह्मलिंग युक्त वाक्योंका विचार है। चतुर्थपाद में अव्यक्त अजादि ऐसे पदोंका विचार है जिनमें (सांख्यशास्त्र के) प्रधान विषयक होने का सन्देह होसकता है॥

ऐसे प्रथमाध्याय में वेदान्त वाक्यों का अद्वितीय ब्रह्म में समन्वय सिद्ध होने पर उनमें प्रतिष्ठित स्मृति और तर्कादि से विरुद्ध होने की शङ्का करके उसका परिहार किया है इस प्रकार अविरोध द्वितीयाध्याय में दिखाया है। तहां प्रथम पाद में सांख्ययोग काणादादि स्मृतियों और तत्प्रयुक्त तर्कों के साथ वेदान्त समन्वय के विरोध का परिहार किया है। द्वितीय पाद में सांख्यादि मतोंकी दुष्टता प्रतिपादन की है क्योंकि विचार (शास्त्रार्थ) स्वपक्षस्थापन और परपक्षनिराकरण रूप पक्षद्वयात्मक होता है। तृतीयपाद के पूर्वभाग में महाभूत सृष्ट्यादि विषयक श्रुतियोंका और उत्तर भागमें जीव (भोक्तृ) विषयक श्रुतियों का परस्पर विरोध मिटाया है। चतुर्थपादमें इन्द्रियादि विषयक श्रुतियों का विरोध परिहार है। (इस प्रकार द्वितीयाध्यायमें विरोध का परिहार करके) तृतीयाध्याय में साधन का निरूपण किया है। तहां प्रथम पादमें जीवके परलोकगमन के निरूपण द्वारा वैराग्य का निरूपण किया है ("यस्मादेवंकष्टरूपां संसारगतिस्तस्माज्जुगुप्सेत") द्वितीयपाद में "तत्त्वमसि" महावाक्य के लक्ष्यार्थका विचार किया है अर्थात् पूर्वभागमें त्वंपदके अर्थका परिशोधन किया है और उत्तरभागमें तत्पदार्थ शुद्धिकी है। तृतीयपाद द्वारा निर्गुण ब्रह्मके विषयमें नाना शाखापठित पुनरुक्त पदों का उपसंहार किया है और प्रसंगवश सगुण विद्याओंमें भी शाखान्तरीय गुणों के उपसंहार और अनुपसंहार का निरूपण किया है। चतुर्थपादमें निर्गुण ब्रह्मविद्या के आश्रमधर्म यज्ञदानादिक बहिरंगसाधन और शम दम निदिध्यासनादि अन्तरङ्गसाधन निरूपण किए हैं॥ (एवंतृतीयमें साधन निरूपण करके) चतुर्थाध्याय में सगुण और निर्गुण विद्याओं के फलविशेष का निर्णय किया है। तहां प्रथम पाद में श्रवणादि की आवृत्ति (अभ्यास) से निर्गुण ब्रह्म को वा उपासना की आवृत्ति से सगुण ब्रह्म को साक्षात् करके जीते हुए पुरुषकी पाप पुण्यसे लेप न होना

रूप जीवन्मुक्ति कही है। द्वितीय पाद मे मरते हुए का उत्क्रान्ति (देहत्याग) प्रकार विचारा है। तृतीय पाद में सगुण ब्रह्म को जानने वाले मृतपुरुष को उत्तरमार्ग गमन कहा है। चतुर्थपादके पूर्वभाग में निर्गुण ब्रह्म को जानने वालेकी विदेह कैवल्य प्राप्ति कही है और उत्तरभाग में सगुण ब्रह्मको जानने वाले की ब्रह्मलोक में स्थिति कही है। (इस विषय के सग्रहश्लोक वैयासिकन्यायमाला से उद्धृत करते हैं)

१ शास्त्र और अध्याय विषयक ॥

शास्त्रं ब्रह्मविचाराख्यमध्यायाः स्युश्चतुर्विधाः ।
समन्वयाविरोधौ द्वौ साधनंच फलंतथा ॥

२ पादविषयक ॥

समन्वये स्पष्टलिङ्गमस्पष्टत्वेऽप्युपास्यगम् ।
ज्ञेयगं पदमात्रं च चिन्त्यं पादेष्वनुक्रमात् ॥
द्वितीये स्मृतितर्काभ्यामविरोधोऽन्यदुष्टता ।
भूतभोक्तृश्रुतेर्लिङ्गश्रुतेरप्यविरुद्धता ।
तृतीये विरतिस्तत्त्वंपदार्थपरिशोधनम् ।
गुणोपसंहृतिर्ज्ञानबहिरङ्गादिसाधनम् ॥
चतुर्थेजीवतो मुक्तिरुत्क्रान्तेर्गतिरुत्तरा ।
ब्रह्मप्राप्तिब्रह्मलोकाविति पादार्थसंग्रहः ॥

"यही शास्त्र सब शास्त्रों का मूर्धन्य है अन्य सभी शास्त्र इसी के शेषभूत (अंगतया उपकारक) हैं इसलिये मुमुक्षु (मोक्ष चाहने वाले) लोगोंको श्री शंकर-भगवत्पादाचार्य के भाष्यके प्रकारसे यही शास्त्र आदर करने योग्य है। यह रहस्य (गूढतत्व) है" ॥

(४) एवं धर्मशास्त्र, वर्णाश्रम धर्म विशेषों के विभागसे प्रतिपादक, मनु याज्ञवल्क्य विष्णु यम अगिरः वसिष्ठ दक्ष संवर्त शातातप पराशर गौतम शंख लिखित हारीत आपस्तम्ब उशनः (शुक्र) व्यास कात्यायन बृहस्पति देवल नारद पैठीनसि आदिकों ने बनाए हैं। एव व्यासकृत महाभारत और वाल्मीकिकृत रामायण धर्मशास्त्रके ही अन्तर्गत हैं और (पृथक्) इतिहास इस नाम से स्पष्ट प्रसिद्ध हैं। साख्यादिकोंका यद्यपि धर्मशास्त्रों में ही अन्तर्भाव है तथापि "त्रयीसांख्यं" इस श्लोकमें उस २ नाम से निर्देश किए हैं इस लिए उनकी पृथक् ही संगति लगाई जावेगी ॥

अनन्तर चारों वेदों के क्रम से चार उपवेद हैं। तहां (१) आयुर्वेद के आठ स्थान हैं सूत्र, शारीर, ऐन्द्रिय, चिकित्सा, निदान, विमान, कल्प और सिद्धि, इस उपवेदका ब्रह्मा, प्रजापति, अश्विनी कुमार, धन्वन्तरि, इन्द्र, भरद्वाज, आत्रेय, आग्निवेश्यादिकों ने उपदेश किया और चरक ने संक्षेप किया। इसीके अन्तर्गत सुश्रुत ने पांच स्थानोंमें एक अन्य प्रस्थान बनाया है। इसी प्रकार वाग्भटादिकों ने भी अनेक प्रकार के ग्रन्थ रचे जिनको आयुर्वेद नामक शास्त्र से भिन्न न समझना चाहिये। कामशास्त्र भी आयुर्वेद के ही अन्तर्गत है क्योंकि सुश्रुत ने वाजीकरण नामक कामशास्त्र का विषय कहा है। तहां वात्स्यायन ने पांच अध्यायों में काम शास्त्र नामक सूत्रग्रन्थ बनाया है। और उसका प्रयोजन विषयोंसे वैराग्य होना ही है, क्योंकि शास्त्र दीपित मार्ग द्वारा भी विषय भोग का अन्त दुःख ही है। चिकित्सा शास्त्र का रोग और उसके साधन तथा रोगनिवृत्ति और उसके साधन का ज्ञान होना प्रयोजन है।

ऐसे ही (२) धनुर्वेद चार पादों में विश्वामित्र ने बनाया है। उस में प्रथम दीक्षापाद है, द्वितीय संग्रह पाद है; तृतीय सिद्धिपाद है और चतुर्थ प्रयोगपाद है। तहां प्रथमपाद में धनुः का लक्षण और अधिकारीका निरूपण किया है। यहां धनुः शब्द चाप के अर्थ में रूढ़ होते हुये भी चार प्रकार के आयुधों का वाची है और वे चारों प्रकार मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त और मन्त्रमुक्त हैं। उनमें से चक्र आदि मुक्त खड्गादि अमुक्त शल्य के अवान्तरभेद आदि मुक्तामुक्त और शरादि मन्त्रमुक्त हैं। उन में मुक्त को अस्त्र भी कहते हैं (क्योंकि फेंककर चलाते हैं) और अमुक्त को शस्त्र भी कहते हैं (क्योंकि उसके प्रयोग में हाथ से छोड़ते नहीं) वह भी ब्राह्म, वैष्णव, पाशुपत प्राजापत्य, आग्नेय आदि भेदों से अनेक प्रकार का है। एवं साधिदैव और समन्त्र चारों प्रकार के आयुधों में जिन क्षत्रिय कुमारों और उनके अनुयायियों का अधिकार है वे सब चार प्रकार के होते हैं पैदल तथा रथ हाथी और घोड़ों पर चढ़े हुए। दीक्षा, अभिषेक, शकुन, मंगलकरणादि सभी प्रथमपाद में निरूपण किया है, द्वितीयपाद में आचार्य और सब शस्त्रविशेषों का लक्षण करके उनके ग्रहण करने का प्रकार दिखाया है। तृतीयपाद में गुरुसम्प्रदायसिद्ध शस्त्रविशेषों का पुनः पुनः अभ्यास और मन्त्र तथा देवता को सिद्ध करना निरूपण किया हैं। एवं चतुर्थपाद में देवता के अर्चन और अभ्यासादि से सिद्ध अस्त्रविशेषों का प्रयोग निरूपण किया है। धनुर्वेद का प्रयोजन यह है कि क्षत्रिय लोग युद्धरूप अपने धर्मका आचरण करें और दुष्ट दस्यु चौरादिकों से प्रजापालन करें। एवं ब्रह्मा प्राजापत्यादि क्रमागत विश्वामित्र प्रणीत धनुर्वेद शास्त्र है।

एवं (३) गान्धर्व वेद शास्त्र भरत ने बनाया है उस में नृत्य गीत वाद्य (अर्थात् नाचने गाने और बजाने) के भेद से अनेक प्रकार का विषय प्रतिपादन किया है। गान्धर्ववेद का प्रयोजन देवताराधन और निर्विकल्प समाध्यादि की सिद्धि है।

एव (४) अर्थ शास्त्र बहुत प्रकार का है जैसे नीतिशास्त्र, अश्वशास्त्र, गजशास्त्र शिल्पशास्त्र सूपकारशास्त्र और चतुःषष्टि कलाशास्त्र। इस प्रकार अर्थ शास्त्र को अनेक मुनियों ने बनाया है। वे ६४ कलायें शैवागम में कही हैं-

१ गीत, २ वाद्य, ३ नृत्य, ४ नाट्य, ५ आलेख्य (चित्रकला) ६ विशेषकच्छेद्य, ७ तण्डुल कुसुमवलिविकार, ८ पुष्पास्तरण, ९ दशनवसनाङ्गराग १० मणिभूमिका कर्म ११ शयन रचन १२ उदकवाद्य १३ उदक (घात) वाद १४ अद्भुत दर्शन वेदिता १५ माला ग्रथन कला १६ शेखरापीडयोजन १७ नेपथ्ययोग १८ कर्णपत्रभंग १९ गन्ध युक्ति २० भूषणयोजन २१ इन्द्रजाल २२ कौचुमारयोग २३ हस्तलाघव २४ चित्रशाक अपूप भक्ष्यविकार क्रिया २५ पानक-रस राग आसव योजन २६ सूचीवायकर्म २७ सूत्र क्रीडा २८ वीणा डमरुक वाद्य २९ प्रहेलिक प्रतिमाला ३० दुर्वच्चकयोग ३१ पुस्तक वाचन ३२ नाटिका आख्यायिकादर्शन ३३ काव्य समस्या पूरण ३४ पट्टिका वेत्रवाण विकल्प ३५ तर्कु कर्म ३६ तक्षण ३७ वास्तुविद्या ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञान ४१ आकरज्ञान ४२ वृक्षायुर्वेदयोग ४३ मेष कुक्कुट लावक युद्ध विधि ४४ शुकसारिका प्रलापन, ४५ उत्सादन, ४६ केशमार्जनकौशल, ४७ अक्षरमुष्टिका कथन, ४८ म्लेच्छित कविकल्प, ४९ देशभाषाज्ञान, ५० पुष्पशकटिका निमित्त ज्ञान; ५१ यन्त्रमातृका, ५२ धारणमातृका, ५४ असंवाच्यसंपाट्य मानसी काव्यक्रिया विकल्प ५४ छलितकयोग, ५५ अभिधान-कोष-छन्दोज्ञान ५६ क्रियाविकल्प, ५७ ललितविकल्प, ५८ वस्त्रगोपन, ५९ द्यूतविशेष, ६० आकर्षक्रीडा ,६१ बालक्रीडन, ६२ वैनायिकी विद्याज्ञान, ६३ वैजयिक विद्याज्ञान, ६४ वैतालिकी विद्याज्ञान। इस सब प्रकार के अर्थशास्त्र का प्रयोजन लौकिक और अलौकिक उन २ भेदों से जानना चाहिये।

इस प्रकार त्रयी शब्द से १८ विद्याएं कहीं ॥

अब "त्रयीसांख्यम्,, इत्यादि श्लोक के उक्त क्रम से सांख्यादि का निरूपण करते हैं। सांख्यशास्त्र को कपिल भगवान् ने बनाया है। तिसमें "त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः, अर्थात् त्रिविध दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति सब से बडा पुरुषार्थ है इत्यादि ६ अध्याय हैं। तहां प्रथम अध्यायमें विषय निरूपण किये हैं, द्वितीय अध्यायमें प्रधान के कार्य, तृतीय अध्याय में विषय-वैराग्य, चतुर्थ अध्याय मे विरक्त पिङ्गला कुमारादिकों की आख्यायिकाएं पञ्चम अध्याय में परपक्ष निर्जय, षष्ठ में सब विषय का सक्षेप। सांख्यशास्त्र का प्रयोजन प्रकृति पुरुष के इतरेतर विवेक का ज्ञान होना है ॥

योगशास्त्र भगवान् पतञ्जलि ने "अथ योगानुशासनम्,, इत्यादि चार पादों में बनाया है तहां प्रथम पाद में चित्तवृत्तियों के निरोधात्मक समाधि और वैराग्यका रूप और उस का साधन कहा है। द्वितीय पाद में विक्षिप्त चित्त की भी समाधि सिद्धि,

हो एतदर्थ यम, नियम,आसन,प्राणायाम,प्रत्याहार,धारणा,ध्यान और समाधि ये आठ अङ्ग निरूपण किये हैं । तृतीय पादमें याग की विभूतियां और चतुर्थपादमें कैवल्य योगशास्त्र का प्रयोजन विजातीय प्रत्ययों के निरोध द्वारा निदिध्यासन सिद्धि है ॥

पशुपतिमत पाशुपतशास्त्र भगवान् पशुपति ने पशुओं के पाश छुड़ाने के लिये "अथातः पशुपतियोगविधिं व्याख्यास्यामः,, इत्यादि पांच अध्यायों में रचा है । उन पांचों अध्यायों द्वारा कार्यरूप जीव पशु है, कारणरूप पशुपति ईश्वर हैं, पशुपति में चित्त का समाधान योग है, भस्म द्वारा (प्रातः मध्यान्ह सायं) तीनों सवनों में स्नान करना विधि है, इत्यादि विषय निरूपण किया है । और इस शास्त्रका प्रयोजन दुःखान्त नामक मोक्ष है । यही कार्य-कारण-योग-विधि दुःखान्त कहलाते हैं । एवं शैव मन्त्रशास्त्र भी पाशुपत शास्त्र के ही अन्तर्गत जानना ॥

एवं वैष्णव नारदादि ने पञ्चरात्र ग्रन्थ बनाया है । तहां वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध चार पदार्थ निरूपण किए हैं । भगवान् वासुदेव परमेश्वर सब का कारण है उस से संकर्षण नाम जीव उत्पन्न होता है उस से प्रद्युम्न नाम मन उससे अनिरुद्ध नाम अहंकार उत्पन्न होता है । यह सभी भगवान् वासुदेव के ही अंशभूत और उन से अभिन्न ही हैं इससे उन वासुदेवका मन वाणी और कर्मसे आराधन करके मनुष्य कृतकृत्य होता है, इत्यादि निरूपण किया है । एवं वैष्णवमन्त्रशास्त्र भी पञ्चरात्र के ही अन्तर्गत है ॥

अब रहा वामागमादि शास्त्र सो तो वेदबाह्य ही है । इस प्रकार से प्रस्थानभेद का निरूपण हुआ ॥

सब का प्रस्थानभेद संक्षेप से तीन प्रकारका ही है (१) आरम्भवाद (२) परिणामवाद (३) विवर्तवाद । पृथिवी, जल, तेज और वायुसम्बन्धी चार प्रकार के परमाणु द्व्यणुकादि क्रम से ब्रह्माण्ड पर्यन्त जगत् का आरम्भ करते हैं । असत् ही कार्य कारण-व्यापार से उत्पन्न होता है इस प्रकार का प्रथम आरम्भवाद तार्किकों (नैयायिको) और मीमासकों का है । सत्व रजः और तमोगुण रूप प्रधान ही महत् अहंकारादि क्रम से जगत् रूप में परिणत होता है । पहले भी सूक्ष्मरूप से सत् ही कार्य कारणव्यापार से प्रकट होता है यह द्वितीय पक्ष (परिणामवाद) सांख्ययोग और पाशुपतों का है । ब्रह्म का ही परिणाम जगत् है इस प्रकार वैष्णवोंका भी परिणामवाद ही है । स्वप्रकाश परमानन्द अद्वितीय ब्रह्म अपनी माया के वश मिथ्या की नाईं जगत् रूप में कल्पित होता (माना जाता) है वह तृतीय विवर्तवाद पक्ष ब्रह्मवादियों (वेदान्तियों) का है । परिणाम और विवर्त का अर्थ निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट हो जायगा——

सतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरितः ।
अतत्त्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदीरितः ॥

अर्थात् यथार्थरूपसे ही अन्यथा आकार हो जाना विकार (परिणाम) कहलाता है (जैसे दूध का दधि वा घृत बन जाना) और अयथार्थ रूप से ही अन्यथा आकार भासित होना विवर्त कहलाता है (जैसे रस्सी का सांप दीखना) ।

सभी प्रस्थान कर्त्ता मुनियों का विवर्तवाद में पर्यवसान (परिसमाप्ति) होने से वेदान्तप्रतिपाद्य अद्वितीय परमेश्वर मे ही तात्पर्य है ।

(शङ्का) वे मुनि भ्रान्त हैं क्योंकि भिन्न २ मार्गका उपदेश किया है । (समाधान) वे मुनि भ्रान्त नहीं हो सकते क्योंकि वे सर्वज्ञ थे । (शङ्का)-तब भेद क्यों है ? (समाधान) उन्हो ने सर्वज्ञ होने से इस बात को जानते हुए कि बाह्य विषय प्रवण लोगों का आपाततः परम पुरुषार्थ में प्रवेश नहीं होता है इस लिये क्रमशः नास्तिकता निवारण करनेके लिये अर्थात् बहिर्मुखोंको तर्कादि द्वारा आस्तिक और परम पुरुषार्थ के योग्य बनानेके लिये भिन्न २ प्रकार दिखलाए हैं । (अब तृतीय पाद का अर्थ करते हैं) इस विषय मे उन मुनियों के तात्पर्य को न जान कर, वेदविरुद्ध अर्थ में भी उन का तात्पर्य है ऐसी उत्प्रेक्षा करते हुए उन के तत्तद्रूप मतोंको ही ग्रहण करने योग्य समझ कर ग्रहण करते हुए, मनुष्य ऋजु और कुटिल नाना पथों का अनुसरण करते हैं इसलिये सबका ऋजुमार्गमें प्रवेश नहीं होता । (शङ्का) विपरीत ग्रहण करनेसे परमेश्वर प्राप्ति न होगी । (समाधान)-वे मनुष्य अन्तःकरण शुद्ध होने के पश्चात् ऋजु मार्गका ही आश्रय लेते हैं इस से प्रारम्भमें कुटिल मार्गका आश्रय करने पर भी अन्तःकरणकी शुद्धता से अवश्य परमेश्वर प्राप्ति होगी ॥ साथ ही इस विषय में यह भी एक बात विचारणीय है कि पूर्वज आचार्यों ने कार्यरूपसे भी कभी मतभेद को आश्रय नही दिया है तब इतनी बात अवश्य है कि जिस तरह किसी अभीष्ट स्थान की प्राप्तिके अनेक मार्ग होते हैं और उनमे से किसी भी मार्ग का आश्रय लेने वाला अपने गन्तव्य स्थान को प्राप्त कर लेता है और यदि वे सब उन मार्गों की परीक्षा न कर प्रारम्भ मे ही विवाद करने लगें कि यह मार्ग ठीक नहीं यह ठीक है तो कैसे अभीष्ट स्थान को पहुंच सकते हैं हां इतनी बात अवश्य है कि वे मार्ग सब वेदानुकूल होने चाहिये । मूलांशमे यदि विरोध न हो तो उन सभी मार्गों से पथिक अपने अभीष्ट स्थान को पहुंच सकता है, । शास्त्र सिद्धान्तों मे जो लोगो को भ्रम मालूम पडता है उसमें प्रधान कारण यह है कि शास्त्रों के पर्यालोचन का प्रकार उठगया है । इस लिये प्रारम्भ में ही तर्क न करके हमें मुख्यसिद्धान्त की खोज करनी चाहिये ॥

सज्जनो ! यह महतो महीयान् हिन्दू धर्मका तत्व है इसे समझ कर परस्पर कलह छोड दो ॥

अनुवादक-रघुवर मिट्ठू लाल श्रीवास्तव्य

आर्यसमाजियोंकी एक महाभूल!

मेरे प्यारे भोले भाई आर्य्यसमाजियो! ध्यान देकर देखिये सं०१६२३ से वर्तमान सं० १६७४ पर्य्यन्त ५१ वर्ष आर्यसमाजको स्थापित हुए होगये परन्तु आप या आपके उपदेशकोंमें से किसीने स्वा०द०कृत यजुर्वेद भाष्यके (इषेत्वा०) इस पहिले मन्त्रके संस्कृत भाष्य की समाप्ति में (अयं मन्त्रः श० । १ । ७ । ४१-८ व्याख्यातः) इसको ध्यान से नहीं देखा और ऐसा ही स्वामी जी बराबर ६ वें अध्यायके २३ वें मंत्र तक प्रत्येक के साथ लिखते गए हैं और ७ पृ०में इसके भाषाभाष्य में लिखा है कि, इसकी व्याख्या शतपथ ब्राह्मण में की है उसका ठिकाना पूर्व संस्कृत भाष्यमें लिख दिया, और आगे भी ऐसा ही ठिकाना लिखा जायगा जिसको देखना हो वह उस ठिकाने से देख लेवे ऐसा स्पष्ट लिख कर स्वामी जी ने अपने वेद भाष्य का स्वयं ही खंडन कर दिखा दिया कि मेरा भाष्य शतपथ से विरुद्ध है मानने योग्य नहीं और उन्हीं मंत्रोंके प्रमाण देदे कर जो मैंने सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ बनाये हैं वे भी मानने योग्य नहीं ये तो केवल विद्वानोंके चिढ़ाने के लिये ही लिखे हैं वस्तुतः नहीं और (दुसरायके) फिर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के प्रतिज्ञा विषयके (३४१) पृ०में पंक्ति ३ से लेकर पंक्ति ७ तक अपने बनाये वेद भाष्यादि संपूर्ण ग्रन्थों का (अयुक्त) ऐसे कहकर खंडन कर दिया तिस पर भो उन सत्यार्थप्रकाशादिकों के व्याख्यान देदे कर लोगोंको बहकाते हो, जो लोग ऐसा करते हैं विसर्पी आदि नरकों के अधिकारी होते हैं (तै० आ० प्र० १ अनु०१६ यजुर्वेद) अब तो जागिये न्याय दृष्टि से विचार कर देखिये आप के स्वामी जी का ही सिद्धान्त प्रत्यक्ष करके मैं आप को दिखाता हूं मैं कुछ अपनी कल्पनासे नहीं और भी देखियेगा कि स्वामी जी ने तो (संस्कार विधि पृ० ७२ में) द्विजातियोंको ही यज्ञोपवीत का अधिकार लिखा था अब तो आप लोग निर्भय होकर वर्णव्यवस्था का ही लोप कर अपने जीवन को कृतार्थ कर रहे हो, अब तो ऊपर के लेखानुसार स्वामीजी सनातनधर्मनिष्ठ हो कर (सत्यार्थप्रकाशादि) संपूर्ण ग्रन्थों का खण्डन कर कृतार्थ हो गये-ऐसे ही आप भी समाज को परित्याग कर सनातनधर्मनिष्ठ हो जीवन सफल करिये अलम् ॥

प्रकाशक—श्रीमहन्तब्रह्मकुशलोदासीन
धर्म्मशाला बिहारीपुर—बरेली

महाप्रस्ताव ।

महा सम्मेलन महामण्डल और महासभा के नेताओं से सविनय प्रश्नात्मक प्रार्थना करता हूं आशा है कि धर्म के नाते अवश्य ही विचार करेंगे।

१–त्रिकालज्ञ और महापण्डित महर्षियों द्वारा निश्चित की हुई व्यवस्था को प्रस्ताव रूप में परिणत कर उसे पास फेल करने में आपने क्या लाभ सोचा है।

२–यदि आज कल की रिवाज़के अनुसार उन धार्मिक वातों में अंशांशिक सुधार ही करना अभीष्ट है तो संस्कृत साहित्य सम्मेलन में या कोई नई पण्डित महासभा, बनाकर धर्मशास्त्रज्ञ पण्डितों को प्रति वर्ष इकट्ठा करके फिर उन की सम्मति से उन विचारे प्रस्तावों को पास फेल करवाइये॥

३–जब कोई भारतव्यापी प्रस्ताव पेश होता है तब एक अनुमोदन और एक प्रत्यनुमोदन कर्त्ता के वाद बड़ी ही जल्दी पास होकर रजिस्टर अखवार और रिपोर्ट में छाप दिया जाता है इस के सिवाय और कुछ नतीजा नहीं निकलता। और जब कोई निर्भीक विद्वान् उस का खण्डन करना चाहता है तो नियम विरुद्ध कहकर क्यों रोक दिया जाता है॥

४–प्रायः सभाओं में आये हुए वाबू मुंशी जमींदार रईसों से वोट लेने के लिये हाथ उठवाये जाते हैं अब भला सोचिये तो सही वे व्याख्यान सुनना जानते हैं या महर्षियों के निश्चय किये धर्म में उलटफेर करना और उन को मानसिक क्लेश भी होता होगा क्योंकि वे लोग अपना काम काज छोड़कर आते हैं व्याख्यान सुनने, और यहां कराया जाता है जबरन हाथ उठवा कर धार्मिक प्रस्तावोंका फैसला (जो कि पहिले पण्डितों से नही हो चुका है)

इसलिये बड़ी छोटी सभी सभाओं में व्याख्यान के समय आम पवलिक के सामने धार्मिक प्रस्तावों का फेल पास कराना एकदम उठा दिया जाय और जो प्रस्ताव 'पण्डित महासभा, द्वारा पहले दिन पास हो चुके हों उन विषयों पर और धार्मिक विषयों पर भी योग्य २ महोपदेशकों के युक्ति प्रमाण सहित आधघंटे या १ घंटे (५ मिनट नही) व्याख्यान कराये जाय, और अन्त में यह कह देना भी अच्छा है कि इस में जिस किसी को शङ्का हो तो वह आज या कल अमुक समय पर आकर मय प्रमाणों के विरोध करें (व्याख्यान के समय नहीं)॥

और उन पास हुए नये प्रस्तावों या धार्मिक व्याख्यानों को केवल रजिस्टर रिपोर्ट अखवारो में ही न लिख कर ट्रैक्टरूपसे दस २ पांच २ हजार छाप कर वांटदिये जाया करें जिससे विशेषप्रचार वढ़े और पिण्डाल आदिमें उतना खर्च कम कियाजाय,,

विनीत—रामप्रसाद शर्मा राजवैद्य मथुरा

हा ! गयाप्रसाद !!!

(१)

भय्या गयाप्रसाद तुम्हारा हाय वियोग असह्य हुआ।
साथ छोड़ कर स्वर्ग सिधारे जीवन तुम बिन भार हुआ॥
किस से कहूं व्यथा निज मनकी कहो कौनसा यत्न करूं।
हुआ घाव पर घाव हृदयमें भगवन् कैसे धैर्य धरूं॥

(२)

प्राणों के थे प्राण पिता के मातृ नेत्र के तारे थे।
एक मात्र गुणयुक्त पुत्र थे जननी जनक दुलारे थे॥
थे जीवन यष्टिका पितामह-पितामही के हा प्यारे।
सब को थे आमोद विधायक असमय त्याग हुए न्यारे॥

(३)

होकर रोग, वियोग तुम्हारा, होता तब भी करते तोष।
मन समझाते धैर्य धारकर अथवा दे औषध को दोष॥
किन्तु अचानक छतसे गिरकर वेसुध हो गति अन्त लही।
सब उपचार थके कर सर्जन होनी कब चिन हुए रही॥

(४)

प्रथम तार आया गिरने का जीवन की फिर भी थी आश।
दुर्दिन दिवस तृतीय प्रलय सम हुआ, कर दिया सर्व विनाश॥
भस्मसात् होगया हृदय सुन समाचार वह दुःखदाई।
छिपा अचानक बाल निशाकर, आकर शोक घटा छाई॥

(५)

जिस लावण्यमूर्त्ति को लखकर माता पिता मोद पाते।
सहज बाल्य क्रीड़ा विलोक के मग्न प्रेम में हो जाते॥
मूर्छित वही मूर्त्ति हा सन्मुख अस्पताल * में पड़ी हुई।
वज्र हृदय हो पिता, पितामह, माता देखे खड़ी हुई॥

(६)

तीन दिवस तक पड़े रहेहो वेसुध, नहीं शब्द बोले।
किये सदा को नेत्र बन्द गिरकर, फिर कभी नहीं खोले॥
होनहार तुम सा सुत जिनका वसुन्धरा से उठ जावे।
भाग्यहीन उन मात-पिता का क्यों न कलेजा फट जावे॥

* मेडीकल कालेज हास्पिटल, कलकत्ता,

(७)

गया तीर्थ का मूर्तिमान् गृह में प्रसाद था गयाप्रसाद ।
मन की मनमें रही आश, हा! किन्तु लुटगया सभी प्रसाद ॥
जातकर्म निष्क्रमणादिक सब, संस्कार थे किये गये ।
तथा द्विजोचित शिक्षा के भी सदुपदेश थे दिये गये ॥

(८)

अल्पावस्था से ही खाते नहीं विदेशी चीनी जान ।
गाते थे निःशंक सभा में गीत " अभागे हिन्दुस्तान * " ॥
पांच वर्ष के बालक विरले होते तुम से प्रतिभावान् ।
अल्प समय में रट लेते थे चाहे जैसा पद्य महान् ॥

(९)

विषवृक्षारोपण भी करके स्वय न छेदन करते, नीति ।
किन्तु लगा सुरतरु विधि तूने स्वय नष्ट कर की अनरीति ॥
अहो विधे भवदीय कुटिलता कहो किसे अनुकूल हुई ।
सिन्धु, इन्दु, पंकज मलयज, में कहा न तेरी भूल हुई ॥

(१०)

सुरभित पुष्पयुक्त पादप का ज्येष्ठातप शोषक होता ।
कुटिल कण्टकित अर्क जवासे का वह ही पोषक होता ॥
गुणवानों से सहज शत्रुता तथा निर्गुणों से अति प्रीति ।
अहो निरखना विधि विधान की नाशकारिणी निन्दित नीति ॥

(११)

वंश वाटिका को गुण सौरभ से वासित कर देते तुम ।
" एकेनाऽपि सुवृक्षेण " ये कर चरितार्थ दिखाते तुम ॥
किन्तु दैव के दुर्विपाक ने सभी मनोरथ नाश किया ।
खिलने भी पाया न पुष्प था, अकस्मात् हिमपात किया ॥

(१२)

नेत्र ज्योति थे, गृह दीपक थे, तुम बिन आज अंधेरा है ।
चला गया सुख साथ तुम्हारे अतः दुःख ने घेरा है ॥
हो निर्मोही त्याग गये जग जाना " रैन बसेरा है " ।
हुआ मुझे अनुभूत मन्त्र ये " कोई न मेरा तेरा है " ॥

तुम्हारा शोकसंतप्त " ज्येष्ठ भ्राता "

* इस गीत को कई जगह सभा बरात आदिकों में पांच वर्ष की ही अवस्था में गाया था उसका कुछ अंश यह है, अभागे हिन्दुस्तान, क्या तुममें नहीं जान, अपने हाथों ही सब खोया घर में बीज फूट का बोया पृथ्वी फूट २ कर रोया गजनी गड़ा निशान, हिन्द दुस्थान अभागे हिन्दुस्तान० ॥१॥

हिन्दी भाषाका महत्त्व
और
उसके प्रचार का उपाय।

प्रिय पाठक! इस समय में यह विचार विशेष रूप से सर्वत्र छाया हुआ है कि भारत के भिन्न २ प्रान्तों की भिन्न २ भाषाओं में "राष्ट्रभाषा" होने की योग्यता केवल हिन्दी भाषा ही में है। जिसका अनुमोदन एवं समर्थन भारत के सर्व प्रान्तोंके सुप्रसिद्ध नेता तथा भारतीय राजनीतिक क्षेत्र की सुप्रसिद्ध नेत्री श्रीमती मिसेज "एनीबिसेण्ट" सरीखी विदेशी (अंगरेज) रमणी भी कर चुकी हैं। जिस हिन्दी भाषा के गरीयान् गुणों पर मुग्ध होकर "मैक्समूलर" " मिष्टर फ्रेडरिक पिंकाट ,, डाक्टर ए० एफ० रुडाल्फ हार्नली सी० आई० ई०, रेवरेण्ड एडविन ग्रीव्स, डाक्टर जी० ए० ग्रियर्सन सी० आई० ई०, प्रभृति विदेशी (अंगरेज-जर्मन) विद्वान् भी पूर्ण प्रेम प्रगट कर हिन्दी साहित्यकी सेवा कर चुके हैं। उसी हिन्दी भाषा एवं देवनागरी लिपि के प्रति हमारी-भारतवासियों की-उदासीनता हमारे लिये अति लज्जा और अत्यन्त शोककी बात है। हा हन्त हिन्दुस्थानिओ! हिन्दुस्थान में रहकर और उसीके अन्नाम्बु से आजन्म पालन पोषण पाकर भी, हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी प्रचारके हेतु हाथ न बढ़ाया तो तुम्हारी इस घोर कृतघ्नता का प्रायश्चित्त कहीं भी कभी कदापि नहीं होसकेगा। आप ध्यान पूर्वक समझिये,कि एक हिन्दी भाषा ही ऐसी भाषाहै,कि इसमें जो कुछ जैसा लिखा जाता वैसा ही पढ़ा जाता है।संसारकी समस्त भाषाओंके समग्र शब्द देवनागरी लिपि में यथार्थ पढ़े और लिखे जाते हैं अन्यान्य भाषाओंमें यह बात नहीं है। उनमें कुछ लिखा और कुछ पढ़ा जाता है। जैसे "किस्ती" को "कश्ती" "वेटी,, को "पेटी" या "पट्टी,, "पिता को पिटा,, "तात को टाट" तोता को टोटा" ऐसे ही और भी अनेक शब्द हैं जो कुछ लिखे और पढ़े कुछ और ही जाते हैं। जिस पर "अभ्युदय पत्र" में रामशरण गुप्त जी ने भी लिखा है।

जिसमें "खुदा" होता "जुदा,, या "शोल्ड" "शुड,, पढ़ना पड़े।
उसको पढ़ा "हिन्दी,, तजी जीवन विगारा क्या हुआ॥ १॥ इत्यादि

जब तक सर्व भारतवासी "हिन्दीभाषा,, को नहीं अपनावेंगे तब तक एतद्देश क कल्याण कदापि नहीं हो सकता। कारण कि भिन्न भिन्न भाषा भाषी-लिखने पढ़ने वाले मनुष्य एक दूसरेके प्रति अपने २ भाव प्रकट नहीं कर सकते। कल्पना कीजिये एक मनुष्य हिन्दी दूसरा फारसी तीसरा अंगरेजी चौथा तामिली पांचवां ब्रह्मी भाषा जानता है।यदि कदाचिद्दैवयोगेन पूर्वोक्त पांचों पुरुष किसी कठिन आपत्तिके स्थानमें ए-

कत्रित होजावें और एक को दूसरेके सूक्ष्म मनोभाव जानने हों तो वह चाहें अपनी २ भाषा में बक २ थक जावें किन्तु वह एक दूसरे के मनोगत भव्य भावों को कदापि नहीं जान सकते, और प्रत्येक पुरुष सर्वभाषायें सीख भी नहीं सकता। इससे यह परमावश्यक है कि "हिन्दी भाषा,, और "देवनागरी" लिपि को सार्वदेशिक (व्यापक) भाषा एव लिपि मानकर हिन्दुस्तानके सर्व मनुष्य हिन्दी भाषा अवश्य २ पढ़ें लिखें और एक दूसरे के प्रति हिन्दी भाषाके द्वारा अपने २ भूरि २ भव्य भावों से भरे विचार विदित करें। क्योंकि-विना विदित कियेहुये विचार परिमार्जित परिवर्द्धित एवं परिपक्क कदापि नही हो सकते। परिपक्क हुए विना कोई भी विचार भारतव्यापी नहीं हो सकता और जब तक जो विचार सर्व देश व्यापी नहीं होता अर्थात् नगर निवासियों से वनवासियों तक, भूपतियों से यतियों तक, धनी से निर्धनी तक, एक दूसरे के विचार जानने मे समर्थ नहीं तब तक एक दूसरे के विचार का पूर्ण समर्थन नही कर सकता और विना पूर्ण समर्थन एवं सहानुभूति के साङ्गोपाङ्ग पूर्ण सुचारु सङ्घशक्ति सगठित नही हो सकती। विना सुदृढ़ सङ्घशक्ति के कभी कोई भी आन्दोलन पूर्ण प्रावल्य नहीं धारण कर सकता और विना पूर्ण प्रवलता के, किसीको कभी कोई भी अलभ्य वा दुर्लभ पदार्थ प्राप्त नहीं होसकता। इसलिये भारतीय समस्त सज्जन महज्जनों को परमोचित है, कि-अपने आन्दोलन को सत्वर भारतव्यापी बनाने तथा द्रुत दृढ़ सङ्घशक्ति के सगठन के लिये पूर्णोद्योग से हिन्दी भाषा का पूर्ण प्रचार करें। क्योंकि कलियुग में सङ्घशक्ति ही विशेष वलिष्ठ मानी गई है। जैसा लिखा भी है (सङ्घशक्तिः कलौयुगे) और प्राचीन तथा नवीन समय में संघशक्ति की महिमा के अनेक इतिहास ग्रन्थान्तरों के विद्यमान हैं। सम्प्रति समय में भी सङ्घशक्ति माहात्म्य के ज्वलन्त अनन्त उदाहरण उपस्थित हैं,यथा रूस राज्य परिवर्तन। पाठक! इसी संघशक्ति के सन्मुख रूस सम्राट् " जार निकोलस " को अभी हालही में सिर झुकाना वन्दी होना पड़ा है। सङ्घशक्ति सत्ताकी महत्ता के समक्ष किसी भी स्वेच्छाचारी की धींगा धीगी नही चल सकती। इसी लिये फिर भी कहते हैं कि-एक (हिन्दी) भाषा के द्वारा सत्वर संघशक्ति का सङ्गठन करो। भाषा और भाव का ऐक्य होते ही आपका आन्दोलन भारत व्यापी ही नहीं, किन्तु चलचत्तर विश्वव्यापी वनकर आशुही आपको अवश्य साफल्य प्रदान करेगा। इस समय "हिन्दीभाषा" और लिपि के प्रचार की परमावश्यकता है। भाषाके विना लिपि और लिपिके विना भाषा का प्रचार अधूरा एवं लूला लगड़ा है। लूले लगडे पुरुष की जैसी दुर्दशा चलने फिरने में होती है, वही दुर्दशा भाषा के विना लिपि और लिपि के विना "हिन्दी भाषा की होगी और हो भी रही है। जैसे कभी २ कोई २ सरकारी आज्ञापत्र हिन्दी (देवनागरी) लिपि में भी छापे जाते हैं, किन्तु उन आज्ञापत्रों में हिन्दी भाषा का

सर्वथा अभाव रहता है। क्या उन आज्ञापत्रों से हिन्दी भाषाभाषियों को तथा हिन्दी लिपि ज्ञान शून्य अन्यान्य लिपि लिसों को उक्त आज्ञापत्रों में लिखे हुये विषय का क्रमशः पूरा २ वा कुछ भी ज्ञान हो जाता है, अर्थात् नहीं २ कदापि नहीं। हिन्दी भाषा के प्रचारार्थ निम्नलिखित उपाय उपयोगी हैं। सरकारी कार्यालयों में हिन्दी भाषा एवं लिपि का प्रचार बढ़ाने के निमित्त पूर्ण प्रयत्न किया जाय। भारतवर्ष में सर्वत्र प्रान्तिक भाषा और अंगरेज़ी भाषा के साथ २ हिन्दी भाषाका पढ़ना अत्यावश्यक अथच अनिवार्य हो। हिन्दी पढ़ने लिखनेके लिये सर्वसाधारणको प्रोत्साहन दिया जाय और हिन्दी भाषा का श्रेष्ठत्व समझाया जाय। हिन्दी पढ़े लिखे पुरुष उदारता पूर्वक सोत्साह अपने २ नगर ग्राम २ घर २ में सर्वसाधारण को हिन्दी पढ़ाने लिखाने में अपना २ थोड़ा २ समय अवश्य २ व्यय करें। ग्राम २ में सार्वजनिक हिन्दी पुस्तकालयों की स्थापना की जाय जिनमें समयोपयोगी सुशिक्षा देने वाले समाचारपत्र और पुस्तकें सर्व साधारण को पढ़ने के हेतु सुगमता से मिल सकें। प्रधानतः देश के धनाढ्य राजा रईस जमीदारों का परम कर्त्तव्य है, कि वह स्वयं द्रव्य व्यय कर के वा भेज (चन्दे) से शास्त्रानुसार देश कालानुकूल पृथक् २ पुस्तकालय और पाठशालाओंकी स्थापना करें। कारण कि इस देश (भारतवर्ष) का अधिक भाग नितान्त ही निर्धन है दीन दुखियों की संख्या अत्यन्ताधिक है, जिस से सब लोग निज व्यय से न अध्यापक रखकर पढ़ सकते और न,पढ़ने के लिये पत्र पुस्तकें ही मोल ले सकते हैं। हिन्दी पत्र पुस्तक सम्पादक प्रकाशकों का भी मुख्य कर्त्तव्य है कि अपने २ पत्र पुस्तकों का मूल्य कम करें। हिन्दी पुस्तकों का मूल्य अतीवाधिक लिया जाता है, उदाहरण के लिये दो चार सम्पादक प्रकाशक व पुस्तक विक्रेताओंके नाम लिखदेना भी अनुचित नहीं होगा। नागरीप्रचारिणी सभा काशी की " भूषण ग्रन्थावल्यादि " बा० मैथिलीशरणगुप्त की " भारत-भारत्यादि " हरिदास एण्ड कम्पनी कलकत्ता की " हिन्दी बंगला शिक्षादि " सुखराम दास चौहान लाहौर का श्रीमान् हनुमान जी का जीवन चरित्र " शंकरदास जी शास्त्री पदेका " वैद्यक निघण्टु " वैद्य जटाशंकर लीलाधर त्रिवेदी अहमदाबाद की उत्तम सन्तति प्रताप प्रेस कानपुर की हिन्दी गीताञ्जलि आदि पुस्तकों का मूल्य अत्यन्त अधिक है, अधिक क्या लिखें एक दो पुस्तक विक्रेताओं को. छोड़कर सभी अपनी २ पुस्तकों का मूल्य अधिक रखते हैं, इस का परिणाम यह होता है कि साधारण लोग इन पुस्तकों के लाभ से वञ्चित रहते हैं, उपर्युक्त प्रकार के पुस्तक विक्रेताओंको आंखें खोलकर श्री वेंकटेश्वर प्रेस बम्बईकी ओर देखना चाहिये कि उक्त प्रेस के सत्त्वाधिकारी सेठ क्षेमराज जी सारदर्शिनी टिप्पणी समेत सजिल्द सिद्धान्तकौमुदी सरीखी बृहत् पुस्तकका मूल्य केवल १॥) लेते हैं जिस में पूर्वोक्त पुस्तकोंके तुल्य कितनी ही पुस्तकें बन सकती हैं, यहां यह भी कहदेना मैं

उचित समझता हूं कि भारतवर्षमें हिन्दी पुस्तकालयोंकी सख्या क्रमशः बढ़ती जाती है प्रतिवर्ष कुछ नये पुस्तक-वाचनालय भी खुलते जाते हैं, पुस्तक प्रकाशकों को विना मूल्य पुस्तकें देकर या अल्प मूल्यमें देकर इन पुस्तकालयों की सहायता करनी चाहिये। पर हिन्दी भाषा के प्रचारार्थ सब से आवश्यक कार्य यह है कि नगरों से लेकर छोटे से छोटे ग्राम तक में हिन्दी पाठशाला खोली जावें जिनमे हिन्दू बालकों को हिन्दी भाषा पढ़ाई जावे,तो थोड़े ही दिनों में हिन्दी भाषा का विशेष प्रचार हो सकेगा आशा है हिन्दी प्रेमी इन विचारों पर ध्यान देकर इन्हें कार्य परिणत करने की चेष्टा करेंगे। —— निवेदक—विशालसिंह देव वर्मा

साहित्य चर्चा।

सिद्धि। लेखक ओझा पं० चन्द्रशेखर शर्मा, प्रकाशक वेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग वर्क्स प्रयाग मू० ॥।)

यह छोटी सांची की एक सौ अडतालीस पृष्ठ की पुस्तक है। इस पुस्तक में पुस्तकके नामानुरूप जीवन संग्राममें सिद्धि प्राप्त करनेके साधनोंका विचार किया गया है। पुस्तक योग्यता पूर्वक लिखी गयी है। विशेष कर इस पुस्तक में एक और विशेषता है वह यह कि इस ढग की पुस्तकें प्रायः अंगरेजी आदि भाषाओं मे निकली हैं और उन मे से कई एक का अनुवाद हिन्दी भाषा में भी हो गया है पर यह पुस्तक मौलिक है क्योंकि किसीका अनुवाद होता तो भूमिका से मालूम हो जाता, इस में १४ प्रकरण हैं। यह पुस्तक नवयुवकों को विशेष कर उपयोगी है वैसे तो सभी इस से लाभ उठा सकते हैं भाषा सुन्दर सरल और प्रसाद गुण विशिष्ट है। छपाई भी अच्छी है॥

क्षयादर्श। लेखक पं० हरिशंकर शर्मा वैद्यराज, प्रकाशक बांकेलाल गुप्त मैनेजर श्रीधन्वन्तरि पुस्तकालय विजयगढ़ जि० अलीगढ़। मू० ॥≠)

भारतवर्ष में सभ्यताकी वृद्धि के साथ २ रोगों की भी वृद्धि हो रही है, प्लेग हैजा आदि संक्रामक रोगों की तरह क्षय रोग से भी भारतवर्ष जर्जर हो रहा है प्रतिवर्ष हजारों नवयुवक इस क्षय राक्षस के कराल करवाल के प्रहार से भगवान् सविता सुत के अतिथि हो जाते हैं। ऐसे समय में इस पुस्तक को लिख वैद्यराज जी ने देश का विशेष हित साधन किया है। पाश्चात्य विचारों के अनुकूल दो एक पुस्तकें इस रोग पर निकल चुकी हैं यद्यपि उन से भी देश को लाभ पहुंचा है तथापि सब से प्राचीन भारतवर्षीय चिकित्सा प्रणाली के सिद्धान्तानुकूल इस रोग की विवेचना

होनी आवश्यक थी वह अभाव इस पुस्तक से मिट गया। इस पुस्तक में क्षयरोग के कारण, स्वरूप भेद, कीटविज्ञान, दोषविज्ञान, चिकित्सा आदि अनेक उपयोगी विषयों का समावेश किया गया है पर पुस्तक आरम्भ में प्रकरणों का एक सूची होता तो और भी अच्छा था, एक प्रकरण इस में यह भी होना चाहिये था कि किस प्रकार के आहार विहार और उपायों से मनुष्य भावी क्षयरोग से वच सकता है पुस्तक का मूल्य भी ॥≠) अधिक है। टाटिल सुन्दर है दो रंग की स्याहियों से छपा है पर भीतर की छपाई वैसी सुन्दर नहीं है।

पितृयज्ञ की संगति। लेखक और प्रकाशक ला० हरिद्वारीमल चोखानी ४०२ अपर चितपुर रोड कलकत्ता मूल्य ।)

पुस्तक रचयिता चोखानी महाशय आर्यसमाजके सिद्धान्तानुयायी हैं इस वातको पुस्तककी भूमिका में आपने स्पष्ट रीति से स्वीकार किया है तथापि आपने आर्यसमाज के चौथे नियम के अनुकूल श्राद्ध को वैदिक कर्मकाण्डका एक आवश्यकीय अङ्ग मानकर इस पुस्तक की रचना की है आपकी यह सत्यप्रियता सराहनीय है। इस पुस्तक में योग्यता पूर्वक श्राद्ध का मण्डन किया गया हैं और आर्यसमाज के मनमाने जीवित श्राद्ध का भी अच्छा खाका खींचा है। पुस्तक में खूवी यह है कि जो कुछ भी प्रमाण दिये हैं उनका संग्रह अधिकतर आर्यसमाजी पुस्तकों से किया गया है। लेखक ने इसका उत्तर देने वालों को १००) पुरस्कार देने की भी घोषणा की है। पर हमें आर्यसमाज से यह आशा नहीं कि वह कभी अपने चौथे नियम को कार्यरूप में परिणत करे। कारण यह है कि आर्यसमाज में पक्षपाती और हठी दुराग्रही मनुष्यों की ही अधिकता है ऐसे लोग तो यदि फिर स्वा० दयानन्द जी ही आकर उन्हें श्राद्ध का वैदिकत्व प्रतिपादन करें तब भी मानने वाले नहीं। तथापि चोखानी जी का प्रयत्न स्तुत्य है। पुस्तक के टाटिल में भूल से शायद संहति शब्द छप गया है। भूमिका के वाद जहां पुस्तक प्रारम्भ हुआ है वहां संगति शब्द ठीक छपा है।

धर्मवीर हकीकत। कानपुर के शीतल कविने इस छोटीसी पुस्तककी रचना की है इसमें नौटंकी की राह में धर्मवीर हकीकत राय के आत्मोत्सर्ग का अपूर्व चरित्र वर्णित किया गया है पुस्तक अच्छी है मू० ≠) मिलने का पता मुर्लीधर जी गुप्त मास्टर वैदिक पाठशाला अजीतमल प्रान्त इटावा।

राष्ट्रीय वाणी। लेखक दयाशंकर शुक्ल, सम्पादक चण्डिकाप्रसाद वाजपेयी प्रकाशक लोकसंग्रह पुस्तकमाला कार्यालय विन्दकी जि० फ़तेहपुर। मू० ।)

इस पुस्तक में खड़ी वोली की ५२ कवितायें हैं, कवितायें राष्ट्रीय शिक्षा, देशप्रेम स्वावलम्बन, आत्मोन्नति आदि विषयों पर हैं और यथासम्भव उत्तेजक तथा मनोरञ्जक हैं यह लोकसंग्रह पुस्तकमाला का प्रथम रत्न है। स्थायी ग्राहकों को ¾ मूल्य

में इस पुस्तकमाला की पुस्तकें देनेका नियम भी प्रकाशक ने इसमे सूचित किया है। खड़ी बोलीके प्रेमियों और देशहितैषियोको इस पुस्तकमाला का ग्राहक बनकर प्रकाशकों का उत्साह बढ़ाना चाहिये।

सुमति कुमति मोहान्धकार नाटक। स्वर्गवासी पं० द्वारिकादास जी ने इस नाटक की रचनाकी है और शिकोहाबादके बा० फूलचन्द जैनने इसे प्रकाशित किया है, जैनधर्म के अनुसार सुमति कुमति के स्वरूपका निरूपण इसमे किया गया है, दो कल्पित चित्र भी इसमे दिये गये हैं। पुस्तक पर मूल्य कुछ लिखा नही।

मिलनेका पता–बी०एफ० सी०डी० जैन एण्ड कम्पनी शिकोहाबाद सिटी यू. पी

कार्य विवरण। अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्म महासम्मेलन मथुराका यह द्वितीय वार्षिक कार्य विवरण है इस सम्मेलन की बैठकें चैत्र कृष्ण ४ सं० १९७२ से लेकर चैत्र कृष्ण ६ स० १९७२ तक तीन दिन तक मथुरामे हुई थी, सम्मेलनका पूरा विवरण इसमे दिया गया है, सम्मेलनमे जो प्रस्ताव पास किये गये थे उन प्रस्तावो पर जो भाषण हुए थे वे सब इसमें दिये गये है इसके सिवाय स्वागतकारिणी सभा के सभापति और सम्मेलन के सभापति दर्भंगा महाराज की वक्तृता भी इसमे दी गई है सम्मेलन में समागत सज्जनो की नामावली भी इस में दी गई है, कार्य विवरण का सम्पादन श्री हरिहरस्वरूप शर्मा संयुक्त मन्त्री ने किया है, यद्यपि इसमे कुछ त्रुटियां भी हैं पर रिपोर्ट के पीछे तय्यार होने पर ऐसा होना अनिवार्य ही था, परिशिष्ट (च) में सनातनधर्म कालेज के लाहौरमें खुलने पर १४ मई १९१६ को जो प्रारम्भिक वक्तृतायें सम्मेलन के कार्यकर्ताओं की हुई थी वे भी इसमें जोड दी गई है। प्राप्तिस्थान सनातनधर्म महा सम्मेलन कार्यालय दिल्ली।

जीवन चरित्र। गो सेवक प० जगतनारायण जी का यह जीवनचरित्र हैं छोटे सायज के १७ पृष्ठो मे उनका जीवन चरित्र है शेष ३-४ पृष्ठोमे गोरक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का विज्ञापन। पं० जगत्नारायण बड़े गोभक्त थे उन्होंने मुम्बई में गोसेवक प्रेस स्थापित किया था वहा से एक जीवधर्मामृत नामक मासिक पत्र निकाला था और कितनी ही पुस्तकें भी लिखी थीं, ऐसे गोभक्त का जीवन चरित्र सब को पढ़ना चाहिये, पुस्तक पर मूल्य कुछ लिखा नही है।

मिलने का पता–नटवरलाल चतुर्वेदी गोहितकारी कार्यालय मथुरा।

रिपोर्ट। यह काठियावाड़ के महुवा शहर की गोरक्षिणी सभा की सात वर्ष की रिपोर्ट है। रिपोर्ट देखने से विदित हुआ कि यह सभा उस प्रान्तमे गोरक्षा का अच्छा प्रचार कर रही है इस गोशाला का खास मकान बना हुआ है जिसे इस सभा के संस्थापक महेता ओधव जी राम ने बनवाया है, उक्त गोशाला के संस्थापक

तथा गोशाला के मकान के दो चित्र भी इस में हैं। मिलने का पता गोरक्षक सभा महुवा काठियावाड़।

पञ्चाङ्ग। यह कलकत्ते के प्रसिद्ध व्यापारी स्वर्गीय डा० एस० के वर्मन का पञ्चाङ्ग है इस में बारह मास के पञ्चाङ्ग के सिवाय अन्यान्य भी बातें हैं जो सर्व साधारण के काम में आती हैं, बारह महीने के पञ्चाङ्ग के सिवाय इसमें तीर्थस्थानों और प्राचीन पौराणिक दृश्यों के चित्र भी है, इस के सिवाय डा० वर्मन की दवाइयों का सूचीपत्र भी है। दश सज्जनों का नाम पता लिख भेजने पर यह पञ्चाङ्ग बिना मूल्य मिलता है। मिलनेका पता—डा० एस० के वर्मन ताराचन्ददत्त स्ट्रीट कलकत्ता।



सनातनधर्म सभा चन्दौसी।

युक्त प्रदेश चन्दौसी की सनातनधर्म सभा का वार्षिक महोत्सव ता० २३-२४-२५ मार्च सन् १९१७ को साहू नारायणदास डोरीलालजी साहब की दुकान पर बड़ी धूम धाम से हुआ ता० २२ मार्च को श्रीवेद भगवान् को सवारी के साथ नगर कीर्तन निकला, तिलहर निवासी भजनोपदेशक पं० अनोखेलाल जी शर्मा व स्थानीय पं० वासुदेव जी शर्मा व बाबा सीताराम जी आदि के भजनों से बड़ा प्रभाव रहा २३ मार्च को मध्यान्होत्तर ३ बजे से ६॥ बजे तक श्रीमान् महामान्य पं० श्रीदत्त जी के सभापतित्व में श्रीमान् पं० दुर्गादत्तजी पन्त का अति उत्तम मनोहर पुराणों के महत्व पर १॥ घंटे बराबर भाषण हुआ। पुनः रात्रि के ८ बजे से श्रीमान् साहू माधोराम जी रस्तोगी के सभापतित्व में भजनों के पश्चात् श्री १०८ स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आधुनिक साइन्स और प्राचीन साइन्स का विचार प्रभावशाली भाषण द्वारा कर दिखाया। ता० २४ मार्च को मध्यान्होत्तर ३ बजे से ६॥ बजे तक श्रीमान् पं० सागरमल जी महाराज मैनेजर (दुकान श्रीमान् सेठ हीरालाल रामगोपाल जी) साहब के सभापतित्व में भजन गायन होने पर हेड पं० मायाराम जी का ५ मिनट मङ्गलाचरण होने के पश्चात् मेरठ निवासी विद्यारत्न पं० गोकुलचन्द्र शास्त्रीका १ घन्टे संस्कारों के विषय में मनोहर व्याख्यान हुआ तत्पश्चात् ऋषिकुल ब्रह्मचारी हरिद्वार के प्रिन्सपिल पं० गिरधर शर्मा जी का १॥ घन्टे वर्णव्यवस्था पर बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान हुआ पुनः रात्रि को ८ बजेसे श्रीमान् बाबू भगवानदास जी रईस आनरेरी मजिस्ट्रेट साहब के सभापतित्व में भजन गायन के पश्चात् पं० दुर्गादत्त जी पन्त का

प्रेमा भक्ति पर अति मनोहर और रोचक प्रभावशाली व्याख्यान हुआ तत्पश्चात् श्री सनातनधर्म पुस्तकालयकी अपील मे ५००) रुपये की पुस्तकें प्राप्त हुईं जिसकी रिपोर्ट पृथक् प्रकाशित की जावेगी ता० २४ मार्च को प्रातः ८ वजे से १० वजे तक शङ्कासमाधान मे समाजियो की शङ्काओ का भली भांति समाधान हुआ पुनः मध्यान्होत्तर श्रीमान् साहू गंगाराम जी के सभापतित्वमें भजन गायनके वाद मुरादावाद निवासी पं० लालमणि जी का २० मिनट भक्ति विषय पर व्याख्यान हुआ पश्चात् श्रीमान् पं० गोकुलचन्द्र शास्त्री जी ने नवीन मत खण्डन और प्राचीन धर्म का महत्त्व दर्शा दिया तत्पश्चात् श्रीमान् पं० दुर्गादत्त जी पन्त ने पतिव्रत धर्म पर अति मनोहर व्याख्यान दिया पुनः रात्रि के ८ वजे से श्रीमान् साहू बद्रीप्रसाद जी साहब आनरेरी मजिस्ट्रेट के सभापतित्व में भजन गायन के पश्चात् मुरादावाद निवासी पं० वनमालीशंकरजी का मनोहर व्याख्यान हुआ तत्पश्चात् श्रीमान् प० गिरधरशर्माजी का श्राद्धकी फलासफी पर बडा रोचक प्रभावयुक्त भाषण हुआ पुनः श्रीमान् सभापति जी ने सरकार गवर्नमेन्ट की विजय प्रार्थना कर आये हुए महानुभावों को धन्यवाद देकर उत्सव का कार्य समाप्त किया ॥ भोलानाथ गुप्त ।

धौलपुर में सनाढ्य सभोत्सव ।

श्रीमती सनाढ्य उपकारिणी सभा राजधानी धौलपुर का तृतीय वार्षिकोत्सव स्थान श्रीगंगाबाई की बगीची में चिरपूजित रघुकुल कमल दिवाकर मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र भगवान् के सभापतित्व मे असाधारण धूम धाम के साथ सानन्द सुसम्पन्न हुआ। १ अप्रैल सन् १९१७ ई० को प्रातःकाल हवन ईश्वर प्रार्थना स्वस्तिपाठ शान्ति पाठ तथा सन्ध्याके चार वजे से सोत्साह ससमारोह नगरकीर्तन हुआ। २ अप्रै० को सन्ध्या के ४ वजे से भजनोपदेशक पं० गोपालप्रसाद जी उपाध्याय सिरसागंज के मनोहर गायन द्वारा हरि सङ्कीर्तन हुआ। मन्त्री राधाचरण ने मङ्गलाचरण किया बाड़ी, सरमथुरा धौलपुर कोठी के कतिपय गण्य मान्य प्रतिनिधियों ने भगवत् का अर्चन किया। राज राजेश्वर भारत सम्राट् की विजय श्री लाभ के लिये ईश्वर प्रार्थना की गई। महाराजा धौलपुर धराधीश को जय जय कार के साथ सधन्यवाद शुभमङ्गलाशीर्वाद दिये गये।

मास्टर सा० वावू रामस्वरूप जी भार्गवने ईशवन्दनानन्तर वृटिश के सुराज्य और सुशासन की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की। पं० कैलाशचन्द्र त्रिवेदी का ब्राह्मण धर्म पर और विद्वद्भूषण पं० दुर्गाप्रसाद जीशास्त्री त्रिपाठी का ब्राह्मणोन्नति पर पाण्डित्यपूर्ण परमरोचक व्याख्यान हुए। पश्चात् सुप्रसिद्ध वक्ता पं० श्रवणलाल जी महोपदेशक झालरापाटन का देशोन्नति और हमारा कर्त्तव्य क्या है इस विषय पर सुललित परम प्रभावोत्पादक सुश्राव्य व्याख्यान हुआ जिस का प्रभाव श्रोतागणों के ऊपर अच्छा

पड़ा। उपस्थिति सन्तोषजनक थी, आजके उत्सव में मान मर्यादा सम्पन्न उच्चपदस्थ राज कर्मचारी महोदयों ने सम्मिलित हो सभा की सुषमावृद्धि की थी। सनाढ्य वंशोद्भव श्रीमती दयामयी बाई जानकी देवी ने सभा के साथ सहानुभूति प्रदर्शित की। सभास्थ महज्जनोंको धन्यवाद दिये गये। ३ अप्रैलको सर्व सम्मति से सर्वोपयोगी ब्राह्मणोचित कतिपय प्रस्ताव स्वीकृत हुए। सनाढ्य ब्रह्मचर्याश्रम स्थापित हुआ। पं० गोपालप्रसाद जी के मनोहर भजन हुए, जाति भूषण पं०-प्यारेलाल जी शास्त्री मेंडू का सनाढ्य-ब्राह्मण-महत्त्व एवं उद्बोधन पर प्रभावशाली भाषण हुआ। पंडित गोपालदत्त जी द्विवेदी उपदेशक कोटाका जाति सुधार और संस्कार विषय पर परम मनोरञ्जक व्याख्यान हुआ। सुवक्ता पं० श्रवणलाल जी महोपदेशक का वर्णव्यवस्था पर सारगर्भित महत्त्व पूर्ण हृदय ग्राही सरस प्रौढ़ एक ओजस्विनी वक्तृता हुई। मास्टर रामस्वरूप जी भार्गव ने राज राजेश्वर भारत सम्राट् एवं महामहिमान्वित महाराजा धौलपुर को शुद्धान्तःकरण से धन्यवाद देकर सभा के सञ्चालक सभास्थ महज्जनों को हार्दिक धन्यवाद दिये। जय २ कार के साथ सभा विसर्जन हुई। तीन दिन खूब चहल पहल रही। शमस्तु

राधाचरण मन्त्री सनाढ्योपकारिणी सभा धौलपुर स्टेट।

ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम हरद्वार।

ऋषिकुल का एकादश (ग्यारहवां) वार्षिकोत्सव ज्येष्ठ शु० ६ सं० १६७४ ता० ३० मई १६१७ (बुधवार) से ज्येष्ठ शु० १२ सं० १६७४, ता० २ जून १६१७ (शनिवार) पर्यन्त होना निश्चित हुआ है। जिस में सनातनधर्म के प्रसिद्ध २ नेताओं वक्ताओं तथा कार्यकर्त्ताओं के पधारने की पूर्ण सम्भावना है। श्रीपतितपावनी भागीरथी का स्नान, ऋषिकुल का निरीक्षण तथा उपदेशक नेता आदिकों के दर्शन एक साथ कई लाभ हैं। प्रत्येक सनातनधर्म प्रेमी और विद्यानुरागी को चाहिये कि ऐसे सुअवसर पर पधार कर मनुष्य जन्म को सफल करें।

माननीय श्री पं० मदनमोहन मालवीय, व्याख्यान वाचस्पति श्री पं० दीनदयालु शर्मा, विद्यावागीश पं० गोविन्दराम शास्त्री, कूर्माञ्चल भूषण पं० दुर्गादत्त पन्त प्रभृति महानुभावों ने उत्सव में पधारने का वचन दिया है। विस्तृत समय विभाग पीछे से प्रकाशित किया जायगा। भ० केदारनाथ शर्मा सहकारी मन्त्री।

निवेदन।

आज कल प्रत्येक स्थानों में ऐसी विधवा स्त्रियां दृष्टिगोचर होती हैं कि जिन को निर्वाह योग्य भोजन वस्त्र में भी सदैव संकोच ही रहता है और वे दूसरों से कहते वा मांगते लज्जा करती हैं अतएव मैं संपूर्ण सज्जनोंसे उचित जान कर निवेदन करता

हूं कि सम्पूर्ण धनी धर्मात्मा लोग अपने २ नगर में कुछ धन चन्देसे एकत्र करलें उस में से जिन स्त्रियोंको दुःखित समझें उन को रुपया दो रुपया मासिक इस फण्ड में से दिया करें यदि रस्तोगी बिरादरी में इस धर्म कार्य का सम्यक् प्रबन्ध हो तो प्रार्थना करता हूं कि कोई महाशय उस के यथार्थ वृत्तान्त से मुझ को भी सूचित करें जिसे सुनकर मुझे प्रसन्नता हो और पत्र पुष्प में भी सभा की भेंट करूं ॥

जगन्नाथदास रस्तोगी मुरादाबाद महल्ला वल्लम

रामघाट में धर्मोत्सव ।

जि० बुलन्दशहर में रामघाट नामक एक कस्बा गंगा तट पर अवस्थित है। यहांके निवासियों ने धारिकपुर के महन्त गोपालदास जी के परामर्श से सनातनधर्म प्रचारिणी नामक सभा स्थापित की है इस सभा का द्वितीयाधिवेशन चैत्र शुक्ला रामनवमी तथा दशमी को सानन्द हुआ बाहर से महन्त गोपालदास जी तथा चौ० नन्दलाल जी रईस भी पधारे थे। दोनों दिन श्री पं० जीवनदत्त जी ब्रह्मचारी, पं० नवनिधि शर्मा, प० दुर्गादत्त शर्मा आदि विद्वानों के प्रभावशाली व्याख्यान हुए। कई भजनोपदेशकों के प्रभावशाली भजनों से अपूर्व आनन्द रहा यहां के ब्राह्मणों का परस्पर विरोध भी इस सभा ने मिटा दिया, एक दिन श्री रामचन्द्र जी का रथ भी बड़ी धूम धाम से निकाला गया।

दुर्गादत्त शर्मा

ब्राह्मी पुस्तकालय ।

हिन्दी प्रचार के शुभ उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर हमने उपर्युक्त नामका एक पुस्तकालय गत वैशाख शुक्ल तृतीया सं० १९७३ में स्थापित किया है जिस में दो तीन पत्र आते हैं और कुछ पुस्तकें भी हैं जो अधिकारिवर्ग को पठनार्थ दिये जाते हैं आगामी मास में पुस्तकालय की स्थापना किसी स्वतन्त्र स्थान में करदी जावेगी, हिन्दीपत्रों के मालिक तथा पुस्तकों के प्रकाशकों से निवेदन है कि अपने २ पत्र पुस्तकोंको विना मूल्य देकर इस पुस्तकालय की सहायता करें। एक सज्जन ने पच्चीस रुपया स्वयं तथा इतने ही अपने पूज्य पितृव्य जी से तत्काल तथा पांच पांच रुपया वार्षिक देने दिलाने का वचन दिया है आशा है वे अपने वचनों का प्रतिपालन करेंगे।

श्रीविशालसिंह देव वर्मा मन्त्री ब्राह्मी पुस्तकालय तिलोकपुर पो० ज्योंती मैनपुरी

आवश्यकता ।

हमको एक ऐसे पण्डित की आवश्यकता है जो संस्कृत की मध्यमा परीक्षा के विद्यार्थियों को उत्तम रीति से पढ़ा सकें। मासिक वेतन २०) हैं।

कालूराम शास्त्री असरौधा (कानपुर).

PRINTED BY B. D. MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

* * ब्रह्मप्रेस इटावा की नवीन पुस्तकें * *

उपनिषद् का उपदेश ।

[प्रथम खण्ड]

इस में छान्दोग्य और वृहदारण्यक उपनिषदोंकी महत्त्व पूर्ण आख्यायिकायें, शङ्करभाष्य का रहस्य तथा भगवान् बुद्ध और हर्वर्ट स्पेन्सर के औपनिषदिक मत की आलोचना है। उपनिषदों का रहस्य जानना हो तो इसे मंगाइये, बंगालके प्रसिद्ध विद्वान् श्रीकोकिलेश्वर भट्टाचार्य एम० ए० के बनाये "उपनिषदेर उपदेश" का यह हिन्दी अनुवाद है । सभी हिन्दी पत्रों ने इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। मू० १।)

उपनिषद् का उपदेश ।

[द्वितीय खण्ड]

इसमें कठ और मुण्डक उपनिषदोंकी स्वा० शङ्कराचार्य कृत संस्कृत व्याख्या पर हिन्दी टीका की गई है । पुस्तक के आरम्भ में एक शत पृष्ठ व्यापी अवतरणिका दी गई है जिस में शङ्कर स्वामी के वेदान्त विषयक तत्त्वोंका सार और उन पर होने वाली शङ्काओंका विस्तृत समाधान है। मू० १) है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य ।

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेदके अन्तर्गत है, ब्रह्मज्ञानार्थ कुछ महर्षियोंने एकत्र होकर ब्रह्म जीव, माया और तत्प्रपञ्चके विषयमें जो संवाद किया है वही इस में ग्रथित है, ज्ञानसम्बन्धी सूक्ष्मातिसूक्ष्म-बातों की इस मे बडी गहन आलोचना की गई है। सम्पादक ब्रा० स० ने इस पर संस्कृत और हिन्दी भाषामें विस्तृत भाष्य किया है उपनिषदों पर इससे अच्छा भाष्य और नही है। मू०.।॥)

पूजाफूल ।

यह पुस्तक अभी हाल ही मे छपी है इसमें पंडित मुरलीधर पाण्डेय और पंडित मुकुटधर पाण्डेय की लिखी हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी ७४ कविताओं का संग्रह है कविता प्रेमियो—विशेष करके खडी वोली की हिन्दी कविता के रसिकोंको—यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये इस के देखनेसे मालूम पडेगा कि उत्तम कविता किसे कहते हैं। हिन्दी कविताओंका ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कही नही छपा। मूल्य ॥)

भारतीय आख्यान ।

भारतके प्राचीन पुरुषोंके जीवनचरित्र जितने ही पढ़े जांय उतना ही उनसे लाभ होता है इस समय हम लोगों के पास जो महत्त्व की सामग्री मौजूद हैं वह प्राचीन लोगों के आख्यान ही हैं आदर्श के विना मनुष्य गुणी नहीं होता और लक्ष्यके विना वेध नहीं होता यदि हम लोग भारतवर्ष को फिर उसी पूर्व गौरव पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं तो हमे भारतीय आख्यान पढ़ना चाहिये इसमें राजपूतों की वीरता और कई ऐतिहासिक पुरुषोंकी जीवन-घटनायें भी हैं मू० ।)

पुस्तकें मिलनेका पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा ।



सुधासिन्धु के विषयमें ब्राह्मणसर्वस्वकी राय।

सुधासिन्धु—सुख संचारक कंपनी मथुरा के मालिक पं० क्षेत्रपाल शर्मा का बनाया सुधासिन्धु खूब प्रसिद्ध औषध है अपने गुणों के कारण इस दवाकी खूब प्रशंसा हुई है। मूल्य १ शीशी का ।।)

दद्रुगज केसरी

दाद को जड़से उखड़ने वाली दवा कीमत फी शीशी ।)

मंगाने का पता—सुख संचारक कम्पनी मथुरा

छोटे-२ बालकोंको निरोग और } **बालसुधा** { हृष्ट पुष्ट बनाने की सर्वोत्तम दवा।

बालकों को दस्त, खांसी, क्षय, सूखना आदि पेट के रोगों की मीठी स्वादिष्ठ दवा है इसके सेवन करने से बालकको किसी प्रकार का रोग होने की संभावना ही नहीं है यह पीने में बड़ी ही मीठी है कमजोर और दुबले बच्चोंको बलवान् और मोटा बनाती है उनकी पाचन क्रियाके सब विकारों को दूर करती है। हम अपनी औषधिकी अधिक प्रशंसा करना नहीं चाहते एकबार एक शीशी मंगाकर सेवन कराकर परीक्षा कीजिये १ वर्ष के बच्चे से लेकर पूरे जवान आदमियों तक के लिये उपकारी है। बच्चों को खिलाने और कपड़ों के खर्च करने की अपेक्षा इस दवा को मंगाकर खिलाना उनका सच्चा हित करना है। कीमत फी शीशी ।।।)

वर्त्तमान वर्ष की जन्त्री मंगाने से भेजते हैं।

मंगाने का पता—

क्षेत्रपाल शर्मा मालिक,

—सुखसञ्चारक कम्पनी मथुरा।

विशेष विज्ञप्ति ।

सम्पूर्ण ग्राहक महाशयों से निवेदन है कि कागज की अत्यधिक तेजी के कारण ब्रह्मप्रेस इटावा की छोटी २ पुस्तकों के कमीशन में कुछ परिवर्त्तन करना आवश्यक प्रतीत हुआ है अबसे)। और)॥ वाली पुस्तकें १) और २) सैकड़े न दी जा सकेंगी इन पुस्तकोंके मंगानेवाले महाशयोंको)। वाली १॥) और)॥ मू० वाली पुस्तकें ३) सैकड़ा दी जांयगीं, युद्धसे पहिले कागज सस्ता था उस समय पूर्वोक्त नियम के पालन करने से हानि न होती थी, वर्त्तमान में कागज की तेजी से उस नियम का पालन करना असम्भव है, पुस्तक मंगाने वाले महाशयों को यह भी ध्यान रखना चाहिये कि इस प्रेसकी पुस्तकोंमें कागज भी अच्छा देशी चिकना, पुष्ट लगाया जाता है अतः पहिले के नियमानुसार देने से तो लागत भी नहीं पड़ सकती, और युद्ध समाप्ति तक कुछ न कुछ असुविधायें सभी को भोगनी पड़ेंगी अतः ग्राहकगण इस वात का विचार न करें, अन्य पुस्तकों के मूल्य में अभी किसी प्रकार का परिवर्त्तन नहीं किया गया है।

सूचना ।

निम्नलिखित पुस्तकें निवट गईं हैं इस लिये थोड़े दिनों तक इन पुस्तकों के लिये कोई महाशय आर्डर न भेजें छपने पर इस की सूचना सब महाशयों को इसी पत्र में दी जायगी।

१–सनातन हिन्दूधर्मव्याख्यान दर्पण उत्तरार्द्ध ।
२–आर्यमत निराकरण प्रश्नावली ।
३–श्राद्धमीमांसा ।
४–मूर्त्तिपूजा मण्डन ।
५–सनातनधर्मप्रश्नोत्तरावली ।
६–धातुपाठ ।
७–दर्शपौर्णमास पद्धति ।
८–यज्ञपरिभाषासूत्र संग्रह ।
९–अष्टाध्यायी सटीक ।
१०–सतीधर्मसंग्रह ।

षोडश संस्कारविधि



हिन्दी पत्रोंकी सम्मतियां

(हिन्दी समाचार १६ सितम्बर सन् १६१६)

सनातन धर्म ... प्रसिद्ध विद्वान् श्रीमान् पं० भीमसेन शर्मा इटावा निवासी द्वारा सम्पादित प्रकाशक ब्रह्मप्रेस इटावा आकार बडा पृष्ठ प्रस्तावना ६६ और मूल पुस्तक की पृष्ठ संख्या ३३६ मू० २) हिन्दूधर्म का आधार जिन १६ संस्कारों पर रक्खा गया है उसी की विस्तृत व्याख्या इस पुस्तक द्वारा की गई है। व्याख्या ही क्या वल्कि १६ संस्कारों की विधि का इसमें पूर्ण रूप से उल्लेख किया गया है। ऊपर यदि संस्कृत में मन्त्र दिये गये हैं तो साथ ही हिन्दी भाषा में उस का अर्थ दे दिया गया है इसलिये इस पुस्तक द्वारा हिन्दी भाषाभाषी भी लाभ उठा सकते हैं। जन्म से मरण पर्यन्त के संस्कारों का विद्वान् लेखक ने जिस रीति से प्रतिपादन किया है उस के लिये विद्वान् ग्रंथ कर्ता प्रत्येक सनातन धर्मावलम्वी की ओर से धन्यवाद के पात्र हैं। पुस्तक क्या है मानो एक प्रकार से हिन्दू धर्मकी निधि है यद्यपि गौतमस्मृति में ४० संस्कारों की आवश्यकता वताई गई है अंगिरा ऋषि ने २५ संस्कारों का उल्लेख किया है परन्तु आलोच्य पुस्तकमें व्यास स्मृति के कहे अनुसार १६ संस्कारों पर ही पूर्ण रूपसे प्रकाश डाला गया है। उपाध्यायों और पुरोहितोंको इसके द्वारा वड़ी सहायता प्राप्त हो सकती है क्योंकि गर्भाधान संस्कारसे लेकर मृत्यु काल तक के संस्कारों का इस पुस्तक में ऐसी उत्तमता से वर्णन किया गया है कि उसकी प्रशंसा किये वगैर हम नही रह सकते कर्मकर्ताओं को यह पुस्तक सदा अपने पास रखनी चाहिए क्योंकि वाद विवाद उपस्थित होनेके समय इस पुस्तक द्वारा आसानी से फैसला हो सकता है परन्तु यदि प्रत्येक संस्कार को जुदा २ ट्रेक्टों के रूप मे प्रकाशित किया जाय तो उससे सर्व साधारण भी लाभ उठा सकते हैं छपाई सुन्दर है

(मनोरमा मासिकपत्रिका अलङ्कार १ ध्वनि ८)

दूसरी पुस्तक 'षोडश संस्कार विधि, है। इसकी पृष्ठ-संख्या ३३६ और मूल्य २) है। इसके रचयिता भी पं० भीमसेन जी ही हैं। गर्भाधान से लेकर विवाह पर्यन्त, आपने १६ संस्कारों की विधिको वड़ी खूवी के साथ लिखा है। यह पुस्तक पारस्कर गृह्य सूत्रके अनुसार लिखी गई है। इसी ढंगकी एक पुस्तक केवल संस्कृत में, " दशकर्म पद्धति " नयनीताल में भी छपी थी। अव भी शायद वह मिलती है. उसकी अपेक्षा पण्डित जी की यह कृति वड़ी अच्छी और काम की है। आप की कर्मकाण्डविषयिणी विज्ञता का यह पुस्तक समुज्ज्वल प्रमाण है। परिश्रम को देखते हुए ऐसी काम की पुस्तक का २) मूल्य वहुत थोड़ा प्रतीत होता है। कर्मकाण्डी पण्डितों का इस पुस्तक को अपने पास रखना वड़ा आवश्यक है।

REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तद्दर्शने शास्त्रपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	मेष वैशाख सौर वि० १९७४ अप्रैल १९१७	अङ्क १

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।



ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≤) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≤) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

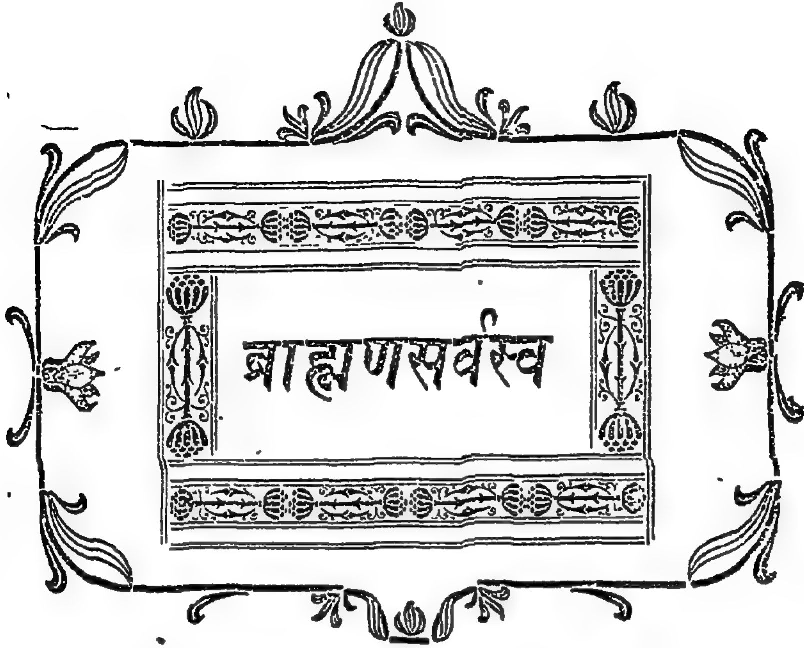
(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रबन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बंटाइ एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नही बांटे जायगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	मेष वैशाख सौर वि० १९७३ अप्रैल १९१७	अङ्क ४

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

वैश्वदेवीं सूनृतामारभध्वं शुद्धाभव-
न्तोयज्ञियासः पावकाः । अतिक्रामन्तोदु-
रितानिविश्वा शतंहिमाःसर्ववीरामदेम ॥

अन्वयः—ऋषिराह हे मनुष्याः। यूयं सूनृतां प्रियां सत्यां वैश्वदेवीं सर्वेन्द्रियसाक्षिणीं विश्वेदेवदेवताकां वा वाचं वक्तुमारभध्वम्। अर्थादनृताप्रियवागुच्चारणाद्विरमत। तया सत्यया वाचा शुद्धा अनिन्द्याः सन्तो यज्ञियासः—यज्ञानुष्ठानं कुर्वन्तः पावकाः परलोके पवित्रा भवथ। एवं विश्वा सर्वाणि दुरितानि दुर्गतिप्रापकाणि कर्माण्यतिक्रामन्तोऽतिक्रममाणा निखिलपुत्रपौत्रादिवीरैर्युक्ताः सन्तो वयं शतं हिमाः शतं वर्षाणि मदेम हर्षपुरस्सरं जीव्यास्मेतीच्छत॥

भावार्थः—वेदवक्ता ऋषि कहते हैं कि हे मनुष्यो! तुम लोग (सूनृतां वैश्वदेवीमारभध्वम्) विश्व नाम सब विषयों के प्रकाशक इन्द्रिय जिस के साक्षी हैं अर्थात् शिर के सातों इन्द्रिय छिद्रों में जिस की ध्वनि प्रतिध्वनित होती है, अथवा विश्वेदेव नामक देव जिस के देवता नाम नायक हैं ऐसी सत्य और प्रिय वाणी के बोलने का आरम्भ करो अर्थात् असत्य तथा अप्रिय भाषण छोड़ो। उस सत्यप्रिय वाणी से (शुद्धा भवन्तो यज्ञियासः पावकाः) शुद्ध निर्दोष होते हुए विधिपूर्वक श्रद्धा के साथ यज्ञानुष्ठान करके परलोक मे पवित्र हो जाओ, इस प्रकार (विश्वा दुरितान्यतिक्रामन्तः) दुर्गति को प्राप्त कराने वाले सब दुराचारों को छोड़ते हुए तुम लोग (सर्ववीराः शतं हिमा मदेम) सब पुत्र पौत्रादि वीरों से युक्त हुए सौ वर्ष के आयु पर्यन्त सब इन्द्रियों सहित अधिक निर्बल न होते हुए आनन्द पूर्वक जीवित रहैं ऐसी इच्छा वा चेष्टा करो। यह किसी लुप्त हुई वेदशाखा का मन्त्र निरुक्त अ० ६। १२ से लिखा है इसी से पता नही है॥



पाठक महाशयों को स्मरण होगा कि ब्रा०स० भाग १४ अ० १ मे हमने भारत मित्र में छपी वर्णाश्रम चर्चाकी समालोचनाकी थी, हमारी वह समालोचना भा० मि० सम्पादक को अनुचित ज्ञात हुई ऐसा अनुमान है, इसी कारण उनने वैशाख शु० २ सोमवार सं० १९७४ के साप्ताहिक पत्रमें ४॥ कालम विस्तृत लेख पुनः छपाया है।

अब इसका समस्त उत्तर हम देना आवश्यक नहीं समझते किन्तु खास २ अलग बातों का अति संक्षेप से समाधान लिखे देते हैं ॥

हमारा वह लेख भा० मि० सम्पादक के दोष दिखाने के लिये कदापि नहीं था किन्तु जैसे भारत देश हित के विरोधियों के लेख को सं० भा० मि० देश हितका विरोधी मान के उसका खण्डन करते हैं. वैसे हमने भी उस लेख को धर्म शास्त्र की मर्यादा से किसी अंश में विरुद्ध समझ कर उस पर समालोचना की थी, यही अभिप्राय पहिले था और यही अब है मनुष्य के अल्पज्ञ होने से भूल सभीसे हो सकती है, वह दोष नहीं कहा जाता । हम यह भी मानते हैं कि भा०.मि० सं० अब भी न मानें तो भी हम पाठकों को विश्वास दिलाते है कि किसी के भी साथ लेश मात्र भी द्वेष हमारे मन में नहीं था न है, किन्तु धर्मानुकूल अभिप्राय समझाने के लिये सभी लेख वा पुस्तकादि की आलोचना की जाती है ॥

"हिन्दुसमाज चार वर्णों में विभक्त है,, इस लेख में यदि " विभक्त था " ऐसा लिखा होता तो सर्गारम्भ में अन्तराल जातियों के न होने से भा० मि० का (ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्०) इत्यादि समाधान बन सकता था परन्तु अब तो अन्तराल जातियां मनु आदिके समय से विद्यमान हैं, । जो किसी वर्ण में नहीं मानी जा सकीं, इसी लिये उन को चार वर्णों से भिन्न अन्तरप्रभव, अन्तराल वा निषादादि पदों से मन्वादि ने माना है निषादोत्पत्ति के विकल्प की भी व्यवस्था हो सकती है ॥

हमने पञ्चम निषादको कहीं वर्ण नहीं लिखा किन्तु अन्तराल लिखा है, ब्राह्मणादि के श्वेतादि वर्ण नाम वस्त्रों के रंग हैं तब अन्तराल निषादादि जातियों के वस्त्रोंका रंग मिश्रित संकर हो सकता है क्योंकि वह स्वयं भी वर्णों का संकर है किन्तु एक वर्ण नहीं है ॥

आर्य और म्लेच्छ जातियों के विषय में हमारा अभिप्राय यह था कि प्रथम सृष्टि के आरम्भ में चार ही वर्ण उत्पन्न हुए थे प्रारम्भमें म्लेच्छ जातियां भी न थीं, किन्तु पीछे इन्हीं चार वर्णों में से-जो २ क्षत्रियादि लोग किसी म्लेच्छ देश में किसी भी कारण पहुंच गये वे अपने धर्म कर्म को सर्वथा भूल जाने और धर्मोपदेष्टा ब्राह्मणोंका संग छूट जाने से म्लेच्छ हो गये, यह विचार, ऐसा न माना जाय तो म्लेच्छ जातियों की सत्ता सृष्टि के आरम्भसे पृथक् स्वतन्त्र माननी पड़ेगी । महाभारत आदिपर्वके ययात्युपाख्यानमें लिखा है कि राजा ययातिने अपने तुरु नामक पुत्र को देश निकाले का दण्ड दिया था, तब भारतवर्षसे अन्यत्र अवश्य भेजा गया होगा हमारा अनुमान है कि वह तुरु जिस प्रान्त में जाकर रहा वहां क्षत्रिय तेजके कारण उसका आधिपत्य हो गया, उस प्रान्तका नाम तुरु स्थान हो गया, और तुरु स्थानका अपभ्रंश तुर्किस्तान हुआ, तुरुकी सन्तति-तुर्क कहायी, (स्वकर्मणांच त्यागेन जायन्ते वर्णसंकराः) इस

प्रमाण के अनुसार शुद्ध वर्ण संकर भी सिद्ध हो जायगा। इसी के अनुसार अन्य म्लेच्छ जातिया भी वर्ण विगड के हुई हैं, पीछे ईसामसीह वा मुहम्मद साहवादि का उन्ही वशों में जन्म होने से उन २ के मत चल गये। यदि हमारा यह अनुमान किसी भी कारण सत्य न निकले, और उन २ जातियों को करोडों अरवों वर्षों से स्वतन्त्र सत्ता वा सृष्टि युक्ति प्रमाणसे सिद्ध हो जाय तो हमें वैसा मान लेने में दुराग्रह न होगा, क्योंकि हमारा अनुमान है, दुराग्रह नही है॥

यद्यपि जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने के अनुरोधसे मानना पडता है कि जो २ ब्राह्मण क्षत्रिय अपने धर्म से पतित होकर ईसाई मुसलमान, प्राचीन काल में हो गये वा अब हो जाते हैं वे अपने उसी शरीर से पूरे २ म्लेच्छ नही हो जाते किन्तु उन में कुछ आर्यत्व भी वना रहता है, केवल आर्यों के साथ अव्यवहार्य हो जाते हैं इसी कारण प्रायश्चित्तों द्वारा फिर आर्य कहाने योग्य हो सकने पर भी पुनः व्यवहार्य नहीं हो सकते। तथापि उनकी आगे २ होने वाली सन्तति भी आर्य कही जा सकती है इस बात के मानने को हम तैयार नहीं है, मान लो कि अव से दश वीस सहस्र वर्ष पहिले कोई २ आर्य किसी भी प्रकार उन २ म्लेच्छ देशो मे पहुंच गये जहां वेद के प्रचार और विद्वान् ब्राह्मणों के सग वा उपदेश का नाम निशान भी नही था तो ऐसे आर्यों की सन्तति ही धीरे २ पूरी म्लेच्छ हो गयी और जब उन्ही के वशों में मूसा, ईसा, तथा मुहम्मद प्रकट हुए तव से उन २ का पृथक् २ मत चल गया और मूसाई ईसाई आदि कहाने लगे मनु० अ० १०। ४४ मे यवन शब्द स्पष्ट ही लिखा है कि क्षत्रिय विगड़के यवन म्लेच्छ जाति हुई है। अव उन को आर्य नही कह सकते, जब ऐसा हो सकना असम्भव नहीं किन्तु सम्भव है तब हमारा लिखना समूल हो सकता है। इस अंश में हमारे लिखने का आधार मनु० अ० १०। ४४ यवन शब्द है और यह भी है कि जब सृष्टि के आरम्भ मे चार ही वर्ण हुए थे, उस समय अन्य कोई भी मनुष्य जाति नही थी और पीछे २ क्रमशः अन्य २ जातियां बनी ऐसा मान लेने पर उन्ही चार वर्णों की विगड़के अन्य २ जातियां बनीं यह स्वतः सिद्ध हो जायगा, जो लोग वेद को मानते हैं उन को ऐसा ही मानना पड़ेगा और अन्य म्लेच्छ जातियों की सत्ता पहिले से मान लेने पर वेदको एकदेशी मानना पड़ेगा॥

अग्निपुराण में जो निषाद की उत्पत्ति राजा वेणु की जङ्घा से हुई लिखी है, संक्षेप से उस का समाधान यह है कि एक २ ब्राह्मकल्प मे प्रत्येक मन्वन्तर के अन्तमे अवान्तर प्रलय होता और प्रत्येक मन्वन्तर के आरम्भ मे पुनः २ सृष्टि की रचना होती है, पहिले मन्वन्तर के वर्ण और अन्तराल नहीं रहते। तब किसी मन्वन्तर में अग्निपुराण के प्रमाणानुसार निषाद की उत्पत्ति मानलें तो अन्य मन्वन्तर में मनुके अनुसार उस की उत्पत्ति मान सकते है, तव इस में कोई दोष नही आ सकता॥

हम यह अवश्य मानते हैं कि वर्णसंकरों के भिन्न होने न होने पर हम भी लिख सकते हैं और हमारे मित्र संपादक भा० मि० भी लिख सकते हैं, परन्तु हमने श्रुति-स्मृति के प्रमाण के आधार पर संकर जातियों को चार वर्णों से भिन्न पांचवां लिखा था किन्तु अपनी युक्तिमात्रसे नहीं, युक्ति केवल प्रमाणरूप आधार की पुष्टि के लिये दी थी। सं० भा० मि० ने उन मूल प्रमाणों पर कुछ भी व्यवस्था न दे कर केवल युक्तियों के खण्डन में श्रम किया है। जैसे मनुष्य एक सामान्य जाति है उस के अवान्तर जातिभेद ब्राह्मणादि हैं वसे पशु भी एक सामान्य जाति हैं, घोड़ा गधादि उस की विशेष अवान्तर जातियां हैं, इस से संकरता दोनों को तुल्य है, हमारी युक्तियां प्रमाणानुसारिणी हैं, पर हमारे मित्र की युक्तियों का कोई आधार हमें नहीं दीख पड़ा यही बड़ा भेद है। आगे संपादक भा० मि० ने लिखा है कि विवाहिता वैश्या वा शूद्र से उत्पन्न ब्राह्मण के पुत्र को पिता के वर्ण में न सही तो माताके वर्णमें अवश्य ही स्थान मिलना चाहिये इस पर हम यही कहना उचित समझते हैं कि किसी संकर जाति को पिता वा माता किसी के वर्ण में स्थान यदि मन्वादि महर्षियों ने नहीं दिया तो इस में हमारा क्या अपराध है? हम तो ऋषि सम्प्रदाय के अनुयायी होना अपना कर्त्तव्य मानते हैं। कल्पना करो कि किसी शूद्र मनुष्य के साथ किसी ब्राह्मणी ने गान्धर्व विवाह कर लिया और दोनों एक दूसरे से राजी भी हो गये तो इन दोनों का सन्तान मातृवर्ण का मान लिया जाय तो ब्राह्मण होना चाहिये, परन्तु मन्वादिने ऐसे सन्तान को चाण्डाल माना है। हमें विश्वास है सं० भा० मि० भी धर्म शास्त्रों को मानते हैं इससे उनको चाहिये कि श्रुतिस्मृतिका का ध्यान रखते हुए जो कुछ लिखा करें तो अच्छा है॥

हमने सं० भा० मि० को जो किसी अंश में आ० समाजानुगामी कहा था वह विचार गुण कर्म से वर्णव्यवस्था मानने पर कहा था, हम भी जानते मानते हैं कि अब तक आ० समाजियों से भिन्न किसी भी सनातनधर्मी ने गुण कर्म से वर्ण व्यवस्था नहीं मानी और यदि आ० समाज का प्रादुर्भाव हो जाने पश्चात् किन्हीं ने मानी भी हो तो हम उन सभी को उस अंश में उन आ० समाजियों का अनुगामी अवश्य समझेंगे। हम भी मानते हैं कि सं० भा० मि० प्रायः अनेकांशों में सनातनधर्मी हैं, और किसी विषय में अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट करना मनुष्य का दोष नहीं कहा जा सकता, यदि उक्त महाशय मानलें और प्रकाशित करदें कि हम अपने कथनको शास्त्र-प्रमाणानुकूल होने का दावा नहीं करते, किन्तु हमने अपना स्वतन्त्र विचार प्रकट किया है तो हमारा कुछ भी विवाद उनके साथ नहीं है॥

हमारा उद्देश्य भारत मित्र की समालोचना करनेका केवल यही था कि मन्वादि धर्मशास्त्रकारों ने जाति से वर्णव्यवस्था मानी है, इस के लिये धर्मशास्त्रों में दो चार प्रमाण नहीं किन्तु सैकड़ों प्रमाण हैं—

विद्या तपश्च योनिश्च—एतद्ब्राह्मणलक्षणम् ॥
विद्यातपोभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मणएवसः ॥

इति महाभाष्ये

इस में तपः शब्द से सन्ध्योपासनादि कर्म लिया जाता है और विद्या तो गुण है ही, इस कारण गुण कर्म से हीन ब्राह्मण जातिमात्र से ब्राह्मण कहा गया है ॥

शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्यात् ॥ मनु० अ० २ ।

ब्राह्मणके बालक का नाम उत्पत्तिसे ग्यारहवें दिन शर्मान्त रक्खे दश बारह आदि दिन के बालक में कोई भी गुण कर्म सिद्ध नहीं होता किन्तु उपनयनके पश्चात् उद्योग करनेपर गुण कर्म होसकते हैं, शर्मान्त नाम रखनेसे उसको ब्राह्मण मानलेना सिद्ध है।

प्राणभृत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ।
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः ॥
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवेदिनः ॥ मनु०

प्राणधारियों में मनुष्य श्रेष्ठ है. मनुष्यों मे ब्राह्मण श्रेष्ठ है और ब्राह्मणों में विद्वान्, विद्वानोंमें कृत बुद्धि नाम शास्त्रानुकूल विचार रखने वाले, कृत बुद्धियों में शास्त्रानुकूल कर्म करने वाले और उन धर्म कर्म निष्ठ ब्राह्मणों में ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। यहां ब्राह्मणों की पांच कक्षा उत्तम मध्यम निकृष्ट दिखायी हैं। इनमें पहिली कक्षा के ब्राह्मण विद्या और कर्मानुष्ठानादिसे हीन होनेसे निकृष्ट होने पर भी अन्य क्षत्रियादि मनुष्यों की अपेक्षा जाति मात्र के ब्राह्मणत्व से स्पष्ट ही श्रेष्ठ कहे गये सिद्ध हैं ॥

सममब्राह्मणेदानं द्विगुणंब्राह्मणब्रुवे ।
प्राधीतेशतसाहस्र—मनन्तंवेदपारगे ॥ मनु०

ब्राह्मण से भिन्न क्षत्रियादि को दान देने से जितना फल होता है उस से द्विगुण ब्राह्मण ब्रुव को देने से होता है, शास्त्र पढ़े-ब्राह्मण को दान देने से शत वा सहस्र गुणा पुण्य होता है, और सब वेदों के पढ़ने जानने वाले ब्राह्मण को दान देने से अनन्त पुण्य होता है। विद्या रूप गुण तथा धर्मानुष्ठान से हीन ब्राह्मणों का ही नाम ब्राह्मण ब्रुव वा जाति ब्राह्मण है। इत्यादि प्रमाण सैकड़ों है जिनको लेख विस्तरभय से हमने यहां संग्रह नही किया है। अब ध्यान देकर विचार करने का अवसर है कि जो सं० भा० मि० कहते हैं कि—

स्वकर्मणांचत्यागेन जायन्तेवर्णसंकराः ॥ मनु० अ० १०

मनुजी के इस प्रमाणानुसार अपने कर्मों से हीन हो जाने के कारण ब्राह्मण यदि वर्णसंकर हो गये तो पूर्वोक्त प्रमाणों में कहे ब्राह्मण व्रुव वा जाति ब्राह्मण ठहर ही नहीं सकते तव उनको अन्य मनुष्यों से श्रेष्ठ कहना वा उनको दिये दान का द्विगुण फल कहना यह सभी खण्डित हो जाता है। यदि मनुजी के (स्वकर्मणां च त्या०) प्रमाण का वही अभिप्राय है जैसा सं० भा० मि० लगाते हैं तो मनुजी के कथन से ही उन्हीं के कहे सैकड़ों प्रमाणों का खण्डन हो जाता है। यदि सं० भा० मि० हमारे तुल्य ही मन्वादि धर्म शास्त्रों को अविकल प्रमाण मानते हैं तव उनके ऊपर इस बात का भार आ गया कि अपने पक्ष में आने वाले दोषों से बचने के लिये मनु के उन प्रमाणों की संगति लगावें जो उनके पक्ष से विरुद्ध हैं।

मनु १० । ४३ पर मेधातिथि ने लिखा है कि (यदुक्तंस्वकर्मणांचत्यागेनेतितस्यैवायंप्रपंचः) अर्थात् अपने कर्मों के सर्वथा त्याग से क्षत्रिय लोग यवनादि नाम के संकर होगये। इसके अनुसार हमारे पक्ष में उक्त (स्वकर्मणां च त्यागेन०) प्रमाण का अर्थ यह है कि अपने कर्मों का सर्वथा त्याग होजाने पर ब्राह्मणादि वर्ण भी वर्णसंकर हो जाते हैं। मेधातिथ्यादि मनुके भाष्यकारोंने उक्त वाक्य का अर्थ यह लिखा है कि उपनयनादि अपने कर्मों के त्याग से ब्राह्मणादि वर्णसंकर हो जाते हैं, वेदमन्त्रों से उपनयन होना तथा गायत्री मन्त्र का उपदेश होना यह अव तक मूर्ख ब्राह्मणों में भी वना है। उपनयन हो जाने पर उन को ब्राह्मणत्व का अभिमान वना रहता है। उपनयन हो जाने पर ग्रामादि के अन्य लोग ब्रह्मभोजादि के समय उनको निमन्त्रण देते हैं, ब्राह्मण बुद्धिसे आदर सत्कार करते हैं, अनेक ब्राह्मण मूर्ख होने पर भी, स्नान करके सूर्य नारायण को अर्घ देते हैं, यही उनकी सन्ध्या है। मुख्य बात यह है कि उपनयन के वाद वे अपने को ब्राह्मण मानते और अन्य लोग भी उनको ब्राह्मण मानते हुए पांवलागन कहते और ब्राह्मण उनको आशीर्वाद देते हैं, इत्यादि रूप जातिमात्र का अल्प ब्राह्मणत्व उनमें विद्यमान अवश्य रहता है। मुख्य बात यह है कि जिस कक्षाके ब्राह्मणत्व का अभिमान जिनमें जब तक विद्यमान रहता है वा रहेगा तव तक ब्राह्मणत्व के कुछ कर्म अवश्य रहते हैं और रहेंगे इससे कर्मों का सर्वथा त्याग नहीं हो सकता। उत्तरीय भारत में कान्यकुब्ज नाम से प्रसिद्ध ब्राह्मण मण्डली में गौड़ सनाढ्यों की अपेक्षा ब्राह्मणत्व का अभिमान अधिक है, इसी कारण वास्तवमें कान्यकुब्ज ब्राह्मण अन्य सहयोगियों से श्रेष्ठ हैं क्योंकि यथोचित ब्रह्मर्षि सन्तान होने का अभिमान ही दुराचारों से बचाता और सदाचारों में प्रवृत्त करता है॥

यद्यपि ब्राह्मणों में ब्राह्मणत्व की सुव्यवस्थित उत्तम कोटि के अभिमान की मात्रा अब नहीं रही जैसी ब्रह्मर्षियों में हुआ करती थी वैसी अब के ब्राह्मणों में वा क्षत्रियादि में नहीं रही यही अवनति का स्वरूप है। तथापि जिस किसी प्रकार का

ब्राह्मणत्वाभिमान बना है वैसे ही वे ब्राह्मण भी अवश्य बने हैं। अब उपनयनादि छूट जायगा तो ब्राह्मणत्वाभिमान भी स्वयमेव नष्ट हो जायगा वैसे व्रात्य ब्राह्मणादि अवश्य एक प्रकार के वर्णसंकर माने जायगे वैसे ब्राह्मणादि यदि कहीं होंगे तो वे वर्णसंकर भी अवश्य माने गये होंगे, इस से ब्राह्मण ब्रुव वा जाति ब्राह्मणों का वर्णसंकर होना सिद्ध नही होता। विशेषरूप से श्रद्धा विधान के सहित सन्ध्योपासन और पञ्चमहायज्ञादि कर्मों का यथावत् न रहना ही उन का कर्म धर्म रहित होना कहा जायगा। जैसे हमने अपने पक्ष में मनुके प्रमाणोंकी संगति लगाकर दिखा दी वैसे ही यदि सं० भा० मि० के कथनानुसार गुण कर्म से हीन जाति ब्राह्मण वास्तव में शूद्र वा वर्णसंकर हो गये तो संगति लगाकर उनको उत्तर देना चाहिये। अथवा असत्पक्षाग्रह छोड देना चाहिये॥

सं० भा० मि० ने लिखा है कि "ही पद से (पदसे नहीं शब्दसे कहिये) अर्थात् हमने जहां ही पदसे–ऐसा लिखा था वहां आप कहते हैं कि पदसे लिखना ठीक नही किन्तु ही के साथ शब्द लिखो। हमारा कहना यह है कि पद और शब्द ये दोनों ही संस्कृत शब्द हैं, ही को यदि संस्कृत माना जाय तो अन्य निपातों के तुल्य इस की भी पदसंज्ञा अवश्य मानी जायगी तब पद लिखना ठीक ही है और यदि ही संस्कृत नहीं है तो ही को शब्द भी नहीं कह सकते क्योंकि संस्कृत शब्दों को ही वैयाकरण शब्द मानते हैं। और संस्कृत से विगड़े हुए अपभ्रंशों को विद्वान् लोग अपशब्द कहते हैं। हमारी समझ में अशुद्धियों का विचार छेड़नेसे मुख्य विषयका विचार छूटता है, भाषा लिखने की शैली लोगोंमें भिन्न २ है जो शैली जिसको अपने अनुकूल न दीख पडी उस को वह अशुद्ध कहे तो हम उसे उचित नहीं कह सकते। पहिले वा इस वार के भा० मि० के लेख में हमें भी अनेक ऐसे वाक्य दीख पड़े जिन को चाहते तो अशुद्धि के प्रकार से दिखा सकते थे, पर हमने वैसा लिखना उचित नहीं समझा और न समझते हैं। वर्त्तमान समय के संस्कृत के पण्डितों में किसी बात पर शास्त्रार्थ छिड जाता है तो वे लोग एक दूसरे की अशुद्धियों पर लड़ने लगते हैं, ऐसे पण्डितोंको नूतन शिक्षा प्राप्त लोग असभ्य वा तुच्छ समझते हैं, परन्तु अंगरेजी भाषा यद्यपि हमने नही पढ़ी तो भी हमने अंगरेजी पढ़े शिक्षित बी० ए० एम० ए० में उत्तीर्ण मित्रों से सुना है कि अंगरेजी पढ़े लोगों में जब किसी विषय पर विचार होता है तब अंगरेजी भाषा की अशुद्धियों पर कोई भी ध्यान नही देता किन्तु वक्तव्य विषय की उत्तमता मध्यमता पर ध्यान देते हैं। हमारे मित्र सं० भा० मि० भी अंगरेजी में शिक्षित हैं तो भी उन ने अच्छी शैली पर ध्यान नही दिया। इस अंश में हिन्दी समाचार पत्रोंके सभी संपादकोंको हम साक्षी कर सकते हैं कि शब्दों की अशुद्धियोंके पकडनेके विषयमें हमारा लिखना अनुचित बताया जाय तो उस अंश में हम अपनी त्रुटि स्वीकार कर लेंगे॥

इस वर्णाश्रम चर्चाके प्रसंगमें मुख्य विवादास्पद विषय यही था और है कि कोई ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र मनुष्य अपने २ वर्ण के माता पिता के रजवीर्य से उत्पन्न हुआ अपने उसी शरीर से अन्य वर्ण के गुण कर्म धारण करने मात्र से अन्य वर्ण हो सकता है वा नहीं तथा ऐसा पहिले होता था वा नहीं ? इस पर हमारा कहना तो यह है कि आमतौरसे ऐसा पहिले कदापि नहीं होताथा और अबभी नहीं होना चाहिये सं० भा० मि० का भी यदि यही अभिप्राय है तब तो हमारा उनका विवाद इसी पर समाप्त होगया। महाभारत के द्रोणाचार्य्य जी का उदाहरण विशेष ध्यान देने योग्य है कि उन्होंने राजा युधिष्ठिर जी से कहा था कि जब तक मैं संग्राम के बीच शस्त्र धारण किये युद्ध करता रहूंगा तब तक मनुष्य की तो बात ही क्या हैं किन्तु देवता लोग भी मेरे साथ युद्ध करें तो भी मुझे कोई मार नहीं सकता और न पराजित कर सकता है इससे सिद्ध है कि द्रोणाचार्य्यमें उत्तम कोटिस्थ वीर क्षत्रियके गुण कर्म विद्यमान थे तो भी वे और उनके वंशके लोग क्षत्रिय नहीं माने गये। उनके वंशके ब्राह्मण अब भी विद्यमान हैं राजा युधिष्ठिर तथा भीष्म पितामहादिमें शमदमादि प्रायः ब्राह्मण कैसे गुण कर्म थे तथापि वे ब्राह्मण नहीं माने गये। ऐसे ही परशुरामादि अनेक प्रतापशालियों के भी उदाहरण हैं इस कारण उत्सर्ग रूपसे वा सामान्यतया उसी शरीर से वर्ण बदलनेकी चाल पहिले कभी नहीं थी, और वैसा होनेका कोई प्रमाण भी नहीं है॥

अब रहगई अपवादोंकी बात सो अपवाद सभी उत्सर्गोंके सदासे ही होते हैं यह कोई नूतन विचार नहीं है। इन्हीं उत्सर्गापवादों को सामान्य विशेष वचन भी कहते हैं। सामान्यतया जिस बात का विधान होता है विशेष दशा में उसका कहीं निषेध भी होता है। और सामान्यतया किये निषेध का विशेष दशा में कहीं विधान भी दीखता है। जैसे सन्ध्या तर्पणादि वा पञ्चमहायज्ञादि सामान्यतया नित्य कर्त्तव्य कर्मों का भी आशौच लगने पर वा अपवित्र दशादि में निषेध है। और अनुपनीत ब्राह्मण को भी वेद मन्त्रोच्चारणका उत्सर्गरूप से निषेध है परन्तु जिस अनुपनीत ब्राह्मण के बालक का पिता मर जावे उस को अपने पिता का और्ध्वदेहिक पिण्डदानादि मन्त्र पूर्वक करने का अधिकार अपवादरूप से दिया है। तथा स्त्रियों को उपनयन का विधान न होनेसे सामान्यतया वेदाध्ययन उन को निषिद्ध है, परन्तु विवाह में तथा यज्ञों में पत्नी बनकर बैठी ब्राह्मणी क्षत्रिया और वैश्या स्त्रियों को उन २ के सम्बन्धी किन्हीं २ वेद मन्त्रों के पढ़ने का विधान भी है॥

इसी ऊपर के कथनानुसार किसी विशेष कारण से कहीं वर्ण का परिवर्त्तन हो गया हो तो आश्चर्य नहीं जैसे क्षत्रिय राजा त्रिशंकु वसिष्ठ के शाप से चाण्डालभाव को प्राप्त होगया इत्यादि। विश्वामित्र का उदाहरण यहां उपयुक्त नहीं होता क्योंकि उनकी उत्पत्ति महाभारत में जो दिखायी है उससे उनमें जन्म से ब्रह्मत्व होना सिद्ध

है उसका खण्डन सं० भा० मि० ने भी नहीं किया तथा जहां विश्वामित्र का तपोबल से क्षत्रिय होना लिखा है, उसका अभिप्राय यह है कि क्षत्रिय माता से उत्पन्न होने के कारण जो क्षत्रियपन उनके शरीरमें आया था उसका तपोबलसे संशोधन किया यही अभिप्राय तपोबल से ब्राह्मण होने का मान लेने पर संगति लग जाती है, दोष कुछ नहीं आता ॥

व्यास जी ब्राह्मण से उत्पन्न हुए धृतराष्ट्र और पाण्डु क्षत्रिय अवश्य थे। इसके विषय में यदि महाभारत की उपक्रमणिका में कहा—

व्यासस्यवरदानेन समुत्पन्नास्त्रयःसुताः ।

यह श्लोक प्रमाण माना जाय तब तो धृतराष्ट्र पाण्डु और विदुर ये तीनों ही रजवीर्य से उत्पन्न हुए ही नहीं किन्तु धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों के क्षत्रिय होने का वरदान ही दिया था और क्षत्रिय उत्पन्न करनेकी प्रार्थना भी थी। और यदि किसी कारण रजवीर्य से माने जायं तो भी बीज के प्रभाव से और क्षत्रियोत्पत्ति के संकल्प से उत्पन्न हुए थे इससे वे क्षत्रिय हो गये यह भी अपवाद माना जायगा सिद्ध तपस्वी योगिराज पुरुषों के बीज में ही वैसा प्रभाव हो सकता है जिस में क्षेत्र की निकृष्टता बाधक न हो किन्तु साधारण मनुष्योंके बीज में वैसा प्रभाव कदापि नहीं हो सकता ऐसे दो चार अपवाद सामान्य नियम के बाधक कदापि नहीं हैं। सं० भा० ने मनु के दो श्लोक लिखे हैं——

शूद्रायांब्राह्मणाज्जातः श्रेयसाचेत्प्रजायते ।
अश्रेयान्श्रेयसींजातिं गच्छत्यासप्तमाद्युगात् ॥
शूद्रोब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैतिशूद्रताम् ।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यात्तथैवच ॥

हम सं० भा० मि० को धन्यवाद देते हैं कि उनने इन श्लोकोंका अर्थ सनातनधर्म के भाष्यकारों के अनुकूल किया है, आ० समाजियों की सी खेंचा खेंची का अर्थ नहीं किया किन्तु ठीक २ जैसा होना चाहिये वैसा ही किया है कि किसी ब्राह्मणने किसी शूद्र कन्या से किये विवाह द्वारा जो कन्या उत्पन्न हो उस के साथ कोई विशुद्ध ब्राह्मण विवाह करे उस विवाह से फिर भी कन्या उत्पन्न हो उस से भी शुद्ध ब्राह्मण विवाह करे तो ऐसा पांच वार होचुकने पर छठी पीढ़ीमें जो सन्तति होगी वह पिता के कुल की होगी। अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण और शूद्रा के संयोग से उत्पन्न सन्तति में जो मातृदोष की निकृष्टता आवेगी वह धीरे २ उक्त प्रकार करने से पांच

पीढ़ी बीत जाने पर छठी पीढ़ीमें निवृत्त हो जायगी। परन्तु यहां यह अवश्य ध्यान रहे कि ब्राह्मण तथा शूद्र कन्या के संयोग से उत्पन्न हुआ पुत्र अपने उसी देह से ब्राह्मण कदापि नहीं होसकता और पांच पीढ़ी तक भी होने वाले सन्तान ब्राह्मण नहीं होंगे। हमारा विवाद भी इस अंश में नहीं था न है कि कालान्तर में भी परिवर्त्तन न हो सकता हो। हमारा कथन केवल यही था और है कि कोई अन्य २ वर्ण के माता पिता के रज वीर्य से उत्पन्न हुआ वा अपने एक ही वर्णके माता पितासे उत्पन्न हुआ गुण कर्म का चढ़ाव उतार होने पर अपने विद्यमान शरीर से बदल नहीं सकता इसके विरुद्ध अबतक कोई भी प्रमाण नहीं है। यहभी ध्यान रखना चाहिये कि ऊपर के दो श्लोकों द्वारा छठी पीढ़ी में जो दोषनिवृत्ति दिखाई है वह रजोदोष की निवृत्ति के काल और प्रकारका एकविध नियम दिखाया है किन्तु गुण कर्म से वर्ण परिवर्त्तन का कुछ भी प्रसंग यहां नहीं है॥

हम भी मानते हैं कि मनु अ० १० में पांचवें वर्ण का निषेध है इसी से हम भी चार ही वर्ण मानते हैं पर उन्हीं मनु जी ने अन्तरालोंको वर्णों से भिन्न स्वयं लिखा है वैसा ही मनु के प्रमाणानुसार हम ने भी लिखा था मनमाना विचार हमारा कदापि नहीं है॥

अब रहा सं० भा० मि० ने जो मनु अ० १० के ६। ७। ४१। ४२ श्लोक लिखे हैं उन में भी कुछ विवाद की बात नहीं है क्योंकि ६। ७ श्लोकों का अभिप्राय यही है कि ब्राह्मणादि ने क्षत्रियादि की अनुलोम कन्याओं में उत्पन्न किये पुत्र अपने २ पिता के सदृश होते हैं किन्तु पिता के वर्णके नहीं होते यही बात छठे श्लोकको टीकामें कुल्लूक भट्ट ने लिखी है। सदृश शब्द का प्रयोग कुछ भेद होने पर होता है। महाभाष्य में कहा है कि (सति किञ्चिद्भेदे तुल्यमित्युच्यते) कुछ भेद होने पर तुल्यता कही जाती है। मनु० १०। के ५ पांचवें श्लोक में (जात्याज्ञेयास्तएवते) ब्राह्मण ब्राह्मणी के विवाह से ब्राह्मण ही सन्तान होगा वहां कुछ भी भेद न होने से तुल्य वा सदृश नहीं कहा जायगा। माता के वर्ण के सन्तान हो जाते हैं यह किन्हीं लोगोंका मत है, इसमें हमारा कहना यही है कि यदि यह ठीक हो तो मातृवर्ण के सदृश कह सकते हैं, सदृश कहने पर भी कुछ संकरता दोष का भेद उनमें अवश्य रहैगा किन्तु क्षत्रिय माता पितासे उत्पन्न हुए शुद्ध क्षत्रिय के साथ सर्वांश में तुल्य वह नहीं होगा जो ब्राह्मण से क्षत्रिय कन्या में हुआ है। और मनु जी ने जब अनन्तर अनुलोम कन्याओं में द्विजों से उत्पन्न पुत्रों को पिताओं के सदृश कहा है तब ब्राह्मण और क्षत्रिया से उत्पन्न पुत्र को सं० भा० मि० का क्षत्रिय लिखना मनु जी के कथन से स्पष्ट विरुद्ध है। अब इस लेख को यहीं समाप्त किया जाता है। यदि सं० भा० मि० ने स्वपक्ष पोषणार्थ कोई प्रबल प्रमाण उपस्थित किया तो यथोचित कुछ लिखा जायगा। अन्यथा आगे कुछ नहीं लिखेंगे। इति शम्॥

वेदसर्वस्वालोचन।

(गताङ्क से आगे)

पृष्ठ ४० से लेकर पृष्ठ० ४४ तक में वैदिक मुनि ने मूलवेद और वेद की शाखाओं के विषय में स्वा० दयानन्द जी के कल्पित मन्तव्य का बड़ी योग्यता से निराकरण किया है कि उनका वेद विषयक मत कल्पित मनमाना निर्मूल है। तदनन्तर वेद की शाखाओं के विषय में अनेक ग्रंथों के अनेक मत दिखाये हैं कि ११३१। ११२७। ११३० ११६। ११३४ भिन्न २ ग्रन्थकारों ने पांच प्रकार की संख्याओं में विभक्त वेद शाखाओं का विभाग माना है। इस पर विशेष विचार करना व्यर्थ है। क्योंकि जब वे सब शाखा विद्यमान नहीं हैं किन्तु अधिकांश लुप्त हो गयीं तब (नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्) के अनुसार हम को विद्यमान वेदों पर विशेष विचार करना चाहिये।

ऋग्वेद की शाकल वाष्कल आदि शाखाओं सम्बन्धिनी गवेषणा करते हुये वैदिक मुनि ने बहुत विस्तार से लिखा है। उसी के साथ संज्ञान सूक्त और महानाम्नीसूक्त तथा वालखिल्य सूक्तों के परिशिष्ट होने न होने में बहुत सा विवाद किया है, जिस का अधिक भाग असार इसलिये है कि वेदोत्पत्तिके सर्वोपरि प्रमाण सम्मत मूलोद्देशको त्याग कर सब विचार लिखा है। हम पहिले बता चुके हैं कि वेदों का प्रादुर्भाव यज्ञानुष्ठान की इति कर्त्तव्यता को जानकर अनुष्ठान करने के लिये हुआ है, इसीलिये मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद का विषय यज्ञ माना गया। वेदोत्पत्ति के मूलोद्देश को कुछ जाने समझे विना किया सभी विचार विना नींवकी भित्ति बनानेके तुल्य है। वैदिक मुनि ने पृष्ठ ५२ में संज्ञान सूक्त के १५ पन्द्रहों मन्त्र छपा दिये हैं। फिर पृष्ठ ५५ में लिखा है कि "संज्ञानसूक्त का तो अब पता तक नहीं, इसलिये उसके खैलिक तथा अखैलिक होनेका, विचार करना व्यर्थ है" यह लेख वदतोव्याघात दोषग्रस्त है। जब तुमको संज्ञान सूक्त का पता ही नहीं था तो फिर पृष्ठ ५२ में उसके १५ मन्त्र कहां से आगये ? और जब पहिले उसके १५ मन्त्र लिख छपा चुके तब फिर आगे चलके-उस का पता भी नहीं-लिखना उन्मत्त प्रलापवत् क्यों नहीं है ? ॥

प्रथम इस बात का अनुसन्धान करना उचित था कि वेदों में जो परिशिष्ट नाम से मन्त्र सूक्तादि लिखित वा मुद्रित दीखते हैं वे क्या वेदोत्पत्ति के समय से ही हैं अर्थात् वेदसम्रर्ता ब्रह्मा जी से ही वे भी प्रादुर्भूत हुए हैं ? अथवा वे परिशिष्ट सूक्त पीछे से किसी ऋषि वा आचार्य ने बना लिये यदि किसी ने पीछे से बना लिये तो वे स्मृतिपुराणादि के तुल्य पौरुषेय होने सिद्ध हैं, तब अपौरुषेय वेद के साथ उनका वेदत्व

है ही नहीं, फिर उनका अधिक विचार करना व्यर्थ है, उस दशा में उनको अवैदिक मान कर छोड देना चाहिये था, अधिक विचार व्यर्थ है। और यदि वे परिशिष्ट सूक्त वा मन्त्र वेदोत्पत्ति के साथ ही ब्रह्मा जी से प्रकट हुए तो वे भी निर्विकल्प वेदान्तर्गत होने से वेद हैं, तब इस पक्ष में उन को परिशिष्ट क्यों कहा गया और परिशिष्ट कहने का अभिप्राय क्या था वा क्या है इस पर हमारा निश्चय तो यही है कि ये परिशिष्ट सूक्त मन्त्र भी वेदोत्पत्ति के साथ ही हैं, पीछे किसी ने बना नहीं लिये हैं। यदि पीछे से बने होते तो उन को वेदशाखाओं के साथ कदापि पूर्वाचार्य नहीं जोड़ते, वेदके साथ जोड़ने से ही उनका वेदत्व सिद्ध है। अति प्राचीनकाल में जब सभी ऋग्यजुः सामरूप रचनात्मक मन्त्र भाग एक ही पुस्तकाकार में था उस समय परिशिष्ट रूपसे कहे जाने वाले सभी सूक्त मन्त्र उसी एक पुस्तकाकार वेद में थे और जो मन्त्र वा सूक्त किसी शाखामें मिलते हैं, किसीमें नहीं अथवा जो पाठ भेद है वह सभी एक पुस्तकाकार वेदमें विद्यमान था प्रैषाध्याय और निविदाध्याय भी उस एक पुस्तकाकार वेदमें विद्यमान था। वह सभी वेदों का विभाग होते समय ऋक्सम्बन्धी भाग ऋग्वेदमें आगया, यजुः सम्बन्धी यजुर्वेद में और साम सम्बन्धी सामवेद में आगया। फिर शाखा भेद के समय कोई सूक्त मन्त्र किसी शाखाके ऋषिने अपनी शाखामें लिये, अन्य ने अपनी शाखा में नहीं लिये। चाहे यों कहो कि जिन सूक्त वा मन्त्रों को वा जिस प्रकार के पाठान्तर को जिनके आचार्य विशेषरूपसे अपने जप यज्ञादि में विनियुक्त करते रहे उन २ को विशेष कर उस २ शाखाके प्रवक्ता ऋषिने अपनी शाखा में स्थान दिया और सामान्य मन्त्रकाण्ड अन्य शाखाओं के तुल्य रक्खा यही कर्मकाण्ड के प्रकारों का अल्पाल्प भेद शाखा विभाग का कारण हुआ। अर्थात् शाखा विभाग होने से पहिले भी उन कामों को उन २ प्रकारान्तरों से भिन्न २ मानने वाले वैसे ही करते थे जैसा शाखा विभाग होजाने पर करने लगे, भेद केवल इतना ही था कि पहिले इतनी सुगमता नहीं थी जितनी शाखा विभाग होजाने पर होगयी अभिप्राय यह निकला कि वालखिल्य सूक्त, संज्ञान सूक्त, महानाम्नी सूक्त, श्रीसूक्त, निविदाध्याय, प्रैषाध्याय इत्यादि प्रकार भेद जिन २ शाखाओंमें विशेष उपयुक्त वा विनियुक्त थे उन २ में पहिलेसे सम्मिलित किये गये और जिन शाखाओंमें पीछेसे अन्त में वा कहीं बीच में जहां उपयोग समझा, लिख लिये गये वहां उनको परिशिष्ट कहा गया वा खिल कहा गया अर्थात् जो जिस शाखामें पहिले से नहीं किन्तु अन्य शाखा का सूक्तादि है उसको जिसने स्वप्रयोजनार्थ पीछे से अपनी शाखामें लिख लिया वही उस शाखा का परिशिष्टांश है, वेद के परिशिष्टांश का यही अभिप्राय है। इससे परिशिष्टका अर्थ निकृष्ट वा अर्वाचीन समझना भूल है, अर्थात् जो कहीं मूल है वही अन्यत्र परिशिष्ट है॥

पृष्ठ ६० में ऋग्वेदीय शाखाओं के विषय में लिखा है कि "ऋग्वेद की जितनी शाखा दिखाई गयी हैं इन में से दो शाखा मिलती हैं एक शाकल और दूसरी वाष्कल.........यदि कहा जाय कि उक्त दोनों संहिता के मान्य होने में क्या दोष है तो उत्तर स्पष्ट है कि धर्म पुस्तक के भेद होने से धर्म भेद, अनुष्ठानभेद, अर्थभेद, पाठभेद परस्पर उपेक्षा परस्पर अनैक्य परस्पर असहानुभूति आदि अनेक दोष हैं"।

इस ऊपर के लेख से सिद्ध हो गया कि वैदिकमुनि ऋग्वेद की इक्कीस तो क्या दो शाखा भी रखना नहीं चाहते यह बड़ा ही आश्चर्य प्रतीत होता है क्योंकि धर्मभेद अनुष्ठानभेद वा अनैक्य आदि हानिकारक हैं तो पहिले चार वा तीन वेद क्यों हुए ? एक ही वेद क्यों नहीं किया गया ? अष्टादश स्मृतियां क्यों बनीं, आयुर्वेद ज्योतिषादि के अनेक ग्रन्थ क्यों बन गये ?। पाश्चात्य देशों में एक छापेखाने सम्बन्धी कलें बनाने के लिये अनेक कारखाने क्यों हुए ? उन में एक ही काम की अनेक प्रकार की कलें क्यों बनायीं गयीं ?। बृटिश सरकार ने राज प्रबन्ध के लिये अनेक महकमा क्यों नियत किये ? इंगलेण्ड में विचार करने के लिये उदार अनुदार परस्पर विरुद्ध दो दल क्यों बनाये गये ? इत्यादि सैकड़ों विवाद खड़े हो सकते हैं। प्रथम यह शंका उत्पन्न हो सकती थी कि ऋक्, यजुः, साम, अथर्व, ये चार वेद भिन्न २ क्यों हुए ? यह शंका वैदिक मुनि को क्यों नहीं हुई ? ऋगादि में से कोई एक ही वेद वेदकर्त्ता ने क्यों नहीं बनाया ? वा ऋगादि नाम कुछ भी न रखके केवल वेद नाम से एक ही पुस्तक क्यों नहीं बना दिया ? यदि वैदिक मुनि ऐसी शंका उठाते तो जन्मान्तरों में भी इस का समाधान उन से न होता ॥

हमारे गताङ्क के लेख में इस का समाधान सक्षेप से आगया है कि वेदोत्पादक परमात्मा ने जीवों के उद्धार वा उन्नति के लिये सर्वोपरि जो उपाय शोचा वह यही था कि अपने २ निकृष्ट कर्मों के द्वारा अधोगति में गिरते हुए मनुष्यादि प्राणियों का उद्धार करूं। वह उद्धार द्विविध नियत किया एक अभ्युदय द्वितीय निःश्रेयस, भूमण्डल में चक्रवर्त्ती राज्यपर्यन्त प्राप्त कर लेना, भूमण्डल पर निष्कण्टक राजा होकर पूर्ण ऐश्वर्य भोगना, और सूर्य चन्द्रादि स्वर्गलोकों में लाखों करोड़ों वर्षों तक अजर अमर दिव्य शरीर धारण करके दिव्य सुख भोगना इन्हीं पांचभौतिक शरीरों से सूर्य चन्द्रादि लोकों में जा सकना तथा लौट आना इत्यादि प्रकार का अभ्युदय सुख वा आभ्युदयिक उन्नति कहाती है, इसी आभ्युदयिक उन्नति के लिये वेद का प्रादुर्भाव किया गया। ऊपर लिखे प्रकार की आभ्युदयिकी उन्नति को भारतवर्ष के ब्राह्मण क्षत्रियादि वैदिक धर्मबलके अवलम्ब से लाखों वर्ष तक प्राप्त करचुके हैं और समय आने पर फिर प्राप्त करेंगे इस अंश पर वेदानुयायी आस्तिक दल को लेशमात्र भी अविश्वास वा सन्देह नहीं है, ऐसी उन्नति का साक्षी महाभारतादि इतिहास है।

अथ वेदके द्वारा चरम सीमाकी आभ्युदयिकी उन्नति हो सकती है जैसी अन्य किसी प्रकार से कदापि नहीं हो सकती इसी कारण वेद का सर्वोपरि महत्त्व है। द्वितीय निःश्रेयस वा मोक्ष प्राप्ति है यह भी वेदके ही द्वारा हो सकती है अन्य प्रकारसे नहीं, यह निःश्रेयस उन्नति पहिली से बहुत चढ़ी बढ़ी है जिस का वर्णन यहां नहीं कर सकते क्योंकि वैसा करने से प्रकरण छूटता है॥

इस दो प्रकार की उन्नतियों द्वारा जीवों का उद्धार करने के उद्देश्य से परमेश्वर ने वेद का प्रादुर्भाव किया। कर्मानुष्ठान वा धर्मानुष्ठान के द्वारा सांसारिक उन्नति और ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्ति नियत की, कर्म धर्म का तत्त्व जान कर उसका अनुष्ठान करने के लिये वेद का कर्मकाण्ड भाग नियत किया और ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वेद का वेदान्त भाग उपनिषद् नियत किये—पूर्व मीमांसा सम्बन्धी पुरुषार्थानुशासन सूत्र में लिखा है कि—

धर्मब्रह्मणी वेदैकवेद्ये॥

धर्मका और ब्रह्मका तत्त्व ज्ञान एक वेदसे ही हो सकता है, कर्मकाण्डात्मक वेदका प्रतिपाद्ययज्ञ विषय श्रौतस्मार्त्त नामसे वा इष्टापूर्त्त नामसे अत्यन्त गहन है, वा यों कहो कि अगाध होनेसे दुरवगाह्य है, उसके सहस्रों अङ्ग उपाङ्ग वा अवान्तर भेद हैं। श्रौत याग सोलह ऋत्विजों, यजमान,पत्नी सदस्य, दश चमसाध्वर्यु इत्यादि मनुष्योंके समुदायसे सिद्ध होते हैं, सोलह ऋत्विजोंके प्रथम चार विभाग किये गये १–होता, २–अध्वर्यु, ३–उद्गाता ४–ब्रह्मा। महान् विस्तृतयज्ञ कर्म इन्हींचार विभागों में विभक्त कियागया है। जैसे राज्यप्रबन्ध एक महान् कार्य है उसके कामोंका विभाग करके भिन्न२ विभागके भिन्न २ महकमा नियत करदेने से राज्यप्रबन्ध सम्यक् सुसंपन्न हो सकता है, महकमा और कार्य विभाग किये बिना महान् राज्यप्रबन्ध वैसा अच्छा नहीं हो सकता इसी के अनुसार उन २ महकमों के संचालक अधिकारी भी पृथक् २ नियत कर दिये जाते हैं वैसे ही महा विस्तृत यज्ञ कार्य सिद्धि के चार विभाग स्थिर कर के उन चारों विभागों के कर्त्तव्यांशों के द्योतक वा बोधक वेदके चार भाग किये, पहिले कार्य भाग का नाम ऋग्वेद हुआ इस ऋग् विभाग के अधिकारी होता लोग नियत किये। होता मैत्रावरुण वा प्रशास्ता, अच्छावाक् ग्रावस्तुत्, ये चार ऋक् संबद्ध कार्य विभागके प्रथम द्वितीय तृतीय और चतुर्थ कक्षाके क्रमशः अधिकारी माने गये। अध्वर्यु, प्रतिप्रस्थाता, नेष्टा, उन्नेता ये चार यजुः संबद्ध कार्य विभागके चार कक्षाके क्रमशः चार अधिकारी नियत किये गये। उद्गाता, प्रस्तोता, प्रतिहर्त्ता, सुब्रह्मण्य ये चार साम सम्बद्ध कार्य्य विभाग के संचालक क्रमशः चार कक्षा के चार अधिकारी नियत

हुए। इसी प्रकार अथर्व विभाग को भी जानो। अथर्ववेदी लोगों के बहुत काम सोमयागादि श्रौतयागोंसे भिन्न स्वतन्त्र भी हैं। इसी लिये वेदमें जहां यह लिखा है कि-

येनयज्ञस्तायतेसप्तहोतातन्मेमनःशिवसंकल्पमस्तु ॥

सप्तहोतेत्यत्रबहुव्रीहिः समासः सप्तहोतारोऽस्मिन् स सप्तहोता यज्ञः ॥

सात होता जिसमें होते ऐसा यज्ञ जिस मनके द्वारा विस्तृत होता है वह मेरा मन उत्तम काम करने में लगे। चार होता ऋग्वेदी पहिले गिना दिये और चार ब्रह्माओंमें से-ब्राह्मणाच्छंसी, अग्नीध्र, तथा पोता ये तीन ब्रह्मा भी होता बना लिये जाते हैं, तब सोमयागादि में सात होता होताओंका काम किया करते हैं एक ब्रह्मा सर्व वेदज्ञ सब कामों की आज्ञा देने वाला सब का निरीक्षक रहता है। इस पूर्वोक्त चतुर्विधयज्ञ कार्य की विभाग पूर्वक इति कर्त्तव्यता दिखाने का उद्देश ध्यान में रखते हुए परमात्माने ऋगादि चार विभागों में विभक्त चार वेदों का प्रादुर्भाव मानव लोक में किया है ॥

अथर्ववेदी तीन ऋत्विज् सोमयागादिमें ऋग्वेद सम्बन्धी हौत्रकर्म करते हैं इसी कारण अन्योंकी अपेक्षा ऋग्वेदके साथ अथर्वका घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसी कारण ऋक् और अथर्व के लोक तथा देवता भी एक ही हैं। अभिप्राय यह निकला कि सायणाचार्य्य ने जो ऋग्वेद के उपोद्घात में लिखा है कि (सर्वशाखासमुदितमेकं कर्म) वेदोक्त अनेक कर्म ऐसे हैं जिनमें भिन्न २ सब शाखाओं में कहे विचारांशों को लेकर वे पूरे होते हैं जैसे अनेक पुर्जे एकत्र करके कोई एक कल बन जावे। वेद शाखाओं की आवश्यकता न समझ कर वैदिक मुनि ने एक वेद की एकही शाखा मानने का जो विचार प्रकट किया है वह लोक व्यवहार के प्रत्यक्ष नियमों से भी विरुद्ध है ॥ जैसे कपडा बनाने पहिरने का प्रयोजन शरीर को ढांपना, शीतादि की निवृत्ति और देखने में अच्छा लगना इत्यादि एक ही प्रकार के उद्देश्य की सिद्धि के लिये वस्त्र बनाये जाते हैं, परन्तु वे वस्त्र असंख्य प्रकार के बनते हैं उनके अनेक कारखाने हैं। वैसे ही एक ही आभ्युदयिक सुखोन्नति रूप एकही प्रयोजन के लिये वेद की अनेक शाखाओं द्वारा नाना प्रकार के अवान्तर भेदों वाला एक यज्ञ सिद्ध किया जाता है। जैसे यह नहीं हो सकता कि वस्त्र वा दियासलाई आदि एक २ प्रयोजनीय वस्तु के लिये एक ही कारखाना खोला जाय वैसे एक वेद की शाखा भी एक नही हो सकती जैसे एक वस्तु के बनाने वाले अनेक कारखाने वाले अपना २ काम करते हैं किन्तु आपस में अनैक्य वा विरोध अनेक कारखानों के कारण उनमें नहीं होता, क्योंकि परस्पर विरोध के उद्देश्यसे वे कारखाने नहीं खोले गये हैं। वैसे ही वेदकी भिन्न २ शाखा वाले सभी आचार्य एकही उद्देश्यको लेकर अग्निष्टोम सोमयागादि कर्म करते आये हैं। शाखा भेद होने से विरोध वा अनैक्य पहिले से कभी कहीं नहीं होता था

किन्तु अपनी २ शाखा के सूत्र ब्राह्मण के नियमानुसार अग्निष्टोमादि यज्ञों के अवान्तर कर्मांशों में कुछ २ भेद हुआ करता था।

यदि विशेष ध्यान देकर विचार किया जाय तो सिद्ध हो जायगा कि संसार में जो एक के अनेक प्रकार हो गये हैं जिन के कारण दुरात्मा लोग परस्पर ईर्ष्याद्वेष बढ़ाकर अपनी अवनति कर लेते हैं। यह दोष उन्हीं मनुष्यों का है किन्तु अनेक प्रकारों का दोष नहीं है, प्रकारभेद वा मतभेद मनुष्यों की उन्नति के लिये हैं, वहां दुरुपयोग को छोड़के सदुपयोग करना चाहिये। इस प्रकार वेद में किया शाखा भेद भी मनुष्यों के कल्याणार्थ है॥

आगे पृष्ठ ६१।६२ आदि में शाकल तथा वाष्कल शाखाओं के मिल जाने के चिन्ह जो अष्टक, अध्याय, वर्ग, तथा मण्डल, अनुवाक सूक्त ये दो प्रकार के पते लिखे बताये हैं। इस मेलसे हमारी रायमें कुछ भी हानि नहीं है क्योंकि ऋग्वेद के कल्पाङ्ग का विचार करते हुये सर्व वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने ऋग्भाष्य के उपोद्घात में कहा है—

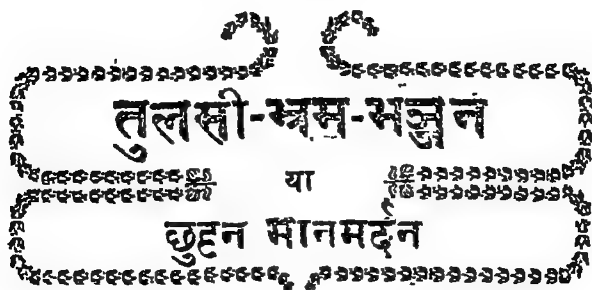
मन्त्रकाण्डो ब्रह्मयज्ञादिजपक्रमेण प्रवृत्तो नतु यागानुष्ठानक्रमेण,ब्रह्मयज्ञश्चैवं विहितः। यत्स्वाध्यायमधीयीतैकामप्यृचं यजुः साम वा तद्ब्रह्मयज्ञइति। सोऽयं ब्रह्मयज्ञजपोऽग्निमीलइत्याम्नायक्रमेणैवानुष्ठेयः॥

ऋग्वेद संहिता का मन्त्रकाण्ड ब्रह्मयज्ञादि जप के क्रमानुसार प्रवृत्त किया गया है किन्तु यागानुष्ठान के क्रम से प्रवृत्त नहीं हुआ, उस पारायणादि जप यज्ञ को (अग्निमीले०) इत्यादि क्रम से ही करना चाहिये। अर्थात् वेद का प्रतिपाद्य विषय जो यज्ञ माना जाता है वह दो भागों में विभक्त हुआ था, एक जपयज्ञ, द्वितीय विधियज्ञ, इन में जपयज्ञ का विशेष अनुष्ठान तपस्वी ऋषि लोग अरण्य में वा ग्रामादि से बाहर एकान्त में किया करते थे, इस जपयज्ञ में ऋत्विजों की वा आहुति आदि की आवश्यकता कुछ नहीं थी। इस जपयज्ञ का विशेष विधान आश्वलायन गृह्यसूत्रमें लिखा है और उससे बनी पञ्चमहायज्ञविधि पद्धतियों में भी आ गया है। परन्तु स्वा० द० जी कृत पञ्चमहायज्ञपद्धति में ब्रह्मयज्ञ का कुछ भी विधान नहीं है क्योंकि उन ने यह भी नहीं जान पाया था कि पांच महायज्ञ कौन २ हैं तथा उन का लक्षण वा स्वरूप क्या २ है?॥

विधियज्ञाज्जपयज्ञो विशिष्टोदशभिर्गुणैः॥ मनु०अ०२

यह जपयज्ञ का प्रशंसार्थवाद है। इस प्रकार जप यज्ञ के अनुरोध से यदि शाकल वाष्कल दोनों शाखा एक हो गयी तो किसी की इससे कुछ भी हानि नहीं हुई। हमारा तो कहना यह है कि आश्वलायनी संहिता भी यही है, अब ये नाम ही भेद रह गये किन्तु ऋग्वेद का शाखा भेद मिट सा गया है। जब कि आश्वलायन श्रौत तथा आश्वलायन गृह्यसूत्र के अनुसार ही ऋग्वेद से होनेवाला सभी काम होता है, और शाकल वाष्कल वा माण्डूकेय के कोई श्रौत वा गृह्यसूत्र नहीं हैं तब इस शाखा को आश्वलायनी कहने मानने में भी कुछ हानि नहीं है। यदि शाकलादि शाखाके मानने वाले ब्राह्मण अन्य सूत्रके न होने से आश्वलायन सूत्रानुसार ऋग्वेद सहिता से काम लेने लगे तो अब उनकी भी यही शाखा हो गयी?। इस कारण स्वाध्याय के अनुरोध से यदि दो वा कई शाखा मिल गयी और उनमे कोई बात किसी शाखा की मान ली और कोई किसी की तो इससे कुछ भी हानि नही हुई। इन शाकल वाष्कलादि शाखा सम्बन्धी मन्त्र भाग मे अत्यल्प भेद था इसी से ये भिन्न २ न रह सकीं और एक हो गयी, शाखा का मुख्य भेद उस २ के श्रौत गृह्यसूत्र में स्पष्ट दीखता है, सो जब शाकल वा वाष्कल शाखा के गृह्य श्रौत सूत्र न रहे तब इसी कारण उन के वास्तविक भेद का जानना भी सम्भव नही है ॥

हमें यह भी एक आश्चर्य होता है कि वैदिक मुनि ने निविदाध्याय और प्रैषाध्यायों पर कुछ भी विचार नहीं किया, जब निविदादि अनेक ऋग्वेदांश विचारणीय शेष रह गये तब ऋग्वेद पर इतना विस्तृत विचार लिखना व्यर्थ सा हो गया। अब जो निर्णय सागर प्रेस में मूल ऋग्वेद सहिता छपी है उसके अन्तमे निविदाध्याय तथा प्रैषाध्याय भी पृथक् से छपा दिये गये हैं जिस का अभिप्राय यह है कि अति प्राचीन कालसे ही ऋक्सहिता का जपयज्ञके क्रमसे संगठन हुआ है, इसी कारण निवित् और प्रैषाध्यायों को वेदत्व होनेपर भी जपयज्ञ मे उनका विनियोग न होनेसे निवित् तथा प्रैषाध्याय सहिता में सम्मिलित नही किये गये थे। ऋचाओं की मन्त्र सख्या में वैदिक मुनि ने दश विकल्प दिखाये सो शाखा भेद से सब की व्यवस्था लग सकती है। परन्तु ब्राह्मण तथा श्रौत गृह्यसूत्रो का जब तक मनन नही किया जाता तभी तक इस मन्त्र सख्या का झझट दीखता है किन्तु जब ब्राह्मण तथा सूत्रों को पढ़ने समझने में श्रम किया जायगा तब सैकड़ों मन्त्र और दीखने लगेंगे जो शाखान्तरोंसे लिये हुये ब्राह्मण तथा सूत्रों में ही विद्यमान हैं मन्त्र सहिता मे नही लाये गये वे सब भी ऋग्वेद के अन्तर्गत परिगणनीय हैं। अब ऋग्वेद का विचार हम यही समाप्त करते हैं ॥



तुलसी-भ्रम-भञ्जन

या

छुट्टन मानमर्दन

(भाग १३ अङ्क ६ पृष्ठ ४२८ से आगे)

५३ प्रश्न-क्या तुम जीव को स्वतन्त्र मानते हो वा ईश्वराधीन (दैवाधीन) यदि स्वतन्त्र मानते हो तो (यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्) इस ऋग्वेद के वागृम्भणी सूक्तस्थ मन्त्र में वागृम्भणी देवी ने कहा है कि मैं जिस को चाहती उसी को ब्रह्मा उसी को ऋषि उसी को बुद्धिमान् बनाती हूं। इस वेद के कथन से क्या जीव का पराधीन वा दैवाधीन होना साफ २ सिद्ध नहीं है ? ॥

५४ प्रश्न-(एष ह्येव साधु कर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य ऊर्ध्वं निनीषते । स एवासाधुकर्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते) वही ईश्वर वा दैव उससे अच्छा कर्म कराता है कि जिस की उन्नति करना चाहता है और वही उस से बुरा कर्म कराता है कि जिस को अधोगति में गिराना चाहता है क्या इस श्रुति प्रमाणके अनुसार जीव का पराधीन होना सिद्ध नहीं है। तथा ऐसी दशा में तुम्हारा मत वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ? ॥

५३-५४ उत्तर । जीवको स्वतन्त्र मानते हैं और ईश्वराधीन भी । जैसे जेलमें कैदी जेलरके अधीन भी है वही दिनचर्या का सब काम कराता है। चाहे चक्की पिसवावे, चाहे बान बटवावे। तथा चाहे दफ्तरके काम में रक्खे; चाहे कालीन बनानेमें देकर होशियार करदे, चाहे हल जुतवावे तथापि वह कैदी भी एक प्रकार स्वतन्त्र है। नियत कामके अतिरिक्त अधिक कार्य करे, जेलर को प्रसन्न करदे, सरकारी कर्मचारियों के कार्य में सहायता कर अन्य कैदियों को उद्दण्डता न करने दे खैरख़्वाही करे, चाहे वहां चोरी करे, अन्य कैदियोंको बुरी सलाह दे, दोनों प्रकारके कार्य करनेमें स्वतन्त्रभी है, फिर भले कामों का भला बुरों का बुरा फल पावेगा। पुनः पुनः उस के नियत जेल में से कर्मानुसार कम कैद या बुरे कामों से अधिक जेल, बेंत आदि भी फल मिलेंगे। क्या कानून के अनुसार कैदी जेलर के अधीन होने पर भी स्वतन्त्र नहीं है परन्तु आप ईश्वराधीन पाप पुण्य करना मानेंगे तो जीव उस का फल क्यों भोगेगा, करावे आप भुगावे जीव को। क्या आप का यह मत है ? ॥

समीक्षा-दोनों छोटे बड़े स्वामियों ने वेदमन्त्रों का एक भी समाधान नहीं किया यह पाठक देख सकते हैं हां उनके लेखसे यह अवश्य मालूम होता है कि उन्हें कारा:

गार का अच्छा अनुभव है, जब वेदमन्त्र मे स्पष्ट लिखा है कि ईश्वर ही जैसा चाहता है कर्म कराता है तब उसे न मानना यह स्पष्ट सिद्ध करता है कि ये नास्तिक हैं।

यदि ईश्वर कर्म नही करता तो अच्छे बुरे कर्म करने की बुद्धि कहां से उत्पन्न हुई क्यों एक मनुष्य अच्छे काम करता है और दूसरा बुरे,कर्म जीव ही करता है पर उस कर्म को अच्छी या बुरी रीतिसे करनेकी बुद्धि ईश्वर प्रेरणासे ही उत्पन्न हो जाती है।

५५ प्रश्न–क्या वेद को तुम निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हो वा नहीं। यदि मानते हो तो वेद मन्त्रों से जैसी २ प्रार्थना करते हो तब क्या वे २ काम वैसे ही सिद्ध हो जाते हैं। यदि काम सिद्ध नहीं होते तो वेद की प्रामाणिकता कहां रही १ यदि वेदको प्रामाणिक नही मानते तो वेद का नाम ले २ कर संसार को धोखा क्यों देते हो।

५५ उत्तर–हम वेदको निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हैं इसी लिये वैदिक कहाते हैं। आप वेदों में भी विकल्प मानते हैं. फिर भी सनातनधर्मी होने का दम भरते हैं। हां, सनातन शब्द का कदाचित् आप यह अर्थ मानते हैं कि सनातन विरोधी अर्थात् दस्यु क्योंकि–" विजानीह्यार्यान्ये च दस्यवो०" इस मन्त्रसे सदासे दो दल पाये जाते हैं। एक वैदिकार्य, दूसरे अवैदिक दस्यु। सो आज इस वेद विषयक शङ्का से ज्ञात हुआ कि आप वेदों को नही मानते हैं। यदि वैदिक मन्त्र द्वारा प्रार्थना करने पर कार्य सिद्ध न हो तो क्या उसका मानना छोड दें? मुझे तो पूर्ण विश्वास है कि परम कारुणिक परमात्मा कार्य सिद्धकर्त्ता है।हां यदि वह उस प्रार्थनाकी योग्यता न रखता हो तौ सर्वान्तर्यामी उसकी कार्य सिद्धि नहीं करते हैं। क्या सभी प्रार्थना पत्रों को हाकिम स्वीकार ही करता है? सो नही, शतशः स्वीकृत होते हैं, शतशः खारिज हो जाते हैं। इससे हाकिम वा प्रार्थी या प्रार्थना पत्र देना अनुचित या अशुद्ध नहीं हो जाता है। ससार को धोखादेने वालों को परमात्मा जानता है कि यह पामर पेट में क्या भाव रखता है यह सत्यहृदय से वैदिक है या ऊपर का ढोंग रच वैदिक बना है कुछ दिन पीछे लोभ के लिये वैदिक आर्यधर्म का निराकरण करेगा। अतः प्रार्थना स्वीकार नही करता॥

समीक्षा–जब वेद मन्त्रों से उन २ कार्यो की सिद्धि नही होती तो उसकी प्रामाणिकता नही रही। आचमन से कफ की निवृत्ति, मार्जनसे आलस्य की निवृत्ति और शिखाबन्धन से रक्षा अभी तक तो किसी समाजी ने करके दिखाई नही, यदि छुट्टनलाल तथा एक और समाजीकी शिखा बंधवा के दोनोंको भिड़ा दिया जाय तो क्या दोनोंमे से एकभी नहीं हारेगा?। वेद मन्त्रोंसे कौन२ सी प्रार्थना तु०रा० या छु०ला० ने सिद्ध की है। वेद की उपमा कचहरी से देना भी छु० ला० को ही सोहता है क्या हाकिम ईश्वर की तरह सर्वज्ञ है यदि नही तो वहां का उदाहरण देने से क्या लाभ क्या कचहरी को भी तुम वेद की तरह निर्विकल्प प्रामाणिक मानते हो? यदि नहीं

तो संसार को धोखा देने वाले आर्यसमाजियों का दृष्टान्त देने की क्या जरूरत है। थोड़े से लोभ के लिये सनातन वैदिक धर्म का निराकरण करने में तो सभी समाजी तत्पर हैं कुछ नीच वर्णों से उच्च बनने के लिये आर्य्यसमाज में शामिल होगये हैं कुछ दुराचारी भी हैं और पेट पालने के लिये वैदिक सनातनधर्म और अपने पूज्य पिता पितामहादि के माने धर्म का खण्डन करते हैं ऐसे आर्य नामधारी वस्तुतः अनार्यों की प्रार्थना ईश्वर इस लिये नहीं सुनता कि वे वस्तुतः वेद को नहीं मानते।

५६ प्रश्न—तुम्हारे मतमें वेदका लक्षण क्या है। यदि कहो कि (अपौरुषेयं वाक्यं वेदः) जो किसी पुरुषका बनाया न हो वह वेद है तो किसी स्त्री का बनाया ग्रन्थ क्या वेद हो सकता है।यदि कहो कि पुरुष नाम मनुष्यका बनाया नहो तो जब (सहस्रशीर्षा०) इत्यादि वेद मन्त्रों में ईश्वरका नाम भी तुमने पुरुष माना है तब ईश्वरोक्त होने से भी पौरुषेय हो जाने पर तुम्हारा लक्षण खण्डित हो जायगा यदि कहो कि—(ज्ञानसाधनं वेदः) ज्ञानका साधन वेद है तो क्या संस्कृत तथा अनेक पुस्तकों से ज्ञान नहीं होता। तब क्या उन सब को वेद मान लोगे?

५७ प्रश्न—क्या तुम्हारे मत में शब्दात्मक वेद है वा ज्ञानात्मक है। यदि शब्दात्मक कहो तो निराकार निर्गुण निरीह ब्रह्म से शब्दात्मक वेद की उत्पत्ति कैसे होगी क्योंकि शब्द की उत्पत्ति ताल्वाद्यभिघात क्रिया जन्य है। क्या निष्क्रिय वस्तुसे शब्द की उत्पत्ति को तुम न्याय वैशेषिक की दलीलों से सिद्ध कर दोगे?॥

५८ प्रश्न—यदि ज्ञानात्मक वेद मानोगे तो किन्हीं खास पुस्तकों का नाम वेद कैसे मान सकोगे किन्तु वैसा अपेक्षित ज्ञान जिन २ पुस्तकादि में मिले वे सभी क्या वेद नहीं ठहरेंगे।

५६, ५७, ५८, उत्तर—वेद अपौरुषेय हैं, ज्ञानात्मक हैं, सृष्टि के आरम्भ में जो ज्ञान किसी पुरुष का बतलाया हुआ नहीं किन्तु स्वतः महर्षियों के हृदय में प्रेरणा बुद्धिसे (इलहाम) प्रकट हुआ सो वेद है। उन आदि गुरु, महर्षि अग्न्यादि के उपदेश पीछे मनुष्यों की बुद्धि से कल्पित स्वार्थादि युक्त वाक्य स्वतः प्रमाण वेद नहीं हैं। सहस्र० यहां पुरुष शब्द यौगिक है॥

समीक्षा—ऊपर के तीन प्रश्नों का उत्तर तु० रा० और छु० ला० ने इस लिये एक साथ दिया है जिससे पोल न खुले और उत्तर का नाम बना रहे। हम पूंछते हैं पुरुष शब्द का अर्थ क्या है और "वेद अपौरुषेय हैं" इस वाक्यमें पुरुष शब्द रूढ़ि है या यौगिक है किसी स्त्रीके बनाये पुस्तक वेद क्यों नहीं इसका उत्तर भी कुछ नहीं दिया वेद को यदि ज्ञानात्मक मानते हो तो ज्ञान जिन पुस्तकोंसे प्राप्त हो वे सभी वेद क्यों

न कहावें, यदि ज्ञानशब्द से कोई विशिष्टार्थ लेना है तो ज्ञान शब्द का लक्षण करना चाहिये जिससे अन्य पुस्तकों से व्यावृत्ति हो सके स्वा० दयानन्द तो तार और दूट जूता बनाने की विद्या भी वेद में मानते हैं इस दशा में यूरोपियन इञ्जीनियरों और चर्मकारोंके बनाये पुस्तक भी वेद क्यों न माने जावें, ज्ञानात्मक मानने पर ये वर्त्तमान वेद न ठहरेंगे। (शेष आगे) ब्रह्मदेव मिश्र

ला० मुन्शीरामका संन्यास।

कांगड़ी गुरुकुल के संस्थापक ला० मुंशीराम के सन्यास के विषय में कुछ दिनों से जोर शोर से खबर उड़ रही थी, सद्धर्म प्रचारक आदि आर्यसामाजिक पत्रों ने वह तूफान मचा रक्खा था कि जिस का कुछ ठिकाना नही मद्रास और कलकत्ते मे जो हाल में तूफान आया था उस समय जैसे भयङ्कर समाचार आवे थे कुछ उस से भी बढ़कर इस सन्यास का समाचार दिया गया था, लोग सोचने लगे कि न मालूम यह कैसा संन्यास होगा पृथ्वी बचेगी या नहीं बड़े बड़े भूकम्पों से भी जिस पृथ्वी का अस्तित्व नही मिटा वह शायद अबकी वार मिट जावे पर यह कुछ नही हुआ।

बहुत शोर सुनते थे पहलू मे दिलका। जो चीरा तो एक कतरये खून निकला॥

ला० मुंशीराम सन्यासी हो गये और पृथ्वी को कुछ भी क्षति नहीं पहुंची इस अवसर पर कांगड़ी गुरुकुल में जो लोग उपस्थित थे और जिन्हों ने इन महामहिमान्वित महात्मा मुशीराम का महासंन्यास देखा होगा असली वृत्तान्त तो वे ही जानते होंगे पर ता० १४ अप्रैल के सद्धर्म प्रचारक को देखने से मालूम पड़ता है कि गुरुकुल में लिद्ध साधकता का पूरा नाटक खेला गया,।

················विवाहे तु················तत्र नायकाः।
परस्परं प्रशंसन्ति अहोरूपमहोध्वनम्॥

गुरुकुल के ब्रह्मचारियोंने इस श्लोकको पूरा २ चरितार्थ किया गुरुकुल वालियों ने ला० मुंशीराम को और लाला जी ने गुरुकुल वालों की प्रशसा के पुल बांध दिये, अभिनन्दन पत्रों में लाला जी को आर्य-जाति के हृदय के सम्राट्। राजा, भगवान् इत्यादि बडे २ विशेषणो से अलङ्कृत किया गया है। इन अभिनन्दन पत्रो के पढने से लाला जी की खुशामद प्रियता और अहम्मन्यता का पूर्ण परिचय मिलता है ऐसे

ही ला० मुंशीराम जी ने ता० १३ अप्रैल को संन्यास ले लिया था, संन्यास क्या था स्वतन्त्रता और स्वाधीनता का एक पूरा नाटक था जिसके एक्टर आदि सब कुछ लाला जी ही थे। वेदादि शास्त्रों के अनुसार लाला जीका संन्यास सर्वथा विरुद्ध था उस में विधि का तो कहीं गन्ध ही नहीं था पर यहां हम सनातनधर्मके अनुसार ला० मुंशीरामके इस कृत्य की आलोचना न कर आर्यसमाजी उपदेशकों और लेखकों की सम्मतियां संक्षेप से उद्धृत करते हैं जिस से पाठकों को विदित होगा कि यह कैसा अवैदिक कृत्य था ॥

प्रताप ७ मई १९१७ से उद्धृत

आर्यसमाजी नेता ध्यान दें।

महात्मा मुन्शीराम जी ने जिस दिन जहां सन्यास धारण किया उस समय वहां मैं भी उपस्थित था 'सद्धर्मप्रचारक, तथा 'आर्यमित्र, में छपा है कि उक्त महात्मा जी ने "विधिपूर्वक सन्यास लिया" सो मैं यह दर्शाना चाहता हूं कि यह असत्य है। उनके सन्यास को शास्त्र की दृष्टि से हम विधिपूर्वक नहीं कह सकते। महात्मा जी ने किसी सन्यासी से दीक्षा नहीं ली। 'स्वयं ही गेरुवे वस्त्र पहन, दण्ड कमण्डलु लेकर वेदी पर आगये और अपना नाम भी अपने आप ही "श्रद्धानन्द" रख लिया। अपने आप (बिना गुरु के) कषाय वस्त्र पहिन लेने और अपना नाम स्वयं ही रख लेने की प्रणाली बिलकुल नई है। इसके दृष्टान्त न तो सनातनधर्मी लोगोंमें पाये जाते हैं और न आर्यसमाज में ही। हमसे कई सनातनी सन्यासियों ने ठट्ठा करते हुए पूछा कि "क्यों जी! क्या तुम्हारे आर्यसमाज में यही नियम है कि विना गुरु के ही जिस की इच्छा हो कपड़े रंगकर साधु भेषधारी बन जाय।" हमें लज्जित होना पड़ा। हमने मन में विचार किया कि हम आर्य उपदेशक लोग तो दूसरों को यही कहा करते थे कि "गेरू तो सस्ता है ही, जिसकी इच्छा हो धेले के गेरू में जगद्गुरु बन जाय, इत्यादि।"—आज यही वाक्य हमींपर दुहराया जाता है। कैसी उलटी गंगा बहने लगी है? हमारे मन में यह बात आई कि महात्मा जी स्वामी दयानन्द के बड़े भारी भक्त हैं उनसे कोई बात स्वामी जी की आज्ञाके विरुद्ध नहीं हो सकती शायद स्वामी दयानन्द ने ऐसा ही मार्ग दर्शाया हो, अतः हमने संस्कार विधि का सन्यास प्रकरण पूरा पढ़ डाला तो वहां स्पष्ट यों मिलता है कि:—... ... ...

इसको बोलके बालक(या सन्यास लेने वाला)आचार्यके हाथसे दण्डले लेवै। इन उद्धृत वाक्यों से यह स्पष्ट है कि श्री स्वामी दयानन्द महाराज ने प्राचीन शैली को ही कायम रक्खा था। यह तो है वह मार्ग जो लाखों वर्षों (या कम से कम सहस्रों वर्षों) से चला आता है और जिसे स्वामी जी ने भी ज्यों का त्यों बना रहने दिया, परन्तु आश्चर्य है कि आर्यसमाजके माननीय नेता होकर महात्माजीने स्वा० दयानन्द

के मतके विरुद्ध कार्य क्यों किया ? कहीं कहा जाता है कि 'वे किससे संन्यास लेते, उनसे बढ़कर कोई योग्य हो तब न !" यद्यपि हमारी समझ में कई आर्यसामाजिक सन्यासी भी ऐसे मौजूद हैं जो वेदादि के ज्ञान, तप, ईश्वरभक्ति, आत्म-सयम, आत्मिक उन्नति आदिके लिहाज से स्वामी श्रद्धानन्द जी के गुरु बन सकते थे परन्तु वस्तुतः बात यह है कि वे इस ससारमें किसीके शिष्य बनना ही नहीं चाहते थे और " विद्वत् सन्यास " का ढकोसला भी बड़े मजेका हो सकता है जिसका पता शायद स्वामी दयानन्द को भी न था । स्वा० मङ्गलानन्द पुरी

स्वयम्भू संन्यासी ।

सज्जनो ! प्राचीन कोषों में स्वयंभू नाम केवल परमात्मा का ही हम ने देखा था; परन्तु आज एक स्वयम्भू संन्यासी का भी पता लगा है । ७ मई सन् १९१७ ई० के प्रताप में एक सत्यवादी मङ्गलानन्द पुरीजी का लेख निकला है, जिस में उन्हों ने स्वय दृष्ट वृत्तान्त का परिचय दिया है । जिस प्रकार वर्षा ऋतु में पृथिवी से निकल कर "वर्षाभू" जल को गन्दा करते हैं, ठीक इसी प्रकार यह "स्वयंभू" रक्तपट भी वैदिक धर्म को गन्दा करेगा, इस लिये आर्यों को सचेत हो जाना चाहिये ॥

पहले तो स्वामी दयानन्द ने ब्राह्मणको छोड़ कर अन्य किसी को संन्यास लेना ही नहीं लिखा है, जिस को देखना हो, वह स० प्र० के ५ भाग को देख ले, उस में

ब्राह्मणस्य चतुर्विधः ६ । ९७
ब्राह्मणः प्रव्रजेत् (य० ब्रा०)
ब्राह्मणः प्रव्रजेद्गृहात् ६ । ३ । ३८
ब्राह्मणो निर्वेद मायात् (मुण्डक)

इस प्रकार लिखा है । लाला मुन्शीराम गुणकर्म स्वभाव से ब्राह्मण नहीं, यह हम दावे से कहते है । क्षत्रिय भी नहीं अन्यथा स्वर्ग जाने योग्य यह युद्ध समय अपने हाथ से न जाने देते । इतने पर भी उन्हों ने स्वामी दयानन्द के सिद्धान्त का खून किया है, इसलिये समाज की वेदी पर अब उन को न आना चाहिये और न आने देना चाहिये ।

अब हम उनको जोकि वैदिक मर्यादा का उल्लङ्घन करते हैं बल पूर्वक चैलेंज देते हैं कि वह यह सिद्ध करें कि ब्राह्मण के अतिरिक्त स्मृति ग्रन्थों में इतरों (सकरों) को इसका अधिकार है अन्यथा लाला जी को फिर गृहस्थ बनादें रहा वर्ण व्यवस्था पर शास्त्रार्थ की बात सो उसके लिये हम सर्वदा को स्थायी चैलेंज दिये देते हैं कि जिनमें दमहो वे आकर लेखबद्ध अथवा मौखिक शास्त्रार्थ कर ले । शास्त्रार्थके लिये वे ही मेरे समक्ष आवें जो जन्मके ब्राह्मण न हों । अखिलानन्द कविरत्न ।

दाताराम-पाठक—

विधवाविवाह तथा नियोग।

प्रिय पाठकवृन्द ! श्रीमान् रामकृष्ण अरजीनवीस हिसार (पञ्जाब) का एक पत्र हमको मिला है आपने "वालविधवा पुनः संस्कार पर विचार" ऐसा हेडिङ्ग देकर लेख लिखा है जिस का सारांश यह है कि आजकल वाल विधवा विवाह का होना अत्यावश्यक है नीचे आपने लिखा है कि 'न्यायप्रिय महानुभाव अपनी उचित सम्मति देकर अनुग्रहीत करें, यद्यपि यह कथन उन्हीं महानुभावों के प्रति है जो नियोग व विधवा विवाह के प्रेमी हैं परन्तु मैं भी इस पत्र को समीक्षा करता हुआ स्वबुद्ध्यनुसार सम्मति प्रकट करता हूं-

रामकृष्ण-प्रिय पाठकगण ! आजकल विधवाओं के पुनः संस्कार न होने के कारण जो २ कष्ट अथवा हानियां दृष्टिगोचर हो रही हैं उनमें से कई एक आपकी सेवा में उपस्थित कर प्रार्थना है कि अब इनपर ध्यान पूर्वक विचार करें॥

(१) इन दीन वाल विधवाओं पर अत्यन्त अन्याय (ज़ुलमोसितम) हो रहा है।

समीक्षा-न मालूम विधवाओं पर कौन क्या अन्याय करता है जो हमारे दयालु रामकृष्ण जी के दिल में खटकता है आपको अन्याय लिखना ज़रूर था जिस पर विचार किया जाता यदि आपको विना अन्य पति के अन्याय मालूम पड़ता है तो कृपानाथ ! मनु के " नद्वितीयश्चसाध्वीनां कचिद्भर्त्तोपदिश्यते ,, अर्थ-पतिव्रता स्त्रियों को दूसरा पति कहीं नहीं कहा।- इसका स्मरण कर लिया करो॥

रामकृष्ण (२) सर्वत्र व्यभिचार वृद्धि को प्राप्त हो रहा है और गर्भपातादि कुकृत्य जिस में कि ब्रह्महत्या से भी द्विगुण दोष कहा है किये जाते हैं (देखो पाराशर स्मृति अ० ४ श्लो० १६-२०) और कानूनसे भी अपराधमें परिगणित है देखो ताजीरात हिन्द दफा ३१२ से ३१८॥

समीक्षा--व्यभिचार रोकने के लिये स्त्री पुरुषों को शिक्षा व दण्डकी आवश्यकता है न कि लोक शास्त्र विरुद्ध विधवा विवाह की, क्या सधवा व्यभिचार नहीं करतीं है या जो पुरुष वृद्धावस्था में विवाह करते हैं उनकी तरुणी स्त्रियां व्यभिचार नहीं करतीं, जितना जोर विधवा विवाह पर दिया जाता है उतना जोर यदि कन्या विक्रय निषेध वा पतिव्रता धर्म पर दिया जाय तो कितना अच्छा हो, जब व्यभिचार रोकने का आपका उद्देश्य है तो वाल विधवा की क्या जिक्र, विधवा मात्र के पुनर्विवाह की कोशिश करो। याद रक्खो ! गर्भपातादि कुकृत्य तो एक तरफ रहा, यदि विधवा विवाह चला तो युवा हिंसा होने लगेगी, यदि आपके चित्तमें सनातनधर्मावलम्बियों का कथन न जमे तो कृपया स्वा० दयानन्द जी के लेख पर ही दृष्टि डालिये। (देखो स० प्र० सन् ७५ पृ० १४० उपदेशमञ्जरी पृ० १३६)

रामकृष्ण (३) अनेक विवश भाइयों के अविवाहित अथवा रण्डवा हो जाने से कुल नष्ट हो रहे हैं।

समीक्षा-संसार में अविवाहित या रंडवा पुरुष न रहैं इसलिये क्या शास्त्रविरुद्ध महा अधर्म विधवा विवाह जारी करोगे, जिन जातियों में धरेजा होता है क्या वे ही जातियां अन्य जातियों से जन संख्या में अधिक हैं यदि नही तो इस पुनर्विवाह से कब वृद्धि हो सकती है। यदि आप वृद्धावस्था के विवाह की प्रथा रोकने का प्रबन्ध करें तो अविवाहित पुरुष बहुत कम नजर आवेंगे।

रामकृष्ण (४) कुल नष्ट हो जाने से जाति की जन गणना (आबादी) प्रतिदिन न्यून होती जाती है।

समीक्षा—यदि यही बात है तो आज कल यह संसार नजर कहां से आ रहा है न्यून होते २ अभाव क्यों न हुआ वाहरी बुद्धि ?। यह पु० वि० वर्ष दो वर्षसे ही बन्द कर दिया है क्या किसी ने।

रामकृष्ण (५) कुल नष्ट हो जाने पर पिण्डोदक क्रियाके लुप्त हो जाने के कारण पितरों का नरक पात होता है (देखो गीता अ० १ श्लो० ४२)

समीक्षा-विधवा विवाह के न होने से कुल नष्ट नहीं होता अतः पिण्डोदक क्रिया के लुप्त न होने से पितर नरक गामी नही होते, हां विधवा वेदनोत्साहियों के पितर नरक में अवश्य जाते हैं कारण कि गीता के इसी श्लोक में (जिस का ऊपर पता दिया है) कहा है-

सङ्करोनरकायैव कुलघ्नानांकुलस्य च।
पतन्तिपितरोह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

कुल नाश करने वालो के कुलका वर्ण सङ्कर भी नरक के वास्ते ही है और इनके पितर भी पतित हो जाते हैं क्योंकि पिण्डोदक क्रिया के लुप्त होने से।

इस श्लोकमें अपने कुलको नरकमें गिराने वाला वर्ण सङ्कर माना है अब देखिये वर्णसंकर कौन-

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्तिकुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायन्ते वर्णसङ्कराः॥ १। ४१

अर्थ-हे कृष्णचन्द्र अधर्म के बढ़ने से कुल स्त्रियां भ्रष्ट हो जाती हैं हे भगवन्! स्त्रियों के दुष्ट (भ्रष्ट) हो जाने से वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं।

जब स्त्री भ्रष्ट होने से वर्णसंकर होती है तो यह बाल विधवा विवाह स्त्री मात्र को महाभ्रष्ट करने वाला है बाल विधवाका नाम लेने वाले बीस २ वर्षकी विधवाओं

के साथ में विवाह किया करते हैं (आर्यमित्र में अनेक विज्ञापन निकले हैं) कहीं २ गर्भवती के साथ में हुआ है देखो आर्यमित्र २४ नवम्बर सन् १४। वेदप्रकाश व० ६ मा० ८ पृ० १५२)जब विधवाओंके विवाह की आम रिवाज पड़ जायगी तो स्त्री मात्र के दिलमें फर्क पड़ जायगा अतः अवश्यही स्त्रियां भ्रष्ट होकर खानदानको नरकमें ले· जाने वाले वर्ण संकर पैदा करेंगी ऐसी सन्तान कब पितरों के लिये जल व पिण्ड· दान देंगी अतः पितर भी पतित होंगे।

रामकृष्ण (६) पुत्रहीन स्वयं भी नरक गामी होता है (वशिष्ठ स्मृति अ० १७ आरम्भ) तथा मनुस्मृति अ० ६ श्लो० १३७। १३८॥

समीक्षा-पुत्रहीन नरक में जाता है इस का वास्तविक तात्पर्य सुपुत्र होने की प्रशंसा में है न कि विधवा विवाह-से पैदा हुए पौनर्भव (शास्त्रमें निन्दित है)से, यदि यही मान लिया जाय कि विना पुत्र के नरक भोगना ही पड़ता है लाओ जिस तरह वने पुत्र करो तो अनेक सदाचारी पुरुषोंके सन्तान न हो तो क्या वे नरक गामी होंगे अनेक महानुभाव वाल ब्रह्मचारी हैं क्या उनको भी नरक का दर्शन करना पड़ेगा यदि यही वात है तो मनुस्मृति पर हरताल फेरना होगा।

अनेकानिसहस्राणि कुमारब्रह्मचारिणाम्।
दिवंगतानि विप्राणामकृत्वाकुलसंततिम्॥

अर्थ-वाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य धारण करने वाले वालखिल्य आदि ब्राह्मण कुल की वृद्धिके निमित्त विना सन्तान किये ही स्वर्ग को चले गये।

मृतेभर्त्तरिसाध्वीस्त्री ब्रह्मचर्येव्यवस्थिता।
स्वर्गंगच्छत्यपुत्रापि यथातेब्रह्मचारिणः॥ ६। १६०

अर्थ-पति के मरे पीछे ब्रह्मचर्य में स्थित हुई सुन्दर स्वभाव वाली स्त्री पुत्रके विना भी इस प्रकार स्वर्ग को जाती है जैसे वे (वालखिल्य सनकादि) ब्रह्मचारी स्वर्ग को चले गये।

कहिये मनुजी महाराज विना पुत्रके स्त्री पुरुष दोनोंको स्वर्गके लिये भेजते हैं। पर इन महाशयका स्पष्ट आशय है कि विधवा विवाह करके पुत्रोत्पन्न करे अन्यथा नरक भोगना पड़ेगा परन्तु यह शास्त्र विरुद्ध है कारण कि पुनः संस्कार होने पर स्त्री की पुनर्भू संज्ञा हो जाती है देखिये—

अक्षता च क्षताचैव पुनर्भूस्संस्कृतापुनः। याज्ञ०

अर्थ-अक्षत योनि हो चाहे क्षत योनि पुनः संस्कार होने पर स्त्री की पुनर्भू संज्ञा होती है।

याचक्लीबंपतितमुन्मत्तं वा भर्त्तारमुत्सृज्यान्यं

पतिंविन्दतेमृतेवासापुनर्भूर्भवति । वशिष्ठ ।

अर्थ-जो स्त्री नपुसक, पतित, या पागल पति को त्याग ।अथवा मरे पीछे अन्य पति को करे वह पुनर्भू कहाती है। इत्यादि अनेक प्रमाण मिलते हैं और पुनर्भू की सन्तान पौनर्भव कहाती है—

यापत्या वा परित्यक्ता विधवावास्वयेच्छया ।

उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भवउच्यते॥ मनु ९।१७५

अर्थ-जिस स्त्री का पति ने त्याग कर दिया हो या विधवा अपनी इच्छा से दूसरे की स्त्री होकर जिस सन्तान को उत्पन्न करे वह पौनर्भव कहाता है। पौनर्भव की शास्त्रकारों ने निन्दा की है।

कानीनश्च सहोढश्चक्रीतः पौनर्भवस्तथा ।

स्वयंदत्तश्चशौद्रश्चपडदायादबान्धवाः॥ ९ । १६०

अर्थ-कानीन, सहोढ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयदत्त, और शौद्र ये छः धनके और गोत्र के अधिकारी नही होते किन्तु वान्धव होते है।

कुशोलवोऽवकीर्णीच वृषलीपतिरेवच ।

पौनर्भवश्च काणश्च यस्यचोपपतिर्गृहे ॥ ३ । १५५

अर्थ-नाचने वाला, जिस का व्रत स्त्री के योग से विगड़ गया हो, जिस ने शूद्रा से विवाह किया हो, पौनर्भव, काणा, और जिसके घर में जार रहता हो ये सव दैव-पित्र्यक कर्म मे त्याग करने योग्य हैं।

भस्मनीवहुतंहव्यंतथापौनर्भवेद्विजे ॥ ३ । १८१

अर्थ-पौनर्भव ब्राह्मण को दिया हुआ दान भस्ममे हवन किये के समान है अर्थात् व्यर्थ है। यदि पौनर्भव (विधवा विवाही का पुत्र) उत्तम होता तो मनु महाराज क्यों हिस्सा से वञ्चित रखते, श्राद्ध में निषेध क्यों करते, क्यों दान देनेमे व्यर्थ कहते क्या ऐसी सन्तान (विधवा विवाहाभिलाषी जिसकी चाहना करते हैं) से कोई पार हो सकता है।

यादृशंफलमाप्नोतिकुप्लवैःसंतरञ्जलम् ।

तादृशंफलमाप्नोतिकुपुत्रैःसंतरंस्तमः ॥ ९ । १११

अर्थ-तृणादि की नाव से जल को तरता हुआ मनुष्य जिस फल को प्राप्त होता है उसी प्रकार बुरे पुत्रों से दुःख को तरता हुआ दुःख ही को प्राप्त होता है।

कहिये मनु की दृष्टि में पौनर्भव मंझधारमें डुबाने वाला है या नहीं। अब रामकृष्ण जी को उचित है कि ऐसे पुत्र के उत्पन्न करने की कोशिश न करें।

रामकृष्ण-परन्तु शोक कि इस प्रकार की कष्ट और हानियों के होनेपर भी अनेक सज्जन नियोग तथा विधवा पुनः संस्कार से विरोध करते हुए निम्नप्रकार के आक्षेप करते हैं (१) पुनर्विवाह तथा नियोग शास्त्र विरुद्ध है (२) वह केवल शूद्रों के लिये नियत है (३) यह पशुधर्म है (४) कलियुग में वर्जित है परन्तु इन आक्षेपों पर भी जहां तक शास्त्र दृष्टि से विचार किया जावे तो यह अति ही असत्य और निर्मूल प्रतीत होंगे जैसा कि निम्न कारणों से सिद्ध है॥

समीक्षा-आगे आपने महाभारतके पते देकर नियोग सिद्ध किया है परन्तु हेडिङ्ग आपका विधवा विवाह पर है न मालूम इसका क्या कारण कि हेडिंग कुछ और सिद्ध किया जावे कुछ। फिर आपने सब से नीचे लिखा है कि अनेक सज्जनों की सम्मति में इस विचार से कि आज कल स्त्री पुरुष रतिप्रिय (शहवत परस्त) होनेके कारण नियोग नियमों का निर्वहन करने में असमर्थ हैं इस लिये नियोग वर्जित है। कहिये इन महाशय जी ने अपने पैर में अपने हाथ से किस प्रकार कुल्हाड़ी मारी है जब आजकल नियोग वर्जित है तो आजकल कलियुग है या सत्युग? यदि कहो कि कलियुग है तो 'कलियुग में वर्जित है, यह कथन आपका ही हो गया फिर यह निरर्थक, नियोगका पक्ष क्यों लिया? इन महाशय जीको अपने पूर्वापर के लेख की ख़बर नहीं। महाभारतके जो पते (पांडु आदि की उत्पत्ति) दिये हैं उनमें ऐसा कोई प्रमाण नहीं कि कलियुगमें नियोग हुआ या होना चाहिये हां एक कारण इन महाशय जीने यह लिखा है 'कलियुग वर्जितत्व, का आक्षेप अति निरर्थक है जब सत्ययुगादि युगोंमें इस की आवश्यकता थी तो कलियुग जैसे युग में तो इस की अति ही आवश्यकता है। पाठकवृन्द! इस लेखके निराकरण में इन्हीं महाशय का वही लेख पर्याप्त है जो लिख चुके हैं कि 'आज कल रति प्रिय होने के कारण नियोग निर्वहन करने में असमर्थ हैं, इस लेख से कलियुग जैसे युग में नियोग की आवश्यकता न रही। पाठकवृन्द! वास्तविक यह नियोग नीच कोटि का धर्म है क्योंकि सन्तान का सर्वथा क्षय अर्थात् वंश नाश होने पर माना गया है न कि काम शान्त्यर्थ। मनुमें नियोग इस प्रकार है।

सन्तान के अभाव में देवर से अथवा सपिण्ड से बड़ों की आज्ञा लेकर सन्तान उत्पन्न करावे। वह मनुष्य भी बड़ों की आज्ञा लेकर शरीर में घृत मल मौन होकर एक पुत्र उत्पन्न करे। जब गर्भ धारण हो जाय तब परस्पर में गुरु और पुत्रवधू

का वर्त्ताव करे। जो घृतादि की विधि को त्यागकर अपनी इच्छानुसार भोग करते हैं वे पतित हो जाते हैं।

यह हमने 'देवराद्वा,० ६। ५६ से लेकर 'नियुक्तौ यौ० ६। ६३ श्लोक तक का सूक्ष्मार्थ लिख दिया क्योंकि यह प्रकरण पाठकों ने अनेकवार देखा होगा। अव विचारणीय है कि कौन स्त्री पुरुष आज कल ऐसे हैं कि जो मनु के कहे हुए नियोग को कर सकें। क्या पुरुष शरीर से घी मलकर मौन रहेगा, क्या पुरुष ऐसे अमोघ वीर्य हैं जो एकवार संयोग होने पर गर्भ धारण होजाय, क्या गर्भस्थिति के अनन्तर फिर उनका सम्बन्ध छूट जायगा याद रखो ? व्यासादिके समान जितेन्द्रिय महर्षि अव नहीं है इस नियोग के वहाने से और भी अधिक व्यभिचार हो जायगा इसी आगे की वात को देख कर ही मनुजी महाराज ने आगे नियोग का निराकरण करदिया॥

नान्यस्मिन्विधवानारी नियोक्तव्याद्विजातिभिः।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना-धर्मंहन्युःसनातनम् ॥९।६४

अर्थ-द्विजातियों को विधवा स्त्री देवर आदि और पुरुष में नहीं नियुक्त करनी चाहिये देवर आदि में नियुक्त करने वाले द्विजाति सनातनधर्म को नष्ट करते हैं।

इस अर्थ पर अनेक सज्जन कहते हैं कि नियोग कहकर फिर खण्डन क्यों किया इस का उत्तर वृहस्पति ने अच्छा दिया है-

उक्तानियोगामनुना निषिद्धाःस्वयमेवतु।
युगक्रमादशक्योऽयं कर्त्तुमन्यैर्विधानतः ॥ १ ॥
तपोज्ञानसमायुक्ताः कृतत्रेतायुगेनराः।
द्वापरे च कलौ नृणां शक्तिहानिर्हिनिर्मिता ॥ २ ॥
अनेकधा कृताः पुत्रा ऋषिभिश्चपुरातनैः।
न शक्यंतेऽधुनाकर्त्तुं शक्तिहीनैरिदंतनैः ॥ ४ ॥

अर्थ—मनु ने अपने कहे नियोगों का स्वयम् निषेध किया है कारण कि युगों के क्रम से अन्य मनुष्य इस को विधि से नही कर सकते। सतयुग त्रेता द्वापर में मनुष्य तपज्ञान से युक्त रहे और कलियुगमें मनुष्यों की शक्ति की हानि कही है पहले ऋषियों ने अनेक प्रकार के पुत्र उत्पन्न किये हैं परन्तु शक्तिहीन अव के मनुष्य उन पुत्रों को नहीं उत्पन्न कर सकते॥ (शेष आगे) तुलसीराम शर्मा,

जीवात्मा और परमात्मा।

[गीतिका]

तुम सिन्धु हो हम विन्दु हैं, यह एक भारी भेद है।
तुम से हुए हम हैं पृथक्, इसका हमें भी खेद है॥
पर थे कभी तुम में मिले, इस का हमें अभिमान है।
फिरभी मिलें तुममें कभी, इसका हृदयमें ध्यान है॥ १॥
यह श्रृङ्खला आत्मीयता की, आप हम में एक है।
हम विन्दु हैं तुम सिन्धु हो, यह वाह्यरूप विवेक है॥
जो शक्ति तुम में है भरी, मुझ में वही है छारही।
हम एक दोनों थे कभी, यह वात है बतला रही॥ २॥
सन्ताप पाने से यथा, जलता कलेजा आपका।
होता तथा मेरे हृदय पर, ताप भी सन्ताप का॥
हम शुष्क होते हैं तुरत, सन्ताप पाते ही अहा।
सत्ता हमारी लुप्त हो, यह दुःख होता है महा॥ ३॥
तुम सिन्धु हो सन्ताप से भी, दीन हो सकते नहीं।
सर्वस्व अपना खर्च कर तुम हीन हो सकते नहीं॥
सन्तापकी क्या वात है, वड़वाग्नि ने क्या कर लिया।
ज्वाला तड़पती रह गई, फिर पेट अपना भर लिया॥ ४॥
यह शोक है इस विन्दु को घेरे सहस्रों आपदा।
सन्ताप मुख वाये हुये, उद्युक्त रहना सर्वदा॥
यह वायु भी मम ग्रास करने को यहां है फिर रहा।
हा! क्या कहूं अति घोर दुःखसे आज मैं हूं घिररहा॥ ५॥
सब कुछ तुम्हारे हाथ है, कुछ भी नहीं मैं कर सकूं।
क्योंकर किसी प्यासे हृदय को नीर से मैं भर सकूं॥
उपकार करने के लिये सामर्थ्य मुझ में है नहीं।
हा! विन्दु होकर क्या किया कोई ठिकाना है कहीं॥ ६॥
गम्भीर नीर अगाध तुम, हम तुच्छ अतिशय हो रहे।
वढ़ती तुम्हारी है सदा हम दीन सत्ता खो रहे॥
किसका करूं मैं कार्य हा! जो मैं स्वयं कुछ भी नहीं।
यदि सूख जाऊं मैं भला, फिर क्या रहा कुछ भी कहीं॥ ७॥

विनती हमारी मानके, हम को मिला लो आप मे ।
हम भी तुम्हारे साथ ही, सन्नद्ध हों सन्ताप में ॥
सुख दुःख का एकत्त्व हो, यह भिन्नता भी दूर हो ।
पार्थक्य दुख जाता रहे फिर एकता भरपूर हो ॥ ८ ॥
जब जीव मिलता ब्रह्म में, सारे दुखों को छोड़कर ।
होता अटल आनन्द है, सम्बन्ध उस से जोडकर ॥
वैसे मिलालो तुम मुझे, कितने दिनों भटका किये ।
दुःखमें अनाथों की तरह हम आज तक फटका किये ॥ ९ ॥
तुम और हो हम और हैं, यह भेद अब जाता रहै ।
सम्बन्ध दोनों का अटल, सब भांति से भाता रहै ॥
यह विन्दु भी फिर सिन्धु हो, आशा यही है लग रही ।
सत्प्रेम की आभा हृदय मे जगमगाती जग रही ॥ १० ॥
इस विन्दु से क्या लाभ है, यह मान कर अपमान है ।
तो विन्दु के ही योग से, यह नाम नीर निधान है ॥
अपनी अवस्था भूलनी, चहिये न सज्जन को कभी ।
तुम भी कभी थे विन्दु ही हो, हो गये नीरधि अभी ॥ ११ ॥
तुम विन्दुके फिर विन्दु ही, रह जावोगे नीरधि कभी ।
संसार दृश्यागार है, देखो दिखाता है सभी ॥
अभिमान तुम यह मत करो, हम आज हैं नीरधि बने ।
इस विन्दु के ही योग से, तुम हो गये हो अति घने ॥ १२ ॥
इस से हमारी मान कर, अपनी कथा को जानकर !
अब तू न इतनी शानकर निज अंग मुझको मानकर ॥
मुझको मिलाले मेलसे, मिलती सभी हित सम्पदा ।
तुझको न मुझको सिन्धु हे, रहना यहां है सर्वदा ॥ १३ ॥
मुझ को मिला ले सिन्धु हे, तेरा कृतज्ञ बना रहूं ।
कृत कृत्य हो तुम में मिलूं, सानन्द तुम मे मैं बहूं ॥
जलराशिरूप अनन्त ईश्वर, के सदृश मिलना मुझे ।
संयुक्त नित्यानन्द से, अरविन्दसा खिलना मुझे ॥ १४ ॥
हे नाथ ! करुणाधाम तुम को, बार बार प्रणाम है ।
तेरा स्मरण करना मनुष्यों का, बड़ा ही काम है ॥
तेरी दया पाये विना, भव दुःख का कब पार है ।
गुण गान करना आपका, जीवन सुधा का सार है ॥ १५ ॥

कविकुमार महेश्वरप्रसाद शास्त्री, साहित्याचार्य.

हमारे सहयोगी।

हिन्दी समाचार का विशेषाङ्क। हिन्दी समाचार देहली ने दो सप्ताह की छुट्टी लेकर जिस विशेषाङ्क के निकलने की सूचना निकाली थी वह विशेषाङ्क निकल गया और अच्छा निकला, यह संख्या इस लिये निकाली गयी थी कि या तो हिन्दी प्रेमी इसके स्थायी होने का ही कोई प्रबन्ध कर देंगे अन्यथा इसी अङ्ककी धूम धाम के साथ इसका अन्त हो जायगा, इस अङ्कके प्रारम्भ में भारतेन्दु बा० हरिश्चन्द्र का एक सुन्दर चित्र दिया गया है साथ ही और भी कई चित्र दिये गये हैं लेख सब सुपाठ्य हैं इन बातों के सिवाय इस अंक के निकालने से एक और बड़ा लाभ यह हुआ कि हिन्दी समाचार की स्थिति का प्रश्न भी निश्चय हो गया, दिल्ली के कुछ हिन्दी प्रेमी सज्जनों ने एक सभा स्थापित कर इसके चलाने का प्रबन्ध किया है जिस दिल्ली में सद्धर्मप्रचारक, विजय, और प्रह्लाद कामयाब न हो सके और उन्हें विदा होना पड़ा उसी दिल्ली में सहयोगी की यह सफलता सचमुच सन्तोषजनक है हम चाहते हैं कि इस पत्र की दिनों दिन उन्नति हो और राजधानी में एक अच्छे हिन्दी पत्रके अभाव की पूर्त्ति इसके द्वारा होती रहे, इसका वार्षिक मू० २) है इस पत्र की नीति भी अधिकांश सनातनधर्मानुकूल है।

प्रतिभा। लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद से जिस प्रतिभा के निकलने की धूम ने हिन्दी साहित्य रसिकों के चित्तों को आकर्षित कर रक्खा था वही प्रतिभा पंडित ज्वालादत्त शर्म्माके सम्पादकत्व में धूमधाम से निकल गई इसके प्रथमाङ्कमें चार कवितायें, एक गल्प एवं शेष नौ अन्यान्य लेख हैं। लेख भी सुप्रसिद्ध लेखकोंके लिखे हुए हैं, पर सम्पादकीय लेखों की कमी जरा खटकती है, सम्पादक का ध्यान अपने प्रधान लक्ष्य सुन्दर शिक्षापूर्ण गल्पों के लिखने में होना चाहिये, भाषा कहीं २ संशोधनीय है कागज छपाई कटाई की सुन्दरता अच्छी है वार्षिक मूल्य २) और मिलने का पता, मैनेजर 'प्रतिभा' लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद।

चिकित्सक। कानपुर से यह एक नया मासिकपत्र निकलने लगा है, इस के तीन अङ्क अभी तक हमें मिले हैं जो कि ठीक समय पर प्रकाशित हुये हैं। इस के सम्पादक और प्रकाशक राजवैद्य पं० किशोरीदत्त शास्त्री हैं, कानपुर के अन्य भी विद्वान् वैद्यों के लेख इसमें रहते हैं। पत्र सुपाठ्य है इसमें सन्देह नहीं, पर वैद्यक विषय के सुधानिधि, वैद्य, वैद्यकल्पतरु, आदि मासिकपत्रों के रहते हुए इस पत्र को

निकालने की आवश्यकता शास्त्रीजी ने क्यों समझी।सो हमारी समझ मे नहीं आया जो हो हम यही चाहते हैं कि उन पत्रोंकी अपेक्षा इसमें कुछ ऐसी विशेपतायें रहें जिस से पत्र प्रकाशन सार्थक हो इसके मुखपत्र पर जो श्लोक छपता है उसके तीसरे पाद के अन्तिम (दीनदीने) के स्थान में (दीनदीनो) चाहिये पूर्वोक्त शब्द से तो अर्थ विपर्यय हो जाता है, वार्षिक मूल्य १) मिलने का पता-मैनेजर चिकित्सक, जगद्भास्कर औपधालय कानपुर ।

समाज । यह भी एक नवीन मासिकपत्र है इस वर्ष कई हिन्दीपत्र नये निकलने लगे हैं उपयोगिता के विचार से इसका आसन किसी से कम नहीं, इसके सम्पादक शारदा सम्पादक पं० चन्द्रशेखर ओझा हैं, एक संस्कृत पत्रिका का सम्पादन करते हुए आपके द्वारा एक हिन्दी पत्रका भी सम्पादन होना विशेप हर्पजनक है। सामाजिक कर्त्तव्य सामाजिक शिक्षा और सामाजिक सगठन पर जोर शोर से आन्दोलन करना इसका मुख्य उद्देश्य है, यहां समाज शब्दसे किसी मत विशेप का ग्रहण पाठक न समझलें । प्रथमाङ्क मे ११ लेख हैं जो सभी अच्छे हैं। वार्पिक मू० २) मिलने का पता-व्यवस्थापक 'समाज, दारागञ्ज प्रयाग ।

विद्या । इस नवीन मासिपत्रिका के सम्पादक चन्द्रशेखर विद्यार्थी हर्दोई हैं। अभी तक इसकी पांच संख्याये प्रकाशित हो चुकी हैं, साधारण साहित्य के द्वारा पाठकों का मनोरञ्जन करना इस पत्रिका का उद्देश्य मालूम पडता है उद्देश्य अच्छा है पर भाषा मे कही २ अशुद्धिया रहती हैं इसमे सुधार की आवश्यकता है। केसर की क्यारी नामक लेख मे जो चुटकुले छापे जाते हैं उनमे सभ्यता का ध्यान रखना चाहिये। इस पत्रिका की मार्च वाली सख्यामें प्रारब्ध और पुरुपार्थ शीर्पक जो एक लेख छपा है वह शायद ब्राह्मणसर्वस्व से उद्धृत करके छापा गया है ऐसी दशा में पत्र का नाम स्पष्ट देना चाहिये था। इस पत्रिका का आवरण पत्र चिकने कागज पर तीन रग को स्याहियो से छपा है भीतर की छपाई साधारण है वार्पिक मूल्य २॥) है मिलने का पता उपर्युक्त।

वैष्णवधर्मपताका। पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की यह एकमात्र मासिक पत्रिका है गोस्वामी श्रीमद्देवकीनन्दनाचार्य महाराज के स्मरण में वैष्णवसम्प्रदाय के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ इस पत्रिका का आविर्भाव हुआ है इस पत्रिका के उद्देश्योंमें यह पढ़कर हमें बडा हर्प हुआ कि इस में सनातनधर्मानुमोदित किसी भी सम्प्रदाय के विरुद्ध लेख नही छपेंगें यही नही इसमें वृथा आत्मस्तुति भी नहीं की जायगी ऐसा ही होना चाहिये हम इस पत्रिका की वृद्धि चाहते हैं और चाहते हैं कि सनातनधर्मानुमोदित सभी सम्प्रदाय परस्पर विरोध को त्याग मिलकर सनातनधर्म के प्रचार में सहायता करें। इस अंक के सब लेख सुन्दर हैं हां भाषा में जरा प्रान्तीय पन है पर वह

हानिकारक नहीं, प्रथमाङ्क से गोस्वामी श्रीदेवकीनन्दनाचार्य महाराजका जीवनचरित्र भी प्रकाशित होने लगा है यह शायद अभी कई संख्याओं में निकलेगा, मासिकपत्रिका के आवरण पृष्ठ पर श्री आचार्य जी का एक चित्र रहता है वार्षिकमूल्य २) और मिलनेका पता पण्डित माधव शर्मा प्रकाशक वैष्णवधर्म पताका चन्दावाड़ी बम्बई।

प्रभात। यह पत्र कानपुर से निकलने लगा है हमारे देखने में इसकी अभी तक दो संख्यायें आई हैं इसके सम्पादक भानुञ्जयसहाय बी० ए० तथा जगमोहन'विकसित, हैं यह थियोसोफिस्ट सम्प्रदायके अन्तर्गत एक विशेष सम्प्रदायका पत्र है इस सम्प्रदाय का नाम अंग्रेजी (Order of the star in the East) और हिन्दीमें पूर्वके तारे का सम्प्रदाय है इस सम्प्रदायके मानने वालोंका विश्वास है कि "एक बड़े गुरु जगत् में शीघ्र पधारेंगे और इसी लिये हम इस प्रकार रहने की इच्छा करते हैं कि जब वे पधारें तब हम उनको पहिचान सकें" इस सम्प्रदायके सिद्धान्तों पर हमें कुछ कहना नहीं पर इस पत्रमें इस प्रकारके लेखभी रहते हैं कि जिनसे इस सम्प्रदायके मानने वालों के सिवाय और लोग भी लाभ उठा सकते हैं पृष्ठ संख्या २५ हैं वार्षिक मूल्य १॥) है मिलने का पता–बा० भानुञ्जयसहाय बी० ए० "प्रभात" कार्यालय कानपुर।

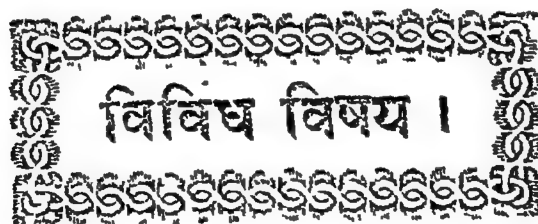
भूमिहार ब्राह्मण। यह भूमिहार जातिका मासिक पत्र है इस जातिके लोग कुछ दिनों से ब्राह्मण होनेका आन्दोलन कर रहे हैं इसमें भूमिहारोंका कोई दोष नहीं समय के प्रभाव से अन्य रथकार आदि अनेक जातियां भी ब्राह्मण होने का आन्दोलन मचा रही हैं तब भूमिहार ही क्यों पीछे बैठे रहते, इन आन्दोलन कारियों को ध्यान करना चाहिये कि यदि ये लोग पहिले से ही ब्राह्मण थे तो इनके अब्राह्मण होने की शङ्का कैसे उठी जिस पर इन्हें ब्राह्मण होने का आन्दोलन करना पड़ा, इस पत्र के आवरण पृष्ठ पर महाभारत का एक श्लोक छपा करता है, मालूम नहीं किस उद्देश्य से पत्र सम्पादक उसे छापते हैं उस श्लोक में तो भूमिहारों के ब्राह्मणत्वका परिचायक कोई पद नहीं, प्रवृत्त निवृत्त शब्दसे सम्पादक की कोई अभीष्ट सिद्धि नहीं हो सकती प्रवृत्तिमें भी निवृत्ति और निवृत्ति में भी प्रवृत्ति रह सकती है ये मानसिक धर्म हैं जिस तात्पर्यसे उक्त श्लोकमें निवृत्ति शब्द कहा गया है वैसे कोई भी भूमिहार नहीं हैं, डिमाई अठपेजा सायज के ३२ पेज इस में प्रतिमास रहते हैं लेख भूमिहार जाति के उपयोगी रहते हैं उक्त जातीय सज्जनों को ग्राहक बन कर पत्र की उन्नति करनी चाहिये, वार्षिक मूल्य १॥) और मिलने का पता मैनेजर "भूमिहार ब्राह्मण" काशी है।

सुधा वर्षक। यह मासिकपत्र पंडित रामचन्द्र वैद्य शास्त्री के सम्पादकत्व में अलीगढ़ से प्रकाशित होता है इसका आकार छोटा और पृष्ठ संख्या बत्तीस प्रति मास रहती है इसमें वैद्यक विषयक लेख और बंगला भाषासे अनुवादित किये गल्प भी

निकलते हैं, मासिक पत्र साधारणतः अच्छा है, संशोधन में सम्पादक महाशय को ध्यान देना चाहिये इसका वार्षिक मूल्य वहुत थोड़ा अर्थात् सिर्फ ॥।) हैं हम इनकी उत्तरोत्तर उन्नतिके अभिलाषी हैं । प्राप्ति स्थान पं० रामचन्द्र वैद्य शास्त्री सुधावर्षक औषधालय-अलीगढ सिटी।

प्रेम विलास । यह एक हिन्दी का मासिकपत्र है जो स्वामी मित्रसेन जी के सम्पादकत्व में गुजरांवाला से प्रकाशित होता है, इसमे ईश्वर भक्ति और आध्यात्मिक विषयों की चर्चा रहती है, पर इसकी भाषा और लिखने का ढंग ऐसा है कि जिससे ग्राहकोंकी रुचि इधर होना कम सम्भव है यह अब तक उर्दू भाषा मे ही निकलता था अब हिन्दी प्रचार की शुभकामना से सम्पादक ने इसे हिन्दी में भी निकालना प्रारम्भ कियाहै वार्षिक मू० १।) मिलनेका पता-मैनेजर प्रेमविलास, गुजरान वाला।

विद्यार्थी। पं० रामजीलाल शर्म्मा के सम्पादकत्व में प्रयागसे प्रकाशित होने वाला विद्यार्थी पत्र अपनी आयुके तीन वर्ष व्यतीत कर चुका. चैत्र से उसका चतुर्थ वर्ष प्रारम्भ हुआ है इस अङ्कको सम्पादकने विशेष सजधजसे निकाला है इस संख्या में छोटे वड़े २६ लेख हैं जो सब युवकोंके लिये लाभदायक हैं पिछले ३ वर्षोंमें विद्यार्थी ने विद्यार्थी-समाज की अच्छी सेवाकी है। इस अङ्क से छोटेवालकोंके लिये वालविनोद शीर्षक देकर कुछ पृष्ठ रिजर्व रक्खे गये हैं इनमे सिर्फ वालकोंके लिये उपयोगी लेख ही प्रकाशित होगे पत्र का वार्षिक मूल्य २) रु० और मिलने का पता-विद्यार्थी कार्यालय प्रयाग है।



विविध विषय।

गत माघ अमावास्या १९७३ का सूर्यग्रहण।

भारत! कभी समय था कि तेरे धर्मावतार युधिष्ठिर जैसे राजा सूर्यग्रहण वा सोमग्रहणीका पुण्यावसर प्राप्त करनेके लिये जङ्गलोंमे तपस्या किया करतेथे पर उन्हें यह सौभाग्य प्राप्त न होता था हाय आज भारत तेरे पञ्चाङ्गोंमें सूर्यग्रहण जैसे अत्यावश्यक विषयों की सूचना तक नहीं मिलती जैसा कि गत माघ सूर्यग्रहण में हुआ कि इधर ग्रहण लग रहा है उधर जनता स्नान ध्यान ईश्वर प्रार्थना वा दान पुण्य के विनिमय सांसारिक बखेड़ों में व्यग्र है इसका कारण कुछ तो कलि का महत्त्व भी है पर कुछ

पञ्चाङ्गों में शैथिल्य के कारण ऐसी बातों की सूचना न होना भी है। हां एक दैवज्ञ शिरोमणि पं० रूपकिशोर जोशी बावा राजानुष्ठानाचार्य काटेश्वर ग्वालियर ने सूर्य-ग्रहण जैसे परमावश्यक विषय पर विशेष दृष्टि दे इस सूर्य ग्रहणको सूचना कुछ काल पूर्व १६ जनवरी १९१७ के ट्रिब्यून नामक समाचार पत्र में दी थी जो सत्य निकली इस विषय में उक्त पं० रूपकिशोर शर्मा जी की जितनी प्रशंसा की जावे स्वल्प है भारत को ऐसे दैवज्ञों का ऋणी समझना चाहिये भारतके विद्वानोंको प्रशंसापत्रादि से धनाढ्यों को धन से ऐसे दैवज्ञों का अवश्य प्रोत्साहन करना चाहिये ताकि यह ज्योतिःशास्त्र भारतमें कुछ काल तो बना रहे उक्त दैवज्ञ जीकी ग्वालियर राजधानीके अधिपति महाराज से भी कुछ प्रतिष्ठा की जानी चाहिये अन्त में मैं भारत के पञ्चाङ्ग कर्त्ताओं से पञ्चाङ्गों पर विशेष दृष्टि तथा प० रूपकिशोर जैसों की सम्मति लेने की प्रार्थना कर पं० रूपकिशोरजीका अति धन्यवाद करता हूं कि जिनके अनुपम ज्योतिः-शास्त्रज्ञान से हमें इस सूर्यग्रहण में स्नान ध्यानादि का शुभ अवसर प्राप्त हुआ है इस ग्रहण के विशेष निर्धारणार्थ हमने लाहौर, अमृतसर जम्मू जयपुर आदि नगरोंके ज्योतिषी पण्डितों के पास प्रार्थनापत्र भी भेजे जिन में से अमृतसर वा जयपुर से उत्तर तक नहीं आया जिस से मालूम होता है कि भारत से धार्मिक बातों का प्रेम परस्पर में उठता जाता है पर भारत चाहता है कि धर्म कार्य में पूर्व से पश्चिम और दक्षिण से उत्तर तक एक कोण से उठी हुई ध्वनि तत्काल पहुंच जावे अतः बद्धाञ्जलि प्रार्थना है कि प्रत्येक भारतवासी आगे धर्मकार्य में आलस्य न किया करे।

भवदीय दीनानाथ शर्म्मा शास्त्री फिरोजपुर नगर (पञ्जाब)

ऋषिकुल-आयुर्वेद विद्यालय।

आयुर्वेद के प्रेमियों को समाचार पत्रों द्वारा यह तो विदित हो ही चुका है कि ऋषिकुल की प्रबन्धकारिणी सभा ने ऋषिकुल में एक अष्टाङ्ग आयुर्वेद विद्यालय की स्थापना स्वीकार करली है और उसके लिये उद्योग भी आरम्भ होगया था। परन्तु बीच में अ० भा० आयुर्वेद महामण्डल के साथ पत्रालाप होनेके कारण (कि-दोनों संस्थाओं की ओर से एक सम्मिलित विद्यालय स्थापित किया जावे) कार्य शिथिल कर दिया गया था। परन्तु पूना के अधिवेशन में अब यह निश्चय हो गया है कि महामण्डल के विद्यालय का सम्बन्ध किसी धार्मिक संस्था से न हो कर स्वतन्त्र किसी स्थान पर खोला जावे। इसलिये ऋषिकुल कमेटी उचित समझती है कि जिस विद्यालय के लिये उस ने उद्योग आरम्भ किया था और जिस के पाठ्य क्रमका वर्णन संक्षिप्तरूप से ऋषिकुल के शिक्षाक्रम में भी किया गया है। उस के शीघ्र स्थापन करने के लिये यत्न किया जावे। कार्यारम्भ के लिये ऋषिकुल के पास पर्याप्त भूमि

तथा कुछ स्थान भी है जिनको आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता है। कुछ छात्र भी ऐसे सुयोग्य तैय्यार हो गये हैं जो वैद्यक पढ़ने को उत्सुक हैं। इस लिये आवश्यक है कि देशके गण्य मान्य वैद्योंकी सम्मति से पाठ्यक्रम तैय्यार कर लिया जावे और उस के अनुसार शीघ्र कार्यारम्भ करदिया जावे और क्रमशः उसे उन्नति दीजावे इसलिये सम्पूर्ण वैद्य महानुभावों से साग्रह प्रार्थना है कि वह ऋषिकुल के आगामी उत्सव पर जो ३० मई १९१७ से २ जून १९१७ तक होगा, ऋषिकुल में पधारने की कृपा करें। उन के ठहरने आदि की सब व्यवस्था ऋषिकुल की ओर से रहेगी, परस्पर परामर्श से जो शिक्षाक्रम निश्चित हो जावेगा वह सर्वोत्तम होगा। इसके अतिरिक्त आगामी माघ मास में प्रयाग के कुम्भ पर सेवा समिति का क्या २ कर्त्तव्य होगा उस पर भी विचार हो जावेगा और वहां जाने के लिये वैद्य महानुभावों का निर्वाचन भी इसी समय हो जावेगा। अपने आगमन की सूचना नीचे लिखे पते पर दें। जिस से सब व्यवस्था ठीक रहे॥

भवदीय दर्शनाभिलाषी—नारायणदत्त शर्मा वैद्य

मन्त्री वैद्यसेवासमिति ऋषिकुल हरद्वार

बड़ौदा नरेश का धर्मनाशक कानून

श्रीमान् बड़ौदा नरेश नवीन सभ्यता के बड़े पक्षपाती हैं आप कितनी ही बार विलायत हो आये हैं और यूरोप के ढंग का सा सुधार अपनी रियासत में करने के प्रबल इच्छुक हैं, कुछ बातें आपने कर भी डाली हैं पहिले सुना गया था कि शासन सभा में एक अन्त्यज जातिके मनुष्यको आपने मेम्बर चुना था, पर वह वेचारा-कुर्सी पर बैठ भी न सका कि चुनने के दूसरे दिन उसकी मृत्यु हो गई, हालमें जो समाचार मिले हैं वे और भी भयङ्कर हैं सुनते हैं एक कानून का मसौदा आप की कौन्सिल में पेश है उसका आशय यह है कि जिन जातीय नियमोंके सम्बन्धमें बड़ोदे की अदालत यह व्यवस्था कर देगी कि इनका मानना आवश्यक नहीं है उनका उल्लङ्घन करनेवालेको कोई पञ्चायत या विरादरी जातिच्युत नहीं कर सकेगी और करने वालेको इस कानून के अनुसार दण्ड होगा इस समय, कन्याओं का विवाहवय समुद्रयात्रा, किसी की मृत्यु पर ब्राह्मण भोजनादि न कराना, या अशौच में मुण्डन न कराना इत्यादि विषयों में स्वतन्त्रता देने का विचार किया गया है, बड़ौदा नरेशका शास्त्र मर्यादाओं पर इस प्रकार का हस्तक्षेप कदापि उचित नहीं, उन्हें क्या अधिकार है कि वे अपनी प्रजाको धर्म विरुद्ध कार्य करनेके लिये विवश करें, ब्रिटिश गवर्नमेण्टने सब धर्मों को स्वाधीनता दे रक्खी है, पर बड़ौदा नरेश अपने राज्य में इसके विरुद्ध कर रहे हैं, सम्भव है कि आर्यसमाजी और सुधारक होने के कारण बड़ौदा नरेश इन बातों को

धर्म न समझें, पर सनातनधर्म के शास्त्रों के अनुसार, कुटुम्बी की मृत्यु पर मुण्डन न कराने वाला, तथा ऋतुमती कन्या को अविवाहित रखने वाला अवश्य पतित हैं। यद्यपि अवस्था विशेष में इसके प्रतिवाद भी हैं पर उन बातों का निर्णय विद्वानों की सम्मतिसे बिरादरीही कर सकतीहै बड़ौदा महाराज नहीं, महासम्मेलन, महामण्डल और सनातन धर्म सभाओं को शीघ्र इस धर्मनाशक कानून के विरोध में सभायें कर अपने प्रस्ताव बड़ौदा नरेशके पास भेजने चाहिये और यदि महाराज न मानें तो भारत सरकार तक इस बात की खबर पहुंचाना चाहिये।

श्री सनातन धर्म सभा सिथरौली (अलीगढ़) का द्वितीय वार्षिकोत्सव मिती चैत्र कृ० ५। ६ संवत् १९१३ को पं० गिरधारीलालजी के सभापतित्व में सानन्द समाप्त हुआ। जिसमें धर्म भूषण पं० जगन्नाथ मिश्र पं० वालकृष्ण हाथरस पं० तुलसीराम शर्मा सितारी (अलीगढ़) पं० नारायणदत्त शास्त्री महौ (अलीगढ़) पं० ज्योतिप्रसाद सिथरौली आदि महानुभावों के ईश्वर भक्ति, मूर्त्ति पूजन, सत्य, पतिव्रताधर्म आदि विषयों पर चित्ताकर्षक प्रभावशाली व्याख्यान हुए बीच २ में बौनई निवासी पं० लक्ष्मणप्रसाद जी के मधुर गान से श्रोता लोग अधिक प्रसन्न होते थे खुशी की बात यह है कि उक्त मिती पर वेश्या का नृत्य हुआ करता था जिसको हटाकर पं० दामोदर जी ने यह सभा कराई अतः पं० जी को धन्यवाद दिया जाता है।

सद्धर्मप्रचारक की लीला।

ता० २८ अप्रैलके सद्धर्मप्रचारकमें भारतमित्र और ब्राह्मणसर्वस्वके वर्णव्यवस्था में चलते हुए विचार पर एक नोट छपा है, सद्धर्मप्रचारक लिखता है कि "ब्राह्मणसर्वस्व की दृष्टि से भारतमित्रके सम्पादक आर्यसमाजी हैं और भारतमित्र की दृष्टिमें सर्वस्व के सम्पादक के कपड़ोंमें छिपा हुआ आर्यसमाजी देह दिखाई देता है तब हम मान लेते हैं कि दोनों ही समाजी हो गये" सद्धर्मप्रचारक के इस हर्ष से हमें भी हर्ष है और हम चाहते हैं कि ब्रा०स० और भारतमित्र के सम्पादक की तरह सभी आर्यसमाजी सम्पादक मूर्त्ति पूजा, अवतार, तीर्थ, श्राद्ध, वर्णव्यवस्था आदि वेदोक्त सिद्धान्तों का मण्डन और आर्यसमाज के सोलह आने मिथ्या मन माने सिद्धान्तोंका खण्डन करने लगें, यदि ऐसा करने पर भी सनातनधर्मी सम्पादकोंको समाजी कहा जाय तो कोई हानि नहीं, क्योंकि शाब्दिक झगड़ासे तात्पर्य्य नहीं, मुख्य विवाद तो वैदिक सिद्धान्तों पर है।

सिकन्दरावाद में उत्सव।

सनातनधर्म कुमार सभा सिकन्दरावाद जि० बुलन्द शहरका वार्षिकोत्सव वैशाख वदी ३-४-५ मंगल बुध, बृहस्पतिवार को धूम धाम से हुआ, बाहर से आये हुए पं०

श्रवणलाल जी, प० कैलाशचन्द्र जी, प० गोकुलचन्द्र जी आदि महोपदेशकों के भिन्न २ विषयों पर प्रभावशाली व्याख्यान हुये। स्थानीय मुंशी हरिज्ञानसिंह जी का व्याख्यान भी प्रशंसनीय रहा।

चम्पारनमें गान्धी जी।

ब्राह्मणसर्वस्वके एक सम्वाद दाता सूचित करते हैं कि मिस्टर गान्धीजीके आनेसे चम्पारन को वडा लाभ पहुंचा हैं, यहां के निलहे गोरों के जो अत्याचार कृषकों पर होते हैं उनकी जांच करने के लिये आपने पदार्पण किया है आप कृषकों की गवाही लिखते जाते हैं तथा लुटे हुए ग्रामों को आपने प्रत्यक्ष जाकर देखा हैं अहर्निश हजारो की भीड होती है विशेष कर बेलवा कोठी का आपने निरीक्षण किया है, अभी हालमें निलहे गोरोंने विहार सरकारसे प्रार्थनाकी थी कि मिस्टर गांन्धीकी जांच वन्द करदी जाय, और इसी सम्बन्ध में महात्मा गान्धी मिस्टर माड साहव से मिले थे पर यह मालूम हुआ है कि महात्मा जी की जांच वन्द नहीं होगी।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

सूचना

नियमावली के नियम ४६ के अनुसार आगामी अष्टम हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति के आसन के लिये पांच सज्जनोंकी सूची वनानेको रविवार मिति श्रा० शु० ३ स० १६७४ ता० २२ जुलाई सन् १६१७ ई० को सन्ध्या समय ४ बजे स्थायी समिति का एक अधिवेशन सम्मेलन कार्यालय मे होगा।

स्थायी समितिके सदस्योंसे निवेदन है कि वे निश्चित तिथि पर अधिवेशन मे प-धारें अथवा यदि न आसकें तो उससे पहिले मेरे पास अपनी सम्मतिके अनुसार पांच उपयुक्त सज्जनों की सूची भेजदें। स्वागत समिति और सम्बद्ध संस्थाओं के मन्त्रियों से निवेदन है कि वे अपनी अपनी संस्थाका अधिवेशन कर उसमें एक सूची वनवाकर निश्चित तिथि से पहिले भेजदें।

पुरुषोत्तमदास टण्डन-प्रधान मन्त्री,

आवश्यकता।

है एक दृढ़ सनातनधर्मी अध्यापक की जो काशीकी मध्यम परीक्षाके ग्रन्थ अच्छी तरह पढ़ा सके, वेतन २०) मासिक होगा। प्रथम मध्यम परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों की भी आवश्यकता है, उनको भोजन पाठशाला से मिलेगा। आवेदन पत्र जून तक आजाने चाहिये जो महाशय व्याख्यान भी दे सकें उन का अधिक ध्यान दिया जायगा॥ मन्त्री श्री सनातनधर्म सभा चन्दौसी यू पी०

PRINTED BY B. D. MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

नवीन छपी पुस्तकें।

पूजाफूल।

यह पुस्तक अभी हाल ही में छपी है इसमें पंडित मुरलीधर पाण्डेय और पंडित मुकुन्दधर पाण्डेय की लिखी हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवंती और चमत्कारिणी ७४ कविताओं का संग्रह है कविता प्रेमियों—विशेष करके खड़ी बोली की हिन्दी कविता के रसिकोंको—यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये इस के देखनेसे मालूम पड़ेगा कि उत्तम कविता किसे कहते हैं। हिन्दी कविताओंका ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा। मूल्य ॥)

अपूर्व नौका।

पीलीभीतके ला० राधेलाल अग्रवालने इसे लिखा है इस छोटीसी पुस्तकमें सात कहानियां छापी गई हैं कहानियां रोचक तो हैं ही पर साथ ही उनसे बहुत सा ज्ञान सम्बन्धी उपदेश भी मिलता है कोई कोई तो कहानियां ऐसी हैं कि पढ़ते समय हंसी आये विना नहीं रहती। मू० ≠)

हिन्दु शब्द मीमांसा।

अमरौधाके पं० कालूरामजी शास्त्रीने इस पुस्तकको लिखा है इसमें अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दु नाम हमारा मुसलमानोंने नहीं रक्खा, यह शब्द मुसलमानी मतसे पहिले का है बड़ी अच्छी पुस्तक है मू०)॥

पाराशरस्मृति।

अष्टादशस्मृतियों में पाराशरस्मृति भी है इसको हमने पृथक् छपवाया है महर्षि पाराशर के कहे धर्म कलियुग में विशेष मान्य हैं। यद्यपि सब युगोंमें सब स्मृतियों के जानने पढ़ने और तदनुसार आचरण करके अपने सुधार करनेकी आवश्यकता है पर जिन लोगोंको विस्तृत धर्म शास्त्र देखने का अवकाश नहीं है उनको कमसे कम यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये ऊपर मूल श्लोक तथा नीचे भाषाटीका है। यह पुस्तक आराकी सनातनधर्म परीक्षा के कोर्स में नियत है। मूल्य ॥) है।

विधवाधर्ममीमांसा।

इस पुस्तक में विधवाओं को किन २ नियमों का पालन करना चाहिये कैसे वे सदाचारिणी रह सकती हैं इस का पूरा व्याख्यान है सम्पादक ब्रा० स० ने इसे लिखा है। मू०)॥

दामिनी।

यह बड़ा अच्छा एक छोटासा उपन्यास है। इसकी हृदय द्रावक घटनायें थोड़ी देर के लिये आप के चित्त को डांवाडोल करदेंगी खाना पीना भूल जायंगे एक प्रति मंगाकर देखिये मू० ≈)

पुस्तकें मिलनेका पता—

मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा।

षोडश संस्कारविधि

पर

हिन्दी पत्रोंकी सम्मतियां ।

(ब्रह्मचारी वैशाख सं० १९७३ से उद्धृत)

षोडशसंस्कार विधि । इस कर्मकाण्ड-हीनता के जमाने में इस पुस्तक की आवश्यकता कौन न समझेगा । बहुत से लोग तो सनातनधर्मी होते हुये भी इधर कोई ऐसी पुस्तक न मिलने से आर्य समाजी संस्कारविधि का सहारा ढूंढते थे, जिस से बिचारे कर्मभ्रष्ट हो जाते थे । और २ भी कई ऊटपटांग पद्धतियों से बड़ी दुर्दशा होती है, सो विशिष्ट विद्वान् के द्वारा ऐसी पुस्तक प्रस्तुत होना सौभाग्य की बात है इस में संस्कारों की पद्धतियां तो सूत्रानुकूल हैं हीं, और उन की कर्त्तव्यता हिन्दी भाषामें भी लिख दी गई है । प्रचलित संस्कारोंके अतिरिक्त स्मार्त और श्रौत अग्न्याधानप्रयोग भी लिखा है । संस्कारों का पूर्व पश्चाङ्ग भी विस्तार से दे दिया गया है इस से पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है । कर्मकाण्ड कराने वाले इस का अवश्य संग्रह करें । अन्यान्य धार्मिक जन भी इस की एक २ प्रति अपने पास रक्खें तो माननीय पुरोहितों द्वारा उनके यहां संस्कारोंकी दुर्दशा न होसके । पुस्तक बड़ी है , मू० २) रु०

(सरस्वती अक्टूबर सन् १९१७ से उद्धृत)

दूसरी पुस्तक का नाम है—षोडशसंस्कारविधिः । इसकी पृष्ठ संख्या ३२६ और मूल्य दो रुपया है । आकार इसका भी बड़ा है । इसमें पारस्कर-गृह्य-सूत्रोंके अनुसार षोडश संस्कारों की विधि का वर्णन है । मन्त्र-आदि और व्याख्या संस्कृत में है । उसका भावार्थ नीचे हिन्दीमें दिया गया है । इसके सम्पादक और अनुवादक पण्डित भीमसेन जी शर्म्मा हैं ।

सर्वसाधारण के सुभीते के लिये अब यह पुस्तक १॥) मे ही दीजाती है ।

REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपरंप्रधान्यम्।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात्॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र।



भाग १४	वृष ज्येष्ठ सौर वि० १९७४ मई १९१७	अङ्क ५

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≥) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देरहोनेपर ≥) प्रतिके हिसाबसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगो से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रबन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास,तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८),६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बटाई एक बार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूठे विज्ञापन नही बांटे जांयगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	वृष ज्येष्ठ सौर वि० १९७४ मई १९१७	अङ्क ५

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

देवस्यवयंसवितुःसवीमनि श्रेष्ठेस्याम
वसुनश्चदावने । योविश्वस्यद्विपदोय-
श्चतुष्पदो निवेशनेप्रसवेचासिभूमनः ॥

ऋ० ५ । १ । १५ । २ ॥

अन्वयः—मन्त्रद्रष्टा ऋषिराह—वयं सवितुः सर्वशुभाशुभप्रेरकस्य देवस्य परमेश्वरस्य श्रेष्ठे धर्मानुकूले सवीमनि प्रेरणे नित्यकालं स्याम तत्परा भवेम। वसुनो धनस्य दावने दाने च विशेषेण तत्पराः स्याम मनुष्यजातौ दानधर्मस्य प्राधान्याद्वसुनश्च दावनइति पृथगुक्तम्। हे सवितर्देव! यस्त्वं विश्वस्य सर्वस्य द्विपदो मनुष्यादेश्चतुष्पदो गवादेश्च भूमनो भूम्नो महत्त्वं प्राप्तस्य देवादेरपि निवेशने स्थितौ प्रसवे सृष्टौ च प्रभुरसि तस्य सवितुर्देवस्येति पूर्वेण सम्बन्धः। प्रेरणार्थस्य सूधातोः सवितुः सवीमनीति पदद्वयं बोध्यम्॥

भावार्थः—सर्वस्मिन् स्थावरे जङ्गमे चैकरूपेणैवावस्थितमात्मतत्त्वं सूर्यप्रदीपादिप्रकाशवत्सर्वस्य प्रेरकमस्ति, चिदात्मैव सर्वं शुभाशुभं कारयति स चानिच्छत्वान्न क्वापि लिप्यते। अत्र सवीमनीत्यस्य श्रेष्ठविशेषणेनाशुभकर्मणि प्रेरणस्य व्यावृत्तिरपेक्षिता। छान्दोग्योपनिषद्युक्तम्—यदा मनुष्यैः प्रजापतिरेवं पृष्टः-उपदिशतु नो भवानिति तदा तेन प्रजापतिना दइत्येकेनैवाक्षरेण दानमुपदिष्टम्। मानवजातौ लोभाधिक्यादेव दानधर्मस्य प्राधान्यमुपदिष्टमतएव वसुनश्च दावनइति कथनेन मनुष्येषु दानधर्मस्य प्राधान्यं प्रदर्शितम्।

शुभंवायदिवापापं द्वेष्यंवायदिवाप्रियम्।
तत्सर्वंत्वयिसंन्यस्तं त्वत्प्रयुक्तः करोम्यहम्॥
यत्करोषियदश्नासि यज्जुहोषिददासियत्।
यत्तपस्यसिकौन्तेय! तत्कुरुष्वमदर्पणम्॥

इत्युक्तपद्याभ्यां प्रतीयते यः स्वयमनिच्छन्सत्तामात्रेणायस्कान्तवत्सर्वं कारयति सर्वकर्मणां तदर्पणे सति बन्धनहेतुरहंकारो निवर्त्तते तन्निवृत्तौ विषयासक्तिः स्वयमेव शाम्यति। यावदीश्वरार्पणतात्पर्यं मनुष्येण सम्यङ्नावबुध्यते तावत्पुण्यकर्मसु दानधर्मे च प्रेरणाय भगवतोऽन्तर्यामिणः प्रार्थना कार्या ॥

भापार्थः-मन्त्रद्रष्टा ऋषि कहते हैं कि हे सर्व प्रेरक देव (यो विश्वस्य द्विपदः) जो तुम सब मनुष्यादि दो पग वाले प्राणियों की तथा (यश्चतुष्पदः) जो तुम चार पग वाले गौ आदि प्राणियों की और (भूमनः) प्रशस्त महिमा वाले देवादि की (निवेशने प्रसवे चासि) रचना करने और स्थिति रखने में सर्वशक्तिमान् प्रभु हो। (सवितुर्देवस्य श्रेष्ठे सवीमनि) सब शुभ अशुभ कर्मों के प्रेरक उन देव परमेश्वरकी श्रेष्ठ धर्मानुकूल प्रेरणा में और (वसुनश्च दावने वयं स्याम) अन्नादि धनका दान करने में हम लोग नित्य तत्पर हों अर्थात् भगवत्प्रेरित हमारा मन और इन्द्रिय दानादि शुभ कर्मों में लगें और अशुभ कर्म में उदासीन रहें। मनुष्यजाति में दान धर्म की प्रधानता होने से धन के दान को पृथक् कहा है॥

भावार्थ-स्थावर जङ्गमरूप सब संसार में एक ही रूप से अटल अवस्थित व्याप्त परमात्मा सूर्य और दीपकादि के प्रकाश के तुल्य सबका प्रेरक है। अर्थात् एक चेतनात्माही मन बुद्धि आदि को चैतन्य करता हुआ सब शुभ अशुभ कर्म कराता है, वह इच्छा रहित होने से किसी में लिप्त नहीं होता। इस मन्त्र में (सवीमनि) पदका श्रेष्ठ विशेषण होने से अशुभ कर्ममें प्रेरण की व्यावृत्ति अपेक्षित है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है कि जब मनुष्य जाति के प्रतिनिधियों ने यह पूछा कि आप हम लोगों को उपदेश कीजिये। तब उन प्रजापति ने एक द अक्षर के द्वारा दान धर्मका उपदेश किया मनुष्य जाति में लोभकी अधिकता होनेसे दान की सम्भावना न देखते हुए प्रजापतिने दान धर्म की प्रधानता का उपदेश किया था इसी कारण इस मन्त्र में (वसुनश्च दावने) इन पदों के द्वारा मनुष्यों में दानधर्म की प्रधानता दिखायी है। गीतादि ग्रन्थों में लिखा है कि शुभ वा अशुभ तथा द्वेष्ययुक्त वा प्रिय जो कुछ काम मैं करता हूं हे परमात्मन् उस सब को तुम पर छोड़ता हूं क्योंकि तुम्हारी प्रेरणा से ही मैं करता हूं। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं कि हे अर्जुन ! तुम जो कुछ भोजन, होम तप और दानादि कर्म करते हो उस सबको मुझ में समर्पण करो। इन श्लोकों से

प्रतीत होता है कि जो ईश्वर स्वयं कुछ भी इच्छा न करता हुआ अपनी सत्ता मात्र से चुम्बक के तुल्य सब कुछ कराता है। जैसे चुम्बक में कुछ इच्छा न होने पर भी उसके समीप होने मात्र से लोह में क्रिया उत्पन्न हो जाती है वैसे ही चुम्बक स्थानी व्याप्त आत्मा के समीप होने मात्र से लोहस्थानी अन्तःकरण में चेतनता वा क्रिया उत्पन्न होती है। उस परमात्मा में सब कर्मों का समर्पण कर देने पर बन्धन के हेतु अहंकार की निवृत्ति होती है और उस अहंकार की निवृत्ति होने पर विषय भोगकी तृष्णा स्वयमेव शान्त हो जाती है। जब तक ईश्वरार्पण का तात्पर्य मनुष्य सम्यक् नहीं जान पाता तब तक पुण्य कर्म करने में और विशेषकर दान धर्म में प्रेरणा करने के लिये अन्तर्यामी भगवान्से प्रार्थना और उसकी स्तुति श्रद्धा भक्ति से करनी चाहिये।

वेदसर्वस्वालोचन।

(गताङ्क से आगे)

यद्यपि किन्हीं भी कारणों से वैदिक मुनिने ऋग्वेद के पश्चात् अथर्ववेद का आलोचन किया है तथापि हमने ऋगालोचन के पश्चात् अर्थात् प्रसिद्ध वेद गणना के अनुसार यजुर्वेद पर लिखना ही उचित समझा है हमारा वक्तव्य है कि ऋग्, यजुः, साम, अथर्व चारों वेदों का यही क्रम क्या किसी विशेष कारण से प्रसिद्ध हुआ अथवा अकारण ही मनमाना क्रम चला दिया गया ?। मूल संहिताओं में ब्राह्मण ग्रन्थों में तथा अन्य ऋषि प्रणीत ग्रन्थों में सैकडों प्रमाण ऐसे विद्यमान हैं जिन में ऋग्, यजुः, साम अथर्व यही क्रम दिखाया गया है यथा–

यस्मादृचोअपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानियस्यलोमान्यथर्वाङ्गिरसोमुखम् ॥

अथर्वसंहितायाम् ।

जब ऐसे अनेक प्रमाणोंमें ऋक्के पश्चात् यजुः,का व्यवहार अतिप्राचीन काल से चला आता है तब इसका विशेष कारण अवश्य होना चाहिये। और वह कारण यही है कि यागानुष्ठान रूप धर्म के प्रतिपादनार्थ अर्थात् यज्ञ विधानार्थ वेद की रचना हुई है यह पहिले भी हम लिख चुके हैं, उसी यज्ञकी सिद्धि में प्रथम द्वितीय तृतीय चतुर्थ कक्षा का उपयोग दिखानेके लिये ऋग् यजुःसाम अथर्व क्रमसे वेदोंका व्यवहार होता

चला आया है। जप यज्ञों में ऋग्वेद की सर्वोपरि प्रधानता सर्व सम्मत है, यही बात ऋग्भाष्य के उपोद्घातमें सायणाचार्य ने कही है। द्वितीय तृतीय संख्या में यजुः तथा साम की उपयोगिता जप यज्ञोंमें है, इस लिये यही क्रम जप यज्ञों के लिये भी उपयुक्त माना जाता है। अब रहा विधियज्ञोंकी बात सो यद्यपि यज्ञके स्वरूप निर्माणमें यजुर्वेद ही प्रधान है इसी लिये यज्ञ तथा यजुः दोनों शब्दों का व्युत्पादन एक ही यज् धातु से हुआ है तथपि यज्ञ का प्रधान मर्म वा अङ्गी अंश आहुति देना है और यज्ञों की सब आहुतियां जब याज्या पुरोनुवाक्या नामक ऋचाओं से ही प्रायः होती हैं तब आहुति रूप मुख्य यज्ञाङ्ग की सिद्धि ऋचाओं द्वारा होने से विधियज्ञों में भी ऋक् ही प्रधान है और द्वितीय तृतीय कक्षा में यजुः तथा साम का उपयोग है, इस कारण ऋक् के पश्चात् क्रम से यजुका ही विचार करना चाहिये, वैदिक मुनिने ऋक् के बाद अथर्व का विचार क्रम रक्खा सो अनुचित है। अर्थात् ऋग्वेद के पश्चात् यजु को छोड़ कर अथर्व का आलोचन करना वैदिक मुनि की भूल है॥

यजुर्वेद का विचार करते हुये वैदिक मुनिने पृ० १११ में लिखा है कि "सब से प्रथम चरक ऋषि ने यजुः संहिताका काण्ड प्रपाठक तथा अनुवाकोंमें अवान्तर विभाग करके प्रवचन किया" यदि यह बात सत्य मान ली जाय तो इसी पुस्तक के पृष्ठ ३८ में यह लिखागया है कि "पहिले वेद एक था, व्यास भगवान्ने उसके ऋग्, यजुः साम और अथर्व यह चार विभाग करके पैल, वैशंपायन, जैमिनि और सुमन्तु नामके चार शिष्योंको यथाक्रम पढ़ाया। इसके अनुसार एक वेद के विभाग कर्त्ता व्यास जी हुए उन्होंने यजुः संहिता सब से प्रथम वैशम्पायन को पृथक् रूपसे पढ़ायी। यदि इसको सत्य मानें तो व्यास जी के विभाग करने से पहिले यजुर्वेद संहिता पृथक् पुस्तक ही नहीं था और विभाग के पश्चात् वैशंपायन जब प्रथम यजुर्वेदाध्येता हुए तो उनसे पहिले अन्य कोई चरकादि हो ही नहीं सकता किन्तु यजुः संहिताके सब से पहिले अध्यापक वैशंपायन हो सकते हैं तब ऐसी दशा में "सब से पहिले चरक ऋषि ने यजुः संहिताका प्रवचन किया,, यह कल्पना कैसे सत्य होगी!। चरणव्यूहादि अनेक ग्रन्थों की एकानुमति होने से यजुर्वेद के वैशम्पायन का प्रथमाध्यापक होना सत्य जान पड़ता है॥

वैदिक मुनिने पृष्ठ १११ में यह भी लिखा है कि—"यह सब से पहिली यजुर्वेद संहिता अब लोकमें नहीं है" सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि चरक संहिता पहिली नहीं थी किन्तु वैशम्पायन के शिष्यों वा प्रशिष्यों में कोई चरकाध्वर्यु हुए होंगे ऐसा अनुमान है। और पहिली यजुः संहिता ही अब तैत्तिरीय यजुः संहिताके नामसे प्रसिद्ध है। वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य नामक गुरु शिष्यों में जो विरोध हुआ

उसको अनुचित समझते हुए वै० मु० ने वहुत लिखा है परन्तु हमारा विश्वास यह है कि प्राचीन काल के अवतार तथा ऋषि मुनियों के अनुचित प्रतीत होने वाले चरित्रों का भी अभिप्राय सज्जनों की रक्षा दुष्टों अर्थात् असुर राक्षसादिका विध्वंस और धर्म की स्थापना ही है। जैसे भगवान् रामचन्द्रको वनवास होना, शोक से राजा दशरथ का स्वर्गवास होना, कैकेयी का स्वार्थ वा निर्दयता, राजगद्दी में विघ्न यह सव अनुचित जान पड़ता है। यदि यह सव न होता और रामजी का राज्याभिषेक हो जाता तो रामावतार की सफलता कैसी होती? अर्थात् कदापि नहीं। रामजीके वन मे पहुंचने पर तपस्वी ऋषियों ने जिन २ कष्टों का वर्णन किया उससे रामचन्द्रजीको जो वोध हुआ वह अयोध्यामे वैठे रहने पर कदापि नहीं होता। जव विघ्नकर्त्ता खर दूषणादि राक्षसों का विध्वस और शूर्पणखा की नाक न कटती तो वन में जाने पर भी रावण के मन में सीताहरण का संकल्प क्यों होता और वन मे गये विना अयोध्या राजधानी से रावण की शक्ति नहीं थी जो सीता का हरण कर सकता और सीता हरण जैसे अपराधके विना,रावणके सर्वनाशका सकल्पभी क्यों कर होता? और रावण के वधसे जो संसार का उपकार हुआ वही रामावतार का मुख्य उद्देश्य था। इससे सारांश यह निकला कि राज्याभिषेक मे विघ्न होकर १४ वर्ष के वनवासादिरूप अनर्थ वा अनिष्ट में से इष्ट उत्तम फल निकला, वह अनिष्ट ही इष्टका कारण वन गया लिखा है कि (अनर्थोहिभवेदर्थो०) अनर्थ ही कहीं अर्थ हो जाता है॥

इस रामावतारोपाख्यान के उत्तम सारांश के अनुसार वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य के विरोध रूप अनिष्ट का भी वास्तवमें उत्तम फल अवश्य हुआ है कि शुक्ल यजुः संहिता का प्रादुर्भाव गुरु शिष्य के विरोध से ही हुआ है अन्यथा कदापि न होता, और शुक्ल यजुः सहिता के प्रादुर्भाव से वेद के विषय यज्ञ के जानने तथा करने मे जो सुगमता और सरलता हुई है उसको वैदिक याज्ञिक लोग ही जान सकते हैं किन्तु वैदिक मुनि जैसे वेदविषयानभिज्ञ लोग कदापि नहीं जान सकते। गुरु शिष्य के विरोधोपाख्यान का तात्पर्य संक्षेप से यह है कि वैशम्पायन के सव शिष्यों में अन्यों की अपेक्षा अधिक तेजस्वी तपस्वी याज्ञवल्क्य जी थे, इसी कारण जो सत्य वार्त्ता याज्ञवल्क्य ने कही थी उस,से अन्य शिष्यों का अपमान होना समझा गया। परन्तु याज्ञवल्क्य ने जो कहा था वह स्वाभिमान द्योतनार्थ वा परापमानार्थ नहीं कहा गया था। वैशम्पायन से पढ़े वेद का वमन याज्ञवल्क्य ने किया इसका अभिप्राय यही हो सकता है कि यदि विद्या को मूर्त्तिमती करके वमन किया तो भी भक्षितान्न वमन के तुल्य वह घृणित वा निन्दित नहीं है इसलिये शुद्ध विद्याको ग्रहण करनेसे अन्य शिष्यों को कुछ दोष नहीं लग सकता, केवल वमन भावना से मात्र दोष कह सकते है। और

यदि शब्दार्थ का कुछ भी विचार न करके लक्ष्यार्थ पर ध्यान देकर तात्पर्य निकाला जाय तो संक्षेप से अभिप्राय यही है कि याज्ञवल्क्य तेजस्वी तपस्वी थे उन्होंने अन्य गुरु भ्राताओं की बराबरी स्वीकार नहीं की इस कारण गुरु से नहीं बनी, याज्ञवल्क्य ने गुरु के पास पढ़ना छोड़ दिया, पढ़ा हुआ यजुर्वेद योगबल से भुला दिया हो यह भी एक प्रकार का त्याग कहा जायगा। इस घटना से पहिले यजुर्वेद संहिता एक ही थी किन्तु शुक्ल कृष्ण भेद नहीं था। यह भी नियम है कि आगे २ होनेवाले नूतन परिष्कारों में सुगमता वा कुछ अच्छापन अवश्य होता है। पहिले से विद्यमान यजुर्वेद में होता ऋत्विजों के कामों में विनियुक्त ऋग्वेद की याज्यापुरोऽनुवाक्या ऋचा बीच २ मिश्रित हैं और उन २ यजुर्मन्त्रों के व्याख्यान वा विधायक ब्राह्मण वाक्य भी प्रथम यजुर्वेद में विद्यमान थे, परन्तु याज्ञवल्क्य ऋषि ने आदित्य देवता का आराधन करके जो नूतन परिष्कृत यजुर्मन्त्र प्राप्त किये उनमें याज्यापुरोनुवाक्या ऋचा और ब्राह्मण वाक्य मिश्रित नहीं किन्तु अध्वर्यु लोगों के कामों में विनियुक्त होनेवाले केवल यजुर्मन्त्र ही यज्ञोंके क्रमानुसार संग्रहीत हुए हैं, इसी कारण ब्राह्मण वाक्यादि मिश्रित न होने से वाजसनेयी संहिता का नाम जब शुक्ल यजुः संहिता हुआ तब इसी कारण ब्राह्मण वाक्यादि मिश्रित होने से पहिली यजु संहिता का नाम कृष्ण यजुः संहिता हो गया, कृष्ण शब्द का अर्थ यहां काला नहीं है किन्तु शुक्ल का अर्थ केवल यजुः और कृष्ण का अर्थ ब्राह्मणादि से मिश्रित यजुः यही अभिप्राय सर्व सम्मत है॥

पृष्ठ ११४ में वैदिक मुनिने कहा है कि-" यदि शुक्ल यजुर्वेदके मन्त्रोंकी गहरी जांच की जाय तो वे कृष्ण यजुर्वेद उसके ब्राह्मण तथा तैत्तिरीयारण्यक में सबके सब पाये जाते हैं। सो इतना ही नहीं किन्तु शुक्ल यजुर्वेद के शतपथ ब्राह्मण में भी जो कुछ लिखा गया है, वह भी मनःकल्पित कथा भाग को छोड़कर शेष सबका सब तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यक में विद्यमान हैं" इस कथन से वैदिकमुनि का अभिप्राय यह है कि शुक्लयजुः संहिता और शतपथ ब्राह्मण में नूतनता कुछ नहीं किन्तु पहिली संहिता और ब्राह्मण वा आरण्यक का ही पिष्टपेषण दोषग्रस्त सब लेख किया गया है, सो इस बातको वैदिक मुनिने तो बड़ा दोष समझा परन्तु हम भी शुक्लयजुःसंहिता और शतपथब्राह्मण को नूतन नहीं समझते किन्तु तैत्तिरीयसंहिता, तैत्तिरीय ब्राह्मण और तैत्तिरीयारण्यक से ही संगृहीत मानते हैं, यदि नूतन वाक्य रचना होती तो ये शुक्लयजुःसंहिता और शतपथ ब्राह्मण अर्वाचीन पौरुषेय सिद्ध हो जाते, नूतन रचना न होनेसे उक्त संहिता और ब्राह्मण अपौरुषेय वेद सिद्ध हो जाते हैं। अब रहा पिष्टपेषण वा पुनरुक्त दोषकी सम्भावना सो भी वैदिक मुनिकी भ्रान्ति है, इस भ्रान्तिकी निवृत्ति तभी हो सकती है जब वैदिक मुनि वेद के विषय यज्ञ की प्रक्रिया का मूल

अभिप्राय जानें। शुक्लयजुःसंहिता के पृथक्तया प्रगट हो जाने पर दर्शपौर्णमास तथा अग्निहोत्रादि यज्ञ के विधान में कितनी सुगमता हुई इस को याज्ञिक लोग ही जान सकते हैं॥

शतपथ ब्राह्मणमें वैदिक मुनि ने कुछ मनःकल्पित कथा भाग बताया है यह बड़ी भारी भूल है। क्योंकि जब इतिहासपुराणादि के कथा भाग का मूल ऋग्वेद की ऋचाओं में स्पष्टरूप से प्रायः विद्यमान है तब शतपथ के कथा भाग को मनःकल्पित कहने का साहस कर बैठना कितना दुरभिमान वा प्रमाद है?। शतपथ ब्राह्मण का मूल तैत्तिरीय ब्राह्मणादि में विद्यमान है, इसी कारण वह नूतन कल्पित होने से पौरुषेय नहीं किन्तु उसका अपौरुषेय वेद होना उक्त हेतु से सिद्ध है और शतपथ ब्रा० के सगृहीत विधायक वा व्याख्यानादि रूप वाक्य जैसे यहां संगठित किये गये हैं वैसे ही तैत्तिरीय ब्राह्मणादि में नहीं थे यही उन का नूतन आविष्कार है॥

पृष्ठ ११४ में वै० मु० ने लिखा है कि "यह [याज्ञवल्क्य] जन्म से ब्राह्मण नहीं था। और माता के नाम से ही प्रसिद्ध था,, आगे पृष्ठ ११६ में लिखा है कि "याज्ञवल्क्य के पिता का नाम वाजसनि था, उस का पुत्र होने से याज्ञवल्क्य का नाम वाजसनेय हुआ, जब कि याज्ञवल्क्य के पिता के वाजसनि नाम होने का विरोधी प्रमाण नहीं है, तब माताके ही नामसे प्रसिद्ध कहना वदतोव्याघात दोष स्पष्ट ही है। किसी पुष्ट प्रमाण के विना किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को ऐसा लिख देना कि अमुक पुरुष जन्म से ब्राह्मण नहीं था क्या वै० मु० का यह असह्य अन्याय नहीं है?। क्या मानहानि का अभियोग चलाने योग्य यह अपराध नहीं है?। याज्ञवल्क्य जैसे प्रतिष्ठित राजमान्य महर्षि को अपमान सूचक शब्दों से कहना भी कैसा घृणित है?। यदि याज्ञवल्क्य जन्म से ब्राह्मण नहीं थे तो जन्म से कौन थे और इस में क्या प्रमाण है? यदि कोई प्रमाण नहीं तो ऐसा मिथ्या क्यों लिखा?॥

पृ० ११६ में वै० मु० ने लिखा है कि " तित्तिर ऋषिकी बनाई हुई संहिता तैत्तिरीय संहिता और वाजसनेय की बनाई हुई संहिता वाजसनेयी संहिता कहाई " इस लेख से यह सिद्ध होता है कि उन २ ऋषियोंने ही उस २ नाम की वेदशाखा बनाई है, इस कारण ऋग्वेदादि की सभी शाखा जिस २ ऋषि के नाम से प्रसिद्ध हैं, उन सबके निर्माता ऋषि लोग ही हैं क्योंकि किसी वेदकी कोई भी संहिता ऐसी नहीं जो किसी ऋषि के नाम से प्रसिद्ध न हो। इससे वेदों की सभी शाखा मनुष्य कृत पौरुषेय सिद्ध हो जाती हैं। परन्तु ऋग्वेद के आलोचन मे पं० सत्यव्रत सामश्रमी के कथन का निराकरण करते हुये वै० मु० ने पृ० ४४ में लिखा है कि " प्रवचन कर्त्ता के भेदसे संहिता का नाम शाखा है यह जैमिनि मुनि का कथन है, प्रवक्ता, प्रवचन कर्ता और अध्यापक ये तीनों पर्याय शब्द हैं" वै० मु० के इस कथनसे सिद्ध होता है कि जिस २

ऋषि के नाम से जो २ शाखा प्रसिद्ध हुई है उस २ के बनाने वाले वे ऋषि नहीं थे, किन्तु अध्यापक हुए हैं। विचारशील पाठकों को शोचना चाहिये कि वै० मु० के परस्पर विरुद्ध इन दोनों में कौन सत्य है? अर्थात् वदतो व्याघात दोष से दोनों ही लेख यद्यपि खण्डित हो जाते हैं तथापि ऋषि सम्प्रदाय के अनुकूल होने से पृ० ४७ का पिछला लेख वैदिक मुनि का सत्य है क्योंकि—

आख्या प्रवचनात् ॥ पूर्वमीमांसा अ० १। पा०१। तथा तेन प्रोक्तम्॥पाणिनीयाष्टके अ०४। पा०३ तत्र महाभाष्यम्

नहि छन्दांसि क्रियन्ते नित्यानि छन्दांसि अतएवर्षिप्रोक्तानि नतु ऋषिकृतानि। लौकिकग्रन्थास्तु ऋषिभिः कृता अयमेवकृतप्रोक्तयोर्विशेषः ॥

भा०—पूर्व मीमांसाकार जैमिनि मुनिने कहा है कि कठ कौथुमादि शाखाओं के नाम उन २ कठादि ऋषियोंके प्रवचन करनेके कारण हुये हैं अर्थात् उस२ नाम वाली शाखा का अध्यापनाध्ययनादि द्वारा उस२ ऋषिने पहिले २ प्रचार किया इस कारण स्मारक रूप से उस २ शाखाके साथ उस २ ऋषिका नाम चलाया गया है। पाणिनीय व्याकरण अध्याय ४ के तृतीय पादमें प्रोक्त और कृत दो अधिकार भिन्न २ किये हैं, यदि दोनों एकार्थ माने जावें तो एक व्यर्थ होजाय इस पर महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनि ने कहा है कि वेद की शाखा किसीकी बनाई हुई नहीं हैं इसी कारण वेद शाखा नित्य हैं। परन्तु लौकिक ग्रन्थ कृत नाम उन २ के बनाये हुये हैं वे नित्य नहीं किन्तु पौरुषेय नाम मनुष्य पुरुष कृत हैं। इससे भी सिद्ध है कि तैत्तिरीय वाजसनेयादि ऋषि प्रोक्त शाखा ग्रन्थ हैं, तैत्तिरीय शब्द में (तित्तिरि वरतन्तु०) सूत्र करके और (शौनकादिभ्यश्छन्दसि) सूत्र करके वाजसनेयी शब्द में प्रोक्तार्थ प्रत्यय हुए हैं। प्रोक्त नाम अध्यापित का है। ऊपर जो पातञ्जल महाभाष्यका प्रमाण लिखा गया है सो पुस्तक समीप न होनेसे स्मरण द्वारा लिखा है इससे पाठ भेद होना सम्भव है परन्तु अभिप्राय यही होगा। इन उक्त व्याकरणादि के प्रमाणों से वैदिक मुनि का वह कथन स्पष्टतया विरुद्ध है कि तित्तिरि और वाजसनेयकी बनाई वह २ वेद शाखा है, चाहैं यों कहो कि सभी ऋषियों के कथन से विरुद्ध है ॥

आगे पृ० ११७ से लेकर चार पृष्ठों में वै० मु० ने शुक्ल कृष्ण यजुः शब्दों पर बहुत लिखा है, इसीके साथ सत्य व्रत सामश्रमीके निरुक्तालोचनके उस अंशका खण्डन भी किया है, उन वैदिक मुनिका यह चेष्टित भी युक्ति प्रमाण से विरुद्ध है क्योंकि यज्ञानुष्ठान क्रम की सुगमता और ब्राह्मण पाठ से मिश्रित न होना दो कारण

स० ब्र० सामश्रमी ने शुक्ल यजु की शुक्लता के लिखे हैं, हमारी सम्मति में सामश्रमीका यह कथन अच्छा और प्रत्यक्ष प्रमाणके भी अनुकूल है वै० मु० की अपेक्षा सामश्रमी वेद विषयके जानकार अधिकथे यह इन दोनोके लेख मिलानेसे सिद्ध हो जाता है, शुक्ल शब्द का अर्थ शुद्ध होने पर भी वस्त्रादि के सदृश यजुःकी शुद्धता अपेक्षित नहीं है। किन्तु जौ चनादि विजातीय अन्न मिश्रित न होने से जैसे शुद्ध गोधूम कहे जावें वैसे ही ब्राह्मणादंश मिश्रित न होने से शुक्ल यजुः नाम केवल (खालिस) यजुः कहे गये हैं। कृष्ण शब्द का भी अर्थ अशुद्ध वा काला नही है किन्तु ब्राह्मणादि अन्याश मिश्रित होना ही अर्थ है,। कृष्णयजुःसंहिता मे भी ब्राह्मणादि अश अभिप्राय समझने आदि की सुगमता के ही लिये संगृहीत किया जाने से उपयोगी अवश्य है, तथा याज्यापुरोऽनुवाक्या ऋचाओं के संग्रह से सुगमता भी एक प्रकार की अवश्य है, इससे कृष्ण यजुः का अर्थ निकृष्ट वा घृणित निन्दित समझना भूल है, भेद केवल इतना ही है कि दीर्घ जीवी तपस्वी वेदविज्ञान में विशेष रुचि तथा विशेष श्रम करने वाले ब्राह्मणोके लिये कृष्ण यजु. ही विशेष उपयोगी है और अल्पायु अल्पशक्ति वालो के लिये शुक्ल यजुः विशेष उपयोगी है। जैसे ससारमें एकही काम की सिद्धिके लिये देश काल वस्तु भेदसे अनेक प्रकार उपयोगी माने जाते है वैसे यागानुष्ठान रूप कार्यकी सिद्धिके लिये देश भेदसे कृष्ण यजु' शुक्ल यजुः ये दोप्रकार हुए हैं। सूर्य नारायण की उपासना से महर्षि याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुः के संगठन करने का ज्ञान प्राप्त हुआ तदनुसार पुरातन यजुः सहिता, ब्राह्मण, और आरण्यकादि से एक नूतन सुगम और सक्षित प्रकार से शुक्ल यजु. संहिता का सग्रह मात्र किया है किन्तु नूतन कुछ नही बनाया॥

आगे पृ० १२१ में वैदिक मुनि ने लिखा है कि—"सब यज्ञो का मूल अग्न्याधान सर्व सम्मत है, जब तक अग्न्याधान न हो कोई यज्ञ नही किया जा सकता सब यज्ञों के मूल कारण अग्न्याधान को छोड़कर प्रथम ही दर्श पूर्णमास यज्ञ का निरूपण कैसे हो सकता है?। जब दर्शपूर्णमास यज्ञ के लिये बलात् प्रथम अग्न्याधान करना पड़ता है, तब दर्शपूर्णमास यज्ञ से पूर्व अग्न्याधान का निरूपण ही सर्वथा अच्छा कहा जा सकता है। यदि याज्ञवल्क्य को यज्ञ क्रमका सौष्ठव (अच्छापन) ही अभीष्ट होता, तो अवश्य प्रथम अग्न्याधान, तदनु अग्निहोत्र, तदनु दर्शपूर्णमास, तदनु चातुर्मास्य, तदनु सोमयाग आदि का निरूपण करना। उसको तो द्वेषवश आर्यजाति के सर्वस्व कर्मकाण्ड के भण्डार, प्राचीन चरकाध्वर्यु संहिता (यजुर्वेद) का लोप ही इष्ट और उसके स्थान में उसी के सदृश एक नई संहिता का प्रचार ही वांछित था" ॥

वै० मु० का यह कथन वास्तव में वेद विषयक अज्ञान से ठसाठस भरा हुआ है।

क्योंकि प्रथम तो कृष्ण शुक्ल दोनों यजुर्वेदों में प्रथम दर्श पूर्णमास यज्ञ का ही आरम्भ है किन्तु यह क्रम महर्षि याज्ञवल्क्य जी का कल्पित नहीं है। और आपस्तम्बीय यज्ञ परिभाषा में लिखा है कि—

दर्शपूर्णमासाविष्टीनां प्रकृतिः।

दर्शपूर्णमास यज्ञ सब इष्टियों का प्रकृति है। ऐसी दशा में विचारना यह है कि जब यज्ञ प्रक्रिया को सम्यक्तया जान लिये विना कोई भी मनुष्य यागानुष्ठान कर ही नहीं सकता तब वेद विषय को सम्यक् पढ़ने जानने की आवश्यकता प्रथम सिद्ध हो गयी, इसी लिये ऋषियों ने वेदाध्ययन की आवश्यकता प्रथम कही है—

स्वाध्यायोऽध्येतव्यः। ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्मः षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च॥

अधीयीरंस्त्रयोवर्णाः स्वकर्मस्थाद्विजातयः। मनुः।

अङ्गहीनाश्रोत्रियषण्ढशूद्रवर्जम्॥ कातीयश्रौतसूत्रे

स्वाध्यायनाम वेद पढ़ना चाहिये-यह श्रुति है, पढ़ने द्वारा जीविका हो वा न हो सब दशा में ब्राह्मण का कर्त्तव्य धर्म है कि वह छहों अङ्गों के सहित वेद को पढ़े और जाने। अपने २ वर्ण का कर्म करना चाहते हुए ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण नियम के साथ उपनयन संस्कार होजाने पर वेद को पढ़ें। काण बधिरादि अङ्गहीन विधि पूर्वक वेदाध्ययन नहीं करने वाले, नपुंसक ऐसे ब्राह्मणादि को तथा शूद्र को यज्ञ करने का अधिकार नहीं है अर्थात् अङ्गहीनादि को छोड़ के शेष ब्राह्मणादि द्विजों को यज्ञानुष्ठान का अधिकार है। जब अश्रोत्रिय नाम वेद न पढ़े हुए मनुष्य को अधिकार ही नहीं-चाहे यों कहो कि वेद को पढ़े जाने विना कोई द्विज यज्ञ करही नहीं सकता तब यज्ञ करने के लिये वेद का पढ़ना जानना पहिले आवश्यक होगया। ऐसी दशा में अग्न्याधानरूप प्रथम कर्त्तव्य के लिये दर्शपौर्णमास विधि को प्रथम जानना आवश्यक होगया क्योंकि श्रौताधान में होने वाली पवमानादि विकृति इष्टियों को दर्श पूर्णमास के जाने विना कर ही नहीं सकता। इस लिये पढ़ने जानने के क्रम से शुक्ल कृष्ण दोनों ही यजुर्वेदों का संगठन हुआ है सो सर्वथा ठीक है। वेदका संगठन उस को पढ़ने जानने के क्रम से किया गया और कर्मानुष्ठान का क्रम जान लेने के आधीन रहा और यह भी शोचना चाहिये कि वेदाध्ययन करने वाले सभी मनुष्य यज्ञानुष्ठान कर नहीं पाते तब जो लोग यज्ञ नहीं करपाते उनको भी वेदके यथावत् पढ़ने जानने मात्र से कुछ स्वतन्त्र शुभ फल अवश्य होता है, उनके लिये भी वेदके पढ़ने जाननेका यही दर्शपौर्णमासादि क्रम ठीक समझा गया है। वास्तव में याज्ञवल्क्य को दर्शपौ-

र्णमासादि के जानने पर ही श्रौताधान हो सकने का सौष्ठव अभीष्ट था क्योंकि उनने यज्ञ विधानको सम्यक्तया जान लिया था। और वै० मु० ने वास्तविक यज्ञ विधान का तत्त्व नहीं जान पाया तब अपने अज्ञानका क्रोध महर्षि याज्ञवल्क्य पर दिखाया वैदिक मुनि ने प्रथम अग्न्याधान तदनन्तर अग्निहोत्र लिखा है, इससे भी उनके अज्ञान की पुष्टि होती है। क्योंकि यदि अमावस्या को कोई मनुष्य अग्न्याधान करे क्योंकि

अमावास्यायामग्नीनादधीत अमावास्यायामग्न्याधेयम्।

इन श्रुति और कल्पसूत्र के प्रमाणों के अनुसार अमावस्या के दिन प्रातःकाल अग्नियों को स्थापित करेगा तो उसी दिन प्रथम दर्शेष्टि करनी होगी तदनन्तर साय-काल होने पर अग्निहोत्र करेगा। इस पक्ष में अग्न्याधान के पश्चात् अग्निहोत्र लिखना वे समझी है, और सोमाधान पक्ष माना जाय तो आधान के पश्चात् उसी दिन यजमान दीक्षित बनेगा तब आधानानन्तर दीक्षणीया इष्टि उसी दिन करनी होगी, इस पक्ष में भी आधान के पश्चात् सोमयाग अग्निष्टोम का आरम्भ हो जायगा तब भी अग्निहोत्र लिखना ठीक नहीं है। यदि कोई मनुष्य माघ फाल्गुन वा चैत्र में श्रौता-धान करैगा तो चातुर्मास्य यागों से पहिले अन्वारम्भणीया अथवा वैश्वानरपार्ज-न्येष्टि करने पश्चात् आग्रयणेष्टि का समय होने से उसको करके तब चातुर्मास्य यागों का प्रारम्भ होगा। महर्षि याज्ञवल्क्य को चरकाध्वर्यु संहिता का द्वेषी क्रोधी बताया यह भी वै० मु० का अज्ञान है, जैसे ऋग्वेद सामवेदादि की अनेक शाखा लुप्त हुई वैसे चरकाध्वर्यु संहिता भी हुई, याज्ञवल्क्य को दोष लगाने वाला ही दोषी है।

पृ० १२५ में वैदिक मुनिने लिखा है कि " वास्तव में ब्राह्मण भाग जैसे कृष्ण यजुर्वेद में मिलाया है वैसे शुक्ल यजुर्वेद में भी मिलाया गया है, "

देवा यज्ञं ब्राह्मणानुवाको विंशतिरनुष्टुभः।सोमसम्पत् [सर्वानुक्रमणी २]अश्वस्तूपरो ब्राह्मणाध्यायः [सर्वानु०२] ब्रह्मणे ब्राह्मणमिति द्वे कण्डिके, तपसेऽनुवाकश्च ब्राह्मणम् [सर्वानुक्र०]

(देवायज्ञमतन्वत) [शु० यजु०१९।१२] इत्यादि वीस अनुष्टुप्छन्दों वाला अनुवाक ब्राह्मण है और इस ब्राह्मण रूप अनुवाक मे यज्ञ को सोम सदृश निरूपण किया गया है। (अश्वस्तूपरो०) [शु० यजु० २४।१] इत्यादि सारा अध्याय ब्राह्मण है (ब्रह्मणे ब्राह्मणम्) [शु० यजु०३०।५ इत्यादि दो कण्डिका और (तपसे कौलालम्) इत्यादि अध्याय समाप्ति पर्यन्त पूरा अनुवाक ब्राह्मण है, यदि उपर्युक्त इन सब दोषों को

ध्यान में रख कर शुक्ल यजुर्वेद को कृष्णयजुर्वेद और कृष्णयजुर्वेद को शुक्ल यजुर्वेद कहा जाय तो अनुचित प्रतीत नहीं होता ॥ „

वैदिक मुनिका यह ऊपर का लेख भी भ्रान्तिमूलक है। क्योंकि ब्राह्मण ग्रन्थ मन्त्र भाग के व्याख्यान स्वरूप हैं, पारस्कर गृह्यसूत्र में कहा है कि-

विधिर्विधेयस्तर्कश्च वेदः ॥

विधि और तर्क नाम अर्थवाद ब्राह्मण कहाता और विधेय नाम विनियोज्य मन्त्र है, विनियोजक ब्राह्मण है, मन्त्र ब्राह्मण दोनों का नाम वेद है। ब्राह्मणादि सभी शब्द गौण और मुख्य दो प्रकार से सर्वत्र प्रयुक्त हैं, विनियोजक तथा व्याख्यानरूप ब्राह्मण गत वाक्य मुख्य ब्राह्मण कहाता है, और अन्य प्रकारके अर्थवादादि अंश गौण रूप ब्राह्मण वाक्य हैं क्योंकि अर्थवादादि रूप अनेक मन्त्र भी दीखते हैं। शुक्लयजु में यदि कहीं अल्प ब्राह्मणांश है जैसे ऊपर वैदिक मुनिने सर्वानुक्रमणी के प्रमाण से दिखाया है तो वह विनियोज्य होनेसे उसमें पढ़ा गया है किन्तु शु०यजुमें व्याख्यानरूप मुख्य ब्राह्मणांश नहीं है और कृष्ण यजुमें मुख्य ब्राह्मणांश अधिक है। गौणांश कुछ होने पर न होने में माना जाता है, और मुख्यांश जहां होता वहां विशेष रूपसे उसकी सत्ता कही जाती है, इस लिये विनियोज्य रूप अर्थात् अध्वर्यु वर्ग के यज्ञ में पढ़नेका भाग जिसको पढ़के अध्वर्यु लोग कुछ कर्म करते हैं उस वाक्य समूह में गौण ब्राह्मणत्व होने पर भी वह मन्त्रान्तर्गत मान कर शुक्ल यजु में पढ़ा गया है। शुक्लयजुः संहितामें जिस २ दर्श पौर्णमास श्रौताधान, अग्निहोत्र आग्रयण, चातुर्मास्य, निरूढ़पशु और अग्निष्टोमादि सात सोमयाग, द्वादशाह, गवामयन, आदित्यानामयन, सर्वमेध, नरमेध चयन सौत्रामणि,राजसूय अश्वमेधादि यज्ञकलाप का वर्णन किया है उसी सब कर्मकाण्ड का वर्णन कृष्णयजु में भी किया गया है, तब ऐसी दशा में क्या कारण है कि जितना परिमाण शुक्लयजुः संहिता का है उससे चतुर्गुण से भी अधिक कृष्णयजुः संहिता क्यों हो गयी ?। यदि दो सहस्र श्लोक परिमाण शुक्ल यजुः संहिता होगी तो आठ सहस्र परिमाण कृष्णयजुः संहिता क्यों हो गई ?। इसका यही उत्तर हो सकता है कि कृष्णयजुः संहितामें मुख्य व्याख्यानरूप ब्राह्मणांश तथा ऋग्वेदादि का अंश अधिकतर मिलाया हुआ है। जो अंश अध्वर्यु वर्ग के कर्ममें विनियुक्त नहीं होता ऐसे भाग के अधिकांश मिश्रित होने से ही वह कृष्ण नाम अन्यांशमिश्रित यजुः कहा गया व्याख्यानरूप अर्थ-बोधक ब्राह्मणांश कर्मानुष्ठान के समय कुछ भी उपयुक्त नहीं हो सकता। वेदाध्ययनके समय अर्थ जाननेमें उपयोगी हैं इस से सिद्ध हुआ कि शुक्लयजु में ब्राह्मणांश नहीं और कृष्ण में अवश्य है ॥

वर्ण चर्चा ।

आषाढ़ कृष्ण १ सं० १९७४ के भारतमित्र में वर्णचर्चा पर फिर भी कुछ लेख छपा है। यद्यपि अब एक प्रकार से निर्णय सा ही हो गया है क्योंकि भा० मि० सम्पादकका जो सबसे पहिला लेख था और यह तीसरा लेख है इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है जिस को मिलाकर पढ़ने वाले पाठक स्वयं जान लेंगे। हमारी समझ में अंगरेजी भाषा के साथ कुछ संस्कृत और हिन्दी भाषा की अच्छी जानकारी होनेसे और देशहित को ध्यान मे रखते हुए स्वदेश हित साधक विविध लेख करने केकारण भा० मि० सम्पादक की जैसी और जितनी प्रतिष्ठा होनी चाहिये वैसी तथा उतनी प्रतिष्ठा भारत मे विद्यमान है और यह प्रतिष्ठा उन के लिये पर्याप्त भी है। उस प्रतिष्ठा का यह अपेक्षा नहीं है कि श्रुति स्मृति पुराणादि रूप संस्कृत शास्त्रों सम्बन्धी विषयो की संगति लगा सकने पर ही वह प्रतिष्ठा चिरस्थायिनी रह सके अन्यथा उसमें कुछ बाधा पड़े। जैसे केवल संस्कृत के जिन विद्वानों की प्रतिष्ठा श्रुति स्मृति का मर्म समझ कर अच्छी व्यवस्था लगा सकने के कारण हुई वा होती है उन को वह प्रतिष्ठा अंगरेज़ी फारसी आदि भाषाओं के न जाननेके कारण नष्ट नहीं होती वैसेही भा० मि० सम्पादकादि के विषय में जानो॥

भा० मि० के सम्पादक महाशय ने जो लिखा है कि "धर्मसम्बन्धी बातों के निर्णय के लिये एक संस्था स्थापित की जाय जो प्रत्येक वर्ण के कार्यों की सीमा भी निर्द्धारित करदे„ हम भी इस का अनुमोदन करते हैं इतना ही नहीं किन्तु हमने कई वर्ष पहिले इस विषय में कईबार विस्तृत लेख भी छपाये थे, उस समय अन्य किसी सम्पादक ने उस पर कुछ भी विचार नहीं उठाया तब हम भी चुप हो गये थे। उस संस्था का नाम हमने सार्वदेशिक धर्मप्रतिनिधि सभा अथवा अखिल भारतवर्षीय धर्म व्यवस्थापिका सभा-अथवा अखिल साम्प्रदायिक धर्मव्यवस्थापिका संस्था इत्यादि लिखा था सो कोई भी नाम अधिकानुमति से हो सकता है। परन्तु यह सभा तभी कार्यसाधिका हो सकती है कि जब देश के नेता लोग तथा भारतीय क्षत्रिय राजा लोग इस के पूर्ण संचालक तथा सहायक बनें अर्थात् केवल संस्कृत के विद्वान् इस कार्य को पार नही लगा सकते। हम यह भी समझते हैं कि स्वराज्य समिति का अभीष्ट यदि सिद्ध हो तो उसी का अङ्कुर यह संस्था होनी चाहिये। यद्यपि इस प्रकार की सभा चाहे कुछ काल में हो सके किन्तु शीघ्र हो जाना सम्भव न हो तथापि ऐसी सभा के लिये आन्दोलन होना चाहिये। यह भी स्मरण रखना चाहिये

कि-अखिल भारतवर्षीय धर्ममहासम्मेलन रूप संस्था ही यदि ऐसा रूप धारण करले कि जिस में सार्वदेशिक संस्कृत के विद्वान् प्रतिनिधिरूप से एकत्रित होकर वैसा विचार करें तो और भी अच्छा हो ॥

भा० मि० सं० लिखते हैं कि " हम नहीं समझते कि आज कल का कोई शिक्षित विशेषकर अंगरेजी पढ़ा लिखा मनुष्य [विश्वामित्रोत्पत्तिकी.] चरु वाली बात अक्षरशः माननेको तयार होगा,, इससे उनका अभिप्राय है कि विश्वामित्रकी बात इतनी प्रसिद्ध है कि चरुकी दुहाई देकर उड़ाई नहीं जा सकती। भा० मि० सं० को शोचना चाहिये कि विश्वामित्रके ब्राह्मण हो जानेकी बात जो अधिक प्रसिद्ध है वह यदि निराधार है तब तो निर्मूल कही जायगी, और यदि वाल्मीकीय रामायणादि के प्रमाण ही उसके आधार माने जावें तो जैसे वे प्रमाण हैं वैसे ही चरुसे उत्पत्तिका प्रमाण भी महाभारतके अनुशासन पर्वमें विद्यमान है, इस चरुकी दुहाई हमारी कल्पित नहीं, हमें विश्वास है कि योगसिद्धियों से सम्बन्ध रखने वाली अनेक असंभव सदृश बातोंको यथावत् मानने के लिये अनेक ऐम० ए० बी० ए० भी तयार हैं अन्य संस्कृत के शिक्षितों की तो बात ही क्या। पर हां यह अवश्य कह सकते हैं कि अंगरेजी पढ़ों का अधिक भाग अभी तक भा० मि० सम्पादक का विचारानुगामी है। इस भाग को जब कोई विलायती मनुष्य साइंस के अनुकूल दिखावेगा तब वह ठीक मान लेगा। हम पूछते हैं कि वाल्मीकीयादि को भा० मि० स० विश्वामित्र के ब्राह्मण हो जाने के लिये जिस नियम से प्रामाणिक मानते हैं उसी नियम से महाभारतोक्त विश्वामित्रोत्पत्ति उन को क्यों नहीं माननी पड़ेगी ?। और यदि दोनों को मानेंगे तो उनको अपने पक्ष पोषणार्थ परस्पर विरुद्ध दो प्रमाणों की व्यवस्था भी लगानी पड़ेगी। यदि कहें कि "चरु औषध विशेष होगा उसके भक्षणानन्तर स्त्री पुरुष के संयोगसे विश्वामित्र का जन्म हुआ होगा,, तो इस का उत्तर यह है कि चरु कोई औषध विशेष नहीं किन्तु मन्त्र विज्ञान से पकाया एकविध ओदन ही चरु कहाता है, उस के भक्षणानन्तर संयोग की आवश्यकता मानो तो रज वीर्य ही विश्वामित्र के शरीर का कारण हो सकता है चरु नहीं, पर वहां यह लिखा है कि हमने मन्त्र बल से जो ब्रह्मत्व चरु में स्थापित किया उस से उत्पत्स्यमान सन्तान ब्रह्मर्षि होगा, इस से चरु का कारण होना सिद्ध है। यदि रज वीर्य वा गर्भाशय के विना मानव शरीरों का उत्पन्न होना असम्भव है तो सीता, द्रौपदी, कर्ण, धृष्टद्युम्नादि अनेकों की उत्पत्ति भी क्या मिथ्या कहोगे। योगसिद्धिरूप तपोबल से जो २ आश्चर्यजनक काम हो सकते हैं उन की सीमा भी क्या भा० मि० स० ने नियत करदी है, यदि नहीं की तो चरु से वा वरदान

मात्र से सन्तान क्यों नहीं हो सकते ?। क्या राममूर्त्ति यदि अभी प्रत्यक्ष न होते और वे जो करते हैं यह कहीं लिखामात्र होता तो क्या सांप्रतिक शिक्षित सत्य मानलेते,

अब एक बात भा० मि० सम्पादक की शेष रही कि–ऋष्टिषेण राजा के पुत्रदेवापि और सिन्धुद्वीप ने भी विश्वामित्रके तुल्य ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। इन क्षत्रियों ने अपने उसी शरीर से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था–

तस्मिन्नेवतदातीर्थे सिन्धुद्वीपःप्रतापवान्।
देवापिश्चमहाराज ! ब्राह्मण्यंप्रापतुर्महत् ॥

जहां महा तपस्वी उग्र तेज विश्वामित्र ब्राह्मण हुए थे उसी पृथूदक तीर्थमें सिन्धुद्वीप और देवापि ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था। इस के लिखने से भा० मि० सम्पादक का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि क्षत्रिय माता पिता के रज वीर्य से उत्पन्न हुए सिन्धुद्वीप और देवापि अपने विद्यमान उसी शरीर से ब्राह्मण हो गये थे। इस पर हम इतना ही कहना उचित समझते हैं कि जैसे विश्वामित्र प्रसिद्ध में क्षत्रिय थे पर वास्तव में उन की उत्पत्तिके साथ ब्रह्मत्वका घनिष्ठ सम्बन्ध था इसीके अनुसार सम्भव है कि किसी इतिहास पुराण में सिन्धुद्वीप तथा देवापि की उत्पत्ति के साथ ब्राह्मणत्व का सम्बन्ध लिखा हो। और यदि ऐसा न भी लिखा हो तो हम पहिले गताङ्क में भी यही लिख चुके हैं कि जो सिद्ध कोटि के देवकल्प मनुष्य हो गये वा हो जाते हैं उन का दृष्टान्त सर्वसाधारण के लिये उपयुक्त नहीं होता जो शक्तियां वा सिद्धियां उन में तपोबल से हो गयीं थीं वे साधारण में नहीं होतीं। सैकड़ों वर्ष निराहार निर्जल रहकर तप करता हुआ कोई जीवित रह सकता है इस बात पर वर्त्तमान शिक्षितवर्ग क्या विश्वास कर लेगा ?। क्या वर्त्तमान साइंस से यह सिद्ध हो सकता है ? हम तो मानते हैं कि योगबलसे काया पलट तक हो सकता है। तब सिद्ध मनुष्य विशेष दशा मे कभी कोई क्षत्रियसे ब्राह्मण होगया तो आश्चर्य कुछ नहीं है किन्तु आश्चर्य यही है कि जिनमें किसी प्रकारका कुछ भी तपोबल नहीं जो एक महीने भर भी तप करते हुए निराहार नहीं रह सकते ऐसेलोग वैश्य शूद्रादिसे ब्राह्मण बनना चाहते हैं। क्षत्रियसे भिन्न वैश्यादिके ब्राह्मण होनेका कोई दृष्टान्त वा प्रमाण भी नहीं शुद्ध परम्परागत राजपूत क्षत्रिय कोई भी ब्राह्मण बनने की चेष्टा भी नहीं करता जो चेष्टा करते हैं वे बन नहीं सकते इससे विवाद व्यर्थ है ॥



विधवाविवाह तथा नियोग।

(गताङ्क से आगे)

पाठक वृन्द ! आशय समझ गये होंगे उक्त कारण को ही ध्यान में रख कर अनेक आचार्यों ने नियोग का कलि में निषेध किया है—

देवरेण सुतोत्पत्तिर्दत्ता कन्या न दीयते। क्रतु०।

देवरेण सुतोत्पत्तिर्मधुपर्के पशोर्वधः।

बृहन्नारदीय पुराण

देवराच्च सुतोत्पत्तिः कलौ पञ्च विवर्जयेत्।

आदित्य पुराण

इत्यादि अनेक वचन पाराशर माधव, मिताक्षरा, वीरमित्रोदय, चतुर्विंशति मतसंग्रह, अपरार्का, शब्दकल्पद्रुमकोष, पारस्कर गृह्यसूत्रोपरि हरिहर भाष्य में स्पष्टतया मौजूद हैं। पाठक वृन्द ! जब युक्ति (कामी स्त्री पुरुष होने से) तथा प्रमाणसे कलि में नियोग का निषेध आता है तो फिर आज कल नियोग का जिक्र करना व्यर्थ नहीं तो क्या है।

द्वितीय यह नियोग लोकविरुद्ध भी है भला ऐसे कौन गुरुजन हैं कि जो अपुत्रा स्त्री से कहेंगे कि तुम अन्य से वीर्यदान लो। नियोगाचार्य स्वामी दयानन्द के शिष्य मेरठ निवासी पं० तुलसीरामजी ने भी इसको लोकविरुद्ध माना है (देखो वेदप्रकाश व० ४ मा० ११ पृ० २०८। व० २ मा० ३ पृ० १७) लोक विरुद्ध के लिये मनु महाराज क्या आज्ञा देते हैं—

परित्यजेदर्थकामौ यौ स्यातां धर्मवर्जितौ।

धर्मं चाप्यसुखोदर्कं लोकविक्रुष्टमेवच॥ ४। १७६

अर्थ—जो अर्थ और काम धर्म के विरोधी हों उन्हें त्याग दो, और धर्म भी जो भविष्यत् में दुःख का हेतु हो, वा लोक से निन्दित हो।

(देखो आर्य शिरोमणि पं० राजाराम कृत टीका मनु) कहिये यह नियोग लोक विरुद्ध होने से मनु प्रमाणानुसार त्याज्य हो गया या नहीं।

पाठक वृन्द ! उक्त वाक्य की प्राचीन मेधातिथि टीका में कैसा लिखा है—

"नियोग स्मृत्या विहितो लोक संक्रुष्टत्वान्न क्रियते" अर्थात् स्मृति विहित नियोग लोक विरुद्ध होने से कर्तव्य नहीं।

इसी मनुवचनानुकूल याज्ञ० में लिखा है—"

अस्वर्ग्यं लोकविद्विष्टं धर्ममप्याचरेन्नतु। १। १५६

इस पर 'अपरार्का' टीका में लिखा है कि—

विधवानियोग शूद्रा विवाह इत्यादयोऽस्वर्ग्यत्वाल्लोकविद्विष्टत्वाद् विहिता अपि न कार्या विशेषेण कलियुगे। अतएव स्मरन्ति। गोपशु देवरात् पुत्रं सत्रयागं कमंडलु। सुराप्रयोग भिक्षु च न कुर्वीत कलौयुगे।

कहिये अपरार्की टीकाकार ने लोकविरुद्ध होने से नियोग अकर्त्तव्य माना है फिर भी कलि में विशेष करके।

रामकृष्ण—अर्जुन ने नाग राज की विधवा कन्या (जो कि ऐरावत की पुत्र-वधू थी) से पुनर्विवाह करके 'ऐरावण' नाम पुत्र उत्पन्न किया (म० भा० भीष्मपर्व अ० ९१)

समीक्षा—अब हमारे कृष्णजी नियोग से उतरकर वि० वि० पर आये हैं परन्तु अभी नियोग पर ही डटा रहना चाहिये कारण कि अर्जुन के साथ ऐरावत की पुत्र-वधू का पु० वि० सूचक कोई पद नहीं है हां नियोग सूचित होता है जब ऐरावत ने उसको अर्जुन के निमित्त संतानार्थ दिया है वहां लिखा है—

ऐरावतेन सा दत्ता अनपत्या महात्मना।

यहां "अनपत्या" पद से नियोग सूचित है क्योंकि उक्त पद का अर्थ संतान रहित है और संतान के अभाव में नियोग है और यहां 'दत्ता' पद सन्तानार्थ है न कि विवाहार्थ, यह आगे के लेख से और प्रकट होगा। जब अर्जुन ने उसको सन्तानार्थ स्वीकार कर लिया पुत्रोत्पन्न हो गया उस स्थल पर लिखा है—

भार्यार्थं ताञ्च जग्राह पार्थःकामवशानुगाम्।
एवमेष समुत्पन्नः परक्षेत्रेऽर्जुनात्मजः॥

यहां यदि अर्जुन उससे विवाह कर लेते तो "पर क्षेत्रे" (दूसरे का क्षेत्र) क्यों कहा जाता किन्तु "स्वक्षेत्रे" कहना चाहिये अर्थात् विवाह होने पर अर्जुन का क्षेत्र हो जाता उस समय परक्षेत्र कहना युक्त नहीं। यदि कहो कि यहां "भार्यार्थं,, पद है सो गौण रूप से है न कि मुख्यता से, पांडु आदि की उत्पत्ति के प्रसंग पर सत्यवती ने भीष्म जी से कहा था 'दारांश्च कुरुधर्मेण' अर्थात् इन अम्बादि को दारा करो। तो क्या यहां सत्यवती का पु० वि० से प्रयोजन था या सन्तानोत्पत्ति से, अतःउक्त श्लोक में भी "भार्यार्थं,, पद मुख्य रूप से नहीं। फिर लिखा है—

स नागलोके संवृद्धो मात्राच परिरक्षितः।
पितृव्येण परित्यक्तः पार्थद्वेषाद्दुरात्मनः ॥

अर्थात् माता से पाला हुआ नागलोक में बड़ा हुआ फिर अर्जुन से द्वेष होने से चचा ने त्याग दिया। यदि अर्जुन विवाह करते तो क्यों नाग लोक में रहता और चचा को त्यागने का अवसर क्यों मिलता। आगे लिखा है कि अर्जुन जब इन्द्र-लोक को गया है तब, इरावान् वहां पहुंचा अपना सब हाल कहा तब अर्जुन ने पहि-चान कर कहा कि युद्ध के समय तुम हम को सहायता देना। यदि विवाह होता तो समीप रहता और क्यों अर्जुन भूल जाते अतः उसके साथ पु० वि० नहीं हुआ। यदि कहो कि लोक विरुद्ध यह नियोग अर्जुनने क्यों किया तो हम पूंछते हैं कि युधिष्ठिर जुआमें सर्वस्व क्यों हार गये, अनेक कार्य अनेक महानुभावोंने किये हैं क्या वे किसी के लिये विधिवाक्य होजाते हैं इन्हीं बातों को लक्ष्य करके हारीत स्मृति में लिखा गया है।

अनुष्ठितं तु यद्देवै-र्मुनिभिर्यदनुष्ठितम्।
नानुष्ठेयं मनुष्येण तदुक्तं धर्ममाचरेत् ॥

अर्थात् मुनि व देवों ने जो किया वह मनुष्य का कर्त्तव्य नहीं उनका कहा हुआ धर्म करे। भागवत में भी लिखा है—

ईश्वराणांवचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।

अर्थात् सामर्थ्यवानों का वचन सत्य है कहीं २ आचरण भी अर्थात् बड़ोंकी सब में बराबरी न करे लोकविरुद्ध नियोगादि को व्यासादि सरीखे भले ही करलें परन्तु अस्मदादिकों को महान् हानि कारक है अनेक कार्य सामर्थ्यवानों को हानि कारक नहीं परन्तु हम लोगों को प्राणान्तकारी है यथा रुद्र को विष हानिकारक न हुआ हमको है।

रामकृष्ण—जब राजा नल को गये हुए चिरकाल व्यतीत हो चुका, तब उसकी रानी पतिव्रता दमयन्तीने महाराजा ऋतुपर्ण के नाम अयोध्यापति को स्वयम्वर द्वारा द्वितीय विवाहका पत्र दिया तब वह राजा ऋतुपर्ण प्रसन्नता पूर्वक दमयन्तीके स्वयं-वरमें आया क्या इससे पु० वि० की रीति प्रमाणित नहीं होती (म० भा० वनपर्व)

समीक्षा—रानी ने पु० वि० का पत्र दिया इससे, या राजा ऋतुपर्ण प्रसन्नता से आये, इन दोनों में किस कारण को लेकर आपने पु० वि० की रीति प्रमाणित की है यदि कहो कि रानी ने पत्र दिया, तो यह आपका विचार मिथ्या है यदि आप उस स्थल को पढ़ेंगे तो मालूम पड़ेगा कि रानी ने द्वितोय स्वयम्वर का मिथ्या प्रपञ्च के-वल राजा नल के बुलाने ही को रचा था अन्यथा स्वयम्वर तिथि से एक दिन पहले

खबर क्यों भेजी, फिर भी अन्य राजाओंके पास क्यों नही, और अपने यहां स्वयम्वर का सामान क्यों नही किया गया, रामकृष्णजी ! क्या दमयन्ती वाल विधवा थी जो उसने पु० वि० रचा था। यदि कहो कि राजा ऋतुपर्ण प्रसन्नता पूर्वक आये इस कारणसे पु० वि० की रीति साबित होती है तो कामी पुरुष उचितानुचित का विचार नही करते क्या राजा ऋतुपर्ण को इतना मालूम न था कि रानी पतिव्रता है दूसरे पुरुष का नाम न लेगी फिर भी सन्तान वाली, (एक पुत्र एक पुत्री थी) महाभारत पढ़ोगे तो मालूम पड़ेगा कि रानी इतनी सुन्दर थी कि स्वयम्बर में देवता तक आये ऐसी रानी के लिए खबर आने पर यदि काम के वश हो राजा चला गया तो क्या पु० वि० की रीति प्रमाणित होगई धन्य है आपकी बुद्धि को। कृपानिधान ! उसस्थल को यदि आप अपने नेत्रों से देखेंगे तो पु० वि० मण्डनके वदले वहां आपको पु०वि० खण्डन दृष्टि गत होगा। जिस समय नल और दमयन्ती मिले हैं उस समय नलने कहा है कि रानी जगह २ तेरे दूसरे स्वयम्बर की खबर पहुंची है (नलको खबर न थी कि केवल ऋतुपर्णके पास खबर आई है) उस समय दमयन्तीने अनेक शपथ खाकर कहा है।

त्वामृते नहिलोकेऽन्य एकान्हापृथिवीपते ।
समर्थो योजनशतं गन्तुमश्वैर्नराधिप ॥

अर्थ—हे राजन् तेरे विना कोई एक दिन में सौ योजन घोड़ों करके नही आसक्ता। आपके बुलाने के लिये यह उपाय रचा था। दमयन्ती की तरफ़ नल को कुछ शंकित देख कर आकाशवाणी हुई—

एवमुक्तस्तथा वायुरन्तरिक्षादभाषत ।
नैषा कृतवती पापं नल सत्यं ब्रवीमिते ॥

अर्थात् यह दमयन्ती पाप करने वाली नही। कहिये यहां पु० वि० को पाप वतलाया है। क्या अब भी पु० वि० की रीति प्रमाणित हुई या कुरीति। आर्यसमाज शिरोमणि पण्डित तुलसीराम के भ्राता पंडित छुट्टनलाल जी ने वेद प्रकाश नवम्बर सन् १२ पृ० २५८ में लिखा हैं कि 'दमयन्ती ने पु० वि० की तयारी की नल ने क्रोध नही किया, नष्टे मृते० को पालन करती हुई देख कर,

समीक्षा—भला राजा नल क्रोध क्यों करते, कारण कि दमयन्ती ने (नष्टेमृते०) इस धर्मशास्त्र के वचनानुसार पु० वि० रूप एक धर्मानुष्ठान का आरम्भ किया था। पाठकवृन्द ! समझे आप ! अब तक तो विधवाविवाहाभिलाषी अक्षतयोनि २ पुकारते थे अब प० छुट्टनलाल जी सन्तान वाली के पु० वि० को धर्म कार्य मानने लगे। मालूम पड़ता है कि पं० जी ने यह लेख नेत्र वन्द कर लिखा है जिस समय द्वितीय स्वयम्बर की खबर राजा नल ने सुनी उस समय-राजा का हृदय विदीर्ण होने लगा।

एवमुक्तस्यकौन्तेय तेनराजानलस्यच।
व्यदीर्यत मनो दुःखात् प्रदध्यौ च महामना॥

राजा नल अनेक संकल्प विकल्प करके फिर कहने लगे-

नैवं सा कर्हिचित् कुर्यात् सापत्या च विशेषतः॥

अर्थात् दमयन्ती ऐसा (पु० वि०) कदापि न करेगी विशेष कर सन्तानवती होने से। फिर मन में विचार कर कहने लगे-

यदत्र सत्यं वा सत्यं गत्वा वेत्स्यामि निश्चयम्।

अर्थात् सत्य है वा असत्य चलकर देखूं। उस समय नल ने यह भी विचारा है-

अस्मदर्थे भवेद्वायमुपायश्चिन्तितो महान्

अर्थात् शायद मेरे वुलाने के लिये ही यह उपाय रचा है। कहिये महर्षि व्यास तो कहते हैं कि राजा नल का हृदय विदीर्ण होने लगा पं० छुट्टनलाल जी कहते हैं कि क्रोध क्यों करते वह तो (पु० वि०) रूप धर्म कार्य करने को तयार थी, शायद ऐसा होने पर आर्यसमाजी भाई क्रोध न लावें।

पाठकवृन्द! (नष्टे मृते) इस प्रमाणका अर्थ जो पं० जी ने समझा है वह अनेक आचार्यों के विरुद्ध है अर्थात् विद्वन्मनोहरा, धर्मरत्न टीका' वालं भट्टी, चतुर्विंशति मतसंग्रह, वीर मित्रोदय, शब्द कल्पद्रुमकोश, निर्णयसिन्धुमें उक्त प्रमाणानुसार वाग्दत्ता का (विवाह) माना है न कि विवाहिता का।

रामकृष्ण-राजा बाली की विधवा तारा ने राजा सुग्रीव के साथ (पु० वि०) किया (देखो रामायण किष्किन्धा काण्ड)

समीक्षा-(पु० वि०) लिखना मिथ्या है। तुलसीकृत रामायण के किष्किन्धा काण्ड में तो यह जिक्र है नहीं हां वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धा काण्ड सर्ग ५५ श्लो० ३ में लिखा है—

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य यो भार्यां जीवतो महिषीं प्रियाम्।
धर्मेण मातरं यस्तु स्वीकरोति जुगुप्सितम्॥

अर्थ-जो पुरुष धर्म करके माता समान, बड़े भ्राता की प्यारी रानी स्त्रीको हमारे जीवित रहते स्वीकार करले अर्थात् स्त्री बनाले वह निन्दाके योग्य अथात् अधार्मिक है।

यह वाक्य अंगद ने हनुमान् से सुग्रीवकी निन्दा करते हुए कहा है। परन्तु इस से (पु० वि०) या नियोग (कुछ समाजी नियोग बताया करते हैं) सिद्ध नहीं होता

भाई की स्त्री को घरमें डालने वाले सुग्रीव की निन्दा सूचित होती है अतः यह प्रमाण आप के मत का साधक नहीं प्रत्युत बाधक है।

रामकृष्ण–राजा रावणकी विधवा मन्दोदरी ने राजा विभीषणके साथ (पु० वि०) किया। देखो रामायण लवकुश काण्ड।

समीक्षा–यहां भी (पु० वि०) लिखना मिथ्या है, उक्त पते पर यह चौपाई मिलती है,

पिता समान बन्धु बड़तोरा। त्रिया तासु लै घरि वर जोरा॥
पापी मातु कहेउ कैवारा। सो पत्नी यह धर्म तुम्हारा॥
बूड़ि मरउ सागर मह जाई। मरु गरु काटि अधम अन्याई॥

ये वाक्य संग्राम को तयार होते हुए विभीषणसे लव ने कहे हैं सो यहां भी (पु० वि०) सिद्ध नहीं होता किन्तु मन्दोदरी को घर मे रखने हुए विभीषण की निन्दा सूचित है अतः ये वाक्य भी आपके मत के साधक न होकर बाधक हैं। दुर्जन तोष-न्यायसे हम यह भी मानलें कि विभीषण व सुग्रीवने मन्दोदरी व तारा से (पु० वि०) किया तब भी उक्त प्रमाणानुसार विधवा से विवाह करने वाले पापी सिद्ध होते हैं हमारे कृष्ण जी का मनोरथ किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता। विधवा विवाहाभिलाषी विधवा विवाहरूपी नशे मे यहां तक चूर हैं कि ये अपना आगा पीछा नहीं देखते विभीषण तथा सुग्रीव के प्रमाण से बालविधवा विवाह तो एक तरफ रहा सरासर व्यभिचार प्रवृत्त करनेका विचार है हमारे कृष्ण जीने बालि को क्यो छोड़ दिया लिख देते कि सुग्रीव की स्त्री के साथ (पु० वि०) किया आपके यहां तो जहां देखो वहां (पु० वि०) यदि कहो कि 'अनुज वधू०, चौपाई द्वारा श्रीरामचन्द्रने पापी सिद्ध कर मारा है तो ये परम भक्त थे परन्तु इस अंशमे इनकी भी निन्दा है जब आप तारा, मन्दोदरी दमयन्ती का उदाहरण देते हो तो बालविधवाकी क्या कथा विधवा मात्र के (पु० वि०) की डुग्गी पीटो। याद रक्खो ? यदि विधवा विवाह पर इसी प्रकार का आप का जोर है तो कुछ दिन बाल विधवा फिर युवा, फिर सपुत्र, फिर सधवा सब का ही (पु० वि०) होकर फिर खासा घरेजा हो जायगा, रहा सहा जो कुछ भी धर्म है सब मिट्टी में मिल जायगा। पाठक वृन्द ! इस कार्य का परिणाम अतीव भयकर है अतः हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि इन महानुभावों की बुद्धि को आप शुद्ध करें।

आप का——

तुलसीराम शर्म्मा

मु० सितारी पो० सासनी (अलीगढ़)

शीतल छाया।

समस्या।

हे अव्यक्त? अनन्त? दया के करने वाले!।
हे हे विश्वाधार! चराचर बीच विचरने वाले॥
दुखसे दलित फिरा माया भरमाया।
करदेवो अब नाथ! दयाकी शीतल छाया॥ १॥

विषय ताप से तप्त अहा! कितना दुःख पाया॥
चिन्ता तन्त्रित चित्त, घोर परिताप जलाया।
होकर नाथ! विकल मैं शरण तुम्हारी आया।
दया दृष्टिकी मुझपर कर दो शीतल छाया॥२॥

कपट दम्भ छल लोभ छोड़ तू लौकिक माया।
उस को भज तज मोह तुझे जिसने उपजाया॥
कर्म धर्म्म का मर्म्म सोच,मत फिर घबड़ाया।
पावेगा विश्राम रामपद शीलत छाया॥ ३॥

जन्मभूमि वैकुण्ठ कुटी प्रासाद बनाया।
कन्दमूल फल फूल अमित आहार सुहाया॥
देव नगर भी क्या इतना रुचिकर है भाया।
ग्राम बीच जिमि तरुतल शीतल छाया॥ ४॥

सवैया।

कितने दिनसे यदुनन्दन ने, मुरलीधर सुन्दर राग न गाया।
सब कुञ्ज निकुञ्ज विहार तजे, शिर पै न मयूर का पिच्छ सुहाया॥
सुधि आती नहीं उन धेनुओं की, जिन्हें प्रेम समेत सदैव चराया।
यमुना की सुनीर समीरासनी, अब भूली कदम्ब की शीतल छाया॥ ५॥

तुम वृक्ष सुसज्जन के सम हो, हिम घाम में नित्य खड़े दुख पाया।
फल सुन्दर दान समुन्नत हो, उपकारक देह सदा कटवाया॥
फल सादर देते हो आप झुके, फिर मानवों ने धर शाख झुकाया।
तुम कष्ट अनेक प्रकार सहो, पर देते रहो सुख शीतल छाया॥ ६॥

विषयानल ताप से व्याकुल हो, मनमूढ़! अचेत! वृथा घबड़ाया।
यह लौकिक जालकराल कड़ा, कटु अन्तमें भी कुछ काम न आया॥
मृगतृष्णा समान सुखाशा सभी, जिस में फिरता मृगसा भरमाया।
कर देगी विशोक अजन्मा तुझे, जगदीश पदाम्बुज शीतल छाया॥ ७॥

हम जन्ममहीके रजों से बने, उसने तन मानव है उपजाया।
फल फूल जलान्न सभी कुछ हैं, विधिविध विलक्षण देश बनाया॥
जननी से बड़ी धरती जननी, जिस में सुख जीवन का सब पाया।
उस की पुरुषार्थ से रक्षा करो, जिससे न हटे सुख शीतल छाया॥ ८॥

कवि कुमार महेश्वर प्रसाद शास्त्री—

वर्णव्यवस्था पर व्याख्यान।

(व्याख्याता कविरत्न अखिलानन्द शर्मा पाठक)

मंगलाचरण।

नमोब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि॥
ऋतं वदिष्यामि,सत्यं वदिष्यामि,तन्मामवतु,तद्वक्तारमवतु, अवतुमामवतु,वक्तारम्॥
ॐ शान्तिः ३

माननीय महानुभावो! जिस वर्ण व्यवस्था विषय में आज मुझे आपकी सेवा में कुछ निवेदन करना है, उस पर वर्तमान क्या २ किंवदन्तियां फैली हैं, उनसे आप अपरिचित नहीं हैं जो वर्णव्यवस्था सृष्टिके आरम्भकाल से लेकर इस समय तक गुण कर्म स्वभाव (जन्म) के ऊपर दिगतरंगिणी भगवती भागीरथी के अविरल प्रवाहके समान चली आरही है, आज उसका वास्तविक स्वरूप मिटाने के लिये बाबूपार्टी के नास्तिक समाजी सिरतोड़ कर प्रयत्न करते हैं। कोई कहता है कि वर्णव्यवस्था केवल टके कमाने के लिये बनाई गई है, कोई कहता है कि केवल गुण, कर्म पर ही वर्ण व्यवस्था माननी चाहिये-जन्म की कुछ आवश्यकता नहीं है इत्यादि॥

इसका प्रयोजन यह है कि, यदि वर्णव्यवस्था का बखेड़ा मिटजाय तो अपने मन माने विचारों का प्रयत्नपूर्वक प्रचार करने मे सुभीता हो, मद्य मांस व्यभिचार का यथेच्छ प्रचार हो, स्त्रियों के दुष्ट होने पर वर्णसंकरता का अबाध्य प्रचार हो, इन नीच-पतित विचारों के प्रचार मे कई दिल चले, आचार विचार शून्य, वेदनिन्दक, नास्तिक,वर्तमानमें लगे हुए यत्रतत्र दिखाई देरहे हैं-उनकी इस अनधिकार चेष्टाका रोकना हमारा इस समय मे परम कर्त्तव्य है, इसलिये, गहरी तहकीकात के साथ आज हम इस विषय की आलोचना करते हैं, जिसको इस विषय मे कोई संदेह हो, वह मेरे व्याख्यान के समाप्त होने पर, मुझसे पूछले।

शरीर का अस्तित्व।

शरीर क्या है-माता-पिता के रजवीर्य पर इसका अस्तित्व है यदि रजवीर्य का इसमें से अस्तित्व निकाल दिया जाय तो शरीर कुछ नही है। गर्भाशय में वीर्य के

साथ २ माता। पिता के संस्कारों को लेकर जीव प्रविष्ट होता है । रजवीर्य के साथ आने के कारण वही संस्कार स्वभाव में परिणत हो जाते हैं, गुणकर्म चित्र के समान हैं, स्वभाव अथवा जन्म भित्ति के समान है, विना भित्ति के जिस प्रकार चित्र नहीं बन सकता है, उसी प्रकार विना शरीर के गुण, कर्म नहीं रह सकते हैं क्योंकि गुण सर्वदा द्रव्य में, रहा करते हैं, और कर्म स्वयं जड़ है विना कर्ता के नहीं होता है, यह न्याय का नियम है ।

जाति और जातिभेद ।

वैदिक सिद्धान्त के अनुसार यजुर्वेद के ३० वें अध्यायमें ब्राह्मणादि, जातिभेद वर्णित हैं मनुस्मृति के दशमाध्याय में भी उसी का अनुमोदन है। स्वामी दयानन्द ने आर्योद्देश्य रत्नमाला में ३८ नंबर पर जाति को ईश्वरकृत माना है । सत्यार्थप्रकाशके ३९८ पृष्ठ पर जातिभेद को भी ईश्वर कृत माना है।। जब जाति और जातिभेद दोनों ईश्वर कृत हैं, तथा एक जन्ममें जाति परिवर्तन होना स्वामीजीके सिद्धान्तसे भी विरुद्ध है।

वर्णपरिवर्तन ।

वर्णपरिवर्तन के विषय में आर्यसमाज विश्वामित्र का उदाहरण देता है, परन्तु वेद में कहीं पर वर्ण परिवर्तनका सिद्धान्त नहीं माना गया है, यदि वर्णपरिवर्तन वैदिक होता तो वेद के किसी मंत्रमें उसका अवश्य वर्णन होता सो है नहीं । इसलिये यह सिद्धान्त ही अवैदिक है । वाल्मीकीय रामायण में इसका वर्णन ऐतिहासिक है, उसमें दशसहस्र वर्ष पर्यन्त तप करने पर, विश्वामित्र का ब्रह्मर्षि होना लिखा है और वेद में भी (सहस्रायुः) १७ । १ । २७ पदके आने से इतने वर्षतक जीना संभव है आर्यसमाज इसको असंभव मानता है ।जिस तप * के आधार पर वर्णपरिवर्तन माना गया है, उसको न मानने पर, परिवर्तन संभव नहीं है, इसीलिये अन्योन्याश्रय दोषसे इस विषय में आर्यसमाज निरुत्तर है ।

वेद में जन्म की प्रधानता ।

सृष्टि के आरम्भमें पहिले जन्म होता है, साथ ही उनका ब्राह्मणादि नाम रक्खा जाता, है, यदि ऐसा न होता तो सृष्टि के आरम्भ में ब्राह्मणादि जाति भेद के प्रसंग का वेद वर्णन क्यों करता । जन्म से वेद पढ़ना असम्भव है, यदि वेद पढ़ना ही ब्राह्मणत्व का केवल कारण माना जावे तो क्षत्रिय वैश्य में अतिव्याप्ति दोष आता, है, क्योंकि वेद पढ़ना उनके लिये भी नियत है, इस लिये वेद पढ़ने से ब्राह्मण हो जाना सरासर ग़लत है । वेद के अनेक मन्त्रोंमें (द्विज और द्विजन्मा) यह पद आते हैं, जो जन्म की प्रधानता बतलाते हैं, यदि कर्म की प्रधानता को वेद मानता तो (द्विकर्मा) पद भी कहीं आना चाहिये था जो किसी वेदमें नहीं आया है ।

* विश्वामित्र के जन्म में चरु में ही ब्रह्मत्त्व रक्खा गया था क्षेत्रगत दोष दूर करने के लिये तप किया गया था, वस्तुतः विश्वामित्र जन्म से ब्राह्मण थे । सम्पादक-

गुण और कर्म ।

शरीर मे गुण और दोष रहते हैं, विद्या आदि गुण और शूरता आदि कर्मके योगायोग से संसार में उत्तम, मध्यम, अधम भेद प्रत्येक जाति में विद्यमान रहते हैं। गुण स्वभाव जन्म से होता है, इसी लिये गीता में (स्वभावप्रभवैर्गुणैः) ऐसा कहा है। स्वभाव गुण नही किन्तु द्रव्य है, यदि गुण के अन्दर ही स्वभाव का समावेश हो जाता तो गुण, कर्म, स्वभाव यह तीनों अलग २ क्यों कहे जाते ।

स्वभाव क्या है ।

स्वभाव एक अविनाशी द्रव्य है, ऐसा सांख्यदर्शन में आता है, स्वभाव शब्द में दो पद जुड़े हुए हैं। एक स्व दूसरा भाव इन दो में स्व का अर्थ (स्वतन्त्रः कर्ता-स्वमज्ञातिधनाख्यायाम्) इन दो सूत्रोंमें पाणिनिने आत्मा किया है, और आत्मा का अर्थ (आत्मावै पुत्रनामासि १, आत्मावैजायते पुत्रः २) इत्यादि वैदिक प्रमाणों से शरीर होता है। भाव शब्द अस्तित्व का बोधन कराता है, इस लिये शरीर का अस्तित्व ही स्वभाव का अर्थ है। जो लोग स्वभाव का अर्थ आदत करते हैं वह गलती पर हैं, और स्वामी दयानन्द ने भी ऐसा कही नही माना है। स्वभाव नित्य है यह स्वामीजी ने आ० र० मा० के ७८ नम्बर पर माना है। कितना ही गरम जल क्यों न किया जाय, परन्तु अग्नि के बुझाने की शक्ति उसमें बनी रहती है, वह उसका उदाहरण है। सर्प नकुल का काकोलूक का, सिंह हस्ती का वैर स्वाभाविक है यह सभी मानते हैं।

आर्य और अनार्य ।

ऋग्वेद के (७।३३।७) मन्त्र में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीन जातियों को आर्य माना है। यही बात सत्यार्थप्रकाश के २३६ पेजपर स्वामी दयानन्द ने मानी है। शूद्र को दोनों ने अनार्य माना हैं और वर्णसंकरोंको अरण शब्द से सम्बोधित किया है। आज कल समाजमें दो आना चन्दा देकर जो संकर अपनेको आर्य कहकर सर्व साधारण को धोखा देकर येनकेन प्रकारेण औरोंका धर्म भ्रष्ट करते हैं, उनके हाथ का अन्न-जल लेना द्विजोंके लिये महापाप है।

यद्वादासी आर्द्रहस्तासमक्त उलूखल मुसलं शुम्भतापः १२।३।१३ अथर्ववेद के इस मन्त्र में (धर्मशास्त्र की परिभाषा में) नाई, धीमर यह दोही शूद्र दासक होते हैं। इन दोके अलावा सब संकर हैं। वेद यहां तक द्विजों को शूद्रोंके हाथसे बचाता है कि यदि गीले हाथ से दासी ने जड़ पदार्थ उलूखल, और मूसल भी छुआ हो तो द्विजों को वह जल से फिर धोना चाहिये। कहां यह वैदिक-पवित्रता, कहां आज कल सब के हाथ का खाना-पीना, इन दोनों में बडा अन्तर है, ईश्वर इस अनाचार से हमको बचावे।

वेद और वर्णसंकर।

वेद में जहां चारों वर्णों का नाम आता है, वहां वर्णसंकरों का भी नाम आता है, जैसे सूत, शैलूष, किरात, मागध आदि २। इनका विस्तार पूर्वक वर्णन यजुर्वेद के ३० अध्याय में मिलता है। स्वामी दयानन्द ने अपने पत्र व्यवहारमें अम्बष्ठ जाति को भी संकीर्ण वर्गमें ही लिखा है। जिनको देखना हो वह ३८५ पृष्ठ देख लेवें यजुर्वेद के १६ अध्याय में (नमः क्षत्तृभ्यः) इस मंत्र का भाष्य करते हुए दयानंद ने (क्षत्तृ) जाति को भी इसी कोटिमें गिना है। इन सब संकरों का बीज (शूद्रोयदर्यायैजारः) यजुर्वेद के इस मंत्र में विद्यमान है। वैश्य की स्त्री के साथमें जब शूद्र व्यभिचार करता है तब आयोगवं नामक वर्णसंकर पैदा होता है। जो लोग केवल कर्म पर ही जाति मानते हैं वह जरा इन वैदिक बातों पर ध्यान दें, वेद जाति को जन्म पर मानता है कर्म पर नहीं।

क्या वेद शूद्रों के लिये है।

वेद पढ़ने का अधिकार वेद में ही द्विजोंके लिये लिखा है शूद्रको उसका अधिकार नहीं है। जिसको देखना हो वह [अथर्वकांड १६ सूक्त ७१ मन्त्र १] देखले उस में स्पष्ट रीति से "द्विजानां,, यह पद पड़ा है। द्विज शब्द से सर्वत्र ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन तीन का ही ग्रहण है, इन तीन के लिये ही उपनयन, वेदारम्भ लिखा है। विना यज्ञोपवीत के द्विज नहीं होता, और उस यज्ञोपवीत का विधान धर्म ग्रन्थों में तीनके लिये आता है, जिस शूद्र को गायत्री तक का अधिकार नहीं है वह वेद कैसे पढ़ेगा यह सबको विचार लेना चाहिये।

मूर्ख और शूद्र।

स्वामी दयानन्द ने शूद्र जाति को, न मानकर मूर्ख को शूद्र लिखा है परन्तु कोई प्रमाण इस विषय में नहीं दिया है। प्रमाण-शून्य बात को मानना मूर्ख का काम है विद्वान् का नहीं। अथर्व वेद के [१२। ४। २२] मन्त्रमें जो वे पढ़ा ब्राह्मण है उस को भी जन्मके आधार पर ब्राह्मण माना है। पतञ्जलि भी विद्या और तपके न होने पर केवल जन्मका आधार लेकर मूर्खको ब्राह्मण मानचुके हैं। स्वामी दयानन्द ने न मालूम ऐसी निरर्गल बात पंडित होकर क्यों लिखी यह हमारी समझमें अभी तक नहीं आया है

आर्यसमाज और शूद्र।

जिस शूद्र जाति ने सृष्टिके आरम्भकालसे लेकर इस समय तक द्विजोंकी अनन्य सेवा की आर्य समाज ने उनका बीज नाश कर दिया। आर्यसमाज में आपको कोई शूद्र दिखाई नहीं देगा, जिस को देखो वह द्विजों में भ्रष्टता फैलाने के लिये इन में ही प्रविष्ट होता है। आर्य समाज का वास्तव में यह कार्य द्विजों को नीच बनाने के लिये

है, आर्य समाज में नीच उन्नत नहीं होते किन्तु उन्नतों को नीच बनाने का यह सब प्रस्तार किया हुआ है। आर्य समाजकी वहिरंग परीक्षा सबके लिये सुगम है, परन्तु अंतरंग परीक्षा सब नहीं कर सकते, इसी लिये कई सज्जन आकर इसके फन्दे में पड़ गए हैं और (बिलक्रमिन्याय से) अपना जीवन व्यतीत करते हैं।

यथेमां वाचं-और स्वामी जी।

स्वामी दयानन्द ने अपना सारा ज़ोर लगा कर (यथेमांवाच) इस मन्त्रमें आए हुए (जनेभ्यः) इस पद से मनुष्य मात्र को वेद पढ़ने का अधिकार ईश्वर की ओर से दिलवाया है, परन्तु इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ न जान कर यह सारा जंजाल फैलाया है। वास्तव में इस मन्त्र का अर्थ दूसरा है और मनुष्यों ने समझा कुछ और है। असल मे यह मन्त्र कर्तृगुप्त है, कर्तृ पद इसमें गुप्त है जिस " जनेभ्यः " पद को अल्पज्ञों ने चतुर्थ्यन्त मान कर मनुष्य मात्रको वेद पढ़नेका अधिकार दिया है वह चतुर्थ्यन्त नहीं किन्तु प्रथमान्त है।(जनेषु,मनुष्येषु इभ्य·पूज्यः जनेभ्यः)इभ्य आढ्यो धनी स्वामीत्यमरः॥ मनुष्यों मे जो पूजनीय होता है उसको (जनेभ्यः) कहते हैं। इस अर्थके जानने पर यह मन्त्र ईश्वर की ओरसे नहीं किन्तु राजाकी ओर से प्रजाके लिये प्रयुक्त होता है।

यज्ञोपवीत का उपहास।

आजकल कुछ दिलचले समाजी यज्ञोपवीत को दाखिला फार्म बतलाकर वैदिक मर्यादा की अवहेलना करते हैं। वैदिक मर्यादा में ऐसा नहीं माना जाता है। द्विजों में यज्ञोपवीत एक मुख्य संस्कार है, शूद्रोंको इसका अधिकार नहीं है फिर दाखिला फार्म कैसा ? द्विजों के कुल मे पैदा हुए वालक का उपनयन होता है, उपवीत होने पर वह एक वैदिक आज्ञा का पालन करने वाला माना जाता है, जो लोग इसको चपरास बतला कर इसको गौण या मामूली मानते हैं, उनके रज वीर्य में अवश्य ही सांकर्य दोषने स्थान पालिया है।

आर्य समाज में "असवर्ण" विवाह

वर्णसंकरता जिनको फैलानी होती है वह पहिले विवाह का रिवाज बिगाडते हैं, विवाह के बिगड़ने पर संकरता होही जाती है। वेद और मनु में विवाह का विधान है। अपने २ वर्ण में सबको विवाह करना चाहिये, परन्तु आर्यसमाज इस प्रथाको बिगाड रहा है। खत्री और कायस्थ ब्राह्मण की लड़की लेना चाहते हैं परन्तु अपनी लडकी मुसलमान और नाई को नहीं देते हैं।

इसके हम दो एक उदाहरण दिये देते हैं। लाला मुन्शीराम ने ब्राह्मण जाति से द्वेष रखकर सुमित्रा देवी का गुरुदत्तामल अरोड़े के साथ सम्बन्ध करा दिया, परन्तु

जब धर्मपाल का सुनीति के साथ सम्बन्ध ठहरा तब उसमें लालाजी ने ही भांजी मारी। लाहौर के कृष्ण को लड़की का कर्मचन्द नाई से सम्बन्ध मिलता है परन्तु लालाजी उसको नहीं होने देते। इसी विषय का एक ट्रैक्ट उसी करमचन्द नाई ने उर्दू में छपाया है जो चाहें वह लाहौर से मंगाकर पढ़लें। यह सब कार्य येन केन प्रकारेण ब्राह्मणों को नीचा दिखाने के लिये आर्यसमाज करता है, जिस का भविष्य अत्यन्त भयंकर है।

ऋषियों पर कलंक।

वर्तमान समय में आर्यसमाज ऋषियों को कलंकित करने में प्रवृत्त हुआ है, जिसको देखना हो वह देखले। इसका प्रथम उदाहरण वाल्मीकि जी हैं। उत्तरकांडके समाप्त होने से पूर्व २।३ श्लोक हैं जिनमें वाल्मीकि को प्राचेतस कहा गया है। प्रचेता का पुत्र प्राचेतस होता है। प्रचेता ब्राह्मण थे, उनका पुत्र वाल्मीकि बचपन से भीलों के साथ रहा, इसीलिये डाकू हो गया, फिर ऋषियों के उपदेश से उसने वह कर्म छोड़ दिया, इसलिये वह जन्म का ब्राह्मण था। आर्यसमाज उसको चांडाल कहता फिरता है, यह बड़े शरम की बात है।

गणिकागर्भसंभूतो, वसिष्ठश्च महामुनिः॥

यह कहीं का प्रक्षिप्त प्रमाण देकर वसिष्ठ को वेश्या पुत्र कहा जाता है, यह भी प्रमाण रहित है। महाभारत से मनुस्मृति अति प्राचीन ग्रन्थ है। उसके प्रथमाध्याय में ३५ श्लोक देखिये, वहां पर वसिष्ठ को ब्रह्मा का अष्टम पुत्र कहा है। इस बात के कहने वाले निर्लज्जों को लज्जा भी नहीं आती कि हम किसके लिये क्या कह रहे हैं। ब्रह्मा के पास कौन सी वेश्या सोने को जाती थी, उसका नाम धाम क्या था? वसिष्ठ उसका पहिला पुत्र हुआ या दूसरा? इस बातका मनुमें पता भी नहीं है। केवल वर्णसंकरता का परिचय देने के लिये समाजी यत्र तत्र ऐसा बकते फिरते हैं।

सत्यकाम जावाल ब्राह्मण पुत्र थे माता भी उन की ब्राह्मणी थी, जब तक यह निश्चय नहीं हुआ था तब तक आचार्य ने उनको यज्ञोपवीत नहीं दिया था, यह कथा छांदोग्य में प्रसिद्ध है। जिसको ब्राह्मण मान उपवीत दिया गया आर्यसमाज उसको वेश्यापुत्र कह कर बदनाम करता है। भगवान् शंकर ने और उनके शिष्यों ने भी अपने २ भाष्य में जावाल को ब्राह्मण ही लिखा है। शंकर का समय वर्त्तमान समय से लग भग ३००० वर्ष पुराना है, इसलिये इस विषय में उनकी बात सर्वांश में मानने योग्य है। प्राचीन समय के विद्वान् जहां तक बनता था, अपने पूर्वजों को निर्दोष सिद्ध करते थे, वर्त्तमान समय के समाजी अपने पूर्वजों को वर्णसंकर सिद्ध करनेमें सिद्धहस्त हैं, इसका एक गुप्त रहस्य है। आर्यसमाज अपने पूर्वजोंको इसलिये

वर्णसंकर कहता है, ताकि वह उनको दृष्टांत मे देकर वर्त्तमान समय में भी वर्णसंकर बनाने के लिये सचेष्ट रहे, इस आर्यसमाजकी जघन्यता पर हम को बड़ा खेद है।

ब्राह्मण जाति और पुराण।

ब्राह्मण जाति के शत्रुओं ने ब्राह्मणो के साथ मे वर्त्तमान में नहीं किन्तु पहिले ही से दुष्ट व्यवहार करना आरम्भ किया था, जब २ उनको मौका मिला तव २ उन्हों ने नवीन श्लोक रच कर पुराणों में मिला दिये। सबसे अधिक इस कार्य में बौद्ध और जैनों ने योग दिया है। कुछ ब्राह्मणों का तो इतिहास ही लुप्त कर दिया गया है। जिस परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों को मार पछाड़ा और दिग्विजय किया आज उसके इतिहास का पता तक नही है, प्राचीन इतिहासमें, जहां देखो वहां औरोंको नहीं, किन्तु ब्राह्मण जातिको ही बदनाम किया है। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या पर ब्राह्मण विरोधियोंने व्यभिचार करनेका पाप लगाया, हनुमान्‌को बन्दर बना कर छोड़ दिया रावण को राक्षस बना कर बदनाम किया, वसिष्ठ को वेश्या पुत्र बना दिया, जाबाल की माता को व्यभिचारिणी बतलाया, पराशरको चांडालीका पुत्र करार दिया गया। कहां तक गिनावें जिधर देखो, जहां देखो वहां यही अत्याचार किया है हमारी अनुमतिमें तो दो ही बातें आती हैं, या तो यह कार्य ब्राह्मणके शत्रुओंका है या वाल्मीकि और व्यास को उत्कोच देकर उस समय के क्षत्रियों ने ऐसा काम कराया है। *

रामचन्द्र में जो बल था वह परशुराम के दिये हुए धनुष का था, यदि रामचन्द्र के पास में वह धनु न होता तो, अजेय रावणका विजय असम्भव था, यह सब परशुराम जी की कृपा का ही फल है। अर्जुन के पास में जो गांडीव था वह अग्निदेव का दिया हुआ था, जब अग्नि देवने वह वापिस लिया तब भील जाति की स्त्रियों ने अर्जुन को घेर २ कर मार डाला, अर्जुन में जो प्रताप था वह ब्राह्मण अग्निदेवका ही दिया हुआ था। कृष्णचन्द्रजी बड़े चतुर थे उन्होंने पहिले ही ब्राह्मणोंका चरण धोना स्वीकार कर लिया जिसका फल आज प्रत्यक्ष है। हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि जहां २ पुराणों में ब्राह्मणों की निन्दा पाई जाती है वहां २ पर ब्राह्मण जाति के विरोधियों ने अपना काम कर लिया है यह सब को समझ लेना चाहिये।

---

* वाल्मीकि और व्यास जैसे महर्षि उत्कोच लेकर अपनी जातिके विरुद्ध लिख देंगे यह लेखक का भ्रम है, न पूर्व समयके क्षत्रियही ऐसे होते थे वे सदा ब्राह्मण भक्त थे, पुराणों में बहुत सी कथायें ऐसी हैं जिन का आशय कुछ और ही है, यदि अनुसन्धान करने पर उन में कोई बात प्रक्षिप्त मिले तो उसका मानना सबका कर्त्तव्य है पर अनुमान के आधार पर कोई कथा प्रक्षिप्त नही कही जा सकती, इन्द्र अहल्या की कथा का बीज वेदमें भी है। इस कथासे कई उत्तम आशय निकलते हैं-सम्पादक।

ब्राह्मण जाति—और आर्यसमाज।

आर्य समाज में १५।२० वर्ष से ब्राह्मण जाति के शत्रु अपना काम कर रहे हैं। इस समय में भी यदि ब्राह्मण न चेते तो आर्यसमाज ब्राह्मण जाति का इतिहास नष्ट कर देगा, और वर्त्तमान में कर रहा है। लाला मुन्शीराम, बाबू घासीराम, लाला, नारायण प्रसाद, बाबू गंगाप्रसाद यह सब के सब ब्राह्मण वंश के अनन्य द्रोही हैं। लाला मुंशीराम ने (ब्राह्मण कभी किसी के नहीं हुए) यह लिख ही दिया है, बाबू घासीराम ने ब्राह्मणों को (डाग इन दी मेंजर) लिखा है, जिसका अर्थ 'खलिहानका कुत्ता, होता है, लाहौर में अभी हाल में सरे बाज़ारमें समाज के एक अधिकारीने एक ब्राह्मण उपदेशक से अपने जूते उठाने को कहा है, इतना ही नहीं कोई २ दिल चले ब्राह्मणों को आस्तीन का सांप बताते हैं, कोई कहते हैं कि यह सब पोप हैं, ठग हैं, बेईमान हैं, दग़ाबाज़ हैं। सद्धर्मप्रचारकमें ब्राह्मणोंको लालाजी ने कसाई तक लिखा है।

सन्तान में रजवीर्य की प्रधानता।

सन्तान में रजवीर्य की ही प्रधानता देखने में आती है, गुण, कर्म, की नहीं। जाति और भोग यह सब पिछले कर्मफल से मिलते हैं। परिवर्त्तन ईश्वर करता है, मनुष्य में इतनी शक्ति नहीं है। यदि मनुष्य में ऐसी शक्ति आ जाती तो संसार ही न रहता, कुछ का कुछ होजाता सूर्य दक्षिण में उगने लगता, कमल पत्थर पर जमने लगता परन्तु क्या किया जाय करामात,ईश्वर ने सब अपने ही हाथ में रक्खी है।

मनुस्मृतिमें सात पीढ़ी बचा कर, और उसमें भी दश प्रकारके अन्यकुल बचाकर विवाह करना लिखा है, यह क्यों? सन्तान में यदि कुल का असर न आता तो इस बात के लिखने की ही क्या आवश्यकता थी, हम प्रति दिन संसार में देखते हैं कि अर्श, कुष्ठ, अपस्मार, श्वित्रकुष्ठ आदि अनेक वंशजरोग सन्तान में अवश्य आ जाते हैं, जब बुरे रोग सन्तान का पीछा नहीं छोड़ते तब अच्छे संस्कार भी अवश्य ही आने चाहिये और आते ही हैं, इस में किसी आस्तिक को कभी भी सन्देह आज तक न हुआ और न होगा।

सादृश्य क्या पदार्थ है।

एक दूसरे में भेद रहते हुए भी, कुछ बातों में ऐक्य होना सादृश्य कहलाता है जैसे चन्द्रमा के सादृश्य में स्त्री का मुख, इसी प्रकार शूद्र उत्तम कर्म करने पर द्विजों के सदृश बन जाता है, परन्तु द्विज नहीं, ब्राह्मण भी शूद्रके समान आचरण करने पर शूद्र नहीं किन्तु शूद्र के समान हो जाता है। शूद्र होना दूसरी बात है, और शूद्र के सदृश होना दूसरी बात है। मनुस्मृति में जहां शूद्रता ब्राह्मणता, आदि शब्द आते हैं वहां यही सादृश्य उपस्थित होता है। उत्तम आचरण से नीच उत्तमता को, और

नीच आचरण से उत्तम नीचताको (जाति परिवर्तन)के बाद प्राप्त हो जाता है इसी लिये, आपस्तम्ब के सूत्र में (जातिपरिवृत्ती) ऐसा पाठ आता है। जो अल्पज्ञ इन सब बातों को न समझ कर यथेच्छ प्रलाप करते हैं उनके पासमे इन बातोका उत्तर नहीं है। यहा पर सत्यार्थप्रकाश की हिन्दी काम नही देती है।

ब्राह्मणका लक्षण।

महाभाष्य में (२।१।६) सूत्र का व्याख्यान करते हुये पतञ्जलि ने तप, विद्या और योनि यह तीनों जिसमे विद्यमान हों उसको उत्तम ब्राह्मण लिखा है। और (४।१।४८) सूत्रके भाष्यमें भी इसी बातका अनुमोदन किया गया है। जिसमें तप, विद्या न हों वह जातिका ब्राह्मण माना गया है। ब्राह्मणत्वसे खाली नहीं है। जो मूर्ख योनि शब्दका अर्थ दरजा करते हैं, उनकी मूर्खता पर हमको हंसी आती है क्योंकि इसमें कोई प्रमाण नही है।

कोई २ मूर्ख यह कहा करते हैं कि यदि आत्मा का अर्थ शरीर करोगे तो शरीर जलाने पर ब्रह्महत्या का पाप लग जाने का भय है। परन्तु उन मूर्खों को अभी तक यह भी पता नहीं है कि शरीर किसका नाम है-न्यायमें "चेष्टेन्द्रियार्थाश्रयः शरीरम्" यह सूत्र है-इसका अर्थ यह है कि, जिसमें चेष्टा हो, जिसमें इन्द्रिय अपना२ काम करतीं हों और जो अर्थ का आश्रय हो उसको शरीर कहते हैं। जीव के निकल जाने पर, शरीर में यह बातें नहीं रहतीं, वह केवल पिंडमात्र रह जाता है, उसको चाहे जला दो चाहे फेंक दो चाहे जलमें बहा दो, उसमें कोई पाप नही हैं।

एक ऋषिकी आज्ञा।

मीमांसा दर्शन के बनाने वाले महर्षि जैमिनि की एक आज्ञा है, जिसका उल्लेख उन्होंने अपने दर्शन में किया है। (विरोधेत्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम्) इस सूत्र में यह कहा गया है कि, वेद जिस बात का विरोध अथवा खण्डन करता हो, वह बात वेद के माननेवालों को नहीं माननी चाहिये, परन्तु वेदमें जिस बातका विरोध न हो उसके वैदिक होने का अनुमान करना चाहिये। वेद जन्म से वर्णव्यवस्था मानने का खण्डन किसी मन्त्र में नही करता है, प्रत्युत समय २ पर उस का समर्थन करता है, इसलिये, यह वैदिक है, और इसी को मानना चाहिये। जो इस बात को नहीं मानते वह देवतात्वेन किसी मन्त्र में गुण कर्म से वर्णव्यवस्था पोषक कोई मन्त्र दिखा दें, तब उसपर विचार किया जा सकता है।

मनुष्यों का भ्रम।

कोई २ अल्पज्ञ (ब्राह्मणोऽस्यमुखं०) इस मन्त्र से, समाज में वर्णव्यवस्था सिद्ध करने लगते हैं जिनकी मूर्खता पर हमको हंसी आती है। इस मन्त्रका देवता पुरुष है

इसीलिये इसका नाम भी पुरुषसूक्त है। इसमें इस बात का प्रतिपादन किया गया है कि ब्राह्मण जाति को विराट् का अथवा पुरुष का मुख मानना चाहिये परन्तु ब्राह्मण किसको कहना चाहिये, ब्राह्मण का लक्षण क्या है, इस बात का इस मन्त्र में कुछ प्रतिपादन नहीं है। इसलिये वर्णव्यवस्था के विषय में इस मन्त्र का प्रमाण देना केवल अपनी मूर्खता का परिचय देना है।

कोई २ बुद्धि के शत्रु (कारुरहं) इस मन्त्र को इस विषय में देकर अपना प्रयोजन सिद्ध करना चाहते हैं, परन्तु इस मन्त्र का देवता-प्रतिपादनीय विषय (पवमान सोम) है उसी का इसमें वर्णन है, और इसका अर्थ निरुक्तकार ने निरुक्त में किया है उसको देखना चाहिये।

उपसंहार।

सज्जनो! यह विषय बड़ा गहन है, साथ ही बड़ा विस्तृत है थोड़े से समय में इसका पूरा वर्णन करना असंभव है। सनाढ्यमहामंडल के इस वार्षिक महाधिवेशन में, जो कुछ अपने जातीय भाइयों का मेरे से, प्रेम है, उस के लिये यह कथन मेरी ओर से, प्रेमोपहार है। मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि ब्राह्मण जाति पर आजकल जो मिथ्या आक्षेप समाजियोंकी ओर से हो रहे हैं, उनका बड़े ज़ोर के साथ में निराकरण किया जाय, इसी विषय के विचारों ने मेरे मन को आवृत किया है। इस समय आप लोग मेरी बातों को सुनते २ थक गये होंगे, समय भी कुछ बहुत हो गया है, यदि समय मिला तो फिर कभी इस विषय का विवेचन करूंगा। ईश्वर इन मेरे भावों को अनन्य भाव से स्वीकृत करे, और भारतवर्ष में ब्राह्मणों का विजय हो। ओ३म् शान्तिः ३॥



राष्ट्र-भाषा हिन्दी।

[लेखक, महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी]

हिन्दी ही हिन्दुस्तानके शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है—यह बात निर्विवाद सिद्ध है। कैसे हो सकती है—केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को आज कल अङ्गरेजी भाषा लेनेका प्रयत्न कर रही है, पर जिसको लेना उसके लिए असम्भव है, वही स्थान हिन्दी को मिलना चाहिये। क्योंकि उस पर हिन्दी का पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अङ्गरेजीको नहीं मिल सकता है क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिये बड़ी कठिन है। अंग्रेजी की अपेक्षा हिन्दी का सीखना हाथ का खेल है। हिन्दी बोलने वालों की संख्या प्रायः ६$\frac{1}{2}$ करोड़ है। बंगला, बिहारी, उड़ि-

या, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और सिन्धी, हिन्दी की बहिनें हैं। उक्त भाषाओं के बोलने वाले थोड़ी बहुत हिन्दी समझ तथा बोललेते हैं। इन सबको मिलाने से संख्या प्रायः २२ करोड होजाती है। जिस भाषाका इतना प्रचार है उसकी बराबरी करने के लिए अंग्रेज़ी, जिसे एक लाख भी हिन्दुस्तानी ठीक ठीक नही बोल सकते हैं, क्योंकर समर्थ हो सकती है। आजतक हमारा देशी काम और व्यवहार हिन्दी में नही होने लगा है इसका कारण हमारी भीरुता, अश्रद्धा और हिन्दी भाषा के गौरव का अज्ञान है। यदि हम भीरुता छोडदें, श्रद्धावान् बनें हिन्दी का गौरव समझ ले तो हमारी राष्ट्रीय और प्रान्तिक परिषद्‌ तथा सरकारी धारा-सभा का भी व्यापार हिन्दी में चलने लगेगा आरम्भ प्रान्तिक राष्ट्रीय मण्डलों से होना आवश्यक है। इस कार्य में यदि कुछ कठिनता भी है तो वह प्रायः तामिलादि द्रविड भाषा भाषियों के लिए है। पर इसकी भी ओषधि हमारे हाथ में है। उत्साही साहसिक स्वभाषाभिमानी हिन्दी के जोशीले पुरुषों को विना वेतन हिन्दी की शिक्षा देनेके लिए मद्रासादि प्रान्तोंमें भेजना चाहिये। वे हिन्दी के पराक्रमी प्रचारक बनजांय तो अल्प ही काल में मद्रासादि प्रान्त के शिक्षित वर्ग हिन्दी सीख लेंगे। यदि हमारे में उचित जोश हो तो इस प्रश्न का उत्तर केवल त्रैराशिक पर हो रहता है। जितने अधिक शिक्षक भेजे जांय उतना ही शीघ्र हिन्दीका प्रचार हो जावेगा। शिक्षकोंके भेजनेके साथ स्वयं शिक्षण पुस्तकें भी बनानी चाहिए। इन पुस्तकों का प्रचार विना मूल्य होना आवश्यक है। भाषा सीखने की आवश्यकता बतलाने के लिए प्रतिष्ठित वक्ताओं का भेजना भी आवश्यक है।

जैसा प्रचार द्रविड देशमे करना आवश्यक है वैसा ही प्रचार मुम्बई आदि देशों में उचित है। मराठी-गुजराती-भाषा भाषियोंके लिए भी हिन्दी पुस्तकें तैयार करनी चाहिए और उन प्रदेशों में भी प्रचारक भेजे जाने चाहिए।

इस कार्य में द्रव्यकी आवश्यकता है। हमारे धनाढ्य-समुदाय को यह कार्य बोझ रूप न समझना चाहिए। उसका यह कर्त्तव्य है कि इस बृहत्कार्य में सहायता दे।

प्रबन्ध करने के लिये एक छोटी सी समिति बनाने की आवश्यकता है। इतना ध्यान रखना उचित है कि इस समिति में केवल कार्य करने वाले ही चुने जांय।

इस निवेदन में एक गर्भित बात आजाती है। वह यह है कि हिन्दी और उर्दू के बीच में भेद नही रक्खा गया है। वास्तव मे ये लिपि के भेद से भिन्न हैं। वे बहुत अंश में एक हैं। लिपि के विषय में हम अपने इस्लामी भाइयों से क्यों झगड़ें वे उर्दू लिपि में पढ़ें। हममें से थोड़े लोग उर्दू लिपि भी जानते हैं तथा और अधिक लोग सीख लेंगे। जब तक इस्लामी भाई देवनागरी लिपि नही पढ़ लेंगे तब तक हमारे राष्ट्रीय कार्य दोनो लिपि में हुआ करेंगे। कैसा ही क्यो न हो, इस प्रश्न का निबटारा हम इस्लामी भाइयों के साथ भ्रातृभाव से कर सकते हैं। अबतो उक्त लिपि तथा भाषा का सारे भारतवर्ष में प्रचार करना एक मुख्य कर्त्तव्य है।

तुलसीभ्रमभञ्जन
या
छुट्टनमान मर्दन

(गताङ्क से आगे)

५६ प्रश्न–वेद की ११३१ शाखाओं में चार ही शाखा वेद हैं शेष ११२७ शाखा वेद नहीं, इसमें ऐसी पुष्ट युक्ति वा प्रबल प्रमाण क्या है, जिसका खण्डन न हो सके। यदि कहो कि सब शाखा ऋषि प्रोक्त होने से ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध हैं इस से वे ईश्वर प्रोक्त नहीं हो सकतीं, तब यही बताओ कि जिन चार शाखाओं को तुम वेद मानते हो उनके ईश्वर प्रोक्त होने में क्या प्रमाण है।

५६ उत्तर–चार वेद सब ऋषि महर्षि मानते आये हैं वाजसनेयादि संहिताओंके ही आदि मन्त्र महाभाष्यमें पतञ्जलि मुनिने इन्हीं चारोंके प्रतीक धरकर बताये हैं। इन का वेद होना आपभी स्वीकार करते हैं, अतः यह तो स्वीकृत हैं ही। अब आप ११२७ शाखाओंके लियेभी ऋषि मुनियोंकी साक्षी दीजिये। यह बारे सुबूत आपके जिम्मे हैं।

समीक्षा–जिसको प्रश्न समझने तक की योग्यता नहीं वह उत्तर लिखने बैठे इस से अधिक आश्चर्य क्या हो सकता है। चार वेद हैं यह तो हम भी मानते हैं पर उन २ वेदों की शाखायें वेद नहीं हैं इसका प्रमाण देना चाहिये था। महर्षि पतञ्जलि ने लिखा है कि एकशतमध्वर्युशाखाः। सहस्रवर्त्मा सामवेदः। एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्। नवधा आथर्वणो वेदः। क्या इन ऋषिकृत प्रमाणों को भी न मानोगे। इन में स्पष्ट ११३१ शाखायें मानी हैं। अब आप किसी ऋषि मुनिका यह प्रमाण दीजिये कि वेद की ११३१ शाखायें वेद नहीं हैं।

६० प्रश्न–पाणिनीय अ० ४। ३। १०६ (शौनकादिभ्यश्छन्दसि) सूत्र के गणपाठ में १७ शब्द हैं इन्हीं में वाजसनेयी शब्द भी पढ़ा है। तुम जिन चार संहिताओं को वेद मानते हो उनमें महर्षि वाजसनिप्रोक्त वाजसनेयी शुक्ल यजुःसंहिता है। वैसे कौथुमी शौनकी आदि ये चारों संहिता भी ऋषिप्रोक्त हैं। तब क्या इनका भी वेद मानना छोड़ दोगे।

६० उत्तर–शौनकादि शब्द १७ गणपाठ में बताने से सब संहिता वेद नहीं हो सकतीं। यथा पं० ज्वालादत्तादि स्वामी जी के शिष्यों में आर्यसमाज परिचयमें मुंशी समर्थदानजी ने (आपका) पं० भीमसेन जी का नाम लिखा है और आप भी स्वयं

छापते रहे हैं तो क्या आपके अब के लेख भी आर्यसमाज को वैसे ही मान्य हो सकते हैं ?। कभी नहीं। अब १७ वेद साबित करना आपका काम है।

समीक्षा-वाजसनेयी और शौनकी आदि चार शाखाओं का वेदत्व तुमको स्वीकार है और शेष का नहीं जब सभी (छन्दसि) पद देकर अष्टाध्यायीकार पाणिनि जी ने वेद मानी हैं तब तुम एक को ग्रहण कर दूसरे को ,कैसे छोड सकोगे मानोगे तो सभी माननी पडेंगी यदि नहीं मानोगे तो चारों वेदों से भी हाथ धोना होगा, पं० हजारीलाल के यदि दो लडके तुलसीराम और छुट्टनलाल हैं तो दोनों को ही हजारीलाल के लडके मानना होगा।यह कैसे हो सकता है कि एक और किसी का मान लिया जाय यह बात दूसरी है कि दोनों के विचार भिन्न २ हों पर भ्रातृत्व अंश में तो दोनों का ग्रहण होगा। इसी तरह (छन्दसि) पद के साथ पढ़ने से तुम सभी शाखाओं को वेद मानने से नहीं बच सकते।

६१ प्रश्न। जब स्वा० द० ने अष्टाध्यायीके सूत्रोंमें जहां जहा छन्दसि आया वहां २ छन्दः पदसे मन्त्रभाग वेदका ग्रहण किया है तो (शौनकादिभ्यश्छन्दसि, में भी तुमको छन्दः पदसे वेदका ग्रहण करना ही पड़ेगा ? तब शौनकादि प्रोक्त सत्रह वेदकी शाखा तुम को वेद मानने पडेंगी। यदि न मानोगे तो वाजसनेयी और शौनकी आदि चार शाखा का वेदत्व भी छोडना पड़ेगा। ऐसी दशामें,या तो १७ वेद मानो या चार को भी छोडो अब दोनों वा चारों ओर से गिरफ़ार हो गये,सो कैसे छूटोगे ?।

६१ उत्तर-महामोह विद्रावण का उत्तर देते हुए भी पं० भीमसेन जी वेदार्थ के मर्मज्ञ अपने को लिखते हुए ४ संहिताओं को वेद इतर का खण्डन लिखचुके हैं या तो अपनी उस समय की मूर्खता धृष्टता अज्ञानता वेदार्थज्ञानशून्यता, लिखो या अब के लेख को मिथ्या मानो। अब दशों दिशाओं में फस गये हो कैसे छुटोगे ?।

समीक्षा-स्वा० द० ने पहिले सत्यार्थप्रकाश में मृतपितृश्राद्धतर्पण मांस का हवन आदि लिखा है या तो उस समय की स्वा० द० की मूर्खता, निर्लज्जता. दुष्टता भारत को भ्रष्ट करने की चेष्टा कहो या अबके लेख।पर हरताल फेरो। अब या तो खाई में गिरो या कुंएमें, और कोई गति नही।

६२ प्र०-क्या तुम वेद को स्वतः प्रमाण।मानते हो वा नहीं ? यदि मानते हो तो प्रत्यक्षानुमान के अनुकूल वेदार्थ करने का अडंगा क्यों लगाते हो ?।

६२ उत्तर-हम वेद को स्वतः प्रमाण मानते हैं और शतपथादि ऋषिप्रोक्त अर्थानुकूल अर्थ करते हैं। हां आप के सहयोगी भाई ज्वालाप्रसादादि सायणाचार्यादि के भाष्यविरुद्ध अवतार सिद्ध करने को खींचतान करते हैं,उस को हम अनर्थ समझते हैं, इसलिये प्रत्यक्षादि प्रमाणों से भी पुष्टि करते हैं।

समीक्षा-प्रत्यक्षादि प्रमाणानुकूल अर्थ करने से वेद का स्वतः प्रमाणत्व तुम्हारे मत में नष्ट हो गया, जब वेद में अवतारादि के सैकडो प्रमाण मौजूद हैं तब विरुद्धार्थ कर के भी तो इन बातों को नहीं हटा सकते। ले० ब्रह्मदेव मिश्र

सूक्तिविलासः ।

असारे संसारे विदितगतसारे परिभ्रमन्,
न जानीते जीवः किममृतमयो वा विषमयः ।
यदा क्लेशैः क्लिष्टः स्मरति महिमानं मुररिपोः,
तदा मायामेतां तरति बहुलां शोकभरिताम् ॥ १ ॥
कदाचित्स्वच्छान्तः करणभ्रमभिन्नेन मनसा,
स्मृतो नो सर्वेशस्सकलसुखकर्त्ता सुपुरुषः ।
इदानीमापत्तौ पतति मयि चित्तभ्रमकरे,
कथं याचे शम्भो तव चरणसेवापरिचयम् ॥ २ ॥
विधातुर्व्यापारादवनिपतिचूडामणिरहो,
भवेत्कश्चिन्निस्वः किमिह नियतीनामविषयः ।
परन्त्वेतद्दुःखं हृदि खलु समुत्पादयति मे,
यतो तल्लीलातः स भवति नृपोऽकिञ्चनजनः ॥ ३ ॥
तारुण्यमाश्रितवता न त्वया स्मृतं यद्-
दीनेजनेऽपि करुणा पुरुषेण कार्या,
स त्वं स्वयं नियतिपाकवशादिदानीम्,
दैन्यङ्गतस्तदपराधफलं लभस्व ॥ ४ ॥
रे ग्रीष्म ! भीष्मपवनैः किमरुन्तुदोऽसि,
आगः कियांस्तव कृतो मनुजैर्वराकैः ।
नोचेद्भिनत्सि कृपणान् विशिखैः स्वकीयैः ।
किं ब्रूहि निष्करुण याहि स्वकीयगेहम् ॥ ५ ॥
अयि निदाघ दयांकुरु प्राणिषु ।
ह्यनुचितं चरितं किमु मानुषैः ॥
यदि न चास्ति दया तव सन्निधौ ।
फलमवश्यमवश्यमवाप्स्यसि ॥ ६ ॥

ब्रह्मदेव मिश्रः ।

छुट्टनलाल की मूर्खता ।

मई सन् १९१७ के वेदप्रकाश में छुट्टनलाली लीला का फिर आविर्भाव दिखाई पड़ा है, दिसम्बर सन् १९१६ ब्राह्मणसर्वस्व में तीर्थमीमांसा नामक एक सम्पादकीय लेख छपा है इसमें वेदादि शास्त्रों के अटल प्रमाणों से तीर्थ विषय की सिद्धि कीगई है उसको देखकर छु०.ला० को सन्निपात होगया है और आप प्रलाप करते हैं कि, "पं० भीमसेन जी ने सायण भाष्य में (सायुज्यमोक्षजन्यमानन्दमाप्नु हि) इतना वाक्य और जोड दिया है" ।

ऐसे बुद्धिके शत्रुओंको क्या कहकर समझाया जाय सो हमारी समझमें नहीं आता क्योंकि "सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्" जिन दयानन्दियों के पीर मुरशद स्वा० दयानन्द ने मनुस्मृति के नाम से "विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपपादयेत्" इत्यादि श्लोक ही बनावटी लिख डाला है और अपने लिये धन जोडने का झांसा देकर सत्यार्थप्रकाश का पेट थल थल कर दिया है उन के चेलों को यदि मिलानेका स्वप्न न दीखेगा तो और किनको दीखेगा, अरे भले मानस ! "वैष्णवं लोकं गच्छ" इसका अर्थही तो "सायुज्य मोक्षजन्यमानन्दमाप्नु हि" है इसमें मिलानेकी क्या बात है, पर्याय वाचक वाक्य देदेना मिलाना नही होता, यदि ऐसा हो तो सभी भाष्यकर्त्ता अन्यायी सिद्ध होजावेंगे और भाष्य करने की परिपाटी ही उठ जावेगी क्यों कि जहां उन्हों ने किसी भी पद का अर्थ करने लिये पर्यायवाची शब्द दिया कि वे मिलाने के दोषी होगये । छु० ला० प्रत्येक वेदप्रकाश के अङ्क मे स्वयं इस तरह की मिलावट वेद मन्त्रों के भाष्य मे करते हैं । अदो यद्दारुप्लवते० इस मन्त्र के भाष्य मे सायणाचार्य ने स्पष्ट शब्दों से पुरी तीर्थ के माहात्म्य का वर्णन किया है । छु० ला० जैसे हठी और अज्ञानी न समझें तो दोष किसका है । "नोलूकोऽप्यवलोकते यदिदिवा सूर्यस्यकिं दूषणम्" जगन्नाथ की प्रतिमा के लिये जो काष्ठ जलमें तरता हुआ दिखाई पड़ता है वह मनुष्यका बनाया नही है । मन्त्र में पढ़े प्लवते क्रियाका अर्थही 'तरति' है । मन्त्र मे नौका का कही नाम भी नही पर छुट्टनलाल नाव में बैठकर परलीपार जाने का स्वप्न देख रहे हैं । सायण भाष्य का जो हिन्दी अर्थ छु० ला० ने किया है वह बनावटी और मनमाना है । मन्त्रमें पढ़े दारु शब्द का अर्थ देवदारुकी लकड़ी करना छुट्टनलाल का अज्ञान है । दारु नाम काष्ठ का है । छु० ला० के मनमाने अर्थ मे अनेक दोष हैं जो सक्षेप से हमने लिख दिये हैं इनकी युक्ति विरुद्ध वार्तों का उत्तर देना भी व्यर्थ है ।

भ० ब्रह्मदेव मिश्र,

साहित्य-चर्चा।

प्रसूतिशास्त्र। ले० डा० प्रसादीलाल झा एल० एम० एस०, कानपुर मू० २॥)

पुस्तक लेखक डा० प्रसादीलाल झा सुयोग्य डाक्टर हैं पर साथ ही आयुर्वेद के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं और उस के प्रेमी भी हैं आयुर्वेद सम्बन्धी सम्मेलनोंमें आप जाते हैं और वहां वैद्यक प्रचार सम्बन्धी उपयोगी प्रस्तावों में भाग लेते हैं ऐसे ही उक्त डाक्टर साहब ने इस पुस्तक की रचना की है यद्यपि पुस्तक की पृष्ठसंख्या डेढ़सौसे थोड़ीही अधिक है तथापि चित्रों की अधिकता, कागज की उत्तमता और छपाई की सुन्दरता तथा विषय की महत्ता के कारण इस का मूल्य कुछ अधिक रक्खा गया है, प्रसूतिशास्त्र की हमारे यहां कमी नहीं है क्योंकि चरक सुश्रुत आदि प्राचीन वैद्यकके ग्रन्थों में यह विषय उत्तमता से प्रतिपादित किया गया है पर आयुर्वेद शिक्षा का प्रचार ठीक न होने से आज कल के वैद्य इस विषय में इतने दक्ष नहीं, इस का परिणाम यह होता है कि साधारण धनहीन गृहोंमें जब कभी प्रसूति सम्बन्धी कोई अड़चन उपस्थित हो जाती है तो मूर्ख और शरीर रचना ज्ञानसे हीन दाइयां और विपत्ति उपस्थित करदेती हैं। कभी कभी तो गर्भस्थ बालक और प्रसूता दोनों की ही मृत्यु हो जाती है, यदि प्रसूतिशास्त्रका कुछ ज्ञान हो तो ऐसी विपत्ति क्यों आवे, इस दृष्टि से यह पुस्तक पढ़े लिखे गृहस्थों के काम की है, इस में स्त्रियों के जननेन्द्रियसम्बन्धी अवयवों के चित्र और उन की कार्यप्रणाली तथा भिन्न २ समय में गर्भस्थ बालकों की आकृति के चित्र विस्तार से दिये गये हैं। यद्यपि ऐसी बातें अपरिपक्व मस्तिष्क बालक बालिकाओंके जाननेसे हानि हो सकती है और साधारणतया ये बातें लज्जाजनक मानी जा सकती हैं परन्तु जिन बातों के न जानने से समय पर प्राणघातक विपत्ति उपस्थित हो सकती है उन बातों का जानना भी आवश्यक है। डाक्टर साहब ने संस्कृत शब्दों के अन्वेषण में बड़ी योग्यता दिखाई है अंग्रेजी के शब्दों से जो भाव सूचित होता है उस के साथ समन्वय करने के लिये वैसे ही शब्द संस्कृत के ढूंढ़कर आप ने रक्खे हैं। चिकित्सा प्रणाली इस में यद्यपि डाक्टरी ही अवलम्बित की गई है तथापि बहुत से सिद्धान्तों का सम्मेलन आपने वैद्यक से करके भी दिखला दिया है। एक बात हमें कहना है कि डा० साहब ने आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों से प्रायः प्रत्येक पृष्ठ में जो वचन डाक्टरी चिकित्सा के सिद्धान्तों से समन्वय करने के लिये उद्धृत किये हैं उन को अधूरा उद्धृत न करना था, उन वचनों का उतना २

अंश पूरा उद्धृत करना था जिस का अर्थ एकसाथ ठीक समझ में आ सकता हो पुस्तकका यह प्रथम भाग है अभी इस के दो तीन भाग शायद और निकलेंगे, मिलने का पता उपर्युक्त ।

हमारे शरीर की रचना । (प्रथमभाग) लेखक डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा बी० एस० सी० एम० बी० बी० एस० किंगजार्जमेडीकल कालेज–लखनऊ । मू० २।)

शरीर की आरोग्यता का जीवन से बड़ा भारी सम्बन्ध है मनुष्य संसार में जीवित रहकर तभी सब प्रकार के उपयोगी कार्यों को कर सकता है जब कि वह आरोग्य रहे । आरोग्य रहना तभी हो सकता है कि जब शरीर की रचना का ज्ञान हो हिन्दी में इस विषय की पुस्तकों का एक प्रकार से अभाव ही कहना चाहिये प्रस्तुत पुस्तक में उक्त डा० साहब ने बड़ी योग्यता से शारीर विज्ञान (एनाटमी) का वर्णन किया है साथ ही कहीं २ चरक सुश्रुतादि आयुर्वेदीय ग्रन्थों का भी मत दिखाया गया है । शरीर की रचना का वर्णन उत्तम और सरल रीति से लिखा गया है इस मे पृष्ठ संख्या २६८ और चित्रों की संख्या ५६ है । इस मे पारिभाषिक शब्द अधिकतर संस्कृत या हिन्दी के ही रक्खे गये हैं कुछ थोड़े से अंगरेजी के भी हैं । कितने ही शब्द ग्रन्थकर्त्ता महाशय ने स्वयं बनाये हैं । पुस्तक के अन्त में समस्त पारिभाषिक शब्द और उन के नाम अंगरेजी में दिये गये हैं शरीर की रचना का बाह्य और और आभ्यन्तरिक वर्णन जानने के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी है और वैद्यक विद्या का अभ्यास करने वालों के सिवाय सर्वसाधारण भी इस से बहुत लाभ उठा सकते हैं ।

हास्यपूर्ण नाटकों का गुच्छा । जी० पी० श्रीवास्तव हास्यरस के प्रसिद्ध लेखक हैं आपकी "बनाई हुई लम्बी डाढ़ी" की हिन्दी पाठकों में अच्छी कदर हुई है कितने ही मुसलमानों तकने उसे पढ़नेके लिये हिन्दी सीखी यह हर्षकी बात है प्रस्तुत पुस्तक में आप के बनाये तीन नाटकों का सग्रह है । उनके नाम यह हैं १–मार मार कर हकीम २–आंखों में धूल ३–हवाई डाक्टर । ये तीनों नाटक फ्रांसीसी लेखक मौलियर के बनाये हुए हैं पर श्रीवास्तव जी ने इन की रचना हिन्दुस्तानी ढंग से की है पात्रों का नाम बदल दिया है पर हास्य रस का समावेश और भी अधिक कर दिया है। पहिले नाटकका अनुवाद हिन्दीमें 'ठोंक पीटकर वैद्यराज, नामसे भी होचुका है और वह बम्बईमें छपा है पर श्रीवास्तव जी का नाटक उससे भी अच्छा हुआ है क्योंकि मुहावरों और तुकबन्दी का आपने ज्यादा पालन किया है । पुस्तक की छपाई कागज आदि भी उत्तम है मू० ॥।=) मिलने का पता बी० पी० सिन्हा मा० मि० जी० पी० श्रीवास्तव बी. ए. एल एल. बी. वकील गोंडा (अवध)

अथर्ववेदालोचन। यह पुस्तक आर्यसमाजियों के प्रसिद्ध महारथी पं० अखिलानन्द जी ने बड़ी योग्यतापूर्वक लिखी है पुस्तक १७८ पृष्ठों में सम्पूर्ण हुई है प्रारम्भ के साठ पृष्ठोंमें मंगलाचरण, प्रस्तावना, अवतरणिका आवश्यक विवरण, और हमारा सिद्धान्त इत्यादि हेडिंग देकर कितनी ही बातें लिखी गई हैं और शेष में अथर्ववेदके मन्त्र दे २ कर उन का अर्थ सरल हिन्दी भाषा में लिखा गया है, मन्त्रों में जिन २ विषयों का वर्णन हैं उन के नाम भी ऊपर लिख दिये गये हैं, बीच २ में संस्कृतानभिज्ञ बाबू पार्टी के समाजियों का खण्डन भी किया गया है, अथर्ववेद के सूक्तों में वर्णित इतिहास, शकुन, फलित ज्योतिष और भूत प्रेतादि का वर्णन सनातनधर्मी लोग तो पहिले ही से मानते हैं पर आर्यसमाजियों से यह आशा करना कि वे इन वैदिक सिद्धान्तों को मान लेंगे हमारी समझ में व्यर्थ है। आर्यसमाजी वेदों से बढ़ कर सत्यार्थप्रकाश और उस से भी बढ़कर अपनी बुद्धि को मानते हैं ऐसी दशा में उनसे कोई आशा नहीं, हां जो हठी और दुराग्रही नहीं और भ्रमवश आर्यसमाज को वेदानुकूल समझ उस में सम्मिलित हो गये हैं उन का सुधार हो जाना सम्भव है। कविरत्न जी ने इस में स्वर्गलोक पितरलोक, और भूतों की स्थिति स्पष्टरूप से स्वीकार की है अन्य भी सनातनधर्म की कितनी ही बातें वेदानुकूल स्वीकृत की हैं पर अब भी कई बातें ऐसी हैं जिन का विचार अभीतक आप ठीक नहीं कर सके हैं मूर्त्तिपूजा, अवतार, तीर्थ और विधवाविवाह इन चारों को ही ले लीजिये पूर्वोक्त तीन सिद्धान्तोंको सनातनधर्मी वेदानुकूल और विधवाविवाह को वेदविरुद्ध मानते हैं पर कविरत्न जीने पुस्तकान्त में अथर्ववेद के दो मन्त्रों से विधवाविवाह सिद्ध करने की चेष्टा की है। हमारी समझ में यह कविरत्न जी की अनधिकार चेष्टा है। जब मनुस्मृति में स्पष्ट लिखा है कि "नतु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्यतु,,। तब वेद में विधवाविवाह का समर्थन कैसे हो सकता है अस्तु इतनी बात अच्छी है कि नियोगको आप सर्वथा अवैदिक समझते हैं। यद्यपि पुस्तक का मूल्य १) है परन्तु ब्राह्मणसर्वस्व के ग्राहकों से मूल्य ॥) ही लिया जायगा मिलने का पता-पं०सुबोधचन्द्र शर्म्मा मु० चन्द्रनगर पो० रजपुरा जि० बदायूं।



पं० श्रवणलाल जी का भ्रमण वृतान्त।

मीरपुर राज्य जम्बू की सनातनधर्मसभा का उत्सव ता०.४ मार्च से हुआ जिस में प्रेम लक्षणाभक्ति, उपासना तत्त्व, सत्संग, विषयक ३ व्याख्यान हुए फिर-होशियार पुर ज़िला पंजाब की सनातनधर्म सभा के ता० १० मार्च के वार्षिकोत्सव में

उपासना तत्त्व, साधारण धर्म, ज्ञान व भक्ति, विषयक ३ व्याख्यान हुए और अपील भी पंडित जी के द्वारा ही कराई गई इस के सिवाय परोपकार एवं धर्म विषय पर एक व्याख्यान सेवा समिति में हुआ। दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ सनातनधर्म मण्डल के वार्षिकोत्सव ता० १६ मार्च में प्रेमाभक्ति, सत्सग, विषयक दो व्याख्यान हुए।

कालपी जिला बुन्देलखण्ड की दूढ़ोमर वैश्य सभा में ता० २७-मार्च को विवाह संस्कार का विज्ञान एवं परोपकार विषयक दो व्याख्यान हुए। राज्य धौलपुर की श्रीमती सनाढय सभाके वार्षिकोत्सवमें ता० १-२ अप्रैल को मनुष्य कर्त्तव्य एवं वर्ण-व्यवस्था विषयक दो व्याख्यान हुए। जिला आगरा मुकाम वाह जरार की श्रीमती सनाढय सभा का वार्षिकोत्सव ता० ५-६-७ अप्रैलको हुआ जिसमें ब्रह्मचर्य संस्कार एवं साधारण धर्म विषयक दो व्याख्यान हुए और तीसरे दिन अपील होने पर एक पाठशाला खुलगई। सिकन्दरावाद जिला बुलन्दशहर की सनातनधर्म सभाके उत्सव में ता० १०-११ अप्रैल को उपासना तत्त्व एवं सत्संग विषयक दो व्याख्यान हुए।

फीरोजपुर शहर जिला पंजाब की सनातनधर्म सभा के ता० १४-१५ अप्रैल के वार्षिकोत्सव में मूर्त्तिपूजन, देशानुराग, प्रेमाभक्ति पर ३ व्याख्यान हुए शंका समाधान के समय पर आर्यमुनि नामक एक समाजी विद्यार्थी ने प्रश्न किया कि ब्रह्म निराकार वेदों ने गाया है तब उस की प्रतिकृति कैसे हो सकती है ? इस का उत्तर विस्तार सहित पंडित जी ने दे दिया कि वेदों के निराकार ज्ञान की अक्षर मूर्त्ति है और उसी प्रकार काल की घडी घंटादि मूर्त्ति प्रचलित हैं उसी प्रकार निराकार ब्रह्म की मूर्त्ति भी हो सकती है इस के सिवाय वेदों ने ब्रह्म को साकार भी माना है देखो त्र्यम्बकं यजामहे, प्रजापतिश्चरति गर्भे, संवाहुभ्यां धमति, कुचरो गिरिष्ठाः आदि अनेक प्रमाण वेदोंमें हैं। इसको श्रवणकर उक्त विद्यार्थी चुप होगया परन्तु कुछ और समाजी लोग अपनी हार न समझकर अन्टशन्ट वकनेलगे वह नियमानुकूल चुप करदिये गए।

राज्य गवालियरान्तर्गत वाल्हेरा में श्रीमान ठाकुर पुनीतसिंह जी साहबके प्रवन्ध से देशानुराग विषयक एक व्याख्यान ता० १८ अप्रेल को हुआ।

जिला श्योपुरान्तर्गत टेटरा ग्रामकी पाठशाला के मुख्याध्यापक पं० गणपतिलाल जी के प्रवन्ध से ता० २१ अप्रेल को गृहस्थधर्म विषयक एक व्याख्यान हुआ।

विजयपुर राज्य ग्वालियर में ता० २२-२३-२४ अप्रैल को श्रीमती सनाढय महा सभा राज्य गवालियरका महाधिवेशन हुआ जिसमें सनातनधर्म एवं जाति सुधारक विविध विषयों पर हुए।

शामली जिला मुजफ्फरनगर की सनातन धर्म सभा का महोत्सव किसी कारण से वन्द होगया तथापि ता० ६ मई को सज्जन संगति विषयक एक व्याख्यान हुआ।

बद्रीनाथ जी में व्याख्यान ।

अपनी पूज्य माता के साथ उत्तराखण्ड की तीर्थयात्रा करते हुए महोपदेशक पं० नन्दकिशोर शुक्ल वाणीभूषण जी यहां आये थे । गंगा दशहरा के दिन श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहब के प्रवन्ध से सभा हुई । वद्रीनारायण के धामके महन्त रावल जी महाराज सभापति हुए । सभा में वाणीभूषण जी ने दो घण्टे तक बड़ा ही प्रभावशाली रोचक व्याख्यान दिया, सनातनधर्मके तीर्थ माहात्म्य को सिद्ध कर आपने पंडा पुरोहित पुजारियों में विद्याप्रचार की वहुत आवश्यकता बताई । देवप्रयाग के ब्रह्मचर्याश्रम की उन्नति पर जोर दिया और यात्रियों को कष्ट न देने के लिये समझाया, व्याख्यान का बड़ा प्रभाव पड़ा है लोगों की आंखें खुल गई और अच्छी जागृति हुई । सभा में वाणीभूषण जी को पुष्प हार पहनाकर खूब धन्यवाद दिया गया । चेतराम शर्मा

मित्र का कर्त्तव्य ।

मैं अपने परम मित्र श्रीमान् पाण्डेय गोवर्धनलाल शर्मा छिवरामऊ निवासी को कोटिशः धन्यवाद देता हुआ अपने साथ किये हुये उपकारों में से यह दिग्दर्शनमात्र आप लोगों की सेवा में उपस्थित करता हूं कि गत मास वैशाख शुक्ल १५ चन्द्रवार तदनुसार ७ मई को मेरी स्त्री का प्लेग से देहान्त होने के कारण कोई मेरे पास भी नहीं आया परन्तु उक्त पाण्डेय जी ने तत्क्षण अन्य अपने इष्ट मित्रों को साथ ले बड़े साहस के साथ मृतक शरीर (मेरी पत्नी) को उठा वैल गाड़ी पर रख (जो पांड़ेजी अपने साथ लाये थे) नगर से उत्तर दो कोश काली नदी पर जाकर बड़ी शीघ्रता से दाह क्रिया कराके स्वस्थान को लौट आये किन्तु कहीं प्लेग का वायु (हवा) हम लोगों को लग न जावे पांड़े जी ने हम लोगों के रक्षार्थ अपनी बुद्ध्यनुसार बड़ा ही प्रयत्न किया परन्तु शीघ्रताके कारण वेदविरुद्ध दाहक्रिया पर कुछ भी ध्यान न दिया अस्तु अब पांड़े जी से मेरी वहु प्रकार प्रार्थना है कि कर्मकाण्ड के विषय में पांड़े जी ऐसी शीघ्रता न किया करें तो अच्छा हैं क्योंकि गीतामें श्रीकृष्ण भगवान् का वाक्य है कि

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परांगतिम् ॥

अ० १६ श्लो० २३ ।

उक्त पांड़े जी सुमति प्रवर्द्धनी सभा (जो छिवरामऊ में साप्ताहिक होती है पर उस समय प्लेग के कारण बन्द थी) के मुख्य सभासद वा उपमन्त्री हैं इस समय संसार में विपत्ति आ जाने से सभा भी पवलिक की कुछ सहायता न कर सकी ।

प्रेमदत्त शर्मा छिवरामऊ.

PRINTED BY B. D. MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

लोगोंकी राय

अब इस बात के लिये पक्की होगयी है कि 'सुख संचारक कम्पनी मथुरा' का बनाया 'सुधासिंधु' ही सबसे अच्छी और तत्काल अचूक फल देने वाली दवा है बाकी सब उसकी नकल हैं तभी तो उसके **चौथाई लाख** से अधिक एजंट हो चुके हैं २७ वर्ष की परीक्षा के बाद यह पूरा निश्चय हो चुका है कि इस कम्पनी का सुधासिंधु **कफ, खांसी, दमा, हैजा, हरे दस्त, पीले दस्त आंवलोहू, संग्रहणी, शूल, सर्दी, जुकाम, नजला आदि** रोगों को दूर करने में बिना अनुपान की स्वादिष्ट सुगंधित दवा है कीमत फी शीशी ॥) आना डांकखर्च १ से ६ तक ॥)

कई हजार प्रशंसापत्रों में से कुछ थोडे से प्रशंसापत्र.

श्रीवेंकटेश्वर समाचार पत्र बम्बई २१ फरवरी सन् १९०८

सुख संचारक कम्पनी मथुरा का "सुधासिंधु" बदहजमी और उससे उत्पन्न हुए विशूचिकादि रोगों की एक अव्यर्थ दवा है।

अभ्युदय समाचार पत्र प्रयाग ७ मई सन् १९०९

सुधासिंधु—यथार्थ ही सुधासिंधु है. सम्पूर्ण गृहस्थों को इसे अपने पास रखना चाहिये क्योंकि यह बहुत प्रकार की बीमारियों में लाभदायक है। हमने अब तक १०–१२ शीशी मंगाकर लाभ देखा है।

सरकार से रजिष्ट्री किया हुआ, दाद का अचूक इलाज

दद्रुगज केसरी.

बिना जलन और तकलीफ के दाद को जड़ से खोनेवाली यदि कोई दवा है तो यही है कीमत फी शीशी ।) आना।

जिस शीशी पर सुख संचारक कंपनी मथुरा का नाम न लिखा हो उसे हर्गिज न खरीदिये.

सबसे अधिक विश्वास योग्य पत्र.

महाशय! आपकी दवा दद्रुगज केसरी का प्रयोग किया गया। दाद अच्छी होगई। दवा उपयोगी है।

आपका—माननीय राजा सर रामपालसिंह के. सी. आई. ई.
राज कुर्री सुदौली जिला रायबरेली

बालसुधा—अगर आपको अपने बालक मोटे ताजे और तन्दुरुस्त बनाने हैं, रोज की बीमारियों से पीछा छुड़ाना है तो इस मीठी दवाको मंगाकर पिलाइये। एक शीशी प्रायः १ महीने को काफी है। कीमत फी शीशी ॥।) डांकखर्च ।≈) आना।

आपको अपनी जरूरत की कोई भी चीज चाहिये तो पहले हमसे पूछिये. और हमारा सचित्र सूची मुफ्त मगाकर देखिये।

हमारी दवा सब बड़े दवा बेचने वाले और दूकानदारों के पास भी मिलती है पर धोखे से दूसरी दवा मत खरीद लेना। ४ भाग का चित्र और तस्वीरदार बड़ा सूचीपत्र सबको बेदाम मिलेगा।

मंगाने का पता—सुख संचारक कंपनी मथुरा.

उपयोगी पुस्तकें

स्त्री देह तत्व-(अर्थात् स्त्रीचिकित्सा का अपूर्व ग्रन्थ) इसमें बड़ी सरल रीति से स्त्री शिक्षा, ऋतुरक्षा, सहवासविधि, गर्भप्रकरण के कर्त्तव्याकर्त्तव्य, प्रदररोगादि की चिकित्सा, धात्रीविद्या, और बालरक्षा की अनेक उपयोगी बातें लिखी हैं। मूल्य ||।)

—* व्याकरण पत्रावली *—

इस पुस्तक में काशीकी प्रथम परीक्षा और मध्यम परीक्षा के दस बरस के परचे हैं। प्रयोगों की सिद्धि संस्कृत में बड़ी उत्तमता के साथ कीगई है। इसको कंठस्थ करने से विद्यार्थी व्याकरण के परचे में अनुत्तीर्ण (फेल) नहीं हो सकता मूल्य केवल ||) आना।

प्रथम परीक्षा के ग्रन्थ।

लघुकौमुदी भाषा टीका सहित मूल्य १।) रुपया। तर्कसंग्रह भाषाटीका ।) आना
रघुवंशकाव्य-१ से ५ सर्ग तक-अन्वयार्थ भाषाटीका सहित मूल्य ||।)
मेघदूतकाव्य-अन्वयार्थ भाषाटीका तथा वृहत् टिप्पणी और कोश सहित ||) आना।

न्यायसिद्धान्त मुक्तावली

यह न्याय का अपूर्व ग्रन्थ है। वृहद् टिप्पणी दिनकरी और रामरुद्री भाषाटीका सहित मूल्य केवल १) रुपया।

चौदह रत्न।

(१२५ पुस्तकों का भण्डार मूल्य १) रुपया)

१ व्याख्यानसंग्रह ७। २ वेदाङ्गसंग्रह १६। ३ पुराण और इतिहास संग्रह ७। ४ दशमहाविद्या १०। ५ गृहधर्मसंग्रह ६। ६ कर्मकाण्डसंग्रह ६। ७ ज्योतिषशास्त्र गणित और फलित ६। ८ नित्यकर्मविधान १०। ९ वैद्यकशास्त्र २। १० तन्त्र और मन्त्र शास्त्र ११। ११ साहित्यशास्त्र ६। १२ इतिहास और नाटक १५। १३ स्तोत्रसंग्रह १०। इत्यादि विषय संगृहीत हैं।

दृष्टान्त समुच्चय

इस ग्रन्थ में बहुत वढ़िया प्रत्येक विषय के १६४ दृष्टान्त सम्मिलित हैं जिन को सुनकर मनुष्य उत्तमोत्तम शिक्षा ग्रहण कर सकता है मूल्य केवल १||) रुपया

धर्मदिवाकर-इसमें स्वामी दयानन्द जी के मत का खण्डन है मूल्य ||) आना

पता—

पं० लालमणि पूठिया उपदेशक

दिनदारपुरा—मुरादाबाद।

श्री ब्राह्मण पुस्तकालय मेरठकी पुस्तकें।

बासिष्ठी धनुर्वेद संहिता भाषाटीका चित्रों सहित।

यह पुस्तक बड़े परिश्रम और द्रव्य व्यय करने पर मिली थी इसमें धनुष का प्रमाण और बनाना तीर चलाना बाण की कवायद शब्द भेदी आदि क्रिया है और २ लोगों ने भी पुस्तकें छापी हैं किसी ने तो वाराही संहिता के श्लोक लिख मारे हैं किसी किसी ने गनगढन्त भी की है। परन्तु हमें तो यह पुस्तक मूल मात्र राज्यस्थान से प्राप्त हुई थी दाम ॥≈)

श्राद्ध मण्डनम् भाषा टीका—दयानन्दियों के प्रश्नोत्तर सहित पुस्तक दोनों ही पक्ष वालों के देखने योग्य हैं ब्राह्मण का पेट लेटर बक्स आदि विषयों के उत्तर वेद स्मृति आदि और युक्तियों द्वारा दिये हैं दाम ॥)

साकार निन्दक मुख चपेटिका (मूर्त्तिपूजा) चारों वेदों से संग्रह कर ईश्वर साकार दयानन्द जी के भाष्य से ही दिखलाया है प्रथम भाग ॥) दूसरा भाग ।≈)

षट् चक्र निरूपण—इस पुस्तक के अनुसार उपासना करने से कविता शक्ति लाभ, परकायप्रवेश आकाशगी, त्रैलोक्य दर्शी, पराये मन की बात जानना दाम ।-)

ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था भाषा टीका—इस में किन कर्मों के प्रभावों से मनुष्योंकी ब्राह्मण संज्ञा हो सकती है और कौनसे कर्मोंके द्वारा ब्राह्मण शूद्र से भी अधम श्रेणीमें मानने योग्य होजाता है यह इस पुस्तकमें पुष्ट प्रमाणों और अनेक उदाहरणों द्वारा दर्शाया है दाम ।)

योग सार—इससे समाधी लगाने क्रिया आसन और उनके गुण तथा चित्र निराहार रहना बनस्पति खाने से भूख न लगना प्राणायाम स्वरोदय आदि अनेक विषय हैं दाम ≡)

शिक्षा दर्पण—इस पुस्तक में लेखक ने प्रचलित सांसारिक कुरीतियोंका खण्डन और परमार्थिक मार्गका यथोचित मण्डन किया है यह शिक्षाकी अपूर्व पुस्तक है दाम≡)

अनार्य्यसमाज रहस्य—नवीन आर्यमतके सिद्धान्तोंकी सैर कर लो वेदके मन्त्रों से जो दयानन्द जी ने तार रेल चलाना आदि लिखे थे वे मन्त्र इसीमें हैं दाम ≡)

देव सभा—अर्थात् दयानन्दियों की किसमत का फैसला दाम ≡)

सुधर्म्म मञ्जरी—नवीन पंथियोंका खण्डन अति उत्तमतासे लेखकने किया है ≡)

तीर्थ निरूपण (दयानन्द मत दूषण) तीर्थ विषय मण्डनकी अनूठी पुस्तक है दाम ≡)

कहानी टका कमानी—यह कहानी क्या हैं मानो रुपया पैदा करने का एक अमूल्य रत्न है दाम ।)

पुराणप्रतिपादनम्—पुराण किसने बनाये इस नामकी पुस्तकका उत्तर दाम -)

पुस्तकें मिलनेका पता—

प्रयागदत्त शर्म्मा श्रीब्राह्मण पुस्तकालय शहर मेरठ।

REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांखपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनार्थं, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४ | मिथुन आषाढ़ सौरवि० १९७४ जून १९१७ | अङ्क ६

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २।)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची।





ब्राह्मणसर्वस्व के नियम।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है।

(३) नमूने की एक प्रति ≤) का टिकट आने पर भेजी जाती है।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा। देरहोनेपर ≤)प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है।

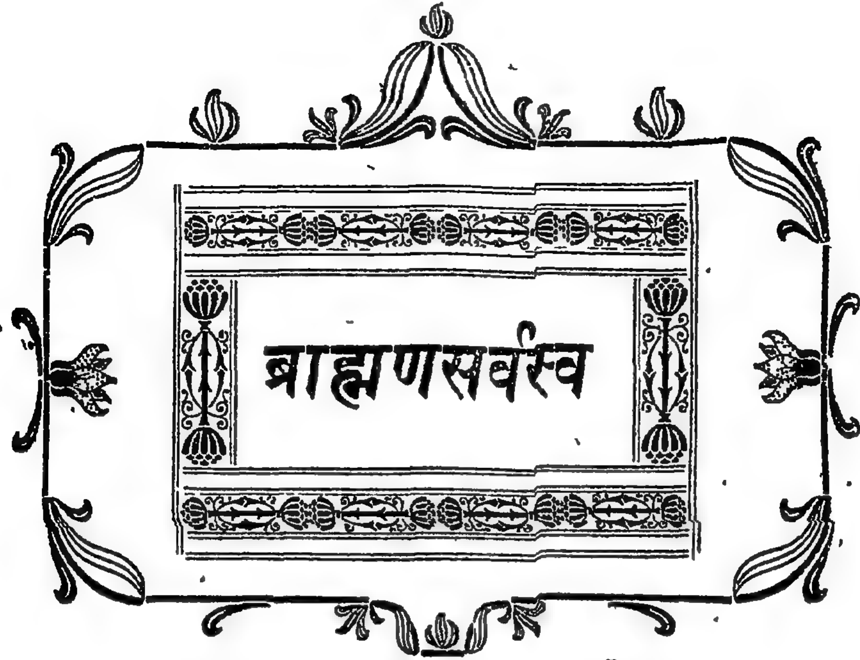
(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रबन्ध करना चाहिये।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा।

(९) विज्ञापन वंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूठे विज्ञापनें नहीं बांटे जांयगे।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४ | मिथुन आषाढ़ सौर वि० १९७४ जून १९१७ | अङ्क ६

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

सप्त ऋषयःप्रतिहिताःशरीरे सप्तरक्षन्ति-सदमप्रमादम् । सप्तापःस्वपतोलोकमीयु-स्तत्र जागृतोअस्वप्नजौसत्रसदौचदेवौ ॥१॥

शुक्लयजुषि वाजस० अ० ३४ । ५५ ॥

निरुक्तम्—सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे रश्मय आदित्ये । सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादं संवत्सरमप्रमाद्यन्तः सप्तापनास्तएव स्वपतो लोकमस्तमितमादित्यं यन्ति । अत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ वाय्वादित्यावित्यधिदैवतम् । अथाध्यात्मम्—सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे षडिन्द्रियाणि विद्या सप्तम्यात्मनि—सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादं शरीरमप्रमाद्यन्ति सप्तापनानीमान्येव स्वपतो लोकमस्तमितमात्मानं यन्त्यत्र जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ प्राज्ञश्चात्मा तैजसश्चेत्यात्मगतिमाचष्टे । निरु० १२ । ३७ ॥

अ०—ऋषयो गमनशीलाः सप्तविधा रश्मयः शरीर-आदित्यमण्डले प्रतिहिताः संश्रिता वर्त्तन्ते । तएव सप्त रश्मयोऽप्रमाद्यन्तः सदं संवत्सरं रक्षन्ति । तएवापोऽपना व्यापनशीलाः सप्त रश्मयः स्वपतोऽस्तंगच्छन्तं लोकमादित्यमीयुर्यन्ति प्राप्नुवन्ति। अत्रास्मिन्नादित्यमण्डले—अस्वप्नजौ ययोः स्वप्नो न कदापि भवति सार्वकालिकसत्रे एकरूपेणैव सीदतस्तौ सत्रसदौ देवौ वाय्वादित्यौ सदैव जागृतः । तत्रेतिपदं यास्काचार्येणार्थसंगत्या अत्र पदस्यार्थेऽभिमतं तथैव मया व्याख्यातम् । अथाध्यात्मप्रसङ्गे-मनःषष्ठानि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि-सप्तमी विद्याऽऽत्मनि यज्ज्ञानं यो बोधः । विषयेषु पतनशीलानि सप्त शरीरे प्रतिहिताः संश्रितानि वर्त्तन्ते । तान्येवेन्द्रियाणि प्रमादमकुर्वन्ति सदं मानवशरीरं रक्षन्ति।

आपो-विषयेषु व्यापनशीलानि तान्येव सप्तेन्द्रियाणि स्वपतः सुप्तमस्तंगतं चैतन्यं लोकमात्मानं यन्ति तस्मिं-ल्लीयन्ते । अत्रापद्गतिपदं यौगिकमभिमतं यास्काचार्येण तस्मादृषयइत्यस्य विशेषणं मन्तव्यम् । वेदेषु प्रायेण यो-गरूढानि पदानि कानिचिद्यौगिकान्यभिमतान्याचार्यैर्न तु रूढानीति सर्ववैदिकानां सिद्धान्तः स्वपतइति द्वितीयार्थे षष्ठी । प्राज्ञश्चात्मा परमात्मा तैजसः प्राणश्च तावस्वप्नजौ न कदापिसुप्तौ सत्रयागावस्थितौ यजमानाविव देवौ स्व-गुणेन दीप्यमानावत्र शरीरे सदैव जागृतः ॥

भावार्थ.-आधिदैविकाध्यात्मिकपक्षावाश्रित्य या-स्काचार्येण द्विविधोऽर्थोऽस्य मन्त्रस्य प्रदर्शितः । अधि-यज्ञपक्षेप्यस्यार्थः सम्भवति यथा—सप्तऋषयः स्वस्व कर्त्तव्यं पश्यन्तो जानन्तः सप्त होतारः शरीरे सोमयाग-स्वरूपे प्रतिहिताः संश्रिता वर्त्तन्ते । तएव सप्त होतारोऽ-प्रमादं प्रमादो यथा न भवेत्तथा सदं सदःशालाकार्यं रक्षन्ति यथाकालं साधयन्ति । आपो व्यापनशीलास्ते सप्त होतारः स्वपतः निशि सुप्तं लोकं जनमीयुर्जानन्ति-अग्निष्टोमादेः प्रधानयागे प्रातःसवनाद्यनुष्ठानकाले सर्वां रात्रिं षोडशापि ऋत्विजो जाग्रति--अन्यं सुप्तं जनस-मूहं जानन्ति सर्वे स्वपन्तीति । अत्र सोमयागस्यसवन-त्रयकाले असुप्तौ सत्रसदौ यजमानाविव ब्रह्मयजमानौ विशेषेण कार्यभारचिन्तने दत्तचेतसौ जागृतः । अध्या-त्मविषये शिरसि वर्त्तमानानि सप्त छिद्राण्यपि सप्तर्षिक-

अनेन व्याख्यातुं शक्यन्ते । शतपथश्रुतौ सप्तशीर्षण्या ऋषय इत्युक्तम् ॥

भाषार्थः-(सप्तऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) आधिदैविक पक्ष में मन्त्रार्थ यह है कि-सूर्यमण्डलात्मक शरीरमें सप्तविध गमनशील किरण आश्रित हुए वर्त्तमान (सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्) प्रमाद वा भूल न करते हुए वे ही सप्तविध किरण दिन रात्रि के विभाग द्वारा संवत्सर की रक्षा करते हैं (सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः) वे ही व्यापनशील सप्तविध सूर्यरश्मि अस्त होते हुए आदित्य मण्डल में लीन हो जाते हैं । (तत्र) इस कालगति के प्रवाहमें (अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ जागृतः) सत्रयज्ञमें अवस्थित कदापि न सोने वाले वायु आदित्यरूप दो देवता सदा निरन्तर जागा करते हैं ।

अध्यात्म विषयमें इस मन्त्र का अर्थ यह है कि (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) पांच ज्ञानेन्द्रिय छठा मन और बुद्धि ये सात विषयों में गमनशील होने से ऋषि कहाते हुए मानवादि शरीर में स्थापित हैं (सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्) वे ही सातों इन्द्रिय प्रमाद भूल न करते हुए मानवादि शरीर की रक्षा करते हैं (सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः) व्यापन शील वे ही सातों शान्त वा अस्त होगई है चेतनता जिसकी ऐसे सोते हुए आत्मामें लीन हो जाते हैं (अस्वप्नजौसत्रसदौ च देवौतत्र जागृतः) जो कभी नहीं सोते सत्रयाग में स्थित दो यजमानों के तुल्य निरन्तर चेष्टा करने वाले अपने चेतन गुण से प्रकट प्राज्ञ आत्मा और प्राण ये दोनों शरीर में जीवन के साथ जागा करते हैं अर्थात् जन्म समय से मरण पर्यन्त नहीं सोते ॥

भा०-आधिदैविक और अध्यात्म इन दोनों पक्षों के अवलम्ब से यास्काचार्य निरुक्तकार ने इस मन्त्रका दो प्रकारका अर्थ दिखाया था वैसा ही ऊपर लिखा गया परन्तु अधियज्ञ पक्ष में भी इस मन्त्र का अर्थ हो सकता है सो भी यहां दिखाते है (सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे) अपने २ कर्त्तव्य को ज्ञान दृष्टि से देखने वाले सप्त होता यागस्वरूप शरीर मे आसक्त रहते हैं (सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्) जैसे प्रमाद भूल न हो वैसे वे ही सप्त होता सदःशालामें होने वाले शस्त्रोच्चारणादि कार्यकी रक्षा करते हैं अर्थात् यथा काल आहव प्रतिगर पूर्वक काम पूरा करते हैं (सप्तापः स्वपतो लोकमीयुः) अपने २ कार्य मे व्यापनशील वे सात होता रात्रि में सोते हुए मनुष्य समूह को जानते है । अर्थात् अग्निष्टोमादि सोमयागों के प्रधान यागरूप प्रातः सवनादिके अनुष्ठान काल में सोलहों ऋत्विज् जागा करते हैं और अन्य सोते हुए जनसमूह को जानते हैं कि ये सब सोते हैं । (तत्र) सोमयाग के इस सवनत्रय कालमें (अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ जागृतः) स्वय न सोने वाले दो यजमानोंके तुल्य ब्रह्मा और यजमान कार्य साधनमें दत्त चित्त हुए विशेष कर जागते हैं । अध्यात्म विषयमें शिर के सात इन्द्रिय छिद्र भी सप्त ऋषि शतपथ श्रुति के कथनानुसार लिये जा सकते हैं । अर्थात् आधिभौतिक कश्यपादि सप्त ऋषि इस मन्त्रमे अपेक्षित नहीं हैं ॥

जाङ्गिड़ा समाचार का अज्ञान ।

गत मई के अङ्क में उक्त समाचार ने १४ पृष्ठ में जो कुछ लिखा छपाया है उसमें कुछ भी तो सार नहीं, तब इस पर लिखना भी व्यर्थ सा है। और ऐसे विषयों में समय खोना ब्रा० स० जैसे धार्मिक पत्र के उद्देशसे भी बाहर है तथापि अब हम जो कुछ यह लिखते हैं वह उत्तर मिलने की अपेक्षा से नहीं किन्तु धर्मव्यवस्था चाहने वाले पाठकों के अवलोकनार्थ वा सन्तोषार्थ संक्षेप से शास्त्र के सिद्धान्तानुसार अपना विचार प्रकट कर देते हैं। हम उन लोगों को सम्मति देते हैं कि जो २ जातियां सर्व साधारण के परम्परागत मतानुसार भारतवर्ष में नीची कोटि की समझी जाती थीं तथा समझी जाती हैं, उनमें जो कोई लोग कुछ पढ़ गये, उन लोगों ने अपनी २ जातियोंको उच्च ठहराने का जो उद्योग किया है। उन सभी जाति के लोगों को हमारी सम्मति यह है कि उन २ जातियोंको नीच व ऊंच दोनों में कोई एक ठहरानेकी चेष्टा हमारी वास्तव में नहीं है किन्तु ऐसे विचारों से हम उदासीन रहना अपना कर्त्तव्य समझते थे और वही विचार अब भी है। ऐसे विषयों में निष्पक्ष विचारों के सुनने वाले नहीं दीखते ॥

अप्रियस्यतु पथ्यस्य श्रोता मन्ता च दुर्लभः ॥

अपने दुराग्रह से विरुद्ध अप्रिय पथ्यौषध को भी जैसे रोगी सेवन नहीं करना चाहता वैसे ही सत्य निष्पक्ष बात को कोई भी सुनना मानना नहीं चाहता, वैसे मनुष्य संसार में दुर्लभ हैं। यद्यपि मिट्टी के घट को कोई सुवर्ण वा चांदी का घट सिद्ध करना चाहे तो वह सुवर्ण वा रजत का घट वास्तव में नहीं हो सकता, किन्तु जैसी मट्टी से वह बना है उसी मट्टी का बना रहेगा। तथापि साधारण कोटि के मनुष्यों को यह भ्रम हो सकता है कि इस मट्टी के घड़े को जब अनेक लोग सुवर्ण वा रजतका घट कहते हैं तो कहीं सुवर्ण वा रजतका ही न हो कदाचित् हमीं भूलते हों। इसी के अनुसार इन बढ़ई आदि जातियों के ब्राह्मणादि बनने में भी भ्रम हो सकता है इसी लिये भारतवर्ष में सार्वदेशिक विद्वत्प्रतिनिधि सभा की बड़ी आवश्यकता हैं जैसा कि भारतमित्र समाचार का प्रस्ताव है। उक्त सभा के सभ्यों की अधिकानुमति से श्रुति स्मृति प्रतिपादित वर्ण व्यवस्थादि विषयों में उठने वाले सन्देहास्पद विचारोंकी पूर्ण प्रकार से मीमांसा हुआ करे और निर्णीत हुए विचारानुसार मानने के लिये सामाजिक बल का प्रयोग होना चाहिये। जब तक ऐसा

नहीं होता तब तक स्पष्ट निष्पक्ष वक्ता सज्जनों का यही मन्तव्य रहेगा और उन के लिये यही मार्ग निष्कण्टक हो सकता है कि—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहताश्चान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥

जो लोग विद्वान् हैं उनकी अन्य विद्वानों से मत्सरता होती सेठ, राजा रईसादि समर्थ अपने विषय सुख भोग में लगे हैं और अन्य लोग मूढ दशा में हैं कुछ समझ नहीं सकते इस लिये जो कुछ निष्पक्ष विचार कहना चाहते हैं वह मन ही में रह जाता है। अब हमारी उन सब जातीय मनुष्यों के लिये और विशेष कर बढ़इयों के लिये अनुमति यह है कि आप लोग ब्राह्मणादि जिस जाति में अपने को सिद्ध करना चाहते हों करने चलिये परन्तु संस्कृत के विद्वानों को न छेड़ा कीजिये तब आप का काम निर्विघ्न चलना सम्भव है। यदि किन्हीं संस्कृत के विद्वानों से नम्रता से मेल करके प्रेम बढ़ाओगे तो आप का भविष्य अच्छा हो यह सम्भव है इस लिये उन को धमकी देकर अनुकूल कहलाने की चेष्टा न कीजिये सम्मति देना मात्र हमारा काम है आगे आप को अधिकार है।

जाङ्गिड़ा समाचार के पृष्ठ ५ में लिखा है कि "उन का जाङ्गिडा जाति को रथकार समझना व प्रसिद्ध करना सर्वथा भूल है" इस का अभिप्राय यह है कि जिस रथकार को जैमिनि आचार्य ने वैश्य शूद्रके बीच में सिद्ध किया है वह रथकार जाति हमारी नहीं किन्तु हमारी जाति का नाम जाङ्गिडा है। इस पर हम कहते हैं कि यदि आप लोग रथकार नहीं हैं तब पृ० ५ की प० ५ में यह क्यों लिखा? कि "बाला जी रावजी शास्त्री पूना अपने ग्रन्थों में रथकारको ब्राह्मण सिद्ध कर चुके हैं" जब आप लोग रथकार नहीं हैं, तब रथकार को ब्राह्मण लिख देने से आप ब्राह्मण कैसे हुए? और यदि आप रथकार हैं तो पहिला लेख विरुद्ध है, परस्पर विरुद्ध दोनों लेख मिथ्या हैं। क्या बालाजी राव्-पूना कोई ऋषि महर्षि हैं, जिनका लिख देना सब कोई मान लेगा?। किसी शब्द का वाच्यार्थ जाननेके लिये व्याकरण तथा कोश के प्रमाण की अपेक्षा मानी जाती है। क्या जाङ्गिड़ा शब्द किसी व्याकरण वा कोश में विद्यमान है यदि है तो किस जाति का नाम है?। पहिले लेखों में जा० समाचार सम्पादकने स्पष्ट लिखा था कि त्वष्टा का पुत्र त्वाष्ट्र देवताओंका पुरोहित हुआ था। इस कथन में त्वष्टा को बढ़ई मान लेना सिद्ध है और—

तक्षा तु वर्द्धकिस्त्वष्टा रथकारश्च काष्ठतट् ॥ अमरकोशे ।

तक्षा, वर्द्धकि, त्वष्टा, रथकार और काष्ठतट् नाम लकड़ी छीलने वाले ये चारों शब्द पर्यायवाचक हैं, अमरकोश बनाने वाले अमरसिंह जैन विद्वान् थे उनका किसी

जाति से राग वा द्वेष कुछ नहीं था इसी कारण प्राचीन कालसे सब विद्वानोंने अमरकोषको प्रामाणिक पुस्तक माना और मानते हैं. वर्द्ध कि शब्दका अपभ्रंश वढ़ई होगया हैं जब जा० समाचार ने अपने को त्वष्टा मान लिया तब रथकार और वढ़ई भी उसी त्वष्टा को क्यों नहीं मानने पड़ेगा ? जब अमरसिंह का किसी के साथ द्वेष नहीं था तब बढ़ई जाति के त्वष्टा को उनने शूद्र वर्ग में क्यों लिखा ? यदि बढ़ई पहिले से ब्राह्मण थे तो ब्राह्मण वर्गमें अमरसिंहने क्यों नहीं लिखा ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि अमरकोश बनने से पूर्व भी बढ़ई जाति शूद्र कोटि में मानी जाती थी और अब भी वैसा ही माना जाता है ॥

हमने पहिले अङ्कमें लिखा था कि जैसा जैमिनि आचार्यने रथकार जातिको वैश्य शूद्र के बीच में लिखा है, वैसे ही किसी भी ऋषि ने किसी स्मृत्यादि में बढ़ई वा रथकार को ब्राह्मण सिद्ध किया है वा नहीं ? यदि किसी भी ऋषि ने अब तक रथकार को ब्राह्मण नहीं कहा तो यह भीत किस नींव पर उठाई जाती है ? अब रहा यह प्रमाण कि–

विश्वरूपस्त्वाष्ट्रः पुरोहितो देवानामासीत् ॥

विश्वरूप नामक त्वष्टा का पुत्र देवताओं में पुरोहित हुआ। हमने मान लिया कि त्वष्टा नामक देवयोनि में एक व्यक्ति विशेष था वह देवताओं का पुरोहित हो गया, इससे मनुष्य बढ़इयों से क्या सम्बन्ध है। एक नाम अनेकोंका होने के नियमानुसार त्वष्टा नाम देवता विशेष का भी था और मनुष्य जाति में बढ़ई का भी नाम त्वष्टा है जैसे इन्द्र देवता ने जो काम किये, उनसे मनुष्य का महत्व वा अल्पत्व कुछभी सिद्ध नहीं होता वैसे यहां भी जानो। अब रहा यह कि पुरोहित ब्राह्मण हो सकता है शूद्रादि नहीं तो यह भी महाभ्रम है तथा प्रत्यक्षसे भी विरुद्ध है क्योंकि अतिशूद्र कहाने वाले चमार भंगी आदि के पुरोहित जब उसी जाति के प्रत्यक्ष में दीखते हैं तब पुरोहित शब्द देखकर ब्राह्मण बनने की चेष्टा प्रत्यक्ष प्रमाणसे विरुद्ध क्यों नहीं है ?। क्या चमार भंगियों के विवाहादि काम नहीं होते, यदि होते हैं तो क्या ब्राह्मण लोग उनके घरों में जाकर विवाहादि कराते हैं ?। जब विवाहादि उनमें होते हैं और ब्राह्मण लोग उनको नहीं कराते तो सिद्ध है कि उनके पुरोहित भी उन्हीं की जातिके अवश्य होते हैं, इससे सिद्ध होगया कि ब्राह्मणका पुरोहित होना नियमबद्ध नहीं है। हां आगे यह नियम हो सकेगा कि जो २ नूतन जातियां ब्राह्मण बनती जाती हैं, वे चाहें तो उन अति शूद्रोंके यहांका पौरोहित्य ले सकती हैं जिनकी पुरोहिताई पुरातन ब्राह्मण नहीं करते। इसीके अनुसार शूद्र कोटिके देवोंका पुरोहित विश्वरूप बना हो यह सम्भव है, सब दशा में बढ़इयोंके ब्राह्मण बनने में इस प्रमाण का कुछ भी सम्बन्ध नहीं,

है, यही एक प्रमाण था सो भी सर्वथा इनके ब्राह्मण होने का साधक नहीं है, इससे इन लोगों की ब्राह्मण बनने की चेष्टा प्रमाण रहित और मनमानी कल्पना मात्र है॥

२-द्वितीय प्रश्न में पूछा गया था कि "लकड़ी छील २ कर नाना प्रकार के वस्तु बनाना क्या ब्राह्मण जाति का काम है।" इसके उत्तर में जां० समाचार ने लिखा है कि "पानी पांड़े, रेलवे कुली बनना, जूता, कपड़ा, पूड़ी, मिठाई आदि बेंचना क्या ब्राह्मण के काम हैं?" पाठक महाशय ध्यान दें कि प्रश्न क्या और उत्तर क्या हुआ?। प्रश्न का अभिप्राय स्पष्ट रूपसे यह था कि वेदका पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना दान लेना, शम, दम, तप, शौच आदि ब्राह्मणके काम जैसे शास्त्रों में लिखे हैं वैसे क्या कहीं बढ़ई के काम भी ब्राह्मणत्व पोषक किसी स्मृति में लिखे हैं?। सो जब वैसा कहीं लिखा ही नहीं तो प्रमाण देंगे ही कहां से?। पानी पांड़े बनना जूतादि बेंचना काम ब्राह्मणत्वके पोषक न कोई मानता था न अब मानता है किन्तु उक्त कामों से ब्राह्मणत्वकी हानि होती है ऐसा सभी मानते हैं। यह उत्तर ऐसा है कि जैसे पानी पांड़े आदि दास वृत्ति वा नीच कामों से पुरातन अनेक ब्राह्मण नीच वा पतित माने जाते हैं वैसे हम बढ़ई भी अपने कामों से नीच वा पतित हैं। जैसे कोई कहै कि तुम्हारी जाति में ब्राह्मणपन का कोई भी चिन्ह रूप काम नहीं इस से तुम ब्राह्मण नहीं इसका उत्तर यदि अन्य यह देवे कि तुम्हारी जातियों में भी हल-वाई होना बजाज होना आदि अनेक काम ऐसे हैं जिन से तुम भी ब्राह्मण नहीं हो सकते। ऐसे उत्तर का यही अभिप्राय हो सकता है कि हम वास्तव में ब्राह्मण नहीं, इसको न्यायमें परमताभ्यनुज्ञा रूप निग्रह स्थान माना गया है जिससे पराजय स्वीकार सिद्ध हो गया। पानी पांड़े होने आदि से हम क्या कोई भी ब्राह्मणपन की पुष्टि वा रक्षा मानता ही नहीं किन्तु जिन कुलों के मनुष्य पानी पांड़े होने आदि काम करते हैं उन्हीं ब्राह्मण कुलोंमें वेदका अध्ययन अध्यापन यजन याजन दान प्रतिग्रहादि शास्त्रोक्त काम भी होते चले आते हैं अर्थात् संसार भर में ब्राह्मणपन के पोषक चिन्हरूप वेदा-ध्ययनादि काम पुरातन ब्राह्मण जाति में ही सब से अधिक २ विद्यमान हैं। इस से परम्परागत ब्राह्मण जातिका ही ब्राह्मण होना सिद्ध है। रहे पानी पांड़े वा कुली आदि होना सो ऐसे निकृष्ट कामों से उन २ ब्राह्मणों की निन्दा अवश्य होती है किन्तु वैसे कामों से ब्राह्मणपन की पुष्टि होना कोई भी नहीं मानता॥

जां० समाचार पानी पांड़े आदि के साथ आङ्ग्लभाषा और लिपि को जो घसी-टता है इससे अपने को अंगरेजी का जानकार प्रकट करके अपना महत्त्व दिखाना उस का अभिप्राय हो सकता है। कदाचित् यह भी अभिप्राय हो कि जैसे वेदाध्ययनादिके विना बढ़ई के काम से वह अपने कल्पित नूतन ब्राह्मणपन की सत्ता वा पुष्टि समझता है वैसे आङ्ग्लभाषा जाननेके कारण भी ब्राह्मण बननेकी वासनाकी पुष्टि समझता हो।

आगे वाल्मीकीय रामायण और महाभारत के अवलम्ब से पृ० ८ में शिल्प विद्या की प्रशंसा और शिल्प को ब्राह्मण का कर्म कहा है, सो शिल्पकी निन्दा तो हम भी नहीं करते, हम भी मानते हैं कि-

स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिंलभतेनरः ॥ गीता-

अपने २ कर्म को कुल धर्म वा जाति धर्म मानता हुआ प्रीति से करने वाला मनुष्य सिद्धि को प्राप्त तब होजाता है जब हिंसादि अधर्म से बचकर परोपकार में भी तत्पर हो। इसी कारण जिस २ जाति का जो २ कर्म शास्त्रमें कहा और परम्परा से उस २ जाति में चला आता है उस २ के लिये वही ठीक है। चमार भंगी आदिके परम्परागत कामों को भी उन २ के लिये हम प्रशस्त समझते हैं किन्तु निन्दित नहीं परन्तु अपने जातीय काम को छोड़ के जो अन्य के कर्म द्वारा अपना महत्व बढ़ाना चाहता है अथवा निकृष्ट काम करता हुआ भी अपने महत्त्व की चिरस्थिति चाहता है वह मनुष्य अवश्यमेव अपने अधःपतन की चेष्टा करता है क्योंकि वह कदापि उन्नतिको प्राप्त हो नहीं सकता, बढ़ई वा अन्य लोग ब्राह्मणादि बनने की चेष्टा करते हुए भलेही दुरभिमान मात्र करलें परन्तु उन्नति कुछ नहीं कर सकते किन्तु इससे इनकी अवनति अवश्य होगी यही शोचकर हमें दुःख होता है, क्योंकि वे बढ़ई आदि भी हमारे ही भाई हैं। यदि ये बढ़ई अपने काम की उन्नति के द्वारा अपनी जातीय उन्नति करने में चेष्टा करते तो अवश्य इस जाति की उन्नति होती। "ब्राह्मणों ने सोने की ईंटों से यज्ञ कुण्ड बनाया" यह बात वाल्मीकीय रामायण के १३ पर्व में लिखी बताई है। जिनको यह भी खबर नहीं कि वाल्मी० में पर्व कोई संकेत है वा नहीं वे लोग जो कुछ बनें वही ठीक है, जब वाल्मीकीय० में पर्व हैं ही नहीं तब इनका लिखना मिथ्या क्यों नहीं है? और सुवर्णकी ईंटों से ब्राह्मणों ने यज्ञ कुण्ड बनाया ऐसा प्रमाण कदाचित् वाल्मीकीय रा०में हो तो इससे यह कैसे सिद्ध होगया कि बढ़ई ब्राह्मण हैं?। यज्ञकुण्ड ब्राह्मणों ने बनाया था किन्तु बढ़इयों ने तो नहीं बनाया?। यदि यज्ञकुण्ड बनाने मात्र से बढ़ई ब्राह्मण हो जाना सम्भव हो तो राजका काम करने वाला चमारभी चमार ब्राह्मण अपनेको क्यों नहीं कह सकता?॥

३-अपने लिखे को आप ही भूल जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, हमने पहिले २ लिखा था कि जिन २ शूद्र वा अति शूद्र जातियोंमें अपने २ को ऊंची जाति बनाने की ध्वनि उठी है उनमें कोई भी शूद्र बनना नहीं चाहता किन्तु उन सभी ने ब्राह्मण या क्षत्रिय बनने की चेष्टा की है ऐसी दशा में यह प्रश्न हमने उपस्थित किया था कि अब शूद्र चौथा वर्ण कैसे रहेगा? क्या तीन ही वर्ण रह जायंगे तब क्या चार वर्ण मानने वाले वेदादि सब शास्त्रोंमें काट २ कर तीन ही वर्ण किये जायंगे। इस प्रश्नका

उत्तर मई से पहिले अङ्क में जां० समाचार ने छपाया था कि "सहस्रों लाखों ब्राह्मण जो शूद्र का काम करने लगे हैं वे ब्राह्मण ही शूद्र बन गये तब तीन वर्ण रहजाने की शंका दूर होसकती है" इसी पर हमने यह प्रश्न लिखा था कि तुम्हारे लेखानुसार शूद्रके काम करनेसे ब्राह्मण शूद्र बनजायगे, तो क्या सभी बढ़ई वेदाध्ययनाध्यापनादि ही करने लगेंगे ?। अब इस लेख को जां० समाचार ने हमारा मान कर हमें उलटा दोषी बनाने की चेष्टा की है, यह कैसा अनर्थ है सो पाठक लोग शोच लेंगे हमतो पहिले से ही मानते थे और अब भी मानते हैं कि ब्राह्मणादि वर्ण अपने २ कर्म छोडने वा नीचों के काम करने मात्रसे सापेक्ष नीच तो अवश्य होजाते हैं परन्तु ब्रात्यवा पतित ब्राह्मणों के तुल्य उनका ब्राह्मणपन नष्ट नही होजाता। ब्राह्मण कुलोत्पन्न मनुष्य यदि किसी उच्चपद प्राप्त बढ़ईके नीचे काम करता है तो हम उच्चपद प्राप्त मुसलमानादि विधर्मियों के नीचे काम करने वाले ब्राह्मणसे उसको बहुत अच्छा मानते हैं। किन्ही २ उच्चपद्प्राप्त करलेने मात्र के साथ बढ़ई जाति के ब्राह्मण बनने का कुछभी सम्बन्ध नहीं है। हमतो मानते थे और अब भी मानते हैं कि हिन्दुओं की सभी जातियों में कुछ २ मनुष्य ईसाई मुसलमानादि रूपसे भ्रष्ट होगये और जो भ्रष्ट होनेवाले हैं उनको छोड़के शेष बचे गुणकर्म हीन भी ब्राह्मण ही वास्तव मे ब्राह्मण रहेंगे और नवीन बनने वाले कोईभी ब्राह्मणादि नही बन सकेंगे क्योंकि इतिहास सबका सत्य २ लिखा जायगा कि अमुक जाति के लोग अमुक २ प्रकारके ब्राह्मणादि बनगये हैं वास्तवमें नहीं थे उनको अन्य जातियां ब्राह्मणादि नहीं मानेंगी इससे भी नही बनसकते और इन बढ़इयों में आपसमें फूट होजायगी क्योंकि उस जाति में भी सैकड़ों सहस्रों बढ़ई रहना ही पसन्द करते हैं वे कुछ भी अन्य बनना बनाना नही चाहते ॥

४–जिस बात को हम नही मानते किन्तु अन्य प्रतिपक्षी मानता है, इसीसे उस पर वैसा प्रश्न किया गया था। जां० समाचार गोभक्षी ईसाई मुसल्मानादि बनजाने के भय से सब चमार भंगी आदि को ब्राह्मण क्षत्रिय बना लेना चाहता और अपनी बढ़ई जाति को भी ब्राह्मण बनाने की चेष्टा कर रहा है तब यह प्रश्न उसी पर हो सकता है कि अन्य नीच जाति से बने ब्राह्मण के साथ बढ़ई से ब्राह्मण बने मनुष्य क्या रोटी बेटी का सम्बन्ध करने लगेंगे ?। इस प्रश्न का उत्तर जां० समाचार यह देता है कि जैसे गौड़ सनाढ्य कान्यकुब्जादि ब्राह्मण होने पर भी रोटी बेटी का सम्बन्ध परस्पर नहीं करते वैसे ही हम भी नहीं करेंगे। इस उत्तर में प्रत्यक्ष से भी विरुद्ध लिखते हुये सहयोगी को कुछ भी लज्जा भय वा संकोच क्यों नहीं हुआ यही आश्चर्य है। वास्तव में सारस्वत, गौड़, सनाढ्य, कान्यकुब्जादि सभी ब्राह्मणों में परस्पर रोटी बेटी का सम्बन्ध होता है यह प्रत्यक्ष प्रमाण से ही सिद्ध है, केवल भेद इतना ही है कि जिन २ का निवास स्थान दूर है उन का रोटी बेटी का सम्बन्ध प्रायः नही

होता परन्तु निकटवर्त्ती सारस्वत गौड़ों का, गौड़ सनाढ्यों का, सनाढ्य कान्यकुब्जों का और कान्यकुब्ज सरयूपारीणों का परस्पर रोटी वेटी सम्बन्ध प्रत्यक्ष देखा जाता है, दूरस्थों के आचार विचारों में विशेष भेद होने के कारण एक नाम के ब्राह्मणों में भी कहीं २ रोटी वेटी संवन्ध नहीं होता, जैसे मध्य भारत के निवासी सनाढ्यों का युक्तप्रदेश के सनाढ्यों से प्रायः सम्बन्ध नहीं देखा जाता। इसी के अनुसार क्षत्रियादि में भी सम्बन्ध होता जानो, कोई किसी को नीच नहीं समझता कि जैसे अन्य वर्ण के साथ अन्य का सम्बन्ध है वैसा ब्राह्मणों का आपस में नहीं है। अब यहां प्रश्न यह है कि यदि कोई चमार कोरी आदि ब्राह्मण वन जाय तो बढ़ई से ब्राह्मण वनने वाले लोग उस चर्मकार ब्राह्मण के साथ क्या ब्राह्मणोचित व्यवहार करेंगे ? ॥

५-पांचवें प्रश्न का अभिप्राय यही था कि बढ़ई लुहार एक जाति है उसी जाति के कुछ लोगों ने ब्राह्मण वनने का झगड़ा उठाया है, शिल्पकारी का काम करनेवाली अनेक जातियां हैं उन सब पर प्रश्न नहीं था, क्योंकि शिल्प क्रिया करने वाले सब मनुष्योंके विचार का प्रकरण ही जब नहीं है राज मोची आदि शिल्पकार जब मैथिल वनते ही नहीं तब प्रकरण से विरुद्ध उत्तर देने द्वारा प्रतिज्ञान्तर निग्रह स्थान में अपने को गिराते हुये जां० समाचारने पराजय प्राप्ति मानली उसे पाठक शोचकर जानलेंगे।

"इसी से स्वार्थियों के हाथ से ठेकेदारी निकल गई,सब ने अपनी २ जायदाद पर कब्जा करना आरम्भ कर दिया, ४० वर्ष पहिले तो यहांके विद्वान् आर्य शब्द से भी भागते थे, द्वीपान्तर गमन को भी पहिले अधर्म समझते थे, अब उसी को उत्तम समझते हैं पहिले (अष्टवर्षाभवेद्गौरी०) इत्यादि वातों को सत्य ठहराते थे, परन्तु अब गत ७ । ८ अप्रैल के लाहौर के हिन्दु सम्मेलन में पं० दीनदयाल जी विद्या वाचस्पति ने स्पष्ट शब्दों में खण्डन कर दिया। अब से पहिले यह भी तो विद्वानोंका का ही कथन था कि ब्राह्मण के अतिरिक्त दूसरों को गायत्री मन्त्र और वेदशास्त्रों का अधिकार नहीं,००० स्त्रियों को विद्या से अनभिज्ञ रखना भी तो अब से ५० वर्ष पूर्व धर्म ही समझा जाता था, और वेद भगवान् की सवारी का तो अब से २० वर्ष पहिले कभी नाम निशान भी नहीं था, अब यह क्यों निकलती है ? ॥"

यह ऊपर का लेख जां० समाचार के पृ० ११ में लिखा है संक्षेप से इसका उत्तर यही है कि वेद की रक्षा उसको पढ़ने पढ़ाने जानने तथा वेदोक्त कर्म धर्म का सादर अनुष्ठान करने द्वारा सृष्टि के आरम्भ से ब्रह्मर्षि आदि ब्राह्मणों ने ही की है, करते हैं और भविष्य में भी ब्राह्मण जाति ही उक्त प्रकारों से वेद की रक्षा करेंगे और क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों के सहायक हुए थे और फिर भी होंगे। यह पठन पाठनादि द्वारा वेदकी रक्षा करने की ठेकेदारी सनातन ब्राह्मण जाति को विधाता ने ही सृष्टि के आरम्भमें सौंपी थी इस ठेकेदारी को छीन लेने के लिये

अब से ४० वर्ष पहिले आर्यसमाज ने डुग्गी पिटवाई थी, परन्तु जब ४० वर्ष में आ०समाज ने यह भी नही जान पाया कि वेद क्या वस्तु है, अथवा वेद का लक्षण क्या है अर्थात् जब ४० वर्ष मे भी वढइयों से भिन्न शूद्रों में से वेद वेदाङ्गोंका जानने वाला एक भी विद्वान् न हुआ न होगा तब वढ़ई लोग ठेकेदार बन के जायदाद पर कब्जाकर लेंगे यह धमकी देना ऐसा ही है कि जैसे स्वभावसे आकाश मण्डलमें उड़ने वाले पक्षियों को कोई धमकावे कि अब तक आकाश में उड़ने के ठेकेदार तुम रहे परन्तु अब हम भी आकाश मे तुमसे भी ऊपर उडा करेंगे आकाश की जायदाद पर अब कब्जा करते हैं। इसी के अनुसार दुःसाहस करने वाले वढ़इयों का लिखना कहना विचार शील विद्वानोंके समक्ष उपहास के योग्य है। सो इतना ही नही किन्तु हमको यहां तक दृढ विश्वास है कि सनातन काल से सर्व सम्मत वेद के अधिकारी क्षत्रिय वैश्य भी वेदकी ठेकेदारी ब्राह्मणों से नही ले सकते और न लेना चाहते हैं। क्योंकि वे लोग जानते हैं और पहिले भी जानते थे कि विधाता भगवान्‌ने जो शक्ति जिस जाति वा वर्ण में नियत की है उसको क्या मनुष्य लौट सकता है, वढ़ई आदि शूद्र जातियों के लोग ब्रह्मर्षि ब्राह्मणो को स्वार्थी आदि कटु वचन कह कर पाप भागी भले ही बनलें बस यही कर सकते हैं, वेद की ठेकेदारी सहस्त्रों जन्मोंमें भी नही छीन सकते ॥

४०।५० तो क्या सैकडों सहस्रो वर्ष पहिले संस्कृतके विद्वान् आर्य शब्दका जैसा वाच्यवाचक सम्बन्ध मानते समझते थे वैसाही आजभी मानते हैं। स्वा०दयानन्दजीने भी (उतशूद्रे उतार्ये) वेद के प्रमाणानुसार शूद्रों को आर्य नही माना था वैसा ही उनके ग्रन्थों में भी लिखा है। व्याकरण के मुख्य कर्त्ता पाणिनि आचार्यने वैश्यको भी आर्य नही बताया किन्तु वैश्य का नाम अर्य हो सकता है, आर्य नहीं यही पाणिनिका कथन अ० ३।पा०१में है। तब शेष रहे ब्राह्मण क्षत्रिय दो वर्ण उन मे भी जो सभ्य सज्जन सदाचारी हैं वे आर्य पद से होने वाली प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं, सब ब्राह्मण क्षत्रिय भी नही। ऐसा ही सब पं० विद्वान् ब्रह्मर्षि लोग अति प्राचीन काल में भी मानते थे और वैसा ही अब के विद्वान् भी मानते हैं, ४० वर्षके भीतर वेद विरुद्ध आ० समाजी मत के अज्ञान से ग्रस्त मूर्ख मण्डलीने भंगी चमारादि सभी को आर्य कहने का हल्ला मचाया, जैसे वह प्रामाणिक वा युक्तियुक्त नहीं वैसे ही इन वढ़इयों का लिखना भी उसी अन्ध परम्परा के अन्तर्गत है तब "यहांके विद्वान् आर्य शब्द से भी भागते थे" इस पर जा० समाचार से पूंछना चाहिये कि ४० वर्ष से पहिले किस संवत् वा सन् के किस महिने की किस तिथि को किस प्रान्त, नगर वा ग्राम मे कौन २ विद्वान् आर्य शब्द से किस दिशा की ओर कितनी दूर तक भागे थे इसका

पूरा २ ब्योरा जां० समाचार को बताना चाहिये। सत्य तो यह है कि विद्वान् लोग आर्य शब्द से न पहिले कभी भागते थे और न अब कोई भी विद्वान् आर्य शब्द को बगल में दबाके भागता है, पहिले और अब के विद्वानोंका आर्य शब्द के मानने में एक बाल भर भी भेद नहीं हुआ, इससे जां० समाचार का कथन सर्वथा मिथ्या है॥

आगे लिखा है कि " द्वीपान्तर गमनको भी पहिले अधर्म समझते थे, अब उसी को उत्तम समझते हैं " द्वीपान्तर गमन को जो सदाचारी विद्वान् ब्राह्मण पहिले हानि कर समझते थे वे अब भी वैसा ही धर्मका बाधक वा घातक समझते हैं, विशेष कर अंग्रेजी पढ़े हुए नूतन संस्कारी लोग जो धर्मका तत्त्व नहीं जानते और जो धर्म के पक्षपाती नहीं हैं ऐसे लोग द्वीपान्तर गमनके पक्षपाती अवश्य हो गये हैं। पूर्व काल में जब कोई द्वीपान्तर में नहीं जाता था और जाना चाहिये वा नहीं, ऐसा प्रश्न भी कोई नहीं करता था तब विद्वान् लोग किसी से निषेध भी नहीं करते थे जबसे जाने के पक्षपाती लोग हो गये तभी विद्वानों से अनुमति मांगी तब उन्होंने निषेध किया तभी से मत भेद हो गया। इस लिये जां० स० का यह लिखना कि " प्रदेश गमन को पहिले अधर्म ठहराया जाता था और अब उत्तम समझते हैं " सर्वथा मिथ्या है क्योंकि ऋषि सम्प्रदाय के मानने वाले विद्वान् विदेश गमन को जैसा पहिले मानते थे वैसा ही अब भी मानते हैं॥

आगे जो लिखा है कि " (अष्टवर्षाभवेद्गौरी०) इत्यादि बातों को सत्य ठहराते थे पर अब पं० दीनदयाल जी ने खण्डन किया " पं० दीनदयाल जी ने सनातनधर्म की रक्षा अवश्य की है, परन्तु विद्यावाचस्पति उनकी उपाधि लिखना जां० समाचार का अज्ञान है, पं० दीनदयाल जी संस्कृत के विद्वान् भी नहीं हैं वे अपने को वैसा विद्वान् स्वयं भी नहीं मानते। प्रथम तो पं० दीनदयाल जी ने (अष्टवर्षा०) आदि का खण्डन कदापि किया ही नहीं होगा यह हमारा पूर्ण विश्वास है तथापि मान लो कि कदाचित् कुछ ऐसा कहा हो कि जिससे लोगों को वैसा भ्रम होगया हो तो पं० दीनदयाल जी का परिगणन संस्कृत के विद्वानों में नहीं है। इसी कारण उन का खण्डन प्रामाणिक कोटिमें लिया नहीं जा सकता। (अष्टवर्षाभवेद्गौरी०) इत्यादि का अभिप्राय विद्वान् लोग जैसा प्राचीन कालमें मानते थे वैसा ही अब भी मानते हैं वह अभिप्राय यही है कि ब्राह्मणादि द्विज वेदोक्त अग्निहोत्र को यथा विधि करने के लिये विवाह करते थे क्योंकि पत्नी के विना अग्निहोत्र का अधिकार ब्राह्मण को भी नहीं है। इससे अग्निहोत्र ही विवाहका मुख्य प्रयोजन है, क्योंकि अग्निहोत्रसे स्वर्गीय दिव्य सुख प्राप्त होता है। अष्ट वर्षा विवाहिता कन्या पत्नी बनकर यज्ञशाला में बैठती है, रजोधर्म तथा विषयासक्ति न होने से वह बाह्याभ्यन्तर शुद्ध होती है, इसी

से ऐसी कन्या का विवाह किसी धर्मनिष्ठ विद्वान् के साथ करदेने वाला कन्या का पिता धर्म शास्त्र मर्यादा से पुण्यात्मा कहाता है, वैसी कन्या के साथ पति की भी काम चेष्टा नही होती इसी कारण धर्मानुष्ठान के लिये होनेवाला वह विवाह सर्व श्रेष्ठ है। विवाह का द्वितीय मध्यम प्रयोजन उत्तम सन्तानोत्पत्ति है और तीसरी विषय वासना भी विवाह का अधम प्रयोजन है। पूर्वकाल मे अग्निहोत्रादि मुख्य धर्म के लिये तथा तदनन्तर पुत्रोत्पत्ति मात्र के लिये विवाह की आवश्यकता मानी जाती थी तव (अष्टवर्षाभवेद्गौरी०) इत्यादि पराशर स्मृत्यादि के वचनों पर कुछ भी विवाद नही होता था। परन्तु अब केवल काम वासना के लिये विवाह की आवश्यकता रह गई तव यह सत्य भी है कि ८। ६ वा १० वर्ष तक की वालिका काम वासना के योग्य नही है, इसी कारण विवाद उठ गया है। अब यदि कोई कहै कि जव अग्नि होत्रादि धर्म का प्रचार लुप्त प्राय हो गया और जव विद्वान् ब्राह्मण भी काम वासना से ही विवाह करने लगे तब उक्त (अष्टवर्षा०) इत्यादि प्रमाणों को त्यागा क्यों नही जाता और युवतियों के विवाह की प्रथा क्यों नहीं चलाई जाती ?। इसका उत्तर संक्षेप से यही है कि जव वेद और वेदोक्त अग्निहोत्रादि धर्म संसार की स्थितिके साथ ही रहैगा तव भविष्य में फिर भी अग्निहोत्रादि के लिये विवाह की आवश्यकता समझी जायगी, अग्निहोत्रादि धर्म सदा के लिये उठ गया ऐसा निश्चय नहीं हो सकता।. मान लो कि अब से सौ वर्ष में फिर से अग्निहोत्रादि चल जाय तव क्या नूतन धर्मशास्त्र बनाया जायगा ?। इससे सारांश यही निकला कि [अष्टवर्षा०] आदि प्रमाण पूर्ववत् ही अव भी माने जाते हैं, इससे जा० समाचार का यह कथन भी युक्ति प्रमाण दोनों से विरुद्ध है॥

गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् आदि वेदोक्त छन्दों का जैसे पूर्व काल में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य द्विजों को अधिकार था वैसा ही अब भी है इस कारण जा० समाचार का यह लिखना कि " ब्राह्मण से अतिरिक्त को वेद का अधिकार पहिले नही था " सर्वथा एक दम झूंठ हैं। अव भी सब को अधिकार नही है, अनधिकारी वर्णसङ्कर शूद्र जातियां अव क्या सहस्रों जन्मोंमें भी वेदधिकार प्राप्त नहीं कर सकती। जैसे पागल वालक के हाथमें चक्कू आदि तीक्ष्ण हथियार दिया जाय तो वह अपने शरीरमें चक्कू आदि लगाकर अपनी हानि कर सकता है इसी कारण वालकादिके हाथ में शस्त्र देनेका निषेध किया गया है, चाहें यों कहौ कि बालक को शस्त्र छूनेका अधिकार नही है। वैसे ही वढ़ई आदि की वेदाध्ययन से हानि है इसी लिये उनको वेदाधिकार नहीं है, जव हानि वा दुःख से वचाने के लिये वेदका निषेध किया गया था तब जो लोग अनर्गल वन कर वेदाध्ययनका वा वेदोक्त कर्मो का अधिकार बलात्कार

से लेना चाहते हैं, वे अपनी हानि करके दुःख उठाने का सामान अपने लिये स्वयं कर रहे हैं, इस लिये अब ये लोग अधोगति में स्वयं गिरते हैं॥

स्त्रियों को अनभिज्ञ रखने का विचार पहिले भी कभी किसी का नहीं था और वैसा ही अब भी नहीं है, उपनयन का अधिकार स्त्रियोंको नहीं है,इसी कारण उत्सर्ग रूप से वेदाध्ययन का निषेध स्त्रियों को किया गया है किन्तु नागरी भाषा संस्कृत व्याकरण काव्य, स्मृति-इतिहास पुराण, आयुर्वेद, ज्योतिषादि सभी कुछ पढ़नेका अधिकार स्त्रियों को पहिले भी था और अब भी है, परन्तु जैसे ब्राह्मणादि द्विजों को पढ़ने का पूर्णाधिकार होने पर भी लाखों ब्राह्मणादि कुछ भी नहीं पढ़े महा मूर्ख हो गये हैं, यदि पढ़ने का अधिकार होने मात्रसे मनुष्य पढ़ जाते तो सभी ब्राह्मण पढ़ेहुए विद्वान् होते। जैसे अधिकार होने पर भी ब्राह्मण मूर्ख हो गये वैसे ही स्त्रियां भी मूर्ख रहीं, स्त्रियों को वेदाध्ययन का उत्सर्ग रूप से अधिकार न होने पर भी यज्ञों में पत्नी के लिये उपयुक्त वेद मन्त्रों को पढ़ने जानने का अधिकार द्विज स्त्रियों को अपवाद रूप से था और अब भी है। इसलिये यह कहना कि-पहिले स्त्रियों को पढ़ने—से रोका जाता था अब नहीं रोका जाता, यह कहना जां० समाचार का श्वेत झूठ है। तथा वेद भगवान् की सवारी पहिले नहीं निकलती थी अब क्यों निकलती है. जां० समाचार का यह लिखना भी सर्वथा मिथ्या इसलिये है कि वेद पुस्तक सरस्वती देवी की वा शब्दात्मक वेद भगवान्की मूर्त्ति मानी जाकर वेद पुस्तकोंकी पूजा पहिले से होती थी उस पूजा के अनेक प्रकारों में सवारी निकालना भी एक प्रकार की पूजा है, जिसके द्वारा यह प्रकट किया जाता है कि वेद हिन्दुओं के पूज्य हैं, इसी वेद से हिन्दुओं का महत्त्व है॥

इस लिये हमारे पांचवें प्रश्न का कुछ भी उत्तर जा० समाचार नहीं देसका और न कभी दे सकता है क्योंकि प्रश्न यह था कि यदि बढ़ई जाति वास्तव में ब्राह्मण थी तो इनको ब्राह्मण न रहने के लिये किसने निषेध किया? कि तुम ब्राह्मणपन छोड़ दो और जब ब्राह्मणों को सदासे वेदाध्ययन का अधिकार था और बढ़ई कहाने वाले मनुष्य भी पहिले से ब्राह्मण थे तब ब्राह्मण होने पर भी वेदाध्ययन से इन को किसी ने क्यों रोक दिया? क्या ब्राह्मणों ने ब्राह्मणों को भी रोक दिया था?। यदि लकड़ी छीलनेके काम करने से ब्राह्मणपन छूटा तो अन्य निकृष्ट वैश्य शूद्रादि के कामों को करने वाले ब्राह्मणों का ब्राह्मणपन नष्ट क्यों नहीं हुआ? इत्यादि प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न हो सकने से सिद्ध है कि बढ़ई लोग कभी भी ब्राह्मण न थे और न कभी हो सकते हैं।

छठे प्रश्नका उत्तर जा० समाचार से कुछ भी नहीं बनपड़ा इसी कारण वह स्पष्ट ही निग्रह स्थान में आगया। जब अमरकोश में लिखे—

तक्षातुवर्द्धकिस्त्वष्टा रथकारश्चकाष्ठतट् ॥

प्रमाणानुसार बढ़इयों ने अपने को त्वष्टा मान लिया तब रथकार होने से कैसे बचेंगे ? । और यदि रथकार शब्दको शत्रु समझके छोड़ेंगे तो त्वष्टा शब्द भी छोडने पडेगा । यदि कोश के प्रमाणानुसार तुम लोग रथकार नही तो त्वष्टा भी अपने को नही कह सकते, तब ऐसी दशा में बढ़इयों के ब्राह्मण होनेका वास्तवमें कोई प्रमाण न होने पर भी देवता के विशेष वाचक त्वष्टा शब्द से अपने लिये एक बनावटी प्रमाण घेर घार खेंचातानी से खडा किया था अब त्वष्टा नाम के छूटने से वह प्रमाण भी हाथ से गया, वास्तव में बढ़इयो के ब्राह्मण होनेका कहीं कोई भी प्रमाण नहीं है, केवल धींगा धींगी से यह चलाया गया है सो यदि भविष्यमें फिर किसी क्षत्रिय राजा का प्रताप जाग उठा तो फिर वैसे ही शूद्र के शूद्र बनादिये जावेंगे । जांगिड़ा शब्द किसी व्याकरण वा कोष तथा श्रुति स्मृति पुराणेतिहास का नही है, किन्तु जैसे भिन्न २ प्रान्तों में खाती, मिस्त्री आदि बढ़इयों के अनेक नाम हैं वैसे किसी प्रान्त में जांगिड़ा नाम भी होगा इस से बढ़इयों का ब्राह्मणत्व वा महत्व कुछ भी सिद्ध नहीं होता छठे प्रश्न का अभिप्राय यही था कि बढ़इयों का ब्राह्मण न होना अन्य शूद्र जातियों के तुल्य प्रत्यक्ष से सिद्ध है । अब ब्राह्मण बनने का अकाट्य युक्ति प्रमाण उपस्थित करना जां० समाचार के शिर पर भार है, सो सहस्र जन्म में भी सिद्ध नही हो सकता ॥

हमारे सातवें प्रश्न का अभिप्राय यह था कि जैसे बढ़इयोंको मीमांसाकारने वैश्य शूद्र के बीच एक जाति माना है क्या वैसे ही किसी ऋषि वा आचार्य ने बढ़इयोंको ब्राह्मण सिद्ध किया है ? । जब कोई प्रमाण नहीं है तो अमरकोश के प्रमाणानुसार उनका शूद्र होना सिद्ध है इस सातवें प्रश्न का भी कुछ उत्तर न दे सकने से जां० समाचार का पक्ष निग्रह स्थान में आगया जां० समाचार कहता वा पूछता है कि (ब्राह्मणः क्षत्रियो०) इस मनुके प्रमाणानुसार चार ही वर्ण हैं पांचवां है ही नही तब तुम ने रथकार को चारवर्ण से भिन्न लिखा था सो लिखना मनुके प्रमाण से विरुद्ध क्यों नहीं है ? इसका उत्तर संक्षेप से यही है कि हमारा लिखना मनुके प्रमाण से लेशमात्र भी विरुद्ध नहीं किन्तु सर्वथा अनुकूल है, हमने भी कहीं कभी ऐसा नही लिखा कि चार से भिन्न पांचवां कोई वर्ण है किन्तु हम भी चार ही वर्ण मानते थे । परन्तु अन्तराल अनेक जातियां चारवर्ण से भिन्न हैं यह भी बात (वर्णानांसान्तरालानां०-) इत्यादि मनुके प्रमाण से सिद्ध है । उन्ही अन्तराल जातियों में एक बढ़ई भी है, इन अन्तराल जातियों का शूद्रोंमें भी कोई लोग समावेश कर लेते हैं क्योंकि इन जातियों को प्राचीन लोगों ने शूद्रवत् मान लिया है, इसी कारण अमरसिंह ने बढ़इयोंको शूद्र

वर्ग में लिखा है। जां० समाचार अब खूब डमाडोल दशा में आ गया है क्योंकि कहीं तो लिखता है कि जैमिनि आचार्यने जिस रथकार को वैश्यसे कुछ हीन लिखा है वे रथकार हम नहीं हैं किन्तु हम जाङ्गिड़ा हैं। तदनन्तर पृ० १२ में लिखा है कि " यदि आपको रथकार के ब्राह्मणत्व विषयक प्रमाणों की आवश्यकता है " इस पर हमारा कथन है कि हमने कभी भी रथकारके ब्राह्मणत्व विषयक प्रमाणों की आवश्यकता नहीं समझी, क्योंकि हमें पूरा २ विश्वास था और अब भी वैसा ही दृढ़ निश्चय है कि रथकारके ब्राह्मणत्व में कोई भी प्रमाण यदि होता तो [वर्षासु रथकार आदधीत] यह वेद का वचन ही व्यर्थ हो जाता क्योंकि यदि रथकार ब्राह्मण होता तो उसके अग्न्याधान का काल ब्राह्मण से भिन्न क्यों रक्खा जाता ? इस कारण रथकार का ब्राह्मण न होना वेद प्रमाण से भी सिद्ध है। वेद प्रमाण से सिद्ध बात के लिये तद्विरुद्ध प्रमाण खोजने वाला मनुष्य वेद विरोधी ही हो सकता है अन्य नहीं इस से जां० समाचार का वेद विरोधी होना सिद्ध हो जाता है ॥

हमारे अष्टम प्रश्न पर जांगिड़ा शब्द को युज् धातु से बना हुआ लिखा है, परन्तु यह नहीं लिखा कि किस २ ऋषि वैयाकरण ने वा निरुक्तकार ने वा किस कोशकार ने जांगिड़ा शब्द को युज् धातु से बना लिखा है ? यदि किसी ने नहीं लिखा तो तुम्हारा कथन स्वयं साध्य कोटि में होने से प्रमाण कोटि में हो नहीं सकता। यद्यपि योग शब्द से भी जांगिडा शब्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है तथापि यदि दुर्जनतोष न्याय से मान लें तो योग शब्दका ब्राह्मण के साथ कुछ भी खास सम्बन्ध सिद्ध नहीं हो सकता। क्योंकि सभी वर्णों का सभी जातियों का सभी सम्प्रदायों का योग के साथ एकसा ही सम्बन्ध था और है।

गौड़ सारस्वत सनाढ्यादि सर्व सम्मत लोक प्रसिद्ध ब्राह्मणों के विशेष वाचक शब्द हैं किन्तु पर्यायवाचक नहीं हैं, गौड़ादि शब्दों को ब्राह्मण के पर्यायवाचक लिखना जां० समाचार का प्रसिद्ध अज्ञान है, क्योंकि ब्राह्मण के पर्याय वाचक भूदेव आदि शब्द हैं। जांगिड़ा शब्द कहीं भी लोक प्रसिद्ध ब्राह्मण वाचक नहीं है। जैसे परम्परा से प्रसिद्ध गो शब्द पशु विशेष का नाम सर्व सम्मत है वैसे कान्यकुब्जादि भी ब्राह्मण के विशेष वाचक सर्व सम्मत हैं। जैसे नापित कहने से क्षत्रिय वैश्यादि कोई नहीं समझा जाता वैसे जांगिड़ा शब्द भी ब्राह्मण वाचक नहीं है ॥

हमारे नवम प्रश्नका भी उत्तर जां० समाचार से कुछ नहीं बना क्योंकि भृगु आदि ब्राह्मण ऋषि शिल्पादि सभी कामों का उपदेश शूद्रादि को देते थे तथा उपदेश देना चाहिये यह बात मनु अ० १० । २ से सिद्ध है उन २ कामोंको धर्मानुकूल किस प्रकार करना चाहिये कैसा २ करने से धर्मानुकूलता होगी यही ब्राह्मणों के उपदेश की आवश्यकता है, इसको शूद्र स्वयं नहीं जान सकते। मनु अ० १० । ९९ । १०० से यह भी सिद्ध है कि द्विज शुश्रूषा से भिन्न बहु विध शिल्प कर्म शूद्रों के हैं।

जां० समाचार हमारे दशम प्रश्न का भी उत्तर नहीं दे सका और आश्चर्य यह है कि उसने जाति का लक्षण अभी तक नहीं समझ पाया, न्याय सूत्र लिख बैठा जिसको समझने की शक्ति नहीं है, उस सूत्र का अर्थ यह समझा है कि तुल्य उत्पत्ति वाले मनुष्यादि एक जाति हैं, ब्राह्मण कोई जाति नहीं किन्तु ब्राह्मणादि वर्ण हैं। यह अज्ञान पहिले आर्य समाज से चला है, समानोत्पत्ति वाले मनुष्य और पशु दोनों जरायुज हैं तब क्या मनुष्य और पशु एक जाति माने जावेंगे ?। इस से सूत्रार्थ यह है कि जिसके बोलने से असंख्य व्यक्तियों में समान बुद्धि हो वह जाति वाचक शब्द हैं। ब्राह्मणादि शब्दों के जातिवाचक होने में यही अर्थ भाष्यानुसार होने से घटता है जैसे पशु सामान्य जाति है, गौ अश्वादि उसकी अवान्तर जाति हैं वैसे ही मनुष्य सामान्य जाति और ब्राह्मणादि मनुष्यकी अवान्तरजातियां हैं। (आकृतिग्रहणाजातिः) इस लक्षण का भी यही अभिप्राय है। जां० समाचार को चाहिये कि वह इस विषय में चुप हो जावे क्योंकि अब उसका पक्ष खण्डित हो चुका है, यदि आगे को क्रोध दिखाया तो हम कदापि उस पर क्रोध नहीं करेंगे और उस के क्रोध से भी ब्राह्मण न होना सिद्ध हो जायगा। अब वह पराजित हो चुका है॥

पद—वेदान्त।

अन्दर सोऽहं बाहर भास रहो।

जैसे अपरोक्षहु घटस्थ नभ, व्यापक बाह्य तथाऽभ्यन्तर, नष्ट उपाधि होत घट पट मठ, सो मिल महदाकाश रहो। अन्दर सोऽ० ॥ १ ॥

माया कृत दर्शात रूप बहु, संख्यातीत सु एक वस्तुतः, कुंडलादि कंचन विकार जिमि, सत्य स्वर्ण चहुं पास रहो। अन्दर सोऽ० ॥ २ ॥

सम्यक चित्त वृत्ति निश्चल कर, देखहु नित्य अभिन्न आपसों त्याग अनात्म प्रीति जन बांके पुनि पुनि कर अरदास रहो। अन्दर सोऽ० ॥ ३ ॥

गजल।

सम्हल तेरे फसाने को पसारा जाल कैसा है।
असत ये सत्यवत भासे यही आश्चर्य कैसा है॥ १ ॥
समझता जिस को तू अपना वो है सब रात का स्वपना।
जगा तब कोई नही देखा हुआ कौतुक सा कैसा है॥ २ ॥
जगत की ओर धावे है विवस विषयों से दुख पावे।
नही जाने तृषित मृग तू मरुस्थल वारि कैसा है॥ ३ ॥
कहें बांकेविहारी ऐ पथिक परदेश मत भूले।
अवशि तजि प्रीति इस जग की रजत पुनि शुक्ति कैसा है॥ ४ ॥

बांकेविहारीलाल बाजपेयी—पुरावली।

अन्योक्ति पंचक

(१)

पाय बड़ो पद ह्वै है कहा जब हीय गम्भीरता ना झलकानी ।
कुंडल धारो संभारो शरीर, वृथा कहुं जो गुण ना मन आनी ॥
थोरेक काल पसारे प्रभाव, कहा यश कीन ध्वजा फहरानी ।
ऐरे सियार रंगे न बनै, खुलि जैहै तिहारी हुबात में बानी ॥

(२)

प्रेम प्रभाव पसारो कितो, शिशुवान की सेवकता चित ठानी ।
कारो सरूप लखावो भले, करि कोयल की समता मनमानी ॥
पायो जो पै बलिभाग कहा, मलखान की बानि जो नाहिं दुरानी ।
कांव किये खुलि जैहै सबै, ऋतुराज में काग औ कोयल बानी ॥

(३)

पावन भेष मराल बनें, बिच बैठि कहा बड़ि बात बघारो ।
मौन बनें बपु संत ठने, जल जीवन पै सत्यता गुण डारो ॥
वारिज़ पर्ण में एकहि पैर, खरे तप की महिमा चित धारो ।
ऐ बक क्षीर औ नीर के न्याय, छिपै किमि वंचक रूप तिहारो ॥

(४)

ऊंचे भये सिगरे तरु से, अरु वास आराम के बीचहि पायो ।
कंटक कोटि कलंक भुलाय, जबै तव फूल अनूप दिखायो ॥
देखि विभव मन चाव किये, मगजात लजातन लोभ बढ़ायो ।
सेमर तोर सबै गुण के शुक, द्वार से आस दिखाय फिरायो ॥

(५)

लाय तुम्हें वन बीहड़ से, पिंजरे लर मोतिन की लटकाई ।
सादर दूध मलाई खवाय, भलीविधि चूमि करी सेवकाई ॥
होत प्रभात पढ़ायो सदा, एक राम को नाम सनेह बढ़ाई ।
तौहू कृतघ्न बने उड़िकै शुक, लाज हिये विच नेक न आई ॥

साहित्य-सेवक = पुत्तीलाल शुक्ल
गनियारी—बिलासपुर ।

श्री १०८ श्रीमद्वल्लभाचार्य जी महाराज
का
व्याख्यान ।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्,
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः ॥
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गो मृषा,
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥
अनन्तकंदर्पकलाविलासं, किशोरचन्द्रं रसिकेन्द्रशेखरम्,
श्यामं महासुन्दरताभिरामं, श्रीकृष्णचन्द्रं शरणं गतोऽस्मि ॥
नमो भगवते तस्मै कृष्णायाद्भुतकर्मणे,
रूपनामविभेदेन जगत् क्रीडति यो यत. ॥

महानुभाव विद्वद्गण और उपस्थित सभ्यगण ?

परिवर्तनशील इस जगत्में सदैव परिवर्तन हुआ करता है। जगत्के आविर्भाव से लेकर अभीतक बराबर परिवर्तन होता चला आ रहा है। यह जगत् एक प्रकार की रगभूमि है इसमें एक पीछे एक अभिनय हमारी दृष्टि पर आकर अंतमें परदे की ओट के पीछे छिपते जाते हैं। अहा! एक समयमें जो स्थान हिंसक प्राणियोंसे घिरा हुआ भयंकर मालूम होता था, वही आज भयरहित और मनोहर बन रहा है?। एक समय में जो स्थान बड़े बड़े राजाओं की नगरीरूप से प्रसिद्ध होरहा था, वही काल प्रभाव से आज जनशून्य और अरण्यके समान भयकर मालूम होरहा है। सब दिन एक समान नही जाते। यह एक स्वभावसिद्ध बात है कि कोई भी देश अथवा कोई भी समाज एक ही स्थिति में रह नही सकते। यह परिवर्तन ही विधाता की महिमा का द्योतक है।

इस विषयमें आप अपने भारतवर्षको ही देख सकते हैं। आप जानते हैं कि यही भारतवर्ष एक समय इतनी उन्नतिको प्राप्त हुआ था, कि जिसे देखकर लोग विस्मित होते थे, आज उसकी क्या दशा है। जिस भारतवर्ष के भूदेवोकी वेदध्वनिसे मनुष्य तो क्या? किन्तु जङ्गल के पशुपक्षी भी विमोहित और विशुद्ध बन जाया करते थे, जिस भारतवर्ष के शूरवीर क्षत्रियो की शस्त्रविद्या अपूर्व उन्नतिको प्राप्त कर चुकी थी जिस भारतवर्ष के वैश्यों ने अपने कृषि गोरक्षा और वाणिज्य के प्रभाव से देश को सम्पत्तिशाली बना रक्खा था, और जिस भारतवर्ष के शूद्रों ने स्वधर्म का पालन कर

अपनी पूज्य जातियों को उन्नतिके मार्ग में आगे बढ़ने की सुविधा दे रखी थी, आज उसी भारतवर्षके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र स्वधर्म से च्युत होकर भारतवर्ष की दुर्दशा के कारण बन रहे हैं। जब इन चारों वर्णोंके मनुष्यों की यह दशा है, तब सच्चे योगीन्द्र और मुनीन्द्रों के दर्शनकी किस प्रकार आशा की जा सकती है?

आज हम लोग देख रहे हैं कि वेदोक्त कर्मों का प्रायः लोप होता जाता है, देश भाषा और देव नागरी लिपिके प्रति लोगों को अनादर होरहा है, चारों आश्रमों की नींवरूप ब्रह्मचर्यावस्था से लोग विमुख हो रहे हैं, सदाचार और सच्चरित्रताका अभाव हो रहा है, ब्रह्मविचार हृदय से निकल कर रसना के अग्रभाग में आपहुंचा है, ऐसी दशामें हरिप्रिया लक्ष्मीजी यहां पर किस प्रकार स्थायिरूप से रह सकती हैं? जब भारतवासी नारायण को छोड़ रहे हैं, तब पतिव्रता देवी श्रीलक्ष्मी जी उनके पास सुचारुरूप से किस प्रकार रह सकती हैं? लोभ, दुराचार, निष्ठुरता और वृथाविवाद की वृद्धि हो रही है और सदुपदेश श्रवण करनेके समय लोगोंके कर्णमें दर्द पैदा हो जाता है। यदि सत्यके नातेसे मैं स्पष्ट कहूं तो यही कह सकता हूं कि असन्तोष, अभिमान, दंभ और मात्सर्यरूप सुरापान से लोग उन्मत्त होरहे हैं। आलस्य, उदासीनता, शोक, मोह, रोग द्वेष, दारिद्र्य, दुर्भिक्ष, विषाद, विलास, प्रभृति के कारण भारतवासियों का सच्चा आर्यत्व नष्टप्राय हो रहा है। क्षुद्रविचार, असत्यभाषण, विपुलतृष्णा आदि से आर्यहृदय क्रमशः मलिन हो रहे हैं, इसके सिवाय स्त्रियों की स्वेच्छाचारिता बढ़ानेके लिये, वर्णव्यवस्था को तोड़ने के लिये देवता और आचार्यों के द्रोहके लिये एवं वेदके विपरीतार्थ करनेके लिये कुछ लोग उद्योग कररहे हैं और कुछ लोग परमार्थ और विद्या प्रचार का आडंबर कर अपने मनःकल्पित असत्य व हानिकारक विचारों का प्रचार करने के लिये जीजान से चेष्टा कररहे हैं यह अत्यन्त शोककी बात है कि परमायु, पराक्रम, पवित्रता, विद्यानुराग, सत्यानुराग, शारीरिक आरोग्य, सौभाग्यसुख, आस्तिकता और तपश्चर्याके भारतसे विदा होनेके दिन समीप में आरहे हैं। क्रमशः बड़ोंके आदरकी पद्धति, मातृपितृभक्ति, कुटुम्बप्रेम और कुलाभिमान क्षीण होता जाता है। जहां देखो वहां आपस में विवाद, विरोध और गृहकलह की दावाग्नि हमारे संसार सुख को भस्मसात् कर रही है। आज कल माता पिता व भ्राताओं का परित्याग कर अपनी अर्द्धाङ्गना को ही प्रसन्न करने में अपना पुरुषार्थ समझा जाने लगा है। पिता, माता भ्राता प्रभृति निजके आत्मीयोंको छोड़कर अपनी गृहदेवी के आत्मीयों के लिये सर्व समर्पण करना यही आजकलकी सभ्यता मानी जाने लगी है। जिस परमात्मा के अपने ऊपर अनेक उपकार हैं, उन्हें भूल जाना, उन का भजन स्मरण न करना और वार वनिताओं की उपासना

करना अधिकांश लोगोंने अपना कर्त्तव्य समझ रक्खा है, ऐसी दशा को देखकर हमें कहना पड़ता है कि भारत की यह दशा अत्यन्त शोचनीय है, अब इस शोचनीय दशा को सुधारने का प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है।

सज्जन गण! एक शरीर में अनेक प्रकार के रोग रहते हुए भी जब तक उस शरीर में प्राण हैं तब तक उस से हम आशा छोड नहीं सकते। यद्यपि भारतरूप शरीर विविध प्रकार के रोगों से आक्रान्त है, वह कई प्रकार से शक्तिहीन बन रहा है, फिर भी उस में से अभीतक प्राण निकल नही गया है। तब आप पूछेंगे कि वह प्राण क्या हैं तो इसके उत्तर में मैं तो यही कहूंगा कि वह प्राण और कुछ नहीं, किन्तु हमारा प्यारा धर्म है।

धर्म ही भारतवर्ष का प्राण है, धर्म ही भारतका जीवन है, धर्म ही भारत का सौन्दर्य है, धर्म ही भारत की सम्पत्ति है, और धर्म ही भारत का सर्वस्व है। एक धर्म ही को धारण करके भारत जीवन-धारण कर रहा है धर्म ही जीवनी शक्ति है, इस शक्तिको जितने अंश में उन्नति की जायगी उतनी ही भारत की उन्नति होगी। धर्म शून्य होने की दशामें भारत क्षणमात्र भी जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि धर्म शून्य होते ही भारत प्राणशून्य हो जायगा, भारतवर्ष धर्म को छोड़ कर कुछ भी काम नहीं कर सकता। भारत के समस्त कार्य धर्म के आधार पर होते हैं क्या भोजन क्या शयन, क्या जागरण, क्या गमन, क्या आगमन समस्त कार्य भारतवासियों के धर्म के साथ सम्बन्ध रखते हैं। भारतवर्षके एक बड़े भारी नेता महर्षि व्यासदेव आज्ञा करते हैं कि—

धर्मेणैव जगत्सुरक्षितमिदं धर्मो धराधारकः।
धर्माद्वस्तु न किञ्चिदस्ति भुवने धर्माय तस्मै नमः॥

धर्म के द्वारा ही यह संपूर्ण जगत् सुरक्षित हो रहा है, धर्म ही पृथ्वी को धारण करने वाला है, जिस धर्म के अतिरिक्त कोई भी वस्तु जगत् में नहीं है, उस धर्म को नमस्कार है।

सज्जन गण! इस बात को आप सब कोई समझ सकते हैं कि जिस समय मनुष्य प्राणी को उस महायात्रा के लिये बिदा होना पड़ता है, जिस समय उसके परम परिश्रम द्वारा सम्पादित महान् वैभव और जिन के सुख के लिये हम रात दिन चिन्ता व प्रयत्न कर रहे हैं वे आत्मीय गण कोई भी हमारे साथ चलने को तैयार नहीं होते। हमारे बड़े २ मित्र जो कि हम को अत्यन्त चाहते हैं और हमसे स्वल्प समय भी पृथक् नहीं रहते वे समस्त यहां पर ही पड़े रहते हैं उस समय भी हमारे साथ चलने वाला, हमारा एक परम मित्र है जिस का नाम धर्म है।

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति॥

आप लोगों को मैं जानता हूं कि आप धर्म के महत्व के सम्बन्ध में बहुत कुछ जानते हैं, "धर्मो रक्षति रक्षितः" यह वाक्य आपको सदैव स्मरण होगा, फिर भी इतना कह देना अनुचित नहीं है कि उस धर्म के तत्वों के सम्बन्ध में आपको अभी भी विशेष ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता है। धर्म का तत्व जानना बड़ा ही कठिन कार्य है। जब संसार के छोटे २ कार्यों को समझने के लिये और उसके करने के लिये हमें बहुत कुछ विचार व आन्दोलन करना पड़ता है तो फिर इस महान् विषय को समझने के लिये और तदनुसार चलने के लिये विचार और आन्दोलन की आवश्यकता क्यों न हो?

सभ्यगण! धर्मके तत्वोंको समझने के लिये और समझाने के लिये हमारे प्रातः स्मरणीय ऋषियों ने और पूज्यपाद आचार्यों ने महान् परिश्रम किया है। धर्म के तत्वों को स्पष्ट करने के लिये उन्होंने बड़े २ ग्रन्थों की रचना की है, और तो जाने दीजिये, किन्तु साक्षात् पूर्णब्रह्म पुरुषोत्तम धर्म की रक्षा के लिये और धर्मों के तत्व समझाने के लिये मानवविग्रह धारण करने की कृपा करते हैं। जिस धर्म की रक्षा और प्रचार के लिये हमारे प्रभु और हमारे पूर्व पुरुष इतना श्रम अङ्गीकार कर चुके हैं, उस धर्मके तत्वोंको समझनेके लिये हमें भी यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिये।

यहां पर एक बात मैं आपसे कहदेना आवश्यक समझता हूं कि आजकल दुनियां में स्वतन्त्रता की भी एक बहार निकल चली है। जहां देखिये वहां लोग स्वतन्त्रता देवी के उपासक बने हुए हैं। सब कोई स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, स्वतन्त्रता चाहे अन्य विषयों में इष्ट हो, किन्तु धर्म के विषय में तो मैं कह सकता हूं कि स्वतन्त्रता की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है। मैं स्वतन्त्रता का विरोध नहीं करता, किन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि त्रिकालदर्शी, महापुरुषों के धर्मके संबन्ध में किये हुये निर्णय में हमारी स्थूल बुद्धि प्रवेश नहीं कर सकती, इसलिये इस विषय में तो स्वतन्त्रता सर्वथा त्याग करने योग्य है। धर्मके विषय में तो हमें सर्वथा उन्हीं का अनुसरण करना चाहिये, क्योंकि धर्म और ईश्वर ये दो पदार्थ ऐसे हैं कि जो सामान्य मनुष्यों को प्रत्यक्ष देखने में नहीं आते, और जो प्रत्यक्ष में देखने में न आवे उस विषय में उन्हें प्रत्यक्ष देखने वालों की बातों पर विश्वास न कर अपने तर्क के घोड़े दौड़ाना और मन में आवे वैसा कहना करना कभी भी उचित नहीं है।

प्रिय सभ्य सज्जनो! आप यह जानते हैं कि आज इस स्थान पर हम लोग अपने परमप्रिय श्रीसनातनधर्म की पवित्र महिमा सुनने सुनाने के लिये उपस्थित हुए हैं। इससे अधिक दूसरा कोई भी सुख नहीं हो सकता कि हम सभी सनातनधर्मावलम्बी ऋषि सन्तान अपने जीवन को धर्ममय बनाकर भगवान् से मिलने का सुप्रयत्न करें। आपका यह पवित्र भारतदेश जगद्गुरु क्यों कहा जाता है? इसी लिये कि इस ने

संसार में सब से पहिले धार्मिक तत्त्वों का विस्तार कर वह स्वयं पूर्ण धर्मात्मा बना था। धर्म ही धन था, धर्म ही बल था और धर्म ही हमारा सर्वस्व प्राण था। ऋषियों ने स्पष्ट लिखा है कि;—

शक्तिमानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः ।
विद्वानपि महामूर्खो यो धर्मविमुखो नरः ॥

परन्तु बड़े ही खेद और आश्चर्य की वार्ता है कि आजकल कुछ लोग 'धर्मविमुख' होना ही अपने गौरव का लक्षण समझते हैं। जिसने तड़ाक फड़ाक अपनी पुरानी परम्परा से चले आये नियमों को तोड़ डाला, वही बीसवीं शताब्दी का शूर समझा गया। आचार विचार संयम नियम तीर्थ व्रत पूजा पाठ, धर्म कर्म और जाति पाति तो बन्धन दीखने लगी और स्वेच्छाचारिता या अनाचारिता का नाम रक्खा गया मनुष्य की अन्तिम महोन्नति!

क्या ऐसी उच्छृङ्खलता से ही ऋषिभूमिका उद्धार होगा? राम व कृष्ण भगवान् की प्यारी मातृभूमि के पुनरभ्युदय का मन्त्र क्या यही है कि राम और कृष्ण नाम लेने में लज्जा लगे एवं देवदर्शन न करना यही सभ्यता का एक निशान माना जाय। यदि ऐसा नहीं तो फिर आप लोग अपने उन बालकों के भ्रम को दूरकर सुपथ दिखलाने का उचित प्रयत्न क्यों नहीं करते? मैं आज खुले शब्दोंमे आपसे कहदेना उचित जानता हूं कि धर्म विमुखों का अनाचार उत्तरोत्तर बढ़ता दीखता है, पर सनातन धर्मावलम्बियो का प्रयत्न ढीला खास कर इस बम्बई प्रान्त मे तो नही के बराबर ही है। धर्मरक्षाके लिये एक भी सुदृढ और सामाजिक प्रयत्न नही दीख पड़ता कि जिस में सभी समुदायों के अतिरिक्त आस्तिक धार्मिक सज्जन मिलकर काम कर रहे हों। क्या यहां कोई धार्मिक महासभा है? क्या यहां कोई धार्मिक कालेज है? क्या यहां कहीं भी कोई ऋषिकुल है? क्या इस प्रान्तमे सनातनधर्मके बड़े २ वक्ता है? इत्यादि प्रश्नोंके उत्तरमें "नहीं" के सिवाय कुछ नही कहा जा सकता। यहां जब तब सभायें होती हैं पर पीछे से काम कुछ भी नहीं होना ऐसा नहीहोना चाहिये।

आजकल आप देख रहे हैं कि सभी धर्ममतवाले अपने निश्चित सिद्धान्तों के प्रचार के लिये किस प्रकार तन मन और धन से उद्योग कर रहे हैं। यह देखते हुये भी यदि आप धर्मप्रचार के कार्य से उदासीन रहेंगें, और आपके धर्मबन्धु व भविष्य की प्रजा धर्म के सिद्धान्तों से अज्ञान रहने के कारण विधर्म में जायगी या धर्महीन बनी रहेगी तो उसके सम्पूर्ण दोष व कलंक के भागी आप होंगें यदि आप उस दोष व कलंक से मुक्त होना चाहते हैं तो उस धर्म के तत्त्वों को समझाने के लिये उस के प्रचार के लिये उचित प्रबन्ध कीजिये।

स्त्रियों का आदर

जिन मनुष्यों ने केवल पश्चिमीय शिक्षा का अध्ययन किया है वे समझते हैं कि हिन्दु समाज में स्त्रियों का आदर किञ्चिन्मात्र भी नहीं होता। ये उनकी भूल है ! क्योंकि हिन्दुओं में जो पर्दासिस्टम की प्रथा प्राचीन काल से चली आती है इस से उनकी स्त्रियों के आदर सत्कार को कोई प्रत्यक्ष नहीं देख सकता। और आजकल के सुधारक जो परदा सिस्टम को बड़ी घृणा की दृष्टि से देख रहे हैं उनको भी यह विदित हो गया है कि इधर ५० वर्षसे भारत में आदर्श रमणियां नहीं हुई। यह बात भी ध्यान देने योग्य है जब इधर भी स्त्री शिक्षा का खूब प्रचार हो रहा है तो शिक्षिता स्त्रियों में आदर्श रमणियां भी अवश्य होनी चाहिये। परन्तु जब नहीं हुईं तब यही कहना पड़ेगा कि वर्त्तमान स्त्री शिक्षा की प्रणाली सर्वथा दूषित है। इस का कारण पाश्चात्य स्त्रियों का अनुकरण ही प्रतीत होता है। सुतरां यह बात स्पष्ट है कि जहां की जैसी शिक्षा होती है ठीक वैसे ही भाव पढ़ने वाले के हृदय पर अंकित हो जाया करते हैं। हम देखते हैं कि पाश्चात्यजन अपनी स्त्रियों का गौरव और महत्त्व दिखाने में संकोच नहीं करते; इस का कारण उन की स्वाधीनता ही है। परन्तु आधुनिक अपनी स्त्रियों की दशा को देखकर यह बात माननी ही पड़ेगी कि पश्चिमीय स्त्रियों से हमारी स्त्रियां बहुतसी बातोंमें अधिक सुखी नहीं है इसका प्रधान कारण दरिद्रता है, परन्तु अब मैं नवशिक्षितों के सामने कुछ शास्त्रों के सिद्धान्त प्रकट करता हूं उस से विदित हो जायगा कि पश्चिमीय शिक्षा से भारतीय स्त्रियों की शिक्षा तथा उनका आदर कितना उच्च कोटिका है। मनुस्मृति में लिखा है कि—

स्त्री के पिता, भाई, पति, और देवर को उचित है कि यदि वह अपना अधिक कल्याण चाहें तो सदा उनको भोजन आदि से पूजित और वस्त्रादि से भूषित करें। जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवगण प्रसन्न रहते हैं और जहां उनका आदर नहीं होता वहां की सब क्रियायें निष्फल हो जातीं हैं जिस कुल में स्त्रियां दुःख पाती हैं उस कुल का शीघ्र ही नाश हो जाता है और जिस कुल में वे सुखी रहती हैं उस कुल की धन आदि से सदा वृद्धि होती रहती है। स्त्रियां लक्ष्मी का स्वरूप होने के कारण महा कल्याण करने वाली माननीया और घर की शोभा बढ़ाने वाली होती हैं, इस लिये उनका यथोचित सन्मान सदैव करना चाहिये। यह तो हुआ आदर अब शिक्षा के विषय में सुनिये।

यदि मनुष्य को अपने कुल की उन्नति करनी हो या आर्य गौरव प्रतिष्ठित रखने की पूर्ण अभिलाषा हो तो कन्या को विदुषी और शीलवती बनावे।

कन्याप्येवं पालनीया शिक्षणीयातियत्नतः।

अर्थात् पुत्र की तरह कन्या को भी अति यत्न से पालन और शिक्षादान करना चाहिये। परन्तु शिक्षा देने के पहिले कौनसी शिक्षा कन्याके लिये अनुकूल हो सकती है इस पर अवश्य विचार करे क्योंकि अविचार के साथ विपरीत शिक्षा देनेसे हानि होती है। इस विषय में पुरुष के लिये पुरुष भाव् की पूर्णता करना पुरुष शिक्षा का लक्ष्य है, उसी प्रकार स्त्री में स्त्रीभाव की पूर्णता करना स्त्री शिक्षा का लक्ष्य होना चाहिये। स्त्रीको पुरुष की प्रकृति बनाना या पुरुष को स्त्री प्रकृति बनाना स्त्री शिक्षा का लक्ष्य नही होना चाहिये क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल होना अधर्म कहाता है माता को पूर्ण माता बनाना ही माता के लिये शिक्षा है उसको पिता बनाने के लिये यत्न करना उन्मत्तता व अधर्म है। अतः स्त्रियोंको ऐसी शिक्षा देना ही उनका आदर है जिस से वह गृहस्थाश्रम के कार्यों में पूर्णतया चतुर हों। अतः आपको विदित हो गया होगा कि हमारा विज्ञान कहां तक व कैसा है।

अब मैं आपको पाश्चात्य स्त्री विज्ञान की कुछ कथा सुनाता हूं जिस से आप को भलीभांति विदित हो जायगा कि हम स्त्रियोंका आदर करते हैं कि पश्चिमी। पाश्चात्य स्त्रियां सदैव स्वतन्त्र तथा स्वेच्छाचारिणी होती हैं और यही हाल पुरुषों का है वे अपने स्वार्थ के लिये एक दूसरे का किञ्चिन्मात्र भी ख्याल नहीं करते। इस विषय में मैं आपके सन्मुख सुप्रतिष्ठित कवि किप्लिंग के वाक्योंका अनुवाद रखता हूं उनने अपनी समाज का चरित्र इस भांति खीचा है।

एक स्त्री ने अपने भावी पतिसे कहा कि तुम्हारे मुखमे सिगरट की दुर्गन्ध आती है इसको पीना छोड़ दो नहीं तो मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करूंगी, यह सुन भावी पति ने कहा कि यह तो मुझ से नही छूट सकता तुम विवाह करो या मत करो। तात्पर्य यह है कि जिस समाजमें स्त्रियोंका मूल्य एक सिगरेट से तुच्छ समझा जाता हो वहां स्त्रियोंका सन्मान कितना होता है इसको आप स्वयंही समझ सकते हैं। उन को एक पति ढूंढने के लिये गीतगाना, बाजा बजाना, चटक मटक से रहना, अधनंगी नाचना, जाफ़तें देना, आदि अनेक शिक्षायें प्राप्त करनी पड़ती हैं। पाठको! यह वहा की सभ्यता के अंग हैं परन्तु इस पर भी अनेकों अविवाहिता रह जाती हैं और पुरुष मधुकर श्रेणीके सदृश उडकर भिन्न २ पुष्पोंका रस चाखा करते हैं, इसको चाहें आप आदर समझें परन्तु हिन्दुधर्मावलम्बीय इस को घोर व्यभिचार मानते हैं। उन के धर्ममें स्त्री तथा पुरुषके लिये एक पति तथा पत्नीव्रत ही श्रेष्ठ है। पाठकवृन्द! जिस समाजमें तथा जहां की शिक्षा में इस प्रकारके भाव प्रगट होते हों उन स्त्री पुरुषों के

सम्मान को देखकर कहना पड़ता है कि हे नन्दनन्दन मधुसूदन कृष्ण मुरारी! जैसे आपने सभाके बीचमें चीर बढ़ाकर द्रौपदीके मानकी रक्षा की थी उसी भांति कोरे पश्चिमीय हिन्दुसभ्यताभिमानियों से हमारी स्त्रियोंकी रक्षा करो। कहां वह हिन्दू जो अपनी धर्मपत्नीसे साक्षात् अग्निदेवके समक्ष यह प्रण करता है कि मैं जीवन पर्यन्त तुम्हारे सिवाय अन्य स्त्री की स्वप्न में भी इच्छा नहीं करूंगा और तुम्हारा हित चिन्तन करता रहूंगा आज वहां अनेक प्रकार के तर्क वितर्क होते हैं। हिन्दू अपनी स्त्रियोंकी बालकपनमें दुर्गा मान कर, विवाहके पश्चात् लक्ष्मी मान कर और वृद्धावस्था में पार्वती मानकर पूजा करते हैं क्या समस्त संसार में ऐसा कोई समाज है जहां स्त्रियों का इतना आदर सम्मान होता हो।

जिससमय दशरथनन्दन मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रजी सीताके वियोगमें व्याकुल हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचे वहां हनुमान्जीने उनकी सुग्रीवसे मित्रता कराई तब लक्ष्मणने रामचन्द्र का, राजभंग, वनवास, सीताहरण आदि समाचार सुग्रीवसे कहा। यह सुनकर सुग्रीव बोला कि हे दीनबन्धु दयासागर! एक दिन मैं अपने सचिवके साथ यहां बैठा कुछ बात चीत कर रहा था तब एक स्त्री परवश रुदन करती हुई आकाश मार्ग में जा रही थी उसने मुझे देख हा राम!!! कहकर कुछ आभूषण डाल दिये। यह सुन रामचन्द्र जीने आभूषणोंको मंगाया और उन्हें देख नेत्रोंमें जल भर कर हृदय से लगा लिया और लक्ष्मण से कहने लगे।

कह प्रभु लछमणसों यों बाता। पहिचानत पट भूषण ताता॥

हे तात! क्या तुम इन आभूषणों को पहिचानते हो। यह सुन लक्ष्मण ने हाथ जोड़ कर उत्तर दिया।

पगभूषण मैं सकल चिन्हारी। ऊपर कबहुं न सीय निहारी॥

हे दीनबन्धु दयासागर! मैंने जानकी जी का पग छोड़ कर और कहीं नहीं निहारा। अह! हिन्दुजाति में कितना सच्चा सम्मान है। धन्य हो लक्ष्मण धन्य हो सुमित्रा जिन की गोद से ऐसे रत्न पैदा हुए जिन्हों ने धर्म की मर्यादा बांधी। यदि आज लक्ष्मण जी ब्रह्मचारियों के भेष में भ्रमण करते आ निकलें तो मैं विश्वास करता हूं कि ये उन पाश्चात्य शिक्षाभिमानियोंसे जो केवल विदेशीय ड्रेस से लंगूर बने फिरते हैं तथा जो अपने सिद्धान्तों से शून्य हृदय वाले हैं और अपनी धर्मपत्नियों को विदेशी सांचें में ढालना, चाहते हैं अवश्य ही उनसे घृणा करेंगे। उपसंहार में कहता हूं कि यह लेख सच्चे धार्मिक, तथा सदाचारी भाइयों के लिये नहीं है यह केवल उन्हीं के लिये है जो इस योग्य हैं।

श्यामशरण गहोई-मुरादाबाद

आर्यसमाजियोंमें वेदकी अनभिज्ञता

संसार में वेदका ज्ञान न होनेसे बड़े२ अनर्थ हो रहे हैं आज एक पत्र हमारे पास पं० श्यामलालजी त्रिपाठी का कलकत्ते से आया हैं उसमें किसी आर्यसमाजी ने मूर्त्ति पूजा पर वे प्रश्न किये हैं कि जो ज्ञाता वैदिक पुरुषके लिये लज्जा जनक हैं या यों कहिये कि वेद धर्मी बनकर वेदों से संसार को घृणा करा कर नास्तिक बनाने के उद्योग में सहायता दायक हैं वेदको ही अपना धर्म पुस्तक बताना और कुतर्कों से वेदको ही उड़ाना यह कार्य आर्यसमाजी के लिये कितना घृणित है इसका विचार पाठक करें प्रश्न नीचे लिखता हूं पढ़िये—

(१) ईश्वर निराकार है उसकी मूर्त्ति नही बन सकती।

(२) यदि ईश्वरका मूर्त्ति में आना मानते हो तो वह जाग क्यों नहीं उठती।

(३) हनुमान् और गणेशजीकी उत्पत्ति कहां से हुई।

ये तीन प्रश्न हैं अब इनका उत्तर भी सुन लीजिये इस पुरुषकी दृष्टि में ईश्वर बिल्कुल सोलह आने निराकार है और निराकार होने के कारण वह कभी साकार नहीं हो सकता क्योंकि इन महाशयकी बुद्धि में निराकार पदार्थ साकार नही होते। इन को इतना भी ज्ञान नही कि ईश्वर का केवल निराकार होनेका प्रश्न कौन करता है ईश्वर निराकार है यह प्रश्न भी वही करता है निराकार से साकार बन चुका है इस को विस्तार से समझिये कि यह अल्पज्ञ निराकार जीव (रूह) साकार बनकर कलकत्ते में निवास करले और चौधरी धमधूसर सिंह की कन्या के साथ विवाह कर ग्यारह सन्तान पैदा कर ले ईश्वर वेदोंका खण्डन करे तब तो चूं तक न करें और यदि ईश्वर निराकार से साकार बन जावे तो हमारे समाजी भाईयों के मिजाज बिगड़ जावें क्या इनकी दृष्टिमें जीवके बराबर भी ईश्वर में शक्ति नही पं० तुलसीराम ने भास्कर प्रकाश में लिखा है स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में "तदात्मन आकाशस्सम्भूत आकाशाद्वायुः" आकाशसे वायु बना वायु से अग्नि अग्नि से जल जो आकाश बिल्कुल निराकार था फिर चतुर्थावस्था में वही आकाश साकार बन गया इसको कलकत्ते वाले समाजी महाशय मानते हैं किन्तु ईश्वर का साकार होना नहीं मानते क्या इनके ईश्वरमें जड़ परमाणुओं कितनी भी शक्ति नहीं वेद कहता है कि अग्निकी भान्ति ईश्वर को साकार निराकार समझो।

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
तथाह्ययं सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

अर्थ—जैसे एक ही अग्नि भुवन में प्रविष्ट होकर जैसी लकड़ी पाता है वैसा ही आकार धारण करता है वैसे ही समस्त भूतों का आत्मा ईश्वर रूप रूप के अनुकूल शरीर धारण करता है और बाहर भी रहता है।

इस मन्त्र के अर्थकी चौपाई बनाकर गोस्वामी तुलसीदास जी अपनी रामायणमें लिखते हैं कि—

एक दारु गत देखिये एकू। पावक युग सम ब्रह्म विवेकू॥

इस के अलावा वेद तो ईश्वर के शरीर धारण साकार होने को कहता है फिर इस समाजी ने ईश्वर को निराकार कैसे समझ लिया वेद का कथन देखिये—

रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरयः शतादश॥

ऋ० मं० ६ अ० ४ सू० ४७ मं० १८।

पदार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (मायाभिः) अपनी अनन्त सामर्थ्यों से (पुरुरूपः) अनेक देहों का रूप वाला (ईयते) होता है (तत्) सो (अस्य) इस अपने (रूपम्) रूप को (प्रतिचक्षणाय) सब भक्तों पर विख्यात करने के लिये (रूपं रूपं प्रतिरूपो) जैसे २ रूप की इच्छा हो तैसा २ (बभूव) हुआ (हि) निश्चय (अस्य) इस परमेश्वर के (हरयः) रूप (शत) सैकड़ों हैं (दश) दश मुख्य हैं। और भी देखिये

पूर्वोयोदेवेभ्योजातो नमोरुचायब्राह्मये।

यजु० अ० ३१ मन्त्र २०

(यः) जो (देवेभ्यः) देवताओं से (पूर्वः) पूर्व (जातः) प्रकट हुआ (तस्मै) उस (रुचाय) तेज वाले (ब्रह्मये) ब्रह्माके लिये (नमः) नमस्कार है।

ब्रह्मादेवानांप्रथमः संबभूव विश्वस्यकर्ताभुवनस्यगोप्ता।

मुण्डकोपनिषद्

अर्थ-विश्व का रचने वाला और भुवन की रक्षा करने वाला देवताओंसे पूर्व ब्रह्मा प्रकट हुआ।

इसके आगे जरा मनु का भी एक श्लोक सुनलें।

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्।
तस्मिंजज्ञेस्वयंब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

अर्थ-(तत्) वह (अण्डम्) अण्ड (हैमम्) सुवर्ण कान्ति वाला (अभवत्) हुआ (तस्मिन्) उसमें (सर्वलोकपितामहः) समस्त संसार के पिताओं का पिता (ब्रह्मा) ब्रह्मा (स्वयम्) अपने आप (जज्ञे) उत्पन्न हुआ।

इस समाजी को या तो वेद से पूर्ण अनभिज्ञता है या वेद को लवेद समझता है यह तो कोई त्रिकाल में भी नही कह सकता कि ईश्वर केवल निराकार है प्रथम ईश्वर को निराकार समझना ही अज्ञता है फिर यह शका कि निराकार की मूर्त्तिकैसे बनेगी यह उससे भी अधिक अज्ञता है आज तो भारतवर्ष के आर्यसमाजी भी निराकार की प्रतिमा बनाते हैं आर्यसमाज के उत्सवों मे समाजी पीतल आदि के ओंकार वनाकर अपने मस्तक पर या छाती पर लगाते हैं यह क्या है यह भी तो निराकार शब्द ओंकारकी प्रतिमा ही है इसके अतिरिक्त क्या है वेद भी तो शब्द ब्रह्म है शब्द सर्वदा निराकार होता है फिर उस निराकार शब्द की अक्षररूपी मूर्तियां बनाकर वैदिक प्रेस अजमेर ने वेद छापे हैं यदि निराकार की मूर्त्ति नही वनती तो फिर परोपकारिणी सभासे पत्र व्यवहार करना चाहिये कि आपके यहां यह कितना अनर्थ हो रहा है जो निराकार शब्दकी मूर्तियों में वेद छपते हैं यदि कलकत्तेका आर्यसमाजी निराकार की मूर्ति नहीं मानता तो उसको उचित है कि वह लिखना पढ़ना छोड़दे पढ़ते समय जितने अक्षर पढ़ोगे वे सब निराकारकी मूर्ति हैं और लिखने में जितने अक्षर लिखे जाते हैं वे सब निराकार आवाज़की मूर्तियां हैं यदि समस्त ही आर्यसमाजी इस महात्माके सदृश हो जावें तब तो संसार का लिखना पढ़ना ही गायब होजावे अच्छा ज्ञान निकाला संसार को ही मूर्ख बनाना विचारा है इन समाजी महाशय को उचित है कि इस लेख पर विचार करें ।

कामताप्रसाद दीक्षित अमरौधा—(कानपुर)

हिन्दू—समाज का तत्त्व-संग्रह ।

जैसे देहतत्व के ऊपर सुविशाल चिकित्साशास्त्र सुप्रतिष्ठित है, वैसे ही समाजतत्त्व का आश्रय ले उस पर सब देशों की राजनीति और राष्ट्रविज्ञान सदा के लिये संस्थित है। इस मौलिक तत्त्व को समझ सकने के कारण ही आज कल यूरोप प्रभृति सुसभ्य देशों में समाजतत्त्व के अनुशीलन की ओर उन उन देशो के शिक्षित सम्प्रदायों का अतिशय आग्रह दिखाई देता है। दुःख का विषय है, कि इस देश में इस समय हम लोग पाश्चात्य राजनैतिक चर्चा मे अधिक अनुरक्त होते जाते हैं, उस पर राजनीति और राष्ट्र विज्ञान के प्रधान सामान जो सम सामयिक सामाजिक अभिज्ञान और जो प्राचीन समाज का इतिहास है, उस के विषय मे किसी ज्ञातव्य

तत्त्व के संग्रह की ओर आज तक हम लोगों का कुछ भी यत्न या उद्योग नहीं है। विराट् हिन्दू जाति को फिर से अपने पैरों पर खड़ी होती हुई देखने के लिये सबसे पहले उस के विभिन्न स्थानों की भिन्न भिन्न जाति और वर्ण-मूलक अङ्ग-प्रत्यङ्गों की भीतरी गठन प्रणाली, उस के भीतरी कामों के साधन का क्रम, उस की आकृति, प्रकृति, रीति नीतिकी पद्धति, भाव और व्यवस्था सम्पूर्ण जानने योग्य अर्थात् संक्षेपमें यों कहना चाहिये, कि उस की सामाजिक अवस्था में प्राचीन और आधुनिक तत्त्वों के संग्रह के काम में हम लोगों को इस समय बहुत ही सावधान हो प्रवृत्त होना चाहिये। इसमें सन्देह नहीं, कि यह एक बहुत श्रम और बहुतही अर्थव्यय साध्य विषयक एक विराट् काम है। बहुतेरे स्थानों के बहुतेरे लोगों की समवेत चेष्टा और आन्तरिक सहायता के अतिरिक्त इस काममें सिद्धि पाने की सम्भावना नहीं। एक केन्द्र स्थानसे इस कामके स्रोतको चारों ओर सुप्रणाली के साथ प्रवाहित न कर सकने से इस काम में सिद्धि प्राप्त होने की कोई आशा नहीं। इतने दिन से सभी लोग इस प्रकार के एक केन्द्र-कार्यालय के अभाव का अनुभूत कर रहे हैं। सुख का विषय है, कि हाल ही में भारतकी धर्म्म-राजधानी काशीधाममें "अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभा" के संस्थापित हो जानेसे यह अभाव बहुत कुछ दूर हो गया है। बल्कि इस महासभा के प्रधान मन्त्री श्रीमान् राजा शशिशेखरेश्वर शर्म्मा रायबहादुर स्वयं-ऐसे एक विराट् ग्रन्थके सम्पादन का भार अपने हाथमें लेने को राजी हुए हैं। ब्राह्मणमहासभा की व्यवस्थापक मण्डली के अन्तर्भूत कई लब्ध प्रतिष्ठित सुयोग्य ब्राह्मण पण्डितोंने इस काममें सहकारिता करना स्वीकार किया है। अभी उन के आधीन चार सहकारी नियुक्त रह संगृहीत तत्वों को सिलसिलेवार बना ऐसी व्यवस्था कर रहे हैं, जिससे क्रमशः पुस्तकका एक एक खण्ड मुद्रित और प्रकाशित किया जा सके। काशी की सुप्रसिद्ध महामण्डल शास्त्रप्रकाशक समिति लिमिटेड ने इस विराट् ग्रन्थके छापने और प्रकाशित करनेका कार्यभार भी ग्रहण किया है। भारतवर्षकी सब श्रेणी के लोगोंकी सुविधाके लिये ऐसी व्यवस्था की जा रही है, जिस से एकसाथ चार भाषाओं में यह ग्रन्थ मुद्रित और प्रकाशित किया जा सके। ब्राह्मण महासभाके मासिकपत्र 'त्रिशूल' के आकार में अर्थात् डबलक्राउन आठपेजी साइज के एक हजार फोर्म अर्थात् आठ हजार पृष्ठ में इस ग्रन्थके सम्पूर्ण होनेकी सम्भावना है यह कहना व्यर्थ है कि इस सुबृहत् ग्रन्थके सम्पूर्ण होनेसे यह केवल हिन्दूसमाजके असंख्य तत्वोंकी पेचीली मीमांसाओंका सहायक और एक विराट् कोषके रूपमें ही सदा व्यवहृत न होगा। बल्कि ऐसी आशाकी जाती है, कि इस के द्वारा वर्त्तमान हिन्दूसमाज के जाति और वर्णगत साम्प्रदायिक ऊंची नीची मर्यादाके दावाके सम्बन्ध में होने वाले भीतरी झगड़े भी बहुत कुछ दबेंगे। हमारी यही प्रार्थना है, कि इस का

गुरुत्व समझ कर हिन्दूसमाज के मङ्गलकारी मनुष्यमात्र इस काम में अपनी अपनी शक्तिके अनुसार सहायता करें। यहां यह भी निवेदन कर देना आवश्यक है, कि जो अपने सम्प्रदाय या अपने परिचित और परिज्ञात दूसरे किसी सम्प्रदाय या जाति उपजाति अथवा किसी श्रेणी या उपश्रेणी या किसी दल मेल या गण विशेषके सामाजिक तत्वोंका संग्रह कर हमारे कार्यालयमें उसे समय समय पर भेज इस विराट् पुस्तकके प्रकाशित करनेके काममें हमारी सहायता करेंगे उनका नाम हम सानन्द चित्त से 'सहायक श्रेणीमें लिखने को तय्यार हैं और इसके लिये हमनें कृतज्ञता के परिचय स्वरूप उनके पास सादर विनामूल्य एक खण्ड पुस्तक उपहारमें देना भी संकल्प' किया है। जिन्हें इस प्रकार हमारे काममें सहायता देनेको उपयोगी समय या सुविधा नहीं वहलोग और भी एक सहज साध्य उपायसे हमारे इस काममें सहायता कर सकते हैं वह यों कि-यदि उनके पास हिन्दू-समाज-सम्बन्धीय या किसी साम्प्रदायिक ऐतिहासिक विवरण सम्बन्धीय कोई छपी या वे छपी प्राचीन पुस्तक-पुस्तिका या सामयिक पत्रादि हों तो कमसे कम कुछ दिनके लिये हमारे कार्य्यालय में रख देनेकी व्यवस्था करें। और एक बहुत ही सहज से हमारे इस काममें यथेष्ट सहायता देनेके लिये प्रायः सभी लोग समर्थ हैं। वह यों कि शहर या मुफस्सिल में जिनसे पत्र व्यवहार करनेसे उन सब स्थानोंके हिन्दू समाजके सम्बन्धमें जानने योग्य तत्वोंके संग्रहकी सुविधा हो सके, उनके साथ हमारा परिचय करादेने की सुविधा कर दें। इसके अतिरिक्त जो लोग केवल राहका खर्च ले मुफस्सिलके नाना देशोंमें घूमकर जानने योग्य तत्वोंका संग्रह कर हमारे कार्यालयमें भेजनेको प्रस्तुत हों, ऐसे विश्वासी कर्म्मपटु, मनुष्य का नाम धाम लिख भेजनेसे भी हमारे कार्य्यमें यथेष्ट सहायता दी जासकेगी। इस काममें जो महानुभाव हमारे पृष्ठपोषक या सहायक होनेकी इच्छा करें, कृपापूर्व्वक वह प्रकट करें और निम्नलिखित प्रश्नावली में जहांतक सम्भव हो सके उत्तर संग्रह कर उसे अखिलभारतवर्षीय ब्राह्मण महासभाके प्रधान कार्य्यालय काशीमें शीघ्र भेज दें, इससे हम लोग बहुत ही उपकृत होंगे।

प्रश्नावली।

(१) इस प्रश्न में उत्तरदाता जिस समाज का तत्वसंग्रह लिखकर भेजें, उसका नाम पहिले लिखें। (जैसे-'राढ़ी ब्राह्मणसमाज' सारस्वत ब्राह्मणसमाज, गौड़ वैष्णव समाज इत्यादि) और कृपापूर्वक यह भी प्रकाशित करदें, कि वह स्वयं इस समाज के अन्तर्भूत मनुष्य हैं या उन्होंने दूसरे किसी व्यक्तिसे उस समाजका विवरण संग्रह कर लिखा है।

(२) इस सम्प्रदायके श्रेणीमें विवाह, जन्म या मृत्युमें शास्त्रोक्त संस्कारका काम किस समय किस भावसे और किस पद्धतिके अनुसार अवलम्बित होता है और उन

सब कामों में किस प्रकार कुलाचार या लोकाचार सब साधारणतः अनुष्ठित हुआ करतेहैं ? उन सब कामों में सामाजिक भोजन और निमन्त्रणादि किस समय किस भावसे हुआ करता है ? निमन्त्रणकर्त्ता या निमन्त्रित मनुष्योंमें आशीर्व्वाद या प्रणामी के स्वरूपमें अर्थ वस्त्र और जेवरादिके आदान प्रदानका काम साधारणतः किस भाव से हुआ करता है ?

(३) इस सम्प्रदायके उन सब कार्योंमें इकट्ठे हुए मनुष्यों में कुलगत मर्य्यादा या मानके किसी प्रकारके ऊंचे नीचे भावकी रक्षा करनेकी रीति प्रचलित है या नहीं ? और है, तो पहले कैसी थी और अब कैसी है ? आजकल पहले की प्रथामें कोई परिवर्त्तन हुआ है या नहीं ? परिवर्त्तन हुआ है, तो किस प्रकारका हुआ है ?

(४) जिस समाजका विवरण लिखा जा रहा है, उसके द्विज जातिके अन्तर्भूत होनेसे बालकोंका उपनयन संस्कार किस भावसे किस समय होता हैं ? यदि यह द्विजाति वर्णके अतिरिक्त और अन्य वर्णकी बात है तो बालकोंका मूंडन, कनछेदनादि संस्कार किस समय किस भावसे हुआ करता है ?

(५) इस सम्प्रदायमें दत्तकपुत्र लेने (लड़का गोद लेने) या उत्तराधिकार पद्धति किस शास्त्रके मूलसे (जैसे दाय भाग मिताक्षरा इत्यादि) प्रचलित है ?

(६) इस संप्रदायमें स्थान विशेषके लिये या श्रेणी अथवा उपश्रेणी विशेषके लिये समाजपति (किसी २ स्थानमें जिसे चौधरी, प्रधान इत्योदि कहते हैं) के नाम से किसीको माननेकी प्रथा प्रचलित है या नहीं ? है तो वंशानुक्रमिक अधिकारके मूलसे या सम्प्रदायके लोगोंके निर्वाचनसे ऐसा पद मिला करता है ?

(७) जिस सम्प्रदायका विवरण लिखा जाता है, उस सम्प्रदायकी सामाजिक मर्य्यादासे लोग अपनेको किस वर्णके ऊपर और किस श्रेणीके नीचे अधिष्ठित समझते हैं ? (दृष्टान्तस्थलमें जैसे बङ्गालके वैद्यगण अपनेको ब्राह्मणके नीचे और कायस्थके ऊपर समझा करते हैं) ।

(८) जिस समाजकी बातें लिखी जाती हैं, उस समाजके सम्बन्धमें कोई अपराधके लिये किसी विशेष मनुष्यके प्रति सामाजिक शासन और दण्ड देनेके प्रयोजन उपस्थित होनेसे किस प्रकार और किसके द्वारा वह दण्ड दिया जाता हैं ? और ऐसे दण्डका परिमाण और प्रणाली कैसी है ?

(९) इस सम्प्रदायके मनुष्योंके सामाजिक झगड़ेका प्रभाव और काम पहले की तुलना से अब कम है या बढ़ा है और उसके फलाफलसे वह समाज कैसे लाभवान् या क्षतिग्रस्त हो रहा है ?

(१०) जिस सम्प्रदायका विवरण ऊपर लिखा जाता है, उस सम्प्रदायका सामाजिक इतिहास या कोई छपी पुस्तक या मासिकपत्र हो, और कोई स्थायी सभा

समिति हो तो उसका नाम, और पत्र व्यवहार करनेका पता और पुस्तक पत्रिका मिलने का क्या उपाय है ?

एक साथ बहुतेरे प्रश्न उपस्थित करनेसे उत्तर दाताको उत्तर संग्रह करनेके काम में असुविधा हो सकती है। इस लिये ऊपर दश विषयों के प्रश्न किये गये है। इसमें उत्तरदाता इच्छानुसार २।१ या समस्त विषयोंका उत्तर दे सकते हैं। उत्तरदातासे भविष्यत्में और किसी विषयमें कोई प्रश्न करनेकी आवश्यकता हो तो वह प्रश्न निस्सङ्कोच भेजनेकी अनुमति पानेके लिये भी प्रार्थना है ।

विनीत—श्रीकृष्ण शर्म्मा ।

सहकारी सम्पादक, ब्राह्मण महासभा काशी।

साहित्य-चर्चा ।

श्रीरामनामामृत ! संग्रहकर्त्ता हरसुखराय छावछरिया प्रकाशक द्वारकादास केदारबक्स भगत नं० ४ चीनीपट्टी कलकत्ता, मूल्य सदुपयोग ।

इस पुस्तककी समालोचना एकवार ब्राह्मणसर्वस्व में निकल चुकी हैं इसके प्रथम संस्करण की प्रतियां हाथों हाथ रामभक्तोंमें बट चुकी यह द्वितीय संस्करण है अब की वार इसमें कई परिवर्त्तन किये गये हैं पहिले इसमें श्रीराम नाम २१६१० वार छपे थे अबकी संख्या ११६६४ रह गई है पर स्तोत्रोंकी संख्या बढ़ा दी गई है । श्रीराम-महिमास्तव श्रीरामभजनमञ्जरी और श्रीरामनाम माहात्म्य शीर्षक ३ विषय बढ़ाये गये हैं प्रथम में संस्कृतस्तोत्र द्वितीयमें हिन्दी भजन और तीसरे में नानाग्रन्थों के प्रमाण और उनके अर्थ हिन्दी में लिखे गये हैं। कई समाचारपत्रों ने इस विषय पर लिखा है कि इसमें 'श्रीराम, शब्द वार २ लिखकर क्यों कागज खराब किये गये हैं पर हमारी राय में उनके ये आक्षेप निरर्थक हैं पुस्तक लेखक ने इस का समाधान भूमिका में ही कर दिया है कि पुस्तक द्वारा जप करने तथा पाठ करने से मन एकाग्र हो सकता है नेत्र अपने सामने श्रीराम का नाम ही देखते हैं इससे मनोविकार नही उत्पन्न होता, असली बात यह है कि जिन का हृदय भगवद्भक्ति से शून्य है वे ऐसी बातोंको व्यर्थ समझते ही हैं यह पुस्तक भगवद्भक्तोंके कामकी है।

गल्प पञ्चदशी । मुरादाबादके पं० ज्वालादत्त शर्मा हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक हैं गल्प साहित्य लिखनेमें आप विशेष ख्याति प्राप्त कर चुके हैं, प्रस्तुत पुस्तक आप

की ही अनुवादित की हुई है। इसमें अर्चना, सम्पादक बा० केशवचन्द्र गुप्त एम० ए० बी० एल० की लिखी हुई पन्द्रह गल्पों का हिन्दी अनुवाद हैं अनुवाद सुन्दर और रोचक है, गल्प साहित्य रुचिकर होने से इधर सर्वसाधारण की प्रवृत्ति बढ़ रही है पुस्तक का मूल्य ॥।) और मिलने का पता मैनेजर लक्ष्मीनारायण प्रेस मुरादाबाद।

उन्नति का मूलमन्त्र। लेखक और प्रकाशक पं० रामजीलाल शर्मा हिन्दी प्रेस प्रयाग मू० ।)

पुस्तक का विषय नाम से स्पष्ट हैं इसमें एक बी० ए० विद्यार्थी का ग्राम सुधार वर्णित है। आख्यायिका कल्पित है तथापि इस में जो बातें लिखी गई हैं उन से देशभक्ति और देशोद्धार का कार्य करने वाले बहुत कुछ सीख सकते हैं इस में कोई सन्देह नहीं कि जबानी जमा खर्चसे कुछ काम नहीं हो सकता, होगा तब कार्य करने से ही। इस पुस्तक की शिक्षायें ऐसी हैं जिनसे कि नवयुवक बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं तथापि विवाहावस्थाका वर्णन करते हुये इसमें एक जगह कन्या की विवाहावस्था का समय १६ वर्ष लिख दिया है यह नैतिक सामाजिक और धार्मिक दृष्टिसे उपयुक्त नहीं।

दयानन्द प्रश्नोत्तरी। नारनौल दौचाना निवासी पं० रामनारायण शास्त्रीने इस पुस्तक की रचना की है सन् १९१४ में शास्त्रीजी की इन्दौर यात्राके समय आर्यसमाजने २५ प्रश्न लिख कर उनका उत्तर मांगा था, इस पुस्तक में उन्हीं प्रश्नोंके उत्तर हैं, उत्तर विस्तार पूर्वक युक्ति प्रमाणके साथ दिये गये हैं, आर्यसमाजी ऐसे प्रश्न किया ही करते हैं और लेखों तथा व्याख्यानोंमें सनातनधर्मियों की तरफसे ऐसे प्रश्नोंके उत्तर अनेक बार दिये जा चुके हैं फिर भी यह प्रश्नोत्तरी अच्छी है और दयानन्दियों के हलचल मचाने पर इसे भी उपस्थित किया जा सकता है, शास्त्रीजी एक वृहत्प्रश्नोत्तरी भी बना रहे हैं उसमें हिन्दूधर्म पर जितने आक्षेप होते हैं उनका समाधान रहेगा जिन आर्यसमाजियों या अन्यधर्मावलम्बियोंको हिन्दूधर्म पर शङ्कायें हों वे लिखकर शास्त्रीजी के पास भेज दें उन सबका समाधान उस पुस्तक में किया जायगा। प्रस्तुत पुस्तकके प्रारम्भमें दो पृष्ठों में मङ्गलाचरण है, रचना संस्कृत में है पर छन्द हिन्दीके दोहा सोरठा और चौबोला रक्खे गये हैं पुस्तक पर मूल्य कुछ लिखा नहीं। मिलने का पता— पं० रामनारायण शर्मा शास्त्री सहकारी सम्पादक पञ्चराज नासिक।

स्त्री जीवन। यह होलकर हिन्दी ग्रन्थमालाकी द्वितीय पुस्तक है यह ग्रन्थमाला महाराजा इन्दौरके साहाय्यसे श्रीमध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति इन्दौर द्वारा प्रकाशित होती है, इसकी पहिली पुस्तक भारत विनय को हमने तो देखा नहीं पर

समाचार पत्रोंमे पुस्तककी कविता का वृत्तान्त पढ़ा है, मिश्रबन्धुओंने पुस्तक का नाम तो भारत विनय रक्खा है पर बातें उस में एकदेशी भरदी हैं शब्दोंकी तो उसमें बहुत ही तोड़ मरोड़ कर डाली है पर प्रस्तुत पुस्तक वैसी नही, इसमें स्त्रियोंके जीवनोपयोगी अच्छी २ शिक्षायें दी गई हैं, अन्तमें बहुत से सदुपदेश भी हैं पुस्तक स्त्रियों और लड़कियों के काम की है इसमें सन्देह नही पर पुस्तक लेखक श्रीयुत सूरजमल्लजी जैन हैं इसलिये कहीं २ इसमें जैनधर्म की छाया आगयी है कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग हुआ है जिनका जैनधर्ममें प्रचार है, कन्याका विवाहकाल ग्रन्थ कर्त्ताकी राय से ऋतुधर्मके सालभर बाद ठीक है पर यह हिन्दूशास्त्रोंके विरुद्ध है और इस अवस्था में विवाह करनेसे अन्य दोषोंकी भी सम्भावना रहती है ऐसी दो चार बातें छोड कर शेष बातें इसमें अच्छी हैं मूल्य इसपर कुछ लिखा नही पुस्तक प्रकाशकसे मिलेगी।

महाभारत नाटक (पूर्वार्द्ध) प्रयागके प्रसिद्ध हिन्दीकवि पं० माधव शुक्लने इसकी रचना की है। हिन्दीमें ऐसे नाटकों का अभाव है जो सुरुचिपूर्ण, देश दशादर्शक, शिक्षाप्रद और रंगमंच पर खेले जाने योग्य हों, पारसी नाटक कम्पनियां रामायण महाभारत आदि नाम से जिन नाटकोंको खेलती हैं उनमें हमारे पूर्वजोंका चित्र बहुत कुछ विकृत कर दिया है और उनको देखनेसे घृणा उत्पन्न होती है ऐसी दशा में इस नाटक की रचना कर ग्रन्थकर्त्ता ने देशका विशेष उपकार किया है यह नाटक प्रयागके हिन्दी साहित्य सम्मेलनके अवसर पर खेला जा चुका है इसके गाने भी ओजस्वी और वीररसपूर्ण हैं पुस्तक का मूल्य ॥) और मिलने का पता पं० रामचन्द्र शुक्ल वैद्य कूंचा श्यामदास प्रयाग।

कृष्ण बीती। रचयिता ख़्वाजह हसन निज़ामी-प्रकाशक-पीरज़ादह सैयद मुहम्मदसादक कारकून हलकत उल्मा शायेख देहली मू० २)

यह डिमाई अठपेजी साइजके १४४ पृष्ठकी पुस्तक है छपाई सफाई सुन्दर है पुस्तक उर्दू भाषा में है जगह २ चित्र भी दिये गये हैं। चित्रों की रक्षा के लिये टीसू पेपर भी लगाया गया है, पुस्तक में श्रीकृष्ण जी का चरित्र वर्णित है। लेखक ने श्रीकृष्ण भगवान् की मनुष्यातिग शक्तियों का और उनके जीवमात्र पर प्रेमका अच्छा विवेचन किया है। लेखक मुसलमान होनेपर भी श्रीकृष्णजी के सम्बन्धकी कथाओं का अच्छा ज्ञान रखते हैं। आज कल जो आक्षेप श्रीकृष्ण जी पर किये जाते हैं इसमें उन का अच्छा समाधान किया है। मुसलमान भाइयों को श्रीकृष्णजी की ओर प्रीति दिलाने के उद्देश्य से तथा हिन्दू और मुसलमानों मे प्रेमभाव की वृद्धि कराने के उद्देश्य से यह पुस्तक लिखी गई है। उर्दू भाषा के जानकारों को पुस्तक मंगाकर देखनी चाहिये पता उपर्युक्त।

रक्त । ले० राधावल्लभ वैद्यराज प्रकाशक बांकेलाल गुप्त मैनेजर श्रीधन्वन्तरि कार्यालय विजयगढ़ जिला अलीगढ़ मू० ≶)

इस छोटी सी पुस्तक में रक्त की उपयोगिता, रक्त की बनावट आदि विषयों पर वैद्यक के सिद्धान्तानुसार विवेचन किया गया है, समझाने की शैली नये ढंग की है पुस्तक का मूल्य ≶) अधिक है। टाटिल सुन्दर दुरंगे कागज पर दो रंग की स्याहियों से छपा है भीतर की छपाई साधारण है।

त्रिवेणी। आरे के कुंवर देवेन्द्रप्रसाद ने इसमें तीन २ चीज़ोंके जोड़ मिलाये हैं लोक परलोक सभी जगह से आप अपने मतलब की बात खींच लाये हैं भाषा इसकी आलङ्कारिक है उसके पढ़ने से एक तरह का आनन्द प्राप्त होता है फिर भी इस के अन्दर जो कई तिगड्डे मिलाये हैं उनमें कुछ शिथिल हैं। उदाहरणार्थ भारत के तीन भयङ्कर स्वामियों में रामतीर्थ, विवेकानन्द और दयानन्द की गणना की है, स्वामी दयानन्द ने अन्य मतों को अपेक्षाकृत कठोर शब्द कहे हैं इस लिये यदि उन्हें भयङ्कर कहा जाय तो कोई अनुचित नहीं पर स्वामी विवेकानन्द और स्वा० रामतीर्थ में क्या भयंकरता थी ? इन्होंने तो प्रेम मार्ग का उपदेश किया है भारत के तीन प्रधान धर्मों में, हिन्दू मुसलमान और ईसाई धर्मों की गणना करनी थी क्योंकि बौद्धमतावलम्बी तो नाम शेष है। पञ्चकन्याओं में कुन्ती, तारा, मन्दोदरी की गणना की है। पर इनको कहीं पञ्चकन्या नहीं माना है। यह पञ्चकन्या शब्द आ० समाजियों ने अपने मतलब के लिये गढ़ लिया है तीन अछूत जातियों में धीवर को भी गिना दिया है। धीवर शब्द कहार का वाची है कहार के हाथ का पानी सभी पीते हैं। मीठे फलों में तीन, आम, केला, केवला गिनाये हैं। केवला किसे कहते हैं यह पता नहीं। और भी कई बातें आक्षेपार्ह हैं यदि उचित समझें तो आगामी संस्करण में कुंवर साहब इनका सुधार करदें। पुस्तक की छपाई सुन्दर है। त्रिवेणी तीन दिन में तैयार हुई तीन दिन में छपी और ≶) ही इसका मूल्य है। मिलनेका पता-कुमार देवेन्द्रप्रसाद प्रेम मन्दिर आरा।

बाल वीरता। ले० और प्रकाशक पं० वासुदेव शर्मा उपाध्याय ब्राह्मी बिनोद पुस्तकालय मंडावर जिला बिजनौर मू० ≶)

इस पुस्तक में भाई तारूसिंह, शहबाजसिंह, और हकीकतराय का धर्मबलिदान वर्णित है पुस्तक छन्दों में है पृष्ठ संख्या ४५ और आकार छोटा है, छन्द विषय के समान ओजस्वी हैं कहीं २ तुक मिलाने में छन्दोभङ्ग भी हो गया है।

वीर बालक। इसके लेखक और प्रकाशक पूर्वोक्त उपाध्याय महाशय ही हैं आकार इस का भी छोटा और पृष्ठ संख्या ३० है मूल्य ≠) अधिक है इस छोटी सी पुस्तक में देशभक्त गुरु गोविन्दसिंह जी के उन चार पुत्रों की कथा है जिन्होंने मुस-

लमानों द्वारा अनेक दुःख दिये जाने पर भी धर्म की रक्षा की थी, छः और आठ वर्ष के दो बालकों का धर्म प्रेम इसमें हृदयद्रावक कविता में वर्णित है ।

तत्वनिष्पादक शास्त्रार्थ—इसमे सनातनधर्मके विद्वान् गो० यदुकुलभूषण तथा आर्यसमाज के स्नातक ब्रह्मदत्त का जो सरांयसिद्धू मे श्राद्ध विषय पर शास्त्रार्थ हुआ है वह पूर्णरूप से दिया गया है । समाजी पण्डित का यहां तक पराजय हुआ कि वह शास्त्रार्थ से भाग निकला बार २ निग्रहस्थान में आने पर भी उसने हठ न छोड़ा और कुछ न कुछ कहता रहा उसकी यह हठवादिता विशेषतया प्रशंसनीय है पुस्तक का मूल्य ≠) है मिलनेकापता—श्री पं०गंगाधरशर्मा श्रीगोविन्द मन्दिर मुलतान पञ्जाब

नीचे जिन पुस्तकों के नाम दिये गये हैं वे भी मिलगई हैं भेजने वाले महाशयों को धन्यवाद ।

(१) गोहोयी वैश्य कुरीति निवारक—ले० पन्नालाल पहारिया ग्राम महेशपुरा पो० कैलिया जिला उरई ।

(२) सभापति की वक्तृता—ले० श्रीमान् राजा चन्द्रचूडसिंह जी तालुकेदार चन्दापुर अवध ।

(३) अभ्यागमन—ले० और प्रकाशक राजकुमार रणञ्जयसिंह वर्मा अमेठी राज्य प्रान्त सुलतानपुर (अवध)

(४) दयानन्द मतादर्श—ले० धर्मभूषण रामगोपाल मिश्र श्रीकामेश्वर पाठशाला हाथरस ।

(५) नियमावली व रिपोर्ट—ले० मन्त्री श्री कर्मकाण्ड वेद विद्यालय ज्वाला-पुर (हरद्वार)

(६) कृष्णोदय—ले० पं० गोपालप्रसाद उपाध्याय सिरसागंज जि० मैनपुरी ।

(७) द्रोणसेवा समिति–देहरादून के नियम—प्रातिस्थान वेढव शर्मा प्रबन्धकर्त्ता द्रोणसेवा समित्ति देहरादून ।



श्री पं० कालूराम पर आक्रमण ।

आगरे का आर्यमित्र कुछ दिनों से अपने प्रत्येक अङ्क में आर्यसमाजियों को इस के लिये भड़का रहा है कि वे लोग प्रस्ताव पास करें कि पं० कालूराम जी ने जो प्रथम सत्यार्थप्रकाश छपा दिया है उसके लिये परोपकारिणी सभा द्वारा उन पर मुकदमा चलाया जावे, जो आर्यसमाज शान्ति का दम भरता है उसकी यह दशा देखकर बड़ा दुःख होता है, एक तरफ आर्यसमाज का पुराना पत्र वेदप्रकाश पहिले सत्यार्थ

प्रकाश के प्रकाशित होने पर प्रसन्न है तो दूसरी तरफ आर्यमित्र दुःख के आंसू वहा रहा है, असली बात तो यह है कि प्रथम सत्यार्थप्रकाश ही स्वा० दयानन्दका बनाया है और दूसरा सत्यार्थप्रकाश स्वा० दयानन्दके मरनेके बाद प्रकाशित हुआ है इसलिये वह प्रामाणिक नहीं और पहिले सत्यार्थप्रकाश में मांसादि अनेक विषय भरे पड़े हैं वल्कि उसमें स्वा० द० ने वन्ध्या गौ तक का हवनमें चढ़ा देना लिखा है इन्हीं वातों को देखकर आर्यमित्र घवड़ा गया है, आर्यमित्र के हिसाब से १६१८ में प्रथम सत्यार्थप्रकाश से प्रकाशक का स्वत्व जाता रहेगा तव उसे फिर चाहे कोई छपा सकेगा, ऐसी दशा में इस मुकद्दमे वाजीसे क्या लाभ होगा सो आर्यमित्र ही जाने; जो हो सनातनधर्मियों को इस मुकद्दमे के लिये धन संग्रह करना चाहिये क्योंकि यह मुकाविला सनातन धर्म और आर्यसमाज का है। प्रत्येक सनातनधर्म सभाओं को इसके लिये चन्दा करना प्रारम्भ करदेना चाहिये।

वेदप्रकाश की उदार नीति।

हालके वेदप्रकाश में उस के सम्पादक ने यह लिखा है कि पं० ब्रह्मदेव जी हमपर अनुचित शब्दों का प्रयोग करते हैं। सहयोगी को ध्यान रखना चाहिये कि ब्राह्मणसर्वस्व में व्यर्थ अनुचित शब्द नहीं लिखे जाते, जब उसने भीम प्रश्नोत्तरी जैसा उद्दण्ड नाम रक्खा तव उसका उत्तर तुलसी भ्रमभञ्जन और छुट्टनमानमर्दन शीर्षक रख कर दिया गया, भीम प्रश्नोत्तरी के भीतर भी जगह २ जैसे अनुचित शब्दोंका प्रयोग किया गया है उसे कोई पढ़ा लिखा मनुष्य नहीं लिख सकता इसके पहिले भी वेदप्रकाश में कई वार बुरे २ हेडिंग रखकर असभ्य शब्द लिखे गये पर जब ब्रा० स० में भी 'शठे शाठ्य' समाचरेत्, नीति का अनुकरण किया तो सहयोगी आपे से वाहर हो उठा यह कहां का न्याय है सहयोगी को जरा अपनी तरफ देखना चाहिये।

ऋषिकुल और पं० गिरिधर शर्मा जी।

हमने कई समाचारपत्रों में यह वात बड़े दुःख के साथ पढ़ी कि ऋषिकुल के प्रधानाध्यापक पं० गिरिधर शर्मा जी ने ऋषिकुल से त्यागपत्र दे दिया है जिसे ऋषिकुल की कार्यकारिणी समिति ने विना आना कानी के स्वीकार कर लिया, यदि यह बात सच है तो वात बहुत दुःख की है क्योंकि पं० गिरिधर शर्मा जी जैसे अध्यापक ऋषिकुल वालों को मिलना कठिन है लेखक शास्त्रार्थ कर्त्ता और विद्वत्ता आदि अनेक गुणों का एकत्र समावेश पं० गिरिधर शर्मा में देखा जाता था, गुरुकुल में जाकर सनातनधर्म का डङ्का पं० गिरिधर शर्मा ने ही बजाया था ऐसे अद्वितीय कार्यकर्त्ता पं० के निकल जाने से ऋषिकुल को भारी हानि पहुंचेगी, पं० गिरिधर शर्मा के समय में ऋषिकुलने बड़ी उन्नति की थी ऋषिकुलके कार्यकर्त्ताओं को चाहिये कि जिस तरह होसके पं० गिरिधर शर्मा को ऋषिकुल ही में रक्खें।

दादाभाई नौरोजी का स्वर्गवास ।

बड़े दुःख की बात है कि गत ३० जून को भारत के राजनीतिक ऋषि दादाभाई नवरोजी का स्वर्गवास होगया, भारतके राजनीतिक क्षेत्रमें दादाभाईने भीष्मपितामह की तरह कार्य किया था मृत्युके समय उनकी अवस्था ९२ वर्षकी थी इधर वृद्धावस्था के कारण उनने कुछ दिनोंसे विश्राम लेरक्खा था फिर भी समय २ पर वे उपदेश देते रहते थे उनकी अर्थी के साथ ७५ हजार आदमियों की भीड़ होगई थी।

भारतीय गौकानफरेन्स ।

का प्रथमाधिवेशन आगामी कुंभके अवसर पर श्री प्रयागराज में महाराजा रीवां की अध्यक्षता में बड़े समारोहके साथ होना निश्चित हुआ है। कानफरेन्सकी प्रथम बैठक कलकत्तामें शीघ्र ही होने वाली है। जिसमें पदाधिकारियों का निर्वाचन तथा गौकानफरेन्स सचालिनी समिति का सगठन होगा, प्रयागमें स्वागत कारिणी समिति भी शीघ्र संगठित होने वाली है। महाराजा रीवांकी सेवामें डेपुटेशन भेजनेकी भी व्यवस्था की जाचुकी है। डेपुटेशन में समिलित होने वाले सज्जनों की नामावली शीघ्र ही प्रकाशित होगी गौकानफरेन्सकी नियमावली तैय्यार की जारही है जो प्रत्येक गौशाला तथा गौभक्त को सूचना मिलने पर विना डाकव्यय लिये मुफ्त भेजी जायगी।

निवेदक—शोभाराम धेनुसेवक सहकारी मन्त्री

बद्रीनाथजी में व्याख्यान ।

अपनी पूज्य माताके साथ उत्तराखण्डकी तीर्थ यात्रा करते हुए महोपदेशक पं० नन्दकिशोर शुक्ल वाणीभूषणजी यहां आए थे। गंगादशहराके दिन श्रीमान् मजिस्ट्रेट साहबके प्रबन्ध से सभा हुई। बद्रीनारायण धामके महन्त रावलजी महाराज सभापति हुए। सभामें वाणीभूषणजीने दो घण्टे तक एक बड़ाही प्रभावशाली रोचक व्याख्यान दिया। सनातनधर्मके तीर्थ माहात्म्यको सिद्धकर आपने पड़ा पुरोहित पुजारियोंमें विद्याप्रचारकी बहुत आवश्यकता बताई। देवप्रयागके ब्रह्मचर्याश्रम की उन्नति पर जोर दिया और यात्रियोंको कष्ट न देनेके लिये समझाया। व्याख्यान का बड़ा प्रभाव पड़ा है। लोगोंकी आंखें खुल गईं और अच्छी जागृति हुई। सभा में वाणीभूषणजी को पुष्पहार पहना कर खूब धन्यवाद दिया गया। चेतराम शर्मा,

सूचना ।

इस वर्ष मरुदेशीय विद्वत्समितिकी पुरोहित, उपाध्याय, कर्मठाचार्य, परीक्षायें आश्विन शुक्ला ६।८।९। तदनुसार ता० २२।२३।२४। अक्टूबर को चूरू में होवेंगी। अतः परीक्षार्थियोंको चाहिये निम्न लिखित स्थानसे प्रवेशपत्र-(फार्म) मंगा लेवें। जिस अध्यापक के छात्र अधिक उत्तीर्ण होवेंगे उन को सम्मान युक्त रजत पदक दिया जावेगा।

मन्त्री विद्याधर शर्मा गौड मरुदेशीय विद्वत्समिति कार्यालय चूरू

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

✻ ✻ ब्रह्मप्रेस इटावा की नवीन पुस्तकें ✻ ✻

* क्षयादर्श *

इस समय भारतवर्ष में क्षयरोगकी बहुत वृद्धि हो रही है हिन्दी भाषामें यद्यपि इस विषयकी दो एक पुस्तकें छपी हैं परन्तु उनमें पाश्चात्य विचारों को लेकर ही इस विषय का विवेचन किया गया है प्रस्तुत पुस्तक में प्राचीन और नवीन दोनोंके अनुसार इस विषय का विवेचन किया है और यत्र तत्र डाक्टरी सिद्धान्तों का खण्डन भी किया गया है। इस पुस्तक मे क्षयरोगके कारण स्वरूप भेद कीट-विज्ञान दोष विज्ञान आदि सभी उपयोगी विषयोंका समावेश किया गया है वैद्य और सर्वसाधारण दोनों ही इसे पढ़कर लाभ उठा सकते है मू० ॥≈) मात्र।

* अथर्ववेदालोचन *

आर्यसमाज के प्रसिद्ध महारथी पं० अखिलानन्द जी ने इस पुस्तक की रचना की है इसमे सनातनधर्म के बहुत से सिद्धान्तोंको वेदानुकूल प्रतिपादित कियागया है और बाबू पार्टी के आर्यसमाजियों का खण्डन किया गया है इस पुस्तक में यह भी माना है कि स्वामी दयानन्द जी ने कितनी ही जगह अशुद्धियाकी हैं सत्यार्थ प्रकाश के विषयमें लिखा है कि वह कोई स्वतः प्रमाण ग्रन्थ नहीं है संस्कार विधि आधेसे अधिक पौराणिक सिद्धान्तो को लेकर चलती है पुस्तक के अन्तमें अथर्ववेद के बहुत से मन्त्र दिये गये हैं जिन मे ग्रहशान्ति भूत और पितरों का अस्तित्व फलित ज्योतिष आदि शकुन स्वप्नदर्शन आदि नाना सिद्धान्तों को वेदके मन्त्रोंसे सिद्ध किया है फिर भी कुछ बातें इस मे ऐसी भी हैं जो सनातनधर्म के अनुकूल नही तथापि एक आर्यसामाजिक पण्डित के विचारोंको जाननेके लिये इस पुस्तक को प्रत्येक सनातनधर्मी को देखना चाहिये मूल्य ॥) मात्र।

* दिशाभूल *

यह एक बड़ा अच्छा उपन्यास है इस में स्त्री शिक्षाके विषयमें जो भूल कीजाती है उसका बहुत अच्छा वर्णन किया गया है वर्तमान स्त्री शिक्षा पद्धतिमें बड़ीभारी न्यूनता यह है कि उसमे धर्म शिक्षा की योजना नही है और वह पाश्चात्य शिक्षण पद्धतिके तत्वों पर निश्चित की गई है इन बातों का इस पुस्तक में बहुत अच्छा वर्णन किया गया है पुस्तक के प्रत्येक प्रकरणके अन्तमें एक २ संस्कृत श्लोक उस प्रकरण का भाव बोधक रक्खा गया है मूल पुस्तक मराठीमें है जिसे मराठीभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत भास्कर विष्णु फड़के बी० ए०ने लिखा है उसीका यह हिन्दी अनुवाद पं० बाबूलाल मयाशंकर दुबे ने किया है। पुस्तक को एक बार हाथ में लेकर बिना समाप्त किये नहीं छोड़सकोगे पुस्तक के बीच २ में उपन्यासस्थ पात्रोंके चित्र भी दिये गये हैं इतने पर भी मूल्य केवल ।≈) है।

पुस्तकें मिलने का पता—**मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा।**

नवीन छपी पुस्तकें ।

पूजाफूल ।

यह पुस्तक अभी हाल ही में छपी है इसमें पंडित मुरलीधर पाण्डेय और पंडित मुकुन्दधर पाण्डेय की लिखी हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी ७४ कविताओं का संग्रह हैं कविता प्रेमियों—विशेष करके खड़ी बोली की हिन्दी कविता के रसिकोंको—यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये इस के देखनेसे मालूम पड़ेगा कि उत्तम कविता किसे कहते हैं । हिन्दी कविताओंका ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा । मूल्य ॥)

अपूर्व नौका ।

पीलीभीतके ला० राधेलाल अग्रवालने इसे लिखा है इस छोटीसी पुस्तक में सात कहानियां छापी गई हैं कहानियां रोचक तो हैं ही पर साथ ही उनसे बहुत सा ज्ञान सम्बन्धी उपदेश भी मिलता है कोई कोई तो कहानियां ऐसी हैं कि पढ़ते समय हंसी आये विना नहीं रहती । मू० ≈)

हिन्दु शब्द मीमांसा ।

अमरौधाके पं० कालूरामजी शास्त्रीने इस पुस्तकको लिखा है इसमें अनेक प्रमाणोंसे यह सिद्ध किया गया है कि हिन्दु नाम हमारा मुसलमानोंने नहीं रक्खा, यह शब्द मुसलमानी मतसे पहिले का है बड़ी अच्छी पुस्तक है मू०)॥

पाराशरस्मृति ।

अष्टादशस्मृतियों में पाराशरस्मृति भी है इसको हमने पृथक् छपवाया है महर्षि पाराशर के कहे धर्म कलियुग में विशेष मान्य हैं । यद्यपि सब युगोंमें सब स्मृतियों के जानने पढ़ने और तदनुसार आचरण करके अपने सुधार करनेकी आवश्यकता है पर जिन लोगोंको विस्तृत धर्म शास्त्र देखने का अवकाश नहीं है उनको कमसे कम यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये ऊपर मूल श्लोक तथा नीचे भाषाटीका है । यह पुस्तक आराकी सनातनधर्म परीक्षा के कोर्स में नियत है । मूल्य ॥) है ।

विधवाधर्ममीमांसा ।

इस पुस्तक में विधवाओं को किन २ नियमों का पालन करना चाहिये कैसे वे सदाचारिणी रह सकती हैं इस का पूरा व्याख्यान है सम्पादक ब्रा० स० ने इसे लिखा है । मू०)॥।

दामिनी ।

यह बड़ा अच्छा एक छोटासा उपन्यास है । इसकी हृदय द्रावक घटनायें थोड़ी देर के लिये आप के चित्त को डांवाडोल करदेंगी खाना पीना भूल जायंगे एक प्रति मंगाकर देखिये मू० ≠)

पुस्तकें मिलनेका पता—

मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा ।

* * ब्रह्मप्रेस इटावा की नवीन पुस्तकें। * *

आर्ष-कृषि-विज्ञान।

भारतवर्ष का दारमदार खेती पर निर्भर है थोड़े से लोग भले ही नौकरी शिल्प आदि से जीविका करलें पर जब तक खेतीकी उन्नति न होगी जबतक ऋषि प्रणीत उपायोंसे काम न चलाया जायगा तब तक हजार हजार खेतीकी कलों और पाश्चात्य वैज्ञानिक उपायोंसे खेतीकी उन्नति नहीं हो सकती यूरोप और अमेरिका के लिये भले ही वे उपाय या योग अच्छे हों पर भारतवर्षकी कृषि और कृषकोंका सुधार ऋषिप्रणीत उपायों से ही होगा, इस पुस्तक में महर्षि पराशर, गर्ग और वराह आदि के मतानुसार कृषिविद्या के पुरातन सिद्धान्त तथा कुछ नवीन उपयोगी बातें भी लिखी गई हैं खेतीके सम्बन्ध मे ऐसी कोई बात नहीं जो इसमें न मिले। हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक ठा० पूर्ण सिंह वर्माने इस पुस्तकको लिखा है। मू० ।)

शरणवत्सल हम्मीर।

राजपूतानेके क्षत्रियवीरोंके इतिहास में हम्मीरसिंह का नाम प्रसिद्ध है "त्रिया तेल हम्मीर हठ चढ़े न दूजी बार" यह दोहार्द्ध बहुतों ने सुना होगा, पर हम्मीर की अद्भुत वीरता का वृत्तान्त अभी तक पूर्णरूप से कहीं नहीं छपा, इस उपन्यास में हम्मीरकी अद्भुत वीरता, क्षत्रियोंके अद्भुत पराक्रम एक यवन वीर का अद्भुत स्वार्थत्याग इत्यादि बातें ऐसे दिलचस्प ढंगसे लिखी गयी हैं कि पढ़ते २ कभी आपकी आंखोंसे आंसू गिरने लगेंगे, कभी आपके हृदयमें क्रोधका आवेश होगा, यदि दो आने पैसे का मोह नहीं है तो दो घड़ी दिल बहलानेके लिये इस नवीन उपन्यास की कम से कम १ कापी हमारे कहने से मंगाइये मू० ≠)

षोडशसंस्कार विधि।

हिन्दी भाषामें अब तक संस्कारों के विषय में साङ्गोपाङ्ग पुस्तक कोई नहीं छपी द्विजातियों के लिये संस्कार बड़ी ही उपयोगी वस्तु है और वर्त्तमानमें संस्कारों की दशा प्रत्येक हिन्दू गृहस्थके यहां बड़ी शोचनीय हो रही है शायद ही किसी भाग्यवान्के यहां सोलह संस्कार होते हों नहीं तो ४।६ मुख्य २ संस्कारों का कर लेनाही कर्त्तव्य समझा जाता है इसमें एक कारण यह भी है कि संस्कारोंकी अबतक पूर्ण कोई पुस्तकनहीं छपी संस्कारभास्कर आदि जो पुस्तक बम्बई आदि छपी हैं वे संस्कृतमें होनेसे सर्वसाधारणके उपयोगी नहीं, ऐसी कठिनताओं को देख कर पं० भीमसेन जी शर्मा ने इस पुस्तककी रचना की है ऊपर मूल संस्कृत और नीचे भाषा में उनके करने की पूर्ण विधि लिखी गई है जिसके सहारे थोड़े पढ़े लिखे भी संस्कार करा सकते हैं बड़ी उपयोगी पुस्तक है मू० २) है पर सर्वसाधारणके सुभीते के लिये कीमत घटाकर१॥)ही कर दी है। हिन्दीके सभी प्रसिद्ध पत्रोंने इस की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

पुस्तकें मिलनेका पता—मैनेजर—ब्रह्मप्रेस इटावा।

नकली दवाएं और बर्म्मन नाम की नकल से बचो।

गर्मी (आतशक)

अपना इलाज आप करलो। घाव होकर पट्ठियां सूज आती हैं और कुछ दिनों में सारे शरीर में चट्टे घाव फुन्सियां गुमौडी आदिक खून बिगडने से होती हैं। खेद है कि लोगोंको कुछ भी ख्याल नहीं है इसी से इसमें जैसा इलाज होना चाहिये, नहीं होना घाव के होते ही लोग लाज से छिपाते हैं और दवा करते भी हैं तो ऐसे वैसेकी जिस में पारा मिला रहता है इस लिये रोग होते ही इलाज करो जल्द आराम होगा मोल १॥) डेढ़ रुपया डा० म० ।=) पांच आने।

कान बहने को दवा।

कान बहना यानी कान पक कर कानके भीतर से पीब बहना नया अथवा पुराने के लिये यह दवा विशेष उपकारी है। इस चिकित्सा में कान को भीतर से धोकर उस में दवा डालनी पडती है; इस लिये पिचकारी की भी दरकार रहती है।

मोल ।) आने शी० पिचकारी कांच की ।) पे० व डा० म० ।=) २ शी० तक ।≠)

दाद की मलहम।

दवाएं तीर माफिक गुण करती हैं। खुजलाने से आराम करना अच्छा है एकवार के लगाने से खुजली मिटती है। दो तीन बार के लगाने से दाद जड़ से छुट जाती है जब सब दवाइयां लगाकर थक गये हो तो इसका व्यवहार करो। यह मलहम लगती नही है। खुशबूदार है। इसमें चर्बी नहीं है यह सुन्दर सुनहली डिबिया में रहती है। मूल्य ।) आने डिबिया डा० म० १ से ६ डिबिया तक ।=) १२ डिबिया ।≠) छः आने।

घाव का मलहम।

यह मलहम सब तरह के घाव में फायदा करता है। घाव के कोड़े इस से मर जाते हैं, बदबू मिटती है घाव साफ होकर जल्द अकुर भरता है और नया चमड़ा पैदा होकर घाव आराम हो जाता है। सामान्य से लेकर सड़े गले घाव तक में यह समान गुण दिखलाती है। मोल १ औंस डिबिया ।=) आने। घाव धोने की दो टिकिया ≠) आने डा० म० व पे० १ से २ डिबिया तक ।≠) छः आने।

P. O. REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांखपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।

भाग १४ | कर्क श्रावण सो० वि० १९७४ जुलाई १९१७ | अङ्क ७

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)

[प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≤) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हे पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≤) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

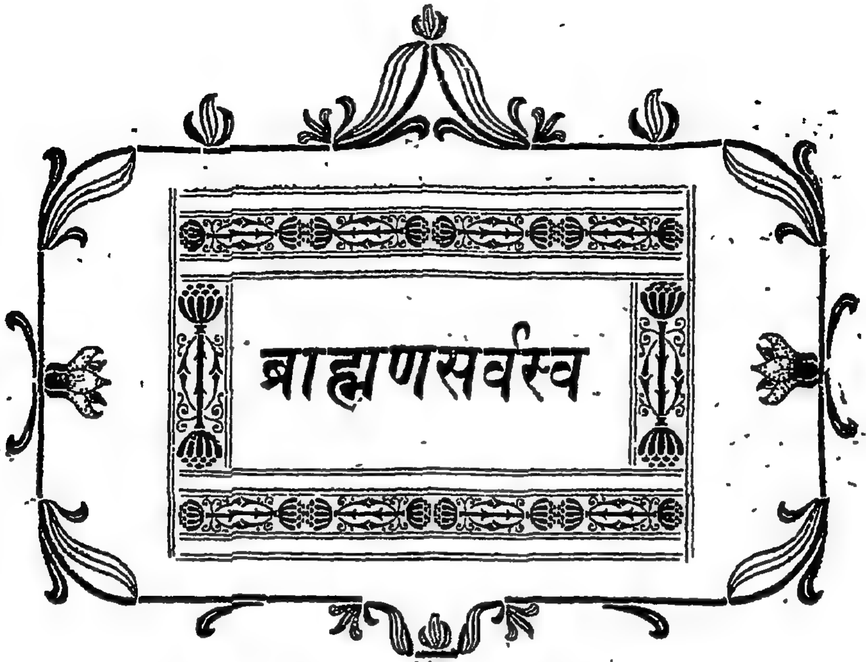
(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रबन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नहीं बांटे जांयगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	कर्क श्रावण सौर वि० १९७४ जुलाई १९१७	अङ्क ७

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

ओ३म्—उद्वयं तमसस्परि—स्वःपश्यन्तउत्तरम् । देवंदेवत्रासूर्य—मगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥ यजु० अ० २० मं० २१ ।

अन्वयः—तमसोऽन्धकारात्परि पृथग्वर्त्तमानमुत्तर-मूर्ध्वप्रदेशगतं स्वः स्वर्गलोकं ज्ञानचक्षुषा पश्यन्तो वयं देवत्रा देवेषु विद्यमानमुत्तमं ज्योतिःस्वरूपं देवं सूर्यमुद्-गन्म–उत्कर्षपूर्वकमाप्नुयाम ॥

भावार्थः–(तमसस्परि) अन्धकार से पृथक् वर्त्तमान (उत्तरं स्वः पश्यन्तो व-यम्) ऊपरी प्रदेशस्थ स्वर्गलोकको ज्ञानचक्षुसे देखते हुए हम लोग (देवत्रोत्तमं ज्योतिः) देवों मे विद्यमान उत्तम ज्योतिःस्वरूप (देवं सूर्यमुद्गन्म) सूर्य देवता को उत्कृष्टता के साथ प्राप्त हों अर्थात् सन्ध्योपासनादि के समय सूर्य नाम रूपात्मक देव की श्रद्धा भक्ति से स्तुति प्रार्थना उपासना करने वाले वेदानुयायी आस्तिक लोग मरणानन्तर आदित्य लोक में दिव्य विग्रह धारण द्वारा स्वर्गीय सुख को दीर्घकाल तक भोगा करते हैं ॥

हिन्दुधर्मका महत्त्व वा सर्वदेशित्व

हिन्दुधर्म के वेदादि शास्त्रों का मर्म न जानने वाले खिष्टीयादि मतावलम्बी तथा उन के अनुगामी कोई २ हिन्दु लोग भी कहते मानते हैं कि ईसाई मुसलमानादि के मतोंके तुल्य हिन्दुमत भी एकदेशी वा अल्पव्यापक है। सो इतना ही नहीं किन्तु कुछ मूर्ख लोग ईसाई आदि के मतों से भी निकृष्ट हीन हिन्दुमत को कहते मानते हैं। इस अज्ञान की निवृत्ति कभी अवश्य होगी। जबतक उक्त अज्ञान की निवृत्ति न हो तब तक सनातन हिन्दुधर्मानुयायी आस्तिक लोगों के लिये संक्षेप से निम्नलिखित कुछ समाधान दिखाते हैं, इसी समाधान के अभिप्रायानुसार प्रतिपक्षियों को उत्तर देना चाहिये ॥

(१) दो वा कई विरुद्ध मतों मे जिस की प्राचीनता को प्रतिपक्षी भी स्वीकार करें उस का उत्तम होना सर्वानुमत सिद्ध हो जाता है। यह बात शिक्षित समुदायमें अत्यन्त प्रसिद्ध है कि यूरोपदेश वासी पण्डितों [अंग्रेजों] ने भी ईसाई आदि मतों का जन्म होने से बहुत पहिले हिन्दुधर्म के प्रतिपादक वेदादि शास्त्रों का प्रादुर्भाव होना माना है। इस से सिद्ध हुआ कि वेदादि शास्त्रों से बहुत पीछे प्रकट हुए ईसाई आदि धर्म किन्हीं अंशों में हिन्दुधर्म का अनुकरण करते हुए प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण प्राचीनता के साथ २ हिन्दुधर्म का महत्त्व सिद्ध हो जाता है। वेदों की प्राचीनता लिखने वाले साहबोंने सबसे अधिक प्राचीन ऋग्वेदको लिखा है, जिसके सहस्रों वर्ष

पश्चात् ईसाई मत चला, हमारे मन्तव्यसे अर्बों वर्ष पहिले सृष्टि के आरम्भ में वेदोंका प्रादुर्भाव होना सिद्ध है। हम लोग सृष्टि के आरम्भ में वेदों के पश्चात् मनुस्मृतिमें कहे स्वायम्भुव मनुजी के उपदेश का होना मानते हैं, परन्तु मनुस्मृतिकी आंग्लभाषा में टीका करने वाले व्यूलर साहब ने लिखा है कि ईसामसीह के जन्मसे छःसौ वर्ष पहिले मानवधर्मशास्त्र प्रकट हुआ है। यदि इस को प्रमाण मानलें तो भी ईसाई मत से पहिले हिन्दुमत के प्रतिपादक मानवधर्मशास्त्र की सृष्टि हो चुकना सिद्ध है। उन्हीं व्यूलर साहब ने वसिष्ठ गोतमादि की सूत्रात्मक स्मृतियों की रचना मनुसे भी पहिले हुई लिखी है, इन सब कारणों से सिद्ध है कि अर्वाचीन ईसाई आदि मतों से हिन्दुमत की सत्ता अतिप्राचीन है। इस से हिन्दुधर्म का बहुव्यापक सर्वदेशी होना सिद्ध है॥

ईसाइयों के बाइबल पुस्तक में लिखा है कि "ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था", यह कथन मनु के इस विचार की नकल है कि-

अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम्॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः॥

जल में हुए अण्डाकार से ब्रह्मा विधाता के प्रकट होने को ही ईसाइयों ने प्रकारान्तर से अपने मत में लिख लिया है अथवा क्षीरसागरशायी भगवान् का वर्णन हिन्दुधर्म में प्रसिद्ध है जिस को मनु जी ने यों लिखा है कि-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥

नर नामक पुरुष ईश्वर ने सर्गारम्भ में प्रथम जल को उत्पन्न किया इसी कारण जल का नाम नार हुआ वह नार नामक जल ही पहिले ईश्वर का निवास स्थान होने से परमेश्वर का नाम नारायण हुआ है अर्थात् वह ईश्वर प्रथम जल परथा-इसी अभिप्राय का अनुकरण ईसाइयों ने किया है। द्वितीय शतपथ ब्राह्मण में लिखी मत्स्यावतार की कथा का अनुकरण ईसाइयों ने नूह की नौका के व्याख्यान द्वारा किया है। इत्यादि अनुकरणों से ईसाई आदि मतों का अर्वाचीन एकदेशी होना और हिन्दुधर्म का सर्व देशी अति-प्राचीन होना सिद्ध है॥

(२) जर्मन अमरीकादि के निवासी अनेक ईसाई मतावलम्बी साहबों ने हिन्दु धर्म के शिरोमणि वेदान्त शास्त्र को जैसा सब से अधिक अत्यन्त कल्याणकारी माना है वैसा अच्छा ईसाई आदि के धर्म पुस्तक को किसी हिन्दु ने अद्यावधि नहीं माना

चाहें यों कहो कि हिन्दु धर्म में जैसे वेदान्तादि सर्व देशी सर्व मान्द सर्व हितकारी विचार के पुस्तक है वैसे ईसाई आदि मतों में न कभी थे न अब हैं इसी कारण किसी हिन्दु ने अब तक उनके किसी पुस्तक को सर्वदेशी सर्वहितैषी नहीं माना और न कोई मानेगा। यदि कोई कहै कि कला कौशलादि विषय में ईसाइयों ने जो सर्वहित साधक अनेक पुस्तकों का आविष्कार किया है वह सर्वमान्य है तब इस का सक्षेप से उत्तर यही है कि ये सब आविष्कार संसार का धन बटोरने के लिये ऐहिक हैं इन से मनुष्य को सच्चा सुख नहीं मिल सकता। सच्चा सुख आत्मज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है वह विद्या ईसाई आदि मतों में नहीं है।

(३) एनीबिसेण्ट नामक ईसाई मत की एक स्त्री ने भी हिन्दुधर्म के प्रतिपादक श्रीभगवद्गीतादि पुस्तको का महत्त्व प्रतिपादन करने द्वारा हिन्दुधर्म की उदारता स्पष्टतया दिखाई है। भगवद्गीता के तुल्य ईसाई मत में वा मुहम्मदीमतमें सर्व देशी कोई पुस्तक नहीं है जिस की प्रशंसा हिन्दु लोग करते इस से भी ईसाई आदि के अर्वाचीन मतोंका एकदेशी होना तथा हिन्दुधर्म का सर्वदेशी उदार होना सिद्ध है।

(४) हिन्दुधर्मके शिरोमणि न्यायदर्शन के वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि-

ऋष्यार्य्यम्लेच्छानां समानं लक्षणम् ॥

आप्त होने में ऋषि आर्य और म्लेच्छ इनका लक्षण समान है अर्थात् जैसे ऋषि और आर्य लोग आप्त हो सकतेहैं वैसे ही म्लेच्छ लोग भी आप्त हो सकते हैं। आप्त का लक्षण यह है कि-

आप्तः खलुसाक्षात्कृतधर्मा । यथादृष्टस्यार्थस्य प्रवक्ता ॥

जिस ने धर्म का मर्म साक्षात् करके जान लिया है, जो अपने विरोधी के भी उत्तम गुणों की प्रशंसा करता है, जो कदापि किसी का पक्षपात नही करता, जैसा देखा जाता है वैसा ही यथार्थ सत्य बोलता और सब का सदा हितैषी परोपकारी होता है वही आप्त कहाता है, ऐसा मनुष्य चाहे किसी देशका वा किसी जाति का अथवा किसी भी मत का हो आप्त कहावेगा। इसी के अनुसार वेदोक्त हिन्दु मत के विरोधी होने पर भी जैन बौद्ध चार्वाक, ईसाई मुसलमान आदिमें जो कोई ठीक सत्यवादी होगा वह आप्त माना जायगा। इसके अनुसार जब हिन्दूधर्म के नेता ऋषि लोग सत्यवादी म्लेच्छों का भी आदर करने तथा प्रामाणिक मानने की आज्ञा देते हैं, तब क्या यह हिन्दुमत की उदारता का ज्वलन्त उदाहरण नही है ?। ईसाई आदि मतानुयायियों ने हिन्दुधर्मावलम्बियों का अपने मान्य पुस्तको में कहीं आदर नही दिखाया इस पूर्वोक्त उदाहरण से हिन्दुमत का सर्व देशी उदार होना तथा अन्य अर्वाचीन मतों का एक देशी होना सिद्ध है॥

(५) मानव धर्म शास्त्र के अ० १० में कहा है कि–

मुखबाहूरुपज्जानां यालोकेजातयोबहिः।

म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वेतेदस्यवःस्मृताः॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रइन चार वर्णों से भिन्न भूमण्डल में जितनी जातियां हैं, वे चाहें संस्कृतानुसारिणी शुद्ध देवनागरी बोलने वाली हों वा फारसी अरवी अंग्रेजी बोलने वाली हों–सभी दस्यु कहाती हैं, यह दस्यु का लक्षण जानो। इस कथन में मनु भगवान् ने अस्पृश्य हिन्दुओं का और म्लेच्छोंका तुल्य ही दस्युत्व मानलिया है। किसी के घर पर जाकर उसको तंग करके लूट लेना ही दस्युपन नहीं है किन्तु किसी छलादि प्रकार से अन्य के धन को स्वार्थ के लिये हरण करना दस्यु· पन कहावेगा चातुर्वण्य से इतर प्रजा की सब जातियों में परधन हरण की योग्यता अधिक है, जैसे मनुजी ने निष्पक्ष होके आर्य और म्लेच्छों का तुल्य ही दस्युपन स्वी· कार किया है, वैसे अन्य धर्मावलम्बियों ने अपनों की निन्दा कहीं नहीं दिखाई इससे हिन्दुधर्मावलम्बी मन्वादि महर्षियों की निष्पक्षता द्वारा हिन्दुमत की उदारता सिद्ध होती है। यद्यपि ब्राह्मणादि के तुल्य वाह्य अस्पृश्य जातियां आर्यपदवाच्य नहीं हैं तथापि अपने किन्हीं २ कर्मों द्वारा ब्राह्मणादि के परिचारक होनेसे म्लेच्छोंकी अपेक्षा बाह्य जातियों को शूद्र पत्नी शब्द के तुल्य गौण आर्य कह सकते हैं, इसी अभिप्रायसे हमने ऊपर बाह्य जातियों को आर्य लिखा है।

(६) मन्वादि धर्म शास्त्रों में मनुष्य मात्र के कल्याणार्थ अनेक प्रकार का उपदेश किया है उदाहरणार्थ कुछ दिखाते हैं।

धृतिःक्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकंधर्मलक्षणम्॥

धृति–धैर्य, क्षमा, मनको कुमार्गसे रोकना, दम–चोरी का त्याग, शुद्धि, इन्द्रियोंका वशीभूत करना बुद्धिसे विचारके सब काम करना, विद्या शिक्षाको अवश्य प्राप्त करना, सत्य बोलना और क्रोध न करना-यह दशविध धर्म का लक्षण ऐसा कहा गया है जो मनुष्यमात्र का कल्याणकारी है, अर्थात् ब्राह्मणादिके तुल्य ही अस्पृश्य जातियों और म्लेच्छ जातियों को भी धृत्यादि धर्म के सेवन में अधिकार है, इसी कारण इस धर्म के द्वारा म्लेच्छों का भी अवश्य कल्याण हो सकता है। इसके अनुसार ईसाई मुसलमानादि के धर्म पुस्तकों में हिन्दुओं के कल्याणार्थ कोई भी मार्ग नहीं दिखाया गया। चाहें यों कहो कि विचारशील हिन्दु लोग अति प्राचीन काल से जैसे लिखते कहते और मानते आये हैं कि अहिंसादि नामक सामान्य धर्म के सेवन से अपने

मनको न त्यागने वाले म्लेच्छोंका भी कल्याण हो सकता है, वैसे ईसाई आदिके मतों में ऐसा कोई उपदेश नहीं कि जिस का अभिप्राय यह हो कि ईसाई मुसलमान हुए विना ही अमुकामुक उपदेशानुसार आचरण करनेसे हिन्दुओंका कल्याण हो सकता है ईसाई आदि के मतों मे एक प्रकारकी यह बडी त्रुटि है, परन्तु हिन्दुमतमें यह त्रुटि नहीं है, इस से भी हिन्दुमत की उदारता सिद्ध है ॥

प्राणघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यम्—
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम्।
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा—
सामान्यःसर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेषपन्थाः ॥

भा०—गौ आदि प्राणियों की हिंसा न करना वा न कराना, पर धन हरनेसे मन को रोकना, सत्य बोलना, समय पर यथाशक्ति दान देना, काम वासना के कारण अन्य की स्त्रियों का कथन न करना और उनको न देखना, सतोषी होना, मान्य वा पूज्य गुरुजनों के साथ सदा विनय रखना और सब प्राणियों पर दयादृष्टि रखना सामान्यतया सब शास्त्रोंके एकमत से सब मनुष्य मात्रके लिये सब शास्त्रोंमें अप्रतिषिद्ध यह कल्याणका मार्ग है। ऐसे कल्याण मार्गसे चलने पर म्लेच्छोंका भी कल्याण हो सकता है। संसार भरके लिये उत्तम उपदेश दिखाना हिन्दुधर्म का सर्वदेशी तथा उदार होना सिद्ध करता है। ऐसे सर्वोपयोगी उपदेश ईसाई आदि के आधुनिक मतों में नहीं हैं, इसी कारण वे मत सर्वानुमति से एक देशी होने सिद्ध हैं ॥

(७) शुक्ल यजुर्वेद के बृहदारण्यकोपनिषद् में एक उत्तम उपदेश उपाख्यान द्वारा प्रकाशित किया है, वह उपाख्यान यह है कि पूर्वकाल में देव असुर और मनुष्य इन तीनों जातियों में यह विचार उठा कि हमारे लिये अति संक्षेप से कल्याण का-मार्ग क्या है ? इस बात का पता लगाना चाहिये। उक्त तीनों जातियों में कल्याण मार्गके-अन्वेषणार्थ जातीय महाधिवेशन होकर प्रस्ताव पास हुए कि प्रजापति विधाता के पास तीनों जातियों के डिपूटेशन भेजने चाहिये इस प्रस्तावानुसार तीनों जातियों के डिपूटेशन विधाताके समीप पहुंचे, तब प्रथम देवताओंने कहा कि—

उपदिशतु नो भवानिति ।

आप हम देव जातीय प्राणियों के लिये कल्याण मार्ग का सारांश उपदेश कीजिये इस पर प्रजापति विधाताने द इस एक अक्षरका उपदेश करके पूछा कि तुम लोगों ने हमारा अभिप्राय क्या समझ लिया? तब देवोने कहा कि हां समझ लिया द अक्षर

के उपदेश से आप का अभिप्राय यह है कि (दमयत) मन और ज्ञानेन्द्रियोंका दमन करो विधाताने कहा कि हमारा यही प्रयोजन था कि तुम लोगों में दमनकी सर्वोपरि आवश्यकता है, इसी दम के द्वारा तुम्हारा कल्याण हो जायगा ॥

तदनन्तर मनुष्योंने भी वही बात कही कि हे विधातः! आप हम मनुष्य जातीय प्राणियों के लिये भी कल्याण मार्ग के सारका उपदेश कीजिये. इस पर भी विधाताने द इस एक अक्षरका उपदेश करके पूछा कि तुम लोगोंने क्या हमारा अभिप्राय समझ लिया? तब मनुष्योंने कहा कि हां समझ लिया, द अक्षरके उपदेशसे आपका अभिप्राय यह है कि (दत्त) दान करो। फिर विधाताने कहा कि तुमने ठीक समझ लिया, हमारा आशय यही था कि मनुष्य जाति में लोभ अधिक है, यही तुम्हारे कल्याण का बाधक है, दान करने से तुम्हारा कल्याण अवश्य होगा, मनुष्य जाति में दान धर्म मुख्य कल्याण कारी है। इसके पश्चात् असुर जातीय प्राणियों ने विधाता से कहा कि आप हमारे कल्याण के लिये भी सारोपदेश कीजिये। इस पर भी विधाता ने द इस एकाक्षर का उपदेश कर पूछा कि तुम लोगों ने हमारा अभिप्राय समझा? तब असुरों ने कहा कि हां समझ लिया आपका अभिप्राय द अक्षर के उपदेश से यह है कि (दयध्वम्) दया करो, अर्थात् क्रोधपूर्वक हिंसा मत करो। सो हिंसा शील निर्दय प्राणि जातियों का नाम ही असुर है, क्रोध द्वारा होने वाली हिंसा ही असुर जातियों के कल्याण की बाधक है। भगवद्गीता में कहा है कि—

त्रिविधंनरकस्येदं द्वारंनाशनमात्मनः।
कामःक्रोधस्तथालोभ-स्तस्मादेतत्त्रयंत्यजेत् ॥

काम क्रोध और लोभ ये ही तीनों सब प्राणियोंकी अधोगति रूप नरकमें गिराने वाले हैं येही तीनों कल्याण मार्गमें डाकू हैं, इन डाकुओंसे बचने पर मनुष्यादि प्राणी कल्याण को प्राप्त हो सकते हैं। दम के द्वारा काम से बच सकते, दया के द्वारा क्रोध से बच सकते और दान करने से लोभ घट सकता है। यद्यपि देव असुर और मनुष्य सभी में काम क्रोध और लोभ तीनों का प्रचार है, तथापि देवों में काम वासना की, असुरों में क्रोध वासना की और मनुष्यों में लोभ वासना की मात्रा अन्य की अपेक्षा बढ़ी बढ़ी हुआ करती है, इसी कारण विधाता ने सृष्टि होने पश्चात् देवादि तीनों जातियों के प्राणियों को एक द अक्षर के द्वारा दम दया और दान का उपदेश किया था प्रकरण में अभिप्राय यह है कि हिन्दु शास्त्रों में असुर जातीय प्राणियों के लिये भी स्पष्ट रूप से कल्याण मार्ग का जैसा उपदेश है वैसा ईसाई आदि मतों में देव जातीय हिन्दुओं के लिये कल्याण मार्ग का कुछ भी उपदेश नहीं है। इससे ईसाई आदि

अर्वाचीन मतों का एकदेशी होना और हिन्दु धर्म का सर्व देशी व्यापक तथा उदार होना सिद्ध है।

इस ऊपर के लेख से आशा है कि पाठक महाशयों को यह विश्वास अवश्य हो जायगा कि हिन्दुधर्म का मैदान अपरिमित लम्बा चौडा है, चाहे यों कहो कि अनादि काल से प्रचरित वेदादि शास्त्रों से नदी प्रवाह के तुल्य निकला हिन्दु धर्म ही वास्तव में संसार भर को कल्याण का मार्ग वताने वाला है।यह हिन्दु धर्म अन्य मतों के तुल्य एकदेशी मत नहीं है। जैन, बौद्ध, ईसाई, मुसलमान आदि के मत हिन्दुधर्म के किसी २ खास २ बात को लेकर चलगये हैं। जैसे हिन्दुधर्म के शास्त्रों में प्रतिपादित अहिंसा धर्मरूप एक अङ्ग को लेकर जैनमत चल गया है, जैनमत में हल्ला करने के लिये अहिंसा धर्म की अधिकता है, परन्तु विचार दृष्टि से देखा जाय तो सनातन हिन्दुधर्मावलम्बियों के तुल्य दया जैनमतानुयायी मनुष्यों में नहीं है। इसी के अनुसार ईसाई आदि मतों में जो कुछ उत्तम उपदेश है, वह सभी वेदादि शास्त्रों में अति प्राचीन काल से विद्यमान है, अर्थात् उन मतों में कोई भी ऐसा अच्छा उपदेश नहीं दिखा सकता जो हिन्दु धर्म के वेदादि शास्त्रों में न हो। यही दशा आर्य समाजी मत की है इससे ये सभी मत आधुनिक एकदेशी हैं, एक हिन्दुधर्म ही उदार है।

वेदसर्वस्वालोचन।

(गताङ्क से आगे)

पृष्ठ १२८ में वैदिक मुनि ने लिखा है कि "यह नियम है कि देवता के उद्देश्य से अग्नि में हविः के प्रक्षेप समय मन्त्र के आगे स्वाहा शब्द जोड़ा जाता है। जैसे पितरों के उद्देश्यसे देय हवि के त्याग का नाम स्वधा है, वैसे देवताके उद्देश्य से देय हवि के त्याग का नाम स्वाहा है। ये दोनों शब्द उक्त अर्थ मे पारिभाषिक हैं, स्वाहा शब्द का मन्त्रके साथ स्वतः कोई सम्बन्ध नहीं और न वह मन्त्रके अन्तर्गत है याज्ञवल्क्यने इस नियम का भंग करके प्रायः मन्त्रोंके साथ ही स्वाहा शब्द को जोड़ दिया है "॥

समीक्षा-वै० मु० के ऊपर के लेख को देखकर वेदवेत्ता लोग हंसेंगे और जो लोग वेदोक्त यागों की मर्यादा को नहीं जानते वे लोग वैदिक मुनि के अज्ञान ग्रस्त लेखको ठीक मान लेंगे तो उन को वेदविषय में मिथ्या ज्ञान बढ़ेगा—इस के अपराधी वैदिक

मुनि होंगे। यदि मन्त्रों के साथ स्वाहा शब्द को महर्षि याज्ञवल्क्य ने ही जोड़ा यह सत्य मान लें तो कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय तथा कठादि शाखाओं में मन्त्रोंके साथ जुड़ा स्वाहा शब्द नहीं होना चाहिये। और कृष्ण यजुर्वेद की सभी शाखाओं में अनेक मन्त्रोंके साथ स्वाहा शब्द पहिलेसे ही जुड़ा चला आता है और यह बात वै०मु० को छोड़के सभी आंख वालोंको प्रत्यक्ष दीखती है तो यह दोष याज्ञवल्क्यजी के मत्थे मढ़ना वैदिक मुनि का कैसा अन्याय है, सो पाठक लोग सोचें। अग्नि में हविः प्रक्षेप के समय मन्त्रोंके साथ स्वाहा शब्दके जोड़नेका कुछ भी नियम नहीं है क्योंकि दर्श पौर्णमासादि श्रौत यागों में मन्त्रों के साथ आहुति के समय प्रायः वषट्कार जोड़ा जाता है, और जहां बैठकर होम करने में अथवा स्मार्त्त होमों में स्वाहा शब्द जोड़ा जाता है वहां भी यह नियम नहीं है कि अग्नि में होनेवाली आहुतियों में ही स्वाहा शब्द जोड़ा जाय किन्तु जलादिमें होने वाली आहुतियोंमें भी स्वाहा शब्द जोड़ा जाता है। तथा यह भी नियम नहीं है कि ब्रह्मयज्ञादि जप यज्ञों में स्वाहा शब्द न बोला जाय किन्तु यह नियम अवश्य है कि जिन मन्त्रोंमें पहिले से मन्त्राङ्गरूप स्वाहा शब्द नहीं है उनमें आहुति के समय जोड़ लिया जाता है परन्तु जिनमें पहिले से विद्यमान है उन का स्वाहा शब्द जप यज्ञादि के समय भी बोला जाता है इसी कारण स्वाहा शब्द का होम के साथ अव्यभिचारी सम्बन्ध नहीं है। इसी विचार से निरुक्तकार यास्काचार्य ने किया स्वाहा शब्द का (सु-आह, स्वावागाहेतिवा) इत्यादि अर्थ होम से भिन्न प्रसङ्ग में ही घटता है। इस कारण वैदिक मुनि का यह अज्ञान है कि जो स्वाहा शब्द की होम के साथ ही चरितार्थता समझते हैं।

वैदिक मुनिका यह द्वितीय अज्ञान है कि जो स्वधा और स्वाहा शब्दोंको त्याग का नाम बताते हैं, क्योंकि यद्यपि कातीय यज्ञ परिभाषा है कि—

वषट्कारेण वषट्कृते वा।

वौ३षट् ऐसा बोलने के साथ अथवा वषट्कार बोल चुकने पर यजमान के त्याग वाक्य बोलने के साथ अध्वर्यु को आहुति छोड़नी चाहिये इन विकल्पित दो पक्षों में से काशी आदि के याज्ञिक विद्वानों की अधिकानुमति से त्याग वाक्य के साथ आहुति छोड़ने का पक्ष अनुष्ठेय माना जाता है। इसीके अनुसार स्वाहा शब्दके साथ भी आहुति छोड़ना उचित नहीं माना जाता किन्तु (इदमग्नयेनमम) इत्यादि त्याग वाक्य के साथ आहुति छोड़ना सर्व सम्मत है, और जब वषट्कार वा स्वाहा के पश्चात् त्याग को पृथक् बोलने का नियम चला आता है तब स्वाहा का त्याग नाम कैसे हो सकता है ? अर्थात् कदापि नहीं इससे वै० मु० का स्वधा स्वाहा को त्याग कहना स्पष्ट अज्ञान है। त्यागार्थ में उक्त दोनों शब्द पारिभाषिक भी नहीं हैं, न कोई इसकी परिभाषा है, स्वाहा शब्द का मन्त्र के साथ वैसा ही सम्बन्ध है कि जैसा उस २ मन्त्र में आये अन्य शब्दों का है॥

मन्त्रो मे स्वाहा शब्द लगाने से वैदिकमुनिने चार दोष पृ० १२८ । १२९ में लिखे हैं, उनमे पहिला दोष यह है कि- मन्त्रोंमे छन्दोभग दोष आगया है । सो यह दोष कुछ भी नही केवल वै० मु० का अज्ञानमात्र है क्योंकि यजुः संहिता में अक्षरों की सभी सख्याओंके मन्त्र पहिले से ही विद्यमान;हैं, जैसे मानलो कि २४ चौवीस अक्षर के छन्दमे स्वाहा शब्द जोड़ा गया तो २६ छव्वीश अक्षर-होगये, इन छव्वीश अक्षरों वाले मन्त्र पहिले से ही स्वाहा शब्द जोड़े विना भी जब यजुर्वेद में विद्यमान हैं तब उनका जो छन्द माना जायगा वही छन्द स्वाहा सहित मन्त्रोंकाभी होजावेगा । सहिता मे स्वाहा शब्द सहित छपे मन्त्र जप यज्ञों में स्वाहा सहित ही वोले जाने चाहिये, इसी अभिप्राय से उनमें स्वाहा शब्द पहिले से ही लगाया गया है, इसी कारण "हवन काल मे ही वे मन्त्र पढने योग्य हैं" यह द्वितीय दोष भी निवृत्त हो जाता है अर्थात् द्वितीय दोष वास्तव मे है ही नहीं, केवल वै० मु० का अज्ञान है तथा तीसरा दोष वै० मु० ने यह बताया है कि "अनभिज्ञ जनता प्रार्थनाकालमे भी स्वाहा शब्द सहिता मन्त्रोके उच्चारण से प्रायश्चित्त तथा उपहास की भागी [भागिनी] वनती है" यह भी दोष अपनी उलटी समझ से वैदिक मुनिका है इससे वै० मु० स्वयं अनभिज्ञ होने से स्वाहा शब्द को छुड़वाने द्वारा प्रायश्चित्त और उपहास के भागी वन रहे हैं । जब वेदमे सदा से लिखे स्वाहा शब्द अन्य पदों के तुल्य ही मन्त्रों के अग हैं, तब चौथा आदमी कोई दोष नहीं किन्तु वैदिक मुनि जैसे वेदानभिज्ञ मनुष्य ही अज्ञान वश प्रायश्चित्त के भागी वनते हैं ॥

पृष्ठ १३१ में वैदिकमुनिने लिखा है कि "यदि कृष्ण और शुक्ल दोनों यजुर्वेद माने जावें,तो चार वेद के स्थान में पांच वेद होजावेंगे यह दोष अनिवार्य्य है, इससे दोनों कृष्ण शुक्ल वेद मान्य नहीं हैं ॥

इसका सक्षेपसे समाधान यही है कि कृष्ण शुक्ल दोनों यजुओं मे यजुर्वेदपन एक सा ही हैं अर्थात् दोनोंमें अध्वर्यु लोगोंके कर्त्तव्यरूप एक ही विषय का व्याख्यान है इस यजुके कृष्ण शुक्ल दो भेद होने परभी चारसे अधिक पाच आदि वेद नही होसकते यदि पुस्तक सख्या वढ़जाने से पाचवा वेद मानो तो वेदों की जितनी शाखा होगयीं हैं उतने वेद क्यों नही मान लिये । वास्तवमें चार वा तीन वेदों का वेदपन वैदिक मुनिने समझा होता तो उनको ऐसा सन्देह कदापि न होता, जब यागानुष्ठानरूपकर्म कलाप वेद की रचना के साथही हौत्र, आध्वर्यव, औद्गात्र और ब्रह्मत्व इनहीं चार भागों मे विभक्त किया गया है । यजुके कृष्ण शुक्ल ये दो भेद हो जाने पर भी हौत्रादि चार ही विभाग कर्म कलाप के जब नियत रहे तब पाच वेद कैसे हो जाते? यह वैदिक मुनिसे कोई वेदका जानकार पूछे तो मौनावलम्बन से भिन्न कुछ भी उत्तर नही देसकते ॥

पृष्ठ १५० में वैदिक मुनिने लिखा है कि "वस्तुतः यजुर्वेद में ऋचामन्त्रों के उद्धृत करने में भूल हुई है, यदि ये उद्धृत न किये जाते तो यजुर्वेद संहिता का मूल्य बहुत बढ़जाता। यजुर्वेद में ऋचा मन्त्र क्यों उद्धृत किये गये? इस विषय में बहुत मत भेद है। स्वामीदयानन्द का मत है कि यज्ञ कर्म की सुविधा के लिये ऋचा मन्त्र उद्धृत किये गये हैं, जिस यज्ञ कर्म में जिस ऋचा मन्त्र के बोलनेकी आवश्यकता है उस यज्ञकर्म के प्रकरण में उस ऋचामन्त्रके उद्धृत कर देनेसे यज्ञकर्म के करने वालों को बहुत सुविधा होती है।००० ऋचामन्त्रों के उद्धृत करने से यज्ञकर्म में सुविधा होने पर भी मध्य २ में ऋङ्मन्त्रों के आजाने के कारण यजुर्मन्त्रों के निजक्रम के टूट जाने से प्रतिपाद्य अर्थ में नितान्त बाधा भी उपस्थित हुई है। यह निर्णीत बात है कि ऋचामन्त्र स्तुति के व्याज से पदार्थ विद्या का और यजुर्मन्त्र यज्ञादि कर्मों का प्रतिपादनकरते हैं। यदि दोनों को मिला दिया जाय तो कोई एक संगत अर्थ कदापि प्रतिपादन नहीं किया जा सकता यही कारण हैं कि यजुर्वेद के वर्त्तमान भाष्य याज्ञिकों को प्रिय होने परभी सर्वजन प्रिय नहीं हैं, और जो कोई भाष्य याज्ञिक पद्धतिसे नहीं किया गया वह और भी भद्दा है॥"

समीक्षा-हमने पहिले इसी वेद सर्वस्व के आलोचन में लिखचुके हैं कि नानकपन्थ में उदासी मतके साधु हरिप्रसाद वैदिक मुनिने वेद विषय को जड़से ही नहीं जाना।पाया जिस यज्ञ के लिये वेदों की सृष्टि हुई जो यज्ञ सब वेदोंका प्रतिपाद्य विषय है, उसी का विभागशः प्रतिपादन करने के लिये ऋगादि वेद भिन्न २ किये गये थे। यजुर्वेद में जो २ ऋचा जिस २ यज्ञके प्रकरणमें पढ़ी गयी हैं, वे सब आध्वर्यव कर्मों में ब्राह्मण ग्रन्थों द्वारा विनियुक्त हो चुकी हैं, यजुर्वेद का द्वितीय नाम अध्वर्यु वेदहै जब तक सब एक ही वेद था तब तक लाक्षणिक नियमानुसार ऋक् तथा यजु स्वरूप से भिन्न होने पर भी एक ही पुस्तक में सब मिले जुले थे, तब तक वे ऋचा जो यजुर्वेद में भी लिखी गयीं हैं एक ही बार लिखी जातीं थीं कर्मानुष्ठान के समय उन ऋचाओं से होता अध्वर्यु आदि अपने २ विनियोगानुसार उस २ समय काम ले लिया करते थे। यदि वे ऋचा यजुर्वेद में न रक्खी जायं तो यजुर्वेद खण्डित होजाय क्योंकि अध्वर्युओं के काममें आने वाले सभी प्रकार के ऋचा वा यजुरूप मन्त्रों के संग्रह पुस्तक का नाम ही यजुर्वेद है यद्यपि ऋक्संहिता में यजुर्मन्त्र नहीं हैं तथापि होता लोगों के काम में आने वाले अनेक यजुर्मन्त्र आश्वलायन शाङ्खायनादि कल्प सूत्रों में स्पष्ट तथा विद्यमान हैं। जैसे उन यजुर्मन्त्रोंके सम्मिलित किये विना ऋग्वेद का ऋग्वेदपन भी पूरा नहीं होता ऋग्वेद में लिखा है कि (त्रिधाबद्धः) यज्ञात्मक वृषभ तीन स्थानों में बंधा हुआ है, इस पर याज्ञिक ऋषियों का मत है कि—

त्रिषुस्थानेषु मन्त्रब्राह्मणकल्पेषुबद्धः।

मन्त्र ब्राह्मण और कल्पनामक तीन सांनों में यज्ञ बंधा है इसी लिये कल्प सूत्रों में अन्यान्य शाखाओं से सङ्गृहीत सहस्रों मन्त्र लिये विना उस २ वेद की पूर्त्ति होनहीं सकती। यदि अध्वर्यु लोगों के काममें आने वाली ऋचा यजुःसंहिता में उद्धृत न की जातीं तो यजुर्वेदका मूल्य वेद वेत्ताओं की दृष्टि में बहुत घटजाता और वेद का शिरपैर वा मर्म न जानने वाले वैदिक मुनि आदि के मतमें उनकी इच्छानुसार नये ढंग का वेद बने तो उसका मूल्य बढ़ सकता है॥

वै० मु० ने जो यह कहा है कि "यजुर्मन्त्रों के निज क्रम के टूट जाने से प्रतिपाद्य अर्थ में नितान्त बाधा उपस्थित होती है,, यह कथन सर्वथा ही अज्ञान से ठसाठस भरा हुआ है क्योंकि यजुःसंहिता में यज्ञों का प्रकरण है, प्रारम्भ से द्वितीयाध्यायकी २८ कण्डिका तक दर्शपौर्णमास यज्ञों में विनियुक्त मन्त्रोंका क्रम से पाठ है, द्वितीयाध्याय के अन्त में पिण्डपितृयज्ञ वा पिण्डदान श्राद्ध के मन्त्र हैं, तृतीयध्याय के आरम्भसे श्रौताधान, अग्निहोत्र, अग्निहोत्रोपस्थान और चातुर्मास्य यागों के मन्त्र हैं, चतुर्थाध्याय के आरम्भ से अष्टमाध्याय तक अग्निष्टोम सोमयाग के मन्त्रों को क्रमसे पढ़ा है, उसके आगे शोडशी, द्वादशाह, राजसूय, अग्निचयन, सौत्रामणी और अश्वमेधादि यज्ञों के प्रकरण बद्ध मन्त्र रक्खे हैं, इन प्रकरणों के मन्त्रों में से यदि ऋचा निकाल दी जायं तो सभी यज्ञों के प्रकरण बिगड़ सकते हैं, जिन ऋषियों ने वेदों का व्यास करते समय जो २ प्रकरण नियत किये थे वे तो ठीक नहीं और अब वेदों का कान पूंछ कुछ भी न जानने वाले हरिप्रसाद उदासी जैसे प्रकरण बांधें वा जैसे वेद बनावें उन को कौन मान लेगा?। जिन ऋषियों के विशुद्ध तपोबल से वेदों की महिमा संसारमें फैली, इसी कारण हरिप्रसाद उदासीने भी वेद की कुछ बातें जान पायीं, फिर उन्हीं ऋषियों की निन्दा करना प्रारम्भ किया। शोचने की बात है कि कैसा अधम काम है कि जिनके सहारे से कुछ समझे उन्हीं की निन्दा करें। यदि ऋषियों का प्रमाण न माना जाय तो वेद का महत्त्व ही सिद्ध नहीं होता। यूरोपीय लोग ऋषियों को प्रामाणिक नहीं मानते इसी कारण उन के मनमें वेद भी मान्य वा विशेष प्रामाणिक पुस्तक नहीं हैं। वेद मन्त्रों का अर्थ यज्ञों के प्रकरणानुसार जब किया जाता है तब बीच २ में ऋचाओं के आने से प्रतिपाद्य अर्थ में बाधा दिखाना सर्व साधारण को धोखा देना और वै० मु० को अपना अज्ञान दिखाना है॥

आगे वैदिक मुनि का कथन है कि "ऋचा मन्त्र स्तुति के व्याज से पदार्थविद्यार्थ विद्या का प्रतिपादन करते हैं,, वैदिक मुनि का यह बड़ा अज्ञान है क्योंकि यदि उन को यह भी ज्ञात होता कि—

दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्॥

जब मनु जी ने स्पष्ट कह दिया है कि सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने यज्ञ की सिद्धि के लिये अग्नि वायु आदित्य देवताओं से ऋग्यजुः, सामवेदों को क्रमशः प्राप्त किया। तब यदि पदार्थविद्या का वर्णन करना ऋग्वेद का वक्तव्य विषय था तो मनु जी को बताना था कि पदार्थविद्यासिद्धिके लिये ऋग्वेदको प्राप्त किया जब सभी ऋषियों का एक ही मत है कि समहौत्र पद्धतियां ऋग्वेद से ही बनती हैं, जब सभी शस्त्र, पुरोनुवाक्या, याज्या, सामिधेनी, प्रयाज, अनुयाज, सूक्तवाक, संयुवाक, पत्नीसयाज और प्रधानयागादि सम्बन्धी ऋचा मन्त्रों को यज्ञों में ऋग्वेदी होता लोग ही पढ़ते हैं, जिन के बिना ऐष्टिक पाशुक तथा सौमिकरूप कोई भी यज्ञ हो ही नहीं सकता तब ऋग्वेद का यज्ञ करने में एक बड़ा भाग लेना सर्वानुमति सिद्ध हो जाने पर ऋग्वेद को यज्ञ से पृथक् समझके पदार्थविद्या में विनियुक्त करने की अविद्या वैदिक मुनि के ही बांट में पड़ी सिद्ध हो गयी। यदि ये वैदिक मुनि वेद पर जो लिखते वह आर्यसमाजी मतके अनुकूल लिखते तो वह लिखना वेद विरुद्ध होने पर भी अपने अनुकूल देखकर आर्यसमाजी लोग उस को मानते ग्राहक बनते इस से किसी अंश में इन का प्रयत्न सफल कहा जा सकता था। और यदि सनातनधर्म के अनुकूल लिखना था तो पहिले किन्हीं वेदवेत्ता विद्वानों के सत्संग द्वारा वा अन्य किसी प्रकार से वेदका वा यज्ञ का शिर पैर जान लेना उचित था तब जो लिखा जाता वह वेदानुकूल होता। ऐसा न करके वेद सर्वस्व लेख छपाकर हरिप्रसाद उदासी ने अपना उपहास कराया और वेदज्ञों में अपने अज्ञान को प्रकट कर दिया, इससे अच्छा फल कुछ न होकर कुफल हो गया, इस वेदसर्वस्व पुस्तक को प्रायः कोई न देखेगा क्योंकि आर्यसमाज तथा हिन्दु जनता दोनों के मन्तव्य से विरुद्ध है। पं० हरिप्रसाद उदासी को उचित था कि वे निम्न नीति वचनों के अनुसार शोच समझ कर वेद पर हाथ चलाते।

किंनुमेस्यादिदंकृत्वा किंनुमेस्यादकुर्वतः।
इतिकर्माणिसंचिन्त्य कुर्याद्वापुरुषोनवा ॥ १ ॥
कःकालःकानिमित्राणि कोदेशःकौव्ययागमौ।
कश्चाहंकाचमेशक्ति-रितिचिन्त्यंमुहुर्मुहुः ॥ २ ॥
गुणवदगुणमद्वाकुर्वताकार्यमादौ-
परिणतिरवधार्यायत्नतःपण्डितेन।

अतिरभसकृतानांकर्मणामाविपत्ते-
र्भवतिहृदयदाहीशल्यतुल्योविपाकः ॥ ३ ॥

किसी काम का आरम्भ करते समय सभी मनुष्यों को पहिले यह शोच लेना चाहिये कि इस काम को करने से मेरा क्या अभीष्ट सिद्ध होगा और उस कामको करने से क्या हानि होगी वा क्या परिणाम होगा ऐसा शोच समझ कर उन कामों को परिणाम में अच्छा जान ले तो करे और परिणाम में हानिकारक समझ ले तो उन कामों को न करे ॥ १ ॥ काल कैसा है मेरे मित्र कौन हैं ?, देश कौन है, मेरा आय तथा व्यय कैसा है, मैं कौन हूं तथा मेरी शक्ति क्या है इन सब बातों को शोच समझ कर मनुष्य किसी काम का आरम्भ करे ॥२॥ अच्छे प्रशस्त वा अप्रशस्त किसी कार्य का आरम्भ करने से पहिले उस कार्य के परिणाम का निश्चय प्रयत्न के साथ करलेना विद्वान् पुरुष को परम उचित है। क्योंकि परिणामको शोचे विना अति शीघ्रता से किये कामों का फल हृदय को छेदने वाला कांटों के तुल्य होता है। पाठकवर्ग ! ध्यान देंगे तो जान लेंगे कि वैदिक मुनि के विना विचारे किये इस काम का फल उलटा हुआ यही नहीं किन्तु सभी प्रकार से वेद सर्वस्व का अनिष्ट फल हुआ है।

अब रहा वेदार्थ का सर्व साधारण को रुचि कर होना न होना सो इस विषय में इतना ही कथन पर्याप्त होगा कि अति प्राचीन काल से लौकिक वैदिक दो प्रकार का व्यवहार प्रसिद्ध चला आता है, लौकिक व्यवहार से भिन्न होने के कारण ही वैदिक भिन्न रूप से गिना जाता है, लौकिक वाक्यावली से वैदिक वाक्यावली भिन्न है, लौकिक विद्याओं से वैदिक विद्या भिन्न है, इसी का नाम वैदिक फिलासफी कह सकते है। जैसे न्याय दर्शन वा मीमांसा दर्शन की अक्षरार्थ वा तात्पर्य रूप भाषा लिखकर सर्व साधारण को दिखाकर पूछा जाय कि बताओ तो सही तुमको कैसी रुचिकर भाषा प्रतीत हुई तो साधारण मनुष्य यही कहेगा कि हमें तो कुछ भी अच्छी नहीं लगी। इसी के अनुसार जब वेद किसी प्रकार का किस्सा कहानी काव्य वा उपन्यासादि नहीं है जिसकी भाषा सर्व साधारण को रुचिकर जान पड़े किन्तु वेद एक प्रकार का तत्त्व ज्ञान है, जिसके कर्म उपासना के ज्ञान तीन भाग हैं, कर्म उपासना के साथ विनियुक्त मन्त्र भाग में भी प्रायः तत्त्व ज्ञान की बातें कही गयी हैं।

पं० शिवकुमार जी शास्त्रीका स्वर्गवास

संवत् १९०४ विक्रमाब्द फाल्गुन वदी ११ को काशी से चार कोस उत्तर काशिराज के 'उन्दीग्राम' नामक इलाके में सुप्रसिद्ध पं० रामसेवक मिश्र के घर भारत के विद्या-मार्त्तण्ड देश पूज्य पं० शिवकुमार शास्त्री का जन्म हुआ। जिस समय आप

पांच वर्ष के थे, उस समय आपके पिता का स्वर्गवास हो गया। इस पांच वर्ष की अवस्था में ही आपकी बाल्य लीला के समय आपकी बुद्धि की प्रखरता और असाधारण प्रतिभा देख आपके पिता ने आपको होनहार महा पण्डित होने का आशीर्वाद दिया था। पांच वर्ष के इन बालक में यह विचित्रता थी, कि किसी श्लोक को एक आध बार सुनने से ही यह उसे मुखस्थ कर लिया करते थे। इन पण्डित जी के पिता पांच भाई थे; जिनमें उक्त रामसेवक मिश्र कनिष्ठ थे। पं० शिवकुमार जी के पिता की मृत्यु के बाद इन पण्डित जी के पितृव्यगण इनका भरण-पोषण करने लगे इनके एक चाचा बेतिया राज्य में तहसीलदार थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में यह पण्डित जी अपने चाचाके साथ बेतिया चले गये। वहां कुछ दिन तक आपने ज्योतिष का अध्ययन किया। इसके बाद बेतिया के प्रसिद्ध वैयाकरण पंडित वाणीदत्त चौबे से आप व्याकरक पढ़ते रहे। दो तीन वर्ष बाद यह पण्डित जी अपने ग्राम लौट आये।

बेतिया में इन पण्डित जी की तबियत न लगी। कारण यह जैसे गुरु को ढूंढते वैसे गुरू उन्हें वहां न मिले। ढूंढते हुये इन पण्डित जी ने काशी के क्वीन्स कालेज में एक गुरु पाया। इन पण्डित जी ने क्वीन्स कालेज के अध्यापक श्रीयुक्त पण्डित दुर्गादत्त द्विवेदी से विद्याध्ययन आरम्भ किया। लगातार ढाई तीन वर्ष तक यह पण्डित जी उन्दाग्रामसे चलकर नित्य काशी पढने आते और फिर अपने ग्राम लौट जाते थे। यहां यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि श्रीकाशीधाम की पाठशालायें सवेरे ६।७ बजे खुलतीं और १० बजे बन्द हुआ करती थीं अब भी संस्कृत पाठशालाओं का ऐसा ही नियम है। इस पर भी यह पण्डित जी चार कोश तयकर नित्य समय से पाठशाला में उपस्थित हुआ करते थे। इन पण्डित जी का ऐसा विद्या प्रेम देख पण्डित दुर्गादत्त जी ने इन्हें अपने घर रहने को स्थान दिया। इस पाठशाला में काशी के सुप्रसिद्ध बालशास्त्री महाशय भी जाया करते थे। एक दिन शिवकुमार जी कुछ विद्यार्थियों से शास्त्रार्थ कर रहे थे बालशास्त्री जी इन की अलौकिक बुद्धि देख प्रसन्न हो इनसे कहने लगे कि तुम मेरे गुरु पण्डित राजाराम शास्त्री से पढ़ा करो। इसपर इन पण्डित जी ने उत्तर दिया कि वह वृद्ध हैं; मैं उन्हें कष्ट देना नहीं चाहता, यदि आप कृपया पढ़ायें तो अच्छा है। बालशास्त्री महाशय ने इन्हें सहर्ष पढ़ाना स्वीकार किया। अवकाश मिलनेपर यह पण्डित जी अन्य विद्वानों के यहां भी शास्त्रचर्चा सुनने जाया करते थे। एक दिन जगद्गुरु १०८ स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती महाशय ने इनकी विद्याबुद्धि का परिचय पा इन्हें स्वयं पढ़ाना स्वीकार किया। प्रायः अट्ठारह उन्नीस वर्ष की अवस्था तक अन्यान्य विषयों का अध्ययन कर पण्डितजी ने न्याय वेदान्त और मीमांसादिका अध्ययन आरम्भ किया प्रायः बाईस तेईस वर्ष की अवस्था तक आपने सब विषयों में पाण्डित्य लाभ किया, फिर दो तीन वर्ष तक आप संस्कृत भाषा के प्रेमी जम्बू बूंदी प्रभृति राज्यों में भ्रमण करते रहे। छब्बीस वर्ष की अवस्था में इन पण्डित जी को काशी के क्वीन्स कालेज में अध्यापक का पद मिला। आप चार वर्ष तक यहां रह बहुत ही योग्यता के साथ

विद्या दान करते रहे। इसके बाद इन पण्डित जी ने यह पद परित्याग किया। यहां से आप दरभंगे चले गये वहां स्वर्गीय महाराज लक्ष्मीश्वरसिंह महोदय ने आप की विद्वत्तापर मुग्ध हो आपको अपने दरबारमें स्थान प्रदान किया। वहीं इन पण्डित जी ने दरभंगा राजवंश के वंशावली रूप से 'लक्ष्मीश्वर प्रताप, नामक बाईस सर्गों का एक महाकाव्य लिखा। यह काव्यग्रन्थ माघ, नैषध प्रभृति महाकाव्यों के जोड़ तोड़ का है। इस पुस्तक की रचना के एक वर्ष बाद काशी में 'दरभंगा पाठशाला, स्थापित हुई। यह पण्डित जी इस पाठशाला के अध्यक्ष और प्रधानाध्यापक बन फिर काशी आये। तब से आजन्म यह पण्डित जी इस पाठशालाके प्रधान बने रहे संवत् १९५० विक्रमाब्द में आपको गवरमेण्टकी ओरसे 'महामहोपाध्याय, की उपाधि दी गई। कलकत्ते की कान्यकुब्ज सभा ने आपको विद्यामार्त्तण्ड की उपाधि प्रदान की। उड़ीसा बामड़े के राजा साहब ने आप के पाण्डित्य पर मुग्ध हो आप को 'अत्रैव विद्यारसः, की उपाधि से भूषित किया। शृङ्गेरीमठ के मठाधीश जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी ने आपको 'सर्व्वतन्त्र स्वतन्त्र, की उपाधि प्रदान की।

काशी का विश्वविद्यालय भी आप ही की प्रस्तावना का फल है। प्रयागधामके गत कुम्भ मेले में आपने ही मालवीय जी प्रभृति सज्जनों के आगे इस विश्वविद्यालय का प्रस्ताव उठाया था। उस समय इन पण्डित जी ने यही विचार प्रकट किया था कि यह विश्वविद्यालय देशी संस्था हो, जिससे धर्मका उपदेश दिया जा सके। किन्तु ऐसा न हुआ। इसके बाद मालवीय जी ने इस विश्वविद्यालय की नींव देते समय का यज्ञादि समस्त कार्य्य इन पण्डित जी के हाथ अर्पित किया। उस अवसर पर प्रजाप्रिय लार्ड हार्डिञ्ज महोदय इन पण्डित जी से मिल बहुत ही प्रसन्न हुए थे।

श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जार्ज के दिल्ली आने पर उन्हें इन पण्डित जी का परिचय दिया गया। पञ्चम जार्ज महोदय इन से मिल बहुत ही प्रसन्न हुये। यह बात उन्होंने लाहौर के छोटे लाट द्वारा प्रकट कराई। भारतवर्ष में कोई ऐसा प्रान्त नहीं जिस प्रान्त में इन पण्डित जी के शिष्यगण प्रसिद्ध पण्डित के नाम से परिचित न हों।

इधर कोई डेढ़ दो वर्ष से यह पण्डित जी वायुरोग से पीडित थे। कुछ लोग इस रोग को लकवा बताते थे, किन्तु लकवे की तरह इनके हाथ पैर शून्य हुए न थे सिर्फ निर्बल हो गये थे। जो हो, इसी सांघातिक रोग से अक्रान्त हो यह पण्डित जी एक पक्षतक भगवती भागीरथी के किनारे काशी मणिकर्णिका में वास करते रहे वहां आपको कष्ट देख काशी वासी श्रीमान् राजा ताहिरपुर ने केदारघाट पर अपने मकान में इन्हें स्थान दिया। श्रीमान् राजा ताहिरपुर इन पण्डित जी का बहुत आदर करते थे। बल्कि आजकल यह नरेश जिस अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभा के सञ्चालक हैं, वह सभा उक्त पण्डित जी के घर की एक छोटी कोठरी में ही संगठित हुई थी। केदारघाट पर प्रायः दो मास बिता गत अधिक भाद्र प्रतिपदा संवत् १९७४ शनिवार को सवेरे ७॥ बजे इन पण्डित जी ने अपने वाचस्पति मिश्र नामक एक पुत्र चार कन्याओं और तीन पौत्र तथा एक प्रपौत्र को सन्मुख रख कैलासयात्रा की।

हमें आपके परलोक गमन का समाचार सुन अत्यन्त दुःख हुआ आप भारतवर्ष के प्रसिद्ध रत्न थे ईश्वर आपकी आत्मा को सद्गति दे तथा कुटुम्बियों को शान्ति प्रदान करे।

दर्शक महाशयका अनुचित साहस

प्रिय पाठक !

ब्राह्मणसर्वस्व भाग १३ अंक दशमें हमारे सामाजिक कान्फ्रेन्स के सभापति की आलोचना शीर्षक लेख की आलोचना मेरठ से प्रकाशित होने वाले भास्कर मासिक पत्रके मार्च के अंकमें प्रकाशित हुई है। लेखक कोई एक दर्शक महाशय हैं। दर्शक महाशय ने न जाने अपना नाम क्यों नहीं लिखा। सम्भवतः उन्हों ने यह विचार कर कि नाम लिख देने पर उस लेख में लिखी हुई मिथ्या बातों का जब प्रतिवाद होगा तो वृथा ही उपहास सहन करना होगा इसी कारण नाम छिपाने का उद्योग किया गया है॥

दर्शक महाशय ने जैसी २ मिथ्या बातें लिखी हैं उनको पढ़ने पर पाठकोंको ज्ञात होगा कि हमारा यह कथन कि इन समाजियों ने झूंठ बोलने का ठेका ले लिया है अक्षरशः सत्य है। आप लिखते हैं, "महाशय जी का यह कहना कि "बाबू जी ने सनातन धर्म के विरुद्ध खूब ही बकवाद की कहां तक ठीक हो सकता है ······· वहां मूर्त्ति पूजा श्राद्ध ······ आदि मन्तव्यों पर कुछ विचार नहीं हुआ करता ······ जिन विषयों का सम्बन्ध केवल समाज सुधार से है उन्हीं को लिया जाता है ··········· प्रस्ताव कर्त्ता अनुमोदन कर्त्ता आदि महाशय ········ आर्य्य समाजी नहीं किन्तु सनातनी ही हैं दर्शक महाशय! क्या आपने स्वप्नमें भी यह विचारा है कि सनातनधर्म कहते किसको हैं। इसके सिद्धान्त क्या हैं किन २ विषयों से इसका सम्बन्ध है और किनसे नहीं, यह माना कि मूर्ति पूजादि विषयों पर सामाजिक कान्फ्रेन्स में विचार नहीं होता। विधवा विवाह युवती विवाह आदि शास्त्र तथा विज्ञान विरुद्ध मिथ्या सिद्धान्तों का समर्थन करना सनातनधर्म के विरुद्ध बकवाद नहीं तो और क्या है इन शास्त्र विरुद्ध प्रस्तावों के प्रस्तावक तथा अनुमोदक अधिकतर वे ही पुरुष हैं जिन्होंने आपकी (तथा अन्य समाजियों की) भांति शास्त्रों का न कभी अवलोकन किया है और न उनके गूढ़ सिद्धान्तों का कभी मनन ही किया है, जिनकी आंखोंपर पश्चिमी सभ्यता का ऐनक लगा है और जिनका उद्देश्य भारत को यूरुप के सांचे में ढालना है ऐसे पुरुष सनातनधर्म्मी नहीं वास्तव में उसके घोर विरोधी हैं।

(ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्०) इस मन्त्र के हमारे किये हुये अर्थ को लिखते हुये आप लिखते हैं यदि हम आपके अर्थ को ठीक मान लें तो भी वर्णों की गुण कर्म्म से ही व्यवस्था होगी इस पुरुष सूक्त में विराट्रूप भगवान् का वर्णन है कि उनके मनसे चन्द्रमा आंख से सूर्य ······ उत्पन्न हुए इसी के साथ यों भी कह लीजिये कि उनके

मुखसे ब्राह्मण ⋯ ⋯ पांव से शूद्र उपजे कार्य्य में सदा कारणके गुण आते हैं, जैसे सूर्य्य कार्य्य अपने चक्षु कारण से उत्पन्न हुआ इसी लिये प्रकाश करना उसका गुण है। इसी भांति मुख से उत्पन्न होने वालों मे मुख का गुण बोलना पाठ करना आदि स्वाभाविक आने चाहिये ⋯⋯ अतः मनुष्यमात्र में जो लोग पढ़े लिखे अन्यों को पढ़ाने ⋯ ⋯ में लगे हों वे ब्राह्मण माने जावेंगे। उदारता से विचार करें तो क्या वेदादि के विद्वान् और क्या कुरान बाईबिल के ज्ञाता ⋯ ⋯ इतना ही क्यों किन्तु- कांग्रेस के लेकचरार आदि ⋯ ⋯ सब के सब "ब्राह्मण" यानी परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुए।

दर्शक महाशय! आप कबसे विराट्रूप भगवान्को मानने लगे आपने सनातनियों के ही अर्थ को मान लिया इसके लिये आपको बधाई है आपके अर्थ से यह सिद्धान्त कहां से निकल आया कि वर्णव्यवस्था जन्म से नही है। हम कब नहीं मानते कि वेद का पढ़ना पढ़ाना उपदेश आदि करना ब्राह्मणों का धर्म्म है "ब्राह्मण परमेश्वरके मुख से उत्पन्न हुए" ऐसा लिखने पर भी वर्णव्यवस्था जन्म से न मानना आपकी हठ नहीं तो और क्या है? आपके इस कथन को, कि "मनुष्यमात्र में जो लोग पढ़े लिखे ⋯ ⋯ कांग्रेस के लेकचरार् आदि ब्राह्मण हुये" सब समाजी विद्वान भी तो नही मानते। भास्करके इसी अङ्कमे पृष्ठ२४५ में महाशय घनश्यामदत्तजीके इस प्रश्नका कि मदरसेके विद्यार्थी किस वर्ण में गिने जाते हैं पं० भूमित्र शर्मा आर्योपदेशक मेरठ ने यह उत्तर लिखा है कि जो आस्तिकवुद्धि दोनों काल सन्ध्या अग्निहोत्र करते हों सदाचारी हों- उनको द्विजों अथवा ब्रह्मचर्य आश्रम मे गिनना चाहिये। परन्तु जो फ़ारसी अंग्रेजी आदि भाषाएं पढ़ते हैं और वेदोक्त कर्मों से हीन हैं वे "द्विजों मे दाख़िल नहीं हो सकते,, दर्शक महाशय पहिले आप अपने समाजियों में तो निर्णय कर लीजिये फिर मौलवी तथा पादरियों को ब्राह्मण बनाइयेगा॥

"चातुर्वर्ण्यं मया०,,-इस का अर्थ वेंकटेश्वर यन्त्रालयकी छपी सुदर्शनी टीकाके अनुसार आप करते हैं कि "गुण और कर्म विभाग सों रचे वर्ण हैं चार,, अर्थात् गुण और कर्मो के विभाग व्यवस्था पूर्वक मैंने चारों वर्णों को रचा है यथा ब्राह्मणों में सत्व गुण प्रधान है,, दर्शक महाशय! बाबू जी के प्रति हम ने जो यह लिखा था कि "हम नहीं समझते कि इस श्लोक से बाबू साहब का मत क्योंकर सिद्ध होता है केवल गुण,, कर्म शब्द देख कर शायद श्लोक प्रमाण में दे दिया? क्या वही बात आप के ऊपर सार्थक नहीं है? आपका हमारे लिये यह लिखना कि "आपको अपना मन माना अर्थ समझने के लिये इस श्लोकके अर्थ मे एक शब्द और बढ़ाकर काम चलाना पड़ा कहा तक सत्य है,। जब अपने किये हुए अर्थ मे स्वयं और शब्द का

प्रयोग किया है तो हमारे लिख देने से आप बिगड़ क्यों गये। गुण कर्म तथा गुण और कर्म में भेद ही क्या है? आप के लेखसे भी तो गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था सिद्ध नहीं होती फिर आप ने भास्करकी इतनी पंक्तियां क्यों रंग डालीं, ब्राह्मणों में सत्व गुण प्रधान है इस का वास्तविक अभिप्राय यदि आप को जानने की इच्छा है तो ब्राह्मणसर्वस्व भाग १३ के अंक दस में वर्णव्यवस्था शीर्षक लेख को ध्यानपूर्वक पढ़ जाइये उस से आप को भली भांति विदित हो जावेगा कि किस प्रकार से गुणों के तारतम्य के अनुसार गीता में वर्णोंका विभाग किया गया है। प्राचीन समय में नीच वर्ण के मनुष्य ऋषि तक हो जाते थे जैसे–गौतम, वाल्मीकि, पराशर, व्यास इत्यादि बाबू जी के इस कथन पर जो हमने यह लिखा था कि "क्या बाबू जी इन महा ऋषियों का नीच वर्ण में उत्पन्न होना किसी इतिहास पुराण से दिखा सकते हैं हमारे इस सत्य लेख को मिथ्या बतलाते हुये दर्शक महाशय ने लिखा है। "आश्चर्य है कि पुराण ऐसी गाथाओंसे भरे पड़े हैं–पर वर्म्मा जी को वहां यह बातें क्यों नहीं दीखतीं। सुनिये हम कुछ सुनाये देते हैं,,॥

इस के आगे जो कुछ दर्शक महाशय ने इन महा ऋषियों के विषय में लिखा है उस से लेखक महाशयकी शास्त्रोंसे अनभिज्ञता प्रगट होती है, हमको न केवल दर्शक महाशय किन्तु भास्कर के सम्पादक महाशय की बुद्धि पर शोक होता है। यदि दर्शक महाशय ने उन मिथ्या बातों को लिख कर आर्यजनता की आंखोंमें धूलि डालने का उद्योग किया था तो विज्ञ सम्पादक महाशय को ही यह उचित था कि भास्कर में प्रकाशित करने के पूर्व उनके प्रमाणोंका शास्त्र के वचनों से मिलान करलेते॥

दर्शक महाशय लिखते हैं " वाल्मीकि का वृत्तान्त जगत् प्रसिद्ध है कि वे व्याध चाण्डाल थे, एक महात्मा के उपदेश से ···ईश्वर भक्ति में संलग्न हुए–अतः ऋषिवर्ण महर्षि कहलाये,,। हा परमात्मा! महर्षि वाल्मीकि को चाण्डाल लिखते समय दर्शक महाशय का हृदय फट क्यों न गया अथवा हत भाग्य लेखनी रुक क्यों न गई जब अध्यात्म रामायण, अयो० का० अ० ६ में स्पष्ट लिखा है कि वे जन्मसे ब्राह्मण थे तब दर्शक महाशय का ऐसा लिखना मूर्खता नहीं तो और क्या है? देखो अध्यात्म-रामायण—

राम त्वन्नाममहिमा वर्ण्यते केन वा कथम्।
यत्प्रभावादहंराम ब्रह्मर्षित्वमवाप्नवान्॥ ६४॥
अहम्पुराकिरातेषु किरातैस्सह वर्द्धितः।
जन्ममात्रंद्विजत्वंमे शूद्राचाररतस्सदा॥ ६५॥

अर्थात् हे राम ! तुम्हारे नामकी महिमा कौन व्यक्ति किस भांति कह सकता है मैं उसी के प्रभाव से ब्रह्मर्षि हो गया हूं इसके पहिले मैं किरातो में रहता और किरात बालकों ही में रहकर बडा हुआ-केवल मेरा जन्म मात्र ही ब्राह्मण कुल में हुआ किन्तु आचरण मेरा शूद्र के समान था। इस के आगे वेदव्यास के विषय में लिखा है "यह पराशर ऋषि के संयोग से एक मल्लाह की क्वारी कन्या से जन्मे ,, (अतः व्यभिचारसे उत्पन्न हुए)-कई लोग सत्यवतीको मल्लाहकी कन्या होने पर आपत्ति करते हैं परन्तु ऐसी दशा मे मछली से उत्पत्ति माननी होगी जो असम्भव है "जन्म से बालक का जो कोई पालन पोषण करता है उसका वह पालित पुत्र या पुत्री होती है इस नियमानुसार भी व्यास की क्वारी माता मल्लाहिन थी ॥

इस लेख में सब की सब बातें मिथ्या हैं-सत्यवती मल्लाह की कन्या न थी किन्तु राजा वसु की पुत्री थी-मल्लाह ने केवल उस का पालन किया था, जब ऐसा स्पष्ट लेख महाभारत आदि पर्व अध्याय ६७ श्लोक ३७ से ६८ तक में मिलता है तो समाजी का ऐसा लिखना मिथ्या नही तो और क्या है (हम विस्तारभय से श्लोकों को उद्धृत नही करते) यदि आपके मतानुसार मछली से सत्यवतीका उत्पन्न होना असम्भव है तो आप को क्या अधिकार है कि भगवान् व्यास का नाम आप अपने कपोल कल्पित सिद्धान्त के समर्थन मे उपस्थित करें, किसी ने सत्य कहा है मीठा २ गप कडुआ कडुआ थू, आप ने जो महर्षि व्यास की उत्पत्ति व्यभिचार से होना लिखी है यह आप की अज्ञानता तथा शास्त्रसे अनभिज्ञता का अन्य एक स्पष्ट प्रमाण है, क्या मनुने जो आठ प्रकार के विवाह बतलाये हैं उनमें से गन्धर्व विवाह भी एक प्रकार का विवाह नही है फिर इस को व्यभिचार लिखना कहा की बुद्धिमानी है, आदि पर्व मे इस का पूरा वर्णन दिया हुआ है विज्ञ पाठक कृपया वही देखलें, पराशर जी के विषय मे लिखा है "यह श्री वसिष्ठ जी के पुत्र कहे जाते हैं और वसिष्ठजी ने एक नीच जाति की स्त्री अक्षमाला से विवाह किया था इस अधम योनि से पराशर जी उत्पन्न हुए होंगे,,-"अधम हुए होंगे,, इन शब्दों से ही प्रगट है कि दर्शक महाशय को भी इस में कुछ सन्देह है-"पराशर को वसिष्ठ जी का पुत्र लिखना,, इस से अधिक मूर्खता और क्या हो सकती है ? आदि पर्व के १७८ अध्याय के पहिले व दूसरे श्लोक में लिखा है ॥

आश्रमस्थाततःपुत्रमदृश्यन्तीव्यजायत ।
शक्तेःकुलकरंराजन् द्वितीयमिव शक्तितम् ॥ १ ॥

जातकर्मादिकास्तस्य क्रियाः स मुनिसत्तमः ।
पौत्रस्यभरतश्रेष्ठ चकार भगवान् स्वयम् ॥

अर्थात् हे राजन्! आश्रम में रहते हुए अदृश्यन्ती ने गर्भ काल पूरा होने पर एक पुत्र उत्पन्न किया शक्ति के वंश को बढ़ाने वाला यह सुत दूसरा शक्ति सा ही था। हे भरत! श्रेष्ठ मुनिवर भगवान् वशिष्ठ ने अपने पोते के जातकर्मादि संस्कार किये क्या इस प्रकार के स्पष्ट प्रमाण के होते हुए भी दर्शक महाशय अपने लेख का मिथ्या तत्त्व स्वीकार करेंगे। हम को इस की आशा नहीं है गौतम के विषय में आप का लेख पढ़कर हंसी आती है आप लिखते हैं कि "हमें इस समय उन का कोई इतिहास स्मरण नहीं है उन के स्थान पर श्री नारद जी महाराज का नाम लिखे देते हैं। जिन्हों ने श्रीमद्भागवत में अपना हाल बतलाया है कि मैं एक दासी पुत्र हूं"।

दर्शक महाशय यदि आप को भगवान् गौतम का इतिहास स्मरण नहीं था तो लेख ही क्यों लिखने बैठे किसी पुस्तक ही में देख लेते अथवा किसी समाजी या सनातनी विद्वान् ही से पूंछ लेते इन बातों के लिये मगज पच्ची कौन करे आप तो दिल्लीके पांच सवारों ही में अपना नाम लिखाने बैठे होंगे अन्यथा आप ऐसी मिथ्या बातें क्यों लिखते। नारद जी के विषय में भी आप को भ्रम हुआ है व्यास जी को श्रीमद्भागवत रचनेके लिये उपदेश देते हुए उन्हों ने प्रथम स्कंधके पांचवें अध्याय में स्वयं कहा है "कदाचित् तुम को हमारे कहने का विश्वास न हो तो हम अपने पिछले जन्म का हाल कहते हैं सुनो उस जन्म में हम एक दासी के पुत्र थे" यदि इतने पर भी आप हठ व दुराग्रह को छोड़ दें तो भी भला है।

हमारे इस लेख पर कि "प्राचीन समय में भीष्म कर्ण परशुराम व कृष्णादि के वर्ण गुण कर्मके परिवर्त्तन हो जाने पर बदल क्यों न गये" के उत्तरमें जो कुछ आपने लिखा है उस में न जाने क्यों भीष्म व परशुराम जी के विषय में कुछ नहीं लिखा आपने जो यह लिखा है कि उन्होंने अपने २ वर्णों के कर्म्मों का त्याग नहीं किया इस पर हमारा प्रश्न यह है कि उनमें किस वर्ण के कर्म प्रधान थे ब्राह्मण अथवा क्षत्रियके आपने जो लिखा है कि "संसारभर के अवगुणों से अलंकृत तीर्थादि पर पंडादि बन कर हिन्दूजाति के दानपात्र ब्राह्मण सिद्ध हो रहे हैं न इनको महामण्डल रोकता है न अन्य लोग" यह भी आपने झूठ ही लिखा स० ध० के उपदेशक अपने व्याख्यानों में इनके सुधार की ओर जनता का ध्यान आकर्षित सदा करते हैं।

कन्या के विवाह काल के विषय में आप का कथन है कि यह विषय इतना अब सर्वमान्य होरहा है कि प्रमाण दिये विना भी लोग मान रहे हैं। प्रमाण में आपने सुश्रुत का गर्भाधान काल विधायक प्रसिद्ध श्लोक उद्धृत किया है।

उनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ।

कन्या का विवाह किस अवस्था मे होना शास्त्र के अनुकूल है इस विषय पर ब्राह्मणसर्वस्व में गत वर्ष बहुत कुछ लिखा जा चुका है स्वयं हमारा एक लेख भाग १३ अङ्क २ मे प्रकाशित हुआ है उसमें आपके दिये हुए प्रमाणकी भी भली भांति विवेचना की गई है यदि और अधिक प्रमाणों की आवश्यकता हो तो सनातनधर्म्म मुरादाबाद से प्रकाशित मनुस्मृति द्वितीय अध्याय पृष्ठ ५६ देखलें । हम लोग शूद्रों की जितनी प्रतिष्ठा करते आये हैं उसके लिये अन्योंको मुख चाहिये इस पर आपने लिखा है "यह सब केवल कथन मात्र है कुरमी कलारादि को अव भी उच्चवर्ण में प्रविष्ट क्यों नहीं किया जाता„ दर्शक महाशय ! सुनिये हमारे यहां जबतक शास्त्रोंसे किसीका अधिकार सिद्ध न हो जावे किसी का वर्ण परिवर्तन नही हो सकता ॥ कुछ समाज तो है नही कि पांच मिनट के हवन मात्र से शर्म्मा वर्मा बन गये ॥ (क्रमशः)

सुधारकों का कृपाकांक्षी—

—— स्वामी दयालसिंह वर्मा–बाराबङ्की ।

गुण कर्मसे वर्णव्यवस्थामें क्या प्रमाण ?

आर्यसमाज का गुण कर्म से वर्ण मानना प्रबल सिद्धान्त है परन्तु आर्यसमाज के माननीय ग्रन्थोंमें कोई प्रमाण हमारी दृष्टिगोचर नहीं हुआ जिस के आधार पर गुण कर्म से वर्ण माना जाय । स० प्र० के वर्णव्यवस्था प्रकरणमें जो प्रमाण गुण कर्मके बारे में लिखे हैं उनसे समाज का सिद्धान्त सिद्ध नहीं होता प्रमाण मनुके लिखे हैं—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।

दानंप्रतिग्रहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

अर्थ—ब्राह्मण के पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना ये छः कर्म हैं।

पाठकगण ! यह अर्थ हम ने स्वामी जी का किया हुआ लिखा है इस से भी गुण कर्म से ब्राह्मण नहीं सिद्ध होता यहां ब्राह्मण को कर्म सौंपे गये हैं, यह अर्थ त्रिकाल में भी नहीं निकलता कि इन कर्मों को जो करे वही ब्राह्मण ! इन कर्मों को ब्राह्मण करें यह अक्षरार्थ है और सब ऐसा ही अर्थ करते हैं यहां ब्राह्मण नाम पहले है और कर्म पीछे है अर्थात् ब्राह्मणाधीन कर्म हैं न कि कर्माधीन ब्राह्मण ।

यही व्यवस्था 'प्रजानां रक्षणंदानं०, इस श्लोक की है इस में भी क्षत्रिय को प्रजा की रक्षा करना आदि धर्म बताये हैं न कि यह कि प्रजाकी रक्षा आदि कर्म करने वाला क्षत्रिय कहावे ।

और (पशूनां रक्षणम्०) इस श्लोक में भी वैश्यके कर्म बतलाये हैं यह अर्थ इस में भी नहीं कि पशुओं की रक्षा आदि कर्म जो करे वह वैश्य कहावे। स० प्र० में शूद्र के बारे में—

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया॥

शूद्र को योग्य है कि निन्दा, ईर्षा अभिमान आदि दोषों को छोड़के ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की सेवा यथावत् करना और उसीसे अपना जीवन करना यही एक शूद्र का गुणकर्म है।

पाठक वृन्द! इस व्यवस्था को सनातनधर्म सहर्ष मानता और करता है। परन्तु आर्यसमाज इसके विपरीत यज्ञोपवीत व वेदाधिकार शूद्रको मानता है जब उक्त प्रमाणानुसार द्विजों की सेवा करना शूद्र का कर्म बतलाया है तो यह अर्थ कहां से निकलता है कि जो निरन्तर ही सेवा वृत्ति करे वह शूद्र है क्या यह आर्यसमाजकी कपोल कल्पना नहीं है ?।

यह व्यवस्था आर्यसमाज के माननीय मनु प्रमाणों की है। भगवत् गीता के जो (शमोदमः) (शौर्यंतेजो०), दो प्रमाण ब्राह्मण क्षत्रिय के विषय में लिखे हैं उनकी व्यवस्था मनु प्रमाणों की तरह यद्यपि सरल है तथापि इस समय हमारा यही उत्तर है कि भ०गीताको स्वामीजी ने प्रामाणिक नहीं माना अतः उत्तर देना अनावश्यक है जबतक उत्तरदाता यह स्वीकार नहीं करेंगे कि स्वामीजी के माननीय ग्रन्थों में वर्णव्यवस्था पोषक कोई वचन नहीं तबतक महाभारत आदि के प्रमाणों पर ध्यान नहीं दिया जायगा। समाजी विद्वान् अपने माननीय ग्रन्थोंके प्रमाणानुसार ब्राह्मणादि चारों वर्णों के गुण कर्म लिखें जिनका अर्थ यह हो कि अमुक २ गुण कर्म जिस व्यक्ति में हों वे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र माने जायं।

आप का—तुलसीराम शर्मा मु० सितारी



हाथरस (अलीगढ़) आर्यसमाज का चतुर्थ वार्षिकोत्सव (वैशाख सुदी ७-८-६-१० सं० १६७४) पर कार्ड वितरण किये गये जिनमें छपा था कि किन्हीं महाशयोंको आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर शास्त्रार्थ करना हो वे कृपया उत्सवसे १५ दिवस पूर्व मन्त्री आर्यसमाज से नियमादि तय करलें।

हमने कार्ड देख कर पत्र भेजा जिसके उत्तर में लम्बे चौड़े दो पत्र हमको मिले एक में शास्त्रार्थके २२ नियम थे दूसरे में अन्यान्य बातें थीं फिर हमने एक पत्र भेजा

(जिसमे कुछ नियमों के परिवर्त्तन को कहा था) जिसका उत्तर ही नदारद ? वितरण हुए कार्ड को देखकर शङ्का होती थी कि क्या आर्यसमाज सचमुच शास्त्रार्थ करने को तयार है परन्तु जब शास्त्रार्थ के नियम देखे व अन्यान्य विद्वानों को दिखलाये तो मालूम पड़ा कि इनका शास्त्रार्थ का जिक्र करना केवल ढोंग है। शास्त्रार्थ के २२ नियमों में से केवल दो नियमो की समीक्षा पाठक लोगों के सामने हम रखते हैं जिससे विचार शील समझेंगे कि ये लोग किस प्रकार शास्त्रार्थ करने को तैयार होते हैं ।

२—आर्य लोग विपक्षियों के खण्डन और अपने पक्षके मण्डन मे उनके माननीय ग्रन्थोंके प्रमाण दे सकेंगे।

समीक्षा-ऐसा क्यों ? जब आप पुराणादि को अमान्य मानते हो तो उन से सिद्ध हुआ सिद्धान्त भी अमान्य होगा ईसाई आदि के लिये आप उनके ग्रन्थोंके प्रमाण दे सकते हो कारण कि वे आप के ग्रन्थों का प्रमाण नहीं मानते परन्तु सनातनधर्मावलम्बियों के लिये उनके ग्रन्थों का प्रमाण देना उचित नहीं कारण कि जिन ग्रन्थों को आप प्रामाणिक मानते हो उन्ही ग्रन्थों को वे भी मानते हैं अतः परस्पर उन्हीं ग्रन्थो का प्रमाण देना उचित है जो उस समय निश्चित हो जाय केवल पुराणादि के प्रमाण (जो वास्तव मे प्रमाणाभास हैं) से अपने पक्षको सिद्ध करने की कोशिश करना समाज की निर्वलता है जब आर्यसमाज अपने माननीय ग्रन्थों से अपने पक्ष को सिद्ध न करके अन्य ग्रन्थों की तरफ दौड़ लगावे तो इस से अधिक समाज का पक्ष और क्या गिरेगा। आर्यसमाजी विद्वानोंसे प्रार्थना यह है कि आप अपने मन्तव्य नियोगादि को अपने मान्य ग्रन्थों से सिद्ध कर सकते हो या नहीं! यदि कहो कि नहीं ? तो आप का मन्तव्य किस आधार पर ? यदि सिद्ध कर सक्ते हो तो कीजिये ! हम सहर्ष मानने को तैयार हैं। भगवन्! हम तो आप को सुभीता करते हैं कि अन्य प्रमाणों को छोड़ अपने ही ग्रन्थों से अपने मन्तव्य को सिद्ध कर दिखाइये यदि हम आपके मान्य ग्रन्थों का मान्य न करते तब आप कह सकते थे कि लीजिये हम आपके पुराणादि के प्रमाण से अपने मन्तव्य को सिद्ध करते हैं आर्यसमाज का अन्य ग्रन्थों के प्रमाण देनेको अधिक आग्रह करना वतलाता है कि आर्यसमाज का अपने ग्रन्थो से निर्वाह कदापि नही होता सनातनधर्म अपने ग्रन्थों से अपना निर्वाह भली प्रकार कर सकता है अतः सत्यार्थप्रकाशादिकी तरफ दौड़नेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं। सनातन धर्म अपने मान्य ग्रन्थों के प्रमाण से घवड़ाता नहीं उत्तर देने को सर्वथा तैयार है परन्तु आर्यसमाज जिन ग्रन्थों के विना शास्त्रार्थ-शङ्कासमाधान व्याख्यान मे एक पग नही चलता और न चल सकता है फिर भी उन ग्रन्थो को

कपोलकल्पित बता कर खंडन करना क्या यह न्याय है यह वही मसल हुई कि जिस बरतन में खांय फिर उसी में छेद करें अतः आर्यसमाज से कहा जाता है कि आप उन्हीं ग्रन्थों से काम लिया करो जो आप के मान्य हैं।

३—विपक्षी लोग स्वपक्ष मण्डन और आर्य पक्ष खण्डन में केवल वेद संहिताओं (ऋग्, यजुः, साम और अथर्व) का प्रमाण दे सकेंगे यदि चारों संहिताओं के किसी मन्त्र के अर्थ में विवाद हो तो उसका निर्णय अष्टाध्यायी,महाभाष्य, निरुक्तादि प्राचीन आर्ष ग्रन्थों तथा सृष्टि नियम और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से किया जायगा।

समीक्षा–ऐसा क्या कसूर विपक्षियों ने किया जो केवल संहिताओं के प्रमाण दें ? यदि कहो कि हम केवल संहिताओं को मानते हैं अतः उन्हीं का प्रमाण देना उचित है तो क्यों जी कल को आर्यसमाज कहे कि केवल ऋग्, यजु दो वेदों को हम मानते हैं तो क्या किया जायगा या सर्वथा वेदों के मानने से इन्कार करदे तब तो किसी प्रमाण की आवश्यकता ही न रही कोई भी आप से शास्त्रार्थ न कर सकेगा। विचित्र नियम (केवल संहिताओं को मानना) आर्यसमाजका ? और फल भोगे सनातनधर्म जिसके लिये हुक्म हुआ कि केवल संहिताओं का ही प्रमाण दिया जाय। बाहरे ! आर्यसमाज ? तेरा अनोखा नियम ? दो योधा युद्ध स्थलमें खड़े हों उनमें एक कहे कि आप तो केवल भाला चला सकते हैं और मैं आप पर तोप बन्दूक, तलवार, भाला, बरछीआदि सब कुछ छोड़ूंगा तो कहिये उस को कौन बुद्धिमान् स्वीकार कर लेगा क्या ऐसा कहना बुद्धिमानोंका हो सकता है इस नियमानुसार तो समाजियोंके सामने विपक्षी किसी विषय पर भी जिह्वा नहीं हिला सकते कारण कि उनके दिये प्रमाणों (संहिता) में किसी विषय का आद्योपान्त वर्णन नहीं, सूक्ष्म रूपसे है किसी २ का सर्वथा अभाव है (इस बात को अनेक आर्य समाजी विद्वान् जानते और मानते हैं हाथरस के द्वितीय वार्षिकोत्सव पर शंका समाधान के समय इस बात को अनेकों वार आर्यसमाज की तरफ़ से कहा गया था) अतः विपक्षियों से शास्त्रार्थ में बचने के लिये आर्यसमाजने यह अनोखा यत्न निकाला है परन्तु इसको (आर्य प्रत्येक ग्रन्थ का प्रमाण दें और विपक्षी केवल संहिताओं का) वही मानेगा जिसकी बुद्धि आर्यसमाज निर्धारित शास्त्रार्थ के नियम बनाने वाले के समान होगी।

समाजी विद्वानोंसे हम पूछते हैं कि विपक्षी वेद भिन्न ग्रन्थका प्रमाण न दें सो क्यों ? क्या समाज वेद भिन्न का प्रमाण नहीं मानता ! यदि नहीं ! तो स० प्र० आदि पुस्तकों में क्यों लिखे हैं क्या आर्यसमाज प्रत्येक विषय का निर्णय केवल संहिताओं से कर सकता है ! स० प्र० सं० वि० में जो लिखा है कि अमुक लड़कीके साथ विवाह करे अमुक के साथ न करे अमुक ऋतु में यज्ञोपवीत करे इत्यादि वर्णन क्या कोई समाजी विद्वान् संहिताओं में दिखा सकता है यदि नहीं ! तो किस मुह से कहा जाता व

लिखा जाता है कि केवल संहिताओंके प्रमाण देने होंगे यदि आर्यसमाज अपने मन्तव्योंको संहिताओं से सिद्ध कर दिखावे तो सनातनधर्म भी ऐसा ही करेगा और अधिक भार समाज पर है कारण कि ये लोग वेद २ अधिक चिल्लाया करते हैं सनातन धर्म वेदादि अनेक शास्त्रों को प्रामाणिक मानकर अपने मन्तव्यो के सिद्ध करनेको सर्वदा तयार है परन्तु समाज वेद २ चिल्लाता हुआ काम पड़ने पर अन्य ग्रन्थोंकी शरणमें पूर्ण रूप से जाता है समाजी भाई अपने पक्षके मण्डन और परपक्षके खण्डनमें केवल वेदसे काम लिया करें सनातनधर्मावलम्बियों को कुछ आवश्यकता नही ।

पाठक वृन्द ! आर्यसमाज की तरफ से २२ नियम छपे हुए हैं जहां कही शास्त्रार्थ का जिक्र छिड़ा झट नकल कर भेज दिये कौन विचार करता है कि इनमें दो मुख्य नियम ही अण्ड वण्ड है।

आपका-तुलसीराम शर्मा

मु० सितारी पो० सासनी (अलीगढ़)

नैटालमें समाजियों का उपद्रव ।

धर्मवीर नाम का एक साप्ताहिक पत्र वर्षाधिक से दरबन-नेटाल दक्षिण अफ्रीका से प्रकाशित होता है, जिसका प्रकाशन आर०जी० भल्ला करते हैं यह पत्र अंग्रेजी और हिन्दी दो भाषाओंमें छपता है, हिन्दी विभागका सम्पादन भवानीदयालजी करते हैं। आकार इतना है कि २० मिनटसे अधिक समय पढ़नेमे नहीं लगता, वार्षिक मूल्य यहां का ७॥)रुपया है तिस पर इस पत्रके स्वामी को हमेशा रोना पड़ता है। क्योंकि अभी तक ५०० सौ ग्राहक नही हुये । ग्राहकोंकी कमी का मूल कारण यह है कि इस पत्र के प्रवर्तक आर्यसमाजी हैं प्रायः बहुत कुछ छिपाने पर भी उनका असली रूप सर्व साधारण को ज्ञात हो गया है। इस पत्र में श्रीमान् गांधी जी की निन्दा कई दफे छपी है और यह भी छापते सम्पादक को लज्जा न हुई कि " मि० गांधी आर्यसमाज की शरणमे " ऐसा हेडिंगमे छाप कर इस देशके समाजियोंको उदाहरण दिया था। परन्तु अभ्युदय पत्र में स्पष्ट ऐसा छपा था मि० गांधी महोदयने स्वयं अपने भाषण में कहा था कि " मैं आर्यसमाजी नही हूं " जब यह समाचार हम लोगोंने पढ़ा तो धर्मवीर के सम्पादक को पत्र लिखके उनके असत्य लेख का खण्डन किया। और सम्पादकने अपने धोखेको स्वीकार करते हुए फिर ऐसी खबर धर्मवीर में प्रकाशित की थी कि " मेरे प्रेस में छापने वाले की भूल से ऐसा छपगया था लेकिन महात्मा गांधीजी आर्य समाजी नही हैं " पाठकवृन्द ! यहां पर आप लोगों को इस कपटमुनि सम्पादक

की लीला ज्ञात हो गई, परन्तु इतना ही नहीं अभी और भी अनेकों छल विद्यमान हैं जो कि सनातनधर्मियों के प्रति धर्मवीर ने किये हैं। इस प्रवास में हम लोगों को यद्यपि पूर्वजन्म के प्रताप से नाना प्रकार के कष्ट झेलने पड़े हैं। तथापि धार्मिक मार्ग पर स्वतन्त्रता रही और मूर्तिपूजा अवतार श्राद्ध इत्यादि सनातन धर्म पर पूरा विश्वास था। हमारे हिन्दू भाइयों को अपने पूर्वजों की रीति भूली नहीं थी परन्तु शोक है कि अब इस पत्र की बदौलत जहांपर ईश्वर का पूजन होता था वहां अब दयानन्द की दिगम्बर मूर्ति (फ़ोटो) का सत्कार होरहा है जिन मुखों से पवित्र राम राम की ध्वनि निकलती थी आज उन मुखों से आधुनिक रीति का नमस्ते निकल रहा है। दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि पी० एम० बर्ग स्थान में सत्यनारायण का प्रसाद (पंचामृत) समाजियों ने लात के तले जूतों से कुचिला है, कथा बांचने वाले पण्डित को डंडों से पीटा है। कहां तक इन समाजियों का अत्याचार वर्णन करें, एक स्थान (हाविक) में एक लक्ष्मण नाम का अहीर है उस बेचारे का घर समाजियों ने जला दिया क्योंकि वह समाजियों के वेद धर्म सभा से अलग रहता था। मासिक चन्दा ३) उस से न भरा गया इसलिये उसका घर जलाया गया। तीन महीना जेल भोगकर तब समाजियों को संध्या करने की छुट्टी मिली थी। इन सब अपराधों का मूल कारण धर्मवीर ही है। अब मेरी प्रार्थना भारत के सनातनधर्मावलम्बियों से यह है कि कृपा कर एक उपदेशक अवश्यमेव यहां पर भेजें नहीं तो इन दयानन्दियों के वेद विरुद्ध आचरण से हजारों शुद्ध सनातनी हिन्दुओं को अपने धर्म से हाथ धोना पड़ेगा।

इस देश में दूसरा हिन्दी का कोई समाचार पत्र न होने से हम सब लाचार हैं। अपनी विपत्ति को प्रकट करने में भी किसी प्रकार का एक भी हिन्दी का पत्र नहीं है आशा है कि ऊपर लिखित सत्य घटना को पढ़कर सनातन धर्म की रक्षा करने की कृपा कोई उपदेशक जरूर ही करेंगे।

धर्मवीर में कई एक लेख हमने भेजे थे परन्तु सम्पादक जी ने उन्हें प्रकाशित इस लिये न किया कि मैं दयानन्दी मत का नहीं हूं।

शिवशंकर दुबे तोनंविल जंकशन—नेटाल।

सम्पादकीय टिप्पणी—ऊपर का लेख एक ऐसे सज्जन का है कि जिन पर अविश्वास नहीं किया जा सकता, इस लेख में समाजियों के जिन अत्याचारों का वर्णन है उनको भारतवर्ष के समाजी जरा ध्यान से पढ़ें और सोचें कि क्या उन के ऐसे कुकृत्यों से परस्पर में मेल बढ़ सकता है, कहां हैं ला० लाजपतराय और हंसराज जो थोड़े दिन पहिले खण्डन मण्डन तक के लिये निषेध करते थे वे समाजियों के इन अत्याचारों को आंखें खोलकर देखें नेटाल में एक सनातनधर्मी हिन्दी पत्र की और सनातनप्रचार की भी आवश्यकता है प्रान्तीय मण्डल और स० ध० सम्मेलन को इधर ध्यान देना चाहिये।

हे श्रीकृष्ण।

(ले० कविवर जगतनारायण मिश्र "कविपुष्कर" रामनगर)

[भुजङ्ग प्रयात वृत्त]

(१)

बजा दे अये ! कान्ह वंशी बजा दे।
जरा गीत गीता हमें भी सुना दे॥
प्रभो ! कर्म के योग को तो सिखा दो।
भली स्त्रग्विणी मूर्त्ति भी तो दिखा दो॥

(२)

किधौं धर्म है नीक प्यारे बता दे।
गहूं कौन से मार्ग को ये जता दे॥
कहां हो लुके नाथ ! जल्दी पता दो।
जरा देश की शक्ति को तो चिता दो॥

(३)

प्रभो देश के दुःख को देख लीजै।
सदा भक्ति सच्चो हमें नाथ दीजै॥
कि हो मोहनी मोहनी मन्त्र डारो।
हरो जो हरे दुःख तो नाम वारो॥

(४)

प्रभो ध्यावते हैं तुम्हें हिन्द वासी।
वयो वृद्ध आबाल तेरे उपासी॥
सुधा धार ते शक्ति दीजै जरा सी।
उठें ज्ञान लेके अनेकों प्रवासी॥

समाज सञ्चालन और वर्णधर्म ।

यद्यपि आज दिन जब कि शिक्षित समाज में सब ओरसे यही सुनाई देता है कि ब्राह्मणोंने भारत को ग़ारत करदिया है और जब कि देशकी आधुनिक दीन हीन दशा का मुख्य कारण वर्ण धर्म को ही बताया जाता है। वर्ण धर्म की उपयोगिता दिखाने का साहस करना निष्ठुरता के उपालम्भ का लक्ष्य बनना है। तथापि जैसे कोई पुरुष अपने घर की सफाई कर रहा हो और उसे सफाई करते समय घर में पड़ा हुआ विषादि साधारणतः हानिकारक पदार्थ दिखाई पड़े तो बुद्धिमान् पुरुष उस पदार्थ को उठा बाहर फेंकने के पूर्व ज़रूर सोच लेगा कि इस वस्तुके घरमें आने का कारण क्या था जिस प्रयोजन के लिये यह लाई गई थी वह हो चुका या नहीं, और आया इस के सम्हाल रखने से भविष्य में इससे किसी प्रकार की हानि होनेकी सम्भावना है या नहीं। और यदि है तो कितनी और किस प्रकार की। इसी विचारके आधार पर ही इस लेख में इस बात के दिखाने की चेष्टा की जाती है "कि वर्ण धर्म (यदि वह विपक्षी के वर्णन के अनुसार वास्तव में ही हानिकारक है) कहांतक समाज की आधुनिक अवनति का कारण हुआ है और कि आया वह तत्वतः समाज सञ्चालन में रोड़ा अटकाता है॥

२-पहिले हम यह देखना चाहते हैं कि वर्ण धर्म के विरोध में जो इतना कोलाहल मच रहा है इस का क्या कारण है यदि इस बड़े शोर का विश्लेषण किया जावे तो हमें पता लगेगा कि वर्ण धर्म के विरुद्ध सबसे ज्यादा गला फाड़ने वाले पादड़ी लोग हैं। यह लोग भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने के निमित्त प्रतिवर्ष अपने आश्रय दाताओं से करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति प्राप्त करते हैं। परन्तु इस सब धन के बदले में कुछ अन्त्यज जातियों को ईसाई धर्म में सम्मिलित करने के अतिरिक्त अब तक कुछ भी सफल मनोरथ नहीं हुए। यह तो मानना पड़ेगा कि इस प्रकार यह धीरे धीरे हिन्दू जातिको बलहीन कररहे हैं और हिन्दुओंको इस शनैः२ हानिसे सावधान रहना चाहिये। परन्तु पादड़ियों का इतना कार्य इन के आश्रय दाताओं की दृष्टिमें कोई सन्तोषजनक नहीं, गिना जाता। और जब वह इनसे प्रश्न करते हैं कि तुम भारत की उच्च जातियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने में कितने कृत कृत्य हुए हो तो यह निरुत्तर रह जाते हैं। चूंकि उच्च जातियों में इनके धर्म्म के प्रचार में वर्ण धर्म्म हिमाचल के सदृश बाधा डाले खड़ा है अतः यह लोग अपना सारा विष इसी पर उगलते हैं॥

३-पादड़ियों के अतिरिक्त और युरोपियन लोग भी वर्ण धर्म से थोड़ा बहुत इस कारण असन्तुष्ट रहते हैं कि यह उच्चश्रेणीके हिन्दुओं और बड़े २ साहिब लोगोंमें सामाजिक व्यवहार (Social relations) में बाधित हैं। साहिब लोग बड़ेसे बड़े हिन्दुस्तानीके रेल गाडीके पहले दरजे में बैठने से हटाये जाने पर भले ही प्रसन्न हों परन्तु हिन्दुओं को उनके साथ बैठ कर एक ही मेज पर खाना खाने से इनकार करने पर खूब नाक भौं चढ़ाते हैं। अभी हालही में बङ्गालके लाट साहिब (Lord Ronaldshay) ने इस बात पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की है कि भारतीय लोग अब दिनों दिन वर्ण धर्म्म को शिथिलकर अंगरेजों से ज्यादा मेल जोल पैदा कर रहे हैं। इस मेल जोलको वर्णसे कुछ ज्यादा सम्बन्ध नही हैं इस वास्ते इस पर कुछ ज्यादा विचार करनेकी आवश्यकता भी नहीं।

४-साहब लोगोंकी देखा देखी हमारे अपने देशके बहुतसे लोगभी वर्णधर्मकी उपयोगितासे आशंकित होरहे हैं परन्तु इनकी शङ्काका कारण कुछ और ही मालूम होता है, आंग्लभाषामें एक कहावत है कि (Nothing succeeds like suceess) सिद्धि जैसा सफल और कुछ नही, और सांसारिक अनुभवसे भी ऐसाही प्रतीत होता है कि जहां सिद्धि हो वहां कई अवगुणोंको क्षमा किया जाता है। उदाहरणार्थ आप जापान देशकी उन्नतिकी बात लीजिये। जबसे इस देशने रूस जैसे प्रभावशाली देशको परास्त कर अपनी सामर्थ्य का परिचय दिया है तब से सारा सभ्य संसार जापान की सब विलक्षण बातोंका ऐसी बातोंका जो विशेषतः जापानी ही है बड़ा आदर करता है और उनसे शिक्षा ग्रहण करना मानहानि नही समझता। यहां तक कि आंग्लभाषा में गीशा। जापानी बाजारी औरत पर नाटक रचे गये और लण्डन और पैरिसमें जुजुत्सू नामक कुश्ती (जो भारतीय कुश्ती से यदि बुरी नही तो अच्छी भी नहीं) के दंगल खोले गये। अभी थोड़े ही दिन हुए कि लण्डनटाइम्स (London Times) में एक जापानी महानुभाव का एक लेख प्रकाशित हुआ था जिस में गीशाओं के गुण बड़ी रोचकता से गाये गये थे। यह लेख टाइम्स के पाठकोंके विनोदार्थ उपयोगी समझा गया था। यह है सिद्धिकी सफलता—

विपरीत इस के हार से विफलता भी अद्वितीय ही होती है। किसी कवि ने अच्छा कहा है कि—

दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी।

जो पुरुष अथवा जाति मन्द दशा में होती है तो दूसरों को वरन् स्वयं उस कोभी अपने गुण भी दोष ही दिखाई देने लगते हैं। यदि किसी पुरुष को बार बार यह कहा जावे कि तू मूर्ख है तो कुछ समय में उस को आप विवेक होते हुए भी यह विश्वास होने लगता है कि मैं मूर्ख हूं। यह हाल हमारे वर्ण धर्म के विरोधी देश भाइयों का है। और पुनः वर्ण धर्म पर ही क्या निर्भर है। यह लोग तो भारत

की हरएक विलक्षण बातों को जैसे-आध्यात्मिक विद्या की ओर हमारा नैसर्गिक मिलान, हमारी स्त्रियों का पातिव्रत धर्म्म, हमारी जीवन यात्राकी प्रणाली, और अन्य अनेक बातों को अवगुण समझे बैठे हैं और चमचमाती हुई पश्चिमी सभ्यतासे चकाचौंध होकर समाज को उन से त्रसित् करने का प्रयत्न कर रहे हैं॥

अतः यह बहुत आवश्यक है कि ऊपर वर्णन किये गये तीन प्रकार के लोगों से उत्पादित कोलाहल को सुन कर ही विना सोचे समझे ही अपने प्राचीन धर्मको तिलाञ्जलि दी जावे॥

५-अब हम अपने प्रस्तुत विषय पर आते हैं। इस लेख में इस बात पर विचार नहीं किया जावेगा कि वर्ण धर्म वेदानुकूल है या नहीं और कि शास्त्रोंका इस विषय में क्या मन्तव्य है। इन प्रश्नों पर मेरे जैसे अपढ़ अभिज्ञों का सम्मति देना केवल समयँ का नष्ट करना है। यह बातें तो हम अपने सम्पादक महाशय जैसे धुरन्धर विद्वानों और संस्कृतज्ञों के वास्ते छोड़ते हैं। इस लेख में तो केवल इसी विषय पर विवेचना करने का साहस किया गया है कि वर्ण व्यवस्था जैसी आजकल भारत में प्रचलित है इस का प्रभाव समाज पर कहां तक उपयोगी अथवा हानिकारक है और हुआ है॥

प्राचीन काल से इस देश में किसी विषय की विवेचना प्रायः तीन विचार विन्दुओं से की जाती रही है। अर्थात् आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। हम वर्ण धर्म को भी इन्हीं ३ विन्दुओं से देखने का प्रयत्न करेंगे। आधिदैविक पक्ष का सम्बन्ध इस विषय से कुछ ज्यादा घनिष्ट नहीं है। इस से पहिले इसी का विचार करें, कभी २ देवताओं के कोप से किसी भयङ्कर महाभारत अथवा किसी महामारी के परिणाम से जाति में सङ्करता का प्रादुर्भाव होता है, और व्यवस्था में शिथिलता आ जाती है। विपरीत इसके जब समय २ पर 'धर्मसंस्थापनार्थाय, प्रभु हम लोगों पर कृपा करते हैं तो जाति वर्ण बद्ध हो जाती है, लेखक की अनुमति में तो आधिदैविक पक्ष से वर्ण का इतना ही सम्बन्ध है।

६-आध्यात्मिक दृष्टि से तो वर्ण धर्म का प्रचलित रीति के अनुसार योनि प्रधान होना ही सिद्ध होगा। यदि हम यह स्वीकार करलेवें (और शायद कोई अध्यात्म वादी इससे इनकार नहीं करेगा, कि आत्मा सर्व गत है अर्थात् एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करता है तो हमें मानना पड़ेगा कि मनुष्य जन्म केवल एक साधारण घटना (mere accident) नहीं है। वरन् यह आत्माके पूर्व जन्मों के कर्मों का भावी फल है जो उस के इस विशेष शरीर के धारण करने के स्वरूप में परिणत हुआ है। और पुनः आत्मा के मनुष्य योनि और मनुष्यों में भी किसी विशेष वर्ण को धारण करने की नियत हुई है सर्वज्ञ परमात्मा के नियमानुसार, तो इस से यह

सिद्ध हुआ कि जो वर्ण मनुष्य को जन्म के समय मिलता है उसका निर्णय ईश्वरीय नियमानुसार होता है और उसमें मनुष्य का हस्तक्षेप करना मानो ईश्वरीय नियमों की गति में वाधा डालना है। जव त्रिकालदर्शी परमात्मा का निर्णय यह हुआ कि अमुक व्यक्ति अमुक वर्ण में जन्म लेकर ही अपने पूर्व जन्म के कर्मों का फल भली प्रकार से भोग सकता है और उसी वर्ण के नियत कर्मों का अनुष्ठान करता हुआ वह अपने आत्मविकाश (Self inven hon) में तत्पर रह सकता है तो उस में अल्पज्ञ जीवों का यह कहना कि अपने वर्तमान जन्म के गुण कर्मानुसार यदि वह जन्म वर्ण के विपरीत हों वह उस वर्ण में रहनेका अधिकारी नहीं जिसमें कि वह उत्पन्न हुआ है-अर्थात् जिस वात का निर्णय उस व्यक्ति की संसार यात्रा के पश्चात् ईश्वरीय नियमानुसार होना है उसका फैसला पहिले ही मानुषी वुद्धि द्वारा करना मानो गाड़ी को घोड़े के आगे जोतना है। जिन गुण कर्म्मों को उसे निज वर्ण के धर्म्मों का अनुष्ठान करके अपने अन्दर विकसित करना है उन्ही गुणकर्म्मों की कसौटी पर उसे जांचना उलटी गङ्गा वहाना है। यहां पर विपक्षी यह आक्षेप करेगा क्यों जी! यदि ईश्वरीय नियम यही है कि जो पुरुष जिस सामाजिक अवस्था में उत्पन्न हो वह सारी आयु उसी अवस्थामें व्यतीत कर देवे। तो निर्धन का यत्न करके धन उपार्जन करना या और किसी प्रकार की आधिभौतिक उन्नति करना भी गोया ईश्वरीय नियमों का उल्लङ्घन सिद्ध होगा इस का उत्तर हम यह देते हैं कि वर्णाश्रम धर्म्म तो मनुष्य की चाहे व्यक्तिगत भाव से समझो चाहे समष्टि रूपसे, आध्यात्मिक उन्नति के लिये नियत किये गये हैं तो इन को आधिभौतिक दृष्टि से देखना (यद्यपि हम अनुगतिक पैरों में इसही दृष्टि से वर्ण का विवेचन करेंगे) इनको अपने असली स्वरूप से नीचे गिराना है। इनको धनोपार्जनादि आधिभौतिक कार्य्यों के नियमों से नहीं बांधना चाहिये॥

परन्तु आध्यात्मिक विचारों की आजकल कौन सुनता है जो लोग वर्णाश्रमधर्म्म के विरोधी हैं। वह आध्यात्मिक विचारोंको भी हेय समझते हैं। वह तो अपने विचारों को उन्नीसवीं शताब्दि के फ्रेंच पण्डित आगस्टकोट की विचार शैली पर टालते हैं। जिस के मत का सार हम श्रीयुत वालगङ्गाधर तिलक की नव प्रणीत पुस्तक गीता रहस्य के ६२-६३ पृष्ठ से यहां उद्धृत करते हैं। असभ्य और जङ्गली मनुष्यों ने जव पहले पहल पेड वादल और ज्वालामुखी पर्वत आदिको देखा तव उन लोगों ने अपने भोलेपनसे इन सव पदार्थोंको देवता ही मान लिया यह इनके मतानुसार आधिदैविक मत होचुका। परन्तु मनुष्यों ने उक्त कल्पनाओं को शीघ्र ही त्याग दिया वे समझने लगे कि इन सव पदार्थोंमें कुछ न कुछ आत्मतत्त्व अवश्य भरा हुआ है। मानवी ज्ञान की यह दूसरी पीढ़ी अर्थात् आध्यात्मिक मत हुआ। परन्तु जव इस रीति से सृष्टिका

विचार करने पर भी प्रत्यक्ष उपयोगी शास्त्रीय ज्ञान की कुछ वृद्धि नहीं होसकी तब अन्त में मनुष्य सृष्टि के पदार्थों के दृश्य गुण धर्म्मों ही का और भी अधिक विचार करने लगा जिस से वह रेल तार सरीखे उपयोगी अविष्कारोंको ढूंढ़कर वाह्य सृष्टि पर अपना अधिक प्रभाव जमाने लग गया। इस मार्ग को आधिभौतिक नाम दिया गया है। और निश्चित किया गया है कि किसी भी शास्त्र या विषय का विवेचन करने के लिये अन्य मार्गोंकी अपेक्षा, यही आधिभौतिक मार्ग अधिकश्रेष्ठ और लाभकारी है। और समाज शास्त्र का तात्विक विचार करने के लिये इसी आधिभौतिक मार्ग का अवलम्बन करना चाहिये। और इस आधिभौतिक नियम का प्रयोग आज कल की विचार प्रणाली में इतना तीव्र हो रहा है कि कोई संस्था चाहे वह कितनी भी प्राचीन और उपयोगी हो इस के भीषण अनुसन्धान से वचने नहीं पाती। यहां तक कि वेचारे परमात्मा को भी अपना शासन ग्रहण किये रखने में मुश्किल हो रही है। वर्णाश्रम धर्म तो भला किस गिनती में है॥ (शेष आगे)

एक आवश्यक प्रस्ताव ।

श्रीमान् प्रिय हिन्दी-हितैषीगण ! मुझे आज बांकीपुरस्थ 'शिक्षा' खण्ड २१, संख्या १६, श्रावण शुक्ल १ संवत् १९७४ पृष्ठ ५ पृष्ठखण्ड प्रथम, में "सम्मेलन के सभापति" शीर्षक लेख पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ जिसमें ६ सुयोग्य हिन्दी हितैषियों के शुभनाम सम्मेलन के सभापति पद के विचारार्थ उपस्थित किये गये हैं। यद्यपि ये हिन्दीरसिक सब के सब एक से एक बढ़कर सुयोग्य हैं और यथावसर सभापति चुने जाने योग्य हैं तथापि मैं कई एक विशेष कारणोंसे एक विद्यावयोवृद्ध सुलेखक, सुवक्ता सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार, वेद अनुवादक संस्कृत और हिन्दीहितैषी का शुभनाम सर्व प्रथम विचारार्थ उपस्थित करता हूं और जिनका शुभनाम मैं ८ आठवर्ष पूर्व भी प्रस्तावित करचुका हूं, अर्थात् चैत्र संवत् १९६६ में मैंने कलकत्ता से "हिन्दी-साहित्य महामण्डलकी आवश्यकता" शीर्षक मुद्रित प्रार्थनापत्र में निम्नलिखित ७ महानुभावों को यथावसर उक्त महामण्डल का सभापति निर्वाचित करने का प्रस्ताव किया था—

१-श्रीमान् स्वनामधन्य माननीय पण्डित मदनमोहन जी मालवीय, बी० ए० एल० एल० बी०, वकील, हाईकोर्ट प्रयाग।

२-श्रीमान् पण्डितवर गोविन्दनारायण जी मिश्र, कलकत्ता।

३-श्रीमान् माननीय पूज्य श्री १०८ गोस्वामी वालकृष्णलाल जी महाराज, कांकरौली नरेश।

४-श्रीमान् महामहोपाध्याय पं० सुधाकर जी द्विवेदी, काशी।

५-श्रीमान् राजा कमलानन्दसिंह जी बहादुर, पुरनियां नरेश।

६-श्रीयुत प० दुर्गाप्रसाद जी मिश्र कलकत्ता।

७-श्रीमान् पण्डितवर भीमसेन जी शास्त्री, भूतपूर्व वेद व्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी, तथा सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व, इटावा।

उल्लिखित सप्त महानुभावों में से प्रथम दो तो सभापतिका आसन सुशोभित कर चुके हैं। ३ से ६ सख्या तक हिन्दीकी दुर्भाग्यता से सभापति चुने जाने के पूर्व ही स्वर्गवासी हो गये हैं। अब अष्टम हिन्दीसाहित्य सम्मेलन के सभापति चुने जाने के लिये केवल ७ वें श्रीमान् प० भीमसेन जी शास्त्री ही विद्यमान हैं। पण्डित जी जैसे वेदपाठी संस्कृत और हिन्दी के मर्मज्ञ और हितैषी विद्या वयोवृद्ध सुयोग्य व्यक्ति को इस वर्ष ही सभापति निर्वाचन करना सम्मेलन के लिये सौभाग्य और गौरवकी बात है। मेरी सम्मति में अब भी सुअवसर है कि सम्मेलन के सचालक उन्हें इसी वर्ष सभापति निर्वाचित करके अपना कर्त्तव्य पालन करें और साथ ही श्रीमान् पं० भीमसेन शास्त्रीजी से भी मेरा विशेष निवेदन है कि यद्यपि वे वृद्धावस्थाके कारण सांसारिक व्यवहारों को छोड़ चुके हैं तथापि इसे लोकोपकारक; हिन्दी=उन्नतिकारक पुण्य कार्य जानकर स्वीकार करें।

हिन्दी-समाचार पत्रों के सम्पादक, पाठक, सम्मेलनके संचालक नागरीप्रचारिणी सभाओं के पदाधिकारी तथा कर्मचारी और समस्त हिन्दी हितैषीगणों से सविनय निवेदन है कि वे सब इस विषय में अपनी २ स्वतन्त्र सम्मति प्रकाशित करें।

उक्त पण्डितजी ने ५० वर्षों से विविध लेख, अनेक पुस्तक, कई समाचार पत्र सम्पादन करके संस्कृत और हिन्दी-साहित्य का भण्डार भरा है। इस अर्द्ध शताब्दिमें पण्डितजी ने संस्कृत और हिन्दीकी जो २ सेवाएं की हैं वे किसी सस्कृत और हिन्दी प्रेमी से छिपी नहीं हैं। पण्डित जी ने हाल ही में पारमार्थिक विचारके कारण ही कलकत्ता यूनिवर्सिटी के कार्य को परित्याग कर दिया है।

अतएव यदि हिन्दी हितैषीगण को मेरा प्रस्ताव उचित प्रतीत हो तो उनका कर्त्तव्य है कि इसी वर्ष सर्व प्रथम उक्त विद्यावयोवृद्ध पण्डित जी को सम्मेलन का सभापति निर्वाचित करें। प्रस्तावक—व्रजवल्लभ मिश्र,

अलवरकोठी, मेयोकालेज, अजमेर।

वक्तव्य।

मिश्रजी का यह प्रस्ताव समयानुकूल है इसमें सन्देह नहीं तथापि माननीय पं० जी की इच्छा इस सम्मेलन के सभापति होने की नहीं है वृद्धावस्था और पारमार्थिक विचारों के कारण उन्हों ने सभी सभाओं मे जाना आना वन्द करदिया हैं हमें आशा नही कि वे प्रस्तावकके प्रस्ताव को स्वीकार करे। निवेदक-ब्रह्मदेव मिश्र,

* प्रार्थना *

[शिखरिणी छन्द]

प्रभो पापी मोसो न जग विच कोई अपर है,
क्षमी मेरे दोषैं शरण यह आर्त्तानुचर है ।
भवाब्धैं हा बूड़ों कर गहि उबारो सपद ही,
नहीं सोचौ मोचौ मम दुःख विचारो विरुद ही ॥१॥
तुम्हारी वेदों ने अमित महिमा नाथ बरणी,
छिपी नाहीं प्यारे विमल तुम्हरी कीर्ति करणी ।
अजामीलैं-भीलैं-पतित बहु तारे करि कृपा,
उबारौ मोहू कौं तजहु न प्रभो नाम बड़ पा ॥२॥
तजी आस्था मैंने सुत वित विभौ भोग तनकी,
तुम्हारी हे प्यारे शरण पकरी दीन जन की ।
करौ आशा पूरी त्रिभुवन पते हे ! कर दया,
व्यथा भंजौ मेरी दरश द्रुत दै नाथ कृपया ॥३॥
न मैंने कोई भी कठिन तप-यज्ञादिक किया,
न भक्ती से ही हा प्रभु तव पदाब्जैं चित दिया ।
सुना पै मैंने है पतित—अघहारी हरि तुम्हैं,
क्षमा कीजै दोषैं दरश निज दीजै अब हमैं ॥ ४ ॥
तुम्हीं हौ दुष्टों के दल दमन कारी विपति हा,
स्वभक्तों के त्राता अधम अघियों को सुगतिदा ।
करौ रक्षा मेरी त्रिविध भव व्याधा हरि हरो,
दयासिन्धो हा हा प्रकट हमरी बांह पकरो ॥ ५ ॥
कहा भाषों विन्ती लघु मुख तुम्हारी यदुपते,
सहस्रों वक्त्रों से वदत महिमाः शेषहु थके ।
अहो रात्रै प्यारे नयन तरसैं हा दुख भरे ॥
कृपा कीजै दीजै दरश निज दासैं द्रुत हरे ॥ ६ ॥

ले० पं० बांकेबिहारीलाल वाजपेयी पुरावली



श्रावण शुक्ल पूर्णिमा को श्रावणी सलूनो वा राखीपूनो कहते हैं। यह त्यौहार वर्षभर मे हिन्दूमात्र के लिये विशेष कर द्विजातियों के लिये मुख्य है। इस श्रावणी कर्म का प्राचीन नाम उपाकर्म है। पूर्वकालमें पौष वा माघ की अष्टमी को वेदोत्सर्जन कर्म और इस श्रावणी के दिन वेदोपाकर्म किये जाया करते थे किन्तु समय के फेरसे वर्तमान काल मे दोनों उक्त कर्म एकसाथ आज ही के दिन करदिये जाते हैं तिस पर भी अनेक द्विजातीय भाई अपने इस अवश्य कर्त्तव्य कर्मको समझते और करते ही नहीं, किन्तु यह देखकर कुछ सन्तोष होता है कि कुछ सनातनधर्मप्रेमी अब भी अपने कर्त्तव्य पालनमें तत्पर हैं। वस्तुतः सब सनातनधर्म सभाओंकी सृष्टि इसी उद्देश्य पर निर्भर है कि वे समय २ पर सनातनधर्मावलम्बियों को धर्मानुष्ठानार्थ उत्तेजित करती रहें।

मुझे यह जान कर हर्ष हुआ कि अजमेरस्थ श्रीसद्धर्मामृतवर्षिणी सभा जो यहां संवत् १६३८ से स्थापित है यथासम्भव समयानुसार सनातनधर्मावलम्बियोंको धर्मा॰नुष्ठानार्थ सावधान करती रहती है। वही प्रतिवर्ष श्रावणी कर्मानुष्ठानार्थ कुछ दिन पूर्व ही विशेष सूचना निकाला करती है, तदनुसार इस वर्ष मुझे भी इस शुभ कार्यमें सम्मिलित होने का सुअवसर और सौभाग्य प्राप्त हुआ। सूचनानुसार प्रातःकाल ७ बजे का समय और स्थान, श्रीजगदीशघाट, आनासागर पर नियत था। तदनुसार कई द्विजातीय मण्डलियां अपनी २ पूजन सामग्री सहित नियत स्थान पर पहुंच गईं। प्रत्येक गोल में अपने २ आचार्य ने कार्यारम्भ किया। हमारी मण्डली में श्रीमान् महामहोपदेशक, पंजाब भूषण, पं॰ बुलाकीरामजी शास्त्री, सांख्यरत्न, विद्यानिधि, विद्यासागर, धर्मशिक्षक, मेयोकालेज, अजमेर, थे जो कि जब से यहां आये हैं सभा के साथ ही मिलकर कर्म किया करते है और उनके यथाविधि शास्त्रानुसार यथायोग्य कर्म करने के कारण बहुत से सभासद् इन्हीं के साथ सम्मिलित हो जाते हैं। अतः मैं भी इसी मण्डली मे सम्मिलित हो गया।

उक्त शास्त्री जी ने प्रथम हेमाद्रि प्रोक्त कात्यायनविधि से समन्त्रक स्नान किये और मण्डली को करवाये। भगवत् कृपा से इस वर्ष वर्षा हो जाने से आनासागर में जल यथेष्ट है, अतः पूर्णानन्द रहा। इस स्नान काल में "जलशूर ब्राह्मण, की कहावतानुसार स्नानशूरता-परीक्षा भी हो गई जिस में परीक्षार्थियों में से ८ प्रथम श्रेणी में, १२ द्वितीय और १३ तृतीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हुए। इन सब में मेयोकालेजा॰न्तर्गत, अलवर कोठी के मोतमिद (सुपरिंटैन्डैन्ट) पं॰ शंकरलालजी शर्मा सर्वोत्तम रहे। क्यो न रहें, वे उन शंकर के लाल हैं जिन के मस्तक पर श्रीगंगा जी अवतीर्ण

हुई हैं और अब भी सदैव जलाभिषेक होता ही रहता है। शेष परीक्षार्थी भी यथा कथञ्चित् चतुर्थ श्रेणी में पास हुए जो शारीरिक दुर्बलता से शीतासहिष्णु तो थे ही फिर ऊपर से प्रातःकाल का समय, रात्रिभर की वर्षा, सूर्य के अदर्शन, वायु की प्रबलता, और नन्हीं नन्हीं फुहारोंसे कम्पित हो मानो विना शास्त्रार्थ ही दन्त किटा-किट कर रहे थे।

तदनन्तर सन्ध्योपासन, नित्य का देवऋषि पितृतर्पण और समन्त्रक सूर्योपस्थान करवाया, इस परीक्षामें भी देर तक दोनों हाथ उठाकर खड़े रहने में भी कई सज्जनों की पहलीसी दशा रही।

तत्पश्चात् सारुन्धतीक सप्तर्षि पूजन किया गया जिसके आरम्भ में श्रीगणेशादि पूजन, कलशस्थापन, रक्षाविधान, यज्ञोपवीतसंस्कार यथाशास्त्र समन्त्रक किये गये जिन्हें बहुधा लोग नहीं किया करते हैं, इसका कारण शास्त्र का न जानना है। पूजनोत्तर वैदिक ऋषितर्पण आरम्भ किया गया जिस में सम्मिलित "तृप्यन्ताम्,, की ध्वनि से श्रीजगदीश मन्दिर गूंज उठा। अहा! कैसा अच्छा, प्राचीन कालिक सुदृश्य का प्रत्यक्ष हो रहा था और मन में यह भाव उठे विना नहीं रहता था कि धन्य थे वे हमारे पूर्वज महर्षिगण जो कि साङ्गोपांग संहिता और ब्राह्मणादि का समग्र स्वाध्याय पाठ जिह्वाग्र किया करते थे। परन्तु हाय! आज दुर्भाग्यवश शास्त्री जी के संहिता, ब्राह्मण, उपनिषद, आदि के प्रतीकमात्र (प्रारम्भिक मन्त्रों) के पाठ श्रवणमात्र से ही कई सज्जन उकतासे गये थे और शीघ्र ही समाप्ति की प्रतीक्षा में थे। वस्तुतः यह सब हमारी धर्मशिक्षाके अभाव नित्य नैमित्तिक कर्मों के अनभ्यास और पराधीनता के कारण समयाभाव का परिणाम है। तथापि अजमेरस्थ श्रीसद्धर्मामृतवर्षिणी-सभा को धन्यवाद है कि जो "अकरणात् मन्द करणं श्रेयः,, के अनुसार यथाशक्ति सनातनधर्म का प्रचार कर रही है जिस से मुझे परम सन्तोष हुआ।

ब्रजवल्लभ मिश्र, अजमेर।



प्लेगदर्पण। धर्मशाला घाट पटना के निवासी राय पूरनचन्द जी ने इस पुस्तक की रचना की है, पूरनचन्द जी ने पुस्तक अपने अनुभव से लिखी है और इस में आप ने यह सम्मति स्थिर की है कि प्लेग होने का कारण पादसंघर्षण विष है आप ने इस सिद्धान्त की पुष्टि में कितने ही प्रमाण भी दिये हैं प्लेग की चिकित्सा का तो इस में कोई स्पष्ट वर्णन नहीं है पर प्लेग के भिन्न २ प्रकार के रोगियों की

कथायें जिन को स्वय राय जी ने अपनी आंखों से देखा था इस में दी गई हैं इन क॰ थाओं के नायक कितने ही यमसदन को प्रस्थान कर गये और कितने ही जी गये क॰ थाये रोचक हैं इसमें रायजीका प्लेग रोग पर वह वक्तव्य भी है जो कानपुरके चतुर्थ वैद्य सम्मेलनमें पढ़ा गया था जो हो वैद्योंको तथा प्लेगकी खोज करने वालों को यह पुस्तक पढ़नी चाहिये क्योंकि वर्षों परिश्रम करके राय पूरनचन्द जीने कुछ सिद्धान्त तो इस मारात्मक रोग के विषय में निश्चय किये हैं अब वे ठीक हैं या वेठीक, इसका विचार वैद्यों को करना चाहिये पुस्तक डिमाई वारह पेजा के १७० पृष्ठों में समाप्त हुई है मू० ॥=) है मिलने का पता-राय पूरनचन्द धर्मशाला घाट पटना।

हृदयतरङ्ग । ले० दुलारेलाल भार्गव प्रकाशक नवलकिशोर प्रेस लखनऊ मूल्य।-)

यह गंगा पुस्तकमालाका प्रथम पुष्प है गंगा शब्द अनुवादकके किसी सम्बन्धी के स्मरणार्थ प्रयुक्त किया गया है। यह महात्मा जेम्स एलन लिखित "आउट फ्रामदी हार्ट" नामक पुस्तक का हिन्दी अनुवाद है अनुवाद कैसा हुआ है यह हम नही कह सकते क्योंकि मूल पुस्तक हमने देखी नही पर इसमें जो वातें कही गई हैं वे अच्छी हैं अंग्रेजी से अनुवाद करने योग्य पुस्तकों मे भाषाका स्टाइल (ढंग) स्वतन्त्र रहना चाहिये इसके कोई २ शब्द चिन्त्य हैं।

होमरूल । अभ्युदय प्रेस प्रयाग थोड़े दिनों से स्वराज्य सम्बन्धी साहित्यसे देश का विशेष हितसाधन कर रहा है यह पुस्तक उनमें से अन्यतम है इसकी ले० श्रीमती एनी वेसेण्ट हैं इसमें वड़े उत्तम प्रकार से स्वराज्य की उत्तमता दिखाई गई है स्वराज्य सम्बन्धी साहित्य सभी देश प्रेमियों को देखना चाहिये पुस्तक का मूल्य =) है और मिलनेका पता-अभ्युदय प्रेस प्रयाग।

ब्राह्मण्य साधना । यह इन्द्रप्रस्थ ब्राह्मण सभा के महाधिवेशन में उसके सभापति राजा शशिशेखरेश्वर रायवहादुर की दी हुई वक्तृता है मूल्य =) कुछ अ॰ धिक है वातें विचारपूर्ण कही गई हैं। पर समस्त ब्राह्मणों के एकत्व में युक्तियां देकर उनमे परस्पर प्रीति वर्द्धनका उपाय करना चाहिये इस विषयका वर्णन इसमें नही है

भारतोदय । यह हिन्दीका पाक्षिकपत्र है पहिले भी ज्वालापुर महाविद्यालय से निकलता था वीचमे कई कारणों से दो वर्षसे वन्द था फिर निकालने के लिये जब दरख्वास्त दी गई तव जमानत मांगी गई अव सुनते हैं जमानत माफ होगई है। लेख मासिक पत्रों के योग्य अच्छे रहते हैं भाषाकी शैली सूचित कर रही है कि इसका सम्पादन प० पद्मसिंह शर्मा के हाथों से होता है हम इसकी उन्नति के आकांक्षी है यद्यपि यह आर्यसमाजी पत्र है पर किसीभी पार्टीमें नहीं है, वार्षिक मूल्य २) है।

मिलनेका पता-मैनेजर भारतोदय महाविद्यालय ज्वालापुर (सहारनपुर)

विविध विषय

श्री स्वामी आलाराम जी का भ्रमण ।

श्री स्वा० आलाराम सागर संन्यासी ने प्रयागराज से प्रस्थान कर जसवन्तनगर जिला इटावा में एक दिन धर्मोपदेश दिया, पश्चात् कुचामन रोड नांवामें दो रोज तक व्याख्यान हुए, वहांसे चलकर स्वामी जी जोधपुर पहुंचे और वहां के सुपरिण्टेण्डेण्ट कृष्णलाल जी के यहां उतरे और पांच रोज़ तक ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया तत्पश्चात् सिन्धु हैदराबाद डिवीजन के मोहम्मद खां के टंडे में पहुंचे वहां महन्त आत्मारामके बंगले में कई दिन तक धर्मोपदेश दिया पं० खूबचन्द्र के भजनों से लोग विशेष प्रसन्न रहे अब स्वामी जी करांची जानेवाले हैं। पं० रामनाथ मिश्र,

श्रीजगद्गुरु का देहली में शुभागमन ।

१६ मई सन् १९१७ को सायंकाल ५ बजे जगद्गुरु शङ्कराचार्य भारती स्वामी श्री १०८ गौरी शिव गंगामठ शिमले से मोटर द्वारा देहली पधारे शहर की सनातनधर्म सभाओं के कार्यकर्त्तागण व सभासद् व नगर निवासी सनातन धर्मियों ने आपका अच्छी तरह स्वागत किया ला० रंगीलाल जी ने महाराज के कण्ठ में पुष्पमाला प- हनाई और महाराज की सवारी (प्रोसेशन) चांदनी चौकसे होकर ब्रजनाथके कूंचेमें पहुंची सवारी के साथ ३००० मनुष्यों की भीड़ थी। १७ मई सन् १९१७ को शामके ७॥ बजे से ला० लक्ष्मीनारायण की धर्मशाला में अधिवेशन हुआ सभा स्थान में जगह २ मङ्गलसूचक पद्य लगे हुए थे सनातन धर्म मण्डल की ओर से एक अभिनन्दनपत्र महाराज को और एक रायसाहिब अम्बेप्रसादजीको रायसाहिब पदवी की प्रदान होने के कारण दिया गया तत्पश्चात् स्वामी जी महाराज ने अपूर्व अलौकिक वेदान्त- रहस्य,पर व्याख्यान दिया १८ मई को भी स्वामी जी महाराज का व्याख्यान कर्म उपासना पर हुआ पश्चात् गवर्नमेण्ट को धन्यवाद देकर सभा विसर्जित हुई मण्डलके कार्य कर्त्ता तथा रईसों ने स्वामीजीकी पूजाकी।

महाकवि कालिदास की स्मृति सभा ।

विगत १८ श्रावण (चान्द्र श्रावण सुदी १५) सं० १९७४ शुक्रवार के दिन सन्ध्या समय हवड़ा के अन्तर्गत शिवपुर प्रान्त के सहस्र-भुजा काली के मन्दिरमें संस्कृत के महाकवि कालिदास की स्मृति-सभा का एक अधिवेशन हो गया है। श्रीयुत प- ण्डित तारानाथ काव्यतीर्थ महोदय ने सभापति का आसन सुशोभित किया था।

वङ्गभाषा के साप्ताहिक तथा दैनिक पत्र वसुमतिके सम्पादक श्रीयुत बाबू शशीभूषण मुखोपाध्याय महोदय ने "महाकवि कालिदास की कविता के महत्व" पर सारगर्मित-व्याख्यान दिया था, बङ्गला वङ्गवासी के राय साहब श्रीयुत बाबू विहारीलाल सरकार महाशय ने "महाकवि कालिदास की स्मृति-सभा की आवश्यकता" पर वक्तृता दी थी। तदुपरान्त श्रीयुत बाबू निवारणचन्द्रदत्तने "महाकवि कालिदास का महत्त्व" तथा सभापति महोदय ने "महाकवि कालिदास की कविता के सौन्दर्य्य" पर अभिभाषण किया था।

श्रीमती छात्रसनातनधर्म सभाकावार्षिकोत्सव।

श्रीमती छात्रोपकारिणी सनातनधर्म सभा का वार्षिक अधिवेशन ता० २० तथा २१ जुलाई को श्री राजा जालिताप्रसाद जी रा० व० के सभापतित्व में पुराने हाई-स्कूल के हाल में सम्पन्न हो गया। हाल खूब सुन्दरता से सजा था। अनेक स्थलों पर मोटो चिपके हुए थे। मन्त्र बहुत बड़ा तथा सुन्दर था। बाहर फाटक पर खूब बेलें और गमले लगे थे और सम्राट् चित्र टगा था। गैस के प्रकाश और भजनोपदेशक के कठस्वर से हाल भरा हुवा थां। पहिले दिन स्वस्तिवाचन और मङ्गलाचरण के अनन्तर वैद्य पं० रघुनन्दनप्रसाद मिश्र ने भारत के महत्त्व पर व्याख्यान दिया, फिर पं० रघुनन्दनप्रसाद जी मिश्र उपसभापति ने बाल विवाह के विरुद्ध एक सतर्क लेख पढ़ा। मन्त्री श्रीगोस्वामी बालकृष्णाचार्य जी के रिपोर्ट सुनाने के अनन्तर पं० ब्रजनन्दनप्रसाद मिश्र तथा महोपदेशक पं० गोविन्दरामजी शास्त्री के क्रमशः हिन्दी महत्त्व और 'मनुष्य जीवन और उसका कर्त्तव्य' पर व्याख्यान हुए। दूसरे दिन पुनः मन्त्री जी सनातनधर्म पर पण्डित ब्रजनन्दनप्रसाद मिश्र 'जातीयता, पर पं० रघुनन्दनप्रसाद मिश्र नागरी लिपि पर और महोपदेशक पं० गोविन्दरामजी शर्मा 'रासपंचाध्यायी, पर बोले! इसी दिन पीलीभीत के सब स्कूलोंके हिन्दी और संस्कृत में प्रथम उत्तीर्ण होने वाले सब छात्रों को सभा की ओर से मिठाई और पुस्तकें पारितोषिक में दी गई। राजा साहब ने सभा को २०) और रा० व० साहू रामस्वरूपजी आनरेरी मजिस्ट्रेट ने उसी समय दान किये। अन्त में पं० ब्रजनन्दन प्रसाद जी ने सब को रसपूर्ण भाषण में धन्यवाद देकर सभा विसर्जित की।

एक संवाद दाता—

नसीराबाद में प्रचार।

श्रीमान् पं० रामेश्वरदत्त शर्मा महोपदेशक ब्रह्मचर्याश्रम सुनपत के पांच दिन तक यहां अतिमनोहर व्याख्यान हुए-मनुष्यों की बड़ी भीड़ होती थी आप के कृष्णभक्ति साकारोपासना आदि व्याख्यान बड़े रोचक थे यदि नसीराबाद निवासी सनातनधर्मसभा स्थापित करदें तो पण्डित जी का आना सार्थक हो जाय और भविष्यत् में भी विद्वानों के व्याख्यान यहां होते रहें जिन्हें सुनकर जन्म कृतार्थ करें।

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS ETAWAH.

नवीन छपी पुस्तकें ।

पूजाफूल ।

यह पुस्तक अभी हाल ही में छपी है इसमें पंडित मुरलीधर पाण्डेय और पंडित मुकुटधर पाण्डेय की लिखी हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी ७४ कविताओं का संग्रह है कविता प्रेमियों—विशेष करके खड़ी बोली की हिन्दी कविता के रसिकोंको—यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये इस के देखनेसे मालूम पड़ेगा कि उत्तम कविता किसे कहते हैं । हिन्दी कविताओंका ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा । मूल्य ॥)

पाराशरस्मृति ।

अष्टादशस्मृतियों में पाराशरस्मृति भी है इसको हमने पृथक् छपवाया है महर्षि पाराशर के कहे धर्म कलियुग में विशेष मान्य हैं । यद्यपि सब युगोंमें सब स्मृतियों के जानने पढ़ने और तदनुसार आचरण करके अपने सुधार करनेकी आवश्यकता है पर जिन लोगोंको विस्तृत धर्म शास्त्र देखने का अवकाश नहीं है उनको कमसे कम यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये ऊपर मूल श्लोक तथा नीचे भाषाटीका है । यह पुस्तक आराकी सनातनधर्म परीक्षा के कोर्स में नियत है । मूल्य ॥) है ।

---

* स्वप्न वासवदत्ता *

यह नाटक संस्कृतके महाकवि भास का रचा हुआ है । बाण, श्रीहर्ष, भवभूति, वामन, दण्डी, इत्यादि अनेक प्रसिद्ध प्राचीन विद्वानोंने महाकवि भासकी कुछ न कुछ प्रशंसाकी है प्रस्तुत नाटक तो इन का बहुत ही प्रसिद्ध है ।

अनुवाद ग्रन्थमें भासके समय गुण आदि पर विचार किया गया है । भास की सूक्तियोंका संग्रह भी दिया गया है । अनुवाद गद्यपद्य दोनों में है और कथा-सार, पात्र सूची, पद्यानुक्रमणिका आदि भी जोड़दी गई हैं १३२ पृष्ठ की पुस्तकका मूल्य केवल ।ः

विधवाधर्ममीमांसा ।

इस पुस्तक में विधवाओं को किन २ नियमों का पालन करना चाहिये कैसे वे सदाचारिणी रह सकती हैं इस का पूरा व्याख्यान है सम्पादक ब्रा० स० ने इसे लिखा है । मू०)॥

दामिनी ।

यह बड़ा अच्छा एक छोटासा उपन्यास है । इसकी हृदय द्रावक घटनायें थोड़ी देर के लिये आप के चित्त को डांवाडोल करदेंगी खाना पीना भूल जायंगे एक प्रति मंगाकर देखिये मू० ≈)

श्री ब्राह्मण पुस्तकालय मेरठकी पुस्तकें।

वासिष्ठी धनुर्वेद संहिता भाषाटीका चित्रों सहित।

यह पुस्तक बड़े परिश्रम और द्रव्य व्यय करने पर मिली थी इसमें धनुष का प्रमाण और बनाना तीर चलाना वाण की कवायद शब्द भेदी आदि क्रिया है और २ लोगों ने भी पुस्तकें छापी हैं किसी ने तो वाराही संहिता के श्लोक लिख मारे हैं किसी किसी ने मनगढन्त भी की है। परन्तु हमें तो यह पुस्तक मूल मात्र राज्यस्थान से प्राप्त हुई थी दाम ॥≈)

श्राद्ध मण्डनम् भाषा टीका—दयानन्दियों के प्रश्नोत्तर सहित पुस्तक दोनों ही पक्ष वालों के देखने योग्य हैं ब्राह्मण का पेट लेटर बक्स आदि विषयों के उत्तर वेद स्मृति आदि और युक्तियों द्वारा दिये हैं दाम ॥)

साकार निन्दक मुख चपेटिका (मूर्त्तिपूजा) चारों वेदों से संग्रह कर ईश्व साकार दयानन्द जी के भाष्य से ही दिखलाया है प्रथम भाग ॥) दूसरा भाग ।≈)

षट् चक्र निरूपण—इस पुस्तक के अनुसार उपासना करने से कविता शक्ति लाभ, परकायप्रवेश आकाशगी, त्रैलोक्य दर्शी, पराये मन की बात जानना दाम ।-)

ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था भाषा टीका—इस में किन कर्मों के प्रभावों से मनुष्योंकी ब्राह्मण संज्ञा हो सकती है और कौनसे कर्म्मोंके द्वारा ब्राह्मण शूद्र से भी अधम श्रेणीमे मानने योग्य होजाता है यह इस पुस्तकमें पुष्ट प्रमाणों और अनेक उदाहरणों द्वारा दर्शाया है दाम ।)

योग सार—इससे समाधी लगाने क्रिया आसन और उनके गुण तथा चित्र निराहार रहना वनस्पति खाने से भूख न लगना प्राणायाम स्वरोदय आदि अनेक विषय हैं दाम ≋)

शिक्षा दर्पण—इस पुस्तक मे लेखक ने प्रचलित सांसारिक कुरीतियोंका खण्डन और परिमार्थक मार्गका यथोचित मण्डन किया है यह शिक्षाकी अपूर्व पुस्तक है दाम≈)

अनार्य्यसमाज रहस्य—नवीन आर्यमतके सिद्धान्तोंकी सैर करलो वेदके मन्त्रों से जो दयानन्द जी ने तार रैल चलाना आदि लिखे थे वे मन्त्र इसीमें हैं दाम ≋)

देव सभा—अर्थात् दयानन्दियों की किसमत का फैसला दाम ≋)

सुधर्म्म मञ्जरी—नवीन पथियोंका खण्डन अति उत्तमतासे लेखकने किया है ≈)

तीर्थ निरूपण (दयानन्द मत दूषण) तीर्थ विषय मण्डनकी अनूठी पुस्तक है दाम ≈)

कहानी टका कमानी—यह कहानी क्या हैं मानो रुपया पैदा करने का एक अमूल्य रत्न है दाम ।)

पुराणप्रतिपादनम्—पुराण किसने बनाये इस नामकी पुस्तकका उत्तर दाम -)

गोत्र प्रदीप— इसमे ब्राह्मणों के गोत्र, वेद, शाखा, सूत्र, प्रवर आदि लिखे हैं ब्राह्मण मात्र को इस की एक २ प्रति अपने पास रखनी चाहिये दाम -) एकआना

पुस्तकें मिलनेका पता—

प्रयागदत्त शर्म्मा श्रीब्राह्मण पुस्तकालय शहर मेरठ।

नकली दवाएं और बर्म्मन नाम की नकल से बचो।

बीमारीको रोकनेसे आराम करना अच्छा।

आजकल सैकड़ो पेटेन्ट दवाए फसली बुखार की दिखाई पडती है। इनमे प्रायः कुईनैन है, इसलिये दवाए बुखार को कुछ समय तक रोक देती है, परन्तु आराम नही कर सकती।

इसमें ये विशेष गुण है:—

१। यह मलेरियाके जीवोंको मार देती है इसलिये इसको चार पांच खुराक पीने हीसे बुखार का आना बन्द होता है।

२। यह खून को गाढ़ा करती है और उस के दोषों को मिटाती है।

३। यह पिलही को गलाती है। देखिये इस दवा से यह हड्डी का ठाठर कैसा पुष्ट हो गया है। मोल छोटी शीशी ॥) आठ आने, पै० व डा० म० ।~) २ शीशी तक ॥) आठ आने। मोल बड़ी शीशी ॥।=) चौदह आने। पै० व डाक म० ।=) छः आने। २ शीशी तक ॥) आठ आने।

दमे की दवा।

बहुत दमे वालों के अच्छे न होने का कारण यह है कि उन के चिकित्सक दमे को कफ का रोग समझते हैं, और गरम दवाएं दिया करते हैं। जिस से कुछ समय के लिये दमा दब भी जाता है, परन्तु रोग का जाना दूर रहा उस की जड़ और भी जम जाती है। दमा वायु का रोग है और डाक्तर बर्म्मन की बनाई "दमेकी दवा„ बिगडी हुई वायु को फिर अपनी अच्छी हालत में ला सकती है।

इस दवा के दो विशेष गुण देखने में आते हैं।

१। दमा चाहे जैसे जोर से उछलता हो इस दवा के दो-एक मौताज पीने ही से दब जाता है।

२। कुछ दिन तक इस दवा के लगातार खाने से बहुतों का दमा जड से चला जाता है और जबतक दवा पी जाती है दमा जोर नहीं करता। जो दमे के रोगी संखिया दूसरे रसादिक अफीम धतूरा वा डाक्तरी दवाएं ब्रोमाईड, क्लोरेल आदिक खाकर निराश हुए हैं उन को चाहिये इस दवा की जांच करें। मोल १।) डा० म० व पैः १ से ३ शीशी तक ।~) ६ शीशी ।≝) आने।

डा० एस० के० बर्म्मन, ५, ६ ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता। नं० ४२

P. O. REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

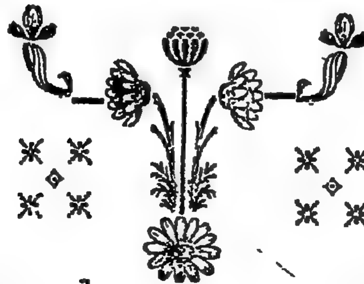
सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४ ‖ सिंह भाद्रपद सौरवि० १९७४
अगस्त १९१७ ‖ अङ्क ८

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २।)]   [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।



ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≶) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देरहोनेपर ≶) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा ।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्पिक ५) रु० लिया जाता है ।

(६) पता अधिक काल के लिये वदलवाना चाहिये थोडे दिनोंके लिये अपना प्रवन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≶)॥ तीन मास तक ≶)। ६ मास तक ≶) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(६) विज्ञापन बंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नहीं बांटे जांयगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	सिंह भाद्रपद सौर वि० १९७४ अगस्त १९१७	अङ्क ८

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ-मङ्गलाचरणम्

पितुंनुस्तोषं महोधर्माणं तविषीम् ।
यस्यत्रितोव्योजसा वृत्रंविपर्वमर्दयत् ॥

शु० यजुः ३४ । ७॥

तं पितुं स्तौमि महतो धारयितारं बलस्य, तविषीति बलनाम तवतेर्वा वृद्धिकर्मणो यस्य त्रित ओजसा बलेन त्रितस्त्रिस्थान इन्द्रो वृत्रं विपर्वाणं व्यर्दयति ॥

निरु० ६ । २५ ॥

अ०--यस्यान्नस्यौजसा बलेन त्रितस्त्रिस्थानस्त्रिषु भूम्यन्तरिक्षस्वर्गेषु स्थानेष्वप्रतिहतप्रभावो बलाधिपतिरिन्द्रो देवराजोऽपि विपर्वं विपर्वाणं विगतसन्धिबन्धनं कृत्वा वृत्रं मेघं व्यर्द्दयद् व्यर्द्दयति तं तविषीं [विभक्तिव्यत्ययः] तविषीपदवाच्यस्य महो महतो बलस्य धर्माणं धारयितारं पितुमन्नमहं स्तोषमस्तोषं स्तौमि। अर्थात्--देवमानुषादिनानाविग्रहेषु यद् दिव्यं मानुषं वा बलमस्ति तत्सर्वमन्नस्यैवान्नभक्षणेनैवोत्पद्यते, यागेषु हुतं दत्तं वा सोमादिरूपं हविरन्नं भुक्त्वैव देवा अपि बलिनो भवन्ति तस्माद्धेतोः पितोरन्नस्य स्तुतिः कर्त्तव्या । अन्नाभिमानिनी बलाधिष्ठात्री देवतैवात्र स्तुतिं लभते नान्यत्किमप्यचेतनं वस्तु ॥

भाषार्थः--(यस्यौजसा त्रितः) पितु नामक जिस अन्नके बलसे भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक इन तीन स्थानों में जिनके प्रभाव को कोई नष्ट नही कर सकता ऐसे बलाधिपति इन्द्र देवराज भी (वृत्र विपर्वंव्यर्द्दयत्) मेघ नामक वृत्रासुर के सन्धिबन्धनों को काटकर उसका विध्वंस करते हैं (तविषी महो धर्माणम्) महान् बलको धारण करने वाले उस (पितुं नु स्तोषम्) पितु नामक अन्न की स्तुति मैं करता हूं। देव मनुष्यादि अनेक प्राणियों मे जो दिव्य वा मानुष बल है, वह सब अन्न का ही है क्योंकि अन्नके भक्षणसे ही उत्पन्न होता है। सृष्टिमें चराचर जितने पदार्थ उत्पन्न होते हैं सभी कुछ न कुछ खाते हैं, जो जिसको खाता है वही उसका अन्न है, यज्ञों में होम किया वा दिया हुआ सोमरस वा घी पुरोडाशादि रूप हविष्यान्नका भक्षण करके ही देवता लोग भी बलवान् होते हैं। इस कारण अन्नकी स्तुति करनी चाहिये, उस अन्न स्तुतिमे अन्नाभिमानिनी बलाधिष्ठात्री चेतन देवता की ही स्तुति होती है किन्तु किसी जड़ पदार्थकी स्तुति करना इष्ट नही है ॥

योगाभ्यास विषयक प्रश्नोंके उत्तर

प्रयाग निवासी एक जिज्ञासु महाशय ने योगाभ्यासके विषय में कुछ प्रश्न भेजे हैं उनका समाधान पाठकों के उपकारार्थ यहां छपाया जाता है।

प्रश्न १—क्या योग ही जीवन का सच्चा उद्देश्य नहीं है?॥

उत्तर—इस प्रश्नमें जीवन शब्द कहनेसे मानुषी जीवन ही अभीष्ट होगा, इस लिये इसी अभिप्राय को लेकर उत्तर दिया जायगा। मनुष्य जन्म प्राप्त होने का मुख्य वा

सच्चा उद्देश्य यही है कि वह भावी दुःखों से बचने और अभीष्ट सच्चे सुख को प्राप्त करने की चेष्टा बड़े समारोह से करे वा मन वाणी शरीर से पूरी २ चेष्टा करे। और सच्चा सुख प्राप्त होने का साधन योग ही है, इस कारण योगको मानुषी जीवन का सच्चा उद्देश्य कहें वा मानें तो अनुचित कुछ नहीं है। योग शब्द का अर्थ प्रश्न कर्त्ता ने ठीक नहीं समझा है, इस से जो अर्थ योग शब्द का ठीक समझा जायगा उसका विचार आगे लिखा जायगा॥

प्रश्न २—क्या विना गुरु के योग हो सकता है?॥

उत्तर २—किसी साक्षात् मनुष्य गुरुके विना भी योग सिद्धि प्राप्त हो सकती है ऐसी दशामें योग दर्शनके सूत्र भाष्य वा व्याख्यान लिखने वाले ऋषि मुनि,वा श्रेष्ठ विद्वानोंके उपदेश पर ही जिज्ञासु को श्रद्धा विश्वास करके उनके बताये मार्ग पर ही चलना होगा इससे वे ऋष्यादि लोग ही उस जिज्ञासुके गुरु हो जावेंगे। अर्थात् ऐसी दशा में साक्षात् कोई गुरु न होने पर भी परम्परागत वे ऋष्यादि लोग ही गुरु माने जावेंगे। चाहें यों कहो कि किसी का उपदेश अपेक्षित है वह उपदेश चाहे साक्षात् संगत मनुष्य गुरु द्वारा प्राप्त हो वा लिखित मुद्रित पुस्तक द्वारा प्राप्त हो, उसी उपदेश के अवलम्ब से योग हो सकता है। योग दर्शन के भाष्य में कहा है कि—

योगेनयोगोज्ञातव्यो योगोयोगात्प्रवर्त्तते।
योऽप्रमत्तस्तुयोगेन सयोगेरमतेचिरम्॥१॥

भा०—योग सूत्र भाष्यादि को देखने समझने रूप योग से चित्त की एकाग्रता वा समाधि रूप योगको जानना चाहिये क्योंकि योग सूत्रादि का श्रवण मनन निदिध्यासन करने से समाध्यात्मक योगकी प्रवृत्ति बढ़ती है। जो जिज्ञासु मनुष्य योगाभ्यास में प्रमाद नहीं करता वह चिरकाल तक योग के आनन्द का अनुभव करता है, जैसे सर्वत्र काम काम को सिखा देता है वैसे ही योग-योग को प्रवृत्त कर देता है; ऐसी दशा में साक्षात् मनुष्य गुरु के न होने पर भी जिज्ञासु मनुष्य योगाभ्यास में उन्नति प्राप्त कर सकता है॥

प्रश्न ३—क्या भारतवर्षमें योगी अब एक भी नहीं रह गये?। अथवा क्या इस विषयमें आप किसी प्रकार की सहायता कर सकते हैं? वा क्या आप कभी किसी योगीसे मिले हैं अथवा क्या मैं उनसे मिल सकता हूं, और वे इसे बता सकते हैं?॥

उत्तर—भारतवर्षमें योगी लोग अब भी अनेक हैं, उनमें अनेक ढोंगी भी मिलने सम्भव हैं परन्तु सच्चे योगी लोग भी हिमालयादि के अनेक जंगली प्रदेशों में विद्यमान हैं किन्तु उनका अन्वेषण करने में होने वाले कष्टों को सहन करने वालों का अभावसा है। योगी लोग संसारी मनुष्योंके झंझटों से अपनेको बचाना चाहते हुए

अपनी योग्यता को छिपाया करते हैं, जब किसी जिज्ञासु को पूर्णाधिकारी जान लेते हैं। तब उसको उपदेश करते हैं। हम लेख द्वारा ऐसा मार्ग बता सकते हैं कि जिससे मनुष्य योग का जिज्ञासु वास्तव में हो तो वह पूर्ण अधिकारी हो सकता है, यही सहायता हमसे मिल सकती है, हम किसी योगी से कभी नही मिले और मिलने का प्रयत्न इस लिये नही किया कि योग कोई ऐसा वस्तु नहीं जिसे कोई हाथ उठा कर दे देगा किन्तु जितना श्रम करना चाहिये उतना करने पर ही जब योग प्राप्त होना सम्भव है तब योगी को मिलने खोजने की आवश्यकता हमने नही समझी जैसे देश सुधार के कामों के लिये स्वावलम्बन की विशेष आवश्यकता है वैसे योग सिद्ध होने के लिये भी स्वावलम्बन की आवश्यकता है। प्रश्नकर्त्तादि कोई मनुष्य जब तक योग का अधिकारी न बने तावत् किसी योगी से मिलने की चेष्टा उसकी व्यर्थ है क्योंकि जैसे कोई मूर्ख मनुष्य किसी वैयाकरण वा नैयायिकादि विद्वान् से मिले तो उसको जैसे कुछ लाभ नहीं हो सकता वैसे ही अनधिकारी का योगी को मिलना जानो॥

प्रश्न ४—क्या गुफाओं में रह कर निर्वाह नहीं हो सकता?। और ऐसी गुफायें कहां हैं?। क्या केवल कन्दमूल खा कर नहीं रहा जा सकता?॥

उत्तर ४—गुफाओं में रहकर निर्वाह हो सकता है, इसी कारण अति प्राचीन काल से अब तक भी अनेक मनुष्य गुफाओं में रहते हुए निर्वाह करते हैं, वैसी गुफायें पर्वतादिके अनेक स्थलों में हैं जिन को बहुदर्शी लोग जानते हैं। केवल कन्दमूल फल शाकादि खाकर भी निर्वाह हो सकता है, केवल कन्दादि खा कर निर्वाह करने वाले प्राचीन कालमें भी अनेक होते थे और अब भी अनेक हैं परन्तु पहिले की अपेक्षा कन्दादि के आहार का प्रचार घट गया है॥

प्रश्न ५—योगके लिये घर छोड़नेसे माता पिता स्त्री आदिके शाप का क्या कुछ फल हो सकता है? वा क्या योग द्वारा वह पाप दूर नही हो सकता? अथवा क्या योगाभ्यास से भी सहज योग (मिलने एक होने सच्चा आनन्द पाने या दुःख से छुटने) का कोई तरीका हो सकता है?॥

उत्तर—योग के लिये घर छोडने की आवश्यकता एक दम नहीं है, यदि विवाह से पहिले ही विषय वासना से वैराग्य हो तब तो विवाह ही नही करना चाहिये और यदि भूल में हो गया हो तो यावत् पुत्र हो कर समर्थ हो जावे तावत् स्त्री पुत्रादि की रक्षा करते हुए यथासम्भव घर में ही योग साधन करै तदनन्तर उन को समझा कर एकान्त में जाके योगाभ्यास करे यदि स्त्री पुत्र न हों किन्तु केवल माता पिता हों तब तो श्रद्धा भक्तिसे उनकी सेवा करता हुआ और भी अधिक घरमें ही योग साधन कर सकता है,माता पिताके सेवा द्वारा सन्तुष्ट हो जाने पर उन के आशीर्वाद से भी योग सिद्ध हो सकता है। यदि नकली वैराग्य के झोकमें आकर कोई मनुष्य स्त्री पुत्रादि

वा माता पितादि का संग त्यागके घरसे निकल जाता है, तो वह लौटकर वान्ताशी कुत्ते के तुल्य संसारी विषयों में फिर फंस जाता है, यदि किसी को उत्कट वैराग्य प्रतीत हो तो भी वह यथासम्भव माता पितादि के सुख पूर्वक निर्वाह का कुछ प्रबन्ध करके और विनय पूर्वक वार२ मातादि से अपने वैराग्य की इच्छा का निवेदन कर के घर से निकले तो किसी का शाप भी न लगेगा और न कोई शाप देगा। यदि किसी कारण ऐसा न हो सके तो योग साधनके विघ्नोंसे बच जाने पर इनमाता पत्नी आदिके शाप से होने वाला अनिष्ट दूर हो सकता है। योग साधनसे भिन्न दुःख से छूटने का अन्य कोई सहज उपाय नहीं है॥

यदापञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानिमनसासह।
बुद्धिश्चनविचेष्टते तामाहुःपरमांगतिम् ॥२॥
तांयोगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदाभवति योगोहिप्रभवाप्ययौ॥३॥
सू०योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। भाष्यम्—योगः समाधिः
स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः ॥ ४ ॥ योगसूत्रे।

भा०—कठोपनिषद् ६ वल्ली में लिखा है कि जब मन के सहित पांचो ज्ञानेन्द्रिय निश्चल सावधान, विषय वासनाकी ओरसे शान्त स्थिर हो जाते हैं और जब बुद्धि भी विरुद्ध चेष्टा नहीं करती तब वही जीवन्मुक्त दशा रूप परम गति कहाती है, उसीका नाम योग है जब कि इन्द्रियोंकी धारणा स्थिर हो जाती है। जब मनुष्य योगमें प्रवृत्त होता है तब चित्त को एकाग्र रखने के लिये प्रमाद रहित होकर चेष्टा करता है, जब तक बुद्धि आदि की चेष्टा शान्त नहीं होती तभी तक प्रमाद हो सकता है, उसी प्रमाद से बचने को कहा है कि—

तस्मात्प्रजागरःकार्यः पुरुषेणदिवानिशम्।
नमुष्णन्तिछलाद्यस्मात्कामक्रोधादयोऽपिच ॥५॥

भा०—जिस से काम क्रोधादिमें योगी न फंस जावे इस कारण उस योगीको बड़ी सावधानीसे सचेत रहना चाहिये थोड़ा भी प्रमाद भूल होने पर काम क्रोधादि शीघ्र ही चित्तको खेंच लेते हैं, इसी लिये योगीको सदा सजग रहना चाहिये। योगाभ्यास करते समय नूतन दशा उत्पन्न होती और पहिले से प्रवृत्त काम क्रोधादि वृत्तियोंका विनाश होता है इससे वे नष्ट होती हुई काम क्रोधादि की वृत्तियां योगी को फिर

अधोगति में न गिरा दें इस विचार से उसको सदा सचेत रहना चाहिये। चित्त की वृत्तियों का रुक जाना आत्मा का शरीर तथा इन्द्रियों से हटकर अपने स्वरूपमें स्थित होना इसी का नाम योग वा समाधि है। संस्कृत भाषामें योग शब्द के मुख्य दो अर्थ हैं एक योग नाम जोड़ना मिलना मिलाना तथा द्वितीय समाधि समाधान एकाग्रता है - युजिर् योगे धातु से बना योग शब्द यहां न लिया जाय इस लिये; व्यासभाष्य में कहा है कि (योगः समाधिः) अर्थात् युज समाधौ धातु से बनाया योग शब्द यहां लेना चाहिये। अन्तःकरण में परम शान्ति प्राप्त होना ही सुख वा कल्याण का मार्ग है, भगवद्गीता में कहा है कि—

नास्तिबुद्धिरयुक्तस्य नचायुक्तस्यभावना।
नचाभावयतःशान्तिरशान्तस्यकुतःसुखम् ॥

भा०–योग साधन किये विना मनुष्य की बुद्धि ठीक नहीं होती तथा योगाभ्यास के विना भावना भी ठीक नहीं होती, भावना के विना शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिसको शान्ति नहीं उसको सुख कहां? अर्थात् सच्चा सुख प्राप्त होने का मार्ग योग साधन ही है। अब विचारना यह है कि जो मनुष्य अपने मानुष जन्मको सफल वा सार्थक करना चाहता हुआ सच्चा सुख प्राप्त करना चाहता है उसको किस प्रकार योग साधन का आरम्भ करना चाहिये ऐसा विचार यहां संक्षेप से दिखाते हैं॥

जिस मनुष्यने योग साधन विषयमें कुछ नहीं जाना वा न जाननेके तुल्य अत्यल्प जाना है उसको प्रथम घरके माता पिता वा स्त्री पुत्रादि को त्याग कर घर से निकल जाने की वा किसी योगी से मिलने की चेष्टा नहीं करनी चाहिये। क्योंकि इस से कुछ भी उत्तम फल न होगा, न कोई योगी औषध के तुल्य घोलकर योग को पिला देगा। इसलिये उस जिज्ञासु मनुष्यको प्रथम संस्कृत तथा नागरी भाषामें छपे राजयोग दर्शनके सूत्र भाष्य अथवा व्याख्यानोंको किसी पण्डित विद्वान्से पढ़ना वा स्वयं वार वार देखना चाहिये। उस देखने समझने द्वारा जब यह बोध हो कि इसके लिये मुझ को क्या २ करना चाहिये तब चित्त को एकाग्र सावधान शान्त करने के लिये घर में रहता हुआ ही धीरे २ तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान रूप प्रारम्भिक योग साधनों का आरम्भ करे। इनमें तपः शब्द का मुख्य अभिप्राय यह है कि जिज्ञासु को शीत उष्ण मान अपमान, हानि लाभ निन्दा स्तुति इत्यादि परस्पर विरुद्ध द्वन्द्व सहन का अभ्यास करना चाहिये। द्वितीय संसारी कामों से अवकाश मिलने के समय गोष्ठी वा व्यर्थ की गप्पें मारने में वाणी का व्यय न करे किन्तु किसी मन्त्र का जप करे वा ईश्वर देवता के स्तोत्रोंको पढ़ा करे अथवा ज्ञान वैराग्यादि के प्रतिपादक उपनिषदादि पुस्तकों का पाठ किया करे जिसका संस्कार अन्तःकरण में क्रमशः बढ़ता जायगा।

और ईश्वरप्रणिधान नाम ईश्वर की विशेष भक्ति करना, संसार वा परमार्थ के सभी कामों का आरम्भ करते हुए ईश्वर का स्मरण तथा ध्यान करना कि हे भगवन्! इन सब कामों के मुख्य कर्त्ता आप ही हैं आप प्रेरक की प्रेरणा के बिना जब संसार में कुछ छोटा काम भी नहीं होता तब मेरा अभिमान करना मेरी भूल है ऐसा शोचना ही कर्मों को ईश्वरार्पण करना कहाता है। इन तप आदि कामों को किसी कक्षा तक मनुष्य अपने२ घरमें रहता हुआ भी कर सकता है, इन तप आदि से अविद्यादि क्लेश घटते और योग समाधि की योग्यता बढ़ती जाती है। भगवद्गीतामें लिखा है कि—

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्यकर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवतिदुःखहा॥

भा०—योगाभ्यास करने वाले मनुष्य को शुद्ध सात्त्विक परिमित अल्प भोजन करना चाहिये, परिमित अल्पाहार कहने से वही आठ ग्रास परिमित हविष्यान्न खाना चाहिये जैसा चान्द्रायण व्रतमें कहा गया है। चलना फिरना बैठना उठना भी नियत करना चाहिये कि इतनी दूर इतनी देर तक इतनी मध्यम गति से प्रति दिन चलूंगा, इतनी देर अमुक स्थान में बैठूंगा इत्यादि सब कामों के करने की चेष्टा को परिमित कर लेना चाहिये और प्रति दिन शयन करने का समय नियत कर देना चाहिये कि रात्रि में इतने बजे से इतने बजे तक इतनी देर तक सोया करूंगा, ठीक उसी नियत समय प्रतिदिन सोया करे और जागने के लिये नियत किये ठीक समय प्रतिदिन जागना चाहिये। इसी प्रकार शौच करना नाम मल मूत्र का त्याग भी ठीक नियत समय करना उचित है, ऐसा नियम पूर्वक वर्त्ताव करने वाले योगाभ्यासी का योग दुःखों को नष्ट करने वाला होता है॥

अहिंसा, सत्य, अस्तेय नाम चोरी का त्याग, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों नियमों का निरन्तर सेवन करे।

यमान्सेवेतसततं ननित्यंनियमान्बुधः।
यमान्पतत्यकुर्वाणो नियमान्केवलान्भजन्॥

भा०—मनुस्मृति में लिखा है कि योगाभ्यासी मनुष्य यमों का नित्य नियम से निरन्तर सेवन करै और केवल शौचादि नियमों का सेवन न करे, यमों का सेवन न करने से वा केवल नियमों का सेवन करने से जिज्ञासुयोगी योगमार्ग से भ्रष्ट नाम पतित हो जाता है। इस कारण बड़ी दृढ़ता से यमों का पालन करै॥

अहिंसा-सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।
जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्॥

सब प्राणियों के साथ सब काल में सब प्रकार से मन वाणी कर्म के द्वारा द्रोह न करना अर्थात् किसी को दुःख देने की किञ्चित् भी चेष्टा न करना अहिंसा कहाती

है, किसी खास जातिको मारना जात्यवच्छिन्न अहिंसा कहाती है, जो तीर्थ स्थानमें वा अन्य पवित्र स्थान में किसी का वध नहीं करता किन्तु अन्यत्र करता है वह देशावच्छिन्न अहिंसा है, पौर्णमास्यादि पुण्यकाल में वा व्रत के दिनों में किसी प्राणी को न मार के अन्य दिन में वध करना कालावच्छिन्न अहिंसा है और पूर्वाह्णादि समय में न मारना समयावच्छिन्न अहिंसा है। और किसी भी जाति देश काल वा समयमें किसी भी प्राणीको न सताना सार्वभौम अर्थात् व्यापक सर्वदेशी अहिंसा धर्म कहाता है। जानते हुये वाणी से सत्य ही बोलना, जैसा मन में हो वही वाणी से कहना सत्य कहाता है, अर्थात् किसा जाति के लिये वा किसी जाति के साथ किसी भी स्थान में किसी भी दिन वा किसी भी समय असत्य न बोलना यही सार्वभौम सर्वदेशी व्यापक सत्य भाषण है। इसी के अनुसार किसी जाति देश काल और समय में किसी वस्तु को स्वामी की आज्ञा के विना लेने की चेष्टा न करना सार्वभौम अस्तेय कहा वेगा। सभी जाति देश काल समय में उपस्थेन्द्रिय को रोकना किसी भी जातिके साथ वा किसी देशकालादि में किसी प्रकार मनसे भी मैथुनकी चेष्टा न करना यही जात्याद्यनवच्छिन्न सार्वभौम सर्वदेशी व्यापक ब्रह्मचर्य है और-

विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसङ्गहिंसादोषदर्शनादस्वीकरणमपरिग्रहः ॥

विषयों का नाम शब्द स्पर्श रूप रस गन्धात्मक उत्तम वादित्रादि का अर्जन, रक्षण करने से होने वाले क्षय किसीकी हानि वा किसीमें आसक्ति किसी की हिंसा इत्यादि दोषोंके दीखने से विषयोंका किसी जात्यादिरूप से वा किसी देशादि में कदापि स्वीकार न करना सार्वभौम अपरिग्रह लोभका त्याग कहाता है ऐसे जात्याद्यनवच्छिन्न सार्वभौम सर्वदेशी व्यापक ये हिंसादि एक साथ नहीं हो जाते किन्तु योगशास्त्र का मत है कि-

दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ॥

योगके साधनोंको दीर्घ काल तक निरन्तर बड़ी श्रद्धासे करता जावे तो वे साधन दृढ मूलक हो जाते हैं, उनकी जड़ जम जाती है, तब साधारण विरोधियों द्वारा उनकी कुछ हानि नहीं हो सकती, उन योग साधनोंकी दृढता ही योग सिद्धि का कारण है॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥

भा०-जो मनुष्य संसारमें सुखी हैं उनमें मित्रता, दुःखियों में करुणा दया, पुण्यात्माजनोंमें मुदिता-हर्ष और पापी मनुष्यों में उपेक्षा उदासीनता की भावना करे तो जिज्ञासु योगीका चित्त प्रसन्न एकाग्र चंचलता रहित हो जाता है। चित्तका एकाग्र होना ही योग कहाता है। ऐसे अनेक योगसाधन घरमें हो सकते हैं॥

वेदसर्वस्वालोचन ।

[गताङ्क से आगे]

जिस समय कोई राजादि श्रीमान् किसी सुपात्र ब्राह्मण विद्वान् को किसी पदार्थ का वा सुवर्णादि का विधिपूर्वक दान देता है उस समय परस्पर समक्ष में बैठे दोनों दाता प्रतिग्रहीता के निकट कोई तीसरा वा प्रतिग्रह लेने वाला कहता है कि—

कोऽदात्कस्मा अदात्कामोऽदात्कामायादात्कामोऽदाताकामःप्रतिग्रहीताकामैतत्ते ॥ शुक्लयजुषि अ०७मं०४८ ॥

भा०—कौन देता है ? और किसको देता है ? जब कि दान देने लेने वाले दोनों प्रत्यक्ष विधमान हैं तथा दोनों दोनोंको यह भी जानते हैं कि अमुक२ नाम वाले मनुष्य देने लेने वाले हैं, तब क्या ऐसे लौकिक व्यवहार में कभी प्रश्न हो सकता है कि कौन देता और किस को देता है ? लोक रीति से ऐसा प्रश्न वेसमझी का माना जायगा, परन्तु वेद में तत्त्वज्ञान दिखाने के लिये प्रश्न करके उत्तर दिया गया कि काम देता और काम को देता है, काम देने वाला और काम ही लेने वाला है, दान लेनेवाला देय वस्तु को हाथ में लेता हुआ कहता है कि हे काम यह सुवर्णादि देय वस्तु तेरा है। इस तत्त्वज्ञान विचार का सारांश यह है कि दाता मनुष्य को दान देनेकी जो कामना है कि दानरूप पुण्य करने से देवता लोग प्रसन्न संतुष्ट होंगे हम को अभीष्ट फल देंगे ऐसी कामना ही दाता से दान कराती है, और प्रतिग्रह लेने वाले को सुवर्णादि लेकर अपने धर्म सम्बन्धी कार्य सिद्ध करने की तथा अन्न वस्त्रादि जन्य सुख भोग की कामना ही दाता से दान लेने की प्रयोजक है। यदि दाता और प्रतिग्रहीता के मन में उक्त प्रकार की व अन्य किसी भी प्रकार की कामना न हो तो दान देने लेने की कुछ भी चेष्टा करना बन ही नहीं सकता क्योंकि—

अकामस्यक्रियाकाचिद्दृश्यतेनेहकर्हिचित् ॥

जिसको कुछ भी कामना नहीं है वह विहित निषिद्ध किसी काम का अधिकारी नहीं है, इससे सिद्ध है कि कामना ही सब कुछ करती कराती है, इस प्रकार के तत्त्वज्ञान संबद्ध विचार वेद में अपरिमित हैं ॥

ओं-महीनां पयोऽसि ॥

शुक्ल यजु संहिता अ० २ में यह मन्त्र लिखा है, इस मन्त्र से अध्वर्यु लोग घृतपात्र से आज्यस्थाली में घी गिराया करते हैं, इसका अर्थ यह है कि हे आज्य ! तुम मही नाम गौओं का दूध हो—पय नाम दुग्धका है यहां आज्य कार्य और दुग्ध उसका उपादान कारण है, वेद का मत है कि कारण सत् और कार्य असत् है, सत् का प्रति-

पादक वेद है।असत् का नही, कारण के वाचक पदों से वेद में प्रायः कार्य वस्तुओं का ग्रहण किया गया है, इस विचार से भी एक प्रकार का विज्ञान प्रकट होता है। वेद में जो अभिमानिनी देवता को मानकर सभी जड पदार्थों को संबोधित किया है सो यह लौकिक व्यवहार से विरुद्ध अलौकिक विज्ञान है। उच्च कोटि के दार्शनिक विचार को सामने रखकर ध्यान दिया जाय तो यही सिद्ध होगा कि जड चेतन का व्यवहार स्थूल विचार से सबद्ध है, वास्तव में जड़ कुछ भी नही है, किन्तु सभी चेतन है, केवल भेद इतना ही है कि कही चेतनता उद्भूत है और कहीं तिरोभूत है, सभी स्थावर पदार्थों में चेतनता छिपी हुई सी है सर्वज्ञ वेद की दृष्टि में सभी चेतनता एक रूप है, क्योंकि सब स्थावर जङ्गम पदार्थों में चेतनात्मा एक ही कारणरूप से विद्यमान है, जड चेतन में आत्मा भिन्न २ प्रकार का नही है किन्तु भेद केवल प्रकृति के कार्य बुद्धितत्त्वकी स्वच्छता मलिनता के असंख्य प्रकारों का है। एक ही आत्मा सत् चित् और आनन्द रूपो से सबमें एक ही प्रकार से विद्यमान है, जब उस आत्मतत्त्वके विना नामरूपात्मक किसी वस्तु की सत्ता सिद्ध नही होती तब वही सब नाम रूपात्मक है ऐसा कहना मानना कुछ भी अनुचित नही है, इसी अभिप्राय को आगे रखकर सब जड़ पदार्थों को भी वेद ने संबोधित किया है। अर्थात् उस नामरूपात्मक वस्तु में उसी २ के नाम रूप से एक ही आत्मा विद्यमान है यही बात निम्न प्रमाण से कठोपनिषद् में दिखायी है। यथा—

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव।
तथा ह्ययं सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

जैसे अग्नितत्त्व पृथिवी के सब पदार्थों में प्रविष्ट हो कर उस २ वस्तुमें उसी २ के नामरूप से विद्यमान है, अर्थात् जबतक लकडी कण्डादि में लकडी कण्डादि के रूप से ही अग्नि विद्यमान रहता है तभी तक लकडी कण्डादि कहाता है और जब अग्नि अपना स्वरूप धारण करता है तभी लकड़ी कण्डादि को जलाके नष्ट कर देता है। इसीके अनुसार सब प्राणियोंका अन्तरात्मा एक ही परमेश्वर अग्नि पृथिव्यादि सब पदार्थों में उसी २ के नाम रूप से विद्यमान है। उसी सब में तत्तद्रूप से व्याप्त परमेश्वर को उस २ का अभिमानी देवता मानकर वेद में सम्बोधित किया गया है, किन्तु जड़ पदार्थों को सम्बोधित नही किया गया, यह अभिप्राय लोकव्यवहार में ऐसा ही प्रसिद्ध नहीं इसी लिये लोक दृष्टिसे वेद का व्यवहार अलौकिक है। ऐसे ही पूर्वोक्त अभिप्राय को ध्यान में रखता हुआ जो मनुष्य वेदके अर्थ को देखना समझना वा लिखना चाहता है वही वेदार्थ मूल वेदके अनुकूल हो सकता है किन्तु स्वा० दयानन्द जी वा अन्य वैदिक मुनि आदि जो लोग अपनी कल्पनानुसार वेदार्थ करना चाहते हैं, वैसा वेदार्थ कदापि सर्व साधारण को रुचिकर हो ही नहीं सकता, इसी

कारण स्वा० दयानन्द का किया वेद भाष्य अधिक भद्दा हो गया, यदि पं० हरिप्रसाद जी वेदोद्देश्य समझे विना वेदार्थ करेंगे तो वह भी भद्दा ही हो जायगा ॥

अब रहा यह प्रश्न कि वेद में सब विद्यायें हैं यह पक्ष माना जाय तब तो स्वामी दयानन्दादि का कहना अनुचित नहीं और यदि वेद में सब विद्या नहीं हैं किन्तु यज्ञ का ही वर्णन है तो भगवान् शंकराचार्य का यह निम्न कथन निरर्थक होगा कि—

सर्वविद्यास्थानोपबृंहितस्यर्ग्वेदादेर्योनिः कारणं ब्रह्म ।

सब विद्याओं के स्थानों से बढ़े हुए ऋग्वेदादि वेदों का निर्माता ब्रह्म है। संक्षेपसे इस का समाधान यह है कि वेद में साक्षात् यज्ञों का ही प्रतिपादन है परन्तु कहीं दृष्टान्त रूप से वा कहीं अनेकार्थ होने से और कहीं इंगित चेष्टितादि रूप से अन्य वैज्ञानिक विषयों का भी वर्णन वेद में अवश्य है, चाहें यों कहो कि यज्ञ का वर्णन करना वेद का मुख्य विषय है तथा अन्य विद्याओं का वर्णन गौण है, अन्य विषयके जिस वर्णन से यज्ञ की मुख्यता में कुछ बाधा नहीं पड़ती वैसा वर्णन सब याज्ञिक ऋषियोंके अभिप्रायानुकूल है। इससे सिद्ध हुआ कि स्वा० दयानन्द वा पं० हरिप्रसाद उदासीन आदि यज्ञ को सर्वथा छोड़ के पदार्थ विद्यादि का जैसा वर्णन वेद से निकालना चाहते हैं, उन लोगों की चेष्टा सर्वथा वेद विरुद्ध है। इस लिये यही सिद्धान्त सिद्ध हुआ कि वेदमें सब विद्याओं का अंश यज्ञ की मुख्यता के साथ २ मानना चाहिये। जैसे प्राचीन वंश शाला, सदःशाला, हविर्धानमण्डप, आग्नीध्रशाला मार्जालीय, यजमान पत्नीनिवास गृह, ऐष्टिक शाला इत्यादि यज्ञ स्थानों के निर्माण के नियमोंसे इञ्जिनियरी वा गणित विद्या सिद्ध होती है परन्तु गणित वा इंजिनयरी का साक्षात् वर्णन यज्ञको छोड़कर वेद में नहीं है किन्तु इञ्जिनियरी आदिके भिन्न २ स्वतन्त्र पुस्तक वेदाभिप्रायको लेकर ही बने थे जिनमें से कोई २ मिलते हैं अनेक लुप्त हो गये सिद्धान्त यही हुआ कि जैसा अलौकिक वेद है वैसा ही उस का अर्थ हो तो वेदाधिकारी उसे समझ सकते हैं, सर्व साधारण नहीं ॥

समाज संचालन और वर्णधर्म ।

[गताङ्क से आगे]

८–अच्छा तो अब हम को भी प्रस्तुत विषय का विचार इसी आधिभौतिक दृष्टि कोण से करना है। मेरे विचार में इस पक्षके विवेचन की सब से अच्छी रीति यह होगी कि दो ऐसे जन समुदायों के इतिहास की तुलना की जावे कि जिन में से एक में वर्ण धर्म प्रचलित न हो और दूसरे में हो। पिछली श्रेणीमें तो केवल हिन्दूजाति ही संसार में एक ऐसा समुदाय है कि जो वर्ण धर्म में अभी तक श्रद्धा रखे बैठा है

पहिले किस्म के लोगों में हमें ब्रिटिश जाति को निर्वाचन करने में सुविधा होगी। क्योंकि इसके इतिहाससे हम और जातियोंकी अपेक्षा ज्यादा विज्ञ हैं और इनके परस्पर और राजनैतिक घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण यह तुलना ज्यादा प्रभावशाली होगी ॥

६–यह तो एक मानी हुई बात है कि ज्यों ज्यों दर्शन शास्त्रके सिद्धान्तोंका प्रचार साधारण जनसमुदाय में फैलता जाता है वैसे ही उन सिद्धान्तों का प्रभाव जनताके अहर्निश के व्यवहार पर पडता है। आधुनिक योरुप में प्रायः समस्त जनता के शिक्षित होनेके कारण बड़े बड़े गूढ और तात्विक दार्शनिक सिद्धान्त बड़ी शीघ्रता से पबलिक में निचुड़ आते हैं। और वहां पर आज कल दार्शनिकों का इस पक्ष की ओर ज्यादा झुकाव हो रहा है कि संसार की सारी क्रियायें ऐसी होनी चाहिये कि जिससे, अधिकस्य अधिकं सुखम्। [Gratest good of the grated Nunter] हो—सुख क्या है इस पर वाद विवाद होता है पर इस से हमें इस समय कुछ प्रयोजन नहीं–इस विषय को अंगरेजी में [utilıτ ananism] कहते हैं। यदि वर्ण धर्म को इस विषय की विचार दृष्टि से विवक्षित किया जावे तो यही सिद्ध होगा कि वर्ण का जन्म से नियत होना विशेष श्रेयस्कर है क्योंकि इस से इस बात का सुअवसर मिलता है कि पुरुष का जन्म के पश्चात् का आचार व्यवहार ऐसी रीति से विकाशित किया जावे कि जिससे उसके नियत वर्ण के गुण कर्मोंकी पुष्टि हो। इस विचार को हम निम्नलिखित उदाहरण से पुष्ट करते हैं॥

आज कल जो युनिवर्सिटी शिक्षा की प्रचलित प्रणाली है लोग प्रायः उस से बहुत असन्तुष्ट हैं। इस असन्तोष के कारणोंमें एक यह भी है कि शिक्षा बिना सोचे समझे और निर्लक्ष्य दी जाती है। परिणाम यह होता है कि छात्र तोतेकी तरह पुस्तकें रटने और उन की परीक्षा में उत्तीर्ण होने मे रत रहते हैं जिससे उनका प्रभाव उनके भावी जीवन में उनके आचार व्यवहार पर पडने की कोई सम्भावना नही होती है। इस प्रकारसे छात्रोंका बहुत सा अमूल्य और उपयोगी समय और बुद्धिबल व्यर्थ नष्ट हो जाता है जिनको लक्ष्य युक्त शिक्षा का उपार्जन करने से भली भांति लाभदायक बनाया जा सक्ता था। जिससे न केवल व्यक्ति विशेष वरन् साधारण पबलिक जनता को भी लाभ उठानेकी सम्भावना हो सकती थी। यह त्रुटि जिस को यदि समष्टि रूप से देखा जावे तो बहुत बड़ी और भयङ्कर त्रुटि प्रतीत होगी वर्ण नियति से बडी असानीसे दूर हो सकती है। न लोगोंका यह विचार है कि वर्णका व्यवहार शिक्षाकी समाप्ति के उपरान्त होना चाहिये जिस समय कि मनुष्य के गुण कर्म्म सभाव भली प्रकार विकसित हो गये हों॥ पर अग्रगामी विवेचन से यह साफ़ प्रकट होगा क इस में शिक्षा के काल का लक्ष्य रहित होनेका दोष आ जावेगा।

१०–यह तो हम ऊपर लिख ही आये हैं कि अंगरेज लोग वर्ण धर्मके विरोधी हैं और इन लोगों की समाज वर्ण वद्ध न होते हुए भी उन्नति की शिखर पर पहुंच गई है। इस से अङ्गरेजी समाज में वर्ण धर्म की रीति [जिस को वह दोष पूर्ण ही नहीं वरन घृणित भी समझते हैं] के प्रचार करने का संकेत करना भी भयङ्कर ख्याल किया जावेगा परन्तु एक हिन्दू के वास्ते एक वर्णवद्ध अङ्गरेजी समाज का ख्याल करना अनुचित न होगा ऐसी समाज की उन्नति केवल आधिभौतिक ही न होती परन्तु वह आध्यात्मिक उन्नतिकी अनुगामिनी होती और मन और बुद्धिकी शान्ति [जो आध्यात्मिक विचारों ही से मिल सकती है] की प्राप्ति सुलभ हो जाती ।

इस विषय में वर्तमान युद्ध से भी हम एक शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं॥ जव युद्ध छिड़ जाने के पश्चात् अंग्रेजी खड़ी सेना युद्ध के वास्ते पर्य्याप्त न समझी गई तो मन्त्रिमण्डल ने देश में इस बात की अपील की, कि लोग सेना में भरती होने के लिये आगे आवें। वहुत से लोग स्वेच्छा से इस प्रकार भरती हुए, परन्तु इन लोगों में अधिकांश मनुष्य ऐसी श्रेणीके थे जिनमें प्राचीन फिउडलसिस्टम (FeudalSystem) का प्रभाव अभी तक पड़ता चला आया है। और जिनको किसी अंशमें हम वर्णवद्ध कह सकते हैं। परन्तु देशका विस्तीर्ण जन समुदाय–व्यवहारिक (Commerical) और मज़दूर (Laborit) क्लास–सेना में भरती होने से प्रायः उदासीन रहा और इन लोगों के प्रतिनिधि आरम्भ में अनिवार्य्य सेना की भरती का प्रतिवाद भी करते रहे। अनिवार्य्य कानून के पास होने पर भी इन लोगों ने भरती होने में कई प्रकार की वाधायें उपस्थित कीं। जो अमूल्य समय इन लोगों ने सरकारकी सहायता के वास्ते आगे वढ़ने में व्यर्थ नष्ट किया वह वड़े सदुपयोग से खर्च हो सकता था, यदि इङ्गलेंडमें कोई ऐसी विशेष जाति होती कि जिसको हम क्षत्रिय कहते हैं। ऐसी जातिके वास्ते वर्तमान युद्ध "स्वर्गद्वारमिवावृतम्" के सदृश होता और देशके नेताओं को इनको उपदेश देने में समय न नष्ट करना पड़ता॥

१२–अव हम भारत के इतिहास की ओर दृष्टि डालते हैं यह तो अव सभी लोग मानने लग पड़े हैं कि हिन्दू जाति में कोई ऐसा गुण विशेष है कि असंख्य काल में हजारों विपत्तियों का सहन करती हुई यह अभी तक जीवित है। दूसरे देशोंमें अनेक जातियां उत्पन्न हुईं और अपना क्षणिक जीवन व्यतीत कर काल के दुर्दमन ग्रासमें विलीन होगईं, उनके स्थानमें दूसरी जातियोंकी उत्पत्ति हुई पर वह अपने अग्रगामियों की दुरवस्था से न वच सकीं परन्तु हिन्दूजाति ऐतिहासिक समय के वहुत पूर्व से ही मार्तंड के समान–आजकल मेघाच्छादित सूर्य्य के समान ही सही भारत के गगन में चमक रही है। कई लोगों का विश्वास है कि इसके सामाजिक वस्त्र में कुछ ऐसे तन्तु हैं, कि वह हर प्रकार की शीतोष्ण आदि द्वन्द्वों की द्वन्द्वता का भेद मिटा कर समानता उपजा देते हैं। कई लोग आजकल यह पुकार रहे हैं कि यह

वेदों की ज्ञान की अटल प्रखरता है कि जो अपने सेवकोंको अपने ऊंचे आदर्शसे गिरने नही देता। यह वाक्य बहुत अंशों में ठीक है पर वक्ता इतना ही कह और मान कर सन्तुष्ट हो जाते हैं और अपने वाक्य का अनुसन्धान करने का यत्न नही करते कि वेदोंका ज्ञान किस तरह से जातिको बचाता है। यदि विश्लेषण दृष्टि से देखा जावे तो प्रतीत होगा कि वह वेद प्रतिपादित और धर्मशास्त्रों द्वारा विस्तार से वर्णित वर्णाश्रम धर्म्म हैं जो हिन्दूजाति का सम्बन्ध बड़े बडे भयङ्कर आक्रमणोंके समय बडी दृढ़ कोटि [Bulwark] का काम देते आये हैं। यह वह चट्टान है कि जहां पर कई समयोंमें कई प्रकारके सामुद्रिक तूफान अपनी शक्ति खर्च करके पीछे हट गये पर इसको अपने स्थानसे न हिला सके, ऐतिहासिक लोग इस बातको जानते ही होंगे कि जितने मतमतान्तर चाहे वह अर्हन्तो और चार्वाकों की तरह खुद हिन्दूधर्म्म की गोद में ही पले हों और चाहे वह मुसलमान ईसाई मतों की तरह दूसरे देशों से यहां पर आये हों, इस देश में प्रचलित हुए हैं वह सब वर्णधर्म्म के बड़े विरोधी रहे हैं। इसका कारण यह है कि वह समझते थे कि उनके आक्रमणों को रोकने की शक्ति हमारे अन्दर कहां विद्यमान है और वह उसी मर्मस्थान पर आघात करने का यत्न करते रहे। पादड़ी लोगों ने तो इस बातका मर्म खूब जान लिया है और वह अब इस बात के दर पै हो रहे हैं कि जिस तरह से हो सके हिन्दुओं से यह वर्ण [Oast] की प्रथा उठ जावे और इसके वास्ते वह कैसे कैसे बहुतान बांधते हैं कि कुछ ठिकाना ही नही। शोक तो यह है कि हमारे अपने लोग उनके असली मनसा को न समझकर और वर्ण धर्म के महत्व को न समझ कर अपने पांव में कुल्हाडी मारने लग पड़े हैं, आशा है कि पाठकों को यह विदित हुआ होगा कि आधिभौतिक दृष्टि से भी वर्णधर्म की उपयोगिता ही सिद्ध होती है॥

१३–यह एक हर्ष का विषय है कि कुछ काल से हिन्दुओं ने भी इस ओरसे उदासीनता को कम किया है और महाराजा साहिब दरभङ्गा ने गत वर्ष भारत में दौरा करके बड़े बड़े नगरोंमें महती सभायें करके वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचार किया है॥ परन्तु हमारे विरुद्ध जो शक्तियां काम कर रही हैं उन के प्रभाव को रोकने के लिये दरभंगा नरेश जैसे व्यक्तियों के कि जिन का समय कई तरफ लगा हुआ है, उद्योग से ही काम न चलेगा, अब तो इस बातका बीड़ा किसी ऐसे शक्तिशाली पुरुषको उठाना चाहिये जो तन मन धन से इसी तरफ लगा रहे॥

१४–अन्त में मुझे पाठकों से क्षमा मांगनी है कि उन्हें थोड़े कच्चे विचार बेमुहावरा हिन्दी में पढ़ने पड़े हैं। मुझे इस बात का खेद है कि लेख मेरी आशासे लम्बा हो गया है इस के वास्ते मुझे पाठकों की अपेक्षा सम्पादक महाशय से ज्यादा क्षमा मांगनी है कि इस कागज की महंगी के समय उन्हों ने इस लेख को स्थान देना स्वीकार किया है।

शर्म्मा

भजनोपदेश

" बुधजन न्याय सुदृष्टि फैलावो "

वेद-पुराण, शास्त्र प्रतिपादित,ऋषि पथ तेहि न मिटावो।
कंटक, विघ्न, विनासि, सोधि, बुध मारग, सुदृढ़ बनावो ॥१॥
विद्या, नीति, रीति, सिख, चातुरि, नव गुण, सुतन सिखावो।
पै निज, धर्म देश तिन हिय से, प्रेम न रंच हटावो ॥ २ ॥
विद्या प्रबल प्रवाह मांझ परि, जलनिधि पार सिधावो
फिरि बनि ज्ञानि विज्ञानि देशमें, प्रायश्चित अवशि करावो ॥ ३ ॥
पढ़ि पढ़ि विद्या, राज प्रेम से, राज भक्त बन जावो।
पै यह गुण की खानि नागरी, संस्कृत नाहिं भुलावो ॥४॥
ब्रह्मचर्य व्रत पालि सुतन को,तब बलवान बनावो।
पै यह नियम वृथा, पुत्रिन, क्यों क्वारी युवा बनावो ॥५॥
खान-पान-परिधान-साज सब, समय विलोकि बनावो।
पै-मर्य्याद-शान-भारत की, धर्महिं अवशि बचावो ॥ ६ ॥
इंग्लिश अन्य द्वीपभाषन को, पढ़ि जगनाम कमावो।
सब को तत्व विचारि हृदय में,धर्म न अपन भुलावो ॥७॥
सभा समाज-प्रांत-बुध बहु जुरि, जस चह नियम बनावो।
पै अति दीन-हीन जे कोशित, संकट खोजि मिटावो ॥८॥
शिक्षा सुखद पसारि जगत में, सुयश ध्वजा फहरावो।
पै कर्त्तव्य स्वयं पालन में, पीछे पग न हटावो ॥ ९ ॥
गनी, गरीब अबुध अरु चातुर, सब से प्रेम बढ़ावो।
विद्या-धन अरु जाति ऊंच को, मान महान हटावो ॥ १० ॥
धर्मरु नीति, न्याय प्रतिपादित ऋषि-बच तेहि न भुलावो।
सोधन-विना विचार हीन बनि हठि तेहि लघु न बनावो ॥ ११ ॥
परम पवित्र पूज्य भारत को, धर्म सनातन-गावो।
पुत्तीलाल धर्म्म बिन-कारज-एकहु पूर न पावो ॥ १२ ॥

साहित्य सेवक—पुत्तीलाल-शुक्ल
गनियारी—बिलासपुर।

अशान्तिका निश्चय

गत आषाढ़ मास के वैदिक सर्वस्वमें "अशान्ति कौन फैलाता है" इस शीर्षकका जो लेख छपा है उसके उत्तरमें हमको बहुत कुछ लिखना है तथापि समयाभावके कारण इस समय कुछ आवश्यक बातें लिख के हमको यह दिखाना है कि लेखक महोदयने कैसी अनर्थ भरी बातें छपाके समस्त शैव तथा स्मार्त्त जन समुदाय पर कितना आक्षेप किया है लेखक महोदय ने इस लेखके द्वारा फतेपुरीय सनातनधर्म ब्राह्मण सभा के मन्त्री महोदय को लक्षित करके समस्त शैव तथा स्मार्तो को अशान्ति फैलानेके दोष से दूषित किया है वास्तव में समस्त शैव तथा स्मार्तोंका कर्त्तव्य है कि वे स्वय लक्ष्मणगढ़से इस विषयका पूरा समाचार मगाके रामानुज सम्प्रदायानुयायी श्रीवैष्णवों की सभ्यता या असभ्यताका निर्धारण करें उपरोक्त सम्प्रदायके आचार्य काञ्चीगद्दी स्वामी श्री स्वामी अनन्ताचार्य महाराजने काशीमें जो शास्त्रार्थ किया था वह सर्वविज्ञ समाजको विदित है और उसमे स्वामीजी महाराजने जो जय पराजय प्राप्त की वह भी किसी से अज्ञात नही है परन्तु उस शास्त्रार्थ के विषय में भी स्वामी जी महाराज के शिष्य तथा उनके प्रेमी सज्जन यही कहते हैं कि श्री स्वामीजी महाराज समस्त काशी के विद्वानोंको शास्त्रार्थमें जीत गये अब काशीभरमें कोई विद्वान् श्रीस्वामीजी महाराज केसामने बोलने योग्य नही है यह समाचार मैंने स्वयं कितने ही स्वामीजी के शिष्यों के मुख कमलसे स्पष्ट सुना है आगे इससाल फिर स्वामीजीमहाराजने जयपुरमें आके शास्त्रार्थकी चर्चा आरम्भ की जिस विषयमें लेखक महोदय लिखता है कि श्री स्वामी जी महाराज ने जयपुर में सम्प्रदाय भेद विषयक कोई व्याख्यान दिया ही नहीं परन्तु प० अमृतलाल वैदिकको एक खुली चिट्ठीसे यह ज्ञात होता है कि स्वामीजीने जयपुर में भी सम्प्रदाय भेद विषयक कितने ही व्याख्यान दिये उपरोक्त प० महोदय अपनी चिट्ठी में लिखते हैं कि "काञ्ची गद्दी स्वामी अनन्ताचार्य महोदय का व्याख्यान तीन दिन से शरणागतिके विषय में हो रहा है और व्याख्यानमें स्वामीजी महाराज अपने शब्दों से यह कहते हैं कि तप्त शख तथा चक्रसे भुजा में चिन्ह करना ही शरणागति कही जाती है परन्तु हम स्वामी जो से विनम्रता के साथ यह पूंछना चाहते हैं कि शरणागति का यह अर्थ कौनसे कोष निरुक्त तथा वेद वेदान्तके प्रमाणोसे सिद्ध होता है" जब शरणागति के व्याख्यान का नाम ले के शरणागति का अर्थ शखचक्र धारण करना ही स्वामी जी सिद्ध करते हैं तब जयपुर में स्वामी जीने सम्प्रदाय भेद विषयक

व्याख्यान कैसे नहीं दिया यह लेखक महाशयसे हम भी पूछना चाहते हैं आगे लेखक महाशय ने हमारे मन्त्री महोदय का एक संस्कृत का पत्र लिखके यह दिखाया है कि इस समय फतेपुरीय सनातनधर्म ब्राह्मण सभाका मन्त्री महाशय अशान्ति फैलाना चाहता है परन्तु इसका पूरा विवरण हम पाठकों को इस लेख के द्वारा दिखाना चाहते हैं पाठक महाशय कृपा करके इसको आद्योपान्त पढ़ैं।

प्रथम मिती ज्येष्ठ कृ० ६ स० १९७४ के दिन श्रीस्वामीजी महाराज लक्ष्मणगढ़ पधारे यह लक्ष्मणगढ़ हमारे यहां से कोई सातकोश दूर है वहां पर श्रीस्वामीजी महाराज ने आके अपना व्याख्यान आरम्भ किया और अपनी लिखी हुई "चक्रधारण प्रमाणसंग्रह" नामक पुस्तक भी ग्राम में वितरण की तथास्तु जो हो हमारे पास भी एक दो पुस्तक स्वामीजी ने भेजी और हमारे यहां उनके कितने ही शिष्य भी रहते हैं वे लोग कहने लगे कि हमारे स्वामीजी दिग्विजयार्थ भ्रमण करते हैं इसी उद्देश्य से यहां आये है और वेदादि प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि सृष्टि में वेदानुकूल केवल विशिष्टाद्वैत मत ही है और तत्समुद्राधारण करना जीवमात्र का कर्त्तव्य है यद्यपि इस विषय में शास्त्रार्थ करने के लिये लक्ष्मणगढ़ में कई विद्वान् तयार थे परन्तु वे उस ग्राम के मुख्य सेठ रामलालजी के ज्येष्ठ पुत्र कुंवर मुरलीधर के भय से विचारे कुछ नहीं बोल सके क्योंकि वह एक ऐसा आदमी है कि अपने ग्राम में सिवाय धनवानों के और सब को अपनी अधीनता में रखता है और वह स्वामीजी का मुख्य शिष्य है इस लिये वहांके विद्वान् लोग स्वामीजी ने जो व्याख्यान दिया वह मौनधारण करके शान्तिके साथ श्रवण करते रहे वहां पर स्वामीजीने अपने व्याख्यानोंमें यहभी कहा कि जो आदमी शखचक्र नहीं लेता वह चाण्डाल के समान है और जैसे श्मशानमें ले गया काष्ठ किसी कामका नहीं वैसेही वह मनुष्य भी किसी कामका नहीं परन्तु जो कुछ कहा वहीं उनको सुनना पड़ा यहांके विद्वानोंको भी उनके शिष्योंने बाधित किया कि हमारे स्वामीजी दिग्विजय करते हैं तुम किसी को शास्त्रार्थ करना हो, तो चलो इस प्रकार, उन लोगों के हठ करनेसे यहां की सभा से सरल संस्कृत में एक साधारण पत्र भेजा गया था जिसको आप वैदिक सर्वस्व में पढ़ चुके होंगे उसमें कोई ऐसा आग्रह नहीं किया गया है कि तुम शास्त्रार्थ करो केवल इतना ही लिखा है कि आप यदि शास्त्रार्थ करना चाहैं तो स्वीकार करें नहीं तो उत्तर देके हम को सन्तुष्ट करैं परन्तु इस पत्रके जाते ही स्वामीजी किंकर्त्तव्यताविमूढ की गणना में प्रविष्ट हो गये यदि शास्त्रार्थ करना अस्वीकार करें तब तो दिग्विजय की दुन्दुभी कैसे बजै अगर स्वीकार करैं तब पराजय हो जाय तो भी अपना अभीष्ट कैसे सिद्ध हो इसलिये स्वामीजी महाराज ने युक्ति के साथ उत्तर लिखके एक ऐसा पत्र भेजा कि जिस में न तो शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया और न अस्वीकार किया वह जैसा स्वामीजी के शिष्य श्रीनिवासाचार्य ने भेजा वैसा स्पष्ट रूपसे लिखा जाता है।

श्रीफतेपुरस्थसनातनधर्म ब्राह्मणसभाया मन्त्रिमहाशयाः

श्रीमदाचार्यचरणानां सन्निधौ भवत्प्रहितं पत्रं यथासमयमागतम्। तदाज्ञयाहमिदं सूचयामि विशिष्टाद्वैतं चिरसिद्धमेवेति न तत्सिद्धये स्वामिभिर्नवीनः कोऽपि प्रयत्नो विधीयते॥ ये खलु शास्त्रिणः श्रीकान्तशर्म्माणो भवद्भिः प्रशस्यन्ते यावत्ते स्वयस्व हस्ताक्षरयुक्तं पत्रं साक्षात्स्वामिनां सन्निधौ न प्रेषयन्ति तावत्तदीयाभिलाषपूरणविषये भवदीयवचनमात्रप्रत्ययेन न किमपिलेखितुमिच्छामः। येकेचियोग्याविद्वांसः पुरुषाः श्रीमदाचार्यसन्निधिमायान्ति, तेषा यथोचित सम्मानंक्रियत एव यदि किमपि विलक्षणं सम्मान तेषामपेक्षितं तर्हिस्पष्टशब्दैस्तत्सूचनेकृते यथोचितमुत्तरं दीयते। इदंतु स्पष्टमेव सूचयितुमिच्छामः, यद्विजिगीषुकथायांप्रवर्तमानेन केनापि सह मध्यस्थं विनाकोपिकथं कथां प्रवर्तयितुमर्हतीति॥ श्रीनिवासाचार्यः।

इस पत्रके पढ़नेसे पाठकोंको ज्ञात होगया होगा कि स्वामीजी ने शास्त्रार्थ करना स्वीकार किया है या अस्वीकार, इस पत्रमें स्वामीजी लिखते हैं कि जब तक पं० श्रीकान्त जी अपने हस्ताक्षर युक्त पत्र नही भेजते तब तक शास्त्रार्थ के विषय में हम कुछ नही लिखना चाहते और शास्त्रार्थ में मध्यस्थकी आवश्यकता होती है स्वामीजी के शिष्यका यह पत्र आया तब पं० श्रीकान्तजी महाराज ने भी स्वहस्ताक्षर युक्त एक पत्र भेज दिया जिसका आशय यह था कि—

हम पञ्चदेवोपासक स्मार्त हैं हमने यहां पर यह सुना है कि आप स्मार्त मतका खण्डन करते हैं और सर्वत्र दिग्विजय करते हैं आपके शिष्य ने हमारे हस्ताक्षर युक्त पत्रका विशेष आग्रह किया, इसलिये यह पत्र भेजा जाता है आप अगर दिग्विजय करते हैं तब हमको जीतके कीजियेगा, क्योंकि जो दिग्विजय करता है वह सर्वमतावलम्बियों को जीत करके कर सकता है। इति—

इस पत्रका संस्कृत जटिल था इसलिये कितनी ही बातें स्वामी जी तथा उनके शिष्योंको ज्ञात भी नहीं हुई होंगी क्योंकि वे लोग इसका दूसराही उत्तर लिखचुके हैं

हम अपने पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि आपको इसका पूरा पता शास्त्रार्थचर्चा नामक पुस्तक के देखने से ज्ञात होगा-अस्तु जो हो परन्तु यह पत्र पं० श्रीकान्तजीने भेजा तब भी स्वामीजी ने यह नहीं लिखा कि हम शास्त्रार्थ करेंगे अथवा नहीं करेंगे किन्तु अपने दो चार शिष्यों के द्वारा ऐसा एक पत्र भिजवाया जिसमें विरोधके सिवाय कोई दूसरी बात नहीं बस यही पत्र परस्पर मे वैमनस्य सूचक होगया वह यहां आपको लिखके सुनाता हूं जिसके पढ़ने से आप स्वयं जान सकते हैं कि कौन अशान्ति फैलाता है इस पत्र की भाषा में जों अशुद्धियां हैं वे हमने वैसी की वैसीही लिखी हैं क्योंकि इस पत्रके देने वाले महाशय बड़े पढ़े लिखे और कानूनी आदमी हैं उनकी अशुद्धियों में भी कदाचित् कुछ तात्पर्य भरा हुआ हो- पत्र यह है।

श्रीशः पायात्।

वजरिये नोटीस् आप को आगाह कीया जाता हैं आपनें धर्म विसयेकें बारे में पत्र २ या ४ व मुकाम् लक्ष्मणगढ ईसू मजबुनूका भेजा की हमू सास्त्रार्थ करणके लीये आते हैं उत्तर में तहरीरी जवाब या आदमी भेजा गया था की बराये म्हरवांनगी आईयें लेकीन् न तो हाजिर हुये ओर न ईन्कारि जुवाब दिया ईसलिये वजरिये नोटीस् आपको कलमी होता हैं या तो कलकें रोज हाजिर बैकुण्ठनाथ की अदालत् लक्ष्मणगढमें होकें ज्यो कुछ प्रश्ण करना हो करो नहीं तो २००) रुपये रोजका हरजाना आपसें वसूलू कीया जावेगा ओर ज्यो कुछ अदालति खर्च होगा उसका भी जुमेवार आपहि होमें वाजीव था सो तहरिर कीया गया तारिख १३ जून् सन् १९१७ ईः श्रीः दस्तखत् श्रीमान् जगत् गुरुके चरणार्बिंदके दास रामबिलास माष्टर लक्ष्मणगढ।

द० जैनारायण पिंकृत दः पुरुषोतम जोसी दः पंडित विद्याधर जोसि दः बंसीधर ढंडका।

पाठक महाशयों को ज्ञात हो गया होगा कि स्वामी जी के शिष्यों ने कैसा शान्तिमय पत्र भेजा है वैदिक सर्वस्व में लेखक महाशय लिखता है कि इस समय स्वामी जी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते परन्तु शैव ही प्रथम पत्र देके अशान्ति का परिचय दे रहे हैं हम पूर्वोक्त लेखक महाशय को विनीतभाव से पूछते हैं कि क्या हमारे किसी भी पत्र में तुम यह दिखा सकते हो कि शास्त्रार्थ करनेके लिये आते हैं प्रथम ही प्रथम जो पत्र भेजा गया था जिसमें केवल यह लिखा है कि [एनेशमासनं ससम्मानं यदि संसिद्धये तर्हि भवत्स्थानमागत्य स्वमतं व्यञ्जयिष्यन्ति] इस का अर्थ यह है कि आप शास्त्रार्थ करना स्वीकार करें और इन को आसन सम्मान से मिल सके तो आप के स्थान में भी आके शास्त्रार्थ करना स्वीकार है जब स्पष्ट यह लिखा है कि आप को शास्त्रार्थ करना स्वीकार हो तब हम आवें फिर आप कहिये कि यह कौन से आरवार का मत है कि शास्त्रार्थ करना स्वीकार करे विना ही नोटिस दिया देवें तथास्तु जो हो आगे मिती आषाढ़ कृ० १२ रविवार को पं० श्रीकान्त जी लक्ष्मणगढ़ गये साथमें पं० गणेशदत्तजी शर्म्मा नैयायिक पं० जीवनराम शर्म्मा त्रिपाठी तथा पांच सात विद्यार्थी और पं० श्रीकान्त जी महाराज की आज्ञानुसार मैं भी साथ में गया वहां जाके पं० श्रीकान्तजी की तरफ से एक पत्र भेजा गया जिस का आशय यह था कि आप के साथ में धर्म विषयक चर्चा करने के लिये पहिले भी हम एक दो पत्र भेज चुके हैं जिस के उत्तर में शास्त्रार्थ करना आपने स्थगित प्राय कर दिया था परन्तु हाल हो में एक स्वीकृति सूचक नोटिस पत्र मिला इस लिये हम यहां शास्त्रार्थ निमित्त आये हैं आप से प्रार्थना है कि आप कृपा करके शास्त्रार्थ के नियम स्थापित करें और सभास्थान का निर्धारण करें इस पत्रके जानेसे स्वामी जी ने फिर अपनी अशान्तिका

परिचय दिया स्वामी जी ने इस के उत्तर मे लिखा कि—

"शास्त्रार्थ सभा स्थापित नहीं की जायगी । तुमको कुछ पूछना हो तो हमारेस्थानमे आके पूछ जावो बस केवल इतना ही उत्तर स्वामीजी की तरफ़ से मिला यह उत्तर देखते ही विज्ञमण्डली को बडा आश्चर्य हुआ कि नोटिस पत्र दे चुके हैं फिर स्वामी जी लिखते हैं कि कोई मध्यस्थ नहीं और कोई शास्त्रार्थ सभा नहीं हो सकता तुम को पूछना हो सो हमारे स्थान मे आके पूछो तब सब को यह ज्ञात हो गया कि स्वामीजी शास्त्रार्थ करना नहीं चाहते किन्तु यह चाहते हैं कि हमारे स्थान में आजावें तो हम अपने शिष्यों के द्वारा यह किंवदन्ती फैला दे कि स्वामीजी जीत गये परन्तु स्वामीजी के इस गुप्त रहस्य का सब को ज्ञान हो गया आगे जब पं० श्रीकान्तजी महाराजको यह ज्ञात होगया कि शास्त्रार्थ नहीं होगा पत्र का उत्तर देना स्वामीजी ने अपनी तरफ से बन्द कर दिया तब यहां से चलना चाहिये परन्तु स्वामीजी के पास जाके यह तो पूछना चाहिये कि पहिले क्यों आपने नोटिस दिया था फिर अब शास्त्रार्थ करनेका फेरफार करते हैं इसका क्या अभिप्राय है इस विचार से प० श्रीकान्तजी ने अपने शिष्य पं० जीवनराम जी शर्माको स्वामी जी के पास भेजा पं० जीवनराम संस्कृत के पूर्ण विद्वान् हैं तथा योग्य पुरुष हैं वह जाके स्वामीजीको प्रणाम करके स्वामीजीके साथ संस्कृतभाषामें बात चीत करने लगे तो कितने ही स्वामीजी के शिष्यों ने उन को ऐसा फटकारा कि यहां संस्कृत बोलोगे तो बाहर निकाल दिये जावोगे परन्तु वह शान्ति के साथ प्रणाम करके वापिस आगया वाह लेखक महोदय । आप लोगों के मत में अपने स्थान में विद्वान् का तिरस्कार करना ही शान्ति कही जाती है इसके बाद हम लोग फतेपुर आने लगे तब कितने लक्ष्मणगढ़ निवासी स्मार्त्त महाशय इस बात का आग्रह करने लगे कि आपका आना सदैव नहीं होता है हम लोग आपके मुख से कुछ शिवोत्कर्ष विषयक व्याख्यान सुनना चाहते हैं उन लोगोंके विशेष आग्रह करने से हम को दो तीन दिन और भी ठहरना पडा अर्थात् मिती आषाढ शु० ३ से शिवपूजामाहात्म्य विषयक व्याख्यान होना आरम्भ हुआ व्याख्यान भवन श्रीमुरलीमनोहरजी का मन्दिर के अभिभावकों से अनुमति लेके व्याख्यान आरंभ किया गया था प्रथम दिन भस्मरुद्राक्षधारण करने का क्या फल है इस विषयमें व्याख्यान हुआ इसके बाद आषाढ शु०४ को गङ्गा स्नान तथा ईश्वरभक्तिके विषयमे व्याख्यान हुआ तृतीय दिवसका व्याख्यान शिवपूजामाहात्म्य विषयक था इसी व्याख्यानमे वैष्णवोंने अपनी अशान्तिका परिचय दिया व्याख्यान का समय रात्रि के ७ बजे से १० तक का था प्रथम व्याख्यान के आरम्भ में मंगलाचरण हुआ तत्पश्चात् राजराजेश्वर सम्राट् पञ्चमजार्ज की जय कामनाके अर्थ ईश्वरस्तुतिकी गई इस के अनन्तर भगवान् शिवकी महिमा अद्भुत है और

परम परमेश्वर प्रकृतिका स्वामी ब्रह्मपद वाच्य निर्गुणईश्वर शिव ही है जिसका ध्यान पूजन, स्मरण, करना जीवमात्र का कर्त्तव्य है इस विषय का व्याख्यान पं० गणेशदत्त जी नैयायिकने दिया व्याख्यानके आरम्भ ही में दो चार मिनटके बाद जो कितनेही वैष्णव लोग व्याख्यान सुनने के निमित्त आया करते थे वे लोग उठ २ के जाने लगे इससे लोगोंको सन्देह हुआ कि आज वैष्णव लोग उठके जाते हैं इसका कोई कारण है परन्तु स्मार्त लोग शान्त और सीधे साधे होते हैं उन लोगोंने कुछ विचार नहीं किया वे लोग कहने लगे कि शिव पूजाका व्याख्यान इनको प्रिय नहीं इसीसे नहीं सुनते होंगे परन्तु वैष्णवों ने नहीं सुनने ही से अपने आत्मा को सन्तुष्ट नहीं किया किन्तु कुंवर मुरलीधरकी हवेली जाके एक बदमाशोंका दल तैयार किया करीब ८० आदमी स्वामी जीके साथमें थे उनको साथ लिया कुछ आदमी मुरलीधरके पास रहते हैं कुछ शहर के उद्दण्डी वैष्णव साथ हो गये सब मिलके करीब १२५ या १५० आदमी लाठी लेके आये और जिस मन्दिर में व्याख्यान होता था उसके बाहर आके खड़े हो गये वक्ता महाशय को अनर्गल गाली देने लगे जोर के साथ यह शब्द सुनाई देरहा था कि हम इन वक्ताओं को प्राणान्त दंड देंगे इस व्यवस्था को देखके श्रोता लोग अपने २ घरगये परन्तु जो दृढ प्रतिज्ञ शैव श्रोतृगण थे वे तो सरकारी आदमियों को साथ लेके गये उनको भी यह सन्देह होगया था कि तुमको भी अवश्य मारपीट करेंगे जब श्रोताओं की यह व्यवस्था होने लगी तब वक्ता बिचारे करही क्या सकते थे उनके पास फौजी सामान तो था ही नहीं वे तो अपने वागस्त्र से भाषणरूपी प्रहार करते थे परन्तु जब वैष्णवों ने सन्मुख में यष्टियों के प्रहार की तैयारी की तब वक्ताओंको लाचार होके अपना भाषण बन्द करना पड़ा इसके अनन्तर पुलिस का प्रबन्ध हुआ परन्तु मैं प्रत्यक्ष में सुन रहा था कि स्वामी जी का मैनेजर पुलिसदार को आकर कहने लगा कि हम पं० गणेशदत्त तथा पं० हनुमान बक्ष को प्राणान्त दण्ड देंगे पुलिसदार महाशय ने इनकी जोर भरी आवाज सुनके यही कहा कि इस समय सरकारी प्रबन्ध हो रहा है तुमको कुछ कहने का अधिकार नहीं है पं० गणेशदत्त तथा पं० हनुमान बक्ष ने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया है वे अपने इष्टदेव की पूजा तथा भक्तिके विषय का व्याख्यान खुले मैदान देसकते हैं परन्तु वे लोग उस समय पुलिस को कुछ नहीं समझ रहे थे अन्तमें स्वामीजी के शिष्यों ने कहा कि तुम लोग चलके हमारे स्वामीजी के चरण कमलमें गिरो और उनसे क्षमा मांगो तब हम तुमको छोड़ सकते हैं नहीं तो किसी प्रकार नहीं छोड़ सकते यह सुनके पं० श्रीकान्त जी महाराज ने कहा कि हम लोगों ने स्वामी जी का कुछ अपराध नहीं किया है जो कि उनसे क्षमा मांगें तथापि

(मृत्युर्बुद्धिमनापोह्योयावद्बुद्धिबलोदयम्) इस भागवत के प्रमाणानुसार इस समय हम बाधामें पड़े हुए हैं स्वामीजी महाराज धर्मगुरु हैं विद्वान् हैं तथा गद्दी स्वामी हैं उनके चरण कमल में गिरने में कुछ दोष नहीं मनुष्य को चाहिये कि शरीर रक्षा के लिये पशु तकको भी प्रणामा कर लेवे हम चलनेको तैयार हैं, तुम लोग जहां लेचलो वहां ही चल सकते हैं यह कह के पं० श्रीकान्त जी और पं० गणेशदत्त और पं० हनुमानवक्ष तथा एक दो उनके विद्यार्थी वह लोग स्वामीजी के पास जाके क्षमा मांग आये स्वामीजी महाराजको यह उदारता सराहने योग्य है कि उनकी क्षमा स्वीकार करली और फौजदारीका उपद्रव मिटा दिया दूसरे दिन प्रातःकाल होते ही इसबातकी जांच की गई तो लोगों ने कहा कि महाराज कल दिन ही में स्वामीजी अपने शिष्यों को यह आज्ञा दे चुके थे और इनका दल दिन ही में संगठित हो चुका था अन्त में उन लोगों की यह प्रतिज्ञा हुई कि आज रात को अगर शिव पूजा के विषय का व्याख्यान देवें तो अवश्य मार पीट करो तदनुसार रात्रि में यह घटना की गई इस घटना को देख के हम लोग भी जान चुके कि यहां स्वामी जी महाराज की सेवकाई है इसलिये यहां शिवपूजा का महत्व कोई नही कह सकता हम लोगों को यह मालूम होता तो हम भी नही कहते यह कहके हम सब फतेपुर आगये इस में असत्यताका लेश भी नही है जो २ समाचार हुये हैं वे सब यथार्थ रूपसे ही मैंने लिखे हैं अगर किसी को सन्देह तो लक्ष्मणगढ़ के प्रतिष्ठित रईसों को पत्र देके पूछ लेवें उन के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

पं० हनूमान बक्षजी-अध्यापक
पं० बृद्धिचन्द्र जी वैद्य
पं० रामनारायण जी तिवारी
पं० रामेश्वरजी चौमवाल
पं० भोलाराम जी जोसी

सेठ जुहारमलजी पंसारी
सेठ सागरमलजी-गनेडीवाला
सेठरामविलासजी सांगानेरिया
सेठ रामकुंवारजी गनेडीवाला
कुंवर रंगलाल जी चूड़ीवाला
सेठ वन्शीधरजी मुरार का

इन लोगोंसे समाचार मंगाने से आपको ज्ञात हो जायगा कि कांञ्चीगद्दीके स्वामी अनन्ताचार्य महाराज का भगवान् शिवके महत्वके प्रति द्वेष है या प्रेम और अशान्ति फैलाना किसको अभिमत था

इत्यलम्

निवेदक—

शैव पं० राधाकृष्ण मिश्र—फतेपुर (सीकर)

———

नीति-पुष्पाञ्जलि, ।

सप्तपदी ।

मालिक की रुचि को लखिके, जोइ काज करै सोइ चाकर नीको ।
मानुष होय कै राम भजै, नतु तासों सदा पशुपामर नीको ॥
जोरि के कोटि धरे धन धाम करे उपकार न, सूमहि नीको ।
राखि के धर्म समय अनुसार, करे निज काम सोई नर नीको ॥१॥
लोकहिं लीक कपूत चले, विरथा हिय में शक्र, वायस बानी ।
सोचि अकाज फसे असमंजस, कीच के बीच न न्यावहि ज्ञानी ॥
काज के सोचि नहीं परिणाम, करे हठता कपि सो मन मानी ।
राखि के धर्म समय अनुसार, करे निज ठाम सोई नर ज्ञानी ॥२॥
जान हितै पुर बाट अनेक, चलै प्रति पै निहचै नर पैहैं ।
सुधि घुमाव यथा युत कंटक बाध वराह कहूं दुःख देहैं ॥
चोर लवार भरे बटव्यार कहूं नद नार अपारसतै हैं ।
राखि के धर्म करे नर काम, वही जग में यश पावन पै हैं ॥ ३ ॥
नीकी नहीं खरगोश की चाल, चले पथ थोरक में थकि जावे ।
धीरज कौन सराहत कच्छप रंचक में सब काल वितावे ॥
बालक धीर को भाव भरो गज गोन सुमौन-सबै मन भावे ।
काज करे शुभ काल को देखि, वही जग में यश पावन, पावै ॥ ४ ॥
सीख न सीखि कछू बुध की, शुभ नीति न दीख गपोड़ मचावे ।
नाशन के मिस और को मान,सदा भ्रम से बहु युक्ति भिड़ावे ॥
काज सरै जेहि मारग सों तजि ताहि अकाम तमाम बढ़ावे ।
पावन होय न काहु कभी नर सोई जु बाल की खाल कढ़ावै ५॥
भानु प्रकाश से लाभ कहा जब तेज तरैयन को मुरझावै ।
चांदनि चन्द्र सराहन योग्य सबै जेहि की प्रभुता सुख पावै ॥
बारिधि वारि अपार भरो केहि काम न जो जग कामहिं आवै ।
है धन्यवाद जु पंक को नीर, पिये लघु जीव औ प्यास बुझावै ॥६॥
लोभ अपार भरो जेहि के तेहि की जगमें किमि कीरति ह्वै है ।
काम के बाण लगे हिय जाहि कहा तेहि भूरि कलंक छुवै है ॥
जोति न जागि दया दलि दोष, कहा लघु पै समता फिरिऐहै ।
स्वारथ साज सनी जेहि की मति, तासो जहो परमारथ ह्वै है ॥७॥

साहित्य सेवक पुत्तीलाल शुक्ल, गनियारी-विलासपुर

ईश्वरीयज्ञान ।

यस्यनिःश्वसितंवेदा योवेदेभ्योऽखिलंजगत् ।
निर्ममेतमहंवन्दे विद्यातीर्थमहेश्वरम् ॥

पाठकवृन्द ! आज इस विषय पर सक्षेप से विचार किया जाता है कि संसार में ईश्वरीय विज्ञान क्या वस्तु है ? और उस का नाम क्या हो सकता है । इस विषय को हम दो भागों में विभक्त करते हैं-प्रथम ईश्वर और पीछे उस का विज्ञान। जब ईश्वर का लक्षण और उस का अस्तित्व सिद्ध हो जावे तब उस के विज्ञान की चर्चा भी युक्ति सगत हो सकती है और जब ईश्वर के अस्तित्वमें ही सन्देह हो, तब उस का विज्ञान कहां तक हो सकता है यह कहना बाहुल्यमात्र है मैं इस लेखमें परमात्मा की असिद्धि पर विचार नहीं करूंगा परन्तु "लक्षणप्रमाणाभ्यां वस्तुसिद्धि ,, इस सिद्धान्त के अनुसार इस विषय पर विचार आरम्भ करूंगा, कि यदि परमात्मा है तो जितने लक्षण उस में पाये जाते हों, उतने ही लक्षण उसके विज्ञान मे भी पाये जाने चाहिये। और यदि परमात्माके लक्षण से उस के विज्ञान की कथा बहुत दूर हो जाय, और उसमें अलौकिकता विलक्षणता, सार्वभौमता, ईशित्व, वशित्व, नियामकता, तथा आधिपत्य प्रतीत न हो तो वह जिस विज्ञान की चर्चा हम करना चाहते हैं वह नही कहला सकेगा। आस्तिक कोटिके सभी मतवादियोंमें परमात्मा, अजर, अमर, निर्विकार. सर्वगत, सर्वमय, आदि अन्त-रहित सत् चित् आनन्द स्वरूप, विज्ञानघन, क्रियाशक्ति सम्पन्न माना गया है और हमारे सनातनधर्म में——

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते-
न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते,
स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च ॥

अर्थात् उस परमात्मा को कार्य के साधन सामग्री की आवश्यकता नहीं है उस से अधिक तो क्या उस की बराबर भी कोई नही है, उस की महान् शक्ति अनन्त प्रकारकी है ज्ञान, बल और क्रिया उसमें सदा स्वाभाविक सिद्ध हैं इस एकही उपनिषद्

वचन से परमात्मा के लक्षण का बहुत कुछ पता चलता है। ईश्वर के विषय में इतना ही कह कर मैं आपका ध्यान इस ओर से खींचना चाहता हूं कि जब उसमें इस प्रकार के अलौकिक गुण विद्यमान हैं तब उसका विज्ञान भी इसी प्रकारसे उसके साथ नित्य सिद्ध है। यदि परमात्मा नित्य है तो उसका विज्ञान भी नित्य है यदि वह आदि अन्त रहित है तो उसका विज्ञान भी आदि अन्त रहित है यदि परमात्माको कोई आरम्भिक तिथि नहीं है तो उसके विज्ञान की भी आरम्भिक तिथि नहीं हो सकती। यदि वह समस्त संसारसे पहिलेका है और वह अनेक वार सृष्टि और प्रलय कर चुका है तब किसी देश की भाषा भी उसके विज्ञान की भाषा नहीं हो सकती। वह स्वयं जैसा संस्कार सम्पन्न है उसी प्रकार उसका विज्ञान भी संस्कार सम्पन्न होना चाहिये इत्यादिक लक्षणों द्वारा जब हम उसके विज्ञान की धारणा करने लगते हैं तब हमको मुक्त कंठ होकर, निर्भ्रान्त चित्त से यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि, इस समय संसार के समस्त पवित्र ग्रन्थों में ईश्वरीय विज्ञान का ग्रन्थ यदि कोई हो सकता है, तो वह पवित्र पावन ईश्वरीयपथ निदर्शक निरन्तर एक रस बहने वाला सनातनग्रन्थ वेद है। जिस प्रकार परमात्मा अजर अमर अनन्त है उसी प्रकार उसका विज्ञान भी अजर अमर अनन्त है इसी लिये उस की महिमा जानने वाले भारतीय ऋषि जनों ने "अनन्तावै वेदाः" अर्थात् वेद अनन्त हैं ऐसा निश्चय कर दिया है। जिस प्रकार परमात्मा का आदि अन्त नहीं है उसी प्रकार वेद कब हुए और इनकी स्थिति कबतक है वेदों के विषय में यह भी विचार नहीं है। जब से सच्चिदानन्द परमात्मा स्थिति करते हैं तबसे उनका विज्ञान वेद तम से परे सहस्र सूर्य की समान सहस्रों ब्रह्माण्डों को प्रकाशित कर रहा है। जिस प्रकार एक सूर्य के प्रकाश से समस्त तारा मण्डल प्रकाश पा रहा है इसी प्रकार ईश्वरके विज्ञान रूपी वेदोंसे समस्त संसारके मतमतान्तर प्रदीप्त हो कर अपनी ज्योति प्रकाश कर रहे हैं।

वास्तव में मूल वेदका विज्ञान ही इन सब के मूल में प्रविष्ट हो कर इनके अस्तित्वको स्थिर कर रहा है। इसी लिये परा विद्या घोषणा करके ऊंचे स्वरसे पुकार रही है कि "तस्य भासा सर्वमिदं विभाति" अर्थात् उसी की कान्ति से यह सारा जगत्, समस्त ज्ञान, विज्ञान प्रकाश पा रहा है। जिस प्रकार ईश्वर जगत्से प्रथम विद्यमान है और ऐसा होते हुए भी समस्त सृष्टि क्रिया उस के हस्तामलक है इसी प्रकार समस्त सृष्टि के पदार्थोंका वर्णन उनकी स्थिति और उनका नियम वेदमें विद्यमान है। जिस प्रकार ईश्वर के सामने अनेक वार सृष्टि और प्रलय हुई है उसी प्रकार उसके विज्ञान रूपी वेदके सामने—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः॥

अर्थात् चन्द्र,सूर्य,पृथिवी,स्वर्ग,आकाश, पाताल, अन्तरिक्ष,अनन्तवार वेदके समक्ष सृजन और विसर्जन होचुके हैं। वेदने ही न्याय,अन्याय, पाप, पुण्य, तीर्थ, क्षमा, दया स्वर्ग, नरक, अमृत, विष, देव, अदेव, नर, राक्षस, पिशाच भूत, पंचमहाभूत, पितर गंधर्व, अग्नि, वायु, रवि, विद्युत्, कला, सयोगजन्य पदार्थ आदि लौकिक और पारलौकिक विषयों को निर्भ्रान्त रूप से देखा और निरूपण किया है। इसी कारण से महामहिम दार्शनिक मीमांसकने अपने अद्वितीय मीमांसा ग्रन्थ में कारिकारूप से लिखा है कि—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते ।
एतंविदन्तिवेदेन तस्माद्वेदस्य वेदता ॥

अर्थात् प्रत्यक्ष और अनुमानसे जो बात सिद्ध नहीं हो सकती वह बात वेद से जानी जाती है। यही वेद में वेदता है।

इसी लिये मानसी लक्षणों की सीमा से जैसे सर्वनियन्ता सर्वाधिक है उसी प्रकार उस का वेद विज्ञान भी मानसी सीमा को उल्लंघन कर के सर्वाधिक सर्वतोभाव में सर्वगत होकर आकाश की समान प्रविष्ट हो रहा है। तथाच श्रुतिः "आकाशवत् सर्वगतश्च नित्यः" जिस प्रकार सृष्टि रचना से प्रथम कोई देश कोई भाषा कोई प्राणी विद्यमान न था। और केवल एक ईश्वर ही था All was dark but god was. अर्थात् तमाम अन्धकार था और एक परमात्मा विराजमान था और उस का विज्ञान उसके साथ था जिस प्रकार वट बीज में इतना बड़ा वट वृक्ष विद्यमान है इसी प्रकार उसके सूक्ष्म विज्ञान में समस्त प्राकृतिक प्रपंच प्रपंचित हो रहा है और इसी से सृष्टि के अवसान में भी नित्य रूपसे विद्यमान रहने से कहा जा सकता है कि किसी देश भाषा की पुस्तक ईश्वरीय विज्ञान की पुस्तक नहीं हो सकती। कारण कि देश और मनुष्यों की रचना होने के पश्चात् उन २ भाषाओं की रचना हुई है अब आप यह कहेंगे कि ईश्वर ने कागज कलम दवात लेकर अपने विज्ञान को पुस्तक रूप से लिखा है या किसी के कान में मन्त्र प्रदान करके फूंक मार दी है? ऐसा नहीं हुआ। उस का विज्ञान ही हम को इस विषय में उपदेश करता है कि—

योवैब्रह्माणंविदधातिपूर्वं योवैवेदांश्चप्रहिणोति तस्मै ।
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतानां प्रथमो ब्रह्माहजज्ञे ॥

अर्थात् सृष्टि के आरम्भ में विराट् स्वरूप को प्रकट करके समस्त वेद राशि को उनके हृदय में इस प्रकारसे प्रकट कर देता है कि जिस प्रकार लैम्प में दियासलाई दिखाते ही रोशनी आजाती है और प्रकाश में समस्त पदार्थ दिखाई देने लगते हैं। इसी से सब मन्त्रों के देखने वाले प्रजापति ऋषि माने गये हैं उन प्रजापति के अंशांशीरूप से जो दूसरे ऋषि महर्षिगण तपोनुष्ठान सम्पन्न होकर ब्रह्म के ध्यान में

मिमग्न हुए हैं उनके हृदय में भी दीपक ज्योति की भांति वेद मन्त्रों का प्रकाश देदीप्यमान हो उठा है। और इस दर्शन करने के कारण वे अवान्तर ऋषि महर्षिगण भी वेद मन्त्रों के द्रष्टा माने और लिखे गये हैं। देखने का अर्थ कर्ता तीन कालमें भी नहीं हो सकता ब्रह्मा जी के पास जितने मन्त्र समष्टि रूप से विद्यमान हैं व्यष्टि रूपसे वे ही मन्त्र ऋषि मुनि आदिकों में प्रकाशित हुए हैं।

जिस प्रकार चाबी देने से फोनोग्राफ यन्त्रकी चूड़ियों में से अनेक राग रागनियां लय स्वर ताल के सहित सूक्ष्म आकाश में बज उठती हैं इसी प्रकार ऋषियों के पवित्र हृदयाकाश में योग द्वारा आकाश में संयम करने पर लय स्वर सामविधानके सहित वेद मन्त्रों की तन्त्री बज उठी थी और क्रम २ से उस ईश्वरीय विज्ञान की मर्यादा का संसार में प्रचार होकर जगत् कल्याण का भागी हुआ है इस में कुछ भी शंका नहीं है। इसी विज्ञान को आश्रय करके मनुष्य चार पदार्थ के भागी होकर ईश्वर पर्यन्त पहुंचते हैं।

लालमणि पूठिया उपदेशक
मुरादाबाद।

वाणीभूषण जी का व्याख्यान।

गत तारीख १५।७।१७ को माधवबाग बंबई की सभा में शास्त्री शिवकुमार जी के महत्त्वमें श्रीमान् पं० नन्दकिशोर शुक्ल वाणीभूषण जी ने जो प्रभावशाली व्याख्यान दिया था, उस का सूक्ष्म सार नीचे लिखा जाता है॥

भाइयो! शास्त्री शिवकुमार जी के चले जाने पर विद्या—संस्कृत विद्या—का एक स्तम्भ टूट पड़ा, इतना ही नहीं, किन्तु यह कहना चाहिये कि सनातनधर्म का एक महान् धुरन्धर विद्वान् या धार्मिक विद्वज्जनों का मुकुटमणि टूट गया है। शास्त्रीजी की महिमा, उन के अगाध पाण्डित्यसे भी बढ़कर स्वधर्माग्रह से है। उन के परलोक वास से विद्वन्मण्डली ही नहीं धार्मिक जगत् आज विकल हो उठा है। बड़े ही शोकका समय है कि प्रबल पराक्रान्त नास्तिकोंके अयोग्य आक्षेपों, अनुचित कटाक्षों और असंगत कुतर्कों का उत्तर देने वाले तो धर्मोपदेशक बहुत हैं, किन्तु शास्त्रशैली से सयौक्तिक शंकावाद उठाने वाला भयंकर प्रतिवादि दिग्गजों का मद उतारने वाला और अपने भव्यरूप व दिव्य प्रभाव से सारी सभा को चुटकी बजाते निस्तब्ध कर देने वाला शिवकुमार जैसा पण्डित केसरी दूसरा नहीं दीखता। जिस की संस्कृत भागीरथीका सज्जन मन जैसा निर्मल जलपान कर सभ्य शास्त्रियोंका तृषित मन तुरन्त ही हर्षित प्रफुल्लित हो जाता था, जिसकी देवदत्त नैसर्गिक विलक्षण प्रतिभारश्मियों से यह ऋषिदेश भारत भलीभांति भासित हो रहा था और जो "उत्तरोत्तरयुक्तीनां

वक्ता वाचस्पतिर्यथा " था, उसी सरस्वती सुपूत से वियुक्त भारत आज अत्यन्त ही आर्त होरहा है। भारतमें वैयाकरणोंकी कमी नही नैयायिकोंको कमी नही, मीमांसक भी हैं, वेदान्तियों के भी दल मिलेंगे पर प्रत्येक शास्त्रका पूरा पण्डित-सभामें झट-पट बाजी जीत लेने वाला पण्डितराज-पण्डितों के मध्य प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला पण्डितपण्डितराज-पण्डित शिवकुमार के विना हाय! अब कौन मिलेगा, कब मिलेगा, कैसे मिलेगा, कहां मिलेगा? यह निश्चय नहीं कहा जा सकता।

संस्कृत विद्याके लिये आधुनिक दिन बड़े ही दुर्दिन हैं। दुनियां भर में सब के वास्ते जगह खाली है, पर विचारे संस्कृतपाठियोंको दुर्गापाठके सिवाय अब कही कुछ ठिकाना नही। जज़ी कलक्टरी मुंसफी हाईकोर्ट, पोष्टाफिस तारघर रेलवे स्टीमर दफ़्तर बाज़ार शहर सब बन्द हैं। धनिकों के महल राडों भांडों, नौटकी के नगाडों और लुच्चे शोहदे बदमाशों ज़िमकहरामोंसे खचाखच भर रहे हैं, पर विचारे पण्डितों की परवाह किसी माई के लाल को नहीं ऐसी दुर्दशा के दुःसमय में ब्राह्मणसन्तान दिनोंदिन संस्कृत पठन पाठन से पृथक् होती जाती है। यदि आप लोगों की ऐसी ही लापरवाही रही या आपने संस्कृतका समादर न किया, तो पण्डित नामके सिवा कुछ नही मिलने वाला। तब भला शिवकुमार सदृश सर्वतन्त्रस्वतन्त्र सच्चा निगमागमाचार्य महात्मा कहां मिल सकता है। यही तो बड़ा शोक है! जिस के निकट हज़ारों विद्यार्थी बालक, नही नही युवा वृद्ध पण्डित भी पढ़ते थे, जिस के पढ़ाये अगणित पण्डित दिग्दिगन्त में आज भी संस्कृत वाङ्मय की आराधना में तल्लीन हो रहे हैं और दूसरे विद्वानों के शिष्य भी प्रतिष्ठा वृद्धि के अर्थ कहते हैं कि-"हमने काशी में शिवकुमार महाराजसे पढ़ा है जिसके पास पककेश बूढ़े बूढ़े पण्डित तथा संन्यासी साधु महात्मा भी वेदान्त का चिन्तवन करते रहे उस शिवकुमार से-बात बात में जिसकी दुहाई दी जाती थी कि क्या कहीं के शिवकुमार हो!-उसी से विहीना भारतमेदिनी "हा हतास्मि २" कहती विलाप रही है, यही शोक प्रस्ताव का सच्चा समर्थन है॥

आप का जिस पर दिमाग़ था न रहा।
शास्त्र का रोशन चिराग़ था न रहा॥

अब आगे हम शास्त्री जी की कतिपय जीवन घटनाओं को संक्षिप्तरूप में सुनाकर पूर्वोक्त विषय का स्पष्ट मंडन कर देते हैं। सज्जनो! गोस्वामी श्री देवकीनन्दनाचार्य महाराज ने जब काशी मे पण्डितों की सभा की थी तब हज़ारों एक से एक बड़े विद्वानों के बीच में एक मीमांसक पण्डित ने जैमिनिसूत्रों पर जो शबर स्वामीका भाष्य है उसके किसी अंश विशेषका खण्डन किया परन्तु किसीसे उत्तर न बन पड़ा, सभी सुधी सन्न रह गए। तब शास्त्री जी ने दो शब्दोंमें ही उसे फटकार कर कहा था कि "सूत्रों का खण्डन करो उसका समाधान किया जाय। भाषा टीका टिप्पणी तो ऐसे

हम भी अभी बना कर दे सकते हैं ? ” मालवीय जी की प्रयाग वाली महासभामें यह कह कर उठे थे कि “हमको सन्ध्या करना है, यहां कोई शास्त्रार्थ तो है नहीं। ” पर उपस्थित अगणित परिडतों में किसी की भी यह ताव न पड़ी कि कह दे ठहरें महाराज ! हम शास्त्रार्थ करेंगे। भारतमार्त्तन्ड श्री गट्टूलाल जीने काशी में समस्या दी थी “ दिनद्वयं वर्षमध्ये पति वक्त्रं न पश्यति। तब तुरन्त शास्त्रीजीने ही पूर्तिकी थी “ भाद्रशुद्ध चतुर्थ्योः सा चन्द्रचूड़स्य भामिनी ?। अर्थात् शंकर के सिर में चन्द्रमा न दीख जाय, इस भय से पार्वती जी भाद्रमास की चतुर्थियोंमें साल में दो दिन पति का आनन नहीं देखतीं ?। शास्त्री जो एक स्थान में पढ़ाने जाते थे। दश बजे आनेका टायम था. परन्तु आपको कुछ मिनटों की देर हो जाती थी। तब ऊपर के अधिकारी ने बहुत बार ठीक समयमें आनेको कहा और आपने भरसक कोशिश भी की, तथापि कामयाब न होकर बोले थे “ साहब ! मैं चार बजे उठ कर गंगा स्नान नित्यकर्मादि करता हूं किसी भो देव कार्य में जल्दी करके या धर्मकृत्य छोड़ कर रुपया कमाना नहीं चाहता, अतएव यह इस्तीफा लीजिये ” विलायत यात्रा के अनुकूल करने के लिये बाबू लोगों ने बड़े २ लोभ दिखाए पर शास्त्री जी विचलित न हुए। विश्वम्भर दास वाला मुकद्दमा जीतकर स्वर्ग पधार गए। मालवीयजीने अभ्युदयमें ठीक लिखा था कि “ भारत भरका राज्य मिले तो भी शास्त्री जी अपने शास्त्र विश्वासके विपरीत न बोलेंगे?। काशी कांग्रेसके समय उद्धत उद्दंड दयानन्दियों के प्रचण्डगर्वको शास्त्री जी ने ही तोड़ा था आपके शिष्य ने चैलेंज में पांच हज़ारका इनाम रक्खा था समाजियोंने कहा शास्त्री जी पहले रुपये डिप्टी कमिश्नर साहब बहादुरके पास जमा करें हम शास्त्रार्थ करेंगे। तब रुपये फेंक कर भरी सभा में शास्त्री जी ने कहा था कि “ साहब बहादुर का विश्वास समाजियों को है हमारा नहीं पर समाजी लोग हमारे देश जाति भाई हैं चाहे जितने विरोधी हैं तो भी हैं हमारे ही, इस लिये हम उन्हीं के पास जमा करते हैं ? इन शब्दोंको सुन कर आर्यसमाज बहुत लज्जित और प्रसन्न हो कर शास्त्रीजी के पदों पर पड़ा था और समाजी पण्डितों ने चरण छू कर कहा था “ भगवन् ! हम भी तो आप के ही छात्र हैं, आप से शास्त्रार्थ कैसा, क्षमा कीजिये” हा हन्त ? उन्हीं शास्त्री जी के शोक प्रस्तावका हम आज समर्थन करते हैं ? अभाग्यम् देशवासिनाम्।

पं० कालूराम पर क्रोध क्यों ?

श्रावण कृ० ३० गुरुवार सं० ७४ के आर्यमित्र में समाजों के भेजे हुए अनेक लेख छपे हैं जिन सबका सारांश यही है कि– सन् ७५ के छपे सत्यार्थप्रकाश को स्वामी दयानन्द जी ने अस्वीकार करके दूसरी बार छपवाया था उसी पुराने स० प्र० को

सनातनी प० कालूराम ने छपवाकर अनुचित कार्य किया अतः अदालत द्वारा पं० जी पर मुकद्दमा दायर किया जाय ।

पाठकवृन्द ! इसी आशय के लेख आर्यमित्र में पहले भी निकल चुके हैं और आर्यसमाज प० कालूराम पर दांत चबा रहा है परन्तु न मालूम समाज के सिद्धान्तानुसार प० जी ने समाज का क्या बिगाड़ा है । आर्यसमाज कहता व लिखता है कि स्वामी जी ने पहले स० प्र० के अस्वीकार किया है सो हम समाजी भाइयोंसे पूछते हैं कि इसमें प्रमाण क्या ! क्या कहीं स्वामी जी ने लिखा है कि यह स० प्र० अमान्य है जब नहीं लिखा तो समाजने क्यों मिथ्या लिखने व बोलने पर कमर कसी है हां हम प्रमाण देते हैं जिससे सिद्ध होता है कि स्वामी जी प्रथम स० प्र० को मानते थे देखिये उपदेश मञ्जरी (पूनाके व्याख्यान)पृ० ६६ । १२० मे स्वयं स० प्र० का हवाला दिया है परन्तु न मालूम अब आर्यसमाज प्रथम स० प्र० के नाम से क्यों चिढ़ता है और द्वितीयबार के छपे स० प्र० की भूमिका से भी प्रथम स० मान्य ठहरता है ।

द्वितीय सत्यार्थप्रकाश की भूमिका ।

"जिस समय मैंने यह ग्रन्थ "सत्यार्थप्रकाश,, बनाया था उस समय और उस से पूर्व संस्कृत भाषण करने पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्म भूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इस से भाषा अशुद्ध बन गई थी । अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है इस लिये इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी वार छपवाया है कहीं २ शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इस के भेद किये विना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है हां जो प्रथमे छपने में कहीं २ भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक २ करदी गई है" ।

पाठक वृन्द ! इस भूमिका से यह सिद्ध नहीं होता कि प्रथम स० प्र० गलत है तथा उसको मत मानो भाषाको अशुद्ध बतलाया है सो जहां कहीं भाषा अशुद्ध होगी उसके मानने का सनातनधर्म आर्यसमाज से आग्रह नहीं करता परन्तु जहां पूर्वा पर के प्रसङ्ग से इबारत ठीक है वह लेख आर्यसमाज को अवश्य मानना पड़ेगा और प्रेस की अशुद्धि को सनातनधर्म कदापि नहीं पकड़ता प्रेसकी गलती पर टालना यह आर्य समाज का डूबते हुए जल में शिकार का पकड़ना है ।

अब विचार यह करना है कि समाज की वास्तव में क्या हानि हुई और हुई तो क्या इसका दोष प० कालूराम के सिर मढ़ा जायगा ? इस के उत्तर में यदि आर्य्य समाज कहे कि यह स० प्र० आर्यसमाज के सिद्धान्त से विरुद्ध है अतः इसके प्रचार से समाज को हानि हुई या होगी तो हम पूछते हैं कि ऐसा स्वामी जी ने क्यों किया जो अपने मन्तव्य के विरुद्ध पुस्तक लिख बैठे यदि कहो कि कुछ भी हो प० कालूराम ने क्यों छपाया तो हम कहते हैं कि इसमे समाज का क्या ? जब अनेक महानुभाव इसके देखने की उत्कंठा मे थे तो पं० जी ने छपवाकर सब को दिखा दिया तो अपकार किया या उपकार ? अनेक आर्यसमाजी कहा करते थे कि हमने प्रथम स० प्र०

नहीं देखा न मालूम उस में और इसमें क्या अन्तर है अब उत्तर मिल जाता है कि पं० कालूराम के यहां से मंगवा कर देख लो जिन के पास होता है वे उसी समय दिखा देते हैं। यदि आर्यसमाज कहे कि बिना हमारी इजाज़त के क्यों छपवाया गया अतः अदालत का मुख पं० जी को देखना होगा इस के उत्तर में यह है कि पं० जी ने भी कुछ न कुछ कानून वकीलों से पूछ लिया होगा द्वितीय अदालत में आर्य्य समाज का पक्ष चढ़ भी गया तो फिर समाज को फायदा क्या ?? क्या आर्यसमाज स०प्र० को अपनी तरफ से छपवाकर कुछ नफा उठाना चाहता है यदि नहीं तो फिर कोई छपवावे या नहीं समाज को इस झगड़े में क्यों पड़ना। आर्यमित्र द्वारा जो आर्यसमाज पं० जी पर क्रोध उगल रहा है उससे सिद्ध होता है कि पुराना स० प्र० आर्यसमाज की जड़ काटने वाला है यदि अदालत हुई तो और भी पक्का संबूत हो जायगा इसी बातको मनमें विचारते हुए वेदप्रकाश व० २०मा०३ पृ० ५५में लिखा है—

"पं० कालूराम जी शास्त्री अमरौधा जिला कानपुर निवासी ने पुराने स० प्र० को यथातथ्य छपाया है·········इस स० प्र० के प्रकाश से आर्यसमाज की हानि नहीं होगी किन्तु लाभ ही होगा·········इस पुराने स० प्र० में मूर्तिपूजा का खण्डन, पुराणों का, अवतारों का खण्डन, वाममार्ग का खण्डन, शैवों का खण्डन, वैष्णवों का खण्डन, तन्त्रों का खण्डन, जैनोंका खण्डन, भूत प्रेतों का खण्डन भली भांति किया गया है। नियोग अक्षता विधवा विवाह, और युवावस्था का विवाह मण्डन इत्यादि बहुत से शास्त्रीय विषयों का विज्ञान इसके पढ़ने से होगा यह इतना लाभ होगा जितना हजारों ट्रैक्ट बांटने पर भी नहीं हो सकता था। यदि गम्भीर दृष्टि से देखा जाय तो जो कार्य श्रीराजा जयकृष्णदास जी ने अपना व्ययकर किया था उससे अधिक कार्य श्रीकालूरामजीने कर दिया"।

पं० कालूराम पर मुकद्दमा दायर करने वाले हमारे आर्यसमाजी भाई पं० छुट्टनलाल के इस लेखको भलीभांति विचार कर कलम उठावें साथमें इस लेखका प्रतिवाद अवश्य करें कि पं० छुट्टनलाल का लिखना ठीक है या आर्यमित्र सम्पादक का, प्रथम एक मत हो जाना अच्छा है विना समझे सोचे अदालत देखना बहुत बुरा है।

हम अपने भाइयों से पूछते हैं कि यदि पं० कालूराम इस स० प्र० को न छपवाते तब भी तो अनेक विचार शील जानते थे कि प्रथम स० प्र० में इस २ तरह के लेख हैं सैकड़ोंके पास पुराना स० प्र०मौजूद है फिर पं०कालूराम पर विष क्यों उगलाजाता है। और जब पुरानी संस्कारविधि १ शौलेतूर का नोटिस २ बम्बई और लखनऊ का छपा पञ्चमहायज्ञ विधि ३ (अब अजमेर का छपा प्रचलित है) पेश किये जायं तब समाज क्या उत्तर देगा ! वही उत्तर प्रथम स० प्र० के लिये हो सकता है व्यर्थ का ही हल्ला मचाने से समाजकी अवश्य ही कमजोरी साबित होती है आर्यसमाजका चिढ़ना अपने पैर में कुल्हाड़ी मारना है॥

भ०—तुलसीराम शर्मा,
मु० सितारी पो० सासनी (अलीगढ़)

श्री शिवकुमारशास्त्रिणां शोकपरिचयः।

अस्तं गते सवितरं व सचन्द्रिकाणाम् व्योमाङ्गणे भवतु भास्वरतारकाणाम्।
अद्योदयः सकलभारतपण्डितानां विद्याविभाकरगुरौ शिवधामयाते ॥ १ ॥
यत्रैव सर्वविबुधा ह सुधामिवाब्धौ विद्यारसं समधिगम्य बुधा रसज्ञाः।
शास्त्राम्बुराशिमथनश्रमतो विरेमु–स्तस्मिन्भुवं त्यजति ते रसिका हताहा॥२॥
यं सर्वतन्त्रविषयेष्वपिच स्वतन्त्रं ज्ञात्वा जगद्गुरुरलं कृतवानुपाध्या।
तस्मिन्दिवं व्रजतिहा! भुविकोऽग्रगण्यो विद्वद्विवादविषये प्रतिभूश्चकोऽन्यः॥३॥
येधारयन्तिमहताम्महतीमुपाधिमध्यापने तदुचितामिह राजदत्ताम्।
तेषां महिष्ठइव यो मरुताम्महेन्द्रस्तस्मिन् गते सुरपदं विपदं गता भूः ॥ ४ ॥
यन्नामधेयमचिराज्जपतां शिवाय यद्दर्शनेन शिवदर्शनजन्यपुण्यम्।
यत्संगतिर्मनुजजन्मतरोः फलं सः स्मर्तव्यतां शिवकुमार गुरुर्गतोहा ॥ ५ ॥
यो वावदूकदलदर्पदमेऽतिदक्षो जित्वा विपक्षमतमार्षमतं ररक्ष ॥
तस्मिन्नितो दिवमिते द्विजराजसिंहे को रक्षिता श्रुतिवनं प्रतिवादिनागात्॥६॥
नन्वस्ति किञ्जगतीह विदां समाजो धर्मादिरक्षितुमलं विफलं विषाद्।
इत्युच्यते प्रतिवदामि तदुत्तरंचेत् सन्मार्गरक्षणरता विरला विदग्धाः ॥ ७ ॥
केचिद्वदन्ति प्रियमेव परन्नसत्यं सत्यं वदन्ति यदि केचन किन्त्वपथ्यम्।
सत्यं प्रियं हितमपीतिविविच्य वक्ता कोन्यः कलौ शिवकुमारकवेरहोद्य॥८॥
याः सन्तिकाश्चनसभानहितत्रवृद्धा वृद्धाश्च ये सदसि ते न वदन्ति धर्मम्।
धर्मंतु सत्यरहितं फलवच्च सत्यं चेत्तर्हि किं शिवकुमारमृतेशरण्यम् ॥ ९ ॥
पाश्चात्यपद्धतिपरः खलुसभ्यवर्गो देशोन्नतेर्मिषत एवनिहन्ति धर्मम्।
तेषां प्रयत्नमिहयावदमूलितन्न तावत् कथं शिवकुमारसुधीर्गतो हा ॥ १० ॥
मन्येहिताय जगतः शिवधाम हित्वा ह्यत्रागतः पुनरितोऽपिचतत्र गत्वा।
कर्तासि लोकहितमेव गमागमाभ्यां भानोरिवार्यचरितंतव चारुचित्रम् ॥ ११ ॥

व० यो० शिवदत्त शर्मा पुष्टिकर !

साहित्य-चर्चा।

स्वधर्म सर्वस्व। लें० श्री गंगाधर बापू जी वैद्य प्रकाशक श्री सनातनधर्म प्रवर्त्तक मण्डल भावनगर मू० २॥)

वर्त्तमान समयमें हिन्दी भाषामें अनुवाद पुस्तकों की वृद्धि आवश्यकतासे अधिक हो रही है ऐसी अवस्था में जब कभी कोई मौलिक पुस्तक हमारे दृष्टिगत होती है तब विशेष हर्ष प्राप्त होता है यह पुस्तक मौलिक है और इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या करीब ८०० है। सनातनधर्म के सभी सिद्धान्तों की प्रश्नोत्तर रूप से इस में अच्छी व्याख्या की है इस पुस्तक में सिद्धान्तों को सिद्ध करने के लिये प्रमाणों का आश्रय नहीं लिया गया है किन्तु युक्ति और तर्कसे विद्वान् लेखकने अपने विचारोंको पुष्ट किया है हम ऐसी पुस्तक प्रकाशित करने के लिये ग्रन्थकर्त्ता का अभिनन्दन करते हैं सनातनधर्म के पक्षी और विपक्षी दोनोंको यह पुस्तक देखने योग्य है भाषामें कहीं २ गुजरातीपन है पर उससे लेखक का आशय समझने में भ्रान्ति नहीं हो सकती।

वारुणी। वंगभाषा के मासिकपत्रों में इस समय गल्पों का आधिक्य जोर पकड़ रहा है वंगभाषा के मासिकपत्रों की देखा देखी हिन्दी के मासिकपत्र और कभी २ साप्ताहिकपत्र भी कहानियां छापने लगे हैं। प्रस्तुत पुस्तक वङ्गभाषा के सुन्दर लेखक प्रोफेसर शरच्चन्द्र घोषाल एम० ए० वी० एल० की लिखी कहानियों का हिन्दी अनुवाद है इस में छपी कहानियां भिन्न २ मासिकपत्रों में प्रकाशित हो चुकी हैं पर इन का संग्रह करके और उसे हिन्दी भाषा में लिखकर स्मृतिशेष मनोरञ्जन के भूत पूर्व सम्पादक पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा ने साधुवाद का कार्य किया है। इस की कहानियां सुन्दर शिक्षाप्रद और सुपाठ्य हैं विशेषता यह है कि इन कहानियोंमें मानवस्वभाव का वही चरित्र चित्रित किया गया है जो औपन्यासिकों और कवियों की भाषामें नैसर्गिक या स्वाभाविक कहा जाता है घटना घटाटोप का इसमें अभाव है पुस्तक का मूल्य ।≈) और पृष्ठ संख्या १५५ है मिलने का पता—मैनेजर पाटलिपुत्र मुरादपुर बांकीपुर।

भारतीय शासन पद्धति। द्वितीय भाग, ले० पं० अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी प्रकाशक श्रीप्रतापनारायण वाजपेयी नं० ३३ श्रीनाथराय लेन कलकत्ता मू० ॥≈)

इस के प्रथम भाग की समालोचना हम कर चुके हैं प्रस्तुत पुस्तक उसी का द्वितीयभाग है इस में १-भारतीय सेना २-स्थानिक स्वराज्य ३-व्यवस्थापिका सभायें

और ४-प्रिवी कौन्सिल इन विषयों का विवेचन किया गया है विद्वान् लेखक ने प्रत्येक विषय का पूर्ण विवरण लिखा है अन्त में परिशिष्ट (क) में यूरोपकी प्रधान सेनाओं की रचना और परिशिष्ट (ख) में यू० पी० का नया म्यूनीसिपैलीज एक्ट दे दिया है यद्यपि परिशिष्ट (क) में लिखित यूरोप की सेनाओं के वृत्तान्त से पुस्तकका विशेष सम्बन्ध नही हैं तथापि समर समाचार जानने में उस का उपयोग किया जा सकता है। यह कहना व्यर्थ है कि इस पुस्तक की इस समय परमावश्यकता थी क्योंकि हिन्दी जानने वालों में अधिकांश पठित जन वर्त्तमान शासन नीति के स्वरूपावगम से वञ्चित हैं स्वराज्य सम्बन्धी आन्दोलन करने के लिये प्रथम वर्त्तमान शासनपद्धति का स्वरूप जानना आवश्यक है इसकी भाषा परिमार्जित है मूल्य ऐसी पुस्तकोंका अधिक रखना ठीक नही हमारी समझ में मूल्य कुछ अधिकहै।

सप्त सरोज। ले० श्रीयुक्त प्रेमचन्द, प्रकाशक-हिन्दी पुस्तक एजेन्सी गोरखपुर मूल्य ॥।)

सरस्वती आदि मासिकपत्रों के पढ़ने वाले इस पुस्तक के लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द जी से परिचित होंगे आपकी कहानियां सरस्वती, ज्ञानशक्ति आदि पत्रिकाओं में निकलती रहती हैं, आपकी कहानियां मौलिक होती हैं साथ ही में उनमें मनुष्य चरित्रों के चित्रणकी शक्ति भी रहती है विशेषता यह होती है कि अश्लीलता का कही नाम नही रहता और प्रत्येक कहानी से शिक्षा मिलती है, इस पुस्तक में प्रेमचन्दजी की लिखी हुई सात कहानियां हैं सभी सुन्दर सुपाठ्य और शिक्षाप्रद हैं मूल्य इसका भी कुछ अधिक है।

श्वासविज्ञान अर्थात् प्राणायाम। इस पुस्तक के ले० ठा० प्रसिद्धनारायणसिंह बी० ए हैं०, राजर्षि भिनगेश द्वारा अंग्रेजी भाषा में छपी हुई योगी रामाचारक लिखित (साइंस आफ ब्रेथ)नामक एक पुस्तक आपको प्राप्त हुई थी प्रस्तुत पुस्तक उसी का परिवर्द्धित हिन्दी अनुवाद है। इसमें सिद्ध किया है कि प्राणायाम सम्बन्धी क्रियाओं के करने से ही शारीरिक और मानसिक सभी स्वास्थ्य प्राप्त हो सकते हैं। लेखक ने स्वयं अपने शरीर पर इस का अनुभव किया हैं और इस क्रिया द्वारा वे कई रोगों पर विजय प्राप्त कर चुके हैं इस पुस्तकमें वर्णित विषयों की सत्यता इसी से प्रतिपादित की जा सकती है कि योगमार्ग के साधक इसी प्राणायाम के द्वारा पूर्व समय में बहुत कुछ सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं अतः इस विषय में सन्देह करना व्यर्थ मालूम होता है प्राणायाम की आरम्भिक क्रियाओं की युक्तियुक्तता इस में सर्वबोधगम्य तर्कों से की हैं जिस से पुस्तकस्थ विषय साधार और सप्रमाण सिद्ध होते हैं। पुस्तकका मू० ॥) और मिलनेका पता—ठाकुर प्रसिद्ध नारायणसिंह बी० ए० मु० भोजूबीर बनारस सिटी।

शतरंज सरोज । इसका आकार छोटा और पृष्ठ संख्या १६६ है मू० १) और छपाई मध्यम है श्रीगोकुल निवासी भट्ट श्री देवकीनन्दन शर्मा पो० श्रीनाथद्वारा जि० उदयपुर ने लिखा और प्रकाशित किया है आप शतरञ्जके अच्छे खिलाड़ी मालूम होते हैं इसमें १०० नकशे दिये गये हैं जिनसे शतरञ्ज खेलने वाले नई २ चालें सीख सकते हैं, पुस्तकके प्रारम्भ में शतरञ्ज की आरम्भिक बातें जिस भाषामें लिखीगई हैं वह वर्त्तमान भाषा शैली के सर्वथा विरुद्ध है अच्छा होता कि आप किसी हिन्दी जानने वाले से भाषा बनवा लेते।

बालऋषिचरित । ले० पं० रामानन्द द्विवेदी प्रकाशक मनेजर पाटलिपुत्र मुरादपुर बांकीपुर मूल्य ।≠)

भारतके प्राचीन ऋषि महर्षियों के पवित्र चरित्रों से शिक्षा ग्रहण करनेका और उनके जीवनचरित्रोंके पढ़नेका विचार दिन पर दिन घट रहा है। आज कल यूरोपियन नामावली ही आदर्श पुरुषों के चरित्र वर्णन करने के समय शिक्षित पुरुषों के जिह्वाग्र में उपस्थित होती है ऐसी अवस्था में इस पुस्तक को लिख द्विवेदी जी ने धन्यवादका कार्य किया है ऋषियों के पवित्र चरित्रोंका पढ़ना सुनना प्रत्येक भारत सन्तान को आवश्यक है इसमें अन्य ऋषियोंके नामों के पहिले तो महर्षि ब्रह्मर्षि विशेषण लगाये हैं पर न मालूम महर्षि विश्वामित्र क्यों इस सम्मान से वञ्चित कर दिये गये हैं॥

आदि सत्यार्थप्रकाश । रचयिता पं० वेणीप्रसाद शर्मा प्रकाशक दयानन्द सरस्वती दीक्षितपुरा कुवा मन्दिर के पास जवलपुर। मू०।≠)

प्रस्तुत पुस्तक स्वा० दयानन्द सरस्वती के रचित सत्यार्थप्रकाशके प्रथम समुल्लास का शुद्ध रूप है इस पुस्तक के रचयिता पं० वेणीप्रसाद उपनाम दयानन्द सरस्वती का उद्देश्य है कि आर्यसमाज के मुख पर जो अवैदिकपन की कालिमा लगी हुई है उसे छुटा कर उसको शुद्धरूप प्रदान किया जाय एतदर्थ आपने आदि आर्य समाज की स्थापना की है आप वर्त्तमान आर्यसमाजियों से निर्णय करने को भी तैयार हैं पर आप के लिखने से विदित हुआ कि १४ वर्ष प्रयत्न करने पर भी कोई समाजी संस्थापक जी के सम्मुख नहीं आया। यह भी मालूम हुआ कि आर्यसमाजी आप से विरोध रखते हैं उचित तो यह है कि वे प्रीति पूर्वक समाज के सिद्धान्तों की सत्यासत्यता का निर्णय कर लें।

समाचारावली।

भिवानी में महाधिवेशन।

श्री खाण्डल विप्र महासभा का चतुर्थ महाधिवेशन भिवानी नगर में ता० २१, २२, २३ सितम्बर १९१७ को तीन दिन तक बड़े समारोह से बड़ी धूमधाम से आनन्द

उत्साह के साथ हुआ। जिसमें बड़ी दूर २ के विद्वान् पधारे थे। भिवानी निवासी खाण्डल भाइयोंने तन मन धनसे वर्षा आदिका कष्ट सहते हुए भी बाहरसे आये प्रतिनिधियों की सेवा कर धन्यवाद के पात्र बनने का कार्य दिखाया।

श्रीमद्वेदान्ताचार्य्य प० भूधरमल जी के पौत्र काशीस्थ पं० हुक्मीचन्द जी जोशी के पुत्र पं० शिवलाल जी वेदान्त मार्त्तण्ड रतनगढ़ निवासी इस सभाके प्रधान सभापति बने थे।

गत सालके दश नियमोंकी पालन करनेकी प्रतिज्ञा बहुतसे खाण्डल भाइयों ने की संघशक्ति, विद्याप्रचार, कुरीतिनिवारण, वंशावली की समालोचना आदि विषयों पर व्याख्यान द्वारा उपस्थित जनोंके अन्तःकरणोंमें बड़ा प्रभावशाली चटकीला असर पड़ा।

श्रीमान् खाण्डल भूषण महोपदेशक श्री भारतधर्म महामण्डल पं० बक्तावरलाल जी फीरोजपुर निवासी को "व्याख्यान वाचस्पति" उपाधि सभा से मिली।

महोपदेशक पं० सोमदेव जी मथुरा को "व्याख्यानभूषण"
पं० राधाकृष्णाचार्यजी शास्त्री खेतड़ी को "महोपदेशक"
प० सुन्दरदत्त जी श्रोत्रिय नीमच को "व्याख्यान-रत्न"
पं० मोहनलाल जी शास्त्री देहली को "विद्यारत्न"
पं० रामकुमार जी सासनी को "वैद्यभूषण" उपाधि मिली।

पञ्चमाधिवेशन सं० १९७४ आगामी फाल्गुन मास की किसी तिथि को हिसार नगर में होना निश्चित हुआ है।

महाधिवेशन सकुशल सहर्ष बड़े समारोह के साथ बड़ी धूम धाम से गणेशादि देवस्तुतियों से बड़े २ विद्वानों के बड़े प्रभावशाली मनोहर २ व्याख्यानों से अत्यन्त रंगीला हुआ।

श्रीमान् भारत सम्राट् पञ्चम जार्ज की विजय के लिये परमात्मा से प्रार्थना कर सभा का विसर्जन किया गया।

भवदीय—
पं० रामबक्श शर्मा मन्त्री, श्रीखाण्डल विप्रमहासभा-देहली

आनन्द समाचार।

बड़े हर्ष पूर्वक प्रकाशित किया जाता है कि हाथरस [अलीगढ़] में मिती द्वितीय भाद्रपद शुक्ल ६ शनिवार ता० २२ सितम्बर सन् १९१७ ई० को स्थानीय कतिपय धर्मोत्साही सज्जनों के उद्योग से "श्री सनातनधर्म पुस्तकालय" नामक संस्था संस्थापित की गई है। उक्त संस्था के उद्देश्य और नियम आदि सर्वोपयोगी और सर्वप्रिय हैं। ईश्वर इस पुस्तकालय को चिरायु प्रदान करें।

एक सदस्य-

पं० कालूराम पर समाजी चक्र।

सनातनधर्म के प्रसिद्ध महोपदेशक पं० कालूराम जी पर पहिले सत्यार्थ प्रकाश के छपाने के कारण आर्यसमाज की ओर से अभियोग चलाने की चर्चा पाठक गताङ्क में पढ़ चुके हैं। सनातनधर्म सभाओं को परिडत जी की सहायतार्थ फण्ड खोलना चाहिये। पं० कालूरामने निजका काम नहीं किया सनातनधर्मका काम किया है, इस समय "भारतधर्म महामण्डल" को सहायता देनी चाहिये, आगे को अन्यान्य उपदेशक किस भरोसे काम करेंगे। सनातनधर्मी वकील पं० अवधविहारीलाल मेरठ, पं० गयाप्रसाद तिवारी सीतापुर, पं० मोहनलाल जी लखीमपुर, पं० राजेन्द्रमिश्रजी अमृतसर प्रभृति सहायता करें। अथवा माननीय मालवीय जी राजीनामा करादें। इसमें मङ्गल है। यह शिर फुटव्वल कैसा क्या समाजी लीडर शान्ति नहीं चाहते।

उठो २ उपदेशक महोपदेशकगण परिडत जी की सहायतार्थ आन्दोलन करो।

"जय सनातनधर्म की" रामदत्त ज्योतिर्विद्।

सिरसागञ्जमें उत्सव।

सिरसागञ्ज (मैनपुरी) यहां गत ता० ६ सितम्बर सन् १७ ई० को लाला अयोध्याप्रसादजीकी दूकान पर श्री सनातनधर्म कन्या पाठशालाका उत्सव अत्यन्त समारोहके साथ हुआ जिसमें मुंशी सुघरसिंह अपर प्रायमरी स्कूलके अध्यापकजीने पुत्रीशिक्षा के लाभ दिखलाये, पश्चात् पं० बाबूराम शान्ता जीका अति मनोहर व्याख्यान हुआ पश्चात् पं० बाबूराम वित्थरियाजीने मनोहर कविता पढी जिसमें पुत्री पाठशाला के लाभ दिखलाते हुये पं० श्यामलाल जी सबडिप्टी इन्सपेक्टर को धन्यवाद दिया पश्चात् को पं० गोपाल प्रसाद जी भजनोपदेशकजीने मनोहर और प्रभावशाली भजनों द्वारा समस्त ग्रामीणोंका मन प्रफुल्लित किया पश्चात् को कन्या पाठशाला के अध्यापक जी ने कन्याओंकी सुईकारी का काम निरीक्षण कराया उक्त अध्यापक का कार्य अत्यन्त ही सराहनीय था उस कार्यमें कन्याओं को पारितोषिक भी नियत कियागया है उक्त उत्सवने ग्रामवासियोंके हृदयमें पुत्रीशिक्षाके लाभ भलीभांति चित्तांकित करादिये हैं। चौधरी बाबू कन्हैयालाल

आर्यसमाज की कमजोरी।

यहांकी आर्य स० का उत्सव ता० ७ सितम्बरसे ता० ११ सितम्बर तक होगया—यह यहांकी समाजका तृतीय वार्षिक उत्सव था पूर्व दो उत्सवों में शास्त्रार्थ करने के विषयमें टालमटोल करनेसे आर्यसमाजकी जो दुर्दशा हुई, वह यहांके किसी भी धर्मप्रेमी सज्जनसे छिपी नहीं है, शास्त्रार्थ होने से स्वा० दयानन्द के कपोल कल्पित वेदविरुद्ध सिद्धान्तोंकी पोल खुलजानेके भयसे दयानन्दियों ने एक और चालाकी की,

वह यह कि यहां पर उत्सव होनेकी सूचना न किसी समाचार पत्रमें दी, और न उत्सव का प्रोग्राम ही छपवाया, और आश्चर्य की बात यह है कि पहिले समाजियों ने उत्सव ता० ७ सितम्बर से नियत किया था परन्तु फिर जभी उन को यह ज्ञात हुआ कि सनातनधर्म सभा वाले भी अपने पण्डितोंको बुलवा रहे हैं, तब (स०ध० सभाको धोखा देने के लिये) उत्सव ता० ७ सित० से नियत किया, इस से "आर्यसमाज की कमज़ोरी अच्छी तरह से ज्ञात होती है।

द० गोविन्दराम खिल्लूमल जैकमाबाद

महोवामें शास्त्रार्थ ।

१६ सितम्बर सन् १७ से सनातनधर्मसभा महोवाका आर्यसमाज महोवाके साथ शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ शास्त्रार्थके नियम पहिले ही से निश्चित होचुके थे सनातनधर्म सभा की ओरसे शास्त्रार्थ करने के लिये (अखिल भारतवर्षीय ब्राह्मण महासभाके) सुप्रसिद्ध वक्ता कविरत्न पं० अखिलानन्द जी, मुज़फ्फर नगर निवासी श्रीयुत पं० छज्जूदत्त जी शास्त्री, श्री० पं० कन्हैयालाल जी विद्यारत्न, श्री० पं० कालूराम जी शास्त्री युक्तिविशारद, उपस्थित थे और आर्यसमाजकी ओर से श्री पं० नन्दकिशोर जी, श्री पं० वसन्तलाल जी श्री० पं० रामाश्रय जी, श्री० पं० शिवशर्मा जी, उपस्थित थे शास्त्रार्थका विषय मूर्तिपूजा मृतकश्राद्ध और वर्णव्यवस्था नियत था ता० १६ को शामके ५ बजे मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ शास्त्रार्थमें शान्ति स्थापन के लिये और समयकी सूचना देने के लिये माननीय ज्वाइण्ट मेजिस्ट्रेट उपस्थित हुए यद्यपि नियमों में यह बात निश्चित हो चुकी थी कि पूर्व पक्ष आर्यसमाज की ओर से होगा परन्तु आर्यसमाज अपनी कमज़ोरीके कारण पूर्वपक्ष करनेको असमर्थ हुआ इसलिये सनातन धर्मसभा की ओर से पं० अखिलानन्द जीने मूर्त्ति पूजन पर पूर्वपक्ष किया, चारों वेदोंके प्रमाणों से मूर्ति पूजन होना चाहिये यह सिद्ध कर दिखलाया, आर्यसमाजके पण्डितोंने उन प्रमाणोंको न छूकर अस्त व्यस्त बोलना आरम्भ किया शास्त्रार्थ ३ घण्टे तक होता रहा परन्तु इतने समयमें भी समाजी मूर्तिपूजनको अवैदिक सिद्ध न कर सके दूसरे दिन ता० २० को वर्षा होनेके कारण शास्त्रार्थ वन्द रहा ता० २१ को फिर इसी विषय पर आर्यसमाजियोंने पूर्वपक्ष किया जिसका उत्तर पं० अखिलानन्द जीने सत्यार्थप्रकाशादि दयानन्दी ग्रन्थों से ही देकर मूर्तिपूजन सिद्ध किया इस प्रकार दो दिन में मूर्तिपूजा विषयक शास्त्रार्थ समाप्त हुआ ता० २२ को मृतक श्राद्ध पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ धर्मसमाज की ओरसे श्री० पं० छज्जूदत्त जी ने वैदिक मन्त्रों से श्राद्ध विषयका प्रतिपादन किया जिसका उत्तर देनेके लिये आर्यसमाजकी ओरसे पं० शिवशर्मा जी उद्यत हुए परन्तु उन्होंने जो उत्तर दिया उस से आर्यसमाज का पक्ष स्वय ही गिर गया इसीलिये ज्वाइण्ट मेजिस्ट्रेट ने आर्यसमाज को शास्त्रार्थ करने से

रोक दिया आजके पराजयसे आर्यसमाजमें अशान्ति फैलगई इसी कारण ता० २३ को फिर आर्यसमाज ने अपनी धृष्टता से मृतक श्राद्ध पर ही फिर प्रश्न किया जिस का उत्तर पं० अखिलानन्दजीने वेद मन्त्रों द्वारा देकर सत्यार्थप्रकाशादि दयानन्दी ग्रन्थोंसे भी दिया और मृतक श्राद्ध सिद्ध किया इसपर आयसमाजियोंने भरी सभामें सत्यार्थप्रकाशादि दयानन्दी ग्रन्थोंको वेदविरुद्ध मान लिया इस प्रकार दो दिनमें श्राद्ध विषयक शास्त्रार्थ भी समाप्त होगया और आर्यसमाज का घोर पराजय हुआ इसी कारण वर्णव्यवस्था पर शास्त्रार्थ करनेके लिये वह उद्यत नहीं हुआ अन्तमें ता० २४ को श्री० पं० अखिलानन्द जी का वर्णव्यवस्था पर और श्री० पं० छज्जूदत्त जीका मृतक श्राद्ध पर व्याख्यान हुआ जिससे आर्यसमाज के अवैदिक सिद्धान्तों की सर्वसाधारण के समक्ष कलई खुल गई इन दिनों में जनता की उपस्थिति इतनी थी कि सनातनधर्म सभा की ओरसे छपाये हुए ५००० प्रवेश पत्र पर्याप्त न हुए एक बात इस शास्त्रार्थ में अधिक ध्यान देने योग्य यह हुई कि आर्यसमाजकी ओरसे संस्कृतमें शास्त्रार्थ करनेके लिये जो नियम निश्चित हो चुका था उसको आर्यसमाजी न निभासके जिससे आर्यसमाजी पण्डितों के पाण्डित्यकी भी सर्वसाधारणके समक्ष पोल खुल गई ॥

निवेदक-सेक्रेटरी सनातनधर्म सभा महोवा प्रान्त हमीरपुर

शिवपञ्चायतन प्रतिष्ठा ।

पूज्यपाद गुरुवार्य १०८ श्रीमान् पं० भीमसेनजी शर्मा सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व तथा भूतपूर्व वेद व्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी के हृदय में यह विचार बहुत दिनों से था कि एक देवालय निर्माण करके उसमें श्रीभगवान् शङ्कर के साथ अन्य देवताओं की भी प्रतिष्ठा की जाय, परन्तु कई कारणों से इस संकल्प के पूर्ण होने में विलम्ब होता गया, कहा भी है कि "श्रेयांसि बहुविघ्नानि" तथापि विघ्न बाधाओं का अतिक्रमण करके गत ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को मन्दिर निर्माण का प्रारम्भ किया गया, जैसा कि मन्दिर द्वारस्थ पाषाणशिलाङ्कित निम्न श्लोक से व्यक्त है-

सम्प्राप्ते वेदभूभृद्ग्रहधरणिमिते वैक्रमेऽब्देच मासे,
ज्येष्ठेशुक्लेदशम्यां गुरुदिवसयुते नेकरामात्मजेन ।
देवानांमोदवृद्ध्यै खलु शिवनिलयस्यास्य मिश्रास्पदेन,
निर्माणंकारितं यत्तदपचितिधिया भीमसेनेन ज्ञेन ॥

इटावेकी अपेक्षा यह अधिक उचित समझा गया कि देवमन्दिर लालपुर ग्राममें हो कि जिसको श्रीगुरुमहाराजकी जन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त है यह ग्राम कालीनदी के किनारे मैनपुरी से साढ़ेछहकोस उत्तर कुरावली नामक कस्बे से १॥ कोस पर अवस्थित है यहां का जल वायु सर्वथा उत्तम है, मन्दिर निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो जाने पर भी इसके बनने में चार महीने लगे, मन्दिर के समीप ही एक पक्का कूप भी बनवाया गया है गत शु० भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी शनिवार को इस नवनिर्मित

देवालय की प्रतिष्ठा का शुभमुहूर्त रक्खा गया था और ब्रह्मभोज भाद्रपद शुक्ला पूणिमा को रक्खा गया था इसकी सूचना प्रेमी सज्जनों के पास निमन्त्रणपत्रों द्वारा भेजदी गयी थी, प्रतिष्ठाका शुभ कार्य सम्पादन करानेके लिये मथुराके प्रसिद्ध याज्ञिकभूषण पं० अमृतराम वल्लभराम पण्ड्या जी पधारे थे आपके साथ कर्मकाण्ड सम्बन्धी सहायता के लिये वेदपाठी पं० सखाराम भट्ट जी काशी निवासी भी थे, शुद्ध भाद्रपद शुक्ला एकादशी से ही प्रतिष्ठोत्सव का कार्य प्रारम्भ होगया था तीन दिनों तक वेदोक्त विधिसे प्रतिष्ठा का कार्य याज्ञिकभूषण जी ने कराया और त्रयोदशी के दिन प्रातःकाल चार बजे स्थिर सिंह लग्न में श्रीभगवान् आशुतोष महादेवजी, श्रीसूर्य नारायण, विष्णुभगवान्, गणेश जी और जगदम्बिका गौरी देवी इन पांच मूर्त्तियों की प्राण प्रतिष्ठा की गई, श्री महादेव जी के अनन्यभक्त नन्दीश्वर भी श्रीशिव जी के समीप स्थापित किये गये, सो यह ठीक ही है क्योंकि भक्तजन कभी भी अपने आराध्यदेव के चरणों से पृथक् नही रहते। मुझे भी इस प्रतिष्ठोत्सव के दर्शन और सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, ता० ३० भाद्रपद शुक्ला पूर्णिमा को ब्रह्मभोज किया गया, इस भोज में समस्त ग्राम के भोजन का आयोजन किया गया था आस पास के ग्रामों के भी प्रसिद्ध २ व्यक्ति निमन्त्रित किये गये थे, अनुमानतः ७००-८०० मनुष्यों को भोजन कराया गया, इस मन्दिर निर्माण तथा प्रतिष्ठोत्सव कार्यमें प्रियवर रुद्रदत्त मिश्र ने विशेष परिश्रम किया तदर्थ मैं उन को हृदय से धन्यवाद देता हूं इस तरह भगवत्कृपासे यह उत्सव सानन्द समाप्त हुआ।

निवेदक—गुरुपादपद्मरजोऽभिलाषी प्रेमदत्त शर्म्मा (छिबरामऊ) ज़ि० फर्रुखाबाद।

विश्वविद्यालय का परित्याग।

ब्राह्मणसर्वस्व के पाठकों को यह विदित ही है कि सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व ने कुछ सज्जनों के आग्रह से गत सन् १९१२ में कलकत्ता यूनिवर्सिटीके वेदव्याख्याता के उच्चपद को स्वीकार कर लिया था और तभी से अध्यापन कार्य भी प्रारम्भ कर दिया था, इस पदके प्राप्त होने पर भी पं० जी का विचार इस पद पर स्थायीरूप से रहने का न था और इसी लिये वे पांच वर्ष का संकल्प भी कर चुके थे गत फरवरी सन् १९१७ में श्री प० जी महाराज ने इस पद-का त्यागपत्र विश्वविद्यालय के अधिकारियों के सम्मुख उपस्थित किया, इस पर अधिकारियों ने प० जी से यह आग्रह भी किया कि आप इसी पद पर बने रहें और हमें इस पद के लिये उपयुक्त पण्डित के मिलने की सम्भावना नहीं दीखती तथा विश्वविद्यालय के कार्य में भी क्षति पहुंचेगी परन्तु पं० जी पहिले ही दृढ़ संकल्प कर चुके थे अतः इन बातों पर ध्यान न दिया अन्ततोगत्वा विश्वविद्यालय के अधिकारियों को त्यागपत्र स्वीकार करना ही पड़ा और गत जुलाई माससे विश्वविद्यालय कलकत्ता से पं० जी का सम्बन्ध विच्छिन्न होगया, श्रीमहाराज के विचार पहिले ही से पारलौकिक विचारों की ओर हैं अतः उन्होंने सभाओंमें भी बाहर जाना आना छोड़दिया है इसलिये सनातनधर्मी सज्जनों को उचित है कि वे इस विषय में पण्डित जी को कष्ट न दें। नि०—प्रेमदत्त शर्म्मा,

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS—ETAWAH.

॥ श्रीः ॥

उपयोगी पुस्तकें

व्याकरण पत्रावली—इस पुस्तक में काशीकी प्रथम परीक्षा के संपूर्ण १० वरस के परचे और कुछ एक मध्यम परीक्षा के परचे सम्मिलित हैं। उत्तरप्रत्युत्तर तथा प्रयोगों की सिद्धि संस्कृत में बड़ी शुद्धता पूर्वक करी है। इसको कंठस्थ करनेसे विद्यार्थी व्याकरण के परचे में अनुत्तीर्ण (फेल) नहीं होसकता मूल्य केवल लागत मात्र ॥) आना। लघुकौमुदी भाषा टीका मूल्य १।) रघुवंश बड़ा एक सर्गसे पांचसर्ग तक पर्याय और भाषाटीका सहित १) मेघदूत पर्यायकोश तथा भाषाटीका सहित ॥)

न्याय सिद्धान्त मुक्तावली—यह न्याय का अपूर्व ग्रन्थ है। बृहत् टिप्पणी दिनकरी और रामरुद्री भाषाटीका सहित मूल्य १।)

वाल्मीकीय रामायण—अर्थात् भाषाटीका तथा अंग्रेज़ी अनुवाद सहित सातों कांड, यह ग्रन्थ बड़ा होने के कारण चार जिल्दों में पृथक् २ छपा है हिन्दी संस्कृत और अंग्रेज़ी जानने वालोंको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये मूल्य केवल १०) रुपया।

बोपदेव की भागवत—भाषाटीका सहित डाक व्यय सहित मूल्य १) रु०

चौदह रत्न या पञ्च रत्न

अर्थात् १२५ पुस्तकों का भंडार। इसमें सनातनधर्म के उत्तम २ विषयों पर व्याख्यान पुराणों की कथायें, इतिहासों के चरित्र ज्योतिष और वैद्यक शास्त्र के ज्ञातव्य आदि बड़े २ विषय संगृहीत किये हैं अर्थात् गागर में सागर भरा है। १)

दृष्टान्त समुच्चय—इस ग्रन्थ में प्रत्येक विषय पर हास्य करुणा शान्त तथा बीभत्स रस पूर्ण उत्तमोत्तम १६४ दृष्टान्त सम्मिलित हैं मूल्य १॥)

धर्म दिवाकर—यह पुस्तक स्वर्गीय विद्या वारिधि प० ज्वालाप्रसाद जी की रचित है। इसमें स्वामी तुलसीरामजी के भास्करप्रकाशका घोर रूपसे खण्डन किया है जिसको पढ़ने से दयानन्दियों की रही सही पोल भी खुल जाती है मू० ॥) आना

स्त्री देह तत्व—इसमें स्त्री शिक्षा स्त्री चर्या, तथा स्त्री धर्म पर उत्तमोत्तम जानने योग्य बातें लिखी हैं मू० ॥) आना

पता—

पं० लालमणि पूठिया उपदेशक

दिनदारपुरा—मुरादाबाद।

पाराशरस्मृति ।

अष्टादशस्मृतियों मे पाराशरस्मृति भी है इसको हमने पृथक् छपवाया है महर्षि पाराशर के कहे धर्म कलियुग में विशेष मान्य हैं । यद्यपि सब युगोंमें सब स्मृतियों के जानने पढ़ने और तदनुसार आचरण करके अपने सुधार करनेकी आवश्यकता है पर जिन लोगोंको विस्तृत धर्म शास्त्र देखने का अवकाश नहीं है उनको कमसे कम यह ग्रन्थ अवश्य देखना चाहिये ऊपर मूल श्लोक तथा नीचे भाषाटीका है । यह पुस्तक आराकी सनातनधर्म परीक्षा के कोर्स में नियत है । मूल्य ॥) है ।

पूजाफूल ।

यह पुस्तक अभी हाल ही में छपी है इसमे पंडित मुरलीधर पाण्डेय और पंडित मुकुटधर पाण्डेय की लिखी हुई अत्यन्त मनोहारिणी रसवती और चमत्कारिणी ७४ कविताओं का संग्रह है कविता प्रेमियों—विशेष करके खडी बोली की हिन्दी कविता के रसिकोंको—यह पुस्तक अवश्य देखना चाहिये इस के देखनेसे मालूम पडेगा कि उत्तम कविता किसे कहते हैं । हिन्दी कविताओंका ऐसा उत्तम संग्रह आज तक कहीं नहीं छपा । मूल्य ॥)

पता—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा ।

पितृयज्ञसंगति—नामक एक पुस्तक कलकत्ता गोविन्द प्रेस में छपी है । इसके लेखक भिवानी निवासी लाला हरद्वारीमल चोखानी हैं । पुस्तक की भूमिका देखने से प्रतीत होता है कि उन्होंने आर्यसमाजके चतुर्थ नियम (सत्यका ग्रहण करना और असत्यका त्याग करना) पर ध्यान देते हुये इस पुस्तक को लिखना उचित तथा आवश्यक समझा है, और मृतक श्राद्ध को वेदादि प्रमाणों द्वारा अर्थात् ऋक् यजु अथर्व तैत्तिरीयारण्यक छान्दोग्योपनिषद् मनु पाणिनि कात्यायन पतञ्जलि शांखायन बौद्धायन आपस्तम्ब वशिष्ठ वाल्मीकि व्यास, आदि आर्ष प्रमाणों से सिद्ध कर दिखाया है । आर्य सभासद् वेद को अपौरुषेय धर्म पुस्तक मानते हुए भी मृतक श्राद्ध को खण्डन " अवैदिक तथा अनावश्यक सम्पादन " करने के लिये प्रायः वही युक्तियां दिया करते हैं कि जो वैदिक धर्मको खण्डन करने वाले नास्तिक वा प्रत्यक्ष वादियों ने पूर्व में दी हैं, जैसे कि श्राद्ध करने से मृतक पितर तृप्त होते हों तो परदेश जाने वालोंके लिये पाथेय कल्पना वृथा है इत्यादि;उनका ध्यान इस बात पर दिलाना आवश्यक है कि वे ऐसा करने से,अपनी धर्म पुस्तकको जड़ पर स्वय कुल्हाड़ा मारते हैं । पुस्तक बहुत उपयोगी है और पढ़ने से मृतक श्राद्धकी इतिकर्त्तव्यता में निश्चय हो जाता है। डेमी सायजके ५२ पृष्ठमें छपी है। मूल्य केवल चार आना है । मिलने का पताः-कलकत्ता अपर चितपुर रोड नं० ४०२ का मकान लाला हरद्वारीमलचोखानी ।

समालोचक——

शिवनाथ आहिताग्नि-

वैदिक जीवन आश्रम, देहरादून ।

श्री ब्राह्मण पुस्तकालय मेरठकी पुस्तकें।

वासिष्ठी धनुर्वेद संहिता भाषाटीका चित्रों सहित।

यह पुस्तक बड़े परिश्रम और द्रव्य व्यय करने पर मिली थी इसमें धनुष का प्रमाण और बनाना तीर चलाना बांण की कवायद शब्द भेदी आदि क्रिया है और २ लोगों ने भी पुस्तकें छापी हैं किसी ने तो वाराही संहिता के श्लोक लिख मारे हैं किसी किसी ने मनगढन्त भी की है। परन्तु हमें तो यह पुस्तक मूल मात्र राज्यस्थान से प्राप्त हुई थी दाम ॥≈)

श्राद्ध मण्डनम् भाषा टीका—दयानन्दियों के प्रश्नोत्तर सहित पुस्तक दोनों ही पक्ष वालों के देखने योग्य हैं ब्राह्मण का पेट लेटर बक्स आदि विषयों के उत्तर वेद स्मृति आदि और युक्तियों द्वारा दिये हैं दाम ॥)

साकार निन्दक मुख चपेटिका (मूर्त्तिपूजा) चारों वेदों से संग्रह कर ईश्व साकार दयानन्द जी के भाष्य से ही दिखलाया है प्रथम भाग ॥) दूसरा भाग ।≈)

षट् चक्र निरूपण—इस पुस्तक के अनुसार उपासना करने से कविता शक्ति लाभ, परकायप्रवेश आकाशगो, त्रैलोक्य दर्शी, पराये मन की बात जानना दाम ।-)

ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था भाषा टीका—इस में किन कर्मों के प्रभावों से मनुष्योंकी ब्राह्मण संज्ञा हो सकती है और कौनसे कर्म्मोंके द्वारा ब्राह्मण शूद्र से भी अधम श्रेणीमें मानने योग्य होजाता है यह इस पुस्तकमें पुष्ट प्रमाणों और अनेक उदाहरणों द्वारा दर्शाया है दाम ।)

योग सार—इससे समाधी लगाने क्रिया आसन और उनके गुण तथा चित्र निराहार रहना वनस्पति खाने से भूख न लगना प्राणायाम स्वरोदय आदि अनेक विषय हैं दाम ≋)

शिक्षा दर्पण—इस पुस्तक में लेखक ने प्रचलित सांसारिक कुरीतियोंका खण्डन और परिमार्थक मार्गका यथोचित मण्डन किया है यह शिक्षाकी अपूर्व पुस्तक है दाम≈)

अनार्य्यसमाज रहस्य—नवीन आर्यमतके सिद्धान्तोंकी सैर करलो वेदके मन्त्रों से जो दयानन्द जी ने तार रेल चलाना आदि लिखे थे वे मन्त्र इसीमें हैं दाम ≋)

देव सभा—अर्थात् दयानन्दियों की किसमत का फैसला दाम ≋)

सुधर्म्म मञ्जरी—नवीन पंथियोंका खण्डन अति उत्तमतासे लेखकने किया है ≈)

तीर्थ निरूपण (दयानन्द मत दूषण) तीर्थ विषय मण्डनकी अनूठी पुस्तक है दाम ≈)

कहानी टका कमानी—यह कहानी क्या हैं मानो रुपया पैदा करने का एक अमूल्य रत्न है दाम ।)

पुराणप्रतिपादनम्—पुराण किसने बनाये इस नामकी पुस्तकका उत्तर दाम -)

गोत्र प्रदीप—इसमें ब्राह्मणों के गोत्र, वेद, शाखा, सूत्र, प्रवर आदि लिखे हैं ब्राह्मण मात्र को इस की एक २ प्रति अपने पास रखनी चाहिये दाम -) एकआना

पुस्तकें मिलनेका पता—

प्रयागदत्त शर्म्मा श्रीब्राह्मण पुस्तकालय शहर मेरठ।

नक़ली दवाएं और बर्म्मन नामकी नकल से बचो।

दर्द दूर करने वाली दवा (पेनहीलर)

अन्दर के दर्द—अम्लशूल पेचिस वा मरोड इस दवा से दूर होती है।

बाहरी दर्द—मोच वो चोट से गठिया के कारण सधि वा गांठों में वायु सर्दी से कमर कुलहा वा पञ्जर, गर्दन आदिक स्थानों में कुढ़ल वा पेंठन से चाहे जैसा दर्द हो पेनहीलरकी मालिशसे मिटता है। दांत व मसूडोंके दर्दमें भी यह तत्काल गुण करतीहै। मूल्य १ शी० ।॥)बारह आने। डा० म० व पै० ।~) पांच आने २ शी० ।≤) छः आने।

डा० बर्म्मन की बनाई घेघेका दवा।

घेघा सख्त और बहुत बडा वा बहुत दिनोंका होजानेसे आराम नहीं होता। परन्तु थोडे दिनका तथा नरम रहते इसकी दवा लगातार करनेसे आराम होता है। डाक्टर बर्म्मन की दवा ऐसे घेघे को आराम करने का दावा रखती है। दवा १ या २ महीने तक सेवन करना चाहिये। परन्तु खर्च सामान्य ही है। दवा एक खाने की दूसरी लगाने की मिलती है और वह दो सप्ताह तक सेवन करने के योग्य है।

मोल खानेकी दवाका ॥।) आने, लगानेकी दवा ।) चार आने पै०डा०म०।~)पांच आने

कोला टानिक।

कोला—से, कसरत दूनी बढतीहै। कोला—हौलदिल धड़कन वा कलेजेकी कमजोरी मिटाताहै
कोला—दिमागको पुष्ट करता है। कोला—से कड़ी मेहनत गढाती नहीं, थकावट आती नही।
कोला—से चिन्ता शक्ति बढ़ती है। कोला—अफ्रिका देशके कोला फलसे बनी हुई पुष्टई है।
कोला—यह पुष्टई है दवा नहीं। कोला—दिमाग लड़ाने में सुन्दर बल देता है।
काला—कलेजे को जोड देता है। कोला—बालक, बड़े, बूढ़े, सभी पी सकते हैं।
३२ पूरी खुराक की १ शी० दाम १) डा० म० १ से २ तक ।~) ४ शी०।≤)छः आने।

धातु पुष्ट की गोलियां।

ताकत देने वाली दवाओं में प्रसिद्ध दवाएं फसफरास, ष्ट्रिकनिया और डिमेएना मिलाकर ये गोलियां बनी हैं। शरीर के धातुओं को मगज, रीढ़ रग मास और खून को पुष्ट करने का ये विशेष दावा रखती हैं।

इनका गुण——भूख बढ़ाना पाचनशक्ति घटने से जो दोष होते हैं यानी छाती पर बोझ, पेट फूलना, वायुके डकार, आलस्य आदिक एक ही दो दिन में जाते हैं। खाने का आनन्द मिलता है। सुस्ती चित्त की ग्लानि जाती रहती है मनमें फुरती आती है और मिहनत करने पर थकावट नही होती।

दो सप्ताहकी खुराक ३० गोलियोंकी १ शीशी १)डा०म०१से४ तक ।~) ८ शी०तक।≢)

डा० एस० के० बर्म्मन ५, ६ ताराचंद दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता। नं० ४५

विक्रयार्थ कागज ।

यूरोपीय महायुद्ध के कारण इस समय कागज का अकाल हो रहा है। अनेक प्रेस वालों को ढूंढने पर भी नहीं मिलता, उन लोगों के लिये यह हर्ष समाचार हम प्रकाशित करते हैं कि हमारे यहां डवल क्रौन सफेद ३० पौण्ड कागज़ तैयार है जो लोग अच्छी पुस्तकें छापना चाहते हैं वे इस कागज को हमारे यहां से खरीद कर अपनी अभिलाषा पूर्त्ति करें कागज वर्त्तमान मिल के भाव से कुछ सस्ता भी दिया जायगा जो महाशय चाहें पत्र व्यवहार करें।

भ०-मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा।

हिन्दी—साहित्य सम्मेलन प्रयाग की

सूचना ।

सं० १६७५ की परीक्षाओं के पाठ्य विषय तथा पाठ्य पुस्तकों में परिवर्तन हो गया है। नई विवरण पत्रिका छप रही है। सं० १६७५ के परीक्षार्थियों को चाहिये कि नयी विवरण पत्रिकाके अनुसार पाठ्य क्रम आरम्भ करें। ब्रजराज परीक्षा मंत्री

आवश्यक सूचना ।

आजकल सनातनधर्म सभाओंकी जो दशा है उसको सभी महानुभाव भली प्रकार जानते होंगे, चाहें अन्य मतावलम्वी धर्मके विरुद्ध ही चलते हैं परन्तु इस विषयमें हम उनकी नियमवद्ध कार्यप्रणाली को देखकर अवाक् रहजाते हैं, कारण कि १२०० सौ उपदेशक ईसाइयों के केवल यू० पी० मात्रमें स्वधर्म प्रचारार्थ घूमते हैं, और १०० के लग भग दयानन्दियों के भी हैं, तव बताइये कि सनातनधर्मियों के ऐसे कितने उपदेशक हैं जो स्वार्थको तिलाञ्जलि दे निस्वार्थभावसे उपदेश करते हों, यद्यपि भारतधर्म महामण्डलादि वृहत् संस्थाओंने इस अभावकी निवृत्तिका यथासाध्य प्रयत्न किया है परन्तु उनके नियम ऐसे हैं जो साधारण सभायें पालन नहीं कर सकतीं इत्यादि धर्म की इस दीन हीन दशाको देखकर मुरादाबादकी श्री सनातनधर्म प्रचारिणी सभा के महोपदेशकोंने इस महान् कार्यका वीड़ा अपने हाथमें लिया है जिनके नाम ये हैं न्याय वाचस्पति पं० वैजनाथ जी शास्त्री, वेदान्त भूषण पं० आत्माराम जी शास्त्री, पं० लालमणि जी पूठिया, राजपंडित वनमाली शंकरजी, पं० दीनानाथ जी पं० नन्दकिशोर जी, भजनो० पं० तीर्थरामजी प्रभृति। इस प्रकार धर्म सभाओंकी सेवा करने के लिये ५ महोपदेशक और ३ भजन मण्डलियां तयार हुई हैं अतः जहां कहीं उपदेश भजनोपदेश तथा शास्त्रार्थ की आवश्यकता हो तो उन को १५ दिन पहिले निम्न लिखित पते पर सूचना भेजनी चाहिये। इसमें विशेष धनकी कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु मार्गव्यय आदिका प्रबन्ध सभाओंको अवश्य करना होगा।

सहकारी मन्त्री, पं० वैजनाथ सनाढ्य

मु० किसरौल मुरादाबाद

ब्राह्मणसर्वस्व का नवीन उपहार।

यद्यपि कागज वगैरह की अत्यधिक दुर्लभता के कारण इस वर्ष उपहार देने का विचार ;नहीं था पर यह शोचकर कि इससे कदाचित् ब्राह्मणसर्वस्व के प्रेमी ग्राहक असन्तुष्ट हों हमने उपहार देने का निश्चय किया है उपहार की पुस्तक छप रही है और उसका अर्धांश से अधिक छप भी गया है। उपहारीय पुस्तक का नाम-

* कठोपनिषद् सभाष्य *

है। हमारे प्रेमी पाठकोंसे यह छिपा नही है कि उपनिषदोंमें वेदान्तके बड़े गम्भीर सिद्धान्त स्पष्ट किये गये हैं। अब तो यूरोप और अमेरिका के विद्वान् भी भारतवर्ष के इस अमृतमय फल वेदान्त पर मोहित हो रहे हैं और उपनिषदोंकी भूरि २ प्रशंसा कर रहे हैं। इन्हीं उपनिषदों का अनुवाद शाहजहां बादशाहके ज्येष्ठ पुत्र दाराशिकोह ने कराया था जिनका अमृतरस पान कर वह विधर्मी राजकुमार कह उठा था कि " मुझे आज वह शान्ति प्राप्त हुई है और मैंने उस आनन्द को पालिया है जिसके सामने सांसारिक वैभवों का आनन्द हेच है " इन उपनिषदों का मनन करना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है। प्रस्तुत पुस्तक कठोपनिषद् में यमराज और नचिकेता का सम्वाद है, नचिकेता वाजश्रवसऋषि का पुत्र था ऋषि ने सर्वनेदस यज्ञमें अपनी सब सम्पत्ति ब्राह्मणों को देकर वैराग्य का आश्रय लिया था, सब चीजों को दान में दिये जाते हुए देखकर नचिकेता ने पिता से कहा कि आप मुझे किस के लिये देंगे, दो एक वार पिता चुप रहे पर जब वार २ नचिकेता ने पूंछा तब ऋषि ने कहा कि तुझे यमराज को दूंगा, यह सुनकर नचिकेता यमलोक को गया वहां यमराज ने तीन दिन रहने पर नचिकेता को तीन वर दिये १-पिताके पास पहुंचना और उनका प्रसन्न रहना २-स्वर्गके साधन यज्ञका विधान जानना ३-आत्मज्ञान, तीसरे वर को यमराज देना न चाहते थे पर नचिकेता के विशेष आग्रह से दिया है उपाख्यान की मनोहरता के साथ ही इसमें आत्मज्ञान का बड़ा विस्तृत वर्णन है। प्रत्येक जिज्ञासु पुरुष को देखने योग्य है। ब्राह्मणसर्वस्व के ग्राहकों को यह उपहारी पुस्तक केवल-

चार ।) आने में

दिया जायगा। जो सज्जन उपहार न लेना चाहे वे प्रथम से ही पत्र भेजदें और इस वर्षका मूल्य मनिआर्डर से भेजदें शेष ग्राहकोंको वी० पी० भेजा जायगा, आशा है कि अक्तूबर के अन्त या नवम्बर के प्रारम्भ में उपहार प्रेषण कार्य प्रारम्भ होगा।

निवेदक—मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा।

P. O. REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तद्देवतेषांखपदेप्रवाच्यम्,
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	कन्या आश्विन वि० १९७४ सितम्बर १९१७	अङ्क ९

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)] [प्रति संख्या ३)

विषय-सूची ।



ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≋) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≋) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

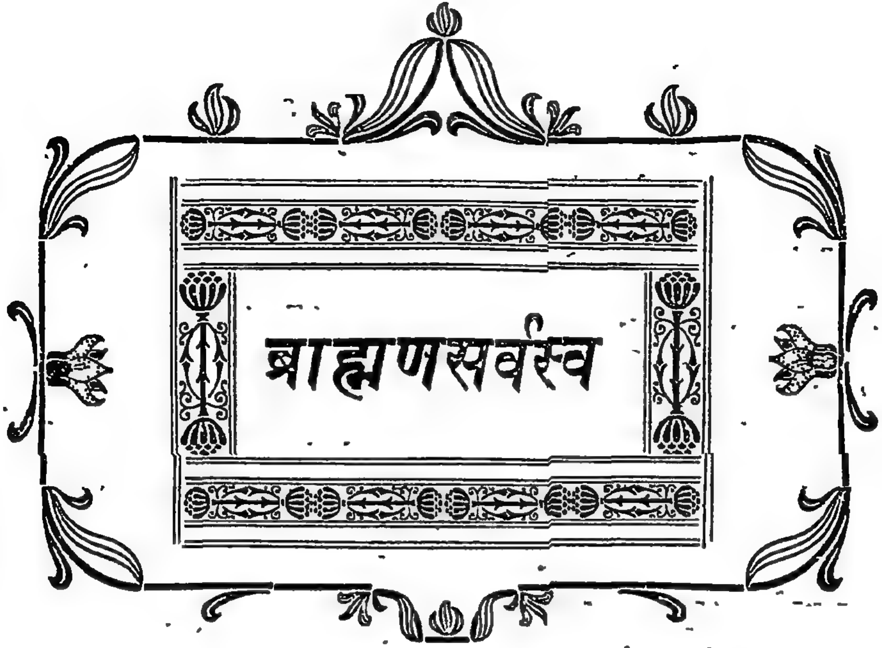
(६) पता अधिक काल के लिये वदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रवन्ध करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≈)॥ तीन मास तक ≈)। ६ मास तक ≈) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नही बांटे जांयगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	कन्या आश्विन सौर वि० १९७४ सितम्बर १९१७	अङ्क ९

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ-मङ्गलाचरणम्

सप्तमर्यादाः कवयस्ततक्षु-स्तासामे
कामिदभ्यंहुरोगात् । आयोर्हस्कम्भउप-
मस्यनीले-पथांविसर्गेधरुणेषु तस्थौ ॥

ऋ० १०।५।६।

सप्तैव मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामप्यभिगच्छन्न'-हस्वान् भवति स्तेयं, तल्पारोहणं, ब्रह्महत्यां,भ्रूणहत्यां, सुरापानं, दुष्कृतस्य कर्मणः पुनःपुनःसेवां, पातकेऽनृतोद्यमिति निरु० ६ । २७ ॥

अ०—कवयो मेधाविनो ब्रह्माद्या महर्षयः सप्तैव सुवर्णस्तेयादि-पापानि वर्जनीयानि मर्यादारूपाणि ततक्षुः कृतवन्तस्तेभ्यः पापेभ्यः पृथगेव स्यातव्यमिति नियमं चक्रुः । तासां मध्यादेकामपि मर्यादामभिगच्छन्नुल्लङ्घयन्पुरुषोंऽहस्वान् पापीभवति । यश्चेमा मर्यादा नोल्लङ्घयति तस्यायोर्मनुष्यस्य स्कम्भो निरोधक आदित्यो वर्त्तते । अर्थात्स पथां विषयबोधमार्गाणामिन्द्रियाणां विसर्गे विसर्जनकाले मृत्युकाले उपमस्य सर्वभूतनिर्मातुरादित्यान्तर्गतपुरुषस्य नीडे निलये स्थाने यानि धरुणान्यप्रध्वंसीनि—आभूतसंप्लवस्थायीनि स्थानानि सन्ति तेषु धरुणेषु तस्थौ तिष्ठति ॥

भावार्थः—प्रवाहेणानादिकालीने संसारे सामान्यतयाऽनेकपापेषु सत्स्वपि सुवर्णस्तेयादीनि सप्तविधान्येव पापानि यथा विशेषेण वर्जनीयानि महर्षयो मन्यन्ते तथैवान्यैरपि तानि सन्तव्यानि । सप्तविधपापेष्वेकविधमपि पापमाचरन् द्विजः पतति । ये च पुरुषास्ततएकमपि नाचरन्ति त आदित्यान्तर्गतध्रुवेषु दिव्यस्थानेषु दिव्यं सुखं सर्वदैवानुभवन्ति । तस्मात्कारणान्मनुष्यैर्महापातकादिपापेभ्यो निवृत्तैः सदाचारपरायणैर्भवितव्यम् ॥

भाषार्थः-(सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः) ब्रह्मादि विद्वान् महर्षियों ने तथा देवोंने सातकर्म[१-ब्राह्मणके सुवर्णकी चोरी,२-गुरुपत्नीगमन,३-ब्राह्मणवध,४-गर्भहत्या-गर्भपात, ५ ब्राह्मणका मद्यपीना ६-दुराचारोंका वार२ करना और ७-पापकर्म करके फिर मिथ्या बोलना कि मैंने ऐसा नही किया] मर्यादारूप कहे हैं कि विशेष कर ब्राह्मण लोग इन कामों को न करें उन सप्त विध पापोंसे पृथक् ही रहना चाहिये ऐसा नियम किया है। (तासामेकामिदभ्यंहुरोगात) उन सात प्रकार के चोरी आदि कामों में से किसी एक पाप को भी करने वाला पापी होजाता है और जो मनुष्य इन मर्यादा-

ओं का उलङ्घन नहीं करता उस (आर्योर्हस्कम्भः) मनुष्य को निवास देने वाला आदित्यमण्डल है अर्थात् (पथां विसर्गे उपमस्य नीड़े धरुणेषु तस्थौ) विषय बोधके मार्ग जो इन्द्रिय उनके विनाश कालमें नाम मरणकालमें सब प्राणियोंका उत्पादक जो आदित्य मण्डलान्तर्गत परमेश्वर उसके सूर्यलोकमें महाप्रलय पर्यन्त स्थिर रहने वाले अविनाशी दिव्य स्थानोंमें चिरकाल पर्यन्त स्वर्गीय दिव्य सुखका अनुभव करता है ॥

भा०-प्रवाहसे अनादि कालस्थायी संसार में सामान्य कर अनेक पापों के होने पर भी सुवर्ण की चोरी आदि सात प्रकार के ही पापोंको जैसे महर्षियों ने विशेषकर वर्जनीय माना है वैसे ही अन्य लोगों को भी मानना चाहिये। सातप्रकार के पापोंमें से एक प्रकार के पापों में फंसने वाला भी द्विज पतित होजाता है। और जो मनुष्य उनमेंसे किसी पापको नहीं करते वे आदित्यलोकान्तर्गत चिरस्थायी दिव्य स्थानोंमें दिव्य सुखका सदा अनुभव करते हैं। इस कारण महापातकादि पापों से मनुष्यों को बचकर सदाचार परायण होना चाहिये ॥

आर्यसमाजी प्रश्नों के समाधान।

सनातनधर्म सभा चन्दोसी के समीप आर्यसमाजियों ने भेजे और छपा कर बांटे १० प्रश्नोंके उत्तर संक्षेपसे यहां छपाये जाते हैं। यद्यपि इन सभी प्रश्नों के उत्तर ब्रा० स० के पूर्वभागों में भिन्न २ प्रसङ्गों में दिये जा चुके हैं तथापि पाठकों [सनातनधर्मियों] के सन्तोषार्थ फिर भी सब का उत्तर लिखे देते हैं ।

(१) पितर लोग कौन से शरीर से श्राद्ध में दिया हुआ भोजन ग्रहण करते हैं? । यदि स्थूल शरीर से, तो मनुष्योंको दीखते क्यों नहीं, यदि सूक्ष्म शरीर से तो सूक्ष्म शरीर स्थूल भोजन को कैसे ग्रहण कर सकता है ? ॥

(१) उत्तर-श्राद्ध में दिये हुए भोजनको पितर लोग स्थूल शरीर से ग्रहण नहीं करते क्योंकि स्थूल शरीर पहिले ही जलकर भस्म हो चुका,-जब श्राद्ध के समय पितरों का स्थूल शरीर होता ही नहीं तब स्थूल शरीर से ग्रहण करने की शंका प्रश्नकर्त्ता समाजी को क्यों हुई ? । क्या समाजी लोगों के पितर मर जाने पर भी स्थूल शरीर धारी बने रहते हैं ? । जब मर जाने पर स्थूल शरीर धारी कोई रह ही नहीं सकता तब " मनुष्यों को दीखते क्यों नहीं ? " समाजीकी यह शंका भी निर्मूल है । ऐसी दशा में उक्त प्रश्न का उत्तर यह होगा कि श्राद्ध वा तर्पण के समय पितर लोग वसु रुद्र और आदित्यस्वरूप अपने २ सूक्ष्म शरीरों से श्राद्ध तर्पणमें दिये अन्न जलको

ग्रहण करते हैं। स्थूल अन्नको पितर लोग ग्रहण नही करते किन्तु सूक्ष्म सारांश को ही सूक्ष्म शरीर से ग्रहण करते है। मनुस्मृति अ० ३ में लिखा है कि—

वसून् वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांश्चादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी॥२८४॥

वसु देवता रूप पिता, रुद्र देवता रूप पितामह और आदित्य देवता रूप प्रपितामह कहाते हैं, इन्ही वस्वादि देवोंके सूक्ष्म शरीरों द्वारा वे पितर लोग श्राद्ध तर्पण के सूक्ष्मांश अन्नजलका ग्रहण करके तृप्त हो जाते हैं। श्राद्ध तर्पणकी सभी पद्धतियों में यही लिखा रहता है कि—

अस्मत्पितः! वसु स्वरूप अमुकगोत्र अमुकशर्मन् एतत्तेन्नं जलं वा स्वधानमः। अस्मत्पितामह रुद्रस्वरूप०। अस्मत्प्रपितामह आदित्यस्वरूप०।

शतपथ ब्राह्मण काण्ड २ के पिण्ड पितृ यज्ञ प्रतिपादक ब्राह्मण में लिखा है कि—

तिरइववैपितरस्तिर इवैतद् भवति॥

पितर लोग अन्तर्धान रहते हैं, अति सूक्ष्म दिव्य शरीर होने से इन चर्म चक्षुओं से नही दीखते इसी कारण उन पितरोंका भोजन भी गुप्त अदृश्य होता है। मनुस्मृति अ० ३ के १८६ श्लोक में भी श्राद्ध मे आने वाले पितरों को सूक्ष्म अदृश्य लिखा है, उसी सूक्ष्म शरीर से अन्न का सूक्ष्म सार अमृतांश का ग्रहण वे करते हैं॥

(२) प्रश्न-माता पिता इत्यादि सम्बन्ध सशरीर जीव से है वा निःशरीरसे? यदि सशरीर से है तो शरीर वियुक्त जीव किसका माता पिता है और उसके लिये श्राद्ध देने का अधिकारी कौन है?॥

२ उत्तर-इस प्रश्न का उत्तर भी ब्रह्मप्रेस इटावा के छपे श्राद्धमीमांसा पुस्तक की प्रथमा वृत्ति पृ० १६३ से १६६ तक मे छपा है, जिसका संक्षिप्त सारांश यह है कि कारण और सूक्ष्म शरीरोंके रहने का एक विध घर ही स्थूल शरीर है, सूक्ष्म शरीराभिमानी चेतन जीव कहाता है, स्थूल शरीरका सम्बन्ध मर जानेपर भी वैसेही बना रहता है कि जैसे कोई अपने घरसे निकल जाता है तबभी उस घरके साथ उसका स्वस्वामी भाव सम्बन्ध रहता है घरके नष्ट हो जाने पर भी स्वस्वामी भाव सम्बन्ध नष्ट नही होता, संबन्धका बना रहना ही स्थूल शरीरसे वियोग न होना है, स्थूलका सारांश ही सूक्ष्म शरीर है। जब स्थूल के साथ वासना रूप सम्बन्ध ज्ञानाग्नि से दग्ध हो जाता है, तब अविद्या का नाश होने से सूक्ष्म और कारण शरीर भी ठहर नहीं सकते, सूक्ष्म शरीराभिमान नष्ट होने के साथ ही जीवभावभी नही रहता तब पिता पुत्रादि सभी

सम्बन्ध एक हो जाते हैं, यही मोक्ष दशा है, वहां उसके लिये किसी श्राद्धादिकी आवश्यकता भी नहीं रह सकती ॥

(३) प्रश्न-यदि प्राणीकी तृप्ति होनी अभीष्ट है तो मद्य मांसाहारी जीव के लिये मद्यमांस ही देना उचित होगा, अन्य पदार्थों से वे क्यों कर तृप्त होंगे ?॥

उत्तर३—इसका उत्तर भी श्राद्धमीमांसा पुस्तक प्रथमा वृत्ति के पृ० २०७ से२१३ तक में सम्यक् दिया गया है जिसका सारांश यही है कि जिस स्थूल शरीर ने इस जन्म में मद्य मांसादि का अभ्यास किया है, वह शरीर यहीं मरते समय जला दिया जायगा अन्य जन्म में पहिले जन्म के शरीर का व्यसन लगना सम्भव माना जाय तो जितने समाजी पहिले जन्म में पशु रहे और वे इसी जन्म में मनुष्योनि में जन्मे हों तो वे सब घास भूसा ही दौड़ २ खाया करें सो ऐसा नहीं दीखता इससे समाजी का यह प्रश्न भी वे समझी का है ॥

(प्र० ४) मनु० अ० ३ श्लोक २६८ से २७२ तकमें जो मछली, मेढा, पक्षी, बकरा, गैंडा, सुवर, भैंसा आदि के मांस से श्राद्ध करना बहुत बढिया बताया है, उसे सनातनधर्मी क्यों नहीं करते ? क्या यह धर्म शास्त्र की आज्ञा उलंघन करना, ही सनातनधर्म है ? ॥

(५ उत्तर)-इसका उत्तरभी श्राद्धमीमांसा पुस्तककी प्रथमावृत्तिमें पृ० ६८ से १०६ तक में सम्यक् छपा दिया गया है, जिसका सारांश यह है कि, मांस के पिण्ड देने की आज्ञा मनु में नहीं है, आज्ञा को विधि वाक्य कहते हैं और अप्राप्तमें विधान होता तथा प्राप्त में निषेध होता है, और मांसभक्षण अप्राप्त नहीं किन्तु मद्य तथा मैथुन के तुल्य रागसे प्राप्त है, इससे विधि वा आज्ञा नहीं किन्तु परिसंख्या रूप से अन्यके निषेधार्थ मांसके पिण्ड दिखा दिये गये हैं,इसका विशेष व्याख्यान वहीं देखना चाहिये॥

प्रश्न ५-यदि मूर्त्ति या मन लगानेका साधन ही हैं; तो हिंडोले झुलाना, भोग लगाना, सुलाना, जगाना, शृङ्गार करना आदि आडम्बर क्यों रचते हो ? क्या ईश्वर विलास प्रिय है ?।

उत्तर ५—इसका संक्षेप से उत्तर यही है कि आर्यसमाजियों को यह बात प्रथम स्वा० दयानन्द जी से ही पूछना चाहिये थी कि आर्याभिविनय पुस्तक में (वायवा याहि०) मन्त्र के व्याख्यान में स्वा० दयानन्द ने सोम रस का भोग ईश्वर को क्यों लगाया है ? क्या वह आडम्बर नहीं, क्या समाजी ईश्वर भूखा था? रहा सनातनधर्म का मत सो उसका अभिप्राय यही है कि जैसे राजादि लोगों के निकट सभी धनादि उपस्थित होने पर भी जो लोग उनको उत्तम २ फलादि वा धनादि भेंट समर्पण करते हैं उससे वे लोग संतुष्ट होते हैं, इसीके अनुसार ईश्वर को संतुष्ट प्रसन्न करने के लिये जो २ सेवा की जाती है वह उसके प्रसन्न हो जाने से सार्थक हो जाती है॥

प्रश्न६-वेदोंमें ऐसा मन्त्र बतलाइये जिसमें पाषाण आदि मूर्त्ति बनानेकी आज्ञाहो

उत्तर ६-जब अनेक युक्ति और सैकड़ों प्रमाणों से अब तक ईश्वर का साकार होना सिद्ध हो चुका तब वैसा एक दो मन्त्र बताने की बात क्या रही ? वेदमें पृथिवी को ईश्वर की पादस्थानिनी कहा है पाषाणादि सब पृथिवी के अंश हैं तब पार्थिव पदार्थों द्वारा ईश्वर के चरणों की पूजा होना सिद्ध हुआ। (तदेवाग्निस्तदादित्यः०) इत्यादि मन्त्रों द्वारा जब ईश्वर का साकार होना सिद्ध होगया, तब उसी साकार ई-श्वरकी मूर्त्ति बनाने पूजने की चाल है किन्तु निराकार की मूर्त्ति हो सकना हम भी नही मानने। तुम समाजी लोग जब परमेश्वर को सर्वत्र व्याप्त मानते हो तब पृथिवी के सब पदार्थों में भी अवश्य ही मानोगे बृहदारण्यक उपनिषद् के अन्तर्यामी ब्राह्मण में लिखा है कि—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यमयति यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्। एषतेऽन्तर्याम्यमृतः॥

जो परमेश्वर पृथिवी में ठहरा हुआ पृथिवी को नियम बद्ध रखता है, जिस को पृ-थिवी की अभिमानिनी देवता भी नही जानती और जिसका पृथिवी शरीर है, वही तेरा अन्तर्यामी अजर अमर परमेश्वर है। इस प्रमाण के अनुसार जब पृथिवी ईश्वर का शरीर है तब पृथिवीके अंश पाषाणादि द्वारा उसकी पूजा होना अनुचित क्यों है मूर्त्तिपूजाके समाधान जो पूर्वकालमें छप चुके हैं, उनमें अन्य भी अनेक मन्त्रादि प्र-माण लिखे गये हैं॥

प्रश्न७-धर्मसभा जिन२ ग्रन्थोंको प्रमाण मानती है कृपया उनकी सूची लिखो, और उन ग्रन्थोंमें परमात्माकी मूर्त्ति मानीहै तो उसको भोग लगानेका प्रमाण है या नहीं॥

उत्तर७-धर्मसभा जिन २ ग्रन्थों को मानती है उनकी सूची पहिले से ही सर्वत्र छपी प्रसिद्ध है, और हमभी अनेक बार व्याख्यान सहित यह छपा चुके हैं कि—

पुराणन्यायमीमांसा—धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।
वेदाः स्थानानिविद्यानां—धर्मस्यच चतुर्दश॥

भगवान् योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि १८ पुराण १८ उपपुराण, वाल्मीकीय रा-मायण महाभारतादि इतिहास, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य, यह चतुर्विध न्याय; पूर्व उत्तर दोमीमांसा ये छः दर्शन, धर्मशास्त्र मन्वादि २० स्मृतियां, वेदके छःअङ्ग, शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दः, ज्योतिष, इनमें शिक्षाके अन्तर्गत ही सब वेद शाखा-ओंके प्रातिशाख्य सूत्र हैं, और शिक्षा नामके पुस्तक भी अनेक हैं वे सभी पुस्तक एक शिक्षा अङ्ग के अन्तर्गत माने जावेंगे, इसी के अनुसार प्रत्येक वेदशाखाके साथ कल्प और ब्राह्मण ग्रन्थ भी माने जावेंगे तो चारो वेदकी ११३१। सब शाखाओं के ११३१

ब्राह्मण ये सब २२६२ दोहजार दोसौ वासठ चारो वेदके पुस्तक हुए, गृह्य श्रौत भेदसे सब वेद शाखाओं के २२६२ कल्प सूत्र और इतने ही सब वेद शाखाओं के शिक्षा और प्रातिशाख्य २२६२, चार व्याकरणादि अंग वीश २० धर्म शास्त्र, ६ छः दर्शन, ३८ पुराणेतिहास इस प्रकार सनातनधर्म के कम से कम ६८५४ छः हजार आठ सौ चौवन ग्रन्थ होते हैं। प्रायः इन सभी ग्रन्थों में परमेश्वर की मूर्त्ति को माना है जिस के सहस्रों प्रमाण हैं। जिममें से अनेक प्रमाण मूर्त्ति पूजामण्डन पुस्तक में छप भी चुके हैं।

८प्रश्न-पुराण व्यास कृत हैं तो उनमें देवता ऋषि महात्माओं की निन्दा क्यों है? देखो ब्रह्माका वेटी पर मोहित होना, विष्णु जालन्धर की स्त्री से, शिव ऋषि पत्नियों से, दुर्गा महादेव से, बृहस्पति अपनी गर्भवती भावज से, इन्द्र गौतम की स्त्री से, सूर्य कुन्तीसे, चन्द्रमा गुरु (बृहस्पति) की स्त्री से विषय करना आदि २ जो लेख हैं क्या वे सब सत्य हैं?॥

उत्तर८-पुराण वेद व्यास के बनाये अवश्य हैं इसी लिये उनमें किसी भी ईश्वर देवता की निन्दा नहीं है, केवल समाजियों की समझ का दोष है। १- ब्रह्माका बेटी पर मोहित होना-यह भ्रम है उस वेटीकी माता कौनसी थी? क्या २ उस वेटी की मां का नाम धाम था? वह वेटी किस के गर्भाशयसे उत्पन्न हुई थी? इन बातों का उत्तर समाजियों को देना चाहिये जब कि बृहदारण्यक में स्पष्ट लिखा है कि—

सइममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नीचाभवताम्।

उन ब्रह्माजी ने अपने एक शरीर को दो भाग में विभक्त करके पतन किया इसी पुरुष रूप का नाम पति और स्त्री रूपका नाम पत्नी हुआ है, एक शरीरके सर्गारम्भमें दो भाग होने के कारण ही पत्नी अर्द्धाङ्गी कहाई है, अर्थात् जिसको तुम विधाता की वेटी कहते हो वह वास्तवमें सृष्टिकर्त्ताकी पत्नी थी, उसीकी सन्तान हम सभी मनुष्य हैं मनुस्मृति अ० १। ३२। में लिखा है कि—

द्विधाकृत्वात्मनोदेहमर्धेनपुरुषोऽभवत्।
अर्धेननारीतस्यांस विराजमसृत्प्रभुः॥

उत्पादकत्वविवक्षासे उस पत्नीको उपचार मात्र पुत्री पन दिखा दिया है वास्तविक नहीं। इत्यादि समाधान हम पहिले ही अनेक वार ब्रा० स० में छपा चुके हैं। विष्णु भगवान्का भी समाधान होचुका है कि जब जलन्धर के रूपसे ही उसकी पत्नी से संयोग किया तो सबमें व्यापक ईश्वर ही उस २ के पति रूपसे उस २ की पत्नी से व्यभिचार करता है ऐसा दोष तुम्हारे मत में भी आ सकता है। हमारे मत में ईश्वर सदा निर्लेप है, उसको कोई दोष कभी लगताही नहीं, और धर्मकी रक्षाके लिये छल फरेब

वा किसी प्रकार के अधर्म से भी अन्यायी असुरों का नाश करके धर्मकी रक्षा करनी चाहिये यह अभिप्राय दिखाने के लिये विष्णुभगवान्ने वैसा किया था। शिव जी ने ऋषि पत्नियों के साथ जैसा व्यवहार किया था वह सत्य २ शिवलिङ्ग पूजामाहात्म्य नामक पुस्तकमें छपा दिया है, उससे आर्यसमाजियों की बनाई मिथ्या जालरचनाकी सम्यक्तया पोल खुल जाती है॥

बृहस्पति, गोमतपत्नी, सूर्य, कुन्ती, चन्द्रमा आदि की कथा भी कोई विधि वाक्य नही हैं, स्वामिदयानन्द जी ने भांग पी थी, छपाने शोधने वालों ने पहिले सत्यार्थप्रकाश में मृतक श्राद्धादि मिला दिया यह मिथ्या भाषण स्वा० द० ने किया था, परन्तु उनने जैसे यह नही कहा कि भांग पीना चाहिये, मिथ्या भाषण करना चाहिये। वैसे ही बृहस्पति आदि के विषय में कुछ भी विधि वा आज्ञा नही है कि ऐसा करना चाहिये। बृहस्पत्यादि देवता वा ऋषिथे, देवयोनि भोगार्थ है, मनुष्यके तुल्य कर्मयोनिके भोग वहां नही हैं तथापि जिसने जैसा किया सत्य वृत्तान्त लिख दिया तो व्यासजी सत्यवादी सिद्ध हुए पुराण भी सत्य ठहरे, काम की प्रबलता दिखायी गयी कि काम ऐसा प्रवल है जिसके वशीभूत देवता भी हो जाते हैं; तब मनुष्य की क्या गणना है, इस लिये मनुष्यको महा प्रवल उद्योग विषय वासना से बचने के लिये करना चाहिये ऐसे उत्तम विचार से किसी की कुछ भी निन्दा नहीं होती यदि सत्य २ कहने लिखने से निन्दा हो तो वह सत्य ही क्यों कहावेगा? । जिन लोगों में, असंख्य दोष हैं वे अपने सभी दोषों को दबाना छिपाना चाहते हैं, सम्प्रति ऐसे ही कलियुगि मनुष्यों की अधिकता है, आर्यसमाज तो अपने सत्यार्थप्रकाशादि के सहस्रों मिथ्या प्रलापों को जानता हुआ भी उन असत्यों को सत्य ठहराने की चेष्टा करता है। सत्य युगादि के मनुष्य वा देवता अधिकांश शुद्ध निर्दोष हुए हैं, यदि उन लोगोंमें कभी कोई थोड़ा भी अनुचित करता था तो वह सब प्रकाशित कर दिया जाता था जैसे राजा युधिष्ठिरने जीवन भरमें केवल एक वार थोड़ा झूंठ बोला था तो वह प्रकाशित कर दिया गया—शास्त्र का भी यही मत है कि——

यथायथानरोऽधर्मं स्वयं कृत्वाऽनुभाषते।
तथातथात्वचेवाहि—स्तेनाधर्मेणमुच्यते॥ मनु० अ० ११। २२८

भा०—यदि मनुष्य से किसी प्रकार का अधर्म हो जावे तो स्वयं वा अन्यों द्वारा जैसा २ उस अधर्म को प्रसिद्ध करता जाता है, वैसा २ उस अधर्म से छूटता जाता है अर्थात् जैसे सांप धीरे २ कैंचली को त्याग के शुद्ध निर्मल हो जाता है, वैसे ही प्रसिद्ध हुए पाप से मनुष्य छूटता जाता है। इसलिये वे ऋषि और देवता सर्वथा शुद्ध थे, उनसे जीवन भर में जो कुछ अत्यल्प अनुचित हुआ तो प्रसिद्ध होने द्वारा

वह दोष भी निवृत्त हो जाने से वे लोग सर्वथा शुद्ध निर्दोष सिद्ध हुए। आर्यसमाजी ही नहीं किन्तु वेदानुगामी आदि अन्य सभी मनुष्यों की प्रायः यही धारणा दीखती है कि मनुष्यका ज्ञान काम क्रोध लोभादिसे संमिलित रहनेसे तथा मनुष्यके अल्पज्ञ अल्पशक्तिहोनेसे वह सर्वथा निर्दोष हो ही नहीं सकता ऐसा मानते हुए भी जिसको पूज्य प्रतिष्ठित वा बड़ा मानते हैं उस में किसी अल्प दोष को भी स्थान देना कदापि नहीं चाहते। और यह कभी हो नहीं सकता कि जिसे तुम पूज्य मानते हो उसमें कोई दोष न हों और जिस अन्यके मान्यको तुम द्वेषदृष्टि से देखते हो उसमें कोई गुण न हों। परन्तु शास्त्रों का मत ऐसा नहीं, शास्त्रकार कहते हैं कि—

शत्रोरपिगुणावाच्या दोषावाच्यागुरोरपि ॥

इसी सिद्धान्त के अनुसार जब व्यासजी ने इतिहास पुराणों में सत्य २ बातोंका वर्णन किया अर्थात् अपने मान्य ऋषि देवताओं से भी जो २ अनुचित हुए उनको प्रकाशित करना पुराणकर्त्ताकी निष्पक्षता है। तब तुम्हारा उनमें दोषान्वेषण करना मक्खी का सा काम माना जायगा ॥

प्रश्न ६—कलकत्ता काशीपुर आदिमें जो सहस्रों निरपराध पशुओंका रक्त मन्दिरों में वहाया जाता है, क्या जगदम्बा के मन्दिरमें ऐसा होना सनातनधर्मानुकूल है ? ॥

उत्तर ६—संक्षेप से इस का उत्तर यही है कि जैसे किसी मनुष्य ने जिस की पत्नी मर गयी हो किसी विधवा स्त्री को अपने घर में बैठा लिया वा प्रदेशान्तर में भगा ले गया [इसी का नाम भले ही विधवा विवाह कह लो] तो यह काम पातिव्रतधर्म का विरोधी तथा लोक में निन्दित होने से निन्दनीय परित्याज्य अवश्य होने पर भी वही विधवा वेश्या बनकर सैकडों से व्यभिचार करती तथा पुरुष भी अनेक नीच स्त्रियों से व्यभिचार करता तो इन कामों की अपेक्षा उस विधवा को अपने घर में रखलेना अच्छा है। वैसे ही देवता के नाम से बकरादि का बध करना भी हिंसादोष की दृष्टि से निन्दित वा अनुचित होने से त्याज्य होने पर भी जो मनुष्य देवतोद्देशको छोड़ कर सदा ही मांस खानेके लिये गौ आदि महोपकारी पशुओंको भी मारते मरवाते हैं उनकी अपेक्षा देवता के उद्देश से कभी २ वैसा करने वाले बहुत अच्छे अवश्य हैं। चाहें यों कहो कि सत्त्वगुणी धर्मरीति से देवता की पूजा करने की अपेक्षा तमोगुणी धर्मरीति से करना त्याज्य होने पर भी जो सर्वथा ही धर्म करता ही नहीं, और धर्म का नाम भी न लेकर स्वार्थ साधनार्थ ही हिंसा करता कराता है उससे वह देवी का भक्त अच्छा है। इससे अभिप्राय यह निकला कि उत्तम धर्म की अपेक्षा निकृष्ट होने पर भी केवल अधर्म से अच्छा है। चाहें यों कहो कि देवतोद्देश से पशुहिंसा करने कराने वाले की वह कामना [जिसके लिये बलिदान किया है] सिद्ध हो जाने पर भी हिंसा जन्य दोष उसको लगेगा ॥

प्रश्न १०—पद्मपुराणोक्त प्रमाणसे दिव्यादेवीके २१ पति होना आप मानते हैं या नहीं॥

उत्तर१०—इसका उत्तर ब्रा०स० के पहिले भागों में छप चुका है जिसका सारांश यह है कि जैसे वाग्दानादि होने पर भी गौण पतिभाव हो जाता है वैसे दिव्यादेवीके भी गौणपति २१ हुए हम भी मानते हैं, सप्तपदी पर्यन्त पूरा विवाह एक ही अन्तिम पति के साथ हुआ था अन्यों के साथ नही यही अभिप्राय वहां पद्मपुराण में लिखा है यही समाधान ब्रा०स० में पहिले छप चुका है , ऐसे गौणपति २१ क्या हम १००।२०० भी मान सकते हैं इससे सनातनधर्म को कुछ धक्का नहीं लगता ॥

—:—

दिल्लीसे आये प्रश्नोंका समाधान ।

पाठक महाशयों को विदित हो कि कुछ लोगों को कुछ भी आगा पीछा शोचे विना व्यर्थ निष्प्रयोजन प्रश्न करने का कुछ व्यसन सा पड़ गया है, मनुष्य का मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिये कि यदि किसी सदेहका समाधान हुए विना उसके धर्म के कामोंमें वाधा पड़ती हो वा अन्य किसी प्रकार की हानि होती हो तो वैसे प्रश्नों का किसी से समाधान कराना आवश्यक समझे। मनुष्ययोनि में जन्म होने का मुख्य उद्देश यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना है अथवा उच्च धर्मानुष्ठान के द्वारा अभ्युदय सुख को प्राप्त करना है। जिन व्यर्थ के प्रश्नों के समाधान से किसी का संसार वा परमार्थ नही सुधरता और जिनका समाधान हुए विना किसीके अभ्युदय और निःश्रेयस सुख की हानि भी नही होती ऐसे प्रश्न वे समझी से किये व्यर्थ समझे जाते हैं। अभी तक ऐसे किन्ही प्रश्नों के उत्तर ब्रा० स० द्वारा कदाचित् कभी दिये हों अथवा पत्र द्वारा दिये गये हों वा कुछ भी उत्तर न दिया गया हो सब दशा मे पाठकों को विनय पूर्वक सूचित किया जाता है कि भविष्य में ऐसे प्रश्नों पर पत्र द्वारा वा छपाने द्वारा कुछ भी उत्तर यहां से नहीं दिया जायगा उदाहरण के लिये हम आगे कई वैसे प्रश्न दिखाते हैं जो व्यर्थ कहे जा सकते हैं ॥

वसिष्ठ जी ने पुत्र मरण से शोकित हो कर जल में प्रवेश किया। पुरूरवा के साथ विवाह हुआ, नहुष ने इन्द्र परदार गमन की इच्छा की। जब २ ब्रह्मा मरते थे तब २ महर्षि लोमश एक वाल तोडकर फेंक दिया करने थे, इन की आयु ब्रह्मा जी से भी वडी थी।

प्रथम तो यही शोचना चाहिये कि क्या ये प्रश्न हैं ?। यदि ये प्रश्न कहे जा सकते हैं तो पुत्र के मरण वियोग से सहस्रों विद्वानों तपस्वियों तथा ऋषि-महर्षियों को

और बड़े २ पण्डितों विवेकियों को भी पहिले भी अवश्यमेव शोक हुआ था, होता है और होगा तब सभी शोकों पर सहस्रों प्रश्न हो सकते हैं ? शोक होना कोई आश्चर्य नहीं है शरीरधारी के लिये सहज बात है। पुरूरवा के साथ विवाह जैसे हुआ वैसे सहस्रों विवाह पहिले हुए अब होते हैं और आगे होंगे उन से प्रश्न कर्त्ता का हानि लाभ कुछ नहीं है। पुरूरवा के साथ विवाह न होता तो, प्रश्नकर्त्ता की क्या अभीष्ट सिद्धि हो जाती और विवाह हो गया था तो प्रश्नकर्त्ता की वा अन्य किसीकी क्या २ हानि हो गयी ?। यदि ऐसा हानि लाभ कुछ भी नहीं हुआ तो यही प्रश्न का व्यर्थ होना है यदि पुरूरवा के साथ विवाह होना सन्देह कारक है तो ऐसे असंख्य पुरुषों के साथ हुए असंख्य विवाह असंख्य संदेहों के कारण क्यों नहीं होंगे ?। नहुष ने परदार इन्द्राणी से गमन की इच्छा की, यह बात प्रसिद्ध है सभी जानते हैं कि नहुष ने ऐसा किया था इस से प्रश्नकर्त्ता की हानि क्या हुई, क्या अन्य लोगों ने परदार गमन की चेष्टा नहीं की थी वा क्या नहीं करते हैं ?। यदि अन्यों ने भी की वा करते हैं तो उन सभी पर प्रश्न क्यों नहीं होते ?। यदि कहो कि वसिष्ठ महर्षि थे तथा इन्द्र का स्थानापन्न नहुष देवराज हुआ था ऐसे उच्चकोटि के लोगों ने वैसा क्यों किया ? तब भगवान् रामने सीताहरण में बड़ा शोक माना था और धर्ममूर्त्ति धर्मावतार राजा युधिष्ठिरभी केवल एक बार मिथ्या बोले थे ऐसे २ काम अन्य २ भी उच्चकोटि के लोगों ने किये और संसार में शरीर धारण करने वालों को ऐसे कामों से सर्वथा बच जाना असम्भव ही है, यदि कभी कोई बच जावे तो वह अपवाद मात्र होगा तब उत्सर्ग रूप में वैसा ही रहेगा। जैसे शीत उष्ण दोनों ही पारा पारी से घटते बढ़ते हैं वैसे ही हानि लाभ उचित अनुचित धर्माधर्म भी सदा ही रहे और रहेंगे श्रेष्ठ मान्य धर्मात्मा वे ही हुए और होते हैं जिन में अत्यल्प अधर्म रह जावे।

लोमशऋषिके आयु का प्रशंसार्थ वाद है उससे भी किसीका कुछ हानि लाभ नहीं जिन २ कामोंसे ब्रह्माजीका महत्त्व माना गया है, लोमशऋषिके अधिक आयुसे उस महत्त्वकी कुछ भी हानि नहीं होती तब लोमश की बात भी सिद्धानुवादपरक हो गयी। जिसमें कोई कुछ करही नहीं सकता। जैसे स्वभाव से ही अग्नि उष्ण और जल शीत है, इस पर यदि कोई कहे कि अग्नि गर्म क्यों है ? तब जैसे स्वाभाविक गुण में यह प्रश्न खड़ा नहीं होसकता वैसेही लोमशऋषि और ब्रह्माजी की आयु भी स्वभाव सिद्ध है, स्वभाव सिद्ध पदार्थों की दशा पर ही सिद्धानुवाद चरितार्थ होता है। इस लिये ऐसे सभी प्रश्न व्यर्थ हैं॥

प्रश्न १–विश्वामित्रने चाण्डाल को यज्ञ कराया।

उत्तर–चाण्डाल को यज्ञका अधिकार नहीं है तब महर्षि विश्वामित्र ने वैसा वेद विरुद्ध काम क्यों किया ? यही अभिप्राय प्रश्नकर्त्ताका होना सम्भव है। इसका संक्षेप

से उत्तर यही है कि प्रश्नकर्त्ता जिसको चाण्डाल समझते हैं वह राजा त्रिशंकु वास्तव में चाण्डाल नहीं था, किन्तु वह वास्तवमें विशुद्ध सूर्यवशी राजा था, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ जी किसी कारण उस राजा पर रुष्ट होगये थे। वसिष्ठजीने राजा को चाण्डाल होने का शाप दे दिया था इससे वह चाण्डालवत् होगया था। परन्तु शापका भी अभिप्राय यह नही था कि राजाके क्षत्रियपनका अभाव होजावे, तदनुसार उस राजा मे जो क्षत्रियपन बना था उसीके अवलम्ब से विश्वामित्र ने उस को यज्ञ कराया था, वा यों कहो कि वसिष्ठजी के तुल्य विश्वामित्र भी तपस्वी तेजस्वी महर्षि थे, जैसे वसिष्ठजी के शाप से वह चाण्डाल कहाया वैसे ही विश्वामित्र जी के तपके प्रतापसे चाण्डाल होने पर भी राजाके क्षत्रियपनका नाश नहीं होने पाया उसी क्षत्रिय राजा को विश्वामित्र ने यज्ञ कराया था। मुख्य चाण्डाल वही होता है जो शूद्र पुरुष के संयोग से ब्राह्मणी मे उत्पन्न हो वैसा चाण्डाल विश्वामित्र जी का यजमान राजा नही था किन्तु वास्तवमें चाण्डाल न होने पर जिसको चाण्डाल कहा गया वह चाण्डालवत् माना गया था।

प्रश्न—भीष्म जी ने अन्धे धृतराष्ट्र को यज्ञ कराया।

उत्तर—इस का भी अभिप्राय स्पष्ट रीति से यही है, कि अङ्गहीन द्विजों को भी यज्ञ का अधिकार नहीं था तब चक्षु अङ्ग से हीन धृतराष्ट्र को वेद विरुद्ध यज्ञ क्यों कराया यही अभिप्राय प्रश्नकर्त्ता का होना सम्भव है। परन्तु हमारी सम्मति है कि भीष्म पितामह स्वयं पूरे आस्तिक और परम विद्वान् वेदशास्त्रवेत्ता थे उन्होंने अपने अधिकारसे विरुद्ध कदापि नहीं किया होगा क्योंकि क्षत्रियों को यज्ञ करानेका अधिकार ही नहीं है केवल ब्राह्मण ही याजक हो सकते हैं इस मर्यादा से विरुद्ध काम भीष्मजी जब नहीं कर सकते तब वैसा लेख होना भी सम्भव नही है और कदाचित् कहीं लिखा भी हो तो उस का अभिप्राय यह होगा कि भीष्म जी ने प्रेरक बन के राजा धृतराष्ट्र से अन्य ब्राह्मण ऋत्विजों द्वारा यज्ञ कराया होगा उस में ऋत्विक् स्थानी भीष्म जी न होंगे किन्तु धृतराष्ट्र के प्रयोजक मात्र होंगे। यह भी सम्भव है कि राजा धृतराष्ट्र को उस यज्ञ के समय किसी ने दिव्य चक्षु दे दिये हों कि जैसे युद्ध के समय व्यास जी ने दिव्य दृष्टि देदी थी अथवा यह हो सकता है कि अन्धे होने पर भी अपवादरूप से धृतराष्ट्रमें कुछ विशेषता देखकर अधिकार सिद्ध कर लिया हो। अथवा यह हो सकता है कि वेदोक्त यज्ञों का अधिकार अंगहीन को निषिद्ध करने पर भी स्मार्त्त यज्ञोंका अधिकार अंगहीनको भी हो सकता है इत्यादि प्रकारसे समाधान हो सकता है। यदि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार मानलिया जाय कि भीष्मजी ने वेद विरुद्ध स्वयं कराया और धृतराष्ट्र ने वैसा किया तथापि यदि चाहे तो प्रश्नकर्त्ता अपने मानवीय

जन्म को सफल कर सकता है अर्थात् अपने कल्याण का उपाय कर सकता है उस कल्याण को भीष्म जी का यज्ञ कराना रोक नहीं सकता और भीष्म जी यज्ञ न कराते तो भी स्वयं किये विना प्रश्नकर्त्ता का कल्याण हो नहीं सकता॥

प्रश्न ३-जब ब्रह्माजी ने होली को यह वरदान दिया कि तू नहीं जलेगी, परन्तु प्रह्लाद की घटना से उक्त काम विपरीत हुआ॥

उत्तर ३—ब्रह्माजी ने होली को जो वरदान दिया था उसकी यथार्थ नकल क्या है, यदि उस वरदान को देते हुए यह कहा हो कि तू किसी भी प्रकार से कभी कहीं अग्नि द्वारा नहीं जलेगी तब तो कदाचित् कुछ विचारने की आवश्यकता होती, और यदि साधारणतया वरदान दिया तो उसका अभिप्राय यही हो सकेगा कि तू किसी विशेष घटना के विना नहीं जलेगी सो वरदान ठीक हो गया कि प्रह्लाद का पिता उसको आस्तिक होने से जला देना चाहता था, उसने होली से कहा कि तू इसे प्रज्वलिताग्नि में लेकर बैठ जा, उस हिरण्यकश्यप ने समझा था कि होली तो जलेगी नहीं परन्तु प्रहलाद जल जायगा, सो वैसा न होकर उलटा इस कारण हुआ कि प्रह्लाद सत्यवादी था सत्य ने प्रह्लाद को बचाया, होली असत्यवादिनी थी, असत्य जब स्वयं कुछ भी नहीं था तो वह अन्य को कैसे बचाता इसी प्रकार धर्मी अधर्मी दोनों के संयोग में अधर्मी का सदा ही नाश हो जाता और धर्मरक्षक प्राणीकी रक्षा धर्म ही कर लेता है, मनुस्मृति में लिखा है कि—

धर्मएवहतोहन्ति धर्मो रक्षतिरक्षितः॥

मारा हुआ धर्म ही मनुष्यादि का नाश करता है और रक्षा किया हुआ धर्म ही उस प्राणी की रक्षा करता है इससे धर्म का घात नहीं करना चाहिये। शिवजी ने रावण की तपस्या पर उसका मांगा यही वरदान दिया था कि जाओ तुम को देव, गन्धर्व, यक्ष, असुर, राक्षसादि सब बलिष्ठ वा क्रूर जातियों के प्राणी तुम को नहीं मार सकेंगे, इन सब से रावणने अपने को अजेय मान लिया था और इन्हीं देवादिसे कुछ भय था। रहे मनुष्य जातीय प्राणी, उनसे रावण को कुछ भय लेशमात्र भी नहीं था, जैसे मांसाहारी मनुष्य भेड़ बकरी आदि पशुओं को अपना भक्ष्य समझते हैं उन पशुओंसे कभी ऐसा भय उनको नहीं होता कि ये लोग कभी हमको मार डालेंगे। इसीके अनुसार रावणको लेशमात्र भी शंका मनुष्योंसे नहीं थी, परन्तु शिवजी सर्वज्ञ होने से जानते थे कि मनुष्य से अपनी रक्षा का वरदान इसने नहीं मांगा इसी कारण नराकार धारी भगवान् राम अपने सहायक बानरों के साथ रावण का वध करेंगे। परन्तु प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यपने तपस्या के द्वारा शिवजी को प्रसन्न करके सभी प्राणियों से अपने अवध्य होने का वरदान मांग लिया था अर्थात् उसने यह भी

सम्भावना करली थी कि कदाचित् मनुष्यों में कोई ऐसा प्रतापी तेजस्वी वीर कभी प्रकट हो जावे जो मुझको मार सके इस लिये सभी प्राणिजातियों से न मारे जानेका वरदान उसने मांग लिया था। हिरण्यकश्यपका पुत्र प्रह्लाद विष्णु भगवान् का अनन्यभक्त था हिरण्यकश्यपने प्रह्लाद को मरवा डालने के सभी उपाय किये फल कुछ नही हुआ, अन्तमें विष्णु भगवान् ने अपनी सार्वकालिक प्रतिज्ञा पर ध्यान दिया कि—

यदायदाहिधर्मस्य ग्लानिर्भवतिभारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानंसृजाम्यहम् ॥१॥
परित्राणायसाधूनां विनाशायचदुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामियुगेयुगे ॥२॥ भगवद्गीता

इस प्रतिज्ञाके साथ ही विष्णु भगवान्ने यहभी शोचा था कि जब शिवजी हिरण्यकश्यपका देवदानव मानवादि सभी प्राणिजातियोंसे अभयदान देचुके हैं, इसलिये ऐसा करैं कि जिससे शिवजीका वरदान असत्य न हो और हिरण्यकश्यप भी नष्ट हो जावे प्रह्लाद भक्त की रक्षा होना अत्यावश्यक है इस विचार के अनुसार खम्भ को फाड के नृसिंहरूप धारण करके विष्णुभगवान् निकले। इस विग्रहमें शरीरके ऊपरका भाग शिर आदि सिंहका था और नीचे का भाग नर-मनुष्यका था इसीसे नृसिंह नाम हुआ वास्तव में वह आकार मनुष्य और सिंह दोनोंमें से किसीमें परिगणित नही होसकता था। इसी के अनुसार होली के वरदान में ब्रह्माजी के कहे शब्दों से कुछ हेरफेर होने पर होली जलगयी थी। परन्तु यह ध्यान फिरभी रखना चाहिये कि होली जलगयी तौ भी दोनों दशा में प्रश्नकर्त्तादि किसी मनुष्य का कुछ भी कल्याण नहीं हो सकता। प्रश्नकर्त्तादि मनुष्य यदि अपने जन्म को उच्च धर्मानुष्ठान द्वारा सफल करना चाहे तो होली के जलजाने न जलजाने दोनों दशा में सफल कर सकता है, और न चाहे तो कुछ नहीं कर सकना, इससे यह प्रश्न भी व्यर्थ है, मनुष्य के सुधार से विशेष कुछ सम्बन्ध नही है॥

प्रश्न ४-श्रीरामचन्द्रजी ने वालीको छिपकर मारा तथा गर्भवती निरपराध सीताजी को वनमें निकाल दिया ये दोनों अनुचित काम किये।

उत्तर ४-जो काम धर्मानुसार कर्त्तव्य समझ लिया जाता है, उसको अनुचित प्रकार से करने में भी दोष नही लगता। अर्थात् किसी बड़े अधर्मी को नष्ट करने में कुछ छलादि करने पड़े तो उससे कोई दोष नहीं लगेगा। वालीने भी धर्मशास्त्रकी आज्ञा से विरुद्ध अपने छोटे भाई सुग्रीव की स्त्री को अपने घर में बलात्कार से रख लिया था।

भ्रातुर्ज्येष्ठस्यभार्याया गुरुपत्न्यनुजस्यसा।
यवीयसस्तुयाभार्या स्नुषाज्येष्ठस्यसास्मृता॥ १॥
ज्येष्ठोयवीयसोभार्यां यवीयान्वाग्रजस्त्रियम्,
पतितौभवतोगत्वा नियुक्तावप्यनापदि॥ २॥ मनु-अ०९॥

भा०-बड़े भाई की पत्नी को छोटा भाई गुरुपत्नी के तुल्य माने और छोटे भाई की पत्नी को बड़ा भाई पुत्रवधू के तुल्य माने। बड़ा भाई छोटे की पत्नी से गमन करे वा छोटा बड़े की पत्नीसे संयोग करे तो दोनों पतित होजाते हैं, इन प्रमाणों के अनुसार भगवान् रामने जान लिया था कि यह वाली वधके योग्य है। यदि छिपकर न मारते तो वह भी युद्धके लिये तयार हो जाता तो कठिनाई से मारा जाता, क्योंकि वाली बड़ा बलवान् था। जैसे किसी चोर डाकू आदि को कोई छिपकर मारे वा धोखा देकर छलादि द्वारा पकड़े तो भी अनुचित नहीं माना जाता वैसे ही वाली को छिपकर मारदेने में कोई दोष वा पाप नहीं था, छिपकर मारने में जो कुछ दोष वाल्मीकीय रामायण में दिखाया है, उसका समाधान भी वहीं करदिया है॥

द्वितीय सीता जी का कुछ अपराध न होने पर भी गर्भावस्था के समय जो वन में निकाल दिया था, इस में से कई उत्तम अभिप्राय निकलते हैं जिससे उच्च कोटि की शिक्षा मिलती है। १-एक मुख्य बात यही थी कि जैसे उसी समय धोबीने अपनीस्त्री से कह दिया था कि रामने सीता को रावणसे वापस लेकर भी फिर रख लिया वैसे मैं तुझे फिर नहीं रक्खूंगा। इसी के अनुसार संसार में आगे २ फिर कोई इस दृष्टान्त को लेकर न कहै, इसलिये रामने सीताको वनवास दिया। २-सीता जी का अपराध कुछ न होना इस निकालदेने द्वारा भी अधिकाधिक सिद्ध हुआ सो न निकालते तो कैसे सिद्ध होता ३-पतिभक्ता महासाध्वी गर्भवती सीताजी को निकाल देने पर उच्च कोटिके पातिव्रतधर्मकी परीक्षा हुई अर्थात् ऐसी दशामें भी सीताजी ने भगवान् रामजीसे लेशमात्रभी चित्त नहीं हटाया, अन्त समय तक पूर्ण भक्ति सीताजी की राम जी के चरणोंमें रहीं इसकी परीक्षा निकाले विना कदापि न होती। जैसे मर्यादा पुरुषोंके उत्तम सभी चरित्र भावी मनुष्यों को उत्तम उपदेश पहुंचाने के लिये होते हैं वैसे उनके सभी चरित्र संसार को शिक्षा देने के लिये मानने चाहिये॥

प्रश्न ५-महाभारत वनपर्व अ० ५०में लिखा है कि महाराजा युधिष्ठिरने दशहज़ार ब्राह्मणों को मृगों का मांस खिलाया सो क्या यह अनुचित नहीं था?। और विराट्पर्व के अ० २७, २८। २६ में द्रोणाचार्य और भीष्म पितामहने वन में अन्नफूल फल होते हुए भी मृगोंका मांस क्यों खाया? सो क्या अनुचित नहीं था?॥

उत्तर ५-महाराजा युधिष्ठिरादिके समयसे अब समय बहुत बदल गया, तदनुसार मनुष्यों की बुद्धि भी बदल गयी हैं, मांसभक्षण कहने मात्र के लिये जितना बुरा अब

समझाजाता है उससे सैकड़ों गुणा कम बुरा पहिले समझा जाताथा और पितापुत्रोंमें सहोदर भाइयों में, सासु बहू में, पतिपत्नी में विरोध होना जैसा बुरा पाप पहिले समझा जाता था वैसा अब नही समझा जाता वा यों कहो कि पिता पुत्रादि का विरोध अब पाप भी नही माना जाता। जैसे शीत बढने के समय गर्मी की बातें और गर्मी बढ़ने के समय जाड़े की सभी बातें भूल जाती हैं, वैसे ही समयानुसार बुद्धि भी बदल जाती हैं। कहने मात्र के लिये हमने इसलिये लिखा कि मांस भक्षण जितना बुरा समझा जाता है तदनुसार विशेषकर मांसभक्षी राजा रईस वैसे पापी नही समझे जाते। मांसभक्षणको बडा पाप कहने मानने वाले प्रायः साधारण कोटिके मनुष्य होते हैं, और राजा रईसों का अधिक भाग मांसभक्षण करने वाला है, वे साधारण मनुष्य मासभक्षण के विरोधी होने पर भी राजा रईसों के सामने न वैसा खण्डन करते और न उनका सग छोडते हैं किन्तु उनके सामने खुशामदी बातें करते हैं, यदि मांसभक्षण, मद्य और वेश्या सम्पर्क इन तीनों को अधिक बुरा समझा जाता है तो इन कामों में लिप्त मनुष्यों का सर्वानुमत्या जाति वहिष्कार होना चाहिये था। ऐसा न होने से मानने पड़ता है कि मद्य मास मैथुन कथन मात्र ही अधिक बुरे हैं, इन तीनों में भी मांसभक्षण और भी अधिक बुरा समझा जाता है। अस्तु हमारा यह अभिप्राय कदापि नही है कि मांसभक्षण बुरा नहीं वा अच्छा हैं किन्तु मासभक्षण भी अवश्य पाप है, परन्तु इस समय मांसभक्षण को जैसा वडा पाप लोग समझने लगे हैं वैसा वड़ा पाप नही है। मद्यपान ब्राह्मण के लिये महापातक है, पर मांसभक्षण महापातक नही है। पूर्वकाल में वन में नगरों की सी भोजन सामग्री नही थी तब ऐसे आपत्काल में जङ्गली मृगादि के मांस से अपनी और ब्राह्मणों की क्षुधा निवृत्ति द्वारा रक्षा यदि युधिष्ठिरादि न करते तो जीवित कैसे रहते ? इस लिये आपत्काल मे वैसा किया तो दोष युक्त होने परभी करने पड़ा। धर्मशास्त्रों का मत है कि आपत्काल मे प्राणरक्षा के अर्थ दोष युक्त होने पर भी मांस भक्षणादि से अपनी रक्षा करे और पीछे प्रायश्चित्त कर लेवे। और मांस भक्षण ब्राह्मण के लिये जैसा विशेष कर निषिद्ध है वैसा क्षत्रियादि को निषिद्ध नही आपत्काल में ब्राह्मणको भी कहा निषेध नहीं है। मांस भक्षण की अपेक्षा सैकड़ों गुणे अधिक दोषों वाले मिथ्या भाषण वा नीच अन्त्यज स्त्रियोंसे व्यभिचारादि काम करना उन पाण्डवादि लोगो मे नही थे इसी कारण वे लोग हमारी अपेक्षा सर्वथा शुद्ध थे। उन.के पुण्य धर्म के काम लाखों गुणे हमसे अच्छे थे। विराट् पर्व अ० २७। २८। में उक्त बातें नही हैं यदि किसी पुस्तक में मिलें तो वैसा ही पूर्वोक्त समाधान कर लेना चाहिये। मनुष्य को अपने कल्याणार्थ आगे २.धर्म मे चित्त लगाना चाहिये और अधर्म अन्याय से बचे यही सार है॥

ब्राह्मण ।

(१)

सम्राट् तुम्हीं धर्म के, जग के भी तुम्हीं हो ।
पतितों के प्राण दीनों के आधार तुम्हीं हो ॥
ऋषि मुनि भी तुम्हीं, राजा व मन्त्री भी तुम्हीं हो ।
जय, जय हो तुम्हारी ! गुरू ! सर्वस्व तुम्हीं हो ॥

(२)

विद्वान् तुम्हीं, योगी तुम्हीं, ज्ञानी तुम्हीं हो ।
गुणवान् तुम्हीं, त्यागी तुम्हीं, दानी तुम्हीं हो ॥
साधू तुम्हीं, सन्यासी तुम्हीं, ध्यानी तुम्हीं हो ।
सब कुछ, तुम्हीं सब काल रहे, अब भी तुम्हीं हो ॥

(३)

श्री विष्णु के उर में भी लात किसने जमाई ।
बदले में विष्णु ने जिसे विनती थी सुनाई ॥
श्रीकृष्ण ने सह श्रद्धा चरण किसके पखारे ।
अरु राधाने निज कर से केशव वस्त्र सम्हारे ॥

(४)

ब्राह्मण को छोड़ और कहो किसका हिया है ।
दे अपनी अस्थि विश्व का उपकार किया है ॥
हो इच्छा-मृत्यु जिसके हाथ कोई बतादो ।
परदे में जगत् के कोई दृष्टान्त दिखादो ॥

(५)

ब्राह्मण को छोड़ कोई वीर मुझको दिखादो ।
इक्कीस नहीं एक बेर भी तो लखा दो ॥
निश्छत्र किया भूमि हो, निज बाहु के बल से ।
निज तेज से, उत्साह से, तप शक्ति अतुल से ॥

(६)

तुम ही तो एक हेतु हो अवतार ईश का ।
यह मर्म विज्ञ जानते, जानेंगे मूर्ख क्या ॥
इस हेतु सहसवार नमस्कार तुम्हें है ।
सब भांति तुम्हीं श्रेष्ठ हो, स्वीकार हमें है ॥

(७)

जिस भांति करामात, यहां पूर्व दिखाई ।
उस भांति करामात की बारी पुनः आई ॥
भारत की श्रेष्ठ-भूमि, मातृ-भूमि तुम्हारी ।
उद्धार हेतु ताक रही ओर तुम्हारी ॥

(८)

अब धर्म तुम्हारा है, ब्रह्मशक्ति दिखाना ।
धन धर्म की रक्षा व पुण्य-देश बचाना ॥
पीछे हैं उन्हें साथ ले, सोते को जगाना ।
"जय धर्म की" हुंकार से ब्रह्मांड कंपाना ॥

(९)

यदि इसमें देर की, तो गुरू ! सत्य मानिये ।
धन, धर्म, देश, जाति, शीघ्र नाश जानिये ॥
तब कौन कहेगा कि सर्व-श्रेष्ठ आप हो ।
नीचातिनीच, घृणित व खर तुल्य तब तो हो ॥

(१०)

इस हेतु अगर इष्ट हो सन्मान रखाना ।
निज धर्म की, निज देश की मर्याद बचाना ॥
तो छोड़ सब प्रपंच, शीघ्र जग को दिखादो ।
"सन्तान हो ब्राह्मण के" अर्थ इसका बतादो ॥

अम्बिकाप्रसाद त्रिपाठी (आसाम)

सिंधके हिन्दुओ! सावधान!

भाइयो! आज कल जो स्त्री शिक्षाके बहाने आप लोगोंकी भोली भाली कन्याओं तथा श्रद्धालु स्त्रियों को आजादगी को पट्टी पढ़ाके सफरजेस्ट् बनाने की कोशिश की जा रही है यदि इसके रोकने का तुम कोई उपाय न कर केवल हाथ पर हाथ धरे बैठे रहोगे तो याद रक्खो पवित्र हिन्दूधर्मकी वह दुर्दशा होगी जो हजारों मुहम्मद ग़ज़नवी और लाखों ईसाई भी न कर सके थे। करीबन् इस बात में सारे संसार के विद्वान् एक मत हैं कि स्त्री जातिके उत्थान में देश का उत्थान और उसके पतन में देश का पतन है। इसलिये हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें लड़कों की अपेक्षा कन्याओं की आचरण रक्षा पर विशेष जोर दिया गया है। क्योंकि जितना प्रभाव सन्तान का माता पर पड़ता है उतना पिता का नहीं। इन्हीं तुम्हारी गृहलक्ष्मियों को लज्जा शील भारतीय ललनाओंके स्थानमें सजी सजाई उद्दण्ड यूरोपियन लेडी रूपमें बनाने के लिये आर्यसमाजी, ब्राह्मसमाजी और ईसाई तीनों ही जी तोड़ परिश्रम कर रहे हैं। यद्यपि यह हानिकारक बीमारी कितने ही वर्षों पहिले हीरानन्द नवलराय के साथ में बंगाल से सिंध में पदार्पण कर चुकी थी परन्तु अब तक इने गिने हिन्दूधर्म से पतित हैदराबादी आमिलों को छोड़ सर्वसाधारण सिंधी इस के ज़हरीले डंक से बचे हुए थे। पर अब जिस धूमधाम से यह संक्रामक रोग विस्तृत हो रहा है। इससे अनुमान हो रहा है कि शायद शीघ्र ही सारा सिंध इसका शिकार हो जाय।

प्यारे सिंधियो! बंगाल और पंजाब इस स्त्री स्वातन्त्र्य की शिक्षा का अच्छी तरह मजा चाख चुका है। ला० हंसराज वगैरह समझदार आर्य्यसमाजी भी इस सत्यानाशी व्याधिसे आर्यसमाजको बचानेके लिये उपाय ढूंढ़ने लगे हैं। आर्यसमाजका चौथा पैग़म्बर, त्रेतायुग का लाला, द्वापर का महात्मा और कलियुग का स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती भी गतवर्ष के लखनऊ कांग्रेस की वेदी पर दश बीस भारत की देवियों को पुरुषों के साथ बैठा हुआ देख रोया था। अब चाहे वह उन आंसुओंको गहने कपड़े और नाजुक बूटों की ओट में छिपा ही जावे लेकिन अनुभवी मनुष्य उसके रोने का मतलब समझे विना रह नहीं सकते। सिंध देश एक श्रद्धालु और अत्यन्त धार्मिक है। वहां की देवियां तो और भी धर्मात्मा होती हैं। जिस हालत में हैदराबादी आमिल न्यूलाईट के जेन्टिलमेन हो के ब्राह्मणों को गालियां देने और हिन्दूधर्म्म को ढकोसला समझने में ही देशोन्नति समझ रहे हैं। ऐसी अवस्थामें वे ही पवित्र भारत की कन्याएं उन से अब तक मृत पितरों का श्राद्ध करा रही हैं। परन्तु अब उनके

श्राद्ध का भी अन्न होनेवाला है। उनके फंसाने के लिये चारों तरफ जाल तैयार हो गये॥ इस सनातनधर्म-रूपी किले के प्रधान रक्षक स्त्री समाज को परास्त करने के लिये जालधर विद्यालय से निकली हुई देवियों की एक जबरदस्त पलटन बहुत रोज से यहां के मुख्य शहरों में चक्कर लगा रही है। सीधे साधे आदमी इन को संस्कृत और हिन्दी भाषा की विदुषी समझ के अपनी स्त्रियोंको इनके पास विद्या पढ़ने और उपदेश सुनने के लिये भेज देते हैं। फल यह होता है कि वे स्त्रियां हिन्दु धर्म से नफ़रत और पतिदेवताओं का नौकर तुल्य समझने की पवित्र शिक्षा वहां से लेके लौटती हैं। शिकारपुर में एक डाक्टर की स्त्री ने तो एक वार व्याख्यान मे साफ कह भी दिया था कि हम पुरुषों के आधीन नहीं हैं किन्तु पुरुष हमारे नौकर हैं यद्यपि इस प्रकार नाना रूप धारण करके आर्य्यसमाज और ब्रह्मसमाज स्त्रियों को पुरुषों की भरी सभाओं में हारमोनियम पर हाव भाव कटाक्षों सहित गीत गवाना तथा हिन्दु, मुसलमान, पारसी क्रिश्चियन सब के समक्ष कान्फरेन्सों की प्लेटफारमों पर हिन्दू स्त्रियों से लेक्चर करवाना आदि देश और धर्म सहारिणी शिक्षायें दे रहे हैं तो भी हिन्दू रिवाज और सनातनधर्म की जड़ उखाड़नेके लिये ठट्ठे का कन्याब्रह्मचर्याश्रम और शिकारपुर की देशहितकारिणी देवीशाला जितने खौफ़नाक हथियार हैं उतने और कोई भी नहीं हैं। क्योंकि ये दोनों अपना असल स्वरूप प्रकट कर भोले भाले हिन्दुओं से पैसा ले उन की ही कन्याओं को हिन्दूधर्म से विरुद्ध शिक्षा दे धर्म की जड़ काट रहे हैं। आप लोगों ने प्रत्यक्ष देखा होगा कि जिन कन्याओं की पाठशालाओं में ठट्ठा के नरसिंह लाल का दादा गुरु स्वामी दयानन्द सरस्वती पांच वर्षके लडके का आना भी मना कर गया है उन ब्रह्मचारिणी पन्द्रह २ वष की युवतियों से पुरुषों की सभा में ठट्ठे के कन्या ब्रह्मचर्याश्रम का अधिष्ठाता नरसिहलाल भाटिया सुरीले राग गवाता फिरता है॥

मेले ठेलों मे सब ही धर्म प्रेमी नहीं आते। इन कन्याओं के राग सुनने वालों में भी कितने ही अन्यमतावलम्वी थे। जो सुन २ के हिन्दुओंकी हालत पर ठठोली कर रहे थे। अब कुछ दिन में ऐसे २ कन्या ब्रह्मचर्य्याश्रमों की बदौलत हिन्दुओं की परदा रसमके विषयमें कूद फांद बन्द हो जांयगीं। उन बेचारोंको क्या खबर कि वे खुद ही हिन्दू नहीं हैं। इसी तरह शिकारपुर स्वदेश हितकारिणी देवी शालाकी अधिष्ठात्री दमयन्ती देवी भी हिन्दू मुसलमान वगैरह अढ़ाई घरोंकी आम सभाओंमें खुले मैदान व्याख्यान फटकारती है। इतना ही नहीं किन्तु सब ही मज़हबों के मनुष्यों से हाथ मिलाती और उनके साथ कुर्सियों पर बैठती है। गत सोशल कानफ्रेंस में इस हिन्दू कन्याने किस तरह अपनी पूज्य पचायत की खबर ली थी वह सुनने वाले ही जान सकते हैं इसका व्याख्यान सुनके भरी सभामें त्राहि २ मच गई। बड़े बूढ़ोंके आंखोंसे

आंसू बहने लगे। वे सोचते थे कि हे ईश्वर ! क्या यह वही भारतवर्ष है कि जहांकी धर्म परायण देवियां पुरुषों का नाम लेना भी महा पाप समझती थीं। और आज वे ही हमारी कन्यायें भरी सभा में अपने बड़ों पर अपशब्दोंकी वर्षा कर रहीं है। परन्तु अब भी क्या है अगर इसी तरह ये उच्छृखल पाठशालायें और कन्या ब्रह्मचर्याश्रम चलते रहेंगे तो सिन्ध में एक दमयन्ती की जगह सैकड़ों दमयन्ती देखोगे और शायद इङ्गलैण्डवासिनी स्त्रियों की तरह म्युनिसिपल्टीयों के चेयरमैन और पंचायतों के मुखियों के बंगलों पर न धावा मारें। आप अपनी कन्याओं को बेशक पढ़ाओ उनके पढ़ाने के हम विरुद्ध नहीं। लेकिन उनकी चरित्र रक्षा पर विशेष ध्यान रक्खो तुम अपने कानों सुन और आंखों देख चुके हो। यदि इतने पर भी अपनी कन्याओं और स्त्रियोंका ऐसी शालाओं तथा आश्रमों से सम्बन्ध रक्खोगे तो संसार तुमको उसी पंच-तंत्र वाले लम्बकर्ण की उपमा देगा जो सिंहके असल स्वरूपको देख जानेपर भी अपनी मूर्खतासे फिर उसीके हाथों मरा, इन दोचार ब्राह्मसमाजी और दयानन्दियोंको चिकनी चुपड़ी बातोंमें आके अपने देश और धर्म का सत्यानाश न कराओ ये खुद अपनी नाक कटाचुके हैं, अब अपनी तरह समस्त हिन्दू समाजकी नाक कटाया चाहते हैं, अब तक बीमारी इतनी असाध्य नहीं हुईहै। परन्तु फिर मफ्रजेस्टोंसे तंग आये इगलैण्ड वासि-योंके समान हाथ मल के पछताना पड़ेगा जिन की अध्यापिकाओंका यह हाल है वहां से कन्यायें क्या होके निकलेंगी इनका अनुमान खुद कर सकते हो अन्त में इन देवियों से प्रार्थना है हे संसार के सभ्य बनाने की ठेकेदारिणी देवियो ! इस धर्म भीरु सीधे सादे सिन्धु देश का तुम्हारी नई सभ्यता नहीं चाहिये तुम अपनी सभ्यता के फल उसी पंजाब देश को चखाओ जिस ने जालंधर विद्यालय जैसे इन्स्टीट्यूशन को पाल पोष के इतना बड़ा किया है देखें हमारे सिन्ध के हिन्दू भाई इस प्रार्थना पर कितना ध्यान देते हैं।

सम्पादकीय सम्मति—एक सिन्ध ही क्या भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें स्त्रीशिक्षाकी दुर्दशा हो रही है। स्त्री शिक्षाके नाम से कुशिक्षा और स्वातन्त्र्यप्रियताको प्रश्रय दिया जा रहा है अब तो कितने ही पुरुष भी स्त्रियोंको स्वतन्त्रता दिलानेके लिये सिर तोड़ कोशिश कर रहे हैं। अभी थोड़े दिन हुए प्रयागकी मर्यादा का एक विशेषाङ्क निकला था उसमें एक लेखक ने भगवान् मनु पर ही कितने वाक्य बाण बरसाये थे, कुछ दिन पहिले मर्यादा में एक विवाह का नोटिस निकला था जिसमें स्त्री को सर्वथा स्वतन्त्र रहने का विचार प्रकट किया गया था, हमारी रायमें सनातन धर्मियोंको अपनी कन्या-ओंकी शिक्षा का प्रबन्ध अपने हाथमें रखना चाहिये, आर्य समाजी या ब्राह्मसमाजियों के द्वारा स्थापित पाठशालाओं में कन्याओंको पढ़ानेसे उनमें धार्मिक भावकी न्यूनता स्वातन्त्र्यप्रियता आदि अनेक अवगुणों का होना अनिवार्य है।

रम्भा-शुक्र-संवाद षट्पदी

"मत्तगयन्द"

बांधि मनै थिरता रजु सों निज भूलि भले बन ध्यान लगायो ।
लीन भयो हरि के पद में जग जाल जवाल विशाल भुलायो ॥
पेखि घनों तप मोह भरो मघवा तन ताप-कलाप समायो ।
धाय गयो शरणागत रम्भ हैं रोय-महा निज हाल बतायो ॥१॥
तू-ही सदा दुख नाशन मोर,, अहै सब देवन की सुखदैया ।
भीर परी जब हीं यहि लोकमें, कौन सहाय सदा- मन भैया ॥
लीन चहै तप कै सुरराजहिं देखु अमी शुक-की कमवैया ।
चाहत होन अकाज सबै, मम लाज जहाज तुही-रखवैया ॥२॥
चौंकि चितै चपला द्युति ज्यों सब साज समाज सहाय बनाई ।
पाय कहा सुख मानसको इत आप अकाम समाधि लगाई ॥
भोग के योग दियो विधि वैस, तहां प्रिय हाय विभूति रमाई ।
कामिनि काम- कला न प्रवीन- भयो कत लाभ तुम्हैं जगआई ॥३॥
ऐहै न काम कछू-धन धाम-अराम-तमाम विभौ चलि जै है ।
जै हैं विनोद भरे सिगरे दिन, काल कराल के गाल-समै है ॥
रामको नाम भजै भव त्यागि, यही पथ सों परमारथ-पैहैं ।
कामिनि दोष भरो वपु जौन-कहा तेहि साधु महान रमै हैं ॥४॥
खाये विना मृदु भोजन भूरि न सोहत ताशु अरूप बताये ।
भूषन भाव भरो जग षोडश-सोह-न आज अकाज बनाये ॥
कामिनि रूप अनूप-लखे द्युति दानव--देव-फिरैं चकराये ।
भोगि सुभाग सराहिय,लाल, कहा दिन काटत राख लगाये ॥५॥
तैं अति बावरि नारि कहा मुख फूंकि पहार उड़ावन चाहै ।
झूठ प्रपंच भरो जग जौन, तहां हठि मोहि फंसावन चाहै ॥
प्रेम अटूट रम्यो हरि में करि द्रोह विमोह हटावन चाहै ।
पान कियो जेहि भक्ति सुधा तेहि को विष लाय चटावन चाहै ॥६॥

साहित्य सेवक—पुनीलाल शुक्ल
गनियारी-बिलासपुर

क्या कालिदासकी भूल है ?

सज्जनो ! सरस्वती के पिछले (अगस्त, १९१७ वाले) अङ्क के विविध विषयों में १–कालिदास की भूल शीर्षक जो सम्पादकीय नोट छपा है उसके लिए हम विशेषतः सम्पादक महाशय के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हम वंगलाभाषाऽनभिज्ञ लोगों को भी अध्यापक श्रीहरिपदशास्त्री एम० ए० के लेख पर विचार करने का अवसर दिया। अध्यापक महाशय के लिए भी हम अपनी कृतज्ञता अवश्य प्रकट करते हैं क्योंकि विचारप्रौढ़ि के लिए ग्रन्थ का मार्मिक पर्यालोचन (Critical study) जैसा कि अध्यापक महाशय ने अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम श्लोक पर किया है अत्यावश्यक है। प्रत्येक मनुष्य अपनी स्वसम्मति देनेमें स्वतन्त्र अवश्य है पर ऐसी सम्मति कहां तक मान्य वा अमान्य हो सकती है यह सर्वथा पाठकों के अधिकार पर निर्भर है। यह तो कहा नहीं जासकता कि कालिदाससे कहीं भूल हुई ही न हो, क्योंकि मनुष्यसे भूल होना सम्भव है, तथापि प्रस्तुत विषय में क्या वास्तव में महाकवि कालिदास ने भूल की है इस पर विचार किया जाता है।

विज्ञ सम्पादकके यह शब्द कि "यह भूल, यदि भूल मानी जासकती हो तो आज तक और किसी के ध्यानमें नहीं आई" अक्षरशः सत्य है। वास्तवमें "आद्या सृष्टिः" का जलपरक अर्थ करते हुए शकुन्तला के किसी टीकाकार ने विचारगाम्भीर्य प्रकट नहीं किया। मैं भी स्वयं उसी प्रवाह में बहता रहा हूं। जब २ मैंने शकुन्तला को पढ़ा तब २ सामान्य दृष्टि के अतिरिक्त कोई विशेष प्रकाश नहीं डाला। आज सरस्वती के सुझाने पर विशेष विचार की सूझी है।

किसी बात को सहसा सर्वमत के विरुद्ध लिख देना वा कह देना अन्याय है और उसमें किसीके द्वारा उचित मीमांसा किये जाने परभी अपनी भूलको न मानना किन्तु अपनी पिछली बात पर अड़े रहना हठधर्मी है। अच्छे लेखक और पाठक इन दोषों से सदा उन्मुक्त होते हैं। मैं चाहता हूं कि मेरे निम्नलिखित विचार पर भी जिन महाशयको विचार करना हो करें, यदि मेरा मत समीचीन न होगा तो मैं उनके विचार को अवश्य मान लूंगा॥

या सृष्टिःस्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री।
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्॥
यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः।
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः॥ १॥ अभि० शा०॥

यह निर्विवाद सिद्ध है कि इस मङ्गलाचरणके श्लोकमें कविने अपने इष्टदेव अष्टमूर्ति ईश (महादेव जी) की आशिस् मागी है। कोई महाशय यदि "आद्या सृष्टिः" का अर्थ जल न कर के दूसरा कुछ लगा कर अपनी दृष्टिमें कालिदासको सस्तेमें छुडाना चाहें, तो उन्हें पहले ही यह बतला देना आवश्यक है कि शिव जी की अष्ट मूर्तियों में एक जलरूपा मूर्त्ति भी है, और अर्थान्तर करने से इस श्लोक के कौन पदों से फिर जल का अर्थ किया जावेगा? ध्यान रहे कि आठ मूर्तियों में एक जल अवश्य होना चाहिये। प्रमाण के लिये रघुवंश द्वितीय सर्ग के ३५ वें श्लोक की सञ्जीवनी टीका से श्लोक उद्धृत किया जाता है—

"पृथिवी सलिलं तेजो वायुराकाशमेव च।
सूर्याचन्द्रमसौ सोमयाजी चेत्यष्टमूर्तयः॥"

अब "आद्या सृष्टिः" का अर्थ जल ही हो सकता है तब तो कालिदास पर ही श्रुतिविरुद्ध लिखने का दोष आता सा दीखता है। दोषारोपण करने में अध्यापक महाशय वेदान्त (विषय) अर्थात् तैत्तिरीयोपनिषद् और सांख्यदर्शन की दुहाई देते हैं तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है—

"तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी" इत्यादि।

और सांख्यदर्शन के अनुसार भी सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से स्थूलतम सृष्टि हुई है। यह नहीं कि जल ही पहले पैदा होगया हो। मनु० के पहले अध्याय के श्लोक ७५, ७६, ७७ और ७८ में भी आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी की उत्पत्ति क्रम क्रम से वर्णन की गई है। अत एव जल को आदि सृष्टि मानना सर्वथा असंगत है। इस भूल का कारण मनु० का श्लोक—

"सोभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ १। ८॥"

है जिसमें कालिदास ने "आदौ" का अन्वय सर्वमतानुसार तृतीयचरण में लगा कर शकुन्तला में जलको आदि सृष्टि माना है। "आदौ" का अन्वय यदि चतुर्थ पाद में लगाया जाय तो कुल्लूकभट्ट के समान "अर्थकी खींच खांच" भी नहीं करनी पड़ती और उपनिषदादि के विरुद्ध भी नहीं होता। इस श्लोकका यथार्थ भाव न समझने ही से कालिदास से यह भूल होगई है। यह अध्यापक महाशय की आलोचना का सारांश है।

वास्तव में कालिदास ने कोई भूल नहीं की। अध्यापक हरिपदशास्त्री की ही सरासर भूल है। पाठक महाशय ध्यान दें।

वेदान्त विषयक प्रमाण को पीछे उठावेंगे। सांख्य दर्शन का आपने प्रमाण क्यों दिया? वह तो श्रुति के अनुसार है ही नहीं। यदि होता तो ब्रह्मसूत्रकार को—

"ईक्षतेर्नाशब्दम् (१।१।५)"। "आनुमानिकमप्येकेषामिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च (१।४।१)" "स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इतिचेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् (२।१।१)" "इतरेषां चानुपलब्धेः (२।१।२)"। "रचनानुपपत्तेश्च नानुमानं.......विप्रतिषेधाच्चासमञ्जसम् (२।२।१—१०)

इत्यादि सूत्र रचने की क्या सनक थी? और ब्रह्मसूत्र (२।१।१) में तो स्पष्ट ही सांख्यस्मृति को अप्रामाणिक बताकर मनुस्मृति की ही प्रमाणता सिद्ध की है। छान्दोग्योपनिषद् के षष्ठाध्यायके द्वि० खं० की तृ० श्रुतिको पढ़िये—

"तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तत्तेजोऽसृजत। तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति तदपोऽसृजत"

इत्यादि में ईक्षणविशिष्ट सृष्टिकर्त्ता होने से ही सांख्यदर्शन श्रुति विरुद्ध है। इन २ स्थलों का शाङ्कर भाष्य अवश्य पढ़िये। मनुस्मृतिके "सोभिध्याय शरीरात् स्वात्" इत्यादि श्लोकसे ही "स्वात्शरीरात्" से ब्रह्म ही को उपादान कारण तथा अभिध्यान पूर्वक सृष्टि को कहते हुए सृष्टिप्रकरण विषय में मनु जी को प्रधानकारणवादी सांख्य की अप्रमाणता इष्ट है जैसा कि इसी श्लोक की टीकामें कुल्लूक भट्टने लिखा है। इस लिये सांख्यका तो प्रमाण देना ही वृथा है क्योंकि वेदान्त और मनु०दोनों ही के विरुद्ध हैं। यदि "सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से स्थूलतर और स्थूलतम सृष्टि हुई" इस अंशमें सांख्यको प्रमाण मानते हो तो इसमें सांख्य की विशेषता ही क्या है? क्योंकि यह तो सर्वतन्त्रसिद्धान्ततया सिद्ध है, और मनु०के श्लोक में भी "आदौ" का अन्वय तृतीय पाद में ही लगाने पर (जैसा कि कालिदासने समझा और हम सब लोग मानते हैं) और आपके समान ऐंचातानी न करने पर किन्तु टीकाकार के सीधे अर्थ के अनुसार भी, आपके सांख्यनाम से व्यवहृत सिद्धान्त से कोई विरोध नहीं पड़ता जैसा कि आप को आगे चल कर विदित होगा।

रहा तैत्तिरीयमन्त्रका उद्धृत करना, तहां यह वक्तव्य है कि उपनिषदादि ग्रन्थों में जहां एक वस्तुसे, वा उसके अनन्तर, दूसरी वस्तुकी उत्पत्ति किसी अन्य प्रकरण में लिखी गई हो वहां सृष्टि क्रम कदापि विवक्षित नहीं होता है। यदि होता तो ऊपर वाले "तदैक्षत" इत्यादि छान्दोग्य मन्त्र से मुण्डकोपनिषद् के द्वितीयमुण्डक प्रथम खण्ड के तीसरे मन्त्र—

"एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च । खंवायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी" ।

प्रश्नोपनिषद् के प्रथम प्रश्न के चतुर्थ मन्त्र—

"प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति" ।

ऐतरेयोपनिषद् के प्रथमखण्ड—

"आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १ ॥ स इमांल्लोकानसृजत अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवीमरो या अधस्तात्ता आपः" ॥ २ ॥

इत्यादि । बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रथमाध्याय के चतुर्थब्राह्मण के प्रारम्भ में—

"आत्मैवेदमग्र आसीत् पुरुषविधः" " " स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ । स इममेवात्मानं द्वेधाऽपातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् । तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति ह स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तांꣳ समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त" ॥ ३ ॥

और पुरुष सूक्त के सृष्टिक्रम तथा ऋग्वेदसंहिता के—

"हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे" "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत । ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः ॥ १ ॥ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत । अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥२॥ सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् । दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥३॥ "

इत्यादि । तथा श्वेताश्वतरोपनिषद् के—

"हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वम्" "ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत्"

इत्यादि इत्यादि सभी श्रुतियों में परस्पर विरोध माना जाता । इसका निष्कर्ष यही है कि यह सब के सब श्रौतवाक्य सृष्टिक्रम के द्योतक नहीं हैं । अतएव कोई स्पष्टलिङ्ग सृष्टिक्रमका नियामक दृष्टिमें न आने पर ही उपनिषदोंको मूल लेकर भिन्नर

मत चल गये; अर्थात् आरम्भवाद, परिणामवाद, और विवर्तवाद तथा द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, अद्वैतवाद इत्यादि २ की सृष्टि हुई। अधिकांश में उपनिषदें विवर्तवाद और अद्वैतमत की पोषक हैं और इसी पक्ष में शेष सब औपनिषद वाक्यों का समन्वय शांकरभाष्य में किया है। इन सभी वाक्यों में से श्रीशङ्कराचार्य ने निःसन्देह तैत्तिरीय वाक्य को ही प्रधानतया सृष्टिक्रम का द्योतक माना है, पर उसको ही मान लेने पर ऋक्संहिता तथा प्रश्न कठादि उपनिषदों की कैसी व्यवस्थिति होगी इस पर इस विषय के जानकार पाठक अवश्य विचार करें।

जैसा कि बड़े२ विद्वानों ने माना है कि सृष्ट्युत्पत्तिप्रकरण में संहिता का क्रम उपनिषदों के क्रम से भिन्न है, इस में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता, क्योंकि छान्दोग्यादिवाक्यों की जिस प्रकार तैत्तिरीयवाक्यानुसार सङ्गति लग सकती है उस प्रकार ऋग्वेद के " ऋतं च सत्यं च ,, सूक्त की नहीं लग सकती। और ये मन्त्र सृष्टिक्रम का वर्णन करते हैं इसमें कोई संशय है नहीं क्योंकि " धाता यथापूर्वमकल्पयत् ,, यह वाक्य उस विषय को स्पष्ट ही कह रहा है।

अब देखना चाहिये कि मनु० का प्रथमाध्याय का अष्टम श्लोक जिस के पीछे चलकर कालिदासने जलको आदिसृष्टि माना, उपनिषदों के अनुसार है, वा संहिता के अनुसार, वा इन दोनों से भिन्न किसी तृतीय क्रम का द्योतक है। यदि उपनिषद् और संहिता दोनों में से किसी के अनुसार न हुआ तब तो उस को श्रुति के विरुद्ध मानना यथार्थ होगा, अन्यथा अध्यापक महाशय का वैसा लिखना सूर्यको धूल फेंक कर छिपाने के प्रयत्न के सदृश हास्यास्पद होगा। क्या इसमें भी किसी को सन्देह हो सकता है कि मनुस्मृति जो गीतादि स्मृतियों के सदृश ब्रह्मका नहीं किन्तु धर्मका प्रतिपादन करती है, संहिता की ही अनुगामिनी है न कि उपनिषदों की ? क्या मनु० का पञ्चम श्लोक "आसीदिदं तमोभूतम्,, इत्यादि जहांसे प्रतिपाद्य विषयका प्रारम्भ है ऋग्वेदसंहिता के "नासदासीन्नो सदासीत्" तथा " तम आसीत्तमसा,, गूढमग्रे०" इन मन्त्रोंका शब्दार्थ नहीं है ? क्या "सोभिध्याय शरीरात् स्वात् ,, और आगे के श्लोक ऋग्वेदसंहिता के " ऋतं च सत्यं च ,, तथा " हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे ,, इत्यादि मन्त्रों की प्रतिध्वनि नहीं हैं ? स्मृत्यन्तर में भी कहा है—

" वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् प्राधान्यं हि मनोःस्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते " ॥

इस प्रमाण से भी मनुस्मृति को वेदार्थानुगामिनी होने से अष्टम श्लोक के अर्थ पर श्रुति विरुद्ध होने का दोष नहीं लगाया जा सकता। इस

"सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्,,

का भाषा मे अनुवाद यही होगा कि "अपने शरीर से विविध प्रजाओं के सृजने की इच्छावाले उस स्रष्टाने अभिध्यान [जिसको ईक्षण तथा ज्ञानमय तपसे उपनिषदों में "तदैक्षत„ "यस्य ज्ञानमयं तपः„ इत्यादि वाक्योंमें व्यवहृत किया है] करके आदिमें जलही रचे और [यहां पर स्त्रीलिङ्ग अप्शब्द का-प्रयोग किया है क्योंकि] उनमें बीजको छोड़ा ।„ यहां पर शंका की है कि तैत्तिरीयके अनुसार जल पहले नहीं होसकता क्योंकि उसका नम्बर आकाश वायु और अग्नि के पश्चात् है। ठीक है, हमभी कहते हैं कि आकाशादिके पश्चात् जलका नम्बर है, पर आपने इसकी फिलासफ़ी को कभी सोचा नही कि यहां अप्शब्द से किस प्रकारके जलो से प्रयोजन है। सुनिये, यह सूक्ष्मतत्त्व जल है जो अप्शब्दसे मनुस्मृतिमे व्यवहृत है तथा ऋत शब्द से ऋग्वेद के उपरोक्त सूक्तमें, रयि शब्दसे प्रश्नोपनिषद् के उपरोक्त वाक्यमें और अप् शब्दसे ही कठोपनिषद् के (२ । ४ । ६) " यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत " इस मन्त्रमे कहा गया है। मनुस्मृति के श्लोकमें स्रष्टा की स्थिति मान के, विविध प्रजाओंके उत्पन्न करने की इच्छा रूप उसके अभिध्यान वा तपको कहके, तब अप् पदार्थ की उत्पत्ति कही, अर्थात् परमात्मा अपने तपसे भी प्रथम था और अप्की उत्पत्तिसे भी प्रथम था। बस देखिये यही अक्षरार्थ उपरोक्त कठोपनिषद् के वाक्य का है, कुछ भी अन्तर नही। ऐतरेयोपनिषद् मे भी जो ऋग्वेद से ही सम्बन्ध रखती है " अम्भो मरीचीर्मरमापः " इत्यादि वाक्य मे परमात्मा के ईक्षण के पश्चात् प्रथम अम्भस् शब्द ही पढ़ा गया जो उसी अर्थ का द्योतक है जिसके द्योतक अप्, ऋत, तथा रयि शब्द हैं। यदि मनु०के अष्टम श्लोकमे पढ़े हुए अप् शब्दका सूक्ष्मजलतत्त्व अर्थ न किया जावे तो (७५–७८) श्लोकों में जो महाभूतों की उत्पत्ति के मध्य मे जल की भी उत्पत्ति कही है, क्या वह पुनरुक्तदोष से दूषित न होगी ?॥

आप कहते हैं कि कुल्लूकभट्टने अर्थमें " ऐंचा खैंची "की है। मैं कुल्लूकभट्टके अर्थ को आगे चलकर साफ़ और सीधा, वेद-शास्त्रार्थानुकूल सिद्ध करूंगा, प्रथम आप हीकी "ऐंचातानी" को अङ्गुलिद्वारा निर्देश करता हूँ। (पाठक ध्यान दें) आप कहते हैं कि "आदौ" का अन्वय तृतीय पद के साथ न करके और चतुर्थ के आरम्भ में लगाकर पढ़ने से यह अर्थ होता है कि "व्यक्त हुए स्वयम्भू ने जलकी सृष्टि की, फिर उसी में पहले पहल (आदौ) उसने अपना बीज डाला"। वाह साहब खूब ! पर यह तो कृपया बताइये कि 'एव, पदको जो अवधारण का वाचक है क्यों आप हड़प कर गए ! आप की भांति जो कोई लोग किसी विद्वान् के किए हुए अर्थ मे वृथा दोष निकालने की चेष्टा करके अपना प्रखर पाण्डित्य प्रकट करना चाहते हैं उन्हें आपकी भांति ऐंचातानी किये विना अपना प्रयोजन सिद्ध न करने की कोई दूसरी युक्ति सूझती नही, इससे ऐसा ही करना पड़ता है। मैं दुर्जनतोषन्याय से "आदौ"

को चतुर्थपाद के ही साथ पढ़कर अन्वितार्थ लिखता हूं "अपने शरीर से विविध प्रजाओं के सृजने की इच्छावाले उस स्रष्टाने अभिध्यान करके जलों ही को रचा और प्रथम उनमें बीज डाला"। यहां ज़रा अक़्ल पर ज़ोर देकर सोचिए कि स्रष्टा मौजूद है, अभी कुछ रचा नहीं क्योंकि रचने की इच्छामात्र है, उसने अभिध्यान करके जलों ही को रचा। यहां 'एव,=ही पद से ही क्या जलों की सृष्टिक्रम में प्रथमता सिद्ध नहीं होती! आप ने तो 'आदौ, रूपी ज़ञ्जीर को इधर से उधर करके अपनी समझ में बचने की कोशिश की थी पर 'एव, रूपी डिटेक्टिव आपको सृष्टि की आदि से मध्य क्या अन्त तक भागने पर भी न छोड़ेगा।

अब चतुर्थपाद में "आदौ" जोड़ने से उसकी क्या गति होती है यह भी विचारणीय है। आप कहते हैं कि पहले पहल उसमें बीज डाला। धन्य है महाराज आप के विचारगाम्भीर्य को! यहां 'बीज डाला, में 'पहले पहल, लगा देने से कोई विशेषता तो नहीं आई, पर हां दोष अनेक अवश्य आगए हैं। क्योंकि जिस बचाव के लिये आपने आदौ शब्द चतुर्थ के साथ पढ़ा उसके लिए तो "आदौ" "पहले पहल" पद की कोई आवश्यकता ही नहीं यतः 'जल की सृष्टि की, और 'बीज डाला, इसके बीच में कोई और कार्य नहीं किया, तब प्रथमवार नहीं तो क्या द्वितीय वा तृतीय वार डाला? क्या मनु० के श्लोक में "आदौ" पदकी व्यर्थता का बोधक अर्थ करते हुए आप मनु०के रचयिता का प्रज्ञालाघव सिद्ध नहीं करते? पूर्वज विद्वान् महात्माओं की शान में आपको ऐसा लिखना शोभा नहीं देता। आज भी भाषा में हम लोग जब दो चार बातें ऐसी कहना चाहते हैं जो पहले पहल ही तथा व्यवधान रहित एक के पश्चात् एक हुई हों, तो 'पहले पहल, का प्रयोग द्वितीयादि के साथ नहीं करते प्रत्युत केवल प्रथम के ही साथ करते हैं। एक दम द्वितीय वा तृतीय बात के साथ 'पहले पहल, का प्रयोग करना वाक्यार्थ तथा भाषा दोनों को असंगत बना देता है। इससे यही सिद्ध हुआ कि "आदौ" पदकी सार्थकता केवल उसी अवस्था में हो सकती है जब उसका अन्वय अप्सृष्टि के साथ अर्थात् तृतीय पादमें लगाया जावे; अन्य चतुर्थ पादमें लगाने पर उसका वैयर्थ्य इतना स्पष्ट है कि किसी सूक्ष्मविचार वा टीकाटिप्पणी की आवश्यकता ही नहीं। और यदि 'पहले पहल' से आपका प्रयोजन यह हो कि और सृष्टियों में बीज नहीं डाला था किन्तु पहले पहल इसी सृष्टि में डाला; तो यह भी असमीचीन है, जैसा कि "धाता यथापूर्वमकल्पयत्" के अर्थ में आगे चलकर आपको स्वयं विदित हो जावेगा।

अब देखिए कि कुल्लूकभट्ट ने "आदौ" का अर्थ "स्वकार्यभूतब्रह्माण्डसृष्टेः प्राक्" अर्थात् 'अपनी बनाई हुई ब्रह्माण्डसृष्टि से पूर्व' किया है। भला पक्षपात की ऐनक उतार कर सच्चे दिल से कहिए तो इस में क्या- ऐंचा खैंची है? किसी ग्रन्थकी टीका-

वा भाष्य को उठाकर देखिए, सहस्रों तथा लक्षों स्थल ऐसे मिलेंगे जहां अर्थ को स्पष्ट करने के लिए वा आगे पीछे की संगति मिलाने के लिए एक-पदका अर्थ कई पदों द्वारा किया जाता है। इसी प्रकारके बहुत से पद हैं। देखिए 'अथ, जहां कहीं आवेगा उस का अर्थ वहांके प्रकरणानुसार 'प्रस्थानानन्तरम्, 'रात्रिगमनानन्तरम्, इत्यादि २ किया जाता है; क्या उसको कोई निष्पक्ष विचारशील पुरुष "ऐंचा खेंची" कह सकता है? उसी प्रकार यहां "और सृष्टि रचनेके पहले" इस अर्थमें "आदौ" पदके प्रकरणानुसार स्पष्टार्थ के अतिरिक्त कौन सी "ऐंचातानी" है जो हम लोगों की चार आंखोंसे नहीं दीखती, पर आप को चश्मा से आच्छादित चर्मचक्षु से प्रतिभात होती है।

पाठक महाशय! मैं लेखको अधिक विस्तार न दूंगा पर इतना लिखे विना समाप्त भी नहीं कर सकता कि किस प्रकार मनु० का यह श्लोक ऋग्वेदसंहिता के "ऋत च सत्यं च" का अर्थानुगामी है। कृपया मेरे ऊपर अर्थकी एँचाखैंची का दोष न लगावें क्योंकि यह अर्थ ज्यों का त्यों पूज्यपाद पण्डित श्रीभीमसेनशर्मा वेदव्याख्याता कलकत्ता यूनीवर्सिटी का उस समय का किया हुआ है जब उन्होंने 'ब्राह्मणसर्वस्व' मासिक पत्र निकालना प्रारम्भ किया था और जब वे यह नहीं जानते थे कि कोई महाशय हरिपद शास्त्री नामधारी सूक्ष्मजलतत्त्व को आदि सृष्टि न मानते हुए कालिदास के अदोष में दोष निकालकर द्रोषके भागी बनेंगे इस लिये हम १४ वर्ष पहले ही से अर्थ ऐसा करें कि कालिदासके सिर दोष न मढ़ा जा सके। यह अर्थ निरुक्तादिके सर्वथा अनुकूल है इस लिए अवश्य माननीय है। देखो ब्रा० सर्व० भाग २ मासाङ्क ५ (३१ सितम्बर सन् १९०३ ई०) पृष्ठ (२८८-९२)—(मन्त्र पहले लिख चुके हैं)—

अर्थः—(अभीद्धात्) उभयतः पूर्वोत्तरमिद्धात् प्रदीप्तात् सर्वथा प्रकाशमयात् (तपसः) सृष्टिरचनायै सर्गारम्भे प्रजापतिना कृतात् (अधि) उपरि पश्चात् (ऋतंचसत्यं चाजायत)। ऋतमिति निघण्टावुदकनामसु पठितम्। तदेव स्थूलायां कारणम्पृशब्दवाच्यं रयिशब्दवाच्यं च, सत्यं च प्राणपदवाच्यम्। (ततः) तदनन्तरं (रात्री) प्रकाशरहिता पृथिवी (अजायत) (ततः) तदनन्तरम् (अर्णवः) अर्णांस्युदकानि सूक्ष्माणि धूमाकाराणि विद्यन्तेऽस्मिंस्तादृशः (समुद्रः) अन्तरिक्षमजायत। समुद्र इत्यन्तरिक्षनामसु निघण्टौ पठितम्। (अर्णवात् समुद्रादधि) पश्चात् (संवत्सरः) प्रत्यक्षः सूर्यः (अजायत) प्रादुरभूत्। आधारानन्तरमाधेयप्राकट्य-

सम्भवात् । सति सूर्ये (विश्वस्य) सर्वस्य (मिषतः) निमेषादि-चेष्टायुक्तस्य चरस्य (वशी) वशे सर्वं यस्यास्ति स प्रजापतिः (अहोरात्राणि) सूर्यसाध्यमहोरात्रादिकालविभागं (विदधत्) विदधाति । एतदेव तृतीयमन्त्रेण विस्पष्टयति—(धाता) सर्वस्य धारको मायाधिष्ठानरूपः प्रजापतिः परमात्मा (सूर्याचन्द्रमसौ) (स्वः) सुखभोगप्रधानां (दिवं) स्वर्गलोकं (पृथिवीमथोऽन्तरिक्षं च यथापूर्वमकल्पयत्) कल्पयति । यथा पूर्वकल्पेषु सूर्यादिनामरूपाणि करोति तथैव पुनः पुनः प्रतिकल्पे कल्पनां प्रकटयति ॥

भाषार्थ—(अभीद्धात्तपसः) आगे पीछे दोनों ओर से प्रदीप्त निर्मल निर्दोष सर्वथा प्रकाशित तप से सृष्टि रचने के लिए प्रजापति ने किए तप के (अधि) पश्चात् (ऋतं च सत्यं चाजायत) स्थूल जलका कारण रयि वा अप् नामक मानस सत्य संकल्प ऋत, और स्थूल सूर्य वा अग्निका कारण प्राणपदवाच्य सत्य, ये दोनों ऋत और सत्य प्रकट हुए (ततो रात्र्यजायत) तदनन्तर रात्रिनाम प्रकाशरहित अधिष्ठान सहित पृथिव्यधिष्ठातृदेवता पृथिवी प्रकट हुई (ततः समुद्रो अर्णवः) तदनन्तर जलोंका सनातन स्थान [जिसमें नीलेपन रूपसे असंख्य जल रहताहै ऐसा] अन्तरिक्ष प्रकट हुआ, वेदके निघण्टुमें समुद्र नाम अन्तरिक्षका है (अर्णवात् समुद्रादधि संवत्सरः-अजायत) नीलिमा रूपसूक्ष्मजल सहित अन्तरिक्षके पश्चात् संवत्सरादि कालविभागका मूल होनेसे संवत्सरनामक प्रत्यक्ष सूर्य प्रकट हुआ क्योंकि आधाररूप अन्तरिक्ष के पश्चात् ही आधेय सूर्य का प्रकट होना सम्भव है और सूर्यके प्रकट होजाने पर (विश्वस्य मिषतो वशी अहोरात्राणि विदधत्) निमेषादिचेष्टायुक्त सब जगत् को वशमें रखने वाला प्रजापति सूर्यसे सिद्ध होने वाले दिन रात आदि काल विभागों को नियत करता बनाता है । इस उक्त अंशको तीसरे मन्त्रसे स्पष्ट करते हैं (धाता) सबका धारक अपना अधिष्ठान माया के रूप में प्रतीत होता हुआ प्रजापति परमेश्वर (सूर्याचन्द्रमसौ स्वर्दिवं च पृथिवीमथोन्तरिक्षं च यथापूर्वमकल्पयत्) सूर्य चन्द्रमा सुखभोग प्रधान स्वर्ग पृथिवी मर्त्यलोक और अन्तरिक्षलोक को पूर्वकल्पोंके तुल्य नाम रूपों वाले बनाता है । अर्थात् प्रत्येक कल्पोंमें सूर्यादि का नाम एक सा ही नियत करता है ॥

इस प्रकार मनु० को वेद से मिलाकर आप देख लीजिये कि सूक्ष्म से स्थूल और स्थूल से स्थूलतर और स्थूलतम ही सृष्टि हुई है । और स्थूल जलों की उत्पत्ति तो सृष्टि विस्तारका क्रमशः वर्णन करते हुए मनुजीने बहुत आगे जाकर (७५—७८ श्लोकमें) पञ्चभूतों की उत्पत्ति के साथ कही है; इस से जैसा ऊपर लिखा जा चुका है यहां अप शब्द से आदि में सूक्ष्म जलतत्त्व की सृष्टि मनु को इष्ट है, और कालिदास की

दृष्टि में जलवाची अप् शब्द ही आदि सृष्टिके नाम से पारिभाषिक शब्द सा बन गया है, अतएव अभिज्ञानशाकुन्तल में उन्होंने ऐसा लिखा।

इस लेख से पाठकोंको स्पष्ट विदित हो जायगा कि कालिदासने क्या समझ कर ऐसा लिखा और यह कि इस अंश में क्या कोई विचारशील पुरुष: उनसे भूल हो गई ऐसा कह सकता है?।

अन्त में विनय पूर्वक मैं उचित सम्मति देता हूं कि यदि किसी बात की स्वय सङ्गति न लगा सको वा ग्रन्थकार का यथार्थ आशय न समझ सको तो "भूल भूल" चिल्ला कर ऊंघ न जाओ किन्तु-" उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत"॥

विदुषां किङ्करः—श्री रघुवरमिट्ठूलालश्रीवास्तव्यः—
वेदान्ततीर्थः, साहित्योपाध्यायः।
बी० ए० क्लास, के० पी० कालेज—प्रयाग॥



गुलाब

Mr. Issae Watts कृत The rose की छाया पर।

कैसा सुन्दर मृदुल मनोहर, फूल गुलाब सुहाता है।
मधु माधव मासों का मानो, गौरव रूप लखाता है॥
पर वह कुसुम पत्र क्षणभर में, कुम्हिलाने लग जाता है।
एक दिवस के भीतर ही वह, मुरझा कर मर जाता है॥
तदपि गर्व करने का इसने, एक प्रबल गुण पाया है।
उपवन के भी किसी फूल ने, कभी न जिसे घटाया है॥
जाते सूख पुष्प दल इसके, और रंग उड़ जाता है।
तब भी नही समीर मानता, मधुर गंध फैलाता है॥
इसी भांति मानव यौवन, सुन्दरता भी नश्वर है।
यदपि गुलाब फूलता सच कुछ, उसका रूप विकस्वर है॥
पर सब चिन्ता यत्न जीव का, निष्फल ही हो जाता है।
अहा! अचानक अजय काल जब उसे पकड़ ले जाता है॥
तब मैं करूं घमंड कहो क्यों अपने रूप युवापन का।
मरना ओ मुरझाना है जब, अन्त अवस्था दोनों का॥
पर अपने शुभकर्मों की, एक अचल पताका गाढूंगा।
गुलाब सी जो खिली रहेगी, जब दुनियां से जाऊंगा॥

राजेन्द्रप्रकाश शुक्ल कन्हौली रियासत

साहित्य-चर्चा ।

महादेव गोविन्द रानाडे । यह तरुण भारतग्रन्थावलीकी तीसरी संख्या है इसका सम्पादन पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी ने किया है और पुस्तक का निर्माण कार्य पं० बनारसीदास चतुर्वेदी उपनाम "भारतीय" महाशय ने किया है। रानाडे की जीवनचरित्र सम्बन्धी और भी दो एक पुस्तकें हिन्दी भाषामें निकल चुकी हैं यद्यपि जीवन चरित्र जानने में सब का उपयोग एकसा ही होगा तथापि इस पुस्तक की सहायक सामग्री जिन २ भिन्न भाषाओं की पुस्तकों से लीगयी है उनकी सूची लम्बी है सुयोग्य लेखक ने अनेक पुस्तकों से सार लेकर उनका यथास्थान सन्निवेश किया है, इसमें रानाडे और उनकी द्वितीय पत्नी श्रीमती रमाबाई का चित्र भी है। आज कल के सुधारकों के विचार रानाडे के विचारों के प्रतिविम्ब मात्र हैं। रानाडे महाशय ने जैसी परिस्थिति में शिक्षा पाई थी और जिस प्रकार के वायु में उनको रहना पड़ा था वैसी अवस्था में समाज सुधार सम्बन्धी उनके विचार जो हुए वह अवश्यम्भावी थे। भारत के प्राचीन आदर्श पुरुषों के जीवन चरित्रों से जो शिक्षा प्राप्त हो सकती है यद्यपि वह रानाडे के जीवनचरित्रसे नहीं प्राप्त हो सकती तथापि रानाडे के कितने ही स्पृहणीय गुणों का आदर किया जा सकता है और उन से शिक्षा भी ली जासकती है इस दृष्टि से यह पुस्तक संग्रहणीय है। पुस्तकान्त में रानाडे के कुछ वचनों का संग्रह किया गया है। पर टाइटिल के प्रथम और अन्तिम पृष्ठ में जो टेनिसन और कार्लायल के वचन उद्धृत किये गये हैं हमारी समझ में इन की कोई आवश्यकता नहीं थी हिन्दी पाठकों को यह असमयकी अंगरेजी-भाषा-प्रियता विरक्त करेगी पुस्तकका मू० ॥≈) है। और मिलनेका पता दीक्षित और द्विवेदी दारागंज प्रयाग है।

मर्यादा । (स्वराज्य संख्या) प्रयाग से निकलने वाली मर्यादा मासिक पत्रिका की पिछली संख्या स्वराज्य संख्या थी इस विशेष संख्या का मूल्य १) रक्खा गया है इस में श्रीमती एनीबेसेंट, माननीय पं० बालगंगाधर तिलक, श्रीयुत पी० के० तैलंग एम० ए० सम्पादक न्यू इण्डिया, मि० जी० एस० अरण्डेल, श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर बी० ए० एल० एल० बी० सम्पादक मराठा तथा केसरी आदि प्रसिद्ध २ स्वराज्यान्दोलनकारी नेताओं के लेख हैं स्वराज्य की आवश्यकता द्योतक कितनी ही कवितायें भी इस में हैं। इस स्वराज्य संख्याको पढ़ लेने से स्वराज्य की उपयोगिता और आवश्यकता हृदयङ्गम हो जाती है अवश्य ही इस में

जिन २ स्वराज्यवादी नेताओं के लेख छपे हैं वे अधिकतर अनुवादित होंगे क्योंकि उनमें से कितने ही सज्जन हिन्दी भाषासे परिचित नही हैं तथापि अनुवादित लेख पढ़ने पर भी उनकी स्वराज्यावश्यकतापर दी हुई व्यापक युक्तियां हृदयतलमें प्रविष्ट हो जाती हैं। हम मर्यादा के सञ्चालकों को ऐसा उत्तम विशेषांक निकालने पर वधाई देते हैं। मर्यादा की आगामी संख्या निष्क्रिय प्रतिरोध पर निकलेगी। मर्यादा का वार्षिक मू० ३॥) है और मिलने का पता-मैनेजर मर्यादा अभ्युदय प्रेस प्रयाग है।

मारवाड़ी-घी नाटक। लेखक एक जाति हितैषी मारवाड़ी, प्रकाशक पं० चुन्नीलाल शर्मा नं० १६ श्यामाबाई गली बड़ा बाजार कलकत्ता। मू० ।)

अभी हालमें जो कलकत्ते में चर्बी मिश्रित घी के सम्बन्ध में आन्दोलन हुआ था वही इसमें नाटक रूप से लिखा गया है। नाटककी भाषा मारवाड़ी और हिन्दी यथा स्थान दोनों रक्खी गई हैं यत्र तत्र गाने भी दिये गये हैं। पुस्तक साधारणतया उपदेश जनक है और पापियोंके घृणित कृत्योंको अच्छी तरह दिखाती है। मूल्य कुछ अधिक है।

खाद और खेत। यह एक छोटीसी ३०-३२ पृष्ठकी पुस्तक है लाला हरनारायण बाथम एम० ए० लेकचरार एग्रीकलचरल कालेज कानपुरने इसे लिखा है। पहिले तो भिन्न २ तरह की भूमिके नाम लक्षण और गुण वर्णित किये गये हैं और अन्त में अनेक प्रकार की खादों का और उनके उपयोग का वर्णन किया गया है, जमीन और खाद के सम्बन्ध मे मोटी २ बातों का ज्ञान इससे हो सकता है। खाद के सम्बन्ध में मनुष्यकी विष्ठाका महत्त्व दिखलाते हुए लेखकने २१ वें पृष्ठमें लिखा है कि "दुर्भाग्य वश हमारे भारतवर्ष में छूत छातका ढकोसला बहुत प्रवल है और झूंठे धर्म के ढोंग ने लोगों की आंखों पर परदा डाल रक्खा है लेकिन अब सोनेका समय नही हमको जानना चाहिये कि धर्मका सम्बन्ध आत्मासे है किसी चीज़ के छूने से धर्म नष्ट नहीं होता"। लेखक महाशय ने धर्मका यह विचित्र लक्षण किया है कि शरीर से धर्मका कोई सम्बन्ध नहीं अच्छा होता कि इसके लिये कोई श्रुति स्मृतिका प्रमाणभी लेखक महाशय लिख देते। हमारी राय में ऐसी बातों के लिखने की आवश्यकता नही थी, पुस्तक ≠) आने के टिकट भेजने से मनेजर मर्चेंट प्रेस कानपुर से प्राप्त हो सकती है।

कर्मयोगी शिल्पाचार्य मि० एडीसन। यह बड़े आकार में ६६ पृष्ठों की एक पुस्तक है जिसे जांगिड़ा मैथिल महा सभा देहलीने प्रकाशित किया हैं इसके लेखक महाशय जयकृष्ण जी हैं जो विद्वान् ब्राह्मणोंकी निन्दा करके भी अपनेको शर्मा लिखते हैं। इस पुस्तक की भूमिका मे लेखक ने अभी तक प्रकाशित हुई लाखों पुस्तकों की और उनके लेखकों की असारता और अदूरदर्शिता इस कारण बतलाई है कि अभी तक उनने विज्ञानकी पुस्तकें प्रकाशित नहीं कीं और इसीलिये आपने प्रकारा-

स्तर से अपना महत्व भी इस पुस्तक के लिखने से बताया है संस्कृतके विद्वानों की निन्दा लेखक इस लिये करते हैं कि उनसे एक दीवासलाई भी नहीं बनी, मालूम पड़ता है लेखकको शिल्पकार्य ही ध्येय ज्ञेय और मुक्तिकी तरह अभिलषित है। जयकृष्णजी को यह ध्यान रखना चाहिये कि भारतवर्ष अध्यात्मप्रधान देश है यहां सदा से ही आध्यात्मिक विद्याका आदर रहा है। यहां के ऋषि मुनियोंने उन संहारकारी अस्त्रों का आविष्कार नहीं किया जिनके द्वारा आज यूरोप महायुद्ध के दावानलसे भस्म हो रहा है, इन भौतिक आविष्कारों से सच्चा सुख या शान्ति नहीं प्राप्त हो सकती। जर्मन इंगलैण्ड आदि देशों की जो उन्नति हो रही है वह इस महायुद्ध से प्रत्यक्ष है। शिल्पविद्या पहिलेसे ही असुरोंके अधिकारमें रही है मयदानवकी कथा महाभारत में वर्णित है, शिल्पशास्त्रकी उत्कृष्टताका काम पड़ने पर उसीका आह्वान किया गया था यदि लेखक शिल्पविद्या को ब्राह्मण का कार्य समझते हैं तो वे ही एडीसन बनने की क्यों नहीं चेष्टा करते। क्योंकि ब्राह्मणत्व तो उन्हें भी प्रिय है। अस्तु प्रस्तुत पुस्तक में एडीसन का जीवनचरित्र और उसके अनेक आविष्कारों का वर्णन है भाषा में कहीं २ अशुद्धियां हैं सौजन्यता, और कौशलहस्त, जैसे व्याकरण-विरुद्ध शब्दोंका भी यत्रतत्र प्रयोग है पर उससे जीवनचरित्र के आशय समझने में कोई भ्रम नहीं पड़ता, पुस्तक का मूल्य ।≠) है और मिलने का पता उपर्युक्त।

न्याय याचना। देश हितकारिणी देवीशाला शिकारपुर [सिन्ध] की मुख्याध्यापिका श्रीमती दमयन्ती देवी का यह वह व्याख्यान है जिसे उन्हों ने चतुर्थ सिन्धप्रान्तीय समाज सुधार सम्मेलन के समय पर कहा था, उस समय समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था कि इन श्रीमती के व्याख्यान में समाज के वृद्ध मनुष्यों पर वाक्यवाण बरसाये गये थे अतः सभा के कितने ही सज्जन चञ्चल हो उठे और उन्हों ने व्याख्यान बन्द करने का आग्रह किया सभा भंग हो गई, इत्यादि अब दमयन्ती देवी ने अपने उस व्याख्यान को पुस्तकाकार प्रकाशित किया है और पुस्तकान्त में प्रार्थना की है कि सम्पादक लोग इस विवाद की आलोचना कर निष्पक्ष न्याय करें। उभयपक्ष की बातें सुने विना कोई निर्णय करना कठिन है इस व्याख्यान में जो बातें कही गई हैं उनमें सर्वांश से यद्यपि हम सहमत नहीं तथापि यह नहीं मालूम होता कि इस व्याख्यान से समाज के पुराने वृद्धों का कोई अपमान होता हो जो हो पुस्तक में पर्दा मिटाने और स्त्रियों को शिक्षित करने का आग्रह किया गया है। ~) के टिकट भेजने पर यह पुस्तक उपर्युक्त पते पर मिल सकती है।

रिपोर्ट। यह आरा नागरी प्रचारिणी सभा की १९७०,७१ तथा ७२ सं० की रिपोर्ट है इसमें सभाके पिछले वर्षों का कार्य, आय व्यय, सभासदोंकी नामावली

और हिन्दी के दैनिक,साप्ताहिक, और मासिक पत्रों की संक्षिप्त आलोचना है। सभा के द्वारा हिन्दीप्रचार का अच्छा कार्य हो रहा है यह देखकर हमें सन्तोष है मिलने का पता-मन्त्री-नागरी प्रचारिणी सभा आरा।

ईसाई और उनका खुदा। इसके लेखक व प्रकाशक राजनारायण भटनागर किरतपुर जि० बिजनौर निवासी हैं पुस्तक की पृष्ठ सख्या आठ और मू०)। है ईसाइयों के धर्मग्रन्थों के वाक्य उद्धृत कर के लेखक महोदयने उन पर शंकायें की हैं और उनका निर्मूलत्व सिद्ध किया है।

मैथिलहित। इसको पं० महेन्द्रनारायण झा मधेपुरा भागलपुर ने लिखा और प्रकाशित किया हैं इस १४ पृष्ठ.की पुस्तक में यह सिद्ध करने की चेष्टा की गयी है कि आगरा मथुरा आदि जिलों में व्रजस्थ मैथिल शब्द से कहे जाने वाले शिल्पकर मैथिल ही हैं यह विषय मैथिल समाजाधीन है और इसका निर्णय वही समाज कर सकता है।



विविध विषय।

हिन्दूविश्वविद्यालय में धर्मशिक्षा।

जिस समय माननीय प० मदनमोहन मालवीय ने हिन्दूविश्वविद्यालय के स्थापित होने का प्रस्ताव किया था उस समय अन्य विश्वविद्यालयों से इसमे यही विशेषता बतलाई गई थी कि इसमें धर्मशिक्षा दी जायगी और इसमें पढ़ कर निकलने वाले युवक हिन्दूधर्म के प्रेमी होंगे, पर यह कौन जानता था कि धर्मशिक्षा मे भी विवाद किया जायगा और सम्प्रदायी लोग अपने २ एकदेशी धर्मों की भी शिक्षा देनेका अडंगा लगायेंगे, वही बात सामने आई है। अभी विश्वविद्यालय के कार्य को प्रारम्भ हुए तीन महीने भी नही हो पाये कि विरोधी लोगों ने अपनी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी है। ता० १८ अक्टूबर के आर्यमित्र में हिन्दूविश्वविद्यालय में पढ़ने वालेएक नाम छिपे छात्रने शिकायत छपाई है कि हिन्दूविश्वविद्यालय में जो धार्मिक शिक्षा दी जाती है वह पौराणिक है उससे छात्रों मे असन्तोष फैल गया है। आर्यमित्रके सम्पादक ने भी इस पर एक टिप्पणी चढ़ाई है। इन अदूरदर्शियोको यह नही सूझता कि यह हिन्दूविश्वविद्यालय है न कि दयानन्द या जैन विश्वविद्यालय। यदि इसी जगह हिन्दूधर्म की शिक्षा न दी जायगी तो कहां दी जायगी। यह ठीक है कि, सिक्ख, जैन और दयानन्दियोंने भी इस विश्वविद्यालय को धन सम्बन्धी कुछ सहायता दी है-पर यह इतनी अल्प है कि उसके कारण इन सम्प्रदायों की शिक्षा का

प्रबन्ध नहीं हो सकता, मुसलमानों और खास समाजियों की संस्थाओं की भी सहायता सनातनधर्मियोंने की है और करते हैं पर इतने से सामाजिक विद्यालयोंमें सनातनधर्मकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं करता। क्या आर्यमित्र चाहता है कि हिन्दूविश्वविद्यालय में अवतारादि की वेदोक्त धर्मशिक्षाको उड़ाकर सत्यार्थप्रकाशकी गन्दी नियोग जैसी व्यभिचार प्रचारक बातें हिन्दू विद्यार्थियों के सुकुमार मस्तिष्क में प्रविष्ट कराई जावें? यदि उसकी यही अभिलाषा हैं तो यह उसको मुबारिक हो, हिन्दूविश्वविद्यालय के सञ्चालकोंको इन गीदड़ भभकियों पर ध्यान न देना चाहिये।

समाजियों का वहिष्कार।

सुना गया है कि बलरामपुर के ब्राह्मणों ने ता० ३० सितम्बरको एक सभा करके प्रस्ताव स्वीकृत किया है कि 'समाजियों के साथ खान पान का व्यवहार बन्द कर दिया जाय,। आगरे का आर्यमित्र इस पर चिढ़ गया है और बलरामपुर के महाराज तथा वहां के ब्राह्मणों को कोसने लगा है। हमारी समझ में आर्यमित्र का यह चिढ़ना व्यर्थ है। क्योंकि वहां के सनातनधर्मियों ने धर्म हानि समझ कर ही समाजियों का वहिष्कार किया है। प्राचीन काल के भारतवासियों ने धर्म के लिये अपना सर्वस्व तक त्याग दिया था क्या उन्हीं की सन्तानों में अब यह भी दम नहीं कि धर्म की रक्षा के लिये समाजियों का भी बहिष्कार कर सकें। हां यह बात अवश्य है कि इस कार्य में द्वेष की तह न होनी चाहिये, समाजियों को प्रेम से समझा देना चाहिये कि हम लोग धर्मरक्षार्थ ही आपके साथ खान पानादि का त्याग करते हैं, इस तरह विरोध भी न होगा और काम भी हो जायगा।

पं० अखिलानन्द का समाजपरित्याग।

सनातनधर्मियों के लिये यह हर्ष समाचार है कि प्रसिद्ध पं० कविरत्न अखिलानन्द शर्माने अब आर्यसमाजका सर्वथा परित्याग कर दिया है वर्णव्यवस्था आदि कई विषयोंमें आप पहिले भी समाजके विरुद्ध थे पर अब विचार करने पर आपको आर्यसमाज के सभी सिद्धान्त अवैदिक और मन माने प्रतीत हुए हैं, आपका कहना है कि ज्यों ज्यों मैंने शास्त्रों का आलोचन किया त्यों त्यों मुझे आर्यसमाज के बनावटी और शास्त्र विरुद्ध सिद्धान्तों का अवैदिकत्व प्रतीत होता गया। अब से पहिले भी पं० आत्मारामजी पंजाबी, पं० भवानीप्रसाद वाजपेयी और पं० ओंकारदत्तशर्मा आदि विद्वान् आर्यसमाजके उपदेशक रह कर उस का त्याग कर चुके हैं। आर्यसमाज में जो विद्वान् हैं वे रह नहीं सकते और जो अभी पड़े हैं वे किसी लोभ वश या जीविका के अभाव से हैं। आर्यसमाज के कई उपदेशक एकान्त में बात होने पर उसका अवैदिकत्व स्वीकार कर लेते हैं पर अभी उनमें यह साहस नहीं कि वे उसे प्रकट रूप से

कहें । अभी हाल में पं० अखिलानन्द जी ने महोवा और चन्दौसीमें आर्यसमाजी उपदेशकों को शास्त्रार्थ में पराजित किया है, इस पर समाजी पत्र सद्धर्मप्रचारक पं० अखिलानन्दकी बुराई करने लगा है । महोवा के शास्त्रार्थ में पं० अखिलानन्द को ५००) रु० की थैली मिलने वाली बात सद्धर्मप्रचारक की मिथ्या हैं । सनातनधर्म सभाओं को उचित है कि सनातनधर्म सभाओं के वार्षिकोत्सवों और शास्त्रार्थके अवसरों पर पं० जी को बुलावें ।

वेदप्रकाश का स्वराज्यविरोध ।

एंग्लो इण्डियन पत्रोंकी तरह वेदप्रकाश भी स्वराज्यान्दोलन का वडा विरोधी है, श्रीमती एनीबेसेंट आदिके छूटनेसे शायद उसे बड़ा दुःख हुआ होगा, अब अन्य नजर बन्दों के छोडने के सम्बन्धमें भारत मे सभायें हो रही हैं और यह अत्यन्त आवश्यक है कि सभी छोड दिये जावें, सुना है कि ला० लाजपतराय का भारत रक्षा कानूनके अनुसार भारतवर्षमें आना रोक दिया गया है, देखें मेरठी वेदप्रकाश इसपर क्या कहता है।

वेदप्रकाश की अश्रद्धा ।

मेरठी वेदप्रकाश ने अपनी नवीन संख्या में माननीय पं० भीमसेन जी के विरुद्धमें लिखी हुई किसी समाजी की पुस्तक की समालोचना करते हुए लिखा है कि "इस पुस्तक के पढ़नेसे हमारी रही सही श्रद्धा भी हटगई, सो छुट्टनलालकी श्रद्धा उन्हींको मुबारिक रहे । पं० जी को आप की श्रद्धाकी आवश्यकता नहीं, जिसकी बनाई हुई पुस्तक देख आप प्रसन्न हो रहे हैं उसीकी आपके बड़े भाई के सम्बन्ध में कही बातें यदि प्रकट की जांय तो आपके यहां हाहाकार मच जावे । स्वामी दयानन्द के कुटिल व्यवहारोंको वही जानते हैं जो उनके सहवासी थे, उस समय आप पालनेमे पड़े हुए (लालांपानिमिवाङ्गुष्ठे) मे रत होंगे आप को वह हाल क्या मालूम !।

आपका एक परिचित,



समाचारावली ।

सनातनधर्म बाल सभा चन्दौसी का द्वितीय वार्षिकोत्सव ।

सनातनधर्म बाल सभा चन्दौसी ज़िला मुरादाबाद का दूसरा वार्षिक महोत्सव बड़ी धूमधाम और सजधज से आरम्भ हुआ । ४ अक्टूबर १९१७ ई० को प्रातः गणेश पूजन हवन शान्ति पाठादि होकर ३॥ वजे से वेद भगवान् की सवारी के साथ में नगरकीर्तन था जिसमें सुप्रसिद्ध फगवाड़े की स०ध० भजन मण्डली और अनोखे-

लाल भजनोपदेशक तथा स्थानीय पं० वासुदेव शर्मा तथा बाबा सीताराम जी अपने अपने सुललित भजनों द्वारा ६॥ बजे तक बड़ी धूम धाम से प्रचार करते रहे । ५अक्टूबर को २ बजेसे सुविशाल सजे हुए मण्डप में उत्सव आरम्भ हुआ मंगलाचरण के अनन्तर पं० राजनारायण षट् शास्त्री ने उस पर्चे का अति उत्तम रीति से उत्तर दिया जो कि ता० ४ अक्टूबर को नगरकीर्तनके समय हमारे समाजी भाइयोंने उत्सव में बाधा करने को बांटा था फिर पण्डित कालूराम शास्त्री जी ने सनातनधर्म के महत्त्व पर प्रभावशाली व्याख्यान दिया तत्पश्चात् रात्रिके समय पण्डित अखिलानन्द कविरत्न जी (जिन्होंने कि हालही में दयानन्दी मतको वमन किया है) का वर्ण व्यवस्था पर बड़ा रोचक भेद भरा व्याख्यान हुआ फिर पं० रामचन्द्र नाटकीय भजनोपदेशक ने उत्तम २ भजनों का गान किया । ६ अक्टूबर को प्रातः ८॥ बजे से ११॥ तक समाजियों से मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ हुआ सभा की ओर से पं राजनारायण षट् शास्त्री जी थे, और उनकी तरफसे महाशय शिवशर्मा जी थे । शिवशर्मा जी ने प्रश्न किया कि परमेश्वर निराकार है उसकी मूर्ति नहीं बननी चाहिये उत्तर में पं० राजनारायण जीने वेदशास्त्रों के प्रमाण दिये, यथा "द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवा मूर्त्तं ॥ बृहदारण्यक और शतपथ ब्राह्मण में भी संन्यासी को निराकार और साधारण मनुष्यों को साकार पूजना लिखा है इसी लिये भगवान् निराकार भी है और साकार भी है अर्थात् मूर्त्ति बना कर भी पूजन करना शास्त्र वेदानुकूल ही है अथर्व. वेद प्रथम काण्ड अनुवाक १२ मंत्र १४ " नमस्ते अस्तु अश्मने " में अर्थात् पाषाण रूप भगवान्को नमस्कार किया है फिर देखिये आर्याभिविनयमें परमात्माको सोमरस पिलाया है तो कहिये आप का निराकार भगवान् साकार सोमरस किस रीति से पीता है इसे सुन,समाजियोंके उपदेशक शिवशर्माजी चकराए और लगे तुकबन्दी इधर उधरकी गढ़ने यहां तक कि गुरुकुलके मुख पत्र सद्धर्मप्रचारक व श्रुतियोंको लैलाम-जनू की तरह बता गए उपस्थित सज्जन आर्यसमाजकी पोल जान गये और समझ गये कि भगवान् दोनों रूपधारी हैं । मध्यान्होत्तर २॥ बजे से पं० कालूराम शास्त्री जी का श्राद्ध विषय पर और पं० अखिलानन्दजीका वर्णव्यवस्था पर अतिसार गर्भित भाषण हुए पुनःरात्रि को भजन गायन के पश्चात् पं० राजनारायणजी ने वेदशास्त्र पुराणादिके प्रमाणों द्वारा अवतार होना सिद्ध किया जिससे समाजियों के दिल दहल गए और कुछ २ नेत्र खुलने लगे । ता० ७ अक्टूबर को प्रातः ६ बजेसे १२ बजे तक फिर वर्ण व्यवस्था पर शास्त्रार्थ समाजियोंसे ही हुआ, सभा की ओर से पं० अखिलानन्द जी ने प्रश्न किया कि आप वर्ण परिवर्त्तन किस वेद शास्त्र उपनिषद् अथवा स्मृतिसे मानते हैं प्रमाण दीजिये और सत्यार्थप्रकाश में जो तीन जगह विरोध (१) जाति भेद ईश्वर

क्त है (२) गुण कर्म से है (३) गुण कर्म स्वभाव से है, सो इनमें कौन सा ठीक है प्रमाण सहित बताइए वा तीनोंही मन गढ़न्त हैं और शूद्रोंको जो गुरुकुल आदि स्थानों में यज्ञोपवीत दिये जाते हैं यह किस प्रमाण द्वारा होता है बसन्तलाल शर्मा जी ने इनका कुछ उत्तर न दे इधर उधर की सुनानेमें समय व्यतीत किया और बोले कि यज्ञोपवीत शूद्रों को नहीं देना चाहिये और व्यास धीवर से पैदा थे इस लिये वर्ण-व्यवस्था गुण कर्म स्वभावसे माननी चाहिये बस फिर सभापतिने समाधानको समय नहीं दिया, परन्तु रात्रिको पं० अखिलानन्दजीने अपने व्याख्यानमें महाभारतसे साफ२ सुना दिया कि व्यास भगवान् की माता धीवरी नहीं थी यह समाजियोंका बिलकुल सफेद झूठ है उनकी माता राजा उपरिचर वसु की कन्या थी जिसका जी चाहे देखले जिससे पबलिक पर समाजकी रही सही भी कलई खुल गई। मध्यान्होत्तर पं० राजनारायण जी पं० अंगनलाल शास्त्री तथा पं० बाबूराम शर्माके बड़े २ रोचक व्याख्यान होने पश्चात् रात्रि समय पं० कालूराम शास्त्रीका पुराणों प्राचीनता पर और पं० अखिलानन्द जी का वर्ण-व्यवस्था पर बड़े मार्केके व्याख्यान हुए फिर श्रीमहा-राजाधिराज जार्ज पंचम जी महाराज की संग्राम विजय की सर्व साधारण द्वारा प्रार्थना की गई और अन्त में पं० राधेश्याम कीर्तन कलानिधि कविरत्न जी का गायन होकर आनन्द उत्सव समाप्त किया गया ता० ६ अक्टूबर को बजाय ८, अक्टूबर के अति मनोहर महाराजा परीक्षित का नाटक बालकों द्वारा दिखाया गया जिससे सर्व-साधारण बहुत ही प्रसन्न हुए।

निवेदक—निरञ्जनप्रसाद गुप्त।

घोषणा-पत्रम्।

सर्व साधारण को विदित हो कि 'नवीन आर्यसमाज, स्वामीदयानन्द तथा वेदके प्रतिकूल है। अनेक यत्न किये गये परन्तु न समाज का प्रवाह रुका और न सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थ शोधे गये इस त्रुटिको पूरी करनेके लिये मैंने सन् १६०२ ई० से आदि आर्यसमाज की सृष्टि की है और "आदिसत्यार्थप्रकाश, लिखा है जिससे वैदिकधर्म का पौधा सूखने न पावे और नवीन आर्यसमाज वैदिक पथ पर आजावे। जिसको इस बात का दावा हो कि सत्यार्थप्रकाशादि ग्रंथ वेद प्रतिकूल नहीं हैं वह हमसे (बहस-मुबाहिसा) शास्त्रार्थ करलेवे। हम सदा तैयार रहते हैं "सत्यमेव जयति नानृतम्,, परन्तु जब तक मेरी बातों का उत्तर न दिया जावेगा तब तक अन्य विषय ग्रहण न करूंगा।

दयानन्द सरस्वती संस्थापक आदि आर्यसमाज
सद्धर्मप्रचारक पुस्तकालय दीक्षितपुरा-(जबलपुर सी. पी.)

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS—ETAWAH.

ईश्वर-प्रार्थना ।

इस में ईश्वर प्रार्थना का अर्थ तत्व शक्ति प्रार्थना रूप प्रत्येक जन, धर्म, राजक, रुग्नदशा, आधिव्याधि, जातिरक्षा, उत्पातशान्ति, आत्यादर्शस्थिति, वा संसारोन्नतिके लिये, आवश्यकता शास्त्र प्रमाण वा युक्ति से सिद्धकर धर्म सत्संग मृत्युदानके प्रस्ताव श्लोकों में पूर्णतया दे त्रिकाल संध्या देवर्षि पितृतर्पण वैश्वदेवं चर्पटमञ्जरी हनुमानचालीसा पुरुषसूक्तादि मुद्रित कर हिन्दी वालों के सुभीते के लिये प्रभात प्रार्थना के लिये हिन्दीमें भी पूर्णतया प्रार्थना कर श्रीकृष्णारति वा संकीर्ण श्लोक रत्न भी यावद् भारत को लक्ष्य कर नास्तिक दिग्विजय के लिये देवगुरु को सनातनधर्म दिग्विजय के लिये संसार की प्रत्येक जाति वा संसार मात्र को चैलेञ्ज देने वाले, सनातनधर्म प्रस्तावों में यावद् भारतमें प्रथम स्थितिके लिये रजत पदक वा प्रशंसापत्र, ईश्वरसत्ता मूर्त्तिपूजा कर्मकाण्ड वा वेदादि शास्त्र सर्वशक्तिमत्ता सत्यसिद्धि के लिये सुवर्णपदक वा प्रशंसापत्र के पात्र दीनानाथ शास्त्री जी ने प्रदान किये हैं। मूल्य केवल ≠) सैकड़ा १०) रु० ईश्वर प्रार्थना के एक एक विषयके लिये दो आने मूल्य न्योछावर पर इस का मूल्य कर्त्ता ने इस लिये इतना कम रक्खा है कि प्रत्येक ईश्वर वादी इस से लाभ उठा सके और फिर ईश्वर भजन से भारत वा संसार महक कर हरा भरा हो जावे इस में हिन्दी वा अंगरेजी में नास्तिक गुरु के चैलेञ्ज का जवाब भी दिया है। निम्न पुस्तक भी इन्हीं शास्त्री जी ने रची है ईश्वरसत्ता ।) महर्षिवाक्यसंग्रह ≠) दीनानाथ वंशावली ≠) जीवन)॥। गोरक्षाश्रितं भारतम् ≠)॥। शुरूमें संस्कृत पढ़ने वालों के लिये प्रथमोद्घाटनम् ≢) द्वितीयोद्घाटनम् ।) तृतीयोद्घाटनम् विशेष संस्कृतज्ञाताओंके लिये प्रबन्ध रचनामार्ग ।≠) पता—

कृष्णादेवी महेशकुमार वा श्री शङ्कराचार्य शर्म्मा

सोडी मुहल्ला फिरोजपुर नगर (पञ्जाब)

सुन्दर मोटे टाइप की पढ़ने योग्य पुस्तकें ।

प्रेमसागर १॥-) अमृतसागर २॥) शीघ्रबोध ।≠) विष्णुसहस्रनाम ≢) शकुनविचार ≠) गोपालसहस्रनाम ≢) भजनरामायण -।) इन्द्रजाल १॥) भजन महाभारत ।≠) हनुमान चालीसा)।।। पत्रा पचहत्तर की साल का ≠)॥ विवाहपद्धति ॥) आरतीसंग्रह)।।। पंचकशान्ति ।) ज्योतिषसर्वसंग्रह १) एकादशीसपिण्डीकर्म ।≠) मूलशान्ति ≠) हवनपद्धति ।) पार्वणश्राद्ध ≠) नान्दीमुखश्राद्ध ≠)॥ पंचनारायणी ।) पांडववनोवास ॥) रानीनिहालदे ।-) स्त्रीचरित्र ।) तोता कहानी ।-)॥ किस्सा नवरत्न ।≠) कंजूस की कमाई ।) नरसीमहताकी हुंडी ।-)॥ ज्ञान का भण्डार ≢) सीता चरित्र नाविल ६ भाग २) डाक महसूल सब से अलग। हमारे यहां सब तरह की पुस्तकें मिलती हैं। यज्ञोपवीत शुद्ध ।≢) कोड़ी।

पता:—भानुदत्त शर्म्मा सुन्दर कम्पनी—मेरठ

॥ श्रीः ॥

उपयोगी पुस्तकें

१ दयानन्दकी बुद्धि २ दयानन्द चरित्र ३ दयानन्द हृदय ४ धर्मसन्ताप ये पुस्तकें प्रत्येक ग्राहक और धर्मसभाओंको विना मूल्य दीजाती हैं।

चौदह रत्न या पञ्च रत्न

इस ग्रन्थमें सनातनधर्म के मनोहर व्याख्यान, पुराणों की कथायें, इतिहासों के चरित्र, गृहधर्मसंग्रह, कर्मकाण्ड, नित्यकर्मविधान, ज्योतिषशास्त्र, नाटक, तन्त्र और मन्त्रशास्त्रके अनेक विषयों का संग्रह है। मूल्य १)

दृष्टान्त समुच्चय—इस पुस्तकमें बहुत बढ़िया हास्य, करुणा और शान्त रस पूर्ण १६४ दृष्टान्त हैं। इनको पढ़कर मनुष्य उत्तम शिक्षा ग्रहण कर सकता है मूल्य १॥)

धर्म दिवाकर—यह पुस्तक स्वर्गीय विद्या वारिधि प० ज्वालाप्रसाद जी की रचित है। इसमें स्वामी तुलसीरामजी के भास्करप्रकाशका घोर रूपसे खण्डन किया है जिसको पढ़ने से दयानन्दियों की रही सही पोल भी खुल जाती है मू० ॥)

वाल्मीकीय रामायण।

भाषाटीका तथा अंग्रेज़ी अनुवाद सहित सातों कांड, यह ग्रन्थ बड़ा होने के कारण चार जिल्दोंमें पृथक् २ छपा है हिन्दी संस्कृत तथा अंग्रेज़ी जानने वालोंको इससे अवश्य लाभ उठाना चाहिये मूल्य केवल १०) रुपया।

वोपदेव की भागवत—भाषाटीका डाकव्यय सहित मूल्य १) रुपया

स्त्री देह तत्व—इसमें स्त्री चर्या, पर उत्तमोत्तम विषय लिखे हैं॥)

व्याकरण पत्रावली।

इसमें काशीकी प्रथम परीक्षा के संपूर्ण दस वरस के परचे और कुछ एक मध्यम परीक्षाके भी सम्मिलित हैं। प्रयोगों की सिद्धि बड़ी उत्तमताके साथ करी है। इसको कंठस्थ करने से विद्यार्थी व्याकरण के परचे में फेल नहीं हो सकता। मू० ॥)

लघुकौमुदी भाषा टीका १) रघुवंश बडा एकसर्गसे पांचसर्ग तक पर्याय और भाषाटीका सहित ;) मेघदूत पर्याय और भाषाटीका सहित ॥)

न्याय सिद्धान्त मुक्तावली—दिनकरी और रामरुद्री भाषाटीका० १।)

नोट—मुरादाबाद की छपी सब प्रकारकी पुस्तकें हमारे यहां मिलती हैं।

पता—

पं० लालमणि पूठिया उपदेशक

दिवदारपुरा—मुरादाबाद यू० पी०

श्री ब्राह्मण पुस्तकालय मेरठकी पुस्तकें।

वासिष्ठी धनुर्वेद संहिता भाषाटीका चित्रों सहित।

यह पुस्तक बड़े परिश्रम और द्रव्य व्यय करने पर मिली थी इसमें धनुष का प्रमाण और बनाना तीर चलाना बांण की कवायद शब्द भेदी आदि क्रिया है और २ लोगों ने भी पुस्तकें छापी हैं किसी ने तो वाराही संहिता के श्लोक लिख मारे हैं किसी किसी ने मनगढन्त भी की है। परन्तु हमें तो यह पुस्तक मूल मात्र राज्यस्थान से प्राप्त हुई थी दाम ॥≠)

श्राद्ध मण्डनम् भाषा टीका—दयानन्दियों के प्रश्नोत्तर सहित पुस्तक दोनों ही पक्ष वालों के देखने योग्य हैं ब्राह्मण का पेट लेटर वक्स आदि विषयों के उत्तर वेद स्मृति आदि और युक्तियों द्वारा दिये हैं दाम ॥)

साकार निन्दक मुख चपेटिका (मूर्त्तिपूजा) चारों वेदो से संग्रह कर ईश्व साकार दयानन्द जी के भाष्य से ही दिखलाया है प्रथम भाग ॥) दूसरा भाग ।≠)

षट् चक्र निरूपण—इस पुस्तक के अनुसार उपासना करने से कविता शक्ति लाभ, परकायप्रवेश आकाशगी, त्रैलोक्य दर्शी, पराये मन की बात जानना दाम ।-)

ब्राह्मण वर्ण व्यवस्था भाषा टीका—इस मे किन कर्मो के प्रभावों से मनुष्योंकी ब्राह्मण संज्ञा हो सकती है और कौनसे कर्म्मोंके द्वारा ब्राह्मण शूद्र से भी अधम श्रेणीमें मानने योग्य होजाता है यह इस पुस्तकमें पुष्ट प्रमाणों और अनेक उदाहरणों द्वारा दर्शाया है दाम ।)

योग सार—इससे समाधी लगाने क्रिया आसन और उनके गुण तथा चित्र निराहार रहना वनस्पति खाने से भूख न लगना प्राणायाम स्वरोदय आदि अनेक विषय हैं दाम ≡)

शिक्षा दर्पण—इस पुस्तक में लेखक ने प्रचलित सासारिक कुरीतियोंका खण्डन और परिमार्थक मार्गका यथोचित मण्डन किया है यह शिक्षाकी अपूर्व पुस्तक है दाम≠)

अनार्य्यसमाज रहस्य—नवीन आर्यमतके सिद्धान्तोंकी सैर कर लो वेदके मन्त्रों से जो दयानन्द जी ने तार रेल चलाना आदि लिखे थे वे मन्त्र इसीमें हैं दाम ≡)

देव सभा—अर्थात् दयानन्दियों की किसमत का फैसला दाम ≡)

सुधर्म्म मञ्जरी—नवीन पंथियोंका खण्डन अति उत्तमतासे लेखकने किया है ≠)

तीर्थ निरूपण (दयानन्द मत दूषण) तीर्थ विषय मण्डनकी अनूठी पुस्तक है दाम ≠)

कहानी टका कमानी—यह कहानी क्या हैं मानो रुपया पैदा करने का एक अमूल्य रत्न है दाम ।)

पुराणप्रतिपादनम्—पुराण किसने बनाये इस नामकी पुस्तकका उत्तर दाम -)

गोत्र प्रदीप—इसमे ब्राह्मणों के गोत्र, वेद, शाखा, सूत्र, प्रवर आदि लिखे हैं ब्राह्मण मात्र को इस की एक २ प्रति अपने पास रखनी चाहिये दाम -) एकआना

पुस्तकें मिलनेका पता—

प्रयागदत्त शर्म्मा श्रीब्राह्मण पुस्तकालय शहर मेरठ

देखिये ! यह हड्डीका ठाठर कैसा पुष्ट हो गया है ।





यह वही तस्वीर है जिसे गत ३४ वर्ष से सारे हिन्दुस्तान में डाः बर्म्मन की "फसली बुखार वो तिल्लीकी दवा," का विज्ञापन है ।

बाबू राजकिशोर नारायणसिंह जमीन्दार मु० कामगारपुर पो० जपला, जिला पलामूसे लिखते हैं-"मैं आपको धन्यवाद देता हूं कि हमारे भाई और एक पांच वर्षके भतीजेको तीन महीनेसे बुखार आताथा, कईएक हकीम, वैद्य और विज्ञापनी दवाएं इस्तेमाल की गईं; परन्तु आराम न हुआ, बलिक और बढ़ता ही गया । भाग्यवश अकोढीके पोष्टमाष्टर बाबू बालकेश्वर सिंहसे मुलाकात हुई और उनके द्वारा आपकी दवाओंकी तारीफ सुनी तब मैंने आपकी बुखारकी दवा और छै दवावाला नमूने का बक्स मंगाया । दो दो मौताजके पिलाते ही बुखारका आना बन्द हो गया । धन्य है आपकी दवा क्या अमूल्य रत्न है ।

मोल—बडी शीशी ॥।≠) छोटी शीशी ॥) डाः मः ।≠) और ।-)

दवा सब जगह बिकती है । नकली दवा से सावधान !

सेनीलाईन ।

यह खुशबूदार बिना स्वादकी दवा एक बूटी से बनी है । खून बन्द करने में यह एक ही अक्सीर दवा है । नाकसे खून जाता हो तो थोड़ा सा यह अर्क सूंघ लेनेसे उसी वक्त बन्द होता है ।

मसूड़ों से बहता हो तो बराबरका गर्म पानी इस अर्कमें मिलाकर रोज कुल्ली करो इससे मसूड़े सख्त होते हैं और खून बन्द हो जाता है ।

मुह के रस्ते या खखारके साथ खून जाता हो तो दवा के पीने से बन्द होता है ।

स्त्री के प्रदर रोग में या हमल की हालत में खून जाता हो तो जल्द दवा को इस्तेमाल करना चाहिये ।

खूनी बवासीर

में यह विशेष उपकारी है । इस रोग में गुदाकी सिरा सब कमजोर पड़ जाती है या उनमें जखम हो जाता है जिससे बराबर खून बहता है । इस दवा के खानेसे और पिचकारी से गुदा में देने से सिरा सब पुष्ट होती हैं और बहुतों का रोग जड से मिट जाता है ।

मोल १।) सवा रुपया शीशी, पिचकारी कांचकी ।) चार आने । पेकिंग व डाक महसूल ॥) आठ आने ।

डा: एस. के. बर्मन, ५ ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता । नं० ४१

सनातनधर्मसभाओं को सूचना।

कितनी ही सभाओं के निमन्त्रण पत्र मेरे पास उस समय आते हैं जब कि सभाओं के उत्सवमें तीन चार दिन रह जाते हैं। और उस समय भी मन्त्री महोदय यह आशा रखते हैं कि मैं उनके वार्षिकोत्सवमें सम्मिलित हो सकूं। कुछ दिन प्रथमसे ही सूचना विना मिले मेरा आना नहीं हो सकता इस लिये उक्त सज्जनों से निवेदन है कि वे महोदय कमसे कम १ मास पूर्व मुझे निमन्त्रणपत्र भेजा करें और यदि शास्त्रार्थ की आवश्यकता हो तो नियम हमारे यहां से मंगाकर उन नियमोंको आर्यसमाज से स्वीकृत कराकर मुझे शास्त्रार्थ की सूचना दें। आर्यसमाजी पण्डितों से शास्त्रार्थ करने को मैं सदा सन्नद्ध हूं।

ब्रह्मदेव मिश्र काव्यतीर्थ इटावा।

सनातनधर्म सभाओं को शुभ सूचना।

सनातनधर्म के विरुद्ध दूसरे मत वालों का उद्योग देखकर हमें यह ध्यान हुआ कि सनातनधर्म की कुछ सेवा यदि इस शरीर से हो जाय तो अहोभाग्य! इसी लिये हमने विचार किया है कि हम भ्रमण करें अतः सभाओं को सूचित किया जाता है कि जो हमें बुलाना चाहें उन पर मार्ग व्यय के अतिरिक्त हम भेंट आदि के लिये दवाव नहीं डालते जो उन की इच्छा और श्रद्धा हो दें तथा जो सभायें निर्धनावस्था में हैं उन से केवल मार्गव्यय ही लिया जायगा संस्कृत के अतिरिक्त हम अन्य मत वालों से फारसी व अंगरेजी में भी शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

श्रीनारायण भटनागर

पो० किरतपुर जि० बिजनौर।

सूचना।

ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम के लिये एक ऐसे अध्यापक की आवश्यकता है कि जो मध्यमा तक विद्यार्थियों को पढ़ाकर सनातन धर्म सम्बन्धी उपदेश भी दे सकता हो। यदि अंगरेजी की कुछ भी योग्यता होगी तो और भी अच्छा होगा। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा।

नारायणप्रसाद बी० ए० एल० एल० बी०

मन्त्री—सनातनधर्म सभा होशंगाबाद सी० पी०

(ध्यान देने योग्य समाचार)

श्री सनातनधर्मावलम्बियों की सेवामें सूचित किया जाता है कि मैं अध्यापन कार्य को छोड़ कर स्वतन्त्र हो गया हूं। अतः शास्त्रार्थ कराने सभामें उपदेश दिलाने एवं कथा श्रवण करने की आवश्यकता हो तो नीचे के पते से १५ दिन प्रथम सूचित करने पर आसकूंगा। हमने भ्रमण करना परमधर्म समझा है।

त्रिपाठी रामसेवक शास्त्री उपदेशक रत्न,

टामसनगंज-सीतापुर।

P. O. REGISTERED No. A. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांखपदेप्रवाच्यम्,
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रंभवे[illegible]शुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

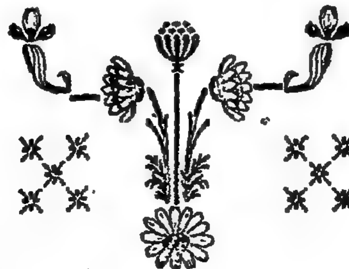
सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	तुला कार्तिक वि० १९७४ अक्तूबर १९१७	अङ्क १०

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)]   [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है।

(३) नमूने की एक प्रति ≥) का टिकट आने पर भेजी जाती है।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा। देर होनेपर ≥) प्रतिके हिसावसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है।

(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रवन्ध करना चाहिये।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा।

(९) विज्ञापन बंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नहीं बांटे जायंगे।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४	तुला कार्तिक सौर वि० १९७४ अक्तूबर १९१७	अङ्क १०

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

अद्धीदिन्द्रप्रस्थितेमाहवींषि चनो-
दधिष्वपचतोतसोमम् । प्रयस्वन्तःप्रतिह-
र्यामसित्वा सत्याःसन्तुयजमानस्यकामाः ॥

निरुक्तम्-अद्धीन्द्र ! प्रस्थितानीमानि हवींषि चनो दधिष्वचनइत्यन्ननाम पचतिर्नामीभूतः। निरु० ६ । १६ ॥

अ० अत्र-इदिति पादपूरणार्थः-हेइन्द्र ! त्वं प्रस्थिता प्रस्थितान्युपस्थापितानि सोमधानासवनीयपुरोडाशादीनि पचता-पक्वानीमानि हवींषि-अद्धि-भक्षय । हवीरूपं चनोऽन्नमुदरे दधिष्व प्रक्षिप । उतापि सोमं दधिष्व। प्रयस्वन्तोऽन्नवन्तो वयं हवींषि कामयमानं त्वा त्वां प्रतिहर्यामसि प्रतिहर्यामः कामयामहे—यजमानस्य कामाः सत्याः सन्त्वित्यभिप्रायेण त्वां कामयामहे । प्रस्थिता--इमा--पचता--इति शेश्छन्दसि बहुलमिति शेर्लोपः। हवींषि कामयमानमित्यध्याहारः । प्रतिहर्यामसीत्यत्र-इदन्तोमसिः-इति वयाकरणसूत्रेण मसो मसिरादेशः॥

भावार्थः—यद्यपि दैवतप्रतिमादिद्वारापि देवपूजा विधीयते, तथासति देवपूजनं बहुभिः प्रकारैः सम्भवतीति श्रुतिस्मृत्योरभिप्रायः स्पष्टः प्रतीयते । तथापि तेषु बहुषु देवपूजाप्रकारेषु वेदोक्तश्रौतयागानुष्ठानमेव देवपूजनस्योत्तमः प्रकारः । यथा वेदोक्तयागानुष्ठानेन सद्यस्तुष्टा देवा यजमानानां मनोरथान् पूरयन्ति तदभिलषितं फलं प्रयच्छन्ति । एवं देवप्रसादेन यजमानस्य कामाः सत्या भवन्ति न तथाऽन्येन देवपूजनप्रकारेण सद्यो देवास्तुष्यन्तीत्यनेन वेदवाक्येन बोधितम्। अस्मद्देशीया राजानः पुरा वेदोक्तयागान् विधिना श्रद्धया चानुष्ठितवन्तस्तस्मादेव निष्कण्टकं साम्राज्यरूपमभ्युदयसुखं चिरं भुक्तवन्तः । सम्प्रत्यपि भारते स्वराज्यं लब्धुकामा नेतारो गीतोपदेशम् [देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तुवः] अनुसृत्य यदि वेदोक्तयागानुष्ठानं कुर्युस्तदा तेषामपि यज-

मानानां कामाः सत्याएव भवन्तु । यजमानस्यैव कामाः सत्या भवन्ति । नत्वयजमानस्येति वेदाशयः ॥

भाषार्थः-हे (इन्द्र) देवराज इन्द्र ! (पचता प्रस्थिना-इमा हवींषि अद्धि) तुम इन पकाये तयार किये सोमरस, धाना और सवनीय पुरोडाशादि रूप हविषों को खाओ (चर्नो दधिष्व) तथा हविषरूप अन्नको अपने उदरमें ले जाओ (उतसोम्) और सोमरसको भी अपने उदरमें धारण करो (प्रयसन्तस्त्वा प्रतिहर्यामसि) पुष्कल अन्नको प्राप्त हुए हम लोग हे इन्द्र ! हविष् पुरोडाशादिकों की कामना रखते हुए तुम को इस अभिप्राय से चाहते हैं कि (सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः) यजमानकी कामनायें पूरी २ सत्य हो जावें अर्थात् यजमानको अभीष्ट राज्यैश्वर्यादि शुभफल निर्विघ्नता पूर्वक प्राप्त हो जावे ॥

भाषार्थः—यद्यपि देव प्रतिमादि द्वारा देवपूजा का विधान शास्त्रों में किया है, वैसा होने पर बहुत प्रकारों से देवपूजन हो सकता है ऐसा श्रुतिस्मृतियोंका स्पष्ट अभिप्राय सिद्ध होता है। तथापि देवपूजा के उन बहुत प्रकारोंमें से वेदोक्त श्रौतयज्ञोंका अनुष्ठान करना ही देवपूजन का सब से उत्तम प्रकार है। क्योंकि वेदोक्तयज्ञों के अनुष्ठान से जैसे शीघ्र देवता लोग संतुष्ट हो कर यजमानों के मनोरथोंको पूरा करते हैं अर्थात् उन २ का अभिलषित फल उनको देते हैं। इस प्रकार देवताओं के सन्तुष्ट होने से यजमान की कामनायें सत्य हो जाती हैं, देवपूजन के अन्य प्रकारसे देवता वैसे शीघ्र सन्तुष्ट नहीं होते जैसे यज्ञसे प्रसन्न होते हैं, यही अभिप्राय अद्धीदिन्द्र० वेदमन्त्र से दिखाया है। हमारे देश के प्राचीन राजा लोग वेदोक्तयज्ञों को विधि पूर्वक श्रद्धासे पहिले किया करते थे, इसीकारण निष्कण्टक साम्राज्यरूप अभ्युदय सुखको चिरकाल तक वे लोग भोगते रहे, अर्थात् लाखों वर्ष उन्हींका स्वतन्त्र राज्य रहा। यदि इस समय भी सुधारक नेता लोग भारतका स्वराज्य चाहते हैं तो भगवद्गीताके इस उपदेश [कि यज्ञ द्वारा मनुष्य लोग देवोंको सन्तुष्ट करें और देवता लोग वरदान द्वारा मनुष्यों की कामनाओं को पूरी करें] के अनुसार यदि वेदोक्तयज्ञोंको ठीक २ करें तो उन यजमान मनुष्योंकी कामनायें भी पूरी हों सकें। वेदका अभिप्राय यह है कि यज्ञ करने वाले देवोपासक मनुष्यकी कामना ही विशेष कर पूरी हो सकती हैं किन्तु यज्ञ न करने वाले की वैसी नहीं ॥

क्या अन्त्येष्टि कोई संस्कार है ?

आर्यसमाज और सनातधर्मी मनुष्यों में दो प्रकारका विवाद आर्यसमाजके जन्मकाल से ही उठा है, उनमें एक तो यह कि अवतार मूर्त्तिपूजा श्राद्धतर्पण जन्मसे वर्ण-

व्यवस्था तीर्थ गंगा स्नानादि पुण्य कामोंको आर्यसमाजियों ने वेद विरुद्ध कहना लिखना जब से प्रारम्भ किया तभी से सनातनधर्मियों में खलबली मचगयी थी। तदनुसार सनातनधर्मी विद्वानोंने ऐसे अत्यन्त अकाट्य प्रबलयुक्ति प्रमाणों द्वारा अवतार मूर्त्ति पूजादि विषयों का समाधान किया जिसका उत्तम प्रभाव पक्षपात हीन मध्यस्थ लोगों पर अच्छा सम्यक् पड़ा जिससे सनातनधर्म की सत्यता और समाजी मतकी पोल अधिकांश सिद्ध हो गयी। इसी कारण आ० समाजी लोग पहिले कैसा खण्डन वा विवाद उक्त विषयों में अब नहीं उठाते साथ ही आ० समाजी मतकी सैकड़ों बड़ी २ अशुद्धियां प्रकाशित हो गयीं, जैसे मुंशी जगन्नाथदास मुरादाबाद ने यजुर्वेदभाष्यसमीक्षा मे दयानन्दी वेदभाष्यकी सैकड़ों भद्दी २ बाते प्रकाशित कर दी हैं जिनका उत्तर किसी समाजी से आजतक भी नहीं दिया जा सका, सत्यार्थप्रकाश समीक्षादि पुस्तकों मे मुंशी जगन्नाथदास ने सत्यार्थप्रकाशादि की सम्यक् पोल खोल दी है उसका भी समाधान आ० समाजियों से नही हो सका॥

द्वितीय प्रकार का विवाद सनातनधर्मी विद्वानों ने यह उठाया था कि स्वा०दयानन्द जीका यह दावा करना कि हमारा कथन वा मत वेदानुकूल हैं, अर्थात् वेद ही हमारा मत है। सनातनी विद्वानों का कहना है कि स्वा० दयानन्द का यह दावा कि वेद ही हमारा मत है, वास्तव में सर्वथा ही मिथ्या है-अर्थात् आ० समाज में जो कुछ कर्त्तव्य पञ्चयज्ञविधि वा संस्कारविधि आदि पुस्तकों मे बताया है उसका अधिक भाग वेदविरुद्ध है। संस्कारविधि के वेद विरुद्ध होने मे जो अनेक बातें ब्रा०स० के पहिले भागों में छपाई जा चुकी हैं उनमें से एक बात यह भी थी कि अन्त्येष्टि कर्मको स्वा० दयानन्दजी ने अपने संस्कारविधि पुस्तक में अन्तिम सोलहवां संस्कार लिखा है। इस पर सनातनधर्म की ओर से कहा गया था कि अन्त्येष्टि कर्म कोई संस्कार नहीं है, इसीलिये किसी स्मृतिकारने अन्त्येष्टि को संस्कारों में नही लिखा इसी अवलम्ब पर वा अन्य किसी प्रकार जान कर बाबू लौतीरामजी महाशय ने रुड़की से गुरुकुल कांगड़ी के विद्वानों के निकट पत्रभेज कर पूछा था कि अन्त्येष्टिकर्म के संस्कार होने मे क्या प्रमाण है? इस प्रश्नका जो उत्तर गुरुकुल कांगडी से आया उसको देखकर कुछ भी सन्तोष न होनेके कारण वह समाधान यहां भेजा गया कि उसकी समालोचना होनी चाहिये पाठक महाशय! उस गुरुकुल के निम्न समाधान को और उसकी समालोचना को विशेष कर ध्यान देते हुए आप देखें॥

प्रथम प्रश्नका उत्तर यह है कि-(निषेकादि श्मशानान्तोमन्त्रैर्यस्योदितो विधिः। मनु० अ० २ श्लो० १६) इस श्लोकमे यदि हम निषेक शब्दको भी शामिल करते हैं तो श्मशान को भी शामिल करना चाहिये (दोनों में ही तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहि समास मानना पड़ेगा) आप तो प्राचीन प्रत्येक ऋषि मुनि तथा पुराणोंके भी लेख को मानते हैं तदनुसार अन्त्येष्टि के संस्कार होने में निम्न प्रमाण हैं-

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयोद्विजाः ।
निषेकाद्याः श्मशानान्ता-स्तेषांवैमन्त्रतःक्रियाः ॥
आधानपुंसवीमन्त जातनामान्नचौलकाः ।
मौञ्जीव्रतानिगोदान समावर्त्त नविवाहकाः ॥
अन्त्यंचैतानिकर्माणि प्रोच्यन्तेषोडशैवतु ॥जातूकर्ण्यः ।

उपरोक्त श्लोकोंका मैं ठीक Reference तो नहीं दे सकता यह मैंने एक प्राचीनपुस्तक वीर मित्रोदयमें देखे हैं। यथा सम्भव Reference भी पीछेसे आपको लिख भेजूंगा॥

आ० समाजियों का स्वभावसा ही पड़ गया है कि वे लोग किसी भी प्रमाण का वैसा अंश छिपा दिया करते हैं कि जिससे अपना मत कुछ भी पुष्ट नहीं होता अथवा अपने मत से जिस अंश को विरुद्ध समझते हैं उसी अंश को छोड़ दिया करते हैं। इसी के अनुसार निषेकादि० श्लोक का उत्तरार्द्ध गुरुकुल के पण्डितने छोड़ दिया है क्योंकि उत्तरार्द्ध के लिये ही पूर्वार्द्ध है पूरा श्लोक देखिये।

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितोविधिः।
तस्यशास्त्रेऽधिकारोऽस्मिन् ज्ञेयोनान्यस्यकस्यचित्॥

इसका संक्षेप से अर्थ यही है कि निषेक नाम गर्भाधान से लेकर श्मशान पर्यन्त अर्थात् अन्त्येष्टि तक जिस २ वर्णका कर्म वेद मन्त्रों से कहा है, उसीको इस मानव धर्म शास्त्र के पढ़ने पढ़ाने में अधिकार जानना चाहिये, अन्य किसी शूद्रादिको नहीं। इस श्लोक में निषेकादि श्मशानान्त इन दोनों पदों से मनुष्य के लिये जन्म से मरण पर्यन्त होने वाले सभी शास्त्रविहित कर्मों का परिगणन किया गया जानो। जब कि मनु जी ने "निषेक" और श्मशान" दोनों ही शब्द स्वयमेव श्लोक में शामिल किये हैं तब "यदि हम निषेक शब्द को भी शामिल करते हैं तो श्मशानको भी शामिल करना चाहिये" समाजी का यह सब लिखना व्यर्थ है क्योंकि जिन शब्दों को ग्रन्थकार ने ही सामिल कर दिया है उनको तुम क्या करोगे ?। अर्थात् श्लोक के अक्षरार्थ में कुछ भी विवाद नहीं है, तब तद्गुणसंविज्ञान बहुव्रीहिसमास की बात केवल इस विचारसे लिखी गयी है कि जिससे उत्तर दाताका व्याकरणज्ञ होना लोग जान लेवें। जब कि इस श्लोकसे मनुजी ने यह दिखाया है कि इस मानव धर्म शास्त्रके पठन पाठनका अधिकारी वही द्विज है जिसके लिये जन्म से मरण पर्यन्त होने वाले सभी शास्त्रविहित कर्म वेद मन्त्रों से कर्त्तव्य कहे गये हैं। इस अभिप्राय से सिद्ध हुआ कि अधिकारी बताने के लिये यह श्लोक कहा गया है किन्तु अन्त्येष्टि कर्म संस्कार है वा नहीं ऐसे विचार के साथ इस श्लोक का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। चाहें यों कहो कि जिस उत्तरार्द्ध को

आ०समाजी ने छोड वा छिपा दिया था उसमें कही बात को सिद्ध करने लिये ही पूर्वार्द्ध है किन्तु अन्त्येष्टि को संस्कार बताने के लिये उक्त श्लोक कदापि नही है और इस मनु के श्लोक का जो अर्थ है वही अभिप्राय याज्ञवल्क्यस्मृतिके (ब्रह्म क्षत्रिय०) श्लोक का भी है कि ब्राह्मणादि चार वर्ण कहाते हैं इन में से पहिले तीन जो द्विज क० होते हैं उन्हींके लिये जन्म से मरण पर्यन्त कर्म वेद मन्त्रों द्वारा कहे वा माने गये हैं ।-

अब यह दिखाया जाता है कि किन २ हेतुओं से अन्त्येष्टि कर्म–गर्भाधानादि संस्कारों में परिगणित नहीं है–यथा–

(१) मनुस्मृति में अ० २ के २६ श्लोक से लेकर संस्कारों का विचारारम्भ किया है, इसी कारण २५ वें श्लोक में कहा है कि–

एषाधर्मस्यवोयोनिः समासेन प्रकीर्त्तिता ॥

महर्षि भृगु कहते हैं कि हे ऋषि लोगो ! द्वितीयाध्यारम्भ से यहां तक धर्मके निमित्त कारण हमने संक्षेप के साथ आप लोगों से कहे हैं । इस से सिद्ध हो गया है कि (निषेकादि०) इस पूर्वोक्त श्लोक में धर्म के निमित्त अधिकारी का विचार दिखाना ही मनु के अनुकूल है किन्तु अन्त्येष्टिको संस्कार ठहरानेकी चेष्टा मनु के अभिप्राय से विरुद्ध है । इससे अन्त्येष्टि एक मनुष्य शरीर का अन्तिम कर्म होना तो सिद्ध हो जाता है ॥

(२) यदि कोई कहै कि जन्म से मरण पर्यन्त होने वाले सभी कर्मों का सामान्य नाम संस्कार क्यों नहीं हो सकता ? यदि हो सकता है तब अन्त्येष्टि भी अन्तिम संस्कार क्यों नहीं हो सकेगा ? । इसका संक्षेप से समाधान यह है कि इस दशामें नित्य का अग्निहोत्र सन्ध्योपासन और पंच महायज्ञादि सभी कर्मों का नाम संस्कार हो जायगा तब इन सभी का समावेश संस्कारों में स्वा० दयानन्द ने क्यों नही किया ? । यदि वैसा करते तो षोडशसंस्कार विधि नाम रखना व्यर्थ हो जाता, इस से तुम्हारे मतानुसार भी अन्त्येष्टि संस्कार नहीं हो सकता ॥

(३) प्रथम तो संस्कारोंकी सोलह संख्या होने और उनके सोलह नाम वेदके प्रमाण से दिखाने चाहिये, जबतक आ० समाजी लोग वेदमन्त्र का ऐसा प्रमाण मांगने पर भी न दे सकें तबतक सनातनधर्मियोंको यही कहना चाहिये कि संस्कारों की षोड़शसंख्या और उनके भिन्न २ नाम यावत् वेदमन्त्रोंमें नहीं दिखाओगे तबतक हम सनातनधर्मी लोग तुम्हारे षोडशसंस्कार माननेकी बातको वेदविरुद्ध कहते और लिखते रहेंगे। और यह भी निश्चय है कि आ० समाजी लोग अनेक जन्मों में भी षोडशसंस्कारों का परिगणन वेदमन्त्रोंसे नहीं दिखा सकते, इसीके अनुसार अन्त्येष्टि कर्म भी संस्कार है ऐसा वेद प्रमाण न होने से अन्त्येष्टि को संस्कार कहना एक प्रकार अपनी भूल को दुराग्रह से संस्कार ठहराने का हठमात्र है, इससे अन्त्येष्टिकर्म संस्कार नही है ॥

(४) वेदसे भिन्न मन्वादि बीस स्मृतियोंमें से किसी भी स्मृति में अन्त्येष्टि का परिगणन संस्कारों में नहीं किया इससे भी अन्त्येष्टि कर्म संस्कार नहीं है॥

(५ गौतम स्मृति में लिखे [१-गर्भाधान। २-पुंसवन। ३-सीमन्तोन्नयन। ४-जातकर्म। ५-नामकरण ६-निष्क्रमण। ७-अन्नप्राशन। ८-चूडाकर्म। ९-उपनयन। १०-१३ तक चारों वेदोंके चार वेदारम्भ। १४-केशान्त वा गोदान। १५-समावर्त्तन। १६-विवाह। १७-पञ्चमहायज्ञ। १८-अष्टका अन्वष्टका चारोंश्राद्ध। १९-पार्वणश्राद्ध। २०-श्रावणीकर्म। २१- आग्रहायणीकर्म। २२- चैत्री (चैत्र मासकी पौर्णमासी में विहित स्मार्त्त) कर्म। २३-आश्वयुजी (आश्विनमास की पौर्णमासी को विहितस्मार्त्त) कर्म। ये पञ्चमहायज्ञादि सातकर्म पकाये अन्नसे होने के कारण सप्तविधपाकयज्ञ कहाते हैं। २४-अग्न्याधेय [श्रौताधान] कर्म। २५-अग्निहोत्र। २६-दर्शपौर्णमास याग। २७-चातुर्मास्ययागों के वैश्वदेव, वरुणप्रघास, साकमेध, शुनासीरीय ये चारों पर्व। २८-आग्रयण [नवान्नेष्टि] २९-निरूढ पशुयाग। ३०-सौत्रामणीयाग, ये अन्याधेयादि सातकर्म दुग्ध घृत तथा पुरोडाशादि नामक हविषों से होने के कारण हविर्यज्ञ कहाते हैं। ३१-अग्निष्टोम। ३२-अत्यग्निष्टोम। ३३-उक्थ्य। ३४-षोडशी। ३५-वाजपेय। ३६-अतिरात्र। ३७-आप्तोर्याम। ये सातयज्ञ सोमलता के रससे होनेके कारण सप्तसोमयाग कहाते हैं। ३८-उपाकर्म। ३९-उत्सर्ग। ४०-[पितृमेध] इन चालीस संस्कारों में भी अन्त्येष्टिकर्म न होने से वह कोई संस्कार नहीं है॥

(६) अङ्गिराऋषि के लिखे पच्चीस संस्कारोंमें और व्यासस्मृति के लिखे सोलह संस्कारों में भी अन्त्येष्टिकर्म न होने से भी वह संस्कार नहीं हो सकता॥

(७) स्वा० दयानन्दजी ने अपने संस्कारविधि पुस्तक में संस्कारों का सोलह होना तथा उन सोलह के पृथक् २ नाम किसी स्मृति पुराणादि के प्रमाण से भी प्रमाणित नहीं किये तथापि विना किसी प्रमाण के अपनी कल्पना से ही प्रथम षोडशसंस्कार मान लिये हैं, तदनन्तर पृथक् २ संस्कार लिखते समय अपने संस्कारविधि पुस्तक में १७ सत्रह संस्कार छपाये हैं जो अबतक सोलह की प्रतिज्ञा के साथ २ सत्रह संस्कार छपा करते हैं। सम्भव है कि स्वा० दयानन्दजी ने सोलह ही बनाये हों और गुरुकुल कांगड़ी के पण्डितों ने अन्त्येष्टि को अपनी ओर से प्रक्षिप्त कर दिया हो-इससे भी अन्त्येष्टिका संस्कार न होना सिद्ध है॥

(८) जैसे राजसूय, अश्वमेध, सर्वमेध, पुरुषमेध, चयन, द्वादशाह, गवामयन, अङ्गिरसामयन, अनेक विध काम्येष्टियां-वर्षकामेष्टि, पुत्रकामेष्टि और सत्र यागादि कर्त्तव्यकर्म होने पर भी संस्कारों में परिगणित नहीं हैं, वैसे ही अन्त्येष्टि कर्त्तव्यकर्म होने पर भी कोई संस्कार नहीं है॥

(९) संस्कार कर्म का लक्षण यह है कि संस्कार कर्मकी समाप्ति होने पर वह वस्तु विद्यमान होता है कि जिसका संस्कार किया गया, यदि विद्यमान न रहै तो संस्कार्य कौन होगा ? । मुर्दा जलकर भस्म होजाने पर संस्कार्य पदार्थ कोई न रहा, तब अन्त्येष्टि संस्कार किसका कहोगे ? अन्त्येष्टि में संस्कार्य वस्तु सिद्ध न होने से भी अन्त्येष्टि कोई संस्कार नहीं हो सकता ॥

(१०) आत्मा मलिन वा अस्वच्छ न होने से आत्माका संस्कार अपेक्षित नहीं है इसी कारण मनु अ० २ । २६ में स्पष्टतया दिखाया गया है जिससे किसी को सन्देह न होकि—

कार्यःशरीरसंस्कारः पावनःप्रेत्यचेहच ॥

शरीरका संस्कार करना चाहिये वही शरीर संस्कार्य है जो गर्भाधानादि सभी संस्कारों में विद्यमान रहता है । धर्मशास्त्रकारों ने गर्भाधानादि तीन संस्कारों को गर्भिणी के संस्कार माना है जिस से वहां गर्भिणी ही संस्कार्य हुई, संस्कृत हुए गर्भ क्षेत्रमें उत्पन्न होने वाले सन्तान भी संस्कृत हो सकते हैं । गर्भाधानादि के समय गर्भस्थ सन्तान अविद्यमान के तुल्य है इसी से गर्भको संस्कार्य न मानने पर भी कोई दोष नहीं आता । परन्तु अन्त्येष्टि कर्म हो चुकने पर संस्कार्य शरीर रहता ही नहीं इससे भी सिद्ध हो गया कि अन्त्येष्टि कर्म कोई संस्कार नहीं है ॥

इसी प्रथम प्रश्न के समाधानान्त मे गुरुकुल कांगड़ी के ब्रह्मचारी ने जातूकर्ण्य के नाम से डेढ श्लोक लिख कर अन्त में दो श्लोक बताये हैं । हमारा अनुमान है कि यह डेढ़ श्लोक किसी ग्रन्थ का नहीं है किन्तु शब्द जोड़के ब्रह्मचारी ने कल्पना करली है ऐसा अनुमान इस कारण होता है कि—पुंसवन द्वितीय संस्कार के नाम में पुम् और सवन दो पद मिले हुए हैं, इस कृत्रिम श्लोकमें पुंसवनका पुंस नाम रक्खा है सो अशुद्ध है क्योंकि सवन शब्द का स पुं के साथ मिला लेने से दशरा मशरा हो गया । यदि पुंस् शब्द का सकार हल् मान लिया जाय तो श्लोकार्द्ध में १५ ही अक्षर रह जावेंगे इससे भी छन्दोभंग दोष हो जायगा । तथा द्वितीयार्द्ध में सोलह के स्थान में सत्रह अक्षर हैं यह भी छन्दोभंग दोषग्रस्त है । प्रथमार्द्ध के आरम्भ में आधान शब्द आया है, इस आधानका अर्थ गर्भाधान कदापि नहीं हो सकता किन्तु आधान कहने से अग्नियों का विधि पूर्वक स्थापन अर्थ तो अवश्य समझा जाता है । द्वितीयार्द्ध में लिखे मौञ्जीव्रतानि से यदि उपनयन तथा वेदारम्भ दो संस्कार माने जावें तो डेढ श्लोकमें गिनाये अन्त्य सहित सब १३ तेरह संस्कार होते हैं । यदि स्वामिदयानन्दजी ने इसी अशुद्ध छन्दोभंग दोष युक्त डेढ़ श्लोकके अवलम्ब पर अन्त्येष्टि को संस्कार मान कर अपने संस्कारविधि पुस्तक में लिखा है तब

तो गुरुकुली महात्मा को यह बताना चाहिये कि इस डेढ़ श्लोक में गृहाश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास नाम के तीन संस्कार कहां हैं, यदि ये तीनों भी किसी ग्रन्थ में संस्कार करके नहीं लिखे तो इसी कारण इन तीनों को संस्कारों में लिखना भी वेदादि सभी शास्त्रों से विरुद्ध है, इसलिये इन पर भी वही प्रश्न हो सकता है कि ये तीनों संस्कार हैं इसमें क्या प्रमाण है ? । इस दशा में गुरुकुली पण्डित से अन्त्येष्टि का समाधान तो कुछ नहीं हो सका किन्तु उनके शिर पर अन्य प्रश्नों का भार और बढ़ गया । गुरुकुली महात्मा ने पता सब्द के स्थान में दो शब्द बीच में जो अंगरेजी के लिख दिये हैं उसका अभिप्राय यही हो सकता है कि अन्य लोग वा बाबू लौतीराम जी जान लेवें कि आप अंग्रेज़ी भी जानते हैं इससे आप अपना महत्त्व बताना चाहते हैं। अन्यथा क्या नागरी में पता शब्द नहीं लिख सकते थे ! । इस महात्मा के सन्देहात्मक लेख से भी अन्तिम डेढ़ श्लोक का प्रमाण कुछ नहीं ठहरता ॥

और यदि हम अभ्युपगम सिद्धान्त के अनुसार अशुद्ध, अग्राह्य डेढ़ श्लोक के अनेक दोषग्रस्त होने पर भी किसी प्रकार उसको प्रामाणिक मान लेवें तब यह प्रश्न उठेगा कि वेद स्मृति पुराण इन त्रिविध प्रामाणिक ग्रन्थोंमें वीर मित्रोदय कोई नहीं किन्तु संग्रह पुस्तक है । यहां मुख्य बात यह सोचना चाहिये कि प्रश्न का अभिप्राय क्या है और उत्तर क्या दिया जाता है । अन्त्येष्टि कर्म के संस्कार होने के लिये किसी भी श्रुति स्मृति में कोई भी प्रमाण नहीं है, इस लिये सनातन धर्म के संस्कार भास्कर संस्कार रत्नमालादि किसी भी ग्रन्थमें अन्त्येष्टि को संस्कारों में नहीं गिनाया क्योंकि गर्भाधानादि सभी संस्कारों में एकविध उत्सव का हर्ष माना जाता है । परन्तु अन्त्येष्टिकर्म शोकात्मक होने से उत्सव का विरोधी है, इसी कारण कोई सनातनधर्मी जब अन्त्येष्टि को संस्कार मानता ही नहीं और न किसी को उस के संस्कार होने में सन्देह ही है तब प्रश्न का यही अभिप्राय हुआ कि गृहाश्रम, वानप्रस्थ, संन्यास, अन्त्येष्टि ये चारों ही संस्कार नहीं इनका संस्कार मानना महा अज्ञान वा दुराग्रह मात्र है, ऐसी दशा में गुरुकुल की ओर से बा० लौतीराम को यह लिखना कि " आप तो प्राचीन प्रत्येक ऋषि मुनि तथा पुराणों के भी लेख को मानते हैं, तदनुसार अन्त्येष्टि के संस्कार होनेमें निम्न प्रमाण हैं " अब पाठक महाशय शोचें ध्यान दें कि हम सभी ग्रन्थों को मानते हैं वा नहीं इस लिखने से क्या प्रयोजन था ? क्योंकि अन्त्येष्टिकर्म का संस्कार होना तुमको सिद्ध करना था सो अपने मतानुसार तुम कुछ प्रमाण न दे सके इस कारण निग्रह स्थान में आ गये ! हमारे मतानुसार प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं है क्योंकि हम अन्त्येष्टिको संस्कार मानते ही नहीं हैं और जो तुम मानते हो उन तुम्हारे मत के वेदका कोई प्रमाण नहीं है इससे अन्त्येष्टिकर्म का संस्कार न होना निर्विवाद सिद्ध हो गया ॥

हम अपने-आ० समाजी भ्राताओंसे विनयपूर्वक निवेदन करते हैं कि वे लोग यदि सत्य धर्म का कुछ भी आदर करते हैं, यदि आ० समाज के चतुर्थ नियम को निर्व्याज मानते हैं तो धर्मको तथा ईश्वरको साक्षी रखके निष्पक्ष विचार करें कि गृहाश्रमादि संस्कार हैं वा नहीं। यदि आर्यसमाजी महाशय वास्तव में स्वा० दयानन्द जी को जितना बढ़ाकर महर्षि वा ऋषि मानते हैं उसके अनुसार यह समाधान लिख देते कि अन्य ऋषियो के तुल्य दयानन्द भी एक ऋषि थे, उनके लेख को भी अन्य महर्षियो के लेख के तुल्य हम आर्य लोग प्रामाणिक मानते हैं इससे हम को अन्य प्रमाण की अपेक्षा नहीं-उन लोगों का ऐसा लिखना वेद विरुद्ध होने पर भी सत्य अवश्य माना जाता। सो ऐसा न लिखकर बनावटी समाधानसे और भी विवाद बढ़ गया अनेक नये २ प्रश्न और हो गये जो ऊपर लिखे गये हैं॥

बाबू लौतीराम जी का द्वितीय प्रश्न यह था कि-"इस अन्त्येष्टि कर्म का विधान स्वा० दयानन्द जी ने किस ग्रन्थ से लिया है?" इसका समाधान गुरुकुल कांगड़ी के विद्वानों ने यह किया है कि-संस्कारविधि मे जो विधान स्वामी जी ने दिया है वह आश्वलायन गृह्यसूत्र अ० ४ कण्डिका १। २ में देखना चाहिये"॥

समीक्षा-यहां भी यदि गुरुकुल कांगड़ी के अधिष्ठाता स्वा० दयानन्दको ही प्रामाणिक मानकर अन्य प्रमाणकी अपेक्षा छोड़ देते तो विवाद कुछ नहीं बढ़ता सो न हुआ किन्तु आश्वलायन गृह्य का नाम लेने से इन आर्यसमाजियो पर अन्य भी अनेक प्रश्न खड़े हो गये। सो देखिये आश्वलायन गृह्य सूत्र अ० ४ की १-४ तक चार कण्डिकाओं मे अन्त्येष्टि कर्म का वर्णन किया है, इन चार कण्डिकाओं मे ९२ सूत्र लिखे हैं जिनमे से केवल ८ सूत्र स्वा० दयानन्द जी ने संस्कारविधि के अन्त्येष्टि प्रकरण में लिखे हैं, अर्थात् ८४ सूत्र एक दम छोड़ दिये हैं, उन आठ सूत्रोंमे से भी चार सूत्रोंका अर्थ स्वा० दयानन्द जी ने लिख दिया है, इत्यादि कारणों से अनेक प्रश्न खड़े हो जाते हैं-चाहे यो कहो कि संस्कारविधि के अन्त्येष्टि कर्म मे आश्वलायन गृह्य के अनुकूल इतना कम अंश है जिसे न होने मे गिना जायगा॥

(१) आश्वलायनगृह्यमे कहा अन्त्येष्टिकर्म ऋग्वेदी आहिताग्नि लोगों के लिये कहा है, सो (आहिताग्नि चेदुपतपेत्०) इत्यादि सूत्रारम्भ से ही सिद्ध है। आहिताग्नि वे कहाते हैं जिनने विधिपूर्वक श्रौतस्मार्त्त पांचो अग्नियों [आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, सभ्य, आवसथ्य] का नियमित यज्ञशालामें स्थापन किया और जो अग्निहोत्र तथा दर्शपौर्णमासादि करते हों। हे समाजी! अब कृपया आप ही बताइये कि जब आर्यसमाजमे कोई एक भी पुरुष आहिताग्नि नहीं है तब आश्वलायनगृह्यकार का कहा अन्त्येष्टिकर्म आर्यसमाजियो के लिये कैसे हो सकता है?॥

(२) क्या आश्वलायन के ९२ सूत्रोंमें कहा विधान स्वा० दयानन्दने आठ सूत्रों में ही मान लिया ? क्या आश्वलायन के ८४ सूत्र आर्यसमाजी मतसे व्यर्थ ही लिखे गये हैं ? । उन आठ में भी क्या चार सूत्र [हाथी के दांत दिखानेके लिये होने के तुल्य] व्यर्थ लिखे गये हैं ? ॥

(३) केशश्मश्रुलोमनखानीत्युक्तं पुरस्तात्) इस लेखके अनुसार आर्यसमाजी मुर्दोंके शिरके वाल, डाढ़ी मौंछें, वाहू गोड़ छाती आदि के रोमों का क्षौर और नख-च्छेदन क्यों नहीं कराया जाता ? और जब नहीं कराया जाता तब आश्वलायनगृह्यके अनुसार अपना अन्त्येष्टिकर्म क्यों बताते हो ? । क्या आजतक किसी समाजी को न सूझा कि स्वा० दयानन्दका लिखा अन्त्येष्टिकर्म भी किसी आर्षप्रमाण के अनुकूल नहीं किन्तु मनमाना है ॥

(४) स्वा० दयानन्द के संस्कारविधि पुस्तकके सातवें सूत्रमें कहा घी और दही मिलाया पितरों का पृषदाज्य क्या आर्यसमाजियों के अन्त्येष्टिकर्म में बनाया जाता है ? । क्या आर्यसमाजी मुर्दोंका पेट फाड़कर मल निकालके पेट को धोकर उसमें पृषदाज्य भर दिया जाता है ?। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो वह सातवां (दध्यन्य०) सूत्र दयानन्दीय संस्कारविधि में क्यों लिखा गया ?॥

(५) जब आहवनीयादि अग्नियों का विधान आ० समाज में न कोई मानता है न करता है तब समाजी मुर्दों के साथ उन अग्नियोंको ले जानेके लिये आठवां (अथैतांदिशमग्नीन्नयन्ति०) सूत्र क्यों लिखा गया ? क्या वदतोव्याघात दोष यह नहीं है ॥

(६) जब यज्ञ पात्रों के लक्षण प्रमाणादि अबतक कोई भी समाजी न जानता और न मानता है तब यज्ञपात्रोंका श्मशानमें ले जाना क्यों लिखा ? क्या लेखानुसार आर्यसमाजी लोग यज्ञपात्रों को श्मशान में ले जाकर समाजी मुर्दों पर चिना करते हैं और जब ऐसा नहीं होता तो क्यों लिखा गया ?॥

(७) मुर्दा स्त्री वा पुरुष को स्नान कराना, चन्दनादि सुगन्धलेपन करना, नवीन वस्त्र धारण कराना, मृतशरीरको तौल कर उसकी बराबर घी और चन्दन लेना, दरिद्र को भी २० सेर घी लेना, प्रतिसेर एक रत्ती कस्तूरी एक मासा केसर लेना, प्रत्येक मन घी के साथ सेर सेरभर अगर तगर लेना, स्वा० दयानन्दजी का यह सब लेख तबतक वेद विरुद्ध और मिथ्याकल्पित माना जायगा जबतक समाजी लोग वेदमन्त्र के प्रमाण से उक्त बातों को सिद्ध न कर देवें ॥

(८) आश्वलायनगृह्य में जो लिखा है कि विषम संख्या वाले अधिकावस्था के शिखा खोले हुए मनुष्य, जिनमें सब से बड़ा आगे २ चले क्रमशः छोटे २ पीछे चलें इस प्रकार श्मशान में जावें । क्या आर्यसमाजी इसी प्रकार मुर्दों को श्मशान में ले जाते हैं ? ॥

(९) (अपेत वीत०) मन्त्र से अप्रदक्षिण घूमते हुए शमीशाखा में जल लेकर चिताका तीनवार प्रोक्षण करना जो लिखा है, उसको आर्यसमाजी क्यों नही करते ? सो बताइये ॥

(१०) क्या लकड़ी चिनकर बनाई चिता में कुशों पर कृष्णाजिन बिछाकर उस पर मुर्दा लिटाया जाता है ? । यदि ऐसा नहीं किया जाता तो क्यों ? और मुर्दा से उत्तर में पत्नी को क्यों नही लिटाया जाता ? । फिर (उदीर्ष्वनार्यभिजीवलोकं०) मन्त्र पढके यजमान की पत्नी को देवर क्यों नहीं उठाता ? ॥

(११) मुर्दा के नासिकादि अङ्गों पर जो स्रुवादि यज्ञपात्रों का चिन देना लिखा है, उस को समाजी लोग क्यों नही करते ? और जब नही करते तो यज्ञपात्रोंका श्मशानमें ले जाना स्वा० दयानन्दजी ने क्यों लिखा ? क्या यह सब लीला मनमानी वेद विरुद्ध नहीं है ? ॥

(१२) आश्वलायन गृह्यसूत्रकार ने जो (अग्नयेस्वाहा) इत्यादि चार आहुति दक्षिणाग्निमें देनी लिखी हैं सो उन आहुतियोंका क्या दक्षिणाग्निमें होम किया जाता है? ।

(१३) (आश्वलायनगृह्य में प्रेतकी छाती पर—अस्माद्वै त्वमजायथा अयत्वदधिजायतां देवदत्तशर्मन् ! स्वर्गायलोकाय स्वाहा)इस मन्त्रसे पांचवी आहुति देनी लिखी है, उस पांचवीं आहुति को स्वा० दयानन्द जी ने (स्वर्गायलोकाय स्वाहा) इतने खण्डित मन्त्र से देना क्यों लिखा ? क्या वेद मत वाले आ० समाजी वेद मन्त्रों को भी काट २ कर चुरा लिया करें यह उन का धर्म है ? ॥

(१४) (अग्नये स्वाहा) से लेकर (मृत्यवे स्वाहा) तक १२१ आहुति स्वा०दयानन्द जी ने जो बतायी हैं सो (मृत्यवे स्वाहा) यह मन्त्र संस्कारविधि के अन्त्येष्टि कर्म में कहां लिखा है ? और यदि उक्त मन्त्र वहां है भी तो उस मन्त्र तक सब मन्त्र संख्या ८१ ही तो होती है, फिर एक सो इकीस क्यों लिखा सो बताइये ॥

(१५) क्या जलते हुए मुर्दा से आ० समाजी लोग (प्रेहि प्रेहि पथिभिः०) इस मन्त्र द्वारा यह नही कहते कि हे प्रेत ! तुम पहिले दिव्य मार्गोंसे वहां जाओ कि जहां यमलोक में हम लोगों के पूर्वज पितर जा चुके हैं, वहां जा कर तुम स्वधारूप अमृतसे प्रसन्न होते हुए यम और वरुण राजा को देखोगे । क्या इस वेद प्रमाण से यह सिद्ध नही है कि मृत्युलोक से भिन्न पितृलोक में मनुष्य मर २ के जाते हैं ॥

(१६) स्वा० दयानन्द जी के लिखे १२१ मन्त्रों से समाजी मुर्दों को जलाना चाहिये , ऐसा वेदमन्त्र में कहां लिखा है ? ॥

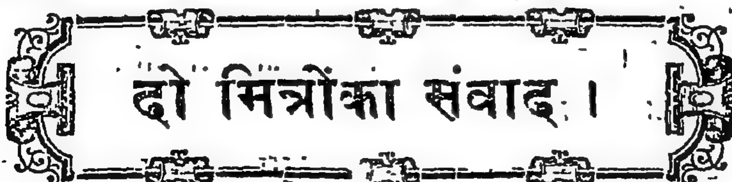
(१७) आश्वलायनगृह्य सू० अ० ४ क०४ सू० १० मे प्रेतको तिलाञ्जलि देनेका जो विधान है सो क्या समाजी प्रेतों को तिलाञ्जलि दी जाती है यदि नहीं दी जाती तो जीवितों को तिलाञ्जलि क्यों नही दे देते ? ॥

(१८) यदि दिनमें मुर्दो को श्मशानमें ले जावें तो रात्रिमें श्मशान से लौटें और रात्रि में ले जावें तो दिन में छोटों २ को आगे २ और बड़ों २ को पीछे २ चलाते हुए लौटें ऐसे लिखे के अनुसार समाजी क्यों नहीं करते ?॥

(१९) मृतक के घर पर आकर पत्थर, अग्नि, गोवर, अक्षत, तैल और जल का स्पर्श करना जो आश्वलायनगृह्यमें लिखा है उसको समाजी लोग क्यों नहीं मानते ? यदि कहैं कि वेद में ऐसा नहीं लिखा तो शरीर के बराबर घी से मुर्दा को जलाना वेद में कहां लिखा है ?॥

(२०) उस दिन कोई भोजन न पकावे और तीन दिन तक अलवण अलौना भोजन करें, दश दिन अशौच मानें ये बातें यदि वेद विरुद्ध हैं तो शरीर की बराबर घी लेना वेद विरुद्ध क्यों नहीं है ?॥

पाठक महाशय ! यह बात आप कदापि सत्य न मान लेवें कि अन्त्येष्टि कर्म के विधानमें आर्यसमाजियों पर इतनेही प्रश्न हो सकते हैं किन्तु सत्य यह है कि इस परभी अन्य सैकड़ों प्रश्न हो सकते हैं। क्योंकि समाजी मत रुपये में पौने सोलह आने से भी अधिक वेद विरुद्ध मनःकल्पित है। आशा है कि इस ऊपर के लेख से यह सम्यक् सिद्ध हो गया कि अन्त्येष्टि कर्म कोई संस्कार नहीं किन्तु मृतक को जन्मान्तर में सुख पहुंचाने के लिये वेदानुकूल एक कर्म है। तथा इस अन्त्येष्टि कर्मका विधान जो स्वा० दयानंद जी ने अपने संस्कार विधि पुस्तक में लिखा छपाया है वह वेदादि सभी शास्त्रों से विरुद्ध मनमाना है। जीवित मनुष्य स्त्री पुरुषों के शरीरादि को शुद्ध निर्दोष करने के लिये गर्भाधानादि संस्कार कहे हैं, इससे संस्कार सब हर्षोत्पादक एक प्रकार के उत्सव हैं पर अन्त्येष्टि कर्म शोक जनक होनेसे उत्सव नहीं है। जैसे गर्भाधान में जिस की शुद्धि अपेक्षित है उसके उत्पत्ति स्थान क्षेत्र की शुद्धि गर्भाधान संस्कार से मानी जाती है। वैसे मृतक मनुष्य का शरीर उसी अन्त्येष्टि कर्म द्वारा नष्ट कर दिया जाता है तब शुद्धि किसकी होगी ? इसका समाधान नहीं हो सकता—इसी से ऋषियों ने अन्त्येष्टि को संस्कार नहीं माना है॥



दो मित्रोंका संवाद।

[एक मित्र] सनातनधर्म की बहुविध देवपूजा में से केवल शिवलिङ्ग पूजामें हम को शंका है क्योंकि यह लिंगेन्द्रिय की पूजा जान पड़ती है॥

[द्वितीय मित्र] राम २! सनातन काल से शिव जी की पूजा होती आती है, आज तक किसी को ऐसी शंका नहीं हुई। अनुमान होता है कि तुमने आर्यसमाज

के कुतर्क सुने होंगे। आर्य समाजियों से भिन्न अन्य किसी मतवाला ऐसी मिथ्या बात कदापि नहीं कह सकता॥

[एक] क्या लिङ्गेन्द्रिय की नकल शिवलिङ्ग नहीं है? क्या वैसा कहने वाले वास्तव में मिथ्या वादी हैं॥

[द्वितीय] लिङ्गेन्द्रिय की नकल शिवलिङ्ग कदापि नहीं है, इस लिये लिगेन्द्रिय की पूजा न पहिले कभी होती थी, न अब होती है, न आगे होगी। किन्तु शिव जी के अण्डाकार चिन्ह का नाम शिवलिग है, कोशों के अनेक प्रमाणों से सिद्ध है कि चिन्हका नाम लिङ्ग है। इससे लिङ्गेन्द्रियकी पूजा कहने वाले वास्तवमें मिथ्यावादी हैं।

[एक] आपका अनुमान ठीक है हमने यह लिग पूजा की बात आर्य समाजियों से ही कईवार सुनी है, वे लोग यह भी कहते हैं कि शिव पुराण ज्ञानसंहिता में लिखा है कि-"दारु नाम वन में शिव भक्त ऋषि लोग रहते थे, एक दिन ऋषि लोग समिधा लेने को गये तब उन की स्त्रियों के समीप शिव जी नग्न हो, नीला शरीर कर, लिङ्ग हाथ में लिये आये यह देखकर ऋषि पत्नी भय भीत हुईं इतने में ऋषि लोग आ गये, ऋषियों ने शिव की असभ्यता देखकर श्राप दिया कि तेरा लिङ्ग गिर जाय'बस लिङ्ग गिर गया और उसने उछल कूद मचाई जहां लिग गया वहीं प्रचण्ड अग्नि लग गयी यह देख ऋषि घबरा कर विष्णु के पास गये कहा महाराज हम से बडा अपराध हुआ कृपया अब इस को शान्त करो। विष्णु ने कहा कि तुम पार्वती के पास जाओ वे ही इस कार्य को करेंगी तब सब ऋषि पार्वती के पास गये और विशेष प्रार्थना करने पर,पार्वती प्रसन्न हुईं और ऋषियोंकी अभिलाषापूर्ण करनेके लिये अपनी योनि फैला दी बस लिग पार्वती की योनि में स्थापित हो गया (वही नमूना अबभी है" क्या यह सब कहना भी मिथ्या है॥

[द्वितीय] यह ऊपर लिखा वृत्तान्त जिस ढगसे यहां लिखा गया है, और आर्य समाजी लोग जैसा अभिप्राय संसार मे प्रकट करके शिव पुराणादि से और शिवजी की पूजासे सर्व साधारण को घृणा उत्पन्न करा देना चाहते हैं, वह अभिप्राय वास्तव में कुछ भी नहीं है। इस लिये आ० समाजियों का वैसा अभिप्राय प्रसिद्ध करना निर्विकल्प सर्वथा मिथ्या अवश्य है॥

[एक] तब कृपाकर यह बतलाइये कि शिवपुराणका सत्य २ अभिप्राय क्या है?।

[द्वितीय] शिवपुराण का सत्य २ अभिप्राय यह है कि शिव जी के मन में एक समय ऐसी कामना हुई,कि बालक योगी मनुष्य का परम सुन्दर मोहनी रूप धारण करके भू मण्डल पर लीला दिखावें तब महामाया देवी पार्वती जी ने शबरी का रूप धारण किया तथा शिवजी के अन्य गणों ने अन्य २ रूप धारण किये और सब ने

मिलकर एक विचित्र गान मण्डली बना के १२ द्वादश वर्ष तक भूमण्डल पर भ्रमण किया। इस शिव लीला का अभिप्राय यह था कि कामना वाले ऋषियों की और ऋषिपत्नी आदि स्त्रियोंकी चपलता देखनी थी और इन सबकी परीक्षा करनी थी, तथा अटल पतिव्रता कौन हैं, उनका धैर्य कैसे होता है यह सब दिखा कर देवपूजा के प्रचार द्वारा संसारी मनुष्यों के उपकारार्थ शिवजीने द्वादश वार्षिकी क्रीड़ा की थी। आ० समाजियोंने शिवजी के कामी होनेका अभिप्राय दिखाया सो सर्वथा ही मिथ्या है क्योंकि शिवजी काम वासना से सदा निवृत्त सदा परितुष्ट हैं ऐसा शिव पुराण में लिखा है। देवता लोग विष्णु के पास गये,यह भी मिथ्या है, "पार्वती जी के पास जाना और प्रसन्न होकर पार्वती जी ने अपनी योनि फैला दी, बस लिङ्ग पार्वती की योनि में स्थापित हो गया वही नमूना अब भी है" यह सब का सभी मिथ्या है। किन्तु वहां केवल ऋषिलोग ब्रह्मा जी के समीप गये और ब्रह्मा जी ने ऋषियों से कहा कि गिरिजा देवी की आराधना करके उनके प्रसन्न हो जाने पर एक घटको स्थापित कर उसपर अष्टदल आकार बनाके शिवका पूजन ठीक श्रद्धा और विधिसे करो तब तेजोमय लिङ्ग स्थिर हो जायगा। योनि नाम कारणका है,प्रत्येक वस्तु अपने २ कारण में शान्त हो जाता वा लीन होता है, वास्तवमें उपद्रव करने अर्थात् सबको जलाकर भस्मकर देनेवाला आग्नेयतेज ही शिवलिंग था और योगी शिव का लिंग जब शापसे अनेक टुकडे हो कर गिर गया तब सर्वत्र अग्नि तेजोमय वे सब टुकडे हो गये,ब्रह्माजीके कहने पर पृथिव्यभिमानिनी देवतारूप पार्वती देवीको आराधना द्वारा प्रसन्न करके घटस्थापन कर शिवजीका पूजन किया तभी वह उभड़ा हुआ आग्नेय तेजोरूप लिङ्ग अपने योनिरूप पृथिवी कारण में शान्त वा लीन हो गया वा समा गया क्योंकि अग्नि का आधार वा योनि नाम कारण पृथिवी ही है,इस कारण मट्टी पड़ जानेसे अग्नि बुझ जातीहै। यही अभिप्राय शिवपुराण ज्ञान संहिताके ४२ अ० में संक्षेपसे दिखाया और विद्येश्वर संहितामें इसी का विस्तार से वर्णन किया है॥

हम उन महाशयों से सानुरोध निवेदन करते हैं कि जिन को इस शिवलिङ्ग पूजा विषय के सब सन्देह दूर करके शिवपूजा का महत्त्व जानना अभीष्ट है वे कृपाकर अवश्य ही ब्रह्म प्रेस इटावाकी छपी(शिवलिङ्गपूजा माहात्म्य)पुस्तकको विशेष ध्यान देकर कई वार देखें समझें तो उनके सब सन्देह निवृत्तहो जायेंगे। जब शिवजी एक दिव्य तेजो मय देवता हैं, मनुष्यों के तुल्य मांस हड्डी,रक्त, मल मूत्रादि युक्त घृणित शरीरधारी जब कोई शिव नहीं हैं, जब मनुष्योंका सा मांसका लिङ्ग भी उनका नहीं है, जब वे काम वासना से भी बालवत् निवृत्त हैं, छोटेबालक स्त्रियों के समाने जैसे नग्न फिरा करते हैं वैसे योगी शिव भी काम वासना से सर्वथा निवृत्त हुये फिरते थे ऐसा अभिप्राय शिवपुराण के प्रमाणों से स्पष्ट सिद्ध है और ऋषि पत्नियों के प्रार्थना

करने पर भी योगी रूप शिवका लेशमात्र भी विचलित न होना, परम क्षमाधारी काम क्रोध लोभ का सर्वथा जीत लेने वाले शिव जी के सर्वथा निर्दोष सिद्ध हो जाने के कारण आर्यसमाजियों का दोषारोप करना सर्वथा ही मिथ्या है,अर्थात् जिस अभिप्राय को जताने की चेष्टा समाजी ने की है वह कुछ भी नहीं है इसी लिये आ० समाजियों का वह दोषारोप सर्वथा ही मिथ्या है, परन्तु हम यह फिर भी सूचित किये देते हैं कि ≶) मूल्य के शिवलिङ्गपूजा माहात्म्य पुस्तक को मंगाकर लोग अवश्य देखें अन्यथा समाजियों की शंका का समाधान ठीक समझ में नहीं आवेगा॥

[एक] यदि आर्यसमाजी लोगों को मिथ्या कहने लिखने से कुछ भी भय लज्जा संकोच नहीं है तब तो उन लोगों ने अन्य भी अनेक मिथ्या बातें लिखी होंगी । सत्य का ग्रहण असत्य का परित्याग करने के लिये सदा उद्यत रहने का जिन का नियम है वे लोग यदि ऐसे निर्लज्ज होकर मिथ्या कहते लिखते हैं तो बडा ही आश्चर्य है ॥

[द्वितीय] वास्तव में आ०समाजी अपने चौथे नियम से विरुद्ध पहिले से ही मिथ्या बातें लिखते छपाते और निर्लज्ज हो कर कहा करते हैं । उदाहरणार्थ आ० समाजियों की कुछ मिथ्या बातें दिखाते हैं ॥

(१) सत्यार्थ प्रकाशादि पुस्तकों के आरम्भ में (ओंशन्नोमित्रः०) इत्यादि मन्त्रोंसे स्वय मंगलाचरण स्वा०दयानन्द जी ने किया और सन् १८८४ के सत्यार्थ प्र० पृ० २६ में मंगलाचरण का खण्डन किया सो यह मगलाचरण का खण्डन वा मण्डन एक अवश्य मिथ्या है ॥

(२) सत्यार्थ प्र०पृ० १६ में परमेश्वर का नाम नारायण लिखा और पृ० २६ में उसीको वेदविरुद्ध कहा सो यह भी महामिथ्या है ॥

(३) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के आरम्भमें स्वा० दयानन्दजीका एक श्लोक है कि (ईश्वरस्य सहायेन प्रयत्नोऽयंसुसिध्यताम्) इसमें दो अशुद्धि हैं एक तो यहां षष्ठी अशुद्ध है क्योंकि सहाय शब्द भी जातिवाचक है गुण वा क्रियावाचक नही है, सहाय तथा सहायक एकार्थ हैं, साहाय्य वा सहायता भिन्न एकार्थ हैं । द्वितीय सुसिध्यताम् क्रिया अशुद्ध है परस्मैपद धातु होने से सुसिध्यतात् प्रयोग होना चाहिये सो व्याकरण बोध ठीक न होने से ऐसी अशुद्धि हुई हैं, ॥

(४)(अन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत्) यम भ्राता अपनी यमी भगिनीसे कहता है कि हे भगिनी । तू मुझ से भिन्न पति कर । परन्तु स्वा० दयानन्दजी ने स०प्र० पृ० ११८ में लिखा है कि सन्तानोत्पत्तिमें असमर्थ पति अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि तू मुझ से भिन्न अन्य पति करले सो यह वेदविरुद्ध मिथ्या आज्ञा है ।

(इसका शेषांश पृ० ३६७ में है)

प्रेम-वर्णन

(Mr. scotts की कविता में से दो टुकड़ों का छायानुवाद)

(१)

ईश्वर ने जो मानव ही को, दिया सत्य यह प्रेम अनूप।
वह न मानसिक क्षणिक वासना, है निर्मल आशीष स्वरूप॥
सदा एकरस रहता है वह, जिनके पास न जाता मीच।
मन से मन को आत्म आत्म से, देता बांध हृदय के बीच॥

(२)

चिन्ता रहित शान्ति मय मन में, निश्छल भाव उपजता है।
उसी भाव से प्रेम प्रकट हो, सब को मोहित करता है॥
यही प्रेम ऋषि मुनियों से भी, मधुर बीन बजवाता है।
गायक गण से गीत गवाकर, सब के मन हरखाता है॥

(३)

वीर नरों को उत्साहित कर, रण कौशल सिखलाता है।
प्रिय निज देश जाति रक्षा के, हेतु युद्ध करवाता है॥
प्रेम प्रकृति शोभा दरसा कर, मन को अधिक लुभाता है।
नाच रङ्ग संगीत कला में, अद्भुत शक्ति दिखाता है॥

(४)

वन उपवन में नदी स्रोत में, जल प्रपात में शक्ति यही।
अति सुन्दर शोभा सरसा कर, प्रेम महत्त्व दिखाय रही॥
इसी प्रेम से भक्त जनों को, हरि निज रूप लखाते हैं।
इसी प्रेम से योगी जन भी, परम ज्योति लखपाते हैं॥

(५)

कौन कथा है मर्त्य लोक की, सुरपुर तक है इसकी दौड़।
जितने गुण हैं जीव जन्तु में, सब का यही प्रेम सिरमौर॥
इसी प्रेम के बीच भरे हैं, जप, तप, साधन पूजन ध्यान।
जिनके मन में प्रेम भरा है, उसको है सुख स्वर्ग समान॥

श्री राजेन्द्रप्रसाद शुक्ल
रियासत कन्हौली।

क्या नियोग वेदोक्त है ?

श्रीमान् स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्वरचित सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकोंमें विधवा विवाहका खण्डन करते हुए नियोग का मण्डन किया है आपने इस विषयमें वेद मन्त्रों के भी प्रमाण दिये हैं जिनका उत्तर युक्तियुक्त सप्रमाण अनेक ग्रन्थोंमे निकल चुका है परन्तु फिर भी हमारे समाजी भाई स्वामीदयानन्दजी को महर्षि मानते हुए उनकी लकीर पर फकीर हो रहे हैं परन्तु सत्य बात कभी न कभी किसी की लेखनी से निकल जाया करती है वही मामला इस नियोग विषय मे हुआ है एक तो किसी भी समाजी भाईने आज तक नियोग करके न दिखाया इससे सिद्ध है कि यह वेदोक्त नहीं द्वितीय उन मन्त्रों (जो नियोग विषय मे स० प्र० मे लिखे हैं) के अर्थ पर समाजी विद्वानों की श्रद्धा हट गई अतः अर्थभेद करने लगे। देखिये काङ्गडी गुरुकुल महाविद्यालय के वेदाध्यापक काव्यतीर्थ श्रीमान् प० शिवशङ्करजी नियोग विषयक तीन मन्त्रोंका अर्थ किस प्रकार करते हैं—

कुहस्विद्दोषा कुहवस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः।
कोवांशयुत्रा विधवेव देवरम् मर्य्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ॥

(अश्विना) हे अश्विद्वय! (दोषा,कुहस्वित्) रात्रिमे आप कहां होते हैं एव(वस्तोः, कुह) दिन में कहां होते हैं (अभिपित्वम्,कुह,करतः)अभिपित्व = अभिप्राप्ति = विश्राम कहा करते हैं (कुह,ऊषतुः)कहां निवास करते हैं (शयुत्राः) हे शिशु रक्षक अश्विद्वय ! (वाम्, सधस्थे, कः , आकृणुते) आपको यज्ञ भूमि में बिठलाके कौन परिचर्या करता है यहां दृष्टान्त देते हैं (न,विधवा,देवरम्) जैसे विधवा स्त्री देवर की सेवा सुश्रुषा करती है (न, योषा, मर्य्यम्) जैसे प्रिया पति परायणा स्त्री स्वामी की सेवा करती है दोषा = रात्रि। वस्तो = दिन। अभिपित्व = प्राप्ति। शयुत्र = शयु = शिशु, त्र = रक्षक सधस्थ = सहस्थान = जहां सब कोई साथ बैठें॥

(वैदिक इतिहासार्थ निर्णय। सन् १६०६ पृ० ३६५)

आघाताग्च्छानुत्तरायुगानि यत्रजामयः कृणवन्नजामि।
उपबर्बृहिवृषभायबाहु—मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिंमत्॥

यम कहता है। (ता, उत्तरा, युगानि, आ, गच्छान्,घ) वे उत्तर युग आवेंगे। (यत्र,जामयः, अजामि,कृणवन्) जब वहिनें भ्राताको अजामि अर्थात् पति बनावेंगी (सुभगे,मत्, अन्यम्, पतिम् इच्छस्व) इस कारण ऐ यमि ! तू मुझ को त्याग अन्य पतिकी इच्छा कर तब (वृषभाय, बाहुम्, उपबर्बृहि) उस स्वामी के लिये निज बाहु का उपबर्हण अर्थात् तकिया बना। (उक्त पु० पृ० ४०७)

इमां त्वमिन्द्रमीढ्वः सुपुत्रांसुभगांकृणु ।
दशास्यांपुत्रानाधेहि पतिमेकादशंकृधि ॥

(इन्द्र, मीढ्वः) हे परमैश्वर्य सम्पन्न परमैश्वर्य दाता ! परमात्मन् ! हे अनन्त सम्पत्तियोंको प्रजाओंमें सींचने हारे परम पिता जगदीश ! (त्वम्, इमाम्, सुपुत्राम्, सुभगाम्, कृणु) तू इस वधूको सुपुत्रवती और सौभाग्यवती बना, (अस्याम्, दश पुत्रान्, आधेहि) इस के गर्भमें दश पुत्र स्थापित कर (पतिम्, एकादशं, कृधि) पति को ग्यारहवें कर। अर्थात् इस स्त्रीके १० उत्कृष्ट सन्तान और ए ग्यारहवां पति जैसे हो वैसा उपाय कर ॥

(उक्त पु० पृ० ४१२)

(समीक्षा) पाठक वृन्द ! इन मन्त्रों के पूर्वापर प्रकरण में कहीं भी पं० जी ने नियोग का जिक्र नहीं किया है 'ए ग्यारहवां, की जगह 'एक ग्यारहवां', चाहिये प्रेस की अशुद्धि से 'क, छूट गया है। ऐसा प्रतीत होता है।

अब इन तीन मन्त्रों का फैसला तो पं० शिवशङ्कर जी ने कर दिया और नियोग तत्त्व प्रकाश पुस्तकमें भी 'अन्यमिच्छस्व०, इस मन्त्रका अर्थ सनातनधर्मानुकूल करते हुए स्वामी जी कृत अर्थ पर पश्चात्ताप किया है । और भास्करप्रकाशमें पं० तुलसी राम ने जो कुछ दाव दूव की है वह स्वामी जी कृत अर्थसे सर्वथा विरुद्ध है।

'सोमः प्रथमो०, इस मन्त्र को जो स० प्र० में नियोग परक लगाया है उस का खण्डन जब दयानन्दतिमिर भास्करमें छपा तो भास्कर प्रकाश में पं० तुलसीराम ने स्वामी जी कृत अर्थको अशुद्ध मान 'संस्कृत व्याख्यान, पुस्तकके पृ० ४ में सनातन-धर्मानुकूल अर्थ किया।

इमां त्वमिन्द्र०, मन्त्रार्थकी पुष्टिमें अनेक समाजी विद्वान् 'उत यत् पतयो दश०, इस अथर्व के मन्त्र को लिखते व बोलते हैं परन्तु श्री क्षेमकरणदास जी ने अथर्ववेद भाष्यमें ब्रह्मविद्या परक अर्थ किया है जिस पर पं० छुट्टनलाल जी ने वेदप्रकाश मार्च सन् १७ पृ० ६७ में अधिक रौला मचाया। पाठक वृन्द ! केवल श्री क्षेमकरणदास जी ने ही समाजी विद्वानों के विरुद्ध अर्थ नहीं किया किन्तु 'भारतसुदशाप्रवर्त्तक, ता० १२ जून सन् १४ पृ० ३ में इस प्रकार अर्थ है—यदि (स्त्रियाः) स्त्री के (दश पतयः) दश विवाहेच्छुक हों और वे (अब्राह्मणाः) क्षत्रिय वैश्यादि हों तो (ब्रह्मा) अर्थात् वेदज्ञ पुरुष गुण कर्मानुसार उन दश में से जिसे योग्य पावे (हस्तमग्रहीत्) हाथ पकड़वा देवे (अत्रान्तर्भावितण्यर्थो बोध्यः) यहां अग्रहीत् इस प्रयोगमें भीतरी प्रेरणा का अर्थ जानना चाहिये।

इस मन्त्रार्थ को देख संभव है कि समाजी विद्वान् जिह्वा न हिलावेंगे। "अदे-

वृध्न्यपतिघ्नी०,, 'उदीर्ष्वनार्यभि०, दो मन्त्र बाकी रहे सो कोई समाजी विद्वान् इन का भी फैसला कर देगा।

और मनु के प्रमाण जो सत्यार्थप्रकाशमे लिखे हैं उनके ऊपर भी समाजी विद्वानो की राय देखिये—

आर्यसमाज शिरोमणि पं० राजाराम शास्त्री ने स्वरचित मनु की टीका में 'देवराद्वासपिण्डाद्वा०, इस नियोग विधायक प्रमाण का खण्डन 'नान्यस्मिन् विधवानारी०, प्रमाणानुसार किया है वादानुवाद करते हुए तत्र लिखा है कि उच्च उद्देश्य से यह नियोग नीचे न गिर जावे इस कारण मनु ने प्रथम कहकर फिर निषेध किया अर्थात् पं० जी ने कुलूकभट्ट कृत व्यवस्था पर अपनी रुचि दिखलाई है।

इस 'नान्यस्मिन्विधवानारी०, के अर्थ में समाजी विद्वानों की भिन्न.२ राय है। स० प्र० सन् ७५ पृ० १४४ पं० ६'में लिखा है कि देवर व सपिण्ड से भिन्न के साथ नियोग न करे। पं० तुलसीराम ने लिखा है कि द्विज सवर्ण के साथ नियोग करें अन्य के साथ नही। इस प्रकार समाजी विद्वानों ने अपने २ विचारानुसार इस श्लोक के भिन्न भिन्न अर्थ किये हैं परन्तु पं० राजाराम शास्त्री नें इन अर्थों मे से किसी का आदर न करके कुल्लूकभट्ट का ही आदर किया है।

"वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याऽब्दे०" यह मनु का प्रमाण स० प्र० मे नियोग पर लिखा है परन्तु पं० आर्यमुनि तथा प० राजाराम शास्त्री ने स्वामी जी कृत अर्थ का आदर न कर स्वरचित मनु की टीका मे पुरुष का पुनर्विवाह माना है पं० तुलसीराम ने "इसी समय दूसरी करे" ऐसा लिखा है यद्यपि इन्हों ने खुलासा नहीं किया तथापि अन्तःकरण मे पु० वि० मानते हैं अन्यथा स्वामी जी की तरह लिखना था कि नियोग करे।

पाठकवृन्द! वर्त्तमान स० प्र० में उक्त प्रमाण के अर्थ मे नियोग लिखा है यदि सन् ७५ का छपा स० प्र० देखा जाता है तो उसके पृ० १४६ पं० ६ में पुरुष का पुनर्विवाह लिखा है।

और "प्रोषितो धर्मकामार्थम्०" इस मनु प्रमाण के अर्थ मे स्वामी जी ने नियोग लिखा है परन्तु प० तुलसीराम पं० राजाराम शास्त्री पं० आर्यमुनि जी ने मनु की टीका में 'प्रतीक्षा करे, लिखा है न मालूम पश्चात् क्या करे सो इन विद्वानों ने न लिखा परन्तु यह तो सिद्ध ही है कि स्वामी जी कृत अर्थ युक्त नही अन्यथा लिखना था कि नियोग करे।

अब प्रसग वश यह भी देखिये कि स० प्र० में वि० वि० विषय में जो 'साचेदक्षत० तामनेन विधानेन० दो प्रमाण मनु के लिखे हैं उन पर समाजी विद्वानों की क्या सम्मति है—

सत्यार्थप्रकाश के नियोग प्रकरण में ' तामनेन विधानेन निजो विन्देत देवरः ,, मनु प्रमाण का अर्थ लिखा है कि अक्षतयोनि विधवा का विवाह देवर के साथ हो । परन्तु आर्यमुनि जी ने मनु की टीका में उक्त प्रमाण को वाग्दत्ता पर लगाया है जो सर्वथा युक्त है और आर्यसमाज की तरफ से छपे अवलारक्षक पुस्तक में भी वाग्दत्ता पर माना है ।

'साचेदक्षत० , इस वचन का अर्थ अत्यन्त अण्ड बण्ड लिखा है उस पर हम कुछ न कह कर केवल इतना कहते हैं कि अनेक समाजी विद्वानों ने पौनर्भव (विधवाका पुत्र) के साथ पुनर्विवाह माना है परन्तु समाजमें औरसके साथ अनेक पु० वि० हुए हैं पौनर्भव को कोई जिक्र नहीं । सन् ७५ के छपे स० प्र० पृ० १४५ पं० ३ में उक्त प्रमाणानुसार नियोगसे उत्पन्न (क्षेत्रज) पुत्रके साथ पु० वि० लिखा है सो समाजी भाइयोंको उचित है कि प्रथम नियोग कर दिखावें पश्चात् जो सन्तान हो उसके साथ विधवाका विवाह करें न कि सबके साथ । जबतक नियोग नहीं तबतक पु० वि० कैसा । समाजी विद्वानोंको उचित है कि हमने जो प्रमाण लिखे हैं उन पर विचार करें कि उन प्रमाणों की व्यवस्था महर्षि-दयानन्द कृत युक्त है या उन के शिष्य पं० शिवशङ्कर शर्मा आदि कृत, एक स्थल पर स्वामी जी की प्रशंसामें पुल बांधा जाता है दूसरी जगह उनके सर्वथा विरुद्ध वेदमन्त्रार्थ किया जाता है क्या यह समाज का उत्तम न्याय है । भ० तुलसीराम शर्मा मु० सितारी पो० सासनी (अलीगढ़)

दर्शक महाशयका अनुचित साहस

(ब्रा०स० भाग १४ अंक ७ से आगे)

अवरोध प्रथा के विषय में हमारे दिये हुए रामायण के प्रमाणों पर आपने लिखा है "यह तो प्रत्यक्ष ही गढ़न्त है, घर की स्त्रियों को भी पक्षी आदि तो देखते ही हैं अतः उक्त श्लोक केवल कवियों की कवितामात्र है" । विचार शील पाठक ! यह है हमारे प्रमाणों का उत्तर ! जब कि श्लोक में स्पष्टरूप से कहा गया है कि "मैं अवगुण्ठन त्याग कर आज नगरके बाहर पैदल आई हूं·········तुम्हारी स्त्रियां आज लज्जा व अवगुण्ठनको त्याग बाहर आगई हैं इत्यादि" तब केवल इतना कह देने मात्र से कि "यह केवल कवियों की कविता मात्र है,, कैसे काम चलेगा ॥

आगे आपने कुछ ऐतिहासिक प्रमाण भी दिये हैं यथा कि "कैकई महारानी महाराज के साथ आजकल के मेम और साहबों की भांति घूमा करती थीं तभी तो युद्ध

के समय रथ का पहिया टूट जाने पर उन्होंने उसमें हाथ लगा रक्खा था ... क्या वे घूंघट लगा कर बैठी होगी ?„ लेखक महाशय क्या आज कल की मेमें भी साइबों के साथ युद्ध मे उसी प्रकार जाती हैं जिस प्रकार महारानी केकई गई थी ?। यदि उन्होंने अपने पति की रक्षा के निमित्त रथ से उतर कर रथके पहिये को रोक रक्खा था तो फिर इससे अवरोधप्रथाको क्या हानि पहुंच गई । देश तथा धर्मरक्षा के हेतु यवनकाल में भारत की लाखों कुलकामिनियों ने घोर युद्ध किया था। क्या आपने अवरोध प्रथा का अभिप्राय घूंघट लगा कर घर की चहारदीवारीके अन्दर बैठे रहने को ही समझ रक्खा है। इस प्रथा का वास्तविक अभिप्राय यदि आपको जानना हो तो ब्राह्मण सर्वस्व भाग १३ अङ्क ७ में " अवरोध प्रथा तथा स्त्री समाज „ शीर्षक लेखको पढ़ जाइये। सत्यभामा पार्बती, कुन्ती आदि का निज पति के साथ भ्रमण करना और आजकल की स्वतंत्र, स्वेच्छाचारिणी स्त्रियों का घूमना क्या एक ही बात है ?। आज भी तो भारत की स्त्रियाँ अपने बन्धु बान्धवो के साथ देशाटन किया ही करती हैं यदि प्राचीन समय में सत्यभामा आदि वैसा करती थीं तो फिर यह सिद्धान्त कैसे निकल आया कि प्राचीन भारत में यह प्रथा प्रचलित न थी ॥

सावित्री के विषय में भी आपको भ्रम हुआ है। महाभारत में स्पष्ट लिखा है कि वे रथारूढ़ होकर अपने पिता के बूढ़े मन्त्री के साथ वर खोजने को गई थीं ।

विधवाविवाह के विषय में स्वामी जी ने जो स० प्रकाश में द्विजों के लिये निषेध किया है उस पर लेखक महाशय ने लिखा है कि-स्वामीजी ने विधवाविवाह के स्थान में नियोग का विधान किया है। क्योंकि इस समय नियोग नही चल सकता इस कारण हम लोग उसके अभाव मे विधवाविवाह ही को चला रहे हैं„ । हम लेखक महाशय को उनके इस सत्य लेख पर कि ' इस समय नियोग नही चल सकता, बधाई देते हैं किन्तु इस प्रश्न का उत्तर कुछ भी न मिला कि स्वामीजी ने इसका फिर निषेध क्यों किया ?। क्या स्वामीजी को इतना भी ज्ञान न था कि 'इस समय नियोग नहीं चलसक्ता, । क्या लेखक के इस लेख से स्वामीजी के लेख का खण्डन नही होता ?। स्वामी जी ने जो दोष विधवाविवाहमें दिखलाये हैं क्या उन दोषों के दूर करने का प्रबन्ध लेखक महाशय अथवा अन्य विधवाविवाहके ठेकेदारोंने कर लिया है। यदि ऐसा नहीं है तो समाजी महाशय स्वामीजी के विरुद्ध कार्य्य करने को क्यों तत्पर हैं। विधवाविवाह के प्रमाण में आपने पराशर जी का सुप्रसिद्ध श्लोक उद्धृत किया हैं ॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सुनारीणां पतिरन्योविधीयते ॥

इस श्लोककी मीमांसा सैकड़ों बार हो चुकी फिर भी यह श्लोक बार २ न जाने क्यों उद्धृत किया जाता है। प्रथम तो यह श्लोक वृहत्पराशर में है ही नहीं द्वितीय

इस में चार दशाओं में सधवा विवाह की भी ता आज्ञा है फिर इस श्लोक के पेश करने वाले सधवा विवाह का प्रचार क्यों नहीं करते ?।

पराशरस्मृति के जिस प्रसङ्ग में यह श्लोक है उसके देखने से भलीभांति प्रकट होता है कि पराशर जी की ऐसी आज्ञा केवल व्यभिचार को रोकने के लिये ही है। इसी श्लोक के आगे वाले श्लोकों में पतिव्रतधर्म की अनुपम महिमा का कीर्तन किया गया है। यथा-

मृतेभर्त्तरियानारी ब्रह्मचर्यव्यवस्थिता।
सामृतालभतेस्वर्गं यथाते ब्रह्मचारिणः ॥ ४ । ३३ ॥
तिस्रःकोटयोर्द्धकोटीच यानि रोमाणि मानवे।
तावत्कालं वसेत्स्वर्गं भर्त्तारं यानुगच्छति ॥ ४ । ३४ ॥

अर्थात् जो स्त्री पति के परलोक होने पर ब्रह्मचर्य से रहती है वह ब्रह्मचारियों के समान स्वर्गमें जाती है और जो मृत पतिका सहगमन करती है वह मनुष्यके शरीरमें जितने रोम हैं उतने वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में वसती है। जिस संहिता में पतिव्रत धर्म की इतनी महिमा का कीर्त्तन किया गया हो उसमें केवल पांच विपत्ति आने पर ही सतीके लिये अपने धर्म को तिलाञ्जलि देकर अन्य पुरुष से सम्बन्ध कर लेने की आज्ञा पराशर जी कभी भी नहीं दे सकते हैं। वास्तव में इन श्लोकोंके प्रत्येक शब्द व भाव पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह श्लोक अति अधम पक्ष में व्यभिचारिणी स्त्रीके विषय में कहे गये हैं। जिन पांच घटनाओं में अन्य पति के ग्रहण कर लेनेकी आज्ञा दी गई है वे सब सती, साध्वी के लिये कभी आपत्ति नहीं हो सकती हैं व्यभिचारिणी के लिये भले ही आपत् हो जाय। जो सती हंसते २ पति के साथ सहमरण में जा सकती है क्या उसके लिये पति का निरुद्देश हो जाना अथवा मर जाना कभी आपत् हो सकती है। तीसरीसे लेकर पांचवीं दशा में तो केवल घोर पापिनी ही को आपत् हो सकती है। पति तो विषय वासनाको त्याग सन्यासी हो जायें और उसी की स्त्री अपने पति की इस आध्यात्मिक उन्नति को आपत् मान कर अन्य पुरुष से विवाह करले तो इससे अधिक पाशविक व्यवहार क्या हो सकता है। पति का किसी कारण वश नपुंसक हो जाना अथवा पतित हो जाना भी व्यभिचारिणी स्त्रीके लिये ही आपत्ति हो सकता है। स्त्रीधर्म स्वयम् तपोमूलक होने के कारण जब सती में इतनी शक्ति है कि वह पराशरजीके कथनानुसार जैसे सपेरा सांपको बांबी में से खींच लेता है उसी प्रकार सती अपने पतिव्रतके प्रभाव से अपने पतिका उद्धार करके उसके साथ आनन्द भोगती है तो उसके लिये पतिका क्लीव या पतित हो जाना कभी आपत्ति नहीं हो सकता (यदि इस श्लोकपर अधिक देखना हो तो मुरादाबादके

स० ध० प्रेससे प्रकाशित विधवा विवाह मीमांसा नामक पुस्तक के द्वादश अध्याय को ध्यान पूर्वक पढ जाइये) आपने पौनर्भव् सन्तानकी जो वात उठाई है उसके विषयमें केवल इतना कह देना ही पर्याप्त है कि मनु आदि महर्षियों ने ऐसी सन्तान को पतित कह कर निन्दा की है एव देव तथा पितृकार्य्य के अयोग्य वतलाया है॥

इसके आगे आपने लिखा है " देखो श्री अर्जुन जी ने विधवा नाग कन्या से विवाह किया और इरावान् नामी पुत्र उत्पन्न हुआ यह वात महा० भीष्म०में लिखी है"। इस कथा में भी आपको भ्रम हुआ है। यदि आपने समस्त महाभारत का पाठ किया होता तो ऐसी निर्मूल वात न लिखते नागराज की कन्या कारी थी। विवाह के पूर्व ही उसके पतिको सुपर्ण ने मार डाला था नागकन्या ने आदि पर्वमें स्वयम् यह वात अर्जुन से कही थी। देखो महाभारत आदि पर्व अध्याय २१४।

उलूप्युवाच—

ऐरावतकुलेजातः कौरव्यो नाम पन्नगः।
तस्यास्मि दुहिताराजन्नुलूपीनाम पन्नगी ॥ १८ ॥
साहंत्वामभिषेकार्थ—मवतीर्णंसमुद्रगाम्।
दृष्ट्वैवपुरुषव्याघ्र कन्दर्पेणाभिमूर्च्छिता ॥ १९ ॥
तांमामनङ्गग्लपितां त्वत्कृते कुरुनन्दन ! ।
अनन्यांनन्दयस्वाद्य प्रदानेनात्मनोऽनघ ॥ २० ॥

उलूपी बोली कि—हे राजन् ऐरावत कुलमे उत्पन्न हुआ कौरव नाम का एक नाग है उस की मैं पुत्री हूं और मेरा नाम उलूपी है। हे पुरुषसिंह। मैंने तुमको जवसे गङ्गा में स्नान करते हुए देखा है तवसे मुझे कामदेव पीडा देरहा है। हे कुरुनन्दन! तुम्हारे लिये कामदेव ने मुझे सोख लिया है, मै एक तुम्हारे ही आधार पर जी रही हूं और अभी कुआरी हूं इस कारण तुम अपना शरीर मुझे अर्पण करके हे निष्पाप राजन्! आज मुझे आनन्द दो। आशा है कि हमारे इस सत्य समाधानसे लेखक महाशय का भ्रम दूर होजावेगा।
इसके आगे आप लिखते हैं कि "जिन स्त्रियोंका नाम प्रातःकाल लेना वड़ा पुण्यदायक माना जाता है उन पञ्च कन्या (द्रोपदी, कुन्ती, तारा, अहल्या, मन्दोदरी,) में से दो ऐसी हैं जिन्होंने एक पतिके मरने पर अन्य पति वनाया, अर्थात् तारा ने वालि के पीछे सुग्रीवको और मन्दोदरी ने रावणके पीछे विभीषणको पति वनाया था"। अहल्यादि का विवाह हो चुका था यह वात सव को मान्य है-फिर वे कन्या कैसी? उणादि सू० प० ४। ११२ में स्वा० दयानन्द ने भी कुमारी का नाम कन्या लिखा है। पाणिनीय अष्टा० ४। १। ११६ सूत्र पर महाभाष्यकार आदि सभी टीकाकारों का यह कथन मिलेगा कि विवाह से पूर्व अविवाहित कुमारी का ही नाम कन्या है जव

अहल्यादि कन्या ही न थीं तो इन को पञ्चकन्या लिखना मूर्खता नहीं तो और क्या है ? । आचार मयूखादि में उक्त श्लोक इस प्रकार लिखा हुआ पाया जाता है—

अहल्या द्रौपदी सीता, तारा मन्दोदरी तथा ।

पञ्चकं ना स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥

तारा वानर कन्या थी ऐसा वाल्मीकीय रामायण में लिखा है ऐसी दशामें लेखक का क्या यह अभिप्राय है कि वानरों के तुल्य मनुष्यों में भी विधवाविवाह प्रचलित हो जावे ? यदि यह बात नहीं है तो तारा का दृष्टान्त क्यों दिया गया ? रहा यह प्रश्न कि हम लोग तारा को प्रातःस्मरणीय क्यों मानते हैं तो संक्षेपमें इसका उत्तर यह है कि सत्यवादी हरिश्चन्द्रकी स्त्रीका नाम भी तारा था तथा तारा नाम की अन्य भी कई देवियां हुई हैं। इस कारण जब तक इस बात का प्रमाण न मिले कि यहां तारा से अभिप्राय वालि की स्त्री ही से है तब तक यही समाधान पर्याप्त है। बन्दरी तारा का दृष्टान्त समाजियों ही को मुबारक हो। रही मन्दोदरी के विषय में सो उसके उत्तरमें वक्तव्य यह है कि जब तक लेखक महाशय किसी इतिहास पुराण का प्रमाण इस विषयमें न दें तबतक यह मान लेना चाहिये कि मन्दोदरी के पुनर्विवाह की बात मिथ्या है। यदि रावणके मरने पश्चात् विभीषणके घरमें रहनेका नाम विधवाविवाह है तो क्या समाजियोंके भाई आदिके मरने पर उन २ की पत्नी समाजियोंकी भौजाई माता आदि उनके घर में नहीं रहतीं ? । यदि रहती हैं तो क्या उन के साथ विवाह हुआ मान लिया जाता है ? ॥

पाठक गण! हमने यथासम्भव स्वामी मङ्गलानन्द [जिन्होंने मार्च के अङ्कमें अपना नाम दर्शक लिखदिया था किन्तु मईके अङ्कमें अपनेको प्रकट कर दिया है] की शङ्काओं का उत्तर दे दिया है। हमको आशा है कि स्वामी जी हठको छोड़ कर सत्य बात को ग्रहण करेंगे। सनातनधर्मका सेवक——स्वामीदयालसिंह वर्म्मा, वारबङ्की

प्रार्थना ।

यह देश दृश्य सुन्दर अब तो दिखा दे भगवन् ।
शुभ देश भक्ति धारा संचार कर दें भगवन् ॥
है स्वार्थ त्याग नौका अरु एक ब्रह्म नाविक ।
बस अभ्युदय के पथ पर अब तो चलादे भगवन् ॥
जब द्वेष अंध उठता किश्ती है डगमगाती ।
सत् प्रेम रूप लंगर तब तो गिरा दे भगवन् ॥

स्वार्थी हज़ारों द्वेषी हम को सता रहे हैं ।
संख्या इन्हीं की अब तो परिहार करदे भगवन् ॥
विचरे सदा यह किश्ती प्रति देश भक्त हृद में ।
स्वातन्त्र्य मार्ग जल्दी अब तो बना दे भगवन् ॥

श्यामलाल पाठक ।

भगवतः श्रीगोविन्दस्य—

कृपाप्रार्थनाष्टकम् ।

जाज्ञायते वाग्मिवरः प्रमूको लालङ्घ्यते भूभृनमप्यजङ्घः ।
आश्रित्य यां भो भुवनेशितस्तां नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ १ ॥
यल्लेशमासाद्य तरुत्वभाजौ भूनेशमित्रस्य वरौ सशापौ ।
शुद्धां भजेतेस्म जनि नु भोस्तां नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ २ ॥
यस्याः समालम्बनमाचरद्भि-र्नाराद्ध एको व्रजगोपडिम्भैः ।
व्यस्ताप्यटव्यां व मुहूर्तकं तां नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ३ ॥
यामारिरात्सुः सुरराजतुल्यो भूपोऽथ नाभागजनिः समार ।
क्लिष्टः पुरा दूषितवाससातां नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ४ ॥
आकृष्यमाणामवराद्ध्य वस्त्रां पारं पर या व्यसनार्णवस्य ।
सम्प्रापयामास सुकेशिनीं तां नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ५ ॥
नाभूद्विचेताः सुकृतात्सुरक्षः प्रह्लादनामा सुविचारदक्षः ।
आपत्तिग्रस्तोऽपिच यत्प्रभावा-न्नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ६ ॥
वैवस्वताघातकठोरदुःखाद्-विभ्यद्यदायां प्रवृणीत लोकः ।
गच्छेत्तदागम्यमृपिप्रकाण्डै-र्नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ७ ॥
दर्पं न वाञ्छामि मनस्विताया नो वा गरिम्णे स्पृहयामि नाथ ।
एकां निवृत्ति परमां दिशन्ती-नानाथिम गोविन्द कृपां त्वदीयाम् ॥ ८ ॥
त्वय्यर्पिताहारविहारचेष्ट-स्त्वामेव नित्यं प्रणमामि मौनः ।
गतिस्त्वमेवासि ममामृतेश क्रिये त्वयाऽहं स्वकृपारसालः ॥ ९ ॥

पं० जीवनराम शर्म्मा त्रिपाठी फतेपुर (जयपुर)

मैंने आर्यसमाज क्यों छोड़ा?

संसार में कोई कार्य बिना कारण के नहीं होता है जितने कार्य होते हैं वे सभी किसी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष कारण के अनुगामी ही होते हैं । जिस पुरुष ने ८ । ९ वर्ष आर्य समाज में रहकर पूर्णरूप से सामाजिक जगत् मे प्रतिष्ठा पाई हो वह एक

साथ उसको सर्वदा के लिये तिलाञ्जलि दे देवे, इसका भी कुछ न कुछ कारण अवश्य होना चाहिये यह जिज्ञासा प्रत्येक पुरुष के हृदय में इस समय उत्पन्न हुई दीखती है। इसके निराकरण के लिये अब मैं कुछ लिखता हूं-आशा है कि उदार हृदय पाठक इस मेरे लेख को ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे॥

मैं कौन हूं और कैसा हूं इस बातके बतलानेकी कोई आवश्यकता नहीं है क्योंकि सभी मुझसे अथवा मेरे नाम से परिचित हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है [मैंने आर्यसमाज क्यों छोड़ा] यह बतलाऊं। बहुत से पुरुष कहते हैं कि "पं० अखिलानन्द जी ने धन के लोभसे आर्यसमाजको छोड़ा है"। परन्तु यह बात सर्वांश में सर्वथा असत्य है। आर्यसमाज में रहकर मैंने १००) मास के हिसाब से आर्योंसे वसूल किये। जो मेरे सभी इष्ट मित्र जानते हैं। प्रतिष्ठा भी मेरी समाज में इतनी थी कि शायद ही इस समय में किसी अन्य की हो। पुराने सद्धर्मप्रचारक और आर्यमित्र के फायलों में समाज के बड़े २ लीडरों ने मेरी प्रतिष्ठा के गीत गाये हैं। जो अभी तक विद्यमान हैं। इसलिये न तो मैंने धन के लालच से समाज को छोड़ा और न प्रतिष्ठा के लालच से। जिन कारणों से मैंने समाज को छोड़ा है वे निम्न लिखित हैं॥

१-आर्यसमाज वैदिकधर्मका पूर्ण विरोधी है। वह वेदका बहाना करके भीतर २ नास्तिकता का प्रचार कर रहा है। वेद की जो २ आज्ञायें हैं समाज उन सब के विरुद्ध चल रहा है। इसलिये समाज का अवैदिक होना उस के छोड़ने में प्रथम कारण है॥

दूसरा कारण-वर्णव्यवस्था है। आर्यसमाज वर्णव्यवस्था को जन्म से नहीं मानता है। मैं वेदों के आधार पर जन्म से वर्णव्यवस्था मानता हूं गुण कर्म से नहीं वैदिक वर्णव्यवस्था में जन्म गत वर्णव्यवस्था का ही मैंने प्रतिपादन भी किया है।

तीसरा कारण-मूर्तिपूजन है। आर्यसमाज मूर्तिपूजन को नहीं मानता है। मेरे पूर्वज और मैं स्वयं उसको वैदिक मानता हूं। इसी लिये मैंने कभी समाज में रहकर भी उसका खण्डन नहीं किया है॥

चौथा कारण श्राद्ध है। मृतक श्राद्ध वैदिक होनेके कारण अनादि काल से चला आ रहा है। इसी लिये मैं उसको वैदिक मानता हूं और समाज में मैं जबतक रहा था तब तक बराबर मृतक श्राद्ध प्रतिवर्ष करता रहा हूं। आर्यसमाज उसको नहीं मानता है। यह भी उसके छोड़ने में प्रधान कारण है॥

पांचवां कारण नमस्ते २ का सैरवीचक है। प्राचीन परिपाटी अभिवादन करने प्रणाम करने, और चरणस्पर्श करने की है। आर्यसमाज उस को तोड़ कर-नीच

भंगी चमार खटीक आदि सभी द्विजेतर संकर जातियों से नमस्ते का व्यवहार करता है इस लिये मेरा इस में सहमत न होना भी इस के छोड़ने में कारण है ।

छठा कारण विधवा विवाह है विधवाविवाह धर्म नहीं किन्तु यह व्यभिचार बढ़ाने वाला अवैदिक अधर्म है ॥ स्वा०द० ने भी इसका खण्डन किया है आर्यसमाज उसका प्रचार करके व्यभिचारकी मात्रा बढ़ाता है । यह भी इसके छोडने में कारण है मैं न तो विधवाविवाह मानता हूं और न नियोग को मानता हूं ॥

सातवां कारण शुद्धि है । मै आज कल समाजमें जो जन्म के मुसलमानों की शुद्धि हो रही है उस से सहमत नहीं हूं । और इस से बढ़कर कोई नीच कार्य मैं नहीं समझता हूं । आर्यसमाज उस का प्रचार करता है । इस लिये भी मैंने उस को छोडा है ।

आठवां कारण ब्राह्मण जाति का अपमान है । आर्यसमाज ब्राह्मणों का अपमान करता है। और नीच जाति का आदर करता है । मैं जन्म का ब्राह्मण हूं। मेरे से यह नही देखा गया । इस लिये भी मैंने उस को छोडा है ।

नवां कारण समाज में पतित जातियों का अधिक होना है । समाज में उच्च जातियां नहीं के बराबर है उस मे अधिकतर नीच कोटि की जातियां ही हैं । उन के साथ बैठकर भोजनादि व्यवहार करना, मैं महापाप समझता हूं : इस लिये यह भी उस के छोडने में प्रधान कारण है ।

दसवां कारण अथर्व वेदका अधिकतर स्वाध्याय है । जब से मैंने बार बार अथर्ववेद का स्वाध्याय किया तब से आर्यसमाज के सभी सिद्धान्त मुझ को अवैदिक प्रतीत होने लगे । इसी लिये उन को प्रकट करने के लिये मैंने (अथर्ववेदालोचन) लिखा है । वेदादि सत्य शास्त्रों का निरन्तर अवलोकन भी समाज के छोडने का प्रधान कारण है ।

ग्यारहवां कारण संध्या जप अग्निहोत्र आदि का अवैदिक तरीका है । समाजी बड़े २ उत्सवों में जूता पहिनकर बिना जलके [आपो भवतु पीतये] करते हैं । जप का नाम भी समाज भरमें नहीं हैं । अग्निहोत्र घुनी बबूल की लकड़ियोंसे समाजोंमें होता है। यह सभी कार्य विधि विरुद्ध देखकर मैंने समाज को छोडा है । समाज (स्वार्थ साधनपरक) नास्तिक जन समूह है । महा पुरुषों का निन्दक और भ्रष्टाचार प्रवर्तक है । संस्कृत विद्या का विरोधी और अवैदिक ग्रन्थों का प्रचारक है। इस में वेदज्ञ विद्वान् कदापि न रहे और न रहेंगे यह जानकर मैंने सर्वदा के लिये इस को तिलांजलि दे दी । और त्रिवेणी तट पर प्रायश्चित्त करके सनातन वैदिक धर्म को पूर्ण रूप से स्वीकृत किया है । पहिले भी २७ वर्ष तक मैं सनातनधर्मी ही रहा हूं। बीच में पापोदय होने के कारण इस प्रकार का अनर्थ मेरे से हो गया जिसका मुझ को प्रायश्चित्त करना पड़ा है । ईश्वर अब मेरे मन को सर्वदा धर्म में प्रवृत्त करे। यही निवेदन है ।

अखिलानन्द कविरत्न ।

उद्बोधन।

प्राचीन भारत धर्म का झण्डा उठादो वीर हो।
यश, तेज, विद्या, बल, पराक्रम को दिखादो वीर हो॥
हम ही सनातन आर्य हैं-आचार्य हैं संसारके,
डङ्का बजा निज नाद को जग में गुंजा दो वीर हो॥
हा! वर्ण मर्यादा शिथिल हो वर्णसङ्करता बढ़ी,
अब वर्ण आश्रम को पुनः जिन्दा बनादो वीर हो।
प्राचीन आश्रमधर्म, भारत-जाति ही से उठ चला,
फिर ब्रह्मचर्याश्रम नियम स्थापन करा दो वीर हो॥
मूर्खत्व अविवेकत्व हा! आर्य स्त्रियों में छा रहा,
उन को पतिव्रत धर्म की शिक्षा दिला दो वीर हो॥
होते तुम्हारे आज क्या हा! हो रही गति धर्म की,
आलस्य निद्रा त्याग तारा, बल दिखादो वीर हो॥

श्रीतारादत्त पाण्डेय।

विजय-प्रार्थना।

जिस युद्ध के कारण सदा राजा प्रजा सब हैं दुखी।
सम्भव नहीं परमात्मा भी हो कभी इससे सुखी॥
फिर क्यों दयामय! देखते दुःखमय अहो इस सृष्टिको,
अब फेरते हो क्यों नहीं अपनी दया की दृष्टि को॥
प्रायः सभी ही शक्तियां हैं लड़रहीं जिस युद्ध में।
धन धान्य वैभव लग रहा संसार का जिस युद्ध में॥
पात्र बन भारत भी जिस में काम है कुछ कर रहा।
सम्राट् की बस हो विजय यह मन्त्र नितप्रति जप रहा॥

हो अन्त अब इस युद्ध का सुख शान्ति का संचार हो।
बस मित्रदल की हो विजय अरु शत्रु का संहार हो॥
हिल मिल रहें सब जन सदा धन धान्य से सम्पन्न हों।
आरूढ़ हों कर्त्तव्य पर कोई नहीं भी खिन्न हों॥

श्यामलाल पाठक।

समाचारावली।

अनूपशहर में आर्यसमाज का पराजय।

श्रीसनातनधर्मबालसभा अनूप शहर जि० बुलन्दशहर का प्रथम वार्षिकोत्सव ता० २६,३० सि० तथा १ अक्टूबर सन् १६१७ को बड़ी धूमधाम से हुआ २६ ता० (अनन्तचौदस) को ३॥ बजे सायंकाल से वेदभगवान् की सवारी बड़ी धूमधाम से निकाली गई। सवारी के सिंहासन को ब्राह्मणों ने ही अपने कन्धों पर रक्खा था, जिसके साथ तीन भजन मण्डलियां भजनों द्वारा उपदेश दे रही थीं, नगरकीर्त्तन के साथ अनुमान से अधिक पब्लिक का संगठन था। सनातनधर्म की जय २ कार हो रही थी, इस उत्सवमें बाहर से प० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी कविरत्न प० अखिलानन्द शर्मा, प० जयदेव शर्मा द्विवेदी तथा अन्य कई उपदेशक पधारे थे, इन महोपदेशकों के तीन दिनों तक सनातनधर्मके विविध सिद्धान्तों पर बड़े २ प्रभावशाली व्याख्यान हुए।

इस उत्सव में विशेष बात यह हुई कि चैलेंज देने पर भी आर्यसमाजी शास्त्रार्थ करने को न आये। यद्यपि विज्ञापन पत्रों में प्रत्येक मतानुयायी को खुला चैलेंज दिया गया था जिस किसी को स०ध० के सिद्धान्तों पर शंका हो वह शास्त्रार्थ के लिये मैदान में आये पर सनातनधर्मरूपी तेजस्वी सूर्य के सन्मुख आंख मिलानेकी भी शक्ति किसी में नहीं हुई। अनूप शहर आर्यसमाज के मन्त्री ने प्रतिनिधि सभा से उपदेशक मांगा था और विज्ञानभिक्षु नामक किसी समाजी उपदेशक को भी बुलाया था पर कोई नहीं आया, प० शिव शर्मा आकर भी छिपे रहे। सनातनधर्मी विद्वानों के नाम सुनकर ही उनके होश बिगड़ गये। इस तरह उत्सव सफलता के साथ हुआ पर समाजियों के अभिमान पर सौ घड़े पानी गिर गया।

नि० लालबहादुर सक्सेना

श्राद्ध पर शास्त्रार्थ ।

भाद्रपद शुक्ल द्वादशी को जब स्थानीय आर्यसमाज के "अग्रगन्ता" सनातनधर्म प्रचारिणी सभा में परास्त हो चुके तब उनमें बड़ी हल चल मच गई और झट मेरठ से पं० छुट्टनलाल जी को बुलवाया और एक सभाका आयोजन करके विज्ञापन प्रकाशित किया कि ७ अक्टूबर को आर्यसमाज में "श्राद्ध की अवैदिकता" पर व्याख्यान दिया जायगा और एक खुला चैलेंज सनातनधर्म प्रचारिणी सभा के मन्त्री पं० नन्दकिशोर जीके पास आया उसमें लिखा था कि यदि आप शास्त्रार्थ करना चाहें तो सभा स्थान में पधारें। तदनुसार विद्यावारिधि जी के शिष्य पं० लालमणि पूठिया, पं० हरप्रसाद जी, पं० मनोराम प्रभृति मन्त्री के साथ आर्य मन्दिरमें पधारे। और शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। पं० छुट्टनलाल जी ने आर्यसमाज की ओर से कहा, कि श्राद्ध से हम जीवित पितरों का श्राद्ध प्रतिपादन करते हैं क्योंकि मृतक श्राद्ध वेदोक्त नहीं है इसपर सनातनधर्म प्रचारिणी सभा की ओरसे पं० लालमणि जी पूठिया ने उत्तर दिया कि आप किस पद्धतिके अनुसार जीवित श्राद्ध करते हैं उसको दिखाइये। इसके उत्तर में पं० छुट्टनलाल जी कोई पद्धति न बता सके। पुनः पं० लालमणि जी ने "आयन्तुः नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः" तथा "येनिखाता ये परोप्ता येदग्धा ये चोद्धिताः" ये अग्निदग्धाः येऽनग्निदग्धा आदि वैदिक मन्त्रों से श्राद्ध का वैदिक कर्म होना प्रतिपादित किया। पं० छुट्टनलाल जी इन वेदमन्त्रों का अर्थ स्वामीजी के भाष्य के अनुसार कुछका कुछ करने लगे। तब पं० लालमणि जी ने कहा कि आप व्याकरण की दृष्टि से यह विचारिये कि आप का किया हुआ अर्थ न्याय संगत है वा नहीं। यह सुनते ही छुट्टनलाल जी के होश उड़गये। और व्याकरण के अनुसार अर्थ न कर सके। यह देख आर्यसमाजी भी समझ गये कि मृतक श्राद्ध का विधान वेदोंमें अवश्य है क्योंकि पं० छुट्टनलाल जी ने देवयान और पितृयान मार्ग को मनुष्य लोक से पृथक् स्वीकार कर लिया और कहा कि "विधूर्ध्वभागे पितरोवसन्ति" चन्द्रमा के ऊर्ध्व भाग में पितर बसते हैं। इस प्रकार आर्यसमाजियों ने अपने पक्ष की निर्बलता देखकर दो घंटे की जगह डेढ़ ही घंटे में शास्त्रार्थ समाप्त कर दिया। केवल यह कहकर टाल दिया कि इस समय ग्रन्थोंके न होनेपर हम सब बातोंका याथातथ्य उत्तर नहीं दे सकते॥

दीनानाथ उपदेशक—

—मुरादाबाद।

कानपुर में धर्मप्रचार ।

श्रीकुमार सनातनधर्म सभा कानपुर का द्वितीय वार्षिकोत्सव ता० २७ सितम्बर को ५॥ बजे से स्थानीय क्राइस्ट चर्चकालेज हालमें बड़े समारोह के साथ हुआ सभाप-

तिका आसन श्रीमान् पं० हरिश्चन्द्र जी मिश्र एम० ए० हिस्ट्री रिसर्च स्कालर प्रोफेसर क्राइस्ट चर्चकालेज कानपुर ने सुशोभित किया। व्याख्यान दाताओं में श्रीमान् पं० रामचन्द्र जी शुक्ल एम० ए० ने गीता पर एक महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित व्याख्यान दिया, तथा पं० अयोध्यानाथ त्रिपाठी वकील ने भारत की प्राचीन सभ्यता पर एक सुललित एवं मधुर व्याख्यान दिया, पं० नन्दकिशोर जी तथा श्रीयुत मन्नीलाल जी ने अपने उत्तम भजनों द्वारा सर्व श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। अन्त में सभापति जी ने भी अपने विचार प्रकट करके सभा की कार्यवाही समाप्त की। उक्त सभा कानपुर के "ब्रह्मावर्त्त सनातनधर्म महामण्डल" की शाखा सभा है॥

निवेदक— लक्ष्मीकान्त त्रिपाठी

वार्षिकोत्सव।

सनातनधर्म सभा विजयगढ़ जि० अलीगढ़ का वार्षिकोत्सव ता० २०।२१।२२ और २३ नौम्बर को बड़े समारोह के साथ होगया।

ब्राह्मण सभा ज्योंता उत्सव।

सर्व ब्राह्मण सभा ज्योंता पो० खिमसेपुर जि० फर्रुखाबाद ने अपने तत्त्वावधान में एक पाठशाला एक वर्षसे स्थापित कर रक्खी है जिसमें १०-५ ब्रह्मचारी विद्याध्ययन करते हैं इस पाठशाला का वार्षिकोत्सव विजयादशमी पर हुआ था। इटावे से प०ब्रह्मदेवजी मिश्र काव्यतीर्थ भी पधारे थे, आपके तथा अन्यान्य सज्जनोंके व्याख्यान से ग्राम निवासियों को बड़ा लाभ पहुंचा। पाठशाला के लिये कुछ चन्दा भी प्राप्त हुआ। निवेदक,

पं० राजाराम मन्त्री

अलीगढ़ प्रान्त में धर्मोत्सव।

सनातनधर्मसभा डर्डेसरी जि० अलीगढ़का प्रथम वार्षिकोत्सव श्रीमान् ठा० रुस्तमसिंहजीके सभापतित्वमें आश्विनशुक्ला १२-१३ स० ७५ को सानन्द समाप्त हुआ जिसमें, मेंडूके पं० प्यारेलाल जी महोपदेशक पं० श्रीनिवास शास्त्री पुरदिल नगर प० कन्हैयालाल जी हाथरस पं० रामचन्द्र वैद्य मोहनी आये थे इसके सिवाय कई भजनोपदेशक भी थे। इन सज्जनों के व्याख्यानों से ग्राम निवासियों को बड़ा लाभ पहुंचा। सभाके दूसरे दिन दयानन्दियों ने कुछ शंकायें कीं जिनका उत्तर विद्वत्ता पूर्वक दिया गया, समाजियों के मुख फीके पड़ गये। तीसरे दिन प्रातः गणेशादि देवपूजन हुआ, सायंकाल सभा होकर सम्राट् की विजय प्रार्थनानन्तर सभा विसर्जित हुई।

निवेदक-रामचन्द्र वैद्य

अमृतसर में धर्म की जय।

आर्यसमाजके उत्सवमें सनातनधर्मी पंडितों से तीर्थ विषय पर शास्त्रार्थ ६ नवम्बर १६१७ को ४। बजे सायं से ६॥ बजे तक हुआ। आर्यसमाज की ओर से पं० लोकनाथ जी उपदेशक और सनातनधर्म की ओर से हिन्दू सभा हाईस्कूल अमृतसर के प्रधानाध्यापक श्रीमान् पं० मिहिरचन्द्र जी शास्त्री थे। शास्त्री जी ने विषय-स्थापन करते हुए कहा कि समाज की ओर से गंगादि तीर्थ स्नानादि का दोष या निषेध वेद से सिद्ध किया जावे और हम वेदादि शास्त्रों से गंगादि तीर्थ-स्नान को सिद्ध करेंगे इस पर समाजी बहुत घबड़ाये और इस विषय-व्यवस्था पर आना कानी करने लगे। पर शास्त्री जी ने पीछा नहीं छोड़ा, अतः अन्त में पबलिक के सामने उन्हों ने स्वीकार किया कि वेदों में तीर्थों के स्नानादि का दोष या निषेध नहीं है। तब शास्त्रीजी ने कहा कि तीर्थस्नानादि वेदविरुद्ध न हुए। फिर आर्यसमाज के बड़े भारी पण्डित स्वामी मुनीश्वरानन्द जी ने कहा कि वेद में तीर्थ का नाम भी नहीं निषेध किस का हो तब शास्त्री जी ने कहा कि यही प्रतिज्ञा कीजिये समाज यह सिद्ध करे कि वेदों में तीर्थका नाम ही नहीं हम सिद्ध करेंगे कि नाम तो क्या वेदोंमें तीर्थ स्नान दान और स्तुति भी है इस पर शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ तब शास्त्री जी ने वेद मन्त्र और ब्राह्मण निरुक्त और स्मृति के प्रमाणों से उपरोक्त विषय सिद्ध कर दिखाया जिस से आर्य समाजी और सनातनधर्मी अत्यन्त प्रसन्न हुए आखिर में समाज के नेता तथा सभा पति पं० शिवदत्तराम जी ने शास्त्री जी की शास्त्रार्थ शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और धन्यवाद दिया।

कानपुर में धर्मोत्सव

गत २२-२३ तथा २४ नौम्बर को कानपुरके श्री ब्रह्मावर्त्त सनातनधर्म मंडल का वार्षिकोत्सव बड़ी धूमधाम से हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती, पं० नन्दकिशोर जी वाणीभूषण, पं० श्रवणलाल जी व्याख्यानकौस्तुभभूषण तथा पं० कालूराम शास्त्री आदि विद्वान् बाहर से पधारे थे, इन महोपदेशकों के तीनों दिन सनातनधर्मके विविध विषयों पर व्याख्यान हुए व्याख्यानों का प्रभाव अच्छा हुआ भीड़ भी खासी होती रही, कानपुर जिले में कई सभा इस मण्डल की शाखा हैं। मण्डल को एक उपदेशक नियत करके जिले में धर्म प्रचार कराने का उद्योग करना चाहिये।

पृष्ठ ३८० से आगे (दो मित्रों का संवाद)

(५) स० प्र० पृ० १२० में (अङ्गादङ्गात्संभवसि हृदयादधि०) मन्त्र सामवेद में स्वा० द० ने बतलाया है और संवत् १६३३ की छपी संस्कार विधिके पृष्ठ ३८ में लिखा है कि यह मन्त्र चारों वेदों में है, परन्तु स्वा० दयानन्द जी के माने चार में से किसी भी वेद में यह मन्त्र नहीं होने से स्वा० द० का लिखना केवल मिथ्या है॥

(६) स० प्र० पृष्ठ २२३ मे लिखा है कि (ततो मनुष्या अजायन्त)-यह यजुर्वेदका वचन है, परन्तु स्वा० दयानन्द के माने हुए चारों वेदों मे उक्त वचन नही हैं इससे यह भी लेख मिथ्या है ॥

(७) स० प्र० पृष्ठ १२० मे लिखा है कि-" गर्भवती स्त्री से एक वर्ष समागम न करने के समय में पुरुष वा स्त्री से न रहा जाय तो किसीसे नियोग करके उसके लिये पुत्रोत्पन्न कर दे " सो क्या गर्भवती स्त्री को अन्य गर्भ रह सकता है ? क्या यह लेख सन्यासी के विचार को कलङ्कित सिद्ध करने वाला नही है ? ॥

(८) स० प्र० पृष्ठ १२६ में (ब्राह्मणस्य विजानतः) गीता के इस वाक्यको वेदों का प्रमाण कह कर लिखा है सो यह भी मिथ्या है ॥

(६) स० प्र० पृष्ठ १३५से (विविधानिच रत्नानि विविक्तेपूपपादयेत्) इस आधे श्लोक को मनुस्मृतिके नामसे लिख कर वहु मूल्य रत्न विरक्त सन्यासीको देना सिद्ध किया है। सो उक्त श्लोक मनुस्मृति मे कहीं न होने से स्वा० द०का यह लेख भी महा मिथ्या है ॥

(१०) स० प्र० पृष्ठ १८६ में लिखा है कि प्राणी और अप्राणी कर्म और यत्न करते हैं-सो अप्राणी स्थावर का कुछ भी यत्न न कर सकने से उक्त लेख भी मिथ्या है॥

(११) स० प्र० पृष्ठ १८८ मे लिखा है कि पीठके मध्य हाड मे मन को स्थिर करके परमेश्वर का ध्यान करे पापाणादि की पवित्र मूर्त्ति द्वारा होने वाले ध्यानका खण्डन और अशुद्ध हाड़ के द्वारा ध्यान बताना आ० समाजियों को हाड पूजने की आज्ञा देना क्यों नही है, क्या आ० समाजी,लोग हाड पूजते हैं ? ॥

(१२) स० प्र० पृष्ठ १६४ में लिखा है कि" ईश्वरको त्रिकाल दर्शी कहना मूर्खता का काम है। पृष्ठ १८५ मे जीव का त्रिकालज्ञ होना लिखा है, फिर संवत् १६३२ के छपे आर्याभिविनय के पृष्ठ८ मे तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाके पृष्ठ ७६ मे भी ईश्वर को त्रिकालदर्शी लिखा है क्या यह महाप्रमाद नही हैं ॥

(१३) स० प्र० पृष्ठ २२८ मे लिखा है कि-पृथिव्यादि लोक घूमते हैं। द्वितीय संस्कार विधिके पृष्ठ १२६ में अथर्ववेदके(ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी०) मन्त्रके अर्थमे पृथिवी को स्थिर लिखा है। यजुर्वेद अ० ७ के (ध्रुवोऽसि०) इत्यादि २५ वें मन्त्र के अर्थ में स्वा०द०ने स्थिर लिखा है। सिद्धान्त शिरोमणिके गोलाध्याय में (भूरचला स्वभावतः) लिखा है। इससे पृथिवी के घूमने का अंग्रेजी मत मानना वेदविरुद्ध है ॥

(१४) स० प्र० पृ० २४१ मे मुक्ति को कारागार और फांसीके समान लिखा है, सो मिथ्या है ॥

(१५)स०प्र० पृष्ठ२४१से सौ वर्षके तीन लाख साठ हजार दिन इबारतद्वारा लिखे हैं किन्तु अङ्कों में नही। परन्तु केवल ३६००० छत्तीस सहस्र होने चाहिये। पाठक देखें कैसा झूंठ है ? ॥

(१६) स० प्र० पृष्ठ २६६ में लिखा है कि हानिकारक व्याघ्रादि पशु वा फांसी आदि से मारे गये मनुष्यों का मांस कोई मांसाहारी मनुष्य खाय तो भी संसार की कुछ हानि नहीं। इसके अनुसार क्या मनुष्य के मांस को खाने की स्वा० द० की आज्ञा को आ० समाजी लोग मान लेंगे।

(१७) स० प्र० पृष्ठ ३३३ में लिखा है कि हिरण्याक्ष पृथिवी को चटाई के समान लपेट कर सिरहाने धरके सो गया,इत्यादि कथाको श्रीमद् भागवतके नामसे स्वा०द० ने लिखा है परन्तु भागवत में ऐसा कहीं न होने से सर्वथा ही मिथ्या है॥

(१८) स० प्र० पृष्ठ ३३३ में लिखा है कि लोहे का खम्भ अग्नि में तपाया गया तथापि उस पर चीटियां चलतीं दीख पड़ीं ऐसा भागवत में लिखा स्वा० दयानन्द ने बताया है। सो आ० समाजी दिखावें कि श्रीमद् भागवत में ऐसा कहां लिखा है?॥

(१९) स०प्र० पृष्ठ ३३४ में लिखा है कि-रथेनवायुवेगेन जगाम गोकुलं प्रति। यह आधा श्लोक श्रीमद्भागवतका है। सो भागवतमें ऐसा कहीं न होनेसे महा मिथ्या है॥

(२०) स० प्र० पृष्ठ ३३५ में लिखा है कि वोपदेव पं० ने अपने बनाये श्लोक हेमाद्रि ग्रन्थ में लिखे हैं कि श्रीमद् भागवत पुराण मैंने बनाया। सो हेमाद्रि धर्म-शास्त्र में वैसे कोई भी श्लोक न होने से स्वा० द० का यह लेख भी गप्प है॥

(२१) स्वा० दयानन्द जी ने अपने संस्कार विधि पुस्तक के आरम्भ में लिखा है कि अन्यान्य लोगों ने जो २ संस्कारों के विधान किये हैं प्रमाणों द्वारा उन २ का खण्डन करके वेद के प्रमाणों से हम संस्कारों का विधान लिखते हैं. अन्यकृत संस्कार विधानों का खण्डन किन्हीं भी प्रमाणों से स्वा० द० ने कहीं भी नहीं लिखा इससे यह भी मिथ्या है॥

(२२) सोलह ही संस्कार हैं इसका कोई प्रमाण वेद का नहीं इससे संस्कारों की सोलह संख्या नियत करना वेद विरुद्ध क्यों नहीं सो बताइये। फिर सोलह संस्कारों की प्रतिज्ञा करके सत्रह क्यों लिखे?। यदि विवाह में गृहाश्रम का समावेश करके १६ कहो तो उपनयन में वेदारम्भ का समावेश करने पर १५ संस्कार ही रह जावेंगे॥

(२३) संस्कारविधि में लिखे अनुसार यदि चन्द्रमा को अर्घ देना ठीक है तो सूर्यनारायण को सन्ध्योपासन के समय अर्घ क्यों नहीं दिया जाता॥

(२४) स० प्र० पृष्ठ ११८ में (देवरः कस्माद् द्वितीयो वर उच्यते) इसको वेद का प्रमाण लिखा है सो यह भी सर्वथा मिथ्या है॥

अब सनातनधर्मी पाठक महाशयों को सूचित किया जाता है कि स्वा० दयानन्द जी के बनाये सत्यार्थप्रकाशादि पुस्तकों में जब ऐसी २ सैकड़ों नहीं किन्तु सहस्रों बातें मिथ्या लिखी हैं, इतनी अपरिमित गप्पें होने पर भी अपने वेद विरुद्ध मत को

वेदानुकूल कहना और शिवपुराण की तथा शिवलिङ्ग पूजा की मिथ्या ही निन्दा करना यह कैसा अन्याय है ? । हमारी सम्मति है कि जब २ जहां २ समाजी लोग मिथ्या दोष लगाने के नोटिस दिया करें तब २ वहां ऊपर लिखे अनुसार इन लोगोंके सत्यार्थ प्रकाशादिमे लिखे मिथ्या प्रलापोंके नोटिस छपा छपा कर इनसे उत्तर मांगना चाहिये जिसके मत मे असंख्य गप्पें भरी हैं जिस का मत पौने सोलह आना वेद विरुद्ध है वह समुदाय वेदानुयायी लोगो को वेद विरोधी कहने लिखने का दुःसाहस करै तो इससे वड़ा और अन्याय क्या होगा ? ॥



साहित्य चर्चा ।

वेदान्तसूत्र वैदिकवृत्ति। यह पुस्तक पण्डित स्वामि हरिप्रसाद वैदिक मुनिका बनाया है और डेमी साइजमे अनुमान ३२ पौण्डके पुष्ट चिकने कागज द्वारा निर्णय सागर प्रेस मुम्बईमें छपा है, शुद्ध और स्पष्ट भी छपा है ६०० नौसौ पृष्ठ से कुछ ऊपर का पुस्तक है, सप्रति कागज की तेजी को देखा जाय तो ऐसे तथा इतने वड़े शुद्ध छपे पुस्तक का ५।) सवा पांच रुपया मूल्य वास्तवमे थोडा है । यह वेदान्त सूत्रवृत्ति श्रीभगवान् शंकराचार्य के भाष्य के अनुकूल न होनेसे तथा आर्यसमाजी मतके प्रायः अनुकूल होने से सनातनधर्मी लोगों के लेने योग्य नहो है और पाण्डित्य युक्त केवल संस्कृत में व्याख्यान होनेसे जो लोग सम्यक् संस्कृत नहीं जानते ऐसे आर्यसमाजी लोग भी इस पुस्तकसे लाभ नही उठा सकते । इतना होने पर भी हम यह अवश्य कहे विना रुक नही सकते कि पं० हरिप्रसाद जी वैदिक मुनिके तुल्य आर्यसमाज में संस्कृतका विद्वान् अन्य कोई भी अबतक प्रविष्ट नही हुआ था । किन्तु आर्यसमाज के स्थापक नेता स्वा० दयानन्द जी भी संस्कृत के ऐसे विद्वान् नही थे । स्वा० द० जी की और वैदिक मुनिकी संस्कृत लेखनशैली ही इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है ॥

पर दुःख की बात है कि वैदिक मुनिका विचार आर्यसमाजी मतसे पीछे हटगया और वेदसर्वस्वालोचन पुस्तक में खुल्लमखुल्ला स्वा० दयानन्द जी के वेदविरुद्ध मन्तव्योंका खण्डन कर दिया है । यदि किसी अन्य आर्यसमाजी विद्वान् ने वेदान्त सूत्रों पर कोई व्याख्या लिखी होगी और इस वैदिक मुनिकृत व्याख्या से मिला कर देखी जायगी तो वह इस के सामने किसी मूर्ख की लिखी जान पड़ेगी । हम अपने भाई आर्यसमाजियों को सम्मति देते हैं कि वे लोग अच्छे पाण्डित्य से युक्त अपने मतानुकूल इस वेदान्त सूत्रवृत्तिको खरीद २ कर अपने २ घरमे एक २ पुस्तक इसलिये

रख लेवें कि अब आगे आर्यसमाज में कोई ऐसा विद्वान् सम्मिलित नहीं होगा और समाजी मतके अनुसार संस्कृत में ऐसा पुस्तक भी आगे नहीं बने छपेगा तथा यह भी ध्यान रहे यह पुस्तक निबट जाने पर फिर बार २ छपने का सम्भव नहीं है इस लिये जिन २ को लेना हो वे महाशय पं० दिवाकरदत्त शुक्ल आचार्य लालसिंह ब्रह्मचर्याश्रम मैनपुरी से पत्र लिखकर मंगा लेवें ॥

योगसूत्र वैदिकवृत्ति।

योगदर्शन योगसूत्र पतञ्जलि मुनिका बनाया प्रसिद्ध शास्त्र है जिस पर व्यास मुनि का भाष्य है, राजा भोजकी बनायी वृत्ति है, विज्ञान भिक्षु नामकएक महात्मा विद्वान् का बनाया योगवार्त्तिक टीका है और वाचस्पति मिश्रकी बनायी टीका है, इसी चार पाद वाले और १६५ सूत्रात्मक योगदर्शन पर उक्त वैदिक मुनिने भी अपनी स्वतन्त्र वृत्ति बनायी है, जैसे योगभाष्यादि सब संस्कृत भाषामें लिखे गये हैं वैसे यह योगवृत्ति भी संस्कृतमें ही की गयी है, कागज और छपाई मध्यम दशामें अच्छी है, मूल्य ॥।) बारह आना रक्खा सो कुछ अधिक है, ॥) मूल्य उचित जान पड़ता है। यह पुस्तक भी आर्यसमाजी मतके अनुकूल ही जानो। प्रारम्भमें सवा पांच पृष्ठमें योग दर्शनकी भूमिका लिखी है, इस भूमिकाके आरम्भ में वैदिक मुनिने लिखा है कि (योगो नाम प्राप्तिः) परन्तु योगभाष्यके प्रारम्भमें व्यासजीने लिखा है कि (योगः समाधिः स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः) इसीके अनुसार योगवार्त्तिक आदिमें लिखा गया जानो। व्याकरणादि की रीति से दो धातुओं से दो प्रकार का योग शब्द बनता है। एक युजिर् योगे धातुसे बने योग शब्दका अर्थ-जोड़ना, मिलना, संयोग, प्राप्ति इत्यादि होता है। और द्वितीय युज समाधौ-धातुसे बने योग शब्द का अर्थ समाधान समाधि, चित्त की स्थिरता एकाग्रता अथवा इन्द्रियों और मन का वशीभूत होना है। यही द्वितीयार्थ इस योगदर्शन में योग शब्द का होना विद्वानों का अभीष्ट है श्रुति प्रमाणादि के अनुकूल भी यही द्वितीय योग पद का अर्थ है प्रथम नहीं यथा-

यदापञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानिमनसासह।
बुद्धिश्चनविचेष्टते तामाहुःपरमांगतिम्॥
तांयोगमितिमन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्॥ कठोपनिषदि

अर्थ-जब मन के सहित पांचों ज्ञानेन्द्रिय चञ्चलता रहित स्थिर शान्ति विषयभोग से उदासीन वा विरक्त हो जाते हैं और जब बुद्धि में हल चल कराने वाली कुछ भी विरुद्ध चेष्टा नहीं होती उसी को विद्वान् ऋषि लोग परमगति कहते और उसी दशा को योग मानते हैं ऐसा योग शब्दार्थ समाधि के साथ घट जाता है उपनिषदादि

ग्रन्थों मे अन्य भी अनेक प्रमाण ऐसे मिल सकते हैं जिन से योग शब्द समाध्यर्थ ही सिद्ध होगा। ऐसे प्रमाणों का ध्यान रखते हुए ही व्यास जी ने योग का अर्थ समाधि लिखा है यह प्रतीत होता है। परन्तु वैदिक मुनि का अर्थ इस से विरुद्ध है। संभव है कि ऐसी भूल समझ पूर्वक की गयी हो अस्तु जो कुछ हो योगवृत्ति पाण्डित्य के साथ लिखी गयी और अच्छी देखने लेने योग्य है। योग शब्द का अर्थ ठीक न होने पर भी सब व्याख्यान दोष युक्त नही हो सकता। इस से जिन को लेना होवे उक्त पते पर पत्र लिखकर मैनपुरी से मगावें।

सामवेद—

पूर्वोक्त वैदिक मुनि जी ने केवल ७० ऋचा का सामवेद छपाया है सामवेद की अन्य सब ऋचा ऋग्वेद संहिता से ली गयी मानकर वैदिक मुनि ने निकाल के ७० मन्त्र रक्खे हैं। प्रथम १७ पृष्ठों में सामवेद की भूमिका वैदिक मुनि ने लिखी है। तदनन्तर परिशिष्ट के ५ मन्त्रो सहित ३८ पृष्ठ मे ७० मन्त्र का सामवेद हिन्दी भाषामें अर्थ करते हुए छपाया है। तदनन्तर अन्त में मूल मात्र पृथक् भी छपा दिया है इस प्रकार ७२ पृष्ठ का पुस्तक और ।) मूल्य है। पं० दिवाकर शुक्ल आचार्य लालसिंह ब्रह्मचर्याश्रम मैनपुरी से मिलेगा-जिन महाशयों को लेना हो मगावें। इस सामवेद के हिन्दी भाषा भाष्यमें प्रत्येक मन्त्र पर कही ईश्वर मुख वचन और कही जीव मुख वचन लिखा गया है। ७० ऋचा का सामवेद मानना वास्तव मे ठीक नही है सामवेदका लक्षण वा स्वरूप क्या है? कितना परिमाण सामका होना ठीक है इत्यादि विचार हम यहां नही लिखते किन्तु वेदसर्वस्वालोचन में वह विचार छपाया जायगा।

लोकमान्य तिलक की ज़मानत। ले० पं० ब्रजनन्दनप्रसाद मिश्र पीलीभीत, प्रकाशक मैनेजर राष्ट्रीय साहित्य कार्यालय पीलीभीत मू० १)

हमारे पाठकोंसे छिपा नहीं है कि अगस्त १९१६मे लोकमान्य तिलकके ऊपर पूना के मेजिस्ट्रेट के यहा राजद्रोह का मुकद्दमा चलाया गया था इस मुकद्दमे का कारण उनके वे व्याख्यान बतलाये गये थे जो उन्होंने बेलगांव व अहमदनगर आदिमे दिये थे, मेजिस्ट्रेट की अदालत में तो तिलक के विपक्ष में फैसला किया गया पर बम्बई हाई कोर्ट मे मुकद्दमा जाने पर अन्त में लोकमान्य की जीत हुई। इस मुकद्दमे में यद्यपि प्रत्यक्षरूप से लोकमान्य का ही सम्बन्ध दिखाई देता था पर वस्तुतः यह राष्ट्र पक्ष और अधिकारियों के बीच में था बम्बई हाईकोर्ट के निर्णयसे यह सिद्ध हो गया कि अधिकारियों के कार्यो की उचित आलोचना करने का प्रत्येक को अधिकार है। प्रस्तुत पुस्तकमे इसी सुप्रसिद्ध मुकद्दमेका पूर्ण विवरण है। पुस्तक के प्रारम्भमे लेखक

महाशयकी योग्यता पूर्ण भूमिका, तदनन्तर श्रीयुत नृसिंह चिन्तामणि केलकर बी०ए० एल०एल० बी० लिखित "लोकमान्य तिलक और राजद्रोह का कानून,, शीर्षक एक उत्तम विचार पूर्ण लेखहै, तदनन्तर मैजिस्ट्रेट की अदालत में मुकद्दमा बैरिस्टरोंकी बहसें, हाईकोर्ट में निगरानी, और मुकद्दमे का विचार तथा हाईकोर्ट का फैसला, स्वराज्यके व्याख्यान सम्वाद पत्रोंकी राय और अन्तमें लोकमान्य की जीवनी दी गई है। इसके लिखने में हमें कोई संकोच नहीं कि अनुवादक महाशयने पुस्तकको अच्छी तरह सजाया है और उन सभी बातोंका इसमें समावेश किया है जिनके होनेकी आवश्यकता थी, पुस्तक के प्रारम्भ में लोकमान्य का एक चित्र भी है।

हर्षचरितस्य पञ्चमोछ्वासः। कविवर बाणभट्ट के प्रणीत ग्रन्थों में हर्षचरित अन्यतम एक ग्रन्थ है इसके कथाभाग में भी वही सुन्दरता है जो उनके प्रसिद्ध ग्रन्थ कादम्बरीमें है। इसका पञ्चमोछ्वास प्रयाग यूनीवर्सिटीके बी० ए० कोर्स में नियत है उसीका सम्पादन श्री रघुवर मिट्ठूलाल श्रीवास्तव्य वेदान्ततीर्थने योग्यता पूर्वक किया है। इसके प्रारम्भ में अंग्रेजी मे भूमिका पश्चात् मूल कथा भाग की अर्थ प्रकाशिका टीका और अन्तमें कथा भागका अंग्रेजीमें अनुवाद दिया गया है। संस्कृत टीका में श्रीवास्तव्य जी ने आवश्यकतानुसार, कोश व्याकरण और अलङ्कारों का भी निर्देश किया है। अच्छा होता कि श्रीवास्तव्य जी सभी हर्षचरितकी ऐसी टीका लिख डालते, जो हो पुस्तक जिस अभिप्राय के लिये लिखी गई है उस के लिये उपयुक्त है पृष्ठ संख्या सब मिलाकर १३० और मूल्य १।) है। मिलने का पता रघुवर मिट्ठूलाल श्रीवास्तव्य, वेदान्ततीर्थ के० पी० कालेज प्रयाग।

जीवनमुक्त नाटक। ले० और प्रकाशक पं० भगवानदत्त पाण्डेय नं० ४१ शिवठाकुर गली, कलकत्ता, मू० १॥)

यह पुस्तक बड़े अच्छे ढग से लिखी गई है इसमें धर्म और सत्य का विजय तथा अनीति अन्याय और अधर्म का पराजय दिखाया गया है। योग्य लेखक ने अपने विषय का प्रतिपादन अच्छा किया है। पुस्तक में स्थान २ पर भजन, कवित्त, गजल और श्लोकादि दिये गये हैं। यद्यपि नाटक बड़ा होने से यह स्टेज पर नहीं खेला जा सकता पर पठन में सर्वथा उपदेशप्रद है। विशेष कर इसमें सत्संगति का अपूर्व प्रभाव दिखलाया गया है जिसके द्वारा जीवनशाह जैसा प्रसिद्ध दुराचारी और मन्दाकिनी आदि वेश्यायें धार्मिका हो गई हैं। पुस्तक के अन्त में कलकत्ते में हुए घृतान्दोलन की भी एक झलक दिखा दी गई है। पृष्ठसंख्या ४०० है।

प्रताप का राष्ट्रीय अङ्क। प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी विजयादशमी को

अवसर पर कानपुर के साप्ताहिक प्रताप का राष्ट्रीय अङ्क निकला है इसमें रायल चौथाई सायज के ४४ पृष्ठ हैं। कागज और छपाई साधारण है पर भिन्न २ विषयों पर लिखे हुए लेख और कविताओं (जिनकी संख्या २५ है) से इसकी शोभा बढ़ गई है यों तो सभी लेख अच्छे हैं पर विशेषत नवयुग का सन्देश, यूरोप मे जनसत्ता, फिलिपिनों को स्वराज्य, पोलैण्ड की स्वाधीनता, टरकी में नई लहर, ईरान में जनसत्ता अमेरिका में हबशी, मिसर में परिवर्त्तन, विशेष महत्त्व के लेख हैं। बा० प्रेमचन्द्र की लिखी सयोग और वियोग, शीर्षक आख्यायिका भी अच्छी है। सब लेख स्फूर्त्तिदायक और स्वराज्यके रग से रगे हैं। ऐसा उत्तम विशेषाङ्क निकालने का श्रेय प्रताप के सञ्चालकों को प्राप्त हुआ तदर्थ हम उनका अभिनन्दन करते हैं। इस अंक का मू० ।/) है मिलने का पता मैनेजर प्रताप कानपुर।

पञ्चराज । नासिकसे निकलने वाले उक्त मासिकपत्र का दीपावली वाला अंक इस वार बडी सज धज से निकला है, इस अक में लक्ष्मी, सरस्वती, और शेष शायी भगवान् के तीन सुन्दर रगीन चित्र हैं, अनेक विषयों के सुन्दर २ लेखों के सिवाय कविताओं का भी समावेश किया गया है, कार्टून्स तो इस की हर एक संख्या में रहते ही हैं पर इस वार वे और भी अधिकता से दिये गये हैं। इस विशेष सख्या मे तीन महानुभावों के जीवनचरित्र भी दिये गये हैं एक स्वर्गीय रामनारायण जी राठी का, द्वितीय ईडर नरेश महाराज प्रतापसिंह का, और तृतीय स्वर्गीय सेठ कस्तूरचन्द जी डागा का, यह पत्र मारवाड़ी समाज के लिये बहुत उपयोगी है मारवाडी समाज में प्रचलित कुरीतियों के दूर कराने में इस का सदा लक्ष्य रहता है वार्षिकमूल्य २) मिलने का पता-मैनेजर पञ्चराज कचेरी, नासिक सिटी।

आर्यमित्र का ऋष्यङ्क । युक्तप्रान्त की आर्यप्रतिनिधि सभा के मुखपत्र आर्यमित्र का प्रतिवर्ष दिवाली के अवसर पर एक विशेषांक निकलता है, इस का नाम रक्खा जाता है ऋष्यङ्क । इसमें आर्यसमाज के रचयिता स्वा० दयानन्द का गुणगान किया जाता है। सदा की तरह वही पिष्टपेषण अबकी वार भी किया गया है अर्थात् स्वा० दयानन्द परिव्राजक थे, योगी थे, कष्टसहिष्णु थे, इत्यादि इत्यादि० । नहीं मालम प्रत्येक वार वही पिष्टपेषण करने से सहयोगी ने क्या लाभ समझ रक्खा है। अच्छा होता कि एक वार ही समस्त गुणों का समावेश स्वा० द० में दिखलाकर सहयोगी अपने कालमों में किन्हीं उपयोगी लेखों को स्थान देता, प्रशंसा की भी तो कोई सीमा होनी चाहिये। इस ऋष्यङ्क का मूल्य ≈) है और मिलने का पता-मैनेजर आर्यमित्र, आर्यभास्कर प्रेस आगरा सिटी।

सिन्धु समाचार । यह साप्ताहिक समाचार पत्र अभी नवीनही निकलना प्रारम्भ हुआ है छपाई और कागज उत्तम है, करांची की प्रियतमधर्मसभा की तरफसे शायद यह निकाला जाता है क्योंकि तद्विषयक समाचार ही इसमें अधिकता से रहते हैं। सिन्ध प्रान्तमें शायद यह पहिला ही पत्र है जो हिन्दी में प्रकाशित होता है इस सदुद्योग के लिये पत्र के सञ्चालक धन्यवाद भाजन हैं सनातनधर्मका यह पत्र सहायक है सनातनधर्म विरोधियों की इस में अच्छी खबर ली जाती है भाषामें अभी सुधारकी आवश्यकता है. जहां तक हो सके छोटे अक्षरों का उपयोग कर पाठ्य विषय को अधिक बढ़ाने की चेष्टा सम्पादक को करनी चाहिये। इसका वार्षिक मूल्य ३) है मिलने का पता मैनेजर सिन्ध समाचार करांची।

कान्यकुब्ज । यह मासिक पत्र पहिले शायद कानपुर से निकलता था अब लखनऊ से निकलने लगा है जबसे इसका सम्पादनभार पं० रूपनारायण पाण्डेय जी ने अपने हस्तगत किया है तब से यह विशेष उत्तमता से निकलने लगा है पिछड़ी हुई संख्याओं को शीघ्र २ प्रकाशित कर अनियमता का दोष भी सम्पादक ने दूर कर दिया है। हम इसकी उन्नति के अभिलाषी हैं। इसका वार्षिक मूल्य १॥) और मिलने का पता—मैनेजर, "कान्यकुब्ज हिवेटरोड़,, लखनऊ है।

विश्वविद्या प्रचारक । यह मासिकपत्र लखनऊ से अभी हाल ही में निकलना प्रारम्भ हुआ है पहिले इसका दफ्तर चन्दौसीमें था अब लखनऊ में है सम्पादक का नाम इस पर नहीं रहता केवल एक देश हितैषी शब्द उस स्थान पर छपा है है, छपाई कागज उत्तम है पत्र सचित्र है पहिले अङ्कमें तीन चित्र हैं। एक सम्राज्ञी मेरी सहित भारत सम्राट् का, द्वितीय राजा साहब महमूदाबाद का, और तृतीय पं० गोकर्णनाथ मिश्रका, इसके सिवाय आवरणपत्र परभी भारतमाताका एक चित्र है जिसके एक हाथमें शान्ति पताका और दूसरे हाथमें विद्या है। लेख साधारणतया अच्छे हैं पर एक दोष है जो कि छोटे २ लेखोंका थोड़ा २ अंश छापकर आगे क्रमशः लिख दिया गया है। इस प्रणाली से पाठकोंको असुविधा होगी, सम्पादक महोदय को लेखोंकी अधिकता का विचार न कर उनकी उपयोगिता और पूर्णता पर ध्यान रखना चाहिये। वार्षिक मू० १।)है मिलनेका पता मैनेजर विश्वविद्याप्रचारक न्यू सिविल लाइन्स लखनऊ।



विविध विषय ।

छु० ला० की श्राद्ध विषयक शंका का उत्तर ।

नवम्बर के वेदप्रकाश में उस के वर्त्तमान सम्पादक छुट्टनलाल ने श्राद्ध विषय में एक शङ्का छापी है उन की समझ में यह एक नई शङ्का है पर इस प्रकार की शङ्कायें

वैदिकधर्म के विरोधी नास्तिकादि सदा ही से करते आये हैं और समय २ पर उनके उत्तर भी होते रहे हैं। छु० ला० का यह भ्रम है कि श्राद्ध के समय यदि पितर वहां जाते हैं तो जीव की हिंसा हो जायगी हिंसा आदि कुछ नहीं होगी, जिन का श्राद्ध उत्तम विधान के साथ होता रहता है वे जन्म मरण के बन्धन से मुक्त होकर पितृ लोक में पहुंच जाते हैं उस दशा मे तो हिंसा की संभावना ही क्या है। द्वितीय दशा में भी मनुस्मृति के प्रमाणानुसार वसु, रुद्र, और आदित्य देवता उन २ पितरों के स्वरूप से आते हैं और श्राद्धगत फल को पितरों के पास पहुंचाते हैं इसी लिये मनु० में "वसून्वदन्ति वै पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्। प्रपितामहांस्तथादित्यान् श्रुतिरेषा सनातनी,, कहा है अतएव श्राद्ध में जलदानादि करते समय वसु स्वरूपो रुद्रस्वरूपः० इत्यादि पितरोंके लिये कहा जाता है। हिंसा को शङ्का छु० ला० का भ्रम है।

बम्बई प्रान्तीय सनातनधर्म सम्मेलन।

गत २५ २६ और २७ अक्टूबरको वम्बई मे सनातनधर्म का एक बडा सम्मेलन हो गया सम्मेलन का आयोजन माधव बागमे किया गया था, सभाका स्थान बड़ी उत्तमता से सजाया गया था कामवन के पीठाधिपति श्री १०८ वल्लभाचार्य जी महाराज सभापति हुए थे, भारतवर्ष के कई प्रसिद्ध धर्मनेता और महोपदेशक इस उत्सव में सम्मिलित हुए थे। प्रसिद्ध सज्जनों मे रीवां नरेश के प्रतिनिधि, जगद्गुरु श्रीमच्छङ्कराचार्य के प्रतिनिधि, श्रीरामानुजार्य के प्रतिनिधि, नाथद्वारे के टिकैत महाराज के प्रतिनिधि, ऋषिकुल हरद्वार के भूतपूर्व मुख्याध्यापक प० गिरधर शर्मा चतुर्वेदी, पं० दीनदयालुजी व्याख्यान वाचस्पति, पं० नन्दकिशोर शर्मा वाणीभूषण, स्वा० स० के प्रमुख डाक्टर सर भालचन्द्र भाटवडेकर, तथा अन्यान्य वम्बईके प्रसिद्ध २ सज्जन उपस्थित थे प्रथम दिन सभापति का निर्वाचन होने के बाद मंगलाचरण और वाद्य हुआ अनन्तर स्वा० समिति के सभापति ने सहानुभूति सूचक पत्र और तार इत्यादि पढ़ सुनाये, इसके बाद स्वा० समिति के सभापति वक्तृता पढ़ी गई। अन्तमें आचार्य चरण श्री सभापति महोदय ने खड़े होकर अपना भाषण सुनाया, तदनन्तर बाहर से आये हुए प्रतिनिधियों की तथा स्थानीय सज्जनों की एक कमिटी बनाई गई। द्वितीय और तृतीय दिन २७ प्रस्ताव उपस्थित अनुमोदित और समर्थित किये गये। सभी प्रस्ताव सुन्दर हैं, एक प्रस्ताव सनातनधर्मियों को यथा सम्भव स्वदेशी वस्तु व्यवहार करने के विषयमें पास हुआ रीति रवाजों की शोध के विषय में भी एक प्रस्ताव हुआ सनातनधर्म के सिद्धान्तों पर कुठाराघात करने वाले बड़ौदा नरेश की कार्यवाहियों पर भी दो प्रस्ताव पास किये गये। इस प्रकार उत्सव सफलता के साथ हुआ वम्बई प्रान्त में इस सम्मेलन के होने से बड़ी जागृति हुई है।

समाजी आर्यमित्र का भ्रम ।

गताङ्क में हमने हिन्दू विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में लिखते हुए हिन्दूविश्वविद्यालय के सञ्चालकों से प्रार्थना की थी कि वे धार्मिक शिक्षा के विषय में मतवादियोंके उपस्थित किये गये झगड़ों पर जरा भी ध्यान न देवें, किन्तु उदार सनातनधर्म की शिक्षा दिलावें, पर आगरे के आर्यमित्र को यह बात पसन्द नहीं आई और उस ने अपना राग अलापना प्रारम्भ किया है वह कहता है कि हिन्दू विश्वविद्यालय सनातनधर्म का सदर आफिस नहीं हैं और वहां पढ़ने वाले शिव जी की चोटी से गंगा का निकास न मानेंगे, इत्यादि । सहयोगी की यह बात सर्वथा व्यर्थ है यदि वहां पढ़ने वाले विद्यार्थी हिन्दूधर्माभिमानी होंगे तो उन को इन सभी बातों पर विश्वास करना ही होगा, । सहयोगी को ध्यान रखना चाहिये कि वेदादि शास्त्रों में प्रतिपादित कितनी ही बातें विश्वास और प्रमाण के आधार पर निर्भर हैं । यदि सहयोगी केवल युक्तिवाद को आधार समझता है तो उसे वेदादि ग्रन्थों को तिलाञ्जलि दे देनी चाहिये । दूसरी बात यह कि यदि हिन्दूविश्वविद्यालय के विद्यार्थी पुराणों में प्रतिपादित और वेदों में समर्थित ऐतिहासिक आख्यानों की सत्यता पर अविश्वास करेंगे तो क्या आर्यसमाजियों की मानी हुई आदि सृष्टि में जवान आदमियों के पैदा होने की सृष्टि क्रम विरुद्ध वाली बात को मान लेंगे? अथवा गर्भवती को नियोग कराकर दूसरा गर्भ धारण कराने की बात को मान लेंगे? जब हिन्दुओं के चन्दे से उदर पोषण करने वाला आर्य समाज की शिक्षा संस्थायें अपने २ शिक्षणालयों में सार्वभौमिक धर्म की शिक्षा का प्रबन्ध न कर सत्यार्थप्रकाश की नियोग प्रचारक शिक्षा दे रही हैं तब हिन्दूविश्वविद्यालय को उदार सनातनधर्म की शिक्षा छोड़कर मतवादियों की संकीर्ण शिक्षा देने का क्या प्रयोजन है? फिर सहयोगी को यह भी सोचना चाहिये कि सार्वभौमिक धर्म शिक्षा कहते किसे हैं, यदि उस का अभिप्राय सत्यभाषणादि की शिक्षा देने से है तो वह तो एक प्रकार से सरकारी विद्यालयों में भी है तब हिन्दू विश्वविद्यालय की धर्म शिक्षा में क्या विशेषता होगी? सहयोगी को दूसरे का असगुन करने के लिये अपनी नाक काटने वाली नीति को छोड़ देना चाहिये ।

दूसरी बात ।

सहयोगी आर्यमित्र ने अपनी २२ नवम्बर की संख्यामें लिखा है कि 'आर्यसमाजी विद्वान् चने चाब २ कर धर्म प्रचार करते हैं और सिर पर किताबों का गट्ठर लाद गांव २ डोलते हैं इस सम्बंध में लिखते हुए उसने यह भी लिखा है कि सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व ने भी लोभ के कारण समाजको त्याग दिया, आर्यमित्रकी यह दोनों बातें बिलकुल मिथ्या हैं । यदि समाजी उपदेशकों को लालच न होता तो वे संन्यासी

होकर हजारों रुपये न जोड़ते, खोंचें वेंचना छोड़कर सैकड़ों रुपये मासिक की आय न करते। सम्पादक ब्राह्मणसर्वस्व विशेष रीति से बुलाने पर कहीं बाहर गये हैं यदि उनको लोभ होता तो वे सनातनधर्म सभाओं के बुलाने की उपेक्षा न करते, हजारों रुपयों की समाजी पुस्तकों को रद्दी न करते,। यह तो समाजियों का एक साधारण स्वभाव है कि जो विद्वान् आर्यसमाजको छोड़ देता है वे उसीकी निन्दा करने लगते हैं।

सनातनधर्म पताका का अन्याय।

सहयोगिनी प्रतिभाने किसी पिछली संख्यामें लिखा था कि मुरादाबाद की सनातनधर्म पताका अन्य मासिकपत्रों से लेख उद्धृत कर लेती है और उनका नाम भी नहीं देती, यह बात किसी अंश में सत्य है। समय २ पर ब्राह्मणसर्वस्व से पताका ने लेख उद्धृत किये हैं कभी तो ब्रा० स० का नाम दिया है और कभी वह भी नहीं। सितम्बर सन् १९१७ की सनातनधर्मपताका में प० अखिलानन्दजी का एक व्याख्यान छपा है यह व्याख्यान सबसे प्रथम हमने अगस्तके ब्राह्मणसर्वस्वमें छापा था और उस व्याख्यान में दो जगह नोट भी दिये थे, ब्रा० स० से इस लेख को मेरठ के धर्मोदय ने उद्धृत किया सितम्बर की संख्या में स० ध० पताका ने इस व्याख्यान को उद्धृत करते हुये टिप्पणियों में सम्पादक धर्मोदय का नाम लिख दिया है और अन्तमें ब्राह्मण सर्वस्व भी छाप दिया है। जब कि ब्रा० स० स० ध० पताका के सम्पादक के पास जाता है तब वे जान सकते हैं कि टिप्पणियां ब्रा० स० की दी हुई हैं धर्मोदय सम्पादक की नहीं, पर उन्हों ने इस पर ध्यान न दिया, जो हो पत्र सम्पादकों को अपने दायित्वभार का ध्यान रखना चाहिये। हमारा यह कथन नहीं कि ब्रा० स० से लेख न उद्धृत किये जावें, पताका सम्पादक ऐसा खुशी से करें, पर जिस मासिकपत्र से जो बात उद्धृत करें उसका नाम तो पूरा दिया करें।

हिन्दी साहित्य-सम्मेलन।

सम्मेलन के सभापतिका निर्वाचन हो गया अब की बार कर्मवीर गांधी सम्मेलन के सभापति चुने गये हैं यह हर्ष की बात है गांधी जी के सभापतित्व में सम्मेलन सफलता प्राप्त करेगा इस में सन्देह नहीं, पर यह बात दुःख की है कि अब की बार इन्दौर में प्लेग का प्रकोप होने से दिसम्बर में सम्मेलन नहीं हो सकेगा इस लिये स्वागतकारिणी समिति के कार्यकर्त्ताओं का विचार ईस्टर की छुट्टियों में १९१८ में सम्मेलन करने का विचार है इस से कुछ हिन्दी प्रेमियों को हताश होना पड़ेगा लाहौर में इसी कारणसे सम्मेलन न हो सका था कि वहां वालो ने समय बदलना चाहा था वही दशा इन्दौरसे है तिस परभी स्थायी समिति चुपचाप है। नहीं मालूम स्थायी समिति ने पंजाब में और इन्दौर में क्यों भेद समझा है?।

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS—ETAWAH.

नक्कालों से सावधान रहिये



यह सरकारसे रजिष्ट्रीकी हुई एक स्वादिष्ठ सुगन्धित दवा है जो केवल पानीमें डालकर पीनेहो से कफ, खांसी, हैजा, दमा, शूल, संग्रहणी, अतिसार, बालकों के हरे पीले दस्त, कै करना, दूध पटक देना आदि रोगों को एक ही खुराकमें फायदा दिखाती है कीमत फी शीशी ॥) डा० ख० १ से ६ तक ≈)



बिना किसी जलन और तकलीफ के दाद को जड़ से खोने वाली यही एक दवा है कीमत फी शीशी ।) १२ लेने से २।) में घर बैठे देंगे।



यदि आपको दुबले पतले और सदैव रोगी रहने वाले बच्चों को मोटा ताज़ा और तन्दुरुस्त बनाना है तो हमारी इस जायकेमन्द दवाको मंगाकर पिलाइये। कीमत फी शीशी ॥।) डा० ख० ।≈)

पूरा हाल जाननेके लिये चार धामका चित्र सहित सूचीपत्र मुफ्त मंगाकर देखिये।

सुधासिन्धु और दद्रुगजकेसरीके विषयमें

राजा साहिब और जज साहिब की राय।

आपका १ दर्जन सुधासिंधु पहुंचा जो आपने भेजा था यह दवा बहुत ही लाभदायक है। बुखार और पेट के रोगोंमें तो बहुत ही फायदेमन्द है और बहुत रोगों में वैसा ही फायदा करता है।

श्रीमान् राजा इन्द्रजीत
प्रतापबहादुर शाह
तमकुही जिला गोरखपुर।

महाशय!

आपकी दवा दद्रुगजकेसरी का प्रयोग किया गया। दाद अच्छी होगई, दवा उपयोगी है।

आपका—
माननीय राजा सर रामपालसिंह
के. सी. आई. ई.
राजकुर्री कुदौली जि० रायबरेली।

दद्रुगजकेसरी की ४ बोतलें बजरिये वेलूपेबिल पार्सल मेरे नाम से भेजिये और ४ बोतलें वी. एन भाजेकर वकील आंग्रे की वाड़ी गिरगांव बम्बई को भेजिये। आपकी दवा हमने बे नजीर पाई अगर हर मर्ज की दवा इतनी अक्सीर हो तो बीमारियोंका डर दुनियांसे कतई जाता रहेगा।

आपका—टी. ए. साठे जज उज्जैन।

मंगाने का पता—
सुखसंचारक कम्पनी मथुरा।

P. O. REGISTERED No. 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

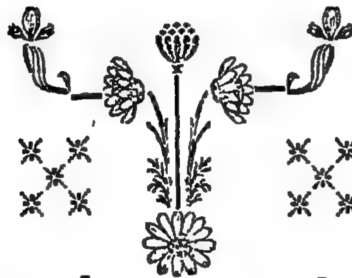
सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	वृश्चिक मार्गशीर्ष वि० १९७४ नवम्बर १९१७	अङ्क ११

सम्पादक-पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची ।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम ।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है ।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० जाता है ।

(३) नमूने की एक प्रति ≋) का टिकट आने पर भेजी जाती है ।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें छला अङ्क विना मूल्य मिलेगा । देर होनेपर ≋) प्रतिके हिसाबसे मू० लिया

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है ।

(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना करना चाहिये ।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≈)॥ तीन मास,तक ≈)। ६ तक ≈) लिया जायगा ।

(८) एकवार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) अ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा ।

(९) विज्ञापन बंटाई एक बार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञा नहीं बांटे जायगे ।

श्रीहरिः ।



उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत ।

भाग १४ | वृश्चिक मार्गशीर्ष सौर वि० १९७४ नवम्बर १९१७ | अङ्क ११

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह।
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ-मङ्गलाचरणम्

अक्षैर्मादीव्यःकृषिमित्कृषस्व वित्तेरमस्व बहुमन्यमानः । तत्रगावःकितवतत्रजाया तन्मेविचष्टेसवितायमर्यः ॥

ऋ० सं० ७ । ८ । ५ । ३

अक्षसूक्ते द्यूतनिन्दा च कृषिप्रशंसा च। निरुक्त०७ । ३ ॥

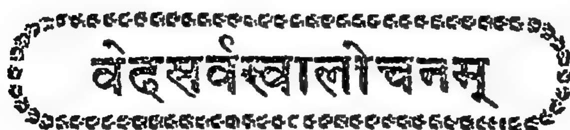
अ०-हे मनुष्य ! त्वमक्षैर्द्यूतोपकरणैर्मादीव्यः । वित्तलोभेन व्यसनात्मकं द्यूतं न कदापि सेवस्व परं कृषिं कृषस्व द्यूतादिवत्कृषौ दोषा न सन्ति किन्तु तस्यां बहवो गुणा वर्त्तन्ते । उत्तरोत्तरं बहु वित्त मम स्यादिति मन्यमानस्त्वं वित्ते रमस्व गृहस्थाश्रमे प्रवृत्तिमार्गेऽभ्युदयसुखेन प्रसीद । हे कितव-ज्ञानयुक्त मानव ! तत्र गृहाश्रमे त्वया दुग्धादिलाभाय गावोऽग्निहोत्रादिधर्ममनुष्ठातुं रतिपुत्रलाभाय जाया पत्नी च रक्षणीया तदेतत्कर्त्तव्यमयं प्रत्यक्षः सविता सर्वप्रेरक आदित्यमण्डलान्तर्गतोऽयमीश्वरः श्रुतिस्मृतिद्वारा मे मम विचष्टे विस्पष्टतया कर्त्तव्यत्वेन वदति ॥

भावार्थः-चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मइति धर्मलक्षणानुकूलं यद्यत्प्रतिषिद्धं तदपि यत्र यत्र विहितं तत्र कर्त्तव्यधर्मरूपेणैव मन्तव्यम् । यथा संग्रामादिषु विहिता हिंसा धर्मरूपेणैव स्वीकृता तथैव द्यूतमपि यत्र यस्य कर्त्तव्यत्वेन विहितं तत्रैव धर्मत्वेन मन्तव्यं तत्र तद् व्यसनात्मकं नास्ति ततोऽन्यत्राधर्मत्वेन त्याज्यम् । कृषिर्यत्र निषिद्धा तत्र सत्ययुगादौ ब्राह्मणाय विशेषेण निषिद्धा, वैश्यशूद्राभ्यां तु सर्वकालं कृषिः कार्या । पराशरस्मृत्युक्तप्रकारेण कलौ ब्राह्मणोऽपि कृषिं कुर्यादिति विधानमत्र च सामान्येन विधानम् । प्रवृत्तिमार्गमनुसरता पुरुषेणाभ्युदयसुखावाप्तये पुत्रोत्पादिका पत्नी गावश्च रक्षणीयाः निःश्रेयससुखावाप्तये निवृत्तिमार्गे गच्छता ज्ञानवैराग्यपरायणेन पुरुषेण कृष्या[illegible] देहरक्षा सर्वे भोगास्त्याज्याः ॥

भाषार्थः-(अक्षैर्मादीव्यः) हे मनुष्य ! तुम धन के लोभ से महाव्यसनरूप जुआ को मत खेलो परन्तु (कृषिमित्कृषस्व) खेती करो क्योंकि जुआ आदि के तुल्य खेती

में दोष नहीं है किन्तु उस खेती में बहुत गुण हैं (बहुमन्यमानो वित्ते रमस्व) आगे २ बहुत धनादि पदार्थ हमारे हों ऐसा मानते हुए संसारी भोगों में तुम रमण करो अर्थात् गृहाश्रमस्थ प्रवृत्तिमार्ग में अभ्युदय सुखको प्राप्त कर प्रसन्न रहो। हे (कितव) कर्त्तव्य के ज्ञान से युक्त मनुष्य! (तत्र गावो जाया) उस गृहाश्रम में तुम को गौओं की और अपनी धर्मपत्नीकी विशेष कर रक्षा करनी चाहिये। अर्थात् दुग्धादि भोज्य पदार्थों के लाभार्थ गौओं को रक्खे और अग्निहोत्रादि धर्मानुष्ठान के लिये तथा रति और पुत्ररूप फल प्राप्ति के लिये विवाहित पत्नी को रखना चाहिये (तदयं सवितार्य्यो मे विचष्टे) सो इस कर्त्तव्य को यह प्रत्यक्ष आदित्यमण्डलान्तर्गत सब का प्रेरक सविता नामक ईश्वर, श्रुति स्मृति द्वारा मेरे लिये विस्पष्टतया कर्त्तव्यरूप से कहता है॥

भावार्थः-वेदमें प्रतिपादित कर्त्तव्यका नाम धर्म है, इस धर्मलक्षणके अनुकूल जो २ काम निषिद्ध है वह भी जहां २ विहित है वहां कर्त्तव्य धर्मरूपसे ही मानना चाहिये। जैसे संग्रामादि के समय विहित हिंसा भी धर्मरूप से ही स्वीकार की गई है वैसे ही जुआ भी जहां जिस के लिये कर्त्तव्यरूप से विहित है वहीं धर्मरूप मानना चाहिये वह द्यूत वहां व्यसनात्मक नहीं है, उस से भिन्न स्थलों में अधर्मरूपसे द्यूत त्याज्य है। खेती करना जहां निषिद्ध है वहां सत्ययुगादि में ब्राह्मणके लिये विशेष कर कृषि निषिद्ध है, वैश्य तथा शूद्रों को सदा ही कृषि कर्त्तव्य है। और पराशरस्मृति में कहे अनुसार कलियुग में ब्राह्मण को भी कृषि का विधान विशेषरूप से है पर इस मन्त्रमें सामान्यतया कृषि का विधान है। प्रवृत्तिमार्गानुगामी गृहस्थ पुरुष को अभ्युदय सुख की प्राप्ति के लिये पुत्रोत्पादिका पत्नी तथा गौओं की सम्यक् रक्षा करनी चाहिये। और निवृत्ति मार्ग के अनुगामी ज्ञान वैराग्य में तत्पर पुरुष को निःश्रेयस सुख की प्राप्ति के लिये खेती आदि सम्बन्धी सभी भोगों का त्याग करना चाहिये अर्थात् कृष्यादि का विधान गृहस्थ के लिये है विरक्त के लिये नहीं है॥



वेदसर्वस्वालोचनम्

(गतांक ७ से आगे)

हमारे पाठकोंको स्मरण होगा कि यजुर्वेद विषयमें आलोचन लिखा जा चुका है अब यहां इस अङ्कमें सामवेदके विषयमें आलोचन किया जायगा, पृष्ठ १५४। १५५ में वै० मु० ने लिखा है कि-"साम मन्त्रोंके समुदाय विशेषको सामसंहिता वा सामवेद संहिता कहते हैं। ००० वर्त्तमान कालमें सामवेद संहिता दो प्रकारकी पायी जाती

है-एक मुख्य, दूसरी अमुख्य, मुख्यको छन्द. संहिता और अमुख्यको गान संहिता कहते है। गायत्री आदि छन्द जिस संहितामें ज्योंके त्यों हैं उसका नाम छन्दः संहिता और गान मात्र है प्रयोजन जिसका ऐसी वर्णविकार आदिके कारण विकृत (बिगड़े) हुए गायत्री आदि छन्दों वाली संहिताका नाम गान संहिता है"

समीक्षा-वास्तवमें साममन्त्रोंके समुदाय विशेषका नाम सामसंहिता नहीं है, और वह मुख्य भी नहीं है, किन्तु उसको छन्दःसंहिता तो कह सकते हैं, और मीमांसा दर्शनमें स्पष्ट लिखा है कि—

तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था ॥३५॥

गीतिषु सामाख्या ॥३६॥ मी० २।१।३५।३६॥

ऋक् वा ऋचा उनको कहते हैं कि जिन मन्त्रोंमें अर्थके आधीन पाद व्यवस्था हो-जैसे-

अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्—पतिः पृथिव्या अयम् ।

इस मन्त्रमे (ककुत्पतिः) ऐसा पाठ मुद्रित होने परभी ककुत्पदका अर्थ सम्बन्ध षष्ठ्यन्त दिवः पदके साथ होनेसे ककुत् पर्यन्त प्रथम पाद माना जाता है, इसी कारण ककुत् पर अल्पविराम करना चाहिये, जिन लोगोंको पादव्यवस्था ठीक-ज्ञान नहीं हुई है वे ककुत् पर विराम न करके ककुत्पतिः ऐसा मिलाकर अशुद्ध पढते हैं। इसी नियमके अनुसार साम गानार्थ संग्रहकी हुई (अग्न आयाहिवीतये०) इत्यादि सभी ऋचाओंमें ऋक्का लक्षण घट सकता है सामका नहीं, इससे साम गानार्थ संगृहीत ऋचाओंका साम नाम न हो सकने पर भी महाभाष्यकार पतञ्जलि मुनिके इस निम्न कथनानुसार कि—

तादर्थ्यात्ताच्छब्द्यं भविष्यति ।

जो जिसके लिये प्रस्तुत किया जाता है उनको उस नामसे कह सकते हैं-जैसे (यूपायदारु यूपदारु । पिचुकार्पासः । कुण्डलहिरण्यम्) यूप बनानेके लिये जो लकडी प्रस्तुत की गयी उसका नाम यूपदारु, रुईके लिये जो कपास है, वह पिचुकार्पास है, कुण्डल बनानेके लिये जो हिरण्य सुवर्ण होता है उसको कुण्डल हिरण्य कहते हैं। वैसे ही सामगानके लिये जो ऋचाओंकी मन्त्र संहिता प्रस्तुतकी गयी उसका नाम साम संहिता वा सामवेद संहिता नाम रक्खा गया है, ऐसा अर्थ करनेसे ऋक्के लक्षणमें अव्याप्ति दोष नहीं आता और (अग्नआयाहि वीतये०) इत्यादि ऋचाओं की ऋक् संज्ञा बनी रहने परभी उक्त प्रकारके तादर्थ्यसे साम संहिता नाम भी ठीक बन जाता है। और यदि वैदिक मुनिके कथनानुसार (अग्न आयाहि०) इत्यादि सामके छन्दोभागको ही मुख्य सामवेद मान लिया जाय तो उस छन्दो भागकी ऋक संज्ञा

नहीं हो सकेगी। तब यदि कोई वै० मु० से पूछेगा कि सामके छन्दोभागमें ऋग्लक्षण संघटित होने पर भी उसकी ऋक् संज्ञाका निवारण तुम अपने मतमें कैसे करोगे? ऐसे प्रश्नका उत्तर वैदिक मुनि जी कुछ नहीं दे सकेंगे। और यदि कहेंगे कि सामके छन्दोभागकी ऋक् साम दोनों संज्ञा हो जायं तो संज्ञासांकर्य दोष आवेगा और सामके छन्दोभागमें गान नहीं होनेसे उसकी सामसंज्ञा अप्राप्त है, यदि गीति न होने पर भी साम संज्ञा हो सकती है तो पूर्व मीमांसाकारका (गीतिषु सामाख्या) यह लक्षण ही व्यर्थ हो जायगा। संस्कृतभाषाके अच्छे विद्वान् होनेपर भी वैदिक मुनिने लक्षणसे विरुद्ध सामसंज्ञा क्यों लिखी यह आश्चर्य होता है। यदि वै० मु० वा अन्य कोई मनुष्य यह समझता हो कि ऋग्वेद वा ऋक्संहिता नामक पुस्तकमें लिखे मात्र छन्दोंका नाम ऋक् है तो यह भी उन २ महाशयोंकी बड़ी भूल मानी जायगी क्योंकि ऋक् पदके लक्षणको ऐसा संकुचित करनेके लिये कोई भी प्रमाण नहीं है। ब्राह्मण ग्रन्थोंमें जहां २ लिखा है कि (तदेतदृचाभ्युक्तम्) यह बात ऋचासे भी कही गयी है। वहां २ की सब ऋचा ऋक् संहिता में न होने पर भी ऋचा कहाती हैं, तथा गृह्य श्रौतसूत्रोंमें सैकड़ों सहस्रों गायत्र्यादि छन्दोबद्ध मन्त्र ऐसे विद्यमान हैं जो वर्त्तमान ऋक् संहितामें न होने पर भी लक्षणानुकूल वे सब ऋचा कहाते हैं। निरुक्त अ० ३ में (अङ्गादङ्गात्संभवसि०) इस मन्त्रको ऋक् लिखा है परन्तु वर्त्तमान ऋग्वेद संहितामें उक्त मन्त्र कहीं नहीं है, अथर्वसंहितामें ऋचाओंकी अधिकता है चतुर्थांश अथवा इससे भी कम यजु हैं। जैसे ऋग्वेदसे भिन्न कहीं भी पढ़े गायत्र्यादि छन्दों वाले पाद बद्ध मन्त्र ऋक् वा ऋचा कहाते हैं, वैसे ही सामसंहिताका मन्त्र काण्ड ऋक् समुदाय है, और सामगानार्थ संगृहीत होनेके कारण उसका नाम साम संहिता भी हो गया है। और (गीतिषु सामाख्या) इस लक्षणके अनुसार मुख्य सामवेद गान स्वरूपही है, इससे छन्दोभागको मुख्य सामवेद कहना बड़ी भूल है॥

छन्दः संहिता और गान संहिता पदोंका जो अर्थ वैदिक मुनिने लिखा है वह ठीक है, परन्तु ऋक् और सामका लाक्षणिक अर्थ लिखने समझनेमें वैदिक मुनि बहुत भूले हैं। छान्दोग्योपनिषद्में जो लिखा है कि (ऋच्यध्यूढं साम गीयते) ऋचा रूप आधार पर साम गाया जाता है, जिन ऋचाओं पर साम गाया जाता है उन्हींके संग्रहका नाम संप्रति साम संहिता कहाता है। सामवेदके आरण्यक अध्यायको तथा महानाम्नी ऋचाओं को परिशिष्ट ठहराने के लिये वैदिक मुनिने जो बहुत परिश्रम किया है सो सब तुषकण्डनवत्-भूसी कूटनेके तुल्य व्यर्थ इस लिये है कि आरण्यक भाग तथा महानाम्नी ऋचा चाहे सामके छन्दोभागमें मिलाकर लिखी छापी जायं वा पृथक् छापी जायं दोनों दशामें सामवेदान्तर्गत अवश्य मानी जायगी। क्योंकि जैसे निविदध्याय और प्रैषाध्याय ऋक् संहिताके अन्तर्गत न होने पर भी सप्तहौत्र

पद्धतिमे आश्वलायनादि ऋषियोंके प्रमाणों द्वारा विनियुक्त होनेसे ऋग्वेदके अन्तर्गत माने जाते हैं वैसे ही सामका आरण्यकाध्याय तथा महानाम्नी ऋचा सामवेदोक्त अनेक कामोंमें विनियुक्त होनेसे सामवेदके अन्तर्गत अवश्य माने जावेंगे किन्तु वह अंश परिशिष्ट कदापि नहीं माना जावेगा। क्योंकि परिशिष्ट भागका पीछे बनना वा पीछे प्रादुर्भूत होना सर्वसम्मत है, ऐसी दशामें परिशिष्टके प्रादुर्भावसे पहिले महानाम्नी ऋचाओंका अभाव मानना पड़ेगा, तब आश्वलायन श्रौतमें लिखे अनुसार पृष्ठ्यषडह-यागके पांचवें दिन माध्यन्दिन सवनमें निष्केवल्य शस्त्रकी योजना कैसे बनेगी?। क्या परिशिष्टका प्रादुर्भाव होनेसे पहिले पृष्ठ्यषडह याग ही नहीं होंगे? अथवा होंगे तो क्या महानाम्नीके विना खण्डित रहा करते होंगे?। ऐतरेयारण्यक में चतुर्थारण्यकके भाष्यमें लिखा है कि—

स आश्वलायनः सप्तमाध्याये पृष्ठ्यषडहस्य पञ्चमेऽहनि माध्यन्दिनसवने मरुत्वतीयशस्त्रस्य क्लृप्तेरूर्ध्वं निष्केवल्यशस्त्रस्य क्लृप्तिं कुर्वन्नेवमाह—

शाक्वरं चेत्पृष्ठं महानाम्न्यः स्तोत्रियस्ता अध्यर्द्धकारं नव प्रकृत्या तिस्रो भवन्ति। ताभिः पुरीषपदान्युपसंतनुयात्पञ्चाक्षरशः पञ्च सर्वाणि वा यथानिशान्तमिति॥अ०७॥

अस्यसूत्रस्य चायमर्थः—शाक्वरनामकं सामवेदप्रसिद्धं किञ्चित्सामास्ति,तद् यद्युद्गातारः पृष्ठस्तोत्ररूपेण गायेयुस्तदानीं महानाम्नीसंज्ञया व्यवह्रियमाणा विदामघवन्नित्याद्या स्वरं त्याका ऋचो याः सन्ति ताः सर्वा मिलित्वा स्तोत्रसम्बन्धितया स्तोत्रियस्तृचइत्यभिधीयन्ते। तिसृभिस्तिसृभिर्ऋग्भिर्मिलिताभिरेकैकस्यामृचि निष्पादितायां सत्यां प्रकृत्या स्वभावतो नव संख्याका अपि सम्पादनेन तिस्र ऋचो भवन्ति तादृशीस्ताऋचोऽध्यर्द्धकारं शंसेत्। अधिकमर्द्धं यस्या ऋचः सेयमृक् अध्यर्द्धा तामध्यर्द्धां कृत्वा शंसेत् समाम्नातक्रमेणार्द्धत्रयं पठित्वा तत्रावसाय पुनरर्द्धत्रयं पठित्वा तदन्ते प्रणवं कुर्यात्। अनेन प्रकारेण नवसंख्याकाः समाम्नाता ऋचः शस्त्वा ताभिर्नवभिर्ऋग्भिः सह पुरीषपदानि संयोजयेत्।

अन्तिमेन प्रणवेन सह पठेत् । एवाह्येवेत्यादयो नवमन्त्राः फलपूर्त्तिहेतुत्वात्पुरीषपदानीत्युच्यन्ते तेषु नवस्वाद्यानि पञ्चसंख्याकानि पुरीषपदानि पञ्चाक्षरशः शंसेत् । अत्र सर्वत्र हिशब्दमग्निशब्दं सन्धिरहितं कृत्वा पञ्चाक्षरत्वं द्रष्टव्यम् । अनेन प्रकारेण पञ्चमन्त्रान् पठित्वा पश्चादेवाहिशक्रइत्यादींश्चतुरो मन्त्रान् मध्ये विच्छेदमकृत्वा पठेत् । यद्वा सर्वानप्येतान्नवमन्त्रान् यथानिशान्तं यथासमाम्नायमध्ययनपाठक्रमेण पठेन्नतु मन्त्रस्य मध्येऽवसानं कर्त्तव्यमिति ॥

भावार्थ—आश्वलायन श्रौत सूत्रमें लिखी महानाम्नी ऋचाओं की व्यवस्थाका अभिप्राय यह है कि—सामवेद में प्रसिद्ध शाकर नामक जो एकसाम है उसको जब उद्गाता लोग पृष्ठस्तोत्ररूप से गावें तब महानाम्नी कहाने वाली (विदामघवन्०) इत्यादि जो नौ ऋचा हैं वे सब स्तोत्र सम्बन्धिनी होने से स्तोत्रिय तृचनाम से कहाती हैं । अर्थात् सामवेदियों की गानात्मिका स्तुति स्तोत्र कहाती और ऋग्वेद को रीति से होताओं द्वारा की गयी स्तुति शस्त्र कहाती है, शंसु—स्तुतौ धातुसे बना शस्त्र शब्द वेदमें स्तोत्रवाचक आता है और शसु हिंसायाम्—धातुसे बना शस्त्र शब्द—आयुध वाचक है, स्तुति नाम सामवेदियों के सामगानार्थ जो ऋक्त्रय समुदाय हो उसको स्तोत्रिय तृच कहते हैं । महानाम्नी ऋचाओं का तृच भी सामगानार्थ होने से स्तोत्रिय कहाता है । यद्यपि वे महानाम्नी ऋचा स्वभाव से नवसंख्यायुक्त हैं तथापि तीन २ ऋचाओं को मिलाकर एक २ ऋचा बन जानेपर स्वभावसे नव ऋचा होनेपर भी नवकी तीन ऋचा बन जाती हैं । इन ऋचाओं को होता अगली ऋचाका अर्द्धभाग मिलाकर साढ़ेतीन साढ़ेतीन करके शस्त्र पढ़े । अर्थात् ग्रन्थ में पढे क्रमसे साढ़ेतीन ऋचा हो जानेपर विराम करके फिर साढ़ेतीन पढके विराम करे तृतीयवार के पाठान्त में प्रणव कहे । नवमन्त्रों के अन्तिम प्रणव के साथ (एवाह्येव) इत्यादि फल पूर्त्ति के हेतु होने से पुरीष कहाने वाले पदोंको होता संयुक्त करे । अभिप्राय यह है कि अग्निष्टोमादि यज्ञोंमें स्तोत्र और शस्त्र दोनों एक दूसरे की अपेक्षा रखते हुए चलते हैं—यहां भी महानाम्नी ऋचाओंपर पहिले सामवेदी उद्गाता लोग स्तोत्र गाते हैं । सो यह महानाम्नी साम अनृतसंहिता सामों में छप भी चुका है जब महानाम्नी सामगान यज्ञोंमें विनियुक्त है तब सामके छन्दोभाग संग्रह में आरण्यकाध्यायके साथ २ महानाम्नी ऋचा भी क्यों नहीं होनी चाहिये? ऊपर आश्वलायन श्रौत सूत्रके आधार पर सर्व वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने स्पष्ट लिख दिया है कि (स्वभावतो नवसंख्याका अपि संपादनेन-

तिस्र ऋचो भवन्ति) स्वभाव से मूल नौ ऋचा असल में होने पर भी तीन २ मिला कर एक २ कर लेनेपर महानाम्नी तीन ऋचा हो जातीं हैं। परन्तु वैदिक मुनिने वेद-सर्वस्वके पृ० १६५ में लिखा है कि "महानाम्नी आर्चिकके मूल तीन मन्त्र हैं, पीछे वे उपसर्गों के मेलसे नौ ९ हो जाते हैं" यह लिखना भी बड़ी भूल है, चाहे यों कहो कि यह उलटा वेदविरुद्ध है, जहां लिखना था कि ९ ऋचा की तीन हो जाती हैं वहां लिखा गया कि तीनकी नौ हो गयी हैं, अनुमान होता है कि वैदिक मुनिने ध्यान नहीं दिया इसी कारण वैसा उलटा लिखा गया है क्योंकि वेदसर्वस्व के पृष्ठ १७१ में वै० मु० ने वे नौ मन्त्र छपाये हैं उनमें उपसर्गों द्वारा मूल तीन के ९ नौ मन्त्र होने का कुछ भी चिन्ह वा सकेत नहीं है ॥

यद्यपि इस वेदसर्वस्वस्थ साम वेदके विचार प्रकरण में अन्य भी अनेक बातें वै० मु० ने लिखी हैं जिनपर हम कुछ विशेष न लिख करके केवल इतना ही लिख देना उचित समझते हैं कि यदि वैदिक मुनि आर्ष परम्पराके अनुसार वेदके विषय और प्रक्रिया को समझे होते तो ऐसा कदापि न होता कि अपरिमित वेदसागर में अनेक गोते खाते हुए वे कहीं किनारे न लगते किन्तु वे किनारे अवश्य लग जाते सो वैसा न हुआ हम आशा करते हैं कि स्वा० हरिप्रसाद वैदिक मुनि जी प्रथम दर्शपौर्णमास-पद्धतिकी प्रक्रिया ठीक २ समझकर दर्शेष्टि पौर्णमासेष्टिको होते हुए कहीं दो चार बार देखें पद्धतिसे मिलाके कार्यक्रमको दृष्टिगोचर करें तो उनको वेद विषयके जाननेमें बड़ी सहायता मिलेगी और प्रवेश हो जाने पर उसीकी सहायता से आगे २ जानकारी बढ़ सकती है वैसा होनेपर उनको स्वय ज्ञात हो जायगा कि वेद विषय में किस ढग से गोता लगाकर हमको कुछ रत्न निकालने चाहिये ॥

अब इस सामवेद के विषय में यही एक बात विचारणीय शेष है कि सामवेद के मन्त्रों की कितनी सख्या है, वा यों कहो कि सामवेदका कितना परिमाण है ?। वैदिक मुनिने पृष्ठ१७७से अन्तिमचार पृष्ठोंमें जो लिखा है उसका सारांश यह है कि—"प० तुलसीरामने सामवेद संहिता के सब मन्त्रों की संख्या १८७३ लिखी है। अजमेरमें छपी सामवेद संहिता की मन्त्र संख्या १८२४ है। परन्तु अकारादिवर्णानुक्रमणी के अनुसार मन्त्रों की संख्या १८९३ अठारह सौ तिरानवे है। पण्डित शिवशङ्कर काव्यतीर्थ ने वैदिकेतिहासार्थ निर्णय नामक ग्रन्थकी भूमिका में सामवेद संहिता के मन्त्रों की सख्या १५४९ लिखी है, तदनन्तर उक्त काव्यतीर्थ प० ने कहा है कि इनमें ७८ ऋचाओंको छोड़कर शेष सब ऋग्वेदमें पायी जाती हैं इससे उन पं० शिवशं०का अभिप्राय यही है कि सामवेद संहिताके मन्त्रोंकी संख्या ७८ अठहत्तर ही है। त्रिवेदी प्राणशंकर दयाशंकर के मत से सामवेद संहिता के मन्त्रों की संख्या [आरण्यकाध्यय और महानाम्नी ऋचाओं सहित] २११ हैं। पं० शातवले करके मत से साम-

वेद संहिताकी मन्त्र संख्या ७० है। सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्य ने सामवेदीय प्रत्येक मन्त्र भाष्यके अन्तमें लिख दिया है कि अमुक अमुक मन्त्र ऋग्वेद में है वा नहीं, जिन मन्त्रों का ऋग्वेद में विद्यमान होना सायणाचार्य ने लिख दिया है उनको छोड़कर शेष मन्त्रों की संख्या ७५ है, अंग्रेजों ने भी यही माना है, इससे सामवेद संहिताके मन्त्रोंकी संख्या केवल ७० होना ठीक है क्योंकि ७५ में ५ मन्त्र परिशिष्टके हैं।

समीक्षा-पाठक महाशय विशेष ध्यान देवें कि वैदिक मुनिने पं० तुलसीरामादि का उदाहरण देते हुए अन्तमें ७० सत्तर मन्त्रों का सामवेद सिद्ध किया है। पं० तुलसीरामादि और वैदिक मुनिने जब यह भी नहीं जान पाया कि साम वा सामवेद क्या है? किन्तु जो साम नहीं था उसको मुख्य साम जिन लोगोंने समझ लिया उनको वेद विषय में जितना अज्ञान हो वही थोड़ा है। यदि वैदिक मुनि को सामने बैठाकर कोई विद्वान् उनसे विनय पूर्वक पूछे कि जो आपने ७० मन्त्र सामवेदके माने हैं उनमें (तेषामृक्०) इत्यादि ऋक् का लक्षण जब ठीक २ घट जाता है क्योंकि वे सब अर्थानुकूल पादव्यवस्था वाले गायत्र्यादि छन्द सर्वथा वैसे ही ज्योंके त्यों हैं कि जैसे (अग्निमीले पुरोहितं०) इत्यादि ऋग्वेदकी अन्य ऋचा हैं और गानात्मक न होने से उन ७० मन्त्रों में भी (गीतिषु सामाख्या) यह सामका लक्षण कदापि घट नहीं सकता तब आप कृपया बतलाइये कि सामवेद कहां रहा? अर्थात् ७० क्या एक भी मन्त्र का सामवेद नहीं रहा। वे ७० मन्त्र तो ऋक् हैं साम नहीं हैं, और यदि साम गानार्थ संगृहीत हुआ ऋक् समुदाय सामार्थ होने से साम है तो वे सभी ऋचायें सामवेद अवश्य हैं जो सामगानार्थ संग्रह की गयी हैं। मान्यवर सायणाचार्यने उन२ मन्त्रों का ऋग्वेद में होना जो लिखा है उसका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि जो मन्त्र ऋग्वेद में हैं उनको छोड़के शेष का नाम सामवेद है, यदि ऐसा अभिप्राय होता तो सायणाचार्य उतने ही शेष मन्त्रोंका सामवेद नाम रखकर भाष्य करते इससे सायणाचार्य को अपने अज्ञानान्धकार में घसीटना वैदिक मुनिको कदापि उचित नहीं था। जैसे किसी एक ग्रन्थ वा व्याख्यान में जितने वाक्य आचुके हैं वेही वाक्य अन्यद्वितीय ग्रन्थ में वा व्याख्यान में आवें तो उन वाक्यों को छोड़ २ कर क्या शेष वाक्यों का नाम वह २ ग्रन्थ वा व्याख्यान रक्खा जायगा?। यदि वैदिक मुनिके संकलित वेदसर्वस्व पुस्तक में से उन वाक्यों को निकाल डाला जाय कि जो अन्य पुस्तकोंमें वा लेखोंमें आचुके हैं तब क्या वैदिकमुनि इसको अनुचित नहीं मानेंगे। और क्या उस दशामें वेदसर्वस्व का वेद सर्वस्वपन समूल नष्ट नहीं हो जायगा? इसीके अनुसार वेद मन्त्र भी एक प्रकार के वाक्यात्मक हैं, सामवेदादि किसी वेद के वे मन्त्र जो पहिले किसी वेदमें आचुके हों बीच २ से निकाल दिये जावें तो उस वेद का वेदत्व भी वैसे ही समूल नष्ट हो जायगा। इसलिये ७० मन्त्रका सामवेद नियत करना बड़ा ही अ-

नर्थ किया गया है। ऐसा अनर्थ करने के लिये यदि सभी पं० तयार हो जावें तो अबतक बने सभी ग्रन्थों मे से बहुत भाग बीच २ से निकाला जा सकता है ॥

जैसे किसी वस्तु को ग्रहण करना वा पकडना एक काम है, कहीं हविष् चावलों का ग्रहण करना, कहीं कृष्णाजिन का, कहीं अन्य २ अनेक वस्तुओं के ग्रहण में यजु का निम्न लिखित मन्त्र आता है कि—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥

यह मन्त्र यजुर्वेदमें अनेक वार भिन्न २ प्रकरणों में आता है। इसका अर्थ यह है कि हे तण्डुलात्मक हविष्! मैं अध्वर्यु नामक ऋत्विज्-अन्तर्यामी प्रेरक देवकी प्रेरणा होने पर अश्विनीकुमार देवोंके बाहुओं से और पूषादेवके हाथों से तुमको ग्रहण करता हूं। तण्डुलादि में भी सद्रूप से तथा अनुद्भूत चिद्रूपसे वही एक आत्म, तत्त्व विद्यमान है, उसीके लिये संबोधन है किन्तु जडके लिये सबोधन नहीं है। प्रेरकशक्ति एक ही आत्मतत्त्व है, उसीकी प्रेरणा से सब कुछ होता है, उसी प्रेरक देवका नाम सविता है, अश्विनीकुमार देवोंके बाहु तथा पूषादेव के हाथ संसारस्थ सब बाहु और हाथोंकी समष्टि हैं, चाहें यों कहो कि सब मनुष्यादि के बाहु और हाथ उन्हीं देवोंके हैं क्योंकि उन्हीं से सब के बाहु और हाथ नाम बल तथा ग्रहण करनेकी शक्ति बनी है। देवताकी आज्ञा होनेपर उन्हींके बाहु और हाथोंसे ग्रहण करता हूं, ऐसा कहने का अभिप्राय है (देवो भूत्वा देवान् यजति) और कर्त्तव्याभिमान का परित्याग तथा कर्म को ईश्वरार्पण करना है। जैसे यह (देवस्य त्वा०) अनेक वार आया मन्त्र बीच २ से निकाला नहीं जाता और पुनरुक्त भी नहीं माना जाता वैसे ऋग्वेदमें विद्यमान होने पर भी साम संहितामें आनेवाली सभी ऋचायें उक्तार्थ से सामवेद मानी जावेंगी ॥

———



वेदार्थप्रकाश समीक्षा

पाठक महाशयोंको विदित होगा कि मुंशी जगन्नाथदास मुरादाबादने स्वा० दयानन्दजी के मिथ्यामत की सम्यक् पोल खोली है, मुंशीजी के सैकडों आक्षेप ऐसे सत्य हैं जिनका कुछ भी सन्तोषजनक उत्तर कोई आ० समाजी कभी दे ही नहीं सकता। तथापि लाला नारायणप्रसाद के नाम से किसी मनुष्यने असन्तोष कारक नाम मात्र के समाधान लिखकर एक " वेदार्थप्रकाश" नामका छोटासा पुस्तक छपा

दिया है। वास्तव में ध्यान देकर शोचनेसे ज्ञात होगा कि मुंशी जगन्नाथदासकी जो २ शंकायें थीं वे और भी पुष्ट हो गयीं हैं तौभी सनातनधर्मियों में प्रायः मनुष्य तो ऐसे हैं कि जो सनातनधर्मके हानि लाभ पर कभी स्वप्नमें भी ध्यान नहीं देते और कुछ सनातनधर्मी ऐसे हैं जो आर्यसमाजकी ओर से कुछ भी कूड़ा कर्कट छपा हो उसमें क्या लिखा है उससे सनातनधर्मकी कुछ हानि है वा नहीं, ऐसा कुछ भी विचार न करके तकाजा करने लगते हैं कि इस २ का भी खण्डन होना चाहिये। सनातनधर्म का मैदान अतिविस्तृत है जिसके पेटमें से सैकड़ों नये २ मत बन २ कर फिर २ उसीके उदर में लीन होते गये हैं। अब विक्रमीय संवत् १९३२ से एक आर्यसमाज नामक मत चला है जिसको विक्रमीय संवत् १९७४ तक केवल ४१ वर्ष हुए, इस मत में सनातनधर्म पर आक्षेप करने खण्डन छपाने वाले सैकड़ों हैं। परन्तु सनातनधर्मी लोगों में विद्वानों की कमी न होने पर भी आर्यसमाजादि के आक्षेपोंके उत्तर देने वालोंका अभाव सा है। अबतक ब्राह्मणसर्वस्व मासिकपत्र वेद विरोधियों का यथा शक्ति खण्डन करता रहा। भविष्य में इस ब्रा०स० से भी वैसी आशा नहीं है। इस वेदार्थप्रकाश पुस्तक का उदाहरणार्थ थोड़ासा खण्डन पाठकों के सन्तोषार्थ आज लिखते हैं कदाचित् आगे भी कुछ लिखा जाय॥

एक पुस्तक यजुर्वेदभाष्यसमीक्षा नाम का जो मुंशी जगन्नाथदास ने लिखा था वह ब्रह्मप्रेस-इटावामें एक २ सहस्र छपकर दोवार विक चुका है। उसके प्रारम्भमें सब से पहिला विरोध यह दिखाया है कि स्वा० दयानन्द ने ऋग्वेद भाष्यके आरम्भ पृ०१ में लिखा है कि वि० संवत् १९३४ मार्गशीर्ष शुक्ल ६ भौमवार को ऋग्वेदभाष्य का आरम्भ करता हूं। और यजुर्वेदभाष्यारम्भ के पृष्ठ २ में लिखा है कि विक्रमीय संवत् १९३४ पौष शुक्ल त्रयोदशी १३ गुरुवार के दिन ऋग्वेदभाष्य करने के पश्चात् यजुर्वेद के मन्त्रभाष्यका प्रारम्भ किया जाता है। इस स्वा० दयानन्दके लेख से सिद्ध होता है कि सवा महीने में ऋग्वेद भाष्य बन जाने पर यजुर्वेद के भाष्य का आरम्भ किया था सो यह सर्वथा मिथ्या है, अर्थात् स्वा० दयानन्द जी ने मरते समय तकभी ऋग्वेदभाष्य पूरा नहीं कर पाया था और न अबतक पूरा हुआ, इसलिये वैसा लिखना अयुक्त ही था और है, ऐसी अनेक बातोंका लाला नारायण प्रसाद जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया सो कारण यही है कि कुछ उत्तर दे नहीं सकते थे॥

दयानन्दीय यजुर्वेद भाष्य समीक्षाके १४ पृष्ठोंमें लिखी अशुद्धियोंका कुछ भी उत्तर ला० नारायणप्रसाद ने न देकर पृष्ठ १५ में लिखे "हे जगदीश्वर मैं और आप पढ़ने पढ़ाने हारे दोनों प्रीतिके साथ वर्त्तकर विद्वान् धार्म्मिक हों कि जिससे दोनों की विद्या वृद्धि सदा होवे" इस दयानन्दीय भाष्य पर मुन्शी जगन्नाथदासने जो लिखा है कि स्वा० द० जी के विचारमें ईश्वर पूर्ण विद्वान् और धार्म्मिक नहीं है। इस पर

ला० नारायणप्रसादने लिखा है कि-पूरे भाष्यका अवलोकन पाठकों को प्रकट करेगा कि भाष्यके अन्तकी इबारत अध्यापकके प्रति सम्बोधन करके लिखी गयी है ०० इत्यादि ।

समीक्षक—शुक्ल यजु० अ० ५ मन्त्र ६ के दयानन्दीय हिन्दी भाष्यमें अध्यापकका कहीं नाम भी नहीं है । पाठकों के अवलोकनार्थ हम आगे मूल मन्त्र और दयानन्दीय भाषा भाष्य लिखे देते हैं—

अग्ने॑ व्रतपास्त्वे व्र॑तपा॒ या तव॑ त॒नूरि॒यꣳ सा मयि॒ यो मम॑ त॒नूरे॒षा सा त्वयि॑ । स॒ह नौ॑ व्रतपते व्र॒तान्यनु॑ मे दी॒क्षां दी॒क्षाप॑ति॒र्मन्य॑ता॒मनु॒ तप॒स्तप॑स्पतिः ॥ शु० यजुः० ५ । ६ ॥

दयानन्दी भाष्य-जिस लिये हे जगदीश्वर ! आप वा बिजली सत्य धर्मादि नियमों के पालन करने वाले हैं इस लिये उस आप वा बिजलीमें पूर्वोक्त व्रतोंके पालन करने वाली क्रिया वाला होता हू । जो यह आप और उसकी विस्तृत व्याप्ति है वह मुझ में जो यह मेरा शरीर है सो आप वा उसमें है । जो ब्रह्मचर्यादि व्रत हैं वे मुझमें हों और जो मुझमें हैं वे तुम्हारे में हैं जो आप वा वह जितेन्द्रियत्वादि पूर्वक धर्मानुष्ठानके पालक निमित्त हैं सो मेरे लिये पूर्वोक्त तपको विज्ञापित कीजिये वा करती है और जो आप वा वह व्रतोपदेशोंके रक्षा करने वाले हैं सो मेरे लिये व्रतोपदेशको आज्ञा कीजिये वा करती है इस लिये मैं और आप (अध्यापक) पढ़ने पढ़ाने हारे प्रीतिके साथ वर्त्त कर विद्वान् और धार्मिक हों कि जिससे दोनो की विद्या वृद्धि सदा होवे ॥

पाठक गण ! इस उपरोक्त इबारतमें आप शब्द सातवार आया है सो क्या छः वार का आप शब्द ईश्वरके लिये आया और सातवीं वारके आप शब्दके आगे ब्रेकट में अध्यापक शब्द ला० नारा० के पीछेसे लिख देने पर क्या अध्यापक वाचक हो गया ? अर्थात् कदापि नहीं (अग्नेव्रतपा०) मन्त्र में अध्यापक वाचक कोई भी शब्द नहीं है इससे अध्यापककी कल्पना नहीं हो सकती, वास्तवमें स्वा० दयानन्द कृत सभी मन्त्रार्थ स्वच्छन्द कल्पना है । मुन्शी जगन्नाथदासका आक्षेप ठीक घटता है । बिजली क्या कोई चेतन वस्तु है जो सत्य धर्मादि नियमोंका पालन करने वाली मानी जाय ? । मन्त्रका ठीक २ सत्यार्थ भी हम लिखे देते हैं यथा—

(अग्नेव्रतपा०) सात सोमयागोंमें से पहिले अग्निष्टोमका वर्णन शु० यजुर्वेदके अ० ४ से चला है— इस मन्त्रको पढ़के यजमान आहवनीयाग्निमें एक समिधा चढ़ाने

इससे पहिले मन्त्र (अ०५ म०) में तानूनप्त्र का आज्य स्पर्श करते हुए ऋत्विजोंने आपसमें विरोध न करनेका जो शपथ किया है तथा जो यजमानने दीक्षा ली है इत्यादि व्रतों के पालन करने वाले हे अग्ने (त्वे व्रतपाः) तुम हमारे व्रतोंके पालक हो (या तव तनूरियथ्ठ सा मयि) हे अग्निदेव जो तुम्हारा शरीर नाम दिव्य स्वरूप है यह मेरा स्वरूप हो जावे और (यो मम तनूरेषा सा त्वयि) जो मेरा अनित्य मानुष रूप है वह तुम्हारा हो जावे अर्थात् तुम दिव्य शक्ति वाले होने से मानुष रूपको भी अमर कर सकते हो। वैसा होने पर हे (व्रतपते) व्रतों के रक्षक अग्ने! [नौ व्रतानि सह] अनुष्ठान करने योग्य कर्म हम दोनों के साथ ही प्रवृत्त हों अर्थात् हम दोनोंके द्वारा यथावत् सिद्ध हों (दीक्षापतिः मे दीक्षामनुमन्यताम्) ली हुई दीक्षा का रक्षक सोम देवता मेरी दीक्षा का अनुमोदन करे तथा (तपस्पतिः) उपसदिष्टि रूप तप का रक्षक सोम देवता मेरे उपसद्रूप (तपः) तप को अनुकूल माने॥

आशा है कि पाठक लोग इस मन्त्रके अर्थको मूल के साथ मिलाकर जान सकेंगे कि दयानन्दी अर्थ मिथ्या कल्पित असंबद्ध प्रलाप मात्र होने से त्याज्य है और ऊपर लिखा अर्थ मूल के अनुकूल संबद्ध होने से सर्वसम्मत तथा ग्राह्य है॥

आगे यजुर्वेद भाष्य-समीक्षा में, मुन्शी जगन्नाथदास ने लिखा है स्वामी दयानन्द कहते हैं कि—"हे जगदीश्वर! जिस कारण आप सुख दुःख को सहन करने वाले हैं इति। यहां दयानन्द ने ईश्वर को सुख दुःख का भोगी भी मान लिया है पृष्ठ ४४५। इस पर ला० नारायणप्रसाद लिखते हैं कि—"इस आक्षेप की भी दशा प्रथम आक्षेप की भांति है। हे जगदीश्वर जिस कारण आप यह शब्द भाष्य के सब से प्रथम के हैं, इसके बाद की सब इबारत छोड़कर बीच के यह शब्द कि आप सुख दुःख को सहन करने वाले हैं, जो मनुष्यों के प्रति भाष्य में लिखे गये हैं, उनको हे जगदीश्वर इत्यादि शब्दों से मिलाकर आक्षेप कर्त्ता ने अपनी चालाकी का परिचय दिया है" यहां भी मुन्शी जगन्नाथ दास का लिखना सत्य है और ला० नारायणप्रसाद जी चालाकी बताते हैं सो ठीक नहीं है क्योंकि यद्यपि बीच की इबारत मु० जगन्नाथदास ने छोड़ दी है तथापि मनुष्यों के प्रति इस मन्त्रके भाष्य में कुछ भी नहीं लिखा गया कारण यह है कि शु० यजुः संहिता अ० ५ की ३२ वीं कण्डिका में नव ९ मन्त्र हैं। इन सब मन्त्रों से पोतादि ऋत्विजों के धिष्ण्य बनाने का वर्णन है, धिष्ण्याभिमानी देवताओं की स्तुति है। पोता, नेष्टा, अच्छावाक, मार्जालीय, इन पोतादि के चार धिष्ण्योंकी स्तुति करके सदःशालाके द्वारसे पूर्वकी ओर खड़ा हुआ अध्वर्यु-प्राचीनवंश शाला के आहवनीय अग्नि, बहिष्पवमानदेश, चात्वालनामक गर्त्त, शामित्रशाला, औदुम्बरीशाखा, ब्रह्मा का आसन, शालाद्वार्य अग्नि और प्राजहित अग्नि इन सब को

देखना हुआ उन २ मन्त्रों को पढ़े। जब कि अ० ५ की ३२ कण्डिका के किसी मंत्र में मनुष्यों को सम्बोधित करने के लिये कोई शब्द ही नहीं है तब ला० नारायणप्रसाद अभाव से भाव की कल्पना कैसे कर सकते हैं। हम यह अवश्य कह सकते हैं कि स्वा० दयानन्द जी का अभिप्राय भले ही यह न हो कि ईश्वर सुख दुःख का भोगने वाला है परन्तु उनके बनाये शोधे छपाये भाष्य में वैसा अभिप्राय जब निकल आता है तब ईश्वर में सुख दुःख का भी भोगी होने का दोष स्वा० दयानन्द जी पर अवश्य आ गया। इस दोषसे ला० नारायणप्रसाद जी स्वा० दयानन्दजी को नहीं बचा सक्ते॥

शुक्ल यजुर्वेद भाष्य अ० ६ क० १४ पर मुन्शी जगन्नाथदास ने स्वामी दयानन्दका भाष्य यों लिखा है कि-' हे शिष्य मैं तेरे जिस से मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को पवित्र करता हूं, तेरे जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूं इति यह लेख सर्वथा मिथ्या और असमञ्जस है पृ० ५००॥

इस पर ला० नारायणप्रसाद का कहना है कि यह आक्षेप यजुर्वेदके प्रसिद्ध मन्त्र (६ । १४) वाचन्ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि० इत्यादि के भाष्य पर है, मन्त्र का सम्पूर्ण भाष्य इस प्रकार है-" भाष्य हे शिष्य ! मैं विविध शिक्षाओंसे तेरी वाणीको शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल करता हूं, तेरे नेत्र को शुद्ध करता हूं, तेरी नाभि को पवित्र करता हूं तेरे जिससे मूत्रोत्सर्गादि किये जाते हैं उस लिङ्ग को पवित्र करता हूं, तेरे जिस से रक्षा की जाती है उस गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूं, समस्त व्यवहारों को पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्मके अनुकूल करता हूं " उपरोक्त भाष्य स्पष्ट करता है कि गुरु शिष्य के समस्त कर्मेन्द्रियोंको शुद्ध अर्थात् धर्मानुकूल बनानेकी चेष्टा करता है॥

समीक्षक-मुंशी जगन्नाथदास जी ने जो दयानन्दी भाष्य की पोल खोली है, उस का समाधान करने के लिये प्रवृत्त हुए ला० नारायणप्रसादने समाधान तो कुछ नहीं कर पाया किन्तु अन्य नयी अनेक शङ्कायें और बढ़ा दी हैं। जैसे दबी हुई विष्ठा को उखाड डालने से दुर्गन्ध बढजाता है वैसे ही स्वा० दयानन्द जी को वेदविरुद्ध किसी बातका समाधान करने की चेष्टा जब कोई समाजी करता है तब अन्य अनेक शङ्कायें उपस्थित हो जाती हैं। जैसे शतपथ ब्राह्मण और कात्यायन कल्प सूत्र के प्रमाणरूप आधार से मृत छाग पशु के मुखादि को जलसे शुद्ध करना अर्थ सनातनधर्म में ठीक माना जाता है और उस मृत पशु के मुखादि को पत्नी शुद्ध करती है वैसे ही आर्य-समाजियोंसे पूछना चाहिये कि क्या गुरु शिष्यके मुखादिको धो २ कर शुद्ध करे? इसमें शतपथादि किस ग्रन्थ का प्रमाण है सो बताइये ? । अथवा क्या २-गुरु तथा शिष्य का वाचक कोई शब्द अ० ६ । १४ में है ? यदि वैसा कोई शब्द हो तो बताइये । ३-जब कुछ भी प्रमाण नहीं है तब स्वा० दयानन्द जी की कल्पना वेद विरुद्ध क्यों

नहीं है ? । ला० नारायणप्रसाद ने अ० ६ की १४ कण्डिका को जो एक मन्त्र करके लिखा सो जब ४-भिन्न २ मुखादि के शोधन में विनियुक्त आठ मन्त्र प्रसिद्ध हैं तब उसको एक मन्त्र क्यों लिखा सो बताओ । ५-जब कि मन्त्रों में कहे नासिका, चक्षु, श्रोत्र और नाभि ये कर्मेन्द्रिय नहीं हैं तब ला०नारायणप्रसादने समस्त कर्मेन्द्रिय क्यों लिखे ? क्या यह प्रबल अज्ञान नहीं है ? । ६-शिष्य की नाभिको गुरु धर्मानुकूल कैसे बनाता है ? । ७-क्या सब आर्यसमाजियों की नाभि स्वा० द० ने धो २ कर धर्मानुकूल बनादी है । इत्यादि अनेक नूतन शंका उठ सकती हैं । मुंशी जगन्नाथदास का अभिप्राय यही है कि गुरुका शिष्य से कहना कि मैं तेरे लिङ्ग और गुदा को पवित्र करता हूं यह प्रमाणसे विरुद्ध-भद्दा और अश्लील अशिक्षितोंकी कल्पना होनेसे निन्दनीय है ॥

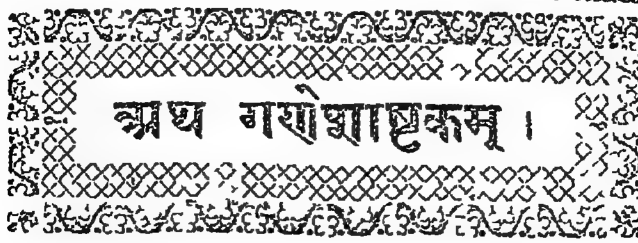
हम ब्रा० स० के पाठकोंको सूचित करते हैं कि भविष्यमें आ० समाजादि कृत आक्षेपोंके समाधानादि झगड़ोंसे हमारा विचार उदासीन रहनेका है इससे सम्भव है कि हम व्यर्थ आक्षेपोंके समाधानमें वा असार खण्डनमें कलम न चलावें । तब उस दशामें निम्न बातोंपर विशेषकर ध्यान रखना चाहिये जिनसे धर्मकी रक्षा होगी।

१-अब तक समाजी आक्षेपोंके जो २ उत्तर दिये गये हैं, सनातनधर्मके अवतार मूर्त्तिपूजादि विषयोंका जैसा समाधान हो चुका, और आर्यसमाजी मतको जैसा वेद विरुद्ध ठहराया गया है, इत्यादि अंशों पर। जितने लेख और पुस्तक बन चुके हैं उन का ठीक २ अवलोकन करने वाला मनुष्य आ० समाजादिके नये आक्षेपोंके भी अच्छे उत्तर दे सकता है, इसलिये उन २ लेखों तथा पुस्तकोंको बार २ देखना चाहिये ॥

२-अपने धर्म पर दृढ़तासे आरूढ़ रहते हुए विपक्षियोंके अनुचित भी आक्षेपोंको सहना चाहिये और घबराना नहीं चाहिये। स्वयं कुछ सन्देह धर्मांशमें हो जावे तो किन्हीं प्रामाणिक विद्वानोंसे पूछ लेना चाहिये। और उन धर्मनिष्ठोंके वचनों पर विश्वास करना चाहिये ॥

३-तुम्हारा खण्डन करने वाले आर्यसमाजियोंका तुम भी खण्डन करना सीख लो सत्यार्थ प्रकाशादि ग्रन्थोंकी सैकड़ों अशुद्धियां दिखादी गयीं हैं, जिनमेंसे अनेक समयोपयोगी प्रश्न कण्ठस्थ करके तुम भी समाजियोंसे पूछो वा उनपर उचित रीति से आक्षेप किया करो तो आ० समाजी तुमको तंग नहीं करेंगे ॥

४-यदि हो सके तो अच्छे २ सनातनधर्मी महोपदेशकोंको बुलाकर सभा कराओ व्याख्यानों द्वारा सनातनधर्मका महत्त्व सिद्ध करो और आर्यसमाजादि वेदविरोधियों की पोल दिखाके उनके मतका खण्डन कराओ इत्यादि ॥



गणपते ! करुणाकर !! भो प्रभो !!! भजतु नो भजनज्ञनपावनम् ॥
तव कृपाकणतोऽपि मनीषिणः ! समधियन्ति कृतेः किल पूर्णताम् ॥ १ ॥
यस्य प्रसादेन सदा सुरासुराः समाप्य प्राप्यन्नितराञ्जयन्ति ते ॥
गौरीसुतं शक्रनुतम्पतिम्बुधाम् सुधोपमन्तस्मनसानिशन्नुमः ॥ २ ॥
नवद्वयः सिद्धिप्रदाष्टसिद्धयो—गृहीतवालव्यजनाः सुसेदिकाः ॥
समासतेऽयं शमयाभिरोनिश—न्ददातु मोदाय बुधास्मतं स नः ॥ ३ ॥
कन्दर्पदर्पदमनात्प्रथितो गरीयान् भव्यो भवो भवति यस्य पिता वरीयान् ॥
माता गिरीन्द्रतनया सुनया यदीया लोके कथन्नुभवेद्गुरुता तदीया ॥४॥
गणेशसंकाशसुतः स्तुतो बुधैः शिवप्रदो देववरः शिवोऽपि यः ॥
सुरान्तराले महिमानमागम—न्नतस्ततरतन्तु भवाब्धिपारकम् ॥ ५ ॥
गुञ्जालिमण्डलसुमण्डितगण्डभागा—न्नागाननान्गुरुवराञ्जगतो गणेशान् ॥
वन्दारुवृन्दसुखवन्दितपादपद्म—मन्दारनन्दितजनान्प्रणुमः गणेशान् ॥ ६ ॥
प्रमथगणविहारिन् पार्वतीमोदकारिन्, शिवशिववलभारिन्, लोकशोकार्तिहारिन्
तव चरणसरोजध्यानरागान्वितोऽहम् सकलसकललोकाभ्यन्तरेवै भवेयम् ॥७॥

अशेषमहेशसुरेशदिनेशै—र्वेषविशेषपरेशनरेशैः ॥
ध्येयसुगेयप्रमेयपदाब्ज—कीर्त्ति सुधागुण ? मे कुरुतांशम् ॥८॥
प्रेम्णा प्रातः पठेद्यस्तु, गणेशस्याष्टकं शुभम् ।
तस्य नश्यन्ति विघ्नौघा, जयमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ९॥

रचयिता—

पाण्डेयोपाह्व पं० गङ्गावल्लभ शास्त्री
गवर्नमेण्ट संस्कृत पाठशाला—
पचपुखरा (फ़र्रुख़ाबाद)

स० प्र० में १६८ अशुद्धियां

यद्यपि आर्यसमाज के साथ सनातनधर्म समाज का मूर्त्ति पूजनादि विषयों पर विवाद है तथापि इस से अधिक विवाद स्वामी जी के ग्रन्थों पर है। आर्यसमाज स्वामी दयानन्द जी को महर्षि मानता हुआ उन के रचे स० प्र० आदि को वेदवत् मानता है कभी २ वेद से भी अधिक प्रतिष्ठा करता है जब कभी परस्पर समाज में विवाद छिड़ता है तो वादी प्रतिवादी स० प्र० आदि का प्रमाण देते हुए श्रुतियों का अर्थ स० प्र० आदिके अनुकूल करते हैं जो पक्ष दूसरे को स्वामीजी के विरुद्ध साबित करदे तो समझलो कि उसका पक्ष चढ़ गया, परन्तु सनातनधर्म स्वामीको महर्षि तो क्या वर्त्तमान आर्यसमाजी विद्वान् पं० आर्यमुनि आदि के भी तुल्य नहीं मानता, कारण कि आर्यमुनि आदि के ग्रन्थों में शायद इतनी अशुद्धियां न निकलेंगी जितनी कि स० प्र० आदि में भरी पड़ी हैं। यही कारण विवाद व स्वामीजी को विद्वान् न मानने का है। और यह भी सब जानते हैं कि सत्य की हमेशा जीत होती है वह सत्यकी जीत अनेकों वार हुई है तथापि अब की वार विचारशीलों की दृष्टि में हद हो गई आप कहेंगे वह क्या ? हम कहते हैं कि वह यह है कि आर्यमित्र ता० २२ नवम्बर सन् १७ पृ० ४ में 'सत्यार्थप्रकाश की अशुद्धियां, हेडिंग वाला लेख छपा है जिसका अक्षरशः अनुवाद यह है।

"परोपकारिणी-सभाके वैदिक प्रेस की असावधानीसे ऋषि दयानन्द रचित स० प्र० में छापे की अनेक अशुद्धियां हो गई हैं। जिनके कारण शास्त्रार्थ करने वाले आर्य विद्वानों को असुविधा होती है। छापे की अशुद्धियोंको लोग स्वामीजीकी भूल बताने लगते हैं प्रथम वारके स० प्र०का यदि उससे पीछे छपे संस्करणों से मिलान किया जाय तो उनमें अनेक स्थलोंपर पाठ भेद मिलेगा वैदिक प्रेस की यह भूल बहुत ही शोचनीय है इस प्रकार की अशुद्धियोंको उपेक्षा की दृष्टिसे देखते रहना आगे चल कर बड़ा भयंकर परिणाम उपस्थित कर सकता है। "मिलावट" को मटिया मेट करने वाले दयानन्द के ग्रन्थों में भी प्रेस के प्रमादवश प्रक्षिप्त अंशों का सम्मिलित होना भारी अनर्थ का कारण बन सकता है। कुछ काल हुआ जब गुरुकुल वृन्दावन के उत्सव पर एक विशेष कान्फ्रेंस द्वारा इस महत्त्व पूर्ण प्रश्न पर विचार कर सत्यार्थ-प्रकाश की अशुद्धियां छांटने का कार्य आर्यसमाज के सुयोग्य विद्वान् श्री० स्वामी अनुभवानन्दजी सरस्वती (शांत) को सौंपा गया था।' स्वामीजी ने स० प्र० के अब तक के संस्करणों को पढ़ कर बड़े परिश्रम पूर्वक अशुद्धियों की एक विस्तृत सूची (जो १६८ के लगभग है) तैयारकी है। स्वामीजीने यह सूची परोपकारिणी सभाके

सहायक मन्त्री श्रीयुत हरविलास शारदाकेपास अजमेर भेजदी है अब देखना यह है कि सभा इस महत्त्व पूर्ण प्रश्नपर कुछ विचार करती है या उसके सम्बन्ध में टालमटोल द्वारा स्वाभाविक "ढ़िलुडता" का अरुचिकर परिचय देती हुई आर्य संसार के सम्मुख अपनी परम्परागत अकर्मण्यताका एक और उदाहरण उपस्थित करती है।

पाठकवृन्द ! यह लेख सम्पादक का प्रतीत होता है किसी का नाम न होने से। हमारे लाला जगन्नाथदासजीने तो "सत्यार्थप्रकाशसमीक्षा" पु० में १५० अशुद्धियां ही स० प्र० की दिखलाईथी जिसके कारण आर्यसमाजी भाई उनको बुरा-कहते हैं परन्तु अब स्वामी अनुभवानन्दजी ने उनको परास्त कर १६८ पर डंका पीट दिया तो क्या आर्यसमाजी इनपर क्रोध न करेंगे। आर्यसमाजी भाई हृदय पर हाथ धर कहें कि ये १६८ अशुद्धियां प्रेस की हैं या किसी कर्मचारी की करतूत है या यह महर्षिजी की भंग की तरङ्ग है वाहरे ! आर्यसमाज ! प्रेस की अशुद्धियां बताने में तुझे शरम भी नही लगती है क्या कोई प्रूफरीडर प्रेस में नहीं है जो इन अशुद्धियों को निकाल दे क्या सनातनधर्म शास्त्रार्थ में प्रेसकी अशुद्धियों (जो अक्षरमात्रा की होती हैं) को पकड़ता है और फिर ऐसी अशुद्धियों से समाजी विद्वानों को असुविधा भी हो जाती है धन्य है सहस्र वार ! गुरुके ग्रन्थों में इतनी श्रद्धा कि कोई प्रेस की अशुद्धि भी निकाल दे तो लज्जित होना पड़े, जो शायद कही सचमुच स्वामीजीकी अशुद्धि निकल आवे तो न मालूम समाजी विद्वान् कहां शरम के मारे गुम हो जांय।

१-संस्कारविधि और और स०प्र० मेंजो विवाह कृत्यके पश्चात् ही संयोग करना लिखा है जिसको पं० छुट्टनलाल तथा संस्कारचन्द्रिका के कर्त्ताने अशुद्ध मान कुछ इवारत बदली है क्या यह प्रेस की अशुद्धि है।

२-यजुर्वेद भाष्य अ० ५ मं० ३२ में ईश्वर को दुःख सुख का भोक्ता लिखा है जिसको पं० छुट्टलाल ने पं० भीमसेन के शिर मढ़ा है क्या यह बात सत्य है ?।

३-पूर्व में १६ संस्कारों की प्रतिज्ञा कर १७ संस्कार छपे हैं क्या यह सं० वि० में संशोधकों का कृत्य है जिसको पं० छुट्टनलाल ने वे० प्र० सितम्बर सन् ११ पृ० २२८ और संस्कार चन्द्रिका भा० २ पृ० ८ में अशुद्ध माना है।

४-संस्कारविधि में आज्याहुति और आघाराहुति की उलट फेर है क्या यह भी संशोधकों की नमक हलाली है।

५-स० प्र० सन् ८७ समु० १२पृ० ४५८ में "पञ्चावयवात्सुखसंवित्ति" इस सांख्य सूत्र का बनावटी अर्थ जो लिखा है जिसपर दर्शनानन्द ने अश्रुपात गेरा है क्या यह प्रेस की असावधानी है।

६-स० प्र० सन् ८४ समु० १२ पृ० ४६० में पन्द्रह सहस्र पृथ्वी की परिधि लिखना क्या यह संशोधकों की भंग की तरग है या महर्षि जी की।

७-स० प्र० सन्० ११ पृ० ३३६ में जामश्रुति को शूद्र लिखना क्या यह स्वामीजी

की असत्यता का परिचय नहीं। यदि कोई सत्य समझे तो पं० तुलसीराम कृत भाषा-टीका वेदान्त दर्शन देख लिया जाय जो १। ३।३४ सूत्रकी टीकामें क्षत्रिय लिख गये।

८-मतंग को चाण्डाल से ब्राह्मण होना क्या किसी ने सिद्ध कर पाया। फिर क्यों स० प्र० पृ० ८६ में वैसा लिखा है।

६-"ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" क्या इसको कोई पांडव गीतामें दिखा सकता है यदि नहीं तो क्यों स० प्र० समु० ११ में मिथ्या लिखा।

१०-स० प्र० समु० ५ पृ० १३५ में मनुके नामसे "विविधानि च रत्नाति विविक्ते-षूपपादयेत्" पाठ लिखना क्या यह प्रेस कर्मचारीकी भूल है या स्वामीजी की करतूत।

इस प्रकार की सैकड़ों अशुद्धियां जिनको कि आर्यसमाजी विद्वान् स्वीकार कर चुके फिर भी स्वामी जी महर्षि ? यही तो विवाद का मूल कारण है।

प्रथम तो लेखक ने अशुद्धियों का कारण प्रेस कर्मचारियों की असावधानी बत-लाई आगे प्रक्षिप्त मान बैठे ? क्या अब प्रक्षिप्तांश भी स० प्र० में हो गया सब कर्म-चारी भंग की तरंग में डूब गये स्वा० जी का कोई दुश्मन सत्यार्थप्रकाश में करतूत कर गया। याद रक्खो ? यह बालू की भीत खड़ी होने की नहीं इस प्रक्षिप्त के अ-ड़ंगे को पं० तुलसीराम तथा पं० गणपति शर्मा ने अच्छी तरह तोड़ा है जिसे देखना हो वेदप्रकाश अगस्त सन् १० पृ० १८२ तथा शास्त्रार्थ (ज्वालापुर महाविद्यालय हरिद्वार) पृ० ५७ देख लें जिसमें स० प्र० में प्रक्षिप्त मानने वाले को मुंह तोड़ जबाव दिया है।

पाठकवृन्द ! यह मामला अनेक पत्रों में बहुत दिनों से चल रहा है और अजमेर की वैदिक प्रेस कमेटी इस पर ध्यान नहीं देती यह समाज के लिये अच्छा है यदि समाजी विद्वानों की बताई हुई अशुद्धियां कमेटी निकालना आरम्भ कर दे तो स०प्र० का पुस्तक कुछ और रूप में हो जायगा और पारावार न मिलेगा कि कितनी अशु-द्धियां इस में और हैं, फिर तो समाज को बड़ी आपत्ति भुगतनी पड़ेगी।

यह सब झगड़ा छोड़ यदि 'सत्यार्थ प्रकाश, के प्रथम केवल एक 'अ, और बना दिया जाय तो सब झगड़ा टूट जाय, पूछने पर कह दिया जाय कि इसमें पण्डितों ने प्रक्षिप्त भाग मिला दिया है या कह दिया जाय कि यह सत्यार्थप्रकाश आर्यसमाज प्रयाग ने बनाया है प्रमाण में वेदप्रकाश अगस्त सन् १० का हवाला देवें।

अब हम इस लेख को समाप्त करते हुए समाजी व सनातनधर्मावलम्बी भाइयों से निवेदन करते हैं कि यदि स्वामी जी के ग्रन्थों की अशुद्धियों का अधिक हाल जानना चाहें तो ब्राह्मण सर्वस्व भाग १३ अंक १२ धर्मोदय वर्ष २ अंक १-४ मंगाकर अपने पास रक्खें यदि कहीं भूल प्रतीत हो तो मुझ से पत्र व्यवहार करें।

भवदीय—तुलसीराम शर्मा मु० सितारी पो० सासनी (अलीगढ़)

श्रीजन्मभूमिलहरी ।

शिखरिणी

यही मेरी माता, सकल-सुखदा भारत धरा । इसी में जन्मे हैं, सब विभव है अद्भुत भरा ॥
इसीके अन्नोंके, बलपर बनी देह अपनी । हमारी प्यारी है, सब विधि यही एक जननी ॥१॥
उसीके तत्वोंसे, प्रकृति बनते वीर्य्य रजसे । बनी काया मायाजनित इसमें जीवन बने ॥
उसीके अन्नोंसे, मधुर रस है क्षीर बनता । पिलाती मातायें-पलकर हुई दक्ष जनता ॥२॥
कहीं है मातासे बढ़कर अहो? जन्म धरती । सदा सौख्योंसे अविरत हमें मुग्ध करती ॥
उसी की छायामें सब सुख रहेंगे बढ़कर । उसीकी गोदीमें-सब मुदित हैं जीवन भर ॥३॥
यही विश्वात्माके-नरचरितकी चित्रितपटी । यही मोक्ष द्वारा, जनित सुखकी पावन वटी ॥
यही सत्कर्मोंके प्रतिफलनकी सुन्दर तटी । यही नदगोकी है, ललित मणि मुक्तामय कुटी ॥४॥
यही लीलाशाली-हरि-चरित पीयूष लहरी । यही वेदोंकी भी ध्वनिगत छटा छूट छहरी ॥
जहां यज्ञों हीके बलपर महोत्कर्ष मिलता । सदा पाये जाते अभिमत मनः कोश खिलता ॥५॥
यही विश्वात्माने-अखिल तनु वाराह बनके । बचाया पृथ्वीको-सकल सुख दाता भुवनके ॥
महा दुष्टात्मा था-तब वह हिरण्याक्ष खलथा । उसे संहारा था निशिचर वहीं पूर्ण बल था ॥६॥
चुराया वेदोंको लिपट नभ छाया तब अहा? । विरोद्धा देवोंका प्रकट वह मत्स्यासुर महा ॥
तभी विश्वस्वामी-सलिल गतिहो मीनतनके । उधारा वेदोंको असुर हननाधीन बनके ॥७॥
निकाला रत्नोंको-मथकर यही सागर कभी । बने थे विश्वात्मा उचित तनु हो कच्छप तभी ॥
जहां जैसे होता-उस विधि वहां रूप धरते । जगन्मायाशाली अभिमत सदा पूर्ण करते ॥८॥
बड़ाही दानीथा-बलि नृपति पातालपुर का । किया फीका सारा-यश जब महेन्द्रादि सुरका ॥
तभी विश्वात्माने श्रुति धर यहां वामन बन । यशोरक्षाकारी मख छल लिया पावन मन ॥९॥
यही की भूमीमें-दशमुख हने राम बन के । दिखाई मर्य्यादा-मनुज करुणाधाम बनके ॥
उन्हींके नामोंसे-भव तरणका भी न भय है । वहीं मोक्ष द्वारा-परम सुख आनन्द मय है ॥१०॥
यहींकी भूमिमें प्रभुवर बनी कृष्ण यति थे । हराया दुष्टोंको प्रबल पटुता पूर्ण मति थे ॥
बचाया गोपोंको-अतुलबल गोवर्द्धन धरे । सदानन्द स्वामी वन वन फिरे मग्न विहरे ॥११॥
यही भक्तप्रेमी-नरहरि बने नाथ तब थे । बड़े विश्वस्तात्मा-विदित वर प्रह्लाद जब थे ॥
दिखाई थी आस्था-चट प्रकट खम्भा फटगया । हुए प्रत्यनात्मा-भय तिमिर सारा घट गया ॥१२॥
बली उद्दण्डात्मा-प्रकट फिरथे भार्गव रहे । बड़े संग्रामोंमें-रण जनता में क्षत्रिय दहे ॥
बचाया जो कोई-चरण पड़के दीन बनके । लड़ाईसे सारे अभिमत किये पूर्ण मनके ॥१३॥
लगी हिंसा होने-बहुत अब थी देश भरमें । तभी बोद्धावस्था-जनित मतमें मान घरमें ॥
यही विश्वात्माकी स्फुट चरित लीलालसित है । उसीकी सेवाका प्रतिफल सदा से फलित है ॥१४॥

यहीं के विज्ञों ने अमितम तिगड् दर्शन रचे । विचारोंके सारे विषय जिनसे हैं नहिं बचे ॥
इसीमें विद्या के बलपर बड़ा ग्रन्थन किया । बनाया शास्त्रों को निगम मतका मन्थन किया॥१५॥
धनुर्वेद ज्योत्स्ना प्रकाशन किया वीरदलने । धनुर्धारी जागे रण रच लगे वाण चलने ॥
झुकाया देशोंको चकित सब वीरत्व लखके । लजाते आते थे सब शरण शस्त्रास्त्र रखके ॥१६॥
यहींके वीरोंकी विकट धनु टंकार घटना । सुनाई देती थी प्रलय घनका सा गरजना ॥
यहींके वीरोंने भुवन भरको विस्मित किया । सभी बातोंमें था प्रथम जिनने शासन लिया ॥१७॥
सभी देशोंमें था अटल तम छाया जब घना । तभी था सभ्योंका मुकुट मणिसा भारत बना ॥
कलायें विद्यायें अखिल प्रभुतायें स्थिर रहीं । सता लक्ष्मी लीला ललित बसतीथी बस यहीं॥१८॥
यहींके भूपोंने वशकर चतुस्सागर मही । उन्हींकी आज्ञामें भुजबल सहारे पर रही ॥
उन्हींका छाया था अटल यश तीनों भुवनमें । महा योद्धा वे थे बल सहित उत्साह मनमें ॥१९॥
धनुर्विद्याहीसे चकित सबको था कर दिया । यशस्वी वीरोंने अति उचित उल्लासन लिया ॥
यहींके दिव्यात्मा अमित बल भीमार्जुन रहे । प्रताप ज्वालासे समर करके कौरव दहे ॥२०॥
जहां ऐसे भारी विपुल इतने वीर उपजे । जिन्होंने माताके विमल यश आभूषण सजे ॥
प्रतिष्ठा पाती थी भुवन भरमें भारत मही । वदान्या मान्याथी शुभचरित धन्या यह रही॥२१॥
सभी विद्याओंमें निपुण इसमें सिद्ध जन थे । महायोगी ज्ञानी अति अनुभवी वृद्धजन थे ॥
लिखी पद्यों में है अब तक यही भारत कथा । कवीन्द्रों से मित्रो! रहित तबभी भारत न था॥२२॥
पुराणों ग्रन्थोंका प्रणयन किया व्यास ऋषिने । गुणोंको भावोंको कविवर भला क्योंकर ? गिने ॥
जिन्हें वाग्देवीथी वश सतत सेवारत रही । निराले रत्नोंसे भरित यह थी भारत मही ॥२३॥
यहीं तो विश्वात्मा विदित वर हस्तामलकथे । दयासे भक्तोंको प्रकट दिखलाते झलकथे ॥
यहींके भक्तोंके हृदय गृहका आदर किया । बसे थे विश्वात्मा अविरत निराला सुख दिया॥२४॥
यहींकी भूमीमें ध्रुव वह हुए बालपनमें । जिन्होंने माया को तजकर भजा ईश मनमें ॥
तभी विश्वात्माने प्रकट उनको दर्शन दिया । महेच्छा पूरीकी सुफल ध्रुवका जीवन किया ॥२५॥
यहां ऐसे दानी नृपवर हरिश्चन्द्र सम थे । प्रतिज्ञाके सच्चे दशरथ सरीखे न कम थे ॥
जिन्होंने प्राणोंको तजकर बचाया प्रण अहो । यहांका ऐसा था अमर किसका गौरव रहा ॥२६॥
सभी देशोंमें था प्रकट भय आतंक इसका । प्रतापी वीरोंसे हृदय कंपता था न किसका ॥
सहारा देवोंके यह समरमें थी कर रही । यहींकी पृथ्वी थी अखिल प्रभुतासे भररही ॥२७॥
यहीं शिक्षा भिक्षा लहकर सभी देश सुधरे । यहीं की आभासे तिमिर, हृदयाच्छादक टरे ॥
सुधाकी धारासी अटल वह वेदध्वनि रही । अनेकों तीर्थोंसे विदित यह है पावन मही ॥२८॥
यहींकी पृथ्वीमें प्रथित बहती है सुरसरी । वही मुक्तिद्वारा सलिलमय पीयूष लहरी ॥
उदारा धारा है सगर तनयोंके तरण की । पवित्राकारा है अमृत प्रभुजी के चरण की ॥२९॥
यहीं काशी काञ्ची विदित मथुरा पावनपुरी । अयोध्या मायासी सुकृत सुखकी साधन धुरी ॥
यहीं सत्कर्मोंसे भव जलधिका पार करना । यहीं था आत्माका विषय तज उद्धारकरना ॥३०॥
जहां ऐसी ऐसी अतुल प्रभुतायें गिन चुके । गई सारी आभा शुभ सब पुराने दिन चुके ॥
महादीना हीना प्रदलित हुई भारत मही । नहीं जानी जाती सुखकर धरा है यह वही ॥३१॥

धरामें धारामें गगन तल में स्वर्पथमें । सभी स्थानोंमें थी गति तब मनोयान रथमें ॥
यही ज्योतिर्विद्या जनित गणना भी प्रथम थी । लखे शोभा भारी अमर नगरी भी न सम थी ॥३२॥
सभी बातें मित्रो ! परिणत हुईं कालबलसे । विधाता इच्छायें सफल करता कूट छलसे ॥
घटी सारी बातें-दुरित दुख दावानल जला । निराली चालीसे समय पलटा खाकर चला ॥३३॥
कभी जो राजा था अब वह भिखारी बनगया । रहा जो भिक्षार्थी अब सुख विहारी बन गया ॥
गई दिव्यज्योत्स्ना तिमिरघन आच्छादितयहा । प्रकाशावस्था है-अबतक रहा था तम जहा ॥३४॥

——— (क्रमशः)-महेश्वरप्रसाद मिश्र



क्या गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था चल सकती है ?।



हमारे कुछ समाज सुधारक बाबू विशेष कर आर्यसमाजी महाशय जन्मसे वर्ण-व्यवस्था नही मानते । वे वर्णव्यवस्था को गुण कर्मानुसार प्रचलित करना चाहते हैं उन का कथन है कि यदि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित की जावे तो इस में हानि ही क्या है । हमारा विचार है कि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित हो ही नही सकती कारण कि ऐसा होने से हिन्दूसमाज के सर्वतः उलट पलट जानेका भय है । जिस दशा में हिन्दू हिन्दू ही न रह जावेंगे और पवित्र आर्य जाति कुछ समय उपरान्त अनार्य जाति हो जावेगी । अतः इस विषय पर कुछ लिखा जाता है । समाजी महाशयों से प्रार्थना है कि वे इस पर भली प्रकार विचार करें और यदि कोई महाशय किसी पत्रद्वारा उत्तर दें तो एक प्रति हमारे पास भेजने की कृपा करें ।

महाभारत में लिखा है कि——

वालोयुवाचवृद्धश्च यत्करोति शुभाशुभम् ।
तस्यांतस्यामवस्थायां तत्फलंप्रतिपद्यते ॥

बाल्य, यौवन, या वृद्ध जिस २ अवस्थामें जो २ शुभाशुभ कर्म किया जावे उस २ कर्म का फल उसी अवस्था में मिलता है । इस कारण मनुष्य के भिन्न २ अवस्थाओं में भिन्न २ शुभाशुभ कर्मों के भोग्य होने के कारण यह बात निश्चय पूर्वक नही कही जा सकती कि किस अवस्था में मनुष्य किस प्रकारके कर्म करेगा । संसारमें प्रायः देखा भी जाता है कि मनुष्योंके गुण कर्मोंमें सदा परिवर्त्तन हुआ करता है, जो आज सात्त्विक है वही कल राजस अथवा तामस हो जाता है, कुचरित्र पुरुष भी कुछ समय उपरान्त सुचरित्र होते हुए देखने में आते हैं । गुण कर्म जीवन की सब दशाओं में एकसे नही रहते । यदि पूर्व संस्कारोंको उड़ाकर केवल देशकाल वा संग

का ही प्रभाव माना जावे तो भी जीवन कालमें देश, काल, वा सग भिन्न २ प्रकार का होने के कारण मनुष्य प्रकृति सदा एक सी दशा में नहीं रह सकती और तदनुसार कर्म भी जीवन पर्यन्त एक से नहीं रह सकते, उन में कुछ न कुछ परिवर्त्तन अवश्य होगा। अतः यदि आर्यसमाजके सिद्धान्तानुसार वर्णव्यवस्था मानली जावे तो एक ही जन्म में मनुष्य का वर्ण न जाने कितनीवार बदल सकता है, आज सात्विक कर्म करने से ब्राह्मण हो गया कल क्षत्रियके कर्म करनेसे क्षत्रिय हो गया, परसों नीच कर्म करने लगा इस कारण शूद्र हो गया। इस प्रकार कर्म के परिवर्त्तन से कभी ब्राह्मण कभी क्षत्रिय कभी शूद्र प्रत्येक मनुष्य बन सकता है अतः समाजको बतलाना चाहिये कि ऐसी दशा में गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था किस प्रकार चल सकती है॥

द्वितीय आपत्ति यह है कि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था मान लेने पर लड़के तथा लड़कियों का परस्पर परिवर्त्तन हुआ करेगा, कारण कि यदि किसी वर्ण का बालक गुरुकुल से लौटने पर पिता के वर्णके योग्य न निकले तो वह बालक अब कहां जावे! स्वामी दयानन्द जी की आज्ञानुसार वह अपने माता पिता के पास तो रह नहीं सकता जैसा कि सत्यार्थप्रकाश चतुर्थ समुल्लास में लिखा है—

प्रश्न-"जो किसी के एक ही पुत्र वा पुत्री हो और वह दूसरे वर्ण में प्रविष्ट हो जावे तो उस के मां बाप की सेवा कौन करेगा और वंशच्छेदन भी हो जावेगा-इस की क्या व्यवस्था होनी चाहिये"॥

(उत्तर)-न किसी की सेवा का भंग और वंशच्छेदन होगा क्योंकि उन को अपने लड़के लड़कियों के बदले स्ववर्ण के योग्य दूसरे सन्तान विद्या सभा और राजसभाकी व्यवस्था से मिलेंगे इसलिये कुछ भी अव्यवस्था न होगी ....

स्वामी जी के इस मनगढ़न्त सिद्धान्त पर कई प्रश्न होते हैं यथा—

(१) स्वामी जी के इस कथन में कौनसा वेदमन्त्र प्रमाण है अथवा किस धर्मशास्त्र की ऐसी आज्ञा है?

(२) प्राचीन समय में भारतमें कोई ऐसी विद्यासभा अथवा राजसभा विद्यमान थी ऐसा किस प्रामाणिक इतिहास में लिखा है?।

(३) क्या ऐसी व्यवस्था इस समय चल सकती है?

(४) इस प्रकार का परिवर्त्तन क्या माता पिता स्वीकार कर लेंगे?

(५) क्या पुत्र को अपने पिता माता को छोड़ किसी अन्य को पिता बनाने में कुछ आपत्ति न होगी?

(६) बदले में मिला हुआ पुत्र क्या शास्त्र के अनुसार अपना हो सकता है?। निरुक्त में लिखा है।

अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधिजायसे । आत्मा वै पुत्रनामासि स जीव शरदः शतम् ॥ निरु० ३ । ४ ॥

हे पुत्र ! तू अङ्ग २ से उत्पन्न हुए वीर्य से और हृदयसे उत्पन्न होता है इस लिये तू मेरा आत्मा है, मुझ से पूर्व मत मरे किन्तु सौ वर्ष तक जीवित रह ।

जहा तक हमारा विश्वास है कोई भी मनुष्य अपने पुत्र अथवा कन्या का परिवर्त्तन इस प्रकार स्वीकार नही कर सकता । अतः समाज उत्तर दे कि ऐसी दशा मे क्या किया जावे । और समाज में अवतक यह प्रथा प्रचलित क्यों न हुई । यदि ऐसा परिवर्त्तन कही पर हुआ है तो समाज को उन समाजियों का जिन के माता पिता का इस नियमानुसार परिवर्त्तन हुआ है नाम प्रकाशित कर देना चाहिये ॥

यदि दैवयोग से किसी वर्ष गुरुकुल से किसी वर्ण के लडके अधिक निकले और किसी के कम तो ऐसी दशा में राजसभा अथवा विद्यासभा उन लड़कों के पिता माता के लिये क्या प्रवन्ध करेगी ? । यदि उनको लड़के न मिले तो क्या वे इस वात को स्वीकार कर लेगे कि उनके लडके तो अन्य माता पिता के घर रहें और वे स्वयं निस्सन्तान होकर रहे । ऐसी दशा में उनकी इस अवस्था में सेवा तथा खाने पीने आदि का प्रवन्ध कौन करेगा ? ॥

इस विषयमे एक आपत्ति यह भी होगी कि यदि किसी वर्ष किसी वर्णकी कन्यायें भी कम पड़ गईं और किसी वर्ण की अधिक हो गईं तो ऐसी दशा में जो प्रश्न कि लड़कों के विषय में किये गये है वही प्रश्न कन्याओके विषय मे भी किये जा सकते हैं ।

आर्यसमाज अथवा स्वामी जी के सिद्धान्तानुसार गुरुकुलसे निकलने पर इन लड़कों तथा लड़कियोंका विवाह होना चाहिये । यदि लडकिया किसी वर्णकी अधिक और किसी वर्ण की कम निकली तो ऐसी दशा मे वहुत से लड़कों तथा लड़कियोंको स्ववर्णानुकूल पति तथा स्त्रिया न मिलने के कारण कारा रहना पडेगा । कामदेव वडे ही प्रवल देवता हैं इस कारण गुरुकुल से लौटने पर यदि ब्रह्मचर्य का पालन न हो सका तो ऐसी दशा में उन को क्या करना होगा । स्वामी जीके मतानुसार ऐसोंका नियोग हो नही सकता, कारण कि स्वामीजीने कुमारों अथवा कुमारियोंके लिये नियोग का विधान नही किया है । समाजी कृपया उत्तर दें कि ऐसी दशामें यह लोग क्या करें ।

तृतीय आपत्ति यह है कि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित हो जाने पर स्त्रियो को अपना पति परिवर्त्तन करना पड़ेगा, यथा किसी गुणकर्मानुसार वने हुए

ब्राह्मण ने एक ऐसी ही ब्राह्मण कन्या से विवाह किया परन्तु यदि दैवयोग से वह ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी किसी विशेष कारणवश अपने वर्ण से गिर कर शूद्र अथवा वैश्यवत् हो जावे तो उस समय उन को क्या करना चाहिये ?। यदि वह ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणी पतित पुरुष तथा स्त्री का त्याग न करे तो प्रतिलोम सम्बन्ध हो जायगा जैसा कि मनु महाराज ने लिखा है-

आयोगवश्चक्षत्ता च चण्डालश्चाधमो नृणाम् ।
प्रातिलोम्येन जायन्ते शूद्रादपसदास्त्रयः ॥
चाण्डालश्वपचानान्तु बहिर्ग्रामात्प्रतिश्रयः ।
अपपात्राश्च कर्त्तव्या धनमेषां श्वगर्द्दभम् ॥
वासांसि मृतचैलानि भिन्नभाण्डेषु भोजनम् ।
कार्ष्णायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यशः ॥

शूद्र से प्रतिलोम सम्बन्ध द्वारा वैश्या क्षत्रिया और ब्राह्मणी स्त्रीमें उत्पन्न सन्तान यथाक्रम आयोगव क्षत्ता और चाण्डाल इन तीन जातियों की होती है। चाण्डाल व श्वपच जातिका वासस्थान ग्रामके बाहर हो। इनको पात्र रहित करना चाहिये। कुत्ते और गधे इन का धन हैं। शव के वस्त्र पहिरना टूटे पात्रों में भोजन करना, लोहे के अलङ्कार धारण करना, और सर्वत्र घूमना इन का कार्य्य है। जिन घरों में ऐसी सन्तान उत्पन्न होगी उनकी क्या दशा होगी सो प्रत्येक विचारशील मनुष्य विचार सकता है। ऐसी दशा में उस स्त्रीका पति को त्याग देना ही उचित जान पड़ता है। पति को त्याग देने पर अब यदि उनके सन्तान विद्यमान है तो उस का पालन पोषण आदि कौन करे पुरुष अथवा स्त्री? और बड़े होने पर वह सन्तान किसकी होगी पति अथवा स्त्री की? यदि माता उस सन्तान का पालन करे तो उसका तथा, उस बालक के खाने पीने आदि का प्रबन्ध कौन करे ?। यदि वह सन्तान पिता को देदी जावे तो अब उस स्त्री को सन्तान उत्पन्न कराने की आवश्यकता है अथवा नहीं। यदि है तो सन्तान उत्पन्न किस प्रकार से कराई जावे ? नियोग अथवा पुनर्विवाह द्वारा ? स्वामीजीके सिद्धान्तानुसार उसका विवाह तो हो नहीं सकता कारण कि उन्होंने कभी सधवा विवाह की आज्ञा तो कहीं दी नहीं। ऐसी दशा में केवल नियोग ही हो सकता है। नियोग भी किसी ऐसेही ब्राह्मण के साथ होगा चाहिये कि जिसकी स्त्री शूद्र अथवा वैश्य हो गई हो। किन्तु यदि नियोग के उपरान्त भी उसकी काम पिपासा की शान्ति न हुई, तो क्या ऐसी दशा में उसके लिये अन्य पति विहित न होगा? यदि पुनर्विवाह उपरान्त दैवयोग से उस के इस पतिका वर्ण परि-

वर्त्तन हो जावे तो क्या ऐसी दशा के उपस्थित होने पर उसको फिर अन्य पति करने की आज्ञा होगी अथवा नहीं ? इस प्रकारसे स्त्रियों तथा पतियों का परिवर्त्तन होगा। ऐसी दशा में सतीधर्म पर जो आघात पहुंचेगा उसका स्मरण करते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं और हृदय विदीर्ण होने लगता है। पातिव्रत धर्म्मका गौरव जिसके कारण पवित्र आर्य्यजाति इस हीन, दीन दशामें भी समस्त संसार में ज्ञानगुरु होकर घोर विप्लवों का सहन करती हुई अपनी सत्ताको प्रतिष्ठित रखने में समर्थ हुई है, वह आर्य्य-गौरव-रवि चिरकाल के लिये अस्त होकर पवित्र भारतवर्ष को घोर अज्ञानान्धकार रूप नरक में परिणत कर देगा। जिसमें दुःख दारिद्र्य, अविद्या आदि पिशाचिनियां और भी अधिक नृत्य करेंगी। जिस प्रकार से संसारकी अन्य जातियां विकराल कालके गाल में समा गई सतीधर्म को धक्का लगते ही पवित्र आर्य्यजाति की भी ठीक वैसी ही दशा होगी। गृहस्थाश्रम श्मशान हो जायगा, गृहलक्ष्मी निज स्वरूप को त्याग कर पिशाचिनी बनकर उसी श्मशान में नृत्य करेगी, प्रेमकी मन्दाकिनी शुष्क हो जायगी, काम का हुताशन भीषण रूप से प्रज्वलित हो उठेगा, जिस हुताशन में पतिकी देह आहुति हो जायगी।

यदि दैवयोग से नियुक्त पति का वर्ण परिवर्त्तन हो जावे और स्त्री का गर्भपात हो जावे तो फिर क्या किया जावे ?। वह फिर नियोग कर सकती है अथवा नहीं यदि नहीं तो क्यों नहीं ? इस प्रकार से एक२ स्त्री को कई २ पुरुषों से सम्बन्ध करने की आवश्यकता पड़ सकती है। यदि ऐसी दशामें हमारे समाजी भाई यह उत्तर दें कि ऐसी दशा में न नियोग विहित है न पुनर्विवाह, ऐसी स्त्री अथवा पुरुष को ब्रह्मचर्य का पालन करना उचित है। इस पर हमारा कथन यह है कि जब समाजियों के कथनानुसार एक विधवा का पुनर्विवाह होना इस कारण उचित है कि उस के लिये ब्रह्मचर्यका पालन करना कठिन है और व्यभिचार आदि करने लगनेकी सम्भावना है तो एक सधवा के विषय में ऐसी सम्भावना क्यों न की जावे ? हमारा समाजियों से नम्र निवेदन है कि वे इस विषय पर पहिले भली भांति विचार करलें तदुपरान्त गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचार का रौला मचावें।

चतुर्थ आपत्ति यह है कि गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था मान लेने पर स्त्रियों की भांति पुरुषोंको भी अपनी स्त्रियां परिवर्त्तन करना पड़ेंगी। यथा—यदि किसी ब्राह्मण की स्त्री शूद्र प्रकृति की हो जावे तो ब्राह्मण को उस स्त्री को त्यागना पड़ेगा क्योंकि ऐसा न करने पर मनु जी के कथनानुसार ब्राह्मण अधोगति को प्राप्त होगा और वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होगी जिस के विषय में भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है कि—

सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः॥

वर्णसङ्कर प्रजा उत्पन्न होने से कुलनाशक और कुल दोनों को ही नरक होता है उनके पितर लोग पिण्डोदक न पाने से पतित होते हैं। प्रायः देखने में भी आता है कि वर्णसङ्कर जाति नष्ट होजाती है इसलिये ऐसी सृष्टि भो आगे को नहीं चल सकती जिसके विषय में मनुजी ने भी कहा है—

यत्रत्वेते परिध्वंसा जायन्ते वर्णदूषकाः।
राष्ट्रिकैः सह तद्राष्ट्रं क्षिप्रमेव विनश्यति॥

अर्थात् जिस राज्य में वर्णदूषक वर्णसंकर जाति उत्पन्न होती है वह राज्य प्रजाओं के साथ शीघ्र ही नाश को प्राप्त होजाता है॥

स्त्री त्याग देने पर समाजियों को बतलाना चाहिये कि अब उस पुरुष को अन्य विवाह करनेकी आवश्यकता है अथवा नियोग की। ऐसी दशामें वही प्रश्न जो स्त्रियों के विषय में ऊपर किये जा चुके हैं पुरुषों के विषय में भी किये जा सकते हैं हम उनका दोहराना अनावश्यक समझते हैं। प्रत्येक समाजीके लिये उचित है कि उनप्रश्नों का सत्य समाधान देकर अनुग्रहीत करे॥

गुणकर्म्मानुसार वर्णव्यवस्था मान लेने के विषय में पांचवीं आपत्ति यह है कि इस सिद्धान्तानुसार वर्णसंकर कोई पुरुष ठहर ही नहीं सकता कारण कि जो प्रजा मनु के सिद्धान्तानुसार वर्णसंकर कही जाने योग्य है वह आर्यसमाजके सिद्धान्तानुसार गुरुकुलमें प्रवेश कर यदि अपने गुण कर्मानुसार किसी उत्तम वर्ण की होगई तो फिर वर्णसङ्कर कौन कहलायगा ?। यदि यह कहा जावे कि वर्णसङ्कर सन्तान को उत्तम वर्ण बनने का अधिकार नहीं है तो फिर समाजके गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था मानने वाले सिद्धान्तका स्वतः खण्डन होजावेगा और जन्म से वर्णव्यवस्था मानने का सत्य सिद्धान्त ही ठीक निकलेगा। इस कारण समस्त समाजी विद्वान इस प्रश्न का उत्तर दें कि उनके सिद्धान्तानुसार वर्णसङ्कर का क्या लक्षण है, उसकी उत्पत्ति किस प्रकारसे होती है, उसके गुणकर्म क्या हैं, तथा उसका वर्ण-परिवर्त्तन हो सकता है-वा नहीं ! यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

छठी आपत्ति यह है कि गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था मान लेने से बहुत से मनुष्यों का वर्ण निश्चित नहीं हो सकता यथा आर्यसमाज में जो वकील बाबू स्कूल मास्टर आदि पदों पर नियुक्त हैं उन का वर्ण क्या होगा ? जन्म से वर्णव्यवस्था मानने वालोंके सिद्धान्तानुसार तो वे जिस २ वर्णमें उत्पन्न हुए वही उनका वर्ण हुआ किन्तु समाजके मतानुसार जबतक उनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिके गुणकर्म न हों तबतक उनकी गिनती उन वर्णोंमें कदापि नहीं होसकती। ब्राह्मण तो वकील आदि हो नहीं सकते क्योंकि उन्होंने वेदोंका पढ़ना पढ़ाना आदि जो ब्राह्मणोंके कर्म हैं उनका पालन नहीं किया, क्षत्रिय होने के लिये भी युद्ध आदि क्रियाओं के जानने की आवश्यकता

है, वैश्य के लिये भी वाणिज्य आदि कर्म करने की आवश्यकता है इस कारण ऐसे मनुष्य तथा उनकी स्त्रियां किस वर्ण में समझनी चाहिये, सातवी आपत्ति यह है कि गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था के प्रचलित हो जाने पर समाज के सिद्धान्तानुसार नियोग द्वारा उत्पन्न सन्तान नियुक्त पुरुष अथवा स्त्रीको कैसे हो सकती है? यदि नियोग द्वारा उत्पन्न की हुई सन्तान का गुरुकुल से लौटने पर वर्ण परिवर्तन हो गया तो अब वह अपने नियुक्त माता अथवा पिता के पास तो रह नहीं सकती, इस कारण फिर वंशच्छेदन हो जाने की सम्भावना है और जिस उद्देश्य से नियोग हुआ वह भी अभिप्राय सिद्ध न हुआ। यदि कहा जावे कि बदले में दूसरी सन्तान मिल जावेगी तो फिर नियोग से क्या लाभ? यों भी तो जिसको सन्तान की अधिक आवश्यकता हो वह किसी की सन्तान गोद ले सकता है जिस दशा में समाजके मनमाने सिद्धान्तकी भी आवश्यकता नही रहती। एक प्रश्न यह भी किया जा सकता है कि क्या कोई पुरुष अपनी सन्तानके बदले नियोग द्वारा उत्पन्न की हुई सन्तानको लेलेना स्वीकार कर लेगा, और क्या इस दशा में विवाह से उत्पन्न की हुई सन्तान और नियोग द्वारा उत्पन्न की हुई सन्तान कभी एक ही समान हो सकती है?॥

आठवी आपत्ति वर्णव्यवस्था के गुण कर्मानुसार प्रचलित हो जाने पर यह है कि उस दशामें मनुष्योंको किसी प्रकार का भय न रह जावेगा। यथा—यदि कोई ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय कुमार किसी नीच वेश्या पर आसक्त होकर पतित हो गया अथवा यदि कोई पुरुष विलायत गया वहां उस का किसी मेम के साथ सम्बन्ध हो गया और फिर वह उस मेम को साथ लेकर भारत में लौट आया और कुछ दिवस उपरान्त समाजमे सम्मिलित हो गया और उस का विवाह भी अब वैदिक विवाह कहलाने लगा। गुण कर्मानुसार समाज ने उस का ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय आदि किसी वर्ण में प्रविष्ट कर दिया। अब समाज उत्तर दे कि यदि इस दशा में कोई आर्य विना विवाह किये किसी स्त्रीसे सम्बन्ध करले तो वह पतित हुआ अथवा नही? यदि नहीं तो फिर विवाह के विना समागम करना पाप है यह नियम कहां रहा? यदि कहा जावे कि ऐसा करना अवश्य पाप है तो फिर समाज में इस प्रकार की शुद्धि अब की जाती है तब समाजी महाशय कान खडे क्यों नही करते? और यदि शुद्धि के समय उनके गुण कर्म ब्राह्मण वर्ण कैसे हैं तो वे ब्राह्मण क्यों न समझे जावे?। इस प्रकार से गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था प्रचलित करनेमे अन्य बहुत सी आपत्तियां उठाई जा सकती हैं। उन्नति की सीमा संस्कारोंके अनुसार न रहने से हिन्दू समाज में घोर अशान्ति और परस्पर मे ईर्षा द्वेष आदि सभी दुर्गुण फैल जायंगे,—वर्णसंकर प्रजा उत्पन्न होकर श्राद्ध तर्पण बन्द होने से देश मे स्वास्थ्यनाश दुर्भिक्षादि फैल जाने के कारण वर्तमान अधोगतिको प्राप्त हुई पवित्र आर्यजाति और भी दिन पर दिन अधो-

गति को प्राप्त होती जायगी । गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था न इस देशमें कभी प्रच-लित न थी और न आगामी में इसके प्रचलित होनेकी सम्भावना है। इसी कारण वश स्वयं आर्यसमाज रात दिन गुणकर्मानुसार वर्णव्यवस्था की डुग्गी पीटने पर भी इस सिद्धान्तको अवतक कार्यमें परिणत करनेमें सर्वथा असमर्थ हुई है ॥

वर्णव्यवस्थाके मानने वाले वर्णाश्रमी हिन्दुओ ! चेतो और अब भी सम्हल जाओ, नहीं तो ऐसे कुसंस्कारोंके प्रचलित हो जाने पर संसारसे तुम्हारी सत्ता मिट जावेगी इसके लिये तुमको न केवल परमपिताके सम्मुख ही वरन् अपने पूर्व पुरुषों (जिन की सन्तान होनेका आज भी तुमको गौरव प्राप्त है तथा समस्त सभ्य संसार) के सम्मुख उत्तर देना पड़ेगा पूज्यपाद आर्य महर्षियोंका जो ऋण तुम्हारे ऊपर शेष है उस को उतारने का कुछ भी प्रयत्न करो यही मेरी आप लोगोंसे सविनय प्रार्थना है ॥

वर्णाश्रमधर्म का लघुसेवक—स्वामीदयालसिंह वर्मा बाराबङ्की

बृहदारण्यकोपनिषद्

पाठकों को सूचित किया जाता है कि बृहदारण्यकोपनिषद् के अंतिम अध्याय में चार ब्राह्मण हैं उनमें से तृतीय ब्राह्मण में महत्व प्राप्ति अर्थात् संसार में अधिक प्रतिष्ठा की कामना वाले मनुष्य के लिये श्रीमन्थ नामक काम्य कर्म का विधान है। और चतुर्थ ब्राह्मण में जैसे २ उत्तम गुणों से युक्त पुत्र अपेक्षित हो वैसे पुत्र की उत्पत्तिके लिये पुत्रमन्थ कर्म कहा है। यहभी ध्यान रहे कि बृहदारण्यकके इसी अन्तिमाध्याय के एक दो ब्राह्मणों में कही प्राणोपासना करने वाला प्राणविद्या का तत्त्वदर्शी और शुक्ल कृष्ण गतियों का तथा पञ्चाग्नि-विद्या का तत्त्वज्ञानी होनेपश्चात् जो स्वयं पहिले से आहिताग्नि भी हो तो ऐसे ज्ञानी को महत्व प्राप्ति के लिये श्रीमन्थ कर्म कर लेने पर पुत्रमन्थ कर्म करने का अधिकार है। और इस चौथे ब्राह्मणमें सब २८ कण्डिका है। इनमें से प्रत्येक कण्डिका का संक्षेपसे अभिप्राय मात्र लिखेंगे। वह प्राणविद्योपासक पञ्चाग्नि विद्याका तत्त्वज्ञानी श्रौत-स्मार्त्त अग्नियों को विधि पूर्वक स्थापित करके सांगोपांग अग्निहोत्र करने वाला द्विज मनुष्य अज्ञानियोंके तुल्य पुत्रोत्पादनार्थ स्वपत्नी से मैथुन न करे किन्तु निम्नलिखित अलौकिक रीति से मैथुन करे। इन चराचर प्राणियों का पृथिवी सार है, उस पृथिवी का सार जल है, जल का सार ओषधियां हैं, ओषधियों का सार पुष्प है, पुष्पों का सार गेंहू जौ आदि दाने रूप फल हैं उन फलों का सार यह मनुष्य के शरीर में वीर्य्य है। ऐसे सारोंके सारको व्यर्थ नष्ट न करके विद्वान् द्विजको अमोघवीर्य होना चाहिये। जिसका वीर्य कभी व्यर्थ नष्ट न होता हो जो सन्तानोत्पत्यर्थ ही पत्नीसे संयोग करे और गर्भाधान भी अवश्य हो वही अमोघ वीर्य कहाता है ॥१॥ दूसरी तीसरी कण्डिकाओं का सारांश अभिप्राय यह है कि सृष्टिके आरम्भ में प्रजापति विधाता ने अच्छे

प्रकार शोचा कि मैं इस पुरुष के लिये स्थिति की कल्पना करूं ऐसा शोच कर स्त्री को वना कर उसे नीचे लिटाके मैथुन कर्म किया तिससे मानुषी सहवासमें भी स्त्री नीचे रहनी चाहिये। प्रजापतिने सन्तानोत्पत्त्यर्थ कर्मको यज्ञकी भावनासे किया था वैसे ही जो मनुष्य काम भोगकी वासना को छोड़कर यज्ञानुष्ठानकी भावनाका पूरा २ आरोप करताहुआ इस पुत्रोत्पत्त्यर्थ कर्मको करता है उसका वैसा पुण्यफल रूप स्वर्ग होता है कि जैसा वाजपेय यज्ञ करने वाले यजमान को होता है। और यदि यज्ञकी भावनाको त्यागके जो पशुवत् लौकिक रीतिसे संयोग करता है उसका वह कर्म अत्यन्त निन्दित है ॥२।३॥ चौथी कण्डिका का अभिप्राय यह है कि उद्दालक आरुणि, नाकमौद्गल्य और कुमार हारित इन आचार्यों ने यज्ञ भावनाके साथ अलौकिक रीतिसे पुत्रोत्पत्त्यर्थ किये अलौकिक गर्भाधान कर्मका महत्त्व जानते हुए कहा है कि बहुतसे नाममात्रके ब्राह्मण दुराचारी अजितेन्द्रिय लोग इस अलौकिक पुत्रोत्पादन कर्म का महत्त्व नहीं जानते हुए लौकिक रीतिसे पशुवत् प्रवृत्त होते हैं वे अधोगतिको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ यदि श्रीमन्थकर्म करके ब्रह्मचर्य से रहता पत्नी के ऋतुकालकी प्रतीक्षा करते हुए पुरुषका वीर्य अल्प वा बहुत स्खलित हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त पांचवी कण्डिकामें कहा है ॥५॥

यदि उस पुत्रोत्पत्त्यर्थ ब्रह्मचर्य के समय अपनी छाया जल में देखे तो (मयि तेज०) इस मन्त्रसे छाया का अभिमन्त्रण करै। स्त्रियों में यह लक्ष्मीपन है कि जो यथोचित मासिक धर्म होना है क्योंकि वह भावी सन्तानोंका कारण है। इस लिये उस यशस्विनी पत्नीके साथ भावी उत्तम सन्तानके लिये गर्भाधान करै ॥६॥ यदि वह पत्नी गर्भाधान कृत्यको स्वीकार नहीं करै तो भूषणादि देकर उसे प्रसन्न करै, यदि तब भी तयार न होती हो तो उत्तम सन्तानके लिये किया उद्योग व्यर्थ होनेके लिये ताड़नाके द्वारा पत्नीको बाध्य करै और ऐसी दशामें (इन्द्रियेणते०) मन्त्र द्वारा स्त्री को शाप देवे। क्योंकि उत्तम सन्तानोत्पादन रूप उच्च उद्देश्यमें किये विघ्नका यह शाप ही दण्ड है ॥ ७ ॥ यदि पत्नी प्रसन्नतासे तयार हो तो (इन्द्रियेण) इस मंत्र से उसको आशीर्वाद देवे ॥८॥

यदि पति चाहे कि पत्नी मुझ से विशेष प्रेम करे तो गर्भाधान के समय गर्भाशय का स्पर्श करता हुआ निम्नलिखित मन्त्र का जप करै।

ओ३म्—अङ्गादङ्गात्सम्भवसि—हृदयादधिजायसे सत्वमङ्गकषायोऽसि दिग्धविद्धामिव मादये माममूंमयि ॥

मन्त्रमे आये अमूं शब्द के स्थानमें पत्नीका नाम बोलना चाहिये ॥ ९ ॥ १० । ११ कण्डिकाओं में कुछ शंका नहीं है, भाषामें प्रकाशित करने योग्य न होनेसे यहां उनका अर्थ नहीं लिखते। बारहवीं कण्डिकामें लिखा है कि यदि कोई मनुष्य पूर्वोक्त प्रकार के प्राणोपासक पञ्चाग्नि विद्या के विद्वान् श्रीमन्थ कर्म करने वाले पण्डित धर्मात्मा ब्राह्मण की पत्नी का जार हो अर्थात् उक्त पत्नी से व्यभिचार की चेष्टा करता हो और

वह विद्वान् यदि अपनी पत्नीके जारसे द्वेष करै तो मट्टीके कच्चे पात्रमें अग्निको स्थापित करके—अग्निके सब ओर मूंजके बर्हि प्रतिलोम स्तरणकर उस अग्निमें मूंज की घृताक्त प्रतिलोम सींकोंका होम आगे लिखे चार मन्त्रोंसे करै—यह अभिचार कर्म शत्रुमारण प्रयोग है—

मम समिद्धेऽहौषीः प्राणापानौ त आददेऽसाविति ॥१॥ मम समिद्धेऽहौषीः पुत्रपशूंस्त आददेऽसाविति ॥२॥ मम समिद्धेऽहौषी रिष्टासुकृते त आददेऽसाविति ॥३॥ मम समिद्धेऽहौषीराशापराकाशौ त आददेऽसाविति ॥४॥

यहां असौ पदके स्थानमें अपना वा शत्रुका नाम लेना चाहिये और नामके अन्तमें स्वाहा शब्द बोलकर आहुति देवे। यदि जार से द्वेष करे इसका अभिप्राय यह है कि द्वेष न करनेके पक्षमें संसारके भोगोंसे विरक्त होके पत्नीको त्याग सकता है। वह जार शत्रु इन्द्रिय शक्तिसे रहित होकर पुण्य जिसका नष्ट हुआ ऐसा होकर मर जाता है कि जिसको पूर्वोक्त प्रकारका वेदवेत्ता विद्वान् शाप देता है। तिससे वैसे विद्वान्की पत्नीसे व्यभिचारकी तो बात ही क्या किन्तु वैसे विद्वान्की पत्नीको अपना कुशल चाहने वाला कोई मनुष्य आंख उठाकर भी न देखे। परस्त्रीगमनमें ऐसा दोष है जिसका फल मारा जाना हो जाता है, इस कारण परस्त्री गमनसे सबको डरना और बचना चाहिये ऐसे अभिप्रायसे शाप वा अभिचार कर्मका प्रयोग दिखा दिया है ॥१२॥ तेरहवीं कण्डिकामें लिखा है कि उत्तम पुत्र चाहने वाले जिस विद्वान् की पत्नी ऋतुमती हो वह पुरुष ऋतुकालके तीनों दिन दुग्ध जलादि कांसेके पात्रसे पीवे और चीरे सहित दो अहत वस्त्र धारण करे और तीन दिन तक उस ऋतुमती पत्नी को कोई शूद्र जातीय स्त्री वा पुरुष न देखे, तीन दिन बीत जाने पर चौथे दिन स्नान करके शुद्ध हो जाने पर पत्नीसे धान कुटावे, इन्हीं चावलोंका भात पकाकर होम करके दोनों पति पत्नी दूध घी मिलाकर खावें तो उनका पुत्र गौरवर्ण एक वेदका वक्ता और पूर्ण आयु वाला होगा। यदि चाहें कि हमारा पुत्र पिंगल वर्ण पूर्णायु वाला दो वेदोंका वक्ता हो तो होमानन्तर घृत मिश्रित दही भात खावें। यदि चाहें कि हमारा पुत्र लाल नेत्रों वाला श्यामवर्ण पूर्ण आयु वाला तीन वेदोंका वक्ता हो तो होमानन्तर घृत मिश्रित केवल भात खावें। और यदि चाहें कि हमारी पुत्री पूर्ण आयु वाली विदुषी हो तो तिल मिश्रित भात पकाकर होमके पश्चात् घी मिला भात खावें तो वैसी कन्या उत्पन्न हो सकती है ॥ १३-१७ ॥

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समितिङ्गमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वान् वेदाननुब्रवीत सर्वमायुरिया-

दिति मांसौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवा औक्षेण वार्षभेण वा ॥ १८ ॥

भा०-जो मनुष्य चाहे कि मेरा पुत्र पण्डित हो, प्रख्यात हो, सभाओंमें बेधड़क बोलने वाला, सुनने योग्य प्रिय मधुर भाषी सब वेदोंका वक्ता हो और दीर्घायु हो, वह चढ़ती अवस्थाके वा मध्यावस्थाके बैलके मांसके साथ भातको पकाकर होमकरके घृत मिला कर पत्नीके साथ खावे तो वैसा पुत्र होना सम्भव है।

यह काम्य कर्म है और इसी कारण परिसंख्या, रूप हैं विधि नहीं है क्योंकि वैसे पुत्रकी चाहना और मांसौदनका भक्षण दोनों राग प्राप्त हैं, और प्राप्तमें विधि नहीं होता किन्तु अप्राप्त मे विधानका होना नियत है। यह भी सर्वत्र प्रसिद्ध है कि प्राप्तिमें निषेध होता है, रागद्वारा प्राप्त मांस भक्षण का सामान्यरूप से किया निषेध जो सर्वत्र प्रसिद्ध है उसी की यह परिसंख्या है कि सदोष होने पर भी वैसे पुत्रकी कामनासे जो मनुष्य मांस खावे वह उक्त नियमके अनुसार वैसे बैल का ही खावे अन्य का नहीं वैसा करने से उस को दोष न लगे सो नहीं किन्तु दोष अवश्य लगेगा। क्योंकि मांसभक्षणमें सब से बड़ा हिंसा दोष है, वह किसी प्रकार सर्वथा निवृत्त हो नहीं सकता। जब शास्त्रका मत स्पष्ट है कि वैसे पुत्रकी कामना हो तो बैल का मांस भात मिला कर खावे तो यहां कामना ही मुख्य रही, कामनाके वशीभूत होकर किये काममें होने वाले दोष का फल कामनाके कारण भोगना पड़ेगा। जो मनुष्य मांसके दोष से बचना चाहे वह वैसे पुत्रकी कामना ही न करे क्योंकि कामना न हो तो मांसकी आज्ञा भी नहीं है। यह भी ध्यान रहे कि जो मनुष्य पहिलेसे मांस भक्षणका अभ्यास नहीं रखता वा यों कहो कि मांस भक्षण को शास्त्र की आज्ञानुसार जिस ने सदोष जान कर त्याग दिया है जिस को मांसभक्षण से घृणा है वह वैसा पुत्र होनेकी इच्छा से भी मांसभक्षण करनेको तयार नहीं हो सकता किन्तु पहिलेसे जो मांसभक्षी हैं वही वैसे पुत्रकी कामना से मांसभक्षण करनेको तयार होगा। इससे सिद्ध हुआ कि सब के लिये यह विधान नहीं है किन्तु मांसभक्षी के लिये काम्य परिसंख्या है॥

अब रहा यह कि नामी चतुर होना तथा प्रिय मधुर भाषी होनादि गुण कटु भाषी होने आदि की अपेक्षा उत्तम होने पर भी धर्मके साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं रखता किन्तु सत्यवादी होना धर्मके साथ पूरा २ सम्बन्ध रखता है, सत्यवादी मनुष्य सर्वथा प्रिय तथा मधुर बोल नहीं सकता तथा प्रसिद्ध और प्रगल्भतादि के साथ भी धर्म का अन्तरग सम्बन्ध नहीं है किन्तु वे सब काम्य गुण लौकिक हैं अधर्म से निवृत्ति न होने पर भी वैसे गुण मनुष्यमें हो सकते हैं इस कारण मांसभक्षण से वैसा पुत्र होना ठीक है अनुचित नहीं। १८ से अगली कण्डिकाओं में गर्भाधान और जात कर्म सस्कार हैं जिनमे कुछ सन्देह नहीं है॥

सम्बोधन

ऐ श्रेष्ठ जाति ! तेरी दुनियां में जब कदर हो।
साहस से दिल भरा हो, निज धर्म्म शीश पर हो॥
ममता हो सत्य मन से, भारत वसुन्धरा पर।
बहता जो पूर्वजों का स्वशरीर में रुधिर हो॥
चलने में धर्म्म-पथ पर, चाहे जो कष्ट आवें,
"परवाह नहीं है कुछ भी" घर घर यही ज़िकर हो॥
शुभ लक्ष्य मुक्ति का हो, उन्नति स्वकर्म में हो।
भारत क़िला बना हो, सब बान्धवों का घर हो॥
श्रीकृष्ण-भक्ति होवे, तारा-सु-शक्ति होवे।
निज देश-प्रेम होवे, मुख ॐ ॐ हर हो॥

श्री तारादत्त पाण्डेय।

साहित्य-चर्चा

वेदत्रयी समालोचन—लेखक और प्रकाशक कविरत्न अखिलानन्द शर्मा, मिलने का पता पं० सुबोधचन्द्र शर्मा मु० चन्द्रनगर पो० रजपुरा जि० बदायूं मू० १)

प्रस्तुत पुस्तकका नाम यद्यपि वेदत्रयी समालोचन है पर इसमें वेदत्रयीके सम्बन्ध में कम विचार और अन्य विषयोंमें अधिक विचार किया गया है। कविरत्नजीने सनातन धर्मके अनेक विषयों की सिद्धि इस पुस्तकमें की है साथ ही आर्यसमाजके वेद विरुद्ध सिद्धान्तोंकी कलई भी इस में अच्छी तरह खोली गई है आर्यप्रतिनिधि सभा, मुण्डि मण्डल, कुमार सभा, विधवाश्रम आदि दयानन्दियोंकी संस्थाओंकी भी इसमें अच्छी खबर ली गई है। मंगलाचरण, प्रस्तावना, अवतरणिका, उपोद्घात, भूमिका, आवश्यक विवरण और ग्रन्थकार परिचय इत्यादि शीर्षक देकर जो विचार लिखा गया है वह १५४ पृष्ठोंमें समाप्त हुआ है, मूल पुस्तक वेदत्रयी समालोचन केवल १२८

पृष्ठोमे है। प्रस्तावना, अवतरणिका, उपोद्घात, और भूमिका में क्या अन्तर ग्रन्थ-कर्त्ताने समझा है सो मालूम नही,। विषय निर्वाचन क्रम भी इसमें विचित्र है। जिस विषयका उत्थान लेखकने किया है उसके आगे ही किसी ऐसे विषयका प्रतिपादन कर दिया है कि पूर्वापर का कोई सम्बन्ध प्रतीत नही होता,। बहुत जल्दी २ विषय बदलते गये हैं। फिर भी शीघ्र बदलते जानेसे इसमे विषयोंका समावेश अधिक हुआ है। कितनी ही बातें इसमें ऐसी भी हैं जिनका प्रतिपादन इस ग्रन्थमें होना अनावश्यक था उदाहरणार्थ पृ० ५० और ५१ में लिखी बातें समयानुकूल नही, इसी तरह पृ० २५६ की लिखी बातें भी हैं। इन विषयोंका वर्णन न रहनेसे भी पुस्तककी कोई हानि न थी, अस्तु पुस्तक देखने योग्य है और समाजी स्वयम्भू नेताओंकी कितनी ही छिपी हुई पोलें इसके पढ़नेसे प्रकट हो जाती हैं।

राजनैतिक प्रपञ्च—ले० ठा० उदयवीरसिंह रघुवंशी, बैरिष्टर एट ला० प्रकाशक मु० ज्योतिस्वरूप कोठी ठा० उदयवीरसिंह सिविल लाइन, अलीगढ मू० ॥) इस पुस्तक का असली नाम नौरतन मण्डली है पर न मालूम ग्रन्थकर्त्ताने टाटिल पेज पर क्यों इस नामको बदल कर राजनैतिक प्रपञ्च करदिया है पुस्तककी भाषा सीधी सादी और सर्वजन बोधगम्य है। इस पुस्तकमें ओनरेबिल राय लाला झाऊनप्रसाद बहादुर, नवाब जमालुद्दीन गोटा बहादुर, नवाब मदारुद्दौलाजी हुजूरा गंज बहादुर तथा लफटण्ट पीटर पाल पिछे रमला बहादुर, इन कल्पित व्यक्तियोंके नामसे वर्त्तमान समयमे होने वाली कौंसिलोंकी लीला खूब दिखलाई है। सरकारी उपाधियोंकी अनवरत वर्षा, उपाधिके लालचियोंका खुशामदीपन, जातीय पक्षपात, योग्य होने पर भी वालण्टियर न हो सकने आदिकी लीलाओंका अच्छा वर्णन किया है, चौथे अध्यायमें ग्रन्थकर्त्ताने यह दिखलाया है कि हम क्या चाहते हैं। पुस्तक समयोपयोगी है और देखने योग्य है।

दाटधानादि ब्राह्मणोत्पत्तिभास्कर—यह पुस्तक सात अध्यायोंमें विभक्त है इसके लेखक पं० बटुकप्रसाद मिश्र भास्कर काशी निवासी हैं जिन्होंने इसे वहीं के एक सन्यासी सहजानन्दके लिखे भूमिहार ब्राह्मण परिचय नामक पुस्तकके उत्तर में लिखा है, पुस्तक मे संस्कृत ग्रन्थोंके प्रमाण यथेष्ट दिये गये हैं। भूमिहार ब्राह्मण परिचय पुस्तक के लेखकने अपने सजातीय भूमिहारो को त्रिकर्मा ब्राह्मण बताकर, अन्य षट्कर्मा ब्राह्मणोंकी निन्दाकी थी, इस पुस्तकमे उन असम्बद्ध और मिथ्या बातों का अच्छा खण्डन किया गया है। पुस्तक देखने लायक है मूल्य १) अधिक है मिलने का पता सारवाचारीण भास्कर पुस्तकालय सराय गोवर्धन, बनारस सिटी।

गृहस्थ धर्म दर्पण—इसे दिल्लीकी श्रीमती कुमारी विन्दुवासिनीने लिखा है यह पुस्तक का प्रथम भाग है मूल्य १) है, इस पुस्तक को कुमारी जी ने वंग भाषा

की पुस्तकोंसे अनुवादित किया है यही कारण है कि इसकी भाषा बंगालियोंकी बोल चालकी हिन्दी हो गई है। कर्ता एकवचन है तो क्रिया बहु वचन लिखी गई है, कितने ही संस्कृत शब्दोंकी इसमें बड़ी दुर्दशा की गई है यथा संस्कृतमें भगिनी शब्द बहिनके लिये व्यवहृत किया जाता है इस पुस्तकमें इसका रूप (भग्नी) लिखा गया है, महाभारत और अन्य पुराणोंसे इसमें उपाख्यान लिखे गये हैं पर कहीं २ उनमें मूल पुस्तक की कथा से भेद आ गया है। कुछ बातें इसमें ऐसी भी हैं जो किसी सत्कुलोत्पन्न स्त्री द्वारा न लिखी जानी चाहिये थीं, उदाहरणार्थ पृष्ठ ६२ की सातवीं पंक्ति, इसमें जो संस्कृत श्लोक छपे हैं वे भी अत्यन्त अशुद्ध हैं। कागज छपाई साधारणतः अच्छी है। मिलने का पता-कन्या पाठशाला छीपीवाड़ा, देहली।

भजन मञ्जरी—यह पुस्तिका भी उपर्युक्त लेखिका की लिखी हुई है इसमें गोरक्षा, वार्षिकोत्सव, आदि विषयोंके भजन हैं। भजन साधारणतः अच्छे हैं यद्यपि काव्य दृष्टिसे पुस्तक अच्छी नहीं है फिर भी जो विषय इसमें प्रतिपादन किया गया है वह अच्छा है। मूल्य ≠) मिलनेका पता-उपर्युक्त।

विविध विषय

प० कालूराम जी तथा आर्यसमाज।

हमें यह जानकर दुःख हुआ कि शान्तिका दम भरने वाली आर्यसमाज जैसी संस्थाने पं० कालूराम जी के विरुद्ध नालिश करनेका दृढ निश्चय कर लिया है, नोटिस पं० कालूराम जी के पास पहुंच गया है और अब यह भी सम्भव है कि उसका उत्तर भी पं० कालूराम जी दे चुके होंगे, पर यह आशा करना व्यर्थ है कि आर्यसमाजी अपने इस अनुचित हठको छोड़ेंगे, सनातनधर्मियोंको उचित है कि वे पं० कालूराम जी की सहायताके लिये तैय्यार हो जावें, सनातनधर्मियोंमें बड़े २ वकील हैं उन्हें पं० कालूराम जी की पैरवी करनेके लिये तैयार हो जाना चाहिये, जो सज्जन आर्थिक सहायता देना चाहें वे हमें सूचना दें जिस से उनके शुभनाम प्रकाशित किये जावें। प० कालूराम जी ने पहिले सत्यार्थ प्रकाशको छापकर पबलिकमें स्वा० दयानन्दके असली सिद्धान्तोंको प्रकट कर दिया है इससे आर्यसमाजी घबड़ा गये हैं। और अपना पक्ष कमजोर देखकर अदालतकी शरणली है, सनातनधर्मियोंका कर्तव्य है कि वे अपनी शक्ति प्रकट करें।

नया समाचारपत्र ।

डरबन (नेटाल) से एक नया हिन्दी पाक्षिकपत्र निकलने लगा है इस का नाम है "अमृत सिन्धु" इसके प्रकाशक जी० वी० रघुवीर वर्मा हैं। पत्र प्रकाशक ने अपने पत्रको सनातनधर्म और आर्यसमाजके झगडोंसे पृथक् बताया है पर हम देखते हैं कि इसमें आर्यसमाजकी खबरें अधिक हैं। हमारी रायमें पत्र प्रकाशकको अपनी नीति स्पष्ट कर देनी चाहिये, वहांके एक आर्यसमाजी पत्रसे सनातनधर्मी धोखा खा चुके हैं। यह बात हर्षकी है कि दक्षिण अफ्रीका जैसे सुदूर प्रान्तमें हिन्दी भाषा प्रचारका यह स्तुत्य कार्य होने लगा है। हम पत्रकी उन्नति चाहते हैं। भाषामें अभी सुधारकी आवश्यकता है मूल्य प्रति संख्या १ पेनी है।

दयानन्दियों का मिथ्यावाद।

चन्दौसी से मुंशी डोरीलाल जी ने उक्त शीर्षक देकर एक लम्बा लेख प्रकाशनार्थ हमारे पास भेजा है जिसका संक्षिप्त आशय यह है कि "आर्यमित्र २ नौम्बर सन् १७ की संख्यामें एक आ० समाजीने चन्दौसीका जो शास्त्रार्थ छपाया है वह सर्वथा मिथ्या है। पहिली बात तो यह मिथ्या है कि धर्मसभाने कभी शास्त्रार्थ स्वीकार नहीं किया, आर्यसमाज चन्दौसी सनातनधर्मियोंसे अच्छी तरह परास्त हो चुका है। अब की बार भी प० बसन्तलालका अच्छे प्रकार पराजय हुआ, पं० बसन्तलाल कहते थे कि व्यास जी मछुए की पुत्रीके पुत्र थे, सनातनधर्मकी ओरसे महाभारतके प्रमाण देकर सिद्ध कर दिया गया कि मछुए की कन्याने व्यास जी का पालन किया था, यदि पालन करने से ही पुत्र हो जावे तो फिर महाराना उदयसिंह पन्नाधायके पुत्र क्यों नही कहलाये। इस शास्त्रार्थका ऐसा प्रभाव पडा कि प० कैलाश नारायण (जो कभी आर्यकुमार सभा के मंत्री थे) ने आर्यसमाज को तिलाञ्जलि देकर सनातनधर्म की शरण ली।

महाविद्यालय के स्नातक।

ज्वालापुर महाविद्यालय यद्यपि आर्यसमाज की संस्था है पर इसके सञ्चालक और कार्य कर्ताओंमें ऐसे सज्जन हैं जो यथासम्भव प्राचीन ऋषिप्रणीत प्रणाली द्वारा शिक्षा देनेके पक्षपाती हैं। आर्यसमाजके अन्दर रहकर जहां तक प्राचीन प्रणालीकी शिक्षा दी जा सकती है वहा तक यहांकी विद्वन्मण्डली शिक्षा देती हैं यहां शिक्षा मुफ्त दी जाती है, गुरुकुल कांगडी की तरह फीस नहीं ली जाती है गत मार्गशीर्ष शुक्ल द्वितीया रविवारको भागीरथीके तट पर पहिली बार वहां की विद्वन्मण्डली ने चार ब्रह्मचारियोंको स्नातक किया है और उनको विद्याभास्कर की उपाधि दी है। इनके

नाम श्री रामावतार शर्मा, श्री विश्वनाथ शर्मा, श्री विश्वनाथ वर्मा तथा श्री उदयवीर वर्मा हैं, इन चारोंने पञ्जाब यूनीवर्सिटीकी शास्त्री परीक्षा और कलकत्ते की तीर्थ परीक्षा पास की है।

लखीमपुर में धर्मकी धूम।

सनातनधर्मसभा लखीमपुर खीरी का २७ वां वार्षिकोत्सव महन्त रामदास जी के सभापतित्वमें २३ दिस० से २८ दिस० तक धूम धामसे हुआ, प्रथम दिन नगर कीर्त्तन हुआ, जिसमें वेद भगवान् की सवारी तथा श्री रामचन्द्र जी लक्ष्मण सीता तथा हनुमान् जी सहित विराजमान थे आगे २ वेदपाठ, रामायण गान और भजनमण्डलियों का गान होता जाता था दूसरे दिनसे आये हुए विद्वानोंके मनोहर व्याख्यान हुए जिनमें से पं० अखिलानन्द तथा पं० वैद्यनाथ शास्त्रीके व्याख्यानोंका अच्छा प्रभाव पड़ा, समाजियोंको शास्त्रार्थ और शङ्का समाधानके लिये खुला चैलेंज दिया गया था पर उन्हें साहस ही न पड़ा, किन्तु तेजसिंह आदि समाजी गाने वाले अपने समाज मण्डपके अन्दर ही बैठे २ सनातनधर्मी विद्वानों के लिये गालियां देते रहे। तब तो सनातनधर्मी विद्वानोंने भी आर्यसमाज की ऐसी २ पोलें खोलीं कि नगर निवासियों को आर्यसमाजसे घृणा हो गई। पांचवें और छठे दिन कुमार सभाका भी प्रथम वार्षिकोत्सव हुआ, जिसमें पं० अखिलानन्द कविरत्न तथा पं० कालूराम जी शास्त्री के बड़े जोरोंके व्याख्यान हुए।

सनातन धर्मसभा विजयगढ़ का वार्षिकोत्सव।

शास्त्रार्थ में दयानन्दी भाग गये—

इस वर्ष श्रीसनातनधर्म सभा विजयगढ़का वार्षिकोत्सव बड़ी सफलता के साथ समाप्त हुआ ऐसी आशा नहीं थी, प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा पं० गिरधरदत्तजी शर्म्मा चतुर्वेदी, व कविरत्न पं० अखिलानन्द जी, महोपदेशक पं० कन्हैयालालजी, व पं० दुर्गादत्त जी पन्त ऋषिकुल संस्थापक और महोपदेशक पं० श्रवणलाल जी, गोस्वामी द्वारिकानाथ जी, व शास्त्री पं० गंगावल्लभ जी, पं० कन्हैयालाल जी, हाथरस निवासी अनन्तराम जी ब्रह्मचारी भजनोपदेशक आगरा पं० अनोखेलाल जी भजनोपदेशक तथा पं० गजानन्द जी मैनपुरी आदिके विद्वान् और सुप्रसिद्ध वक्ता उत्सवमें पधारे थे प्रथम दिवस नगरकीर्त्तन बड़े समारोह के साथ हुआ हाथियों तथा भजनोपदेशकों की गाड़ियों और दर्शकोंसे बाज़ार खचाखच भरा हुआ था आगे २ अंग्रेज़ी बाजा अपनी सुरीली तान से मनुष्योंका मन मोहित कर रहा था भजनोपदेशकों ने ऐसे समयोचित भजन गाये कि श्रोतागण सत्र-मुग्ध हो गये चारों ओर जयकारों की ध्वनि गूंजरही

थी, दयानन्दियोंके भ्रमयुक्त सिद्धान्तों के खण्डन करने में भी उन्हों ने कमी नहीं की, आर्यसमाज के घृणित सिद्धान्तोंसे अनेक संशयात्मक मनुष्योंकी रक्षा हुई। दूसरे व तीसरे दिवस कविरत्न प० अखिलानन्द जी के साथ दयानन्दी पं० शिवशर्मा का शास्त्रार्थ हुआ प० अखिलानन्द जी ने अपने अपूर्व पाण्डित्य से आर्यसमाजियों को इस प्रकार भगा दिया जिस प्रकार वनाधिप केशरी अपने भीमनाद से शृगालों को इतस्ततः पलायित करदेता है प० शिवशर्मा जी शास्त्रार्थ में संस्कृत भी न बोल सके और प० अखिलानन्द जी के प्रस्तुत किये हुए मन्त्रोंका जिनसे भलीभांति मृतकश्राद्ध सिद्ध होता है अर्थ भी न कर सके अन्त में निरुत्तर हो सभाभवन से शास्त्रार्थ विना पूरे हुए ही पोथी पत्रा लेकर चले गये उनको बहुतेरा रोका लेकिन एक मिनट भी न रुके पश्चात् मूर्त्तिपूजा अवतार श्राद्ध वर्णव्यवस्था आदि विषयों पर विद्वानों के बड़े प्रभावशाली व्याख्यान हुए अन्तिम दिवसके अन्तिम समयमें श्रीमान् महाराजाधिराज पञ्चमजार्जकी विजयके लिये भगवान्से प्रार्थना की गयी अन्तमें पं० दुर्गादत्त पन्त ने इस सभाकी ओरसे एक ऋषिकुल स्थापित होनेका प्रस्ताव किया और मनुष्योंने उसे बड़े प्रेमसे स्वीकृत किया ऋषिकुलके लिये उद्योग किया जा रहा है और आशा है कि वसन्तपञ्चमी तक इस उपयोगी संस्थाका जन्म हो जायगा॥

निवेदक—चाकेलाल गुप्त

धर्मप्रचार।

श्रीइन्द्रप्रस्थ सनातन धर्म मण्डल की ओर से २६।२७।२८। नवम्बर सन् १७ को गढ़मुक्तेश्वर में भागीरथीके पवित्र तट कल्लू के घाट पर मण्डप बना कर विशेष उत्सव मनाया गया जिस में श्रीमान् पं० गौरीशंकर जी अमृतसर निवासी श्री पं० मुन्शीराम जी सुरथल निवासी प० गोकुलचन्द्रजी शास्त्री प० ब्रह्मानन्द जी मेरठ निवासी श्री प० सीतारामजी दिल्ली निवासी आदिके पातिव्रत धर्म गंगामाहात्म्य भागवत माहात्म्य पर व्याख्यान हुए। जनसंख्या २१०० होती थी लाला लक्ष्मणदासजी की कोशिश से गंगाजी पर एक स्थान भी सरकार से देहली निवासियों के लिये मिल गया है। जिसमे कुछ किराया इत्यादि नही देना पड़ेगा।

रामचन्द्र शर्म्मा क्लर्क मण्डल

झेलम में उत्सव।

सनातनधर्म कुमारसभा झेलम का वार्षिकोत्सव २५-२६ २७ मार्च को होगा, पं० गिरधर शर्म्मा, पं० अखिलानन्द कविरत्न पं० राजनारायण जी षट्शास्त्री आदि विद्वानोंके पधारनेकी सम्भावना है। आर्यसमाज झेलमको शास्त्रार्थके लिये चैलेञ्ज भी दिया जाता है।

नारायणदास शर्म्मा झेलम

फैजाबाद में आर्यसमाजका पराजय ।

फैजाबादसे एक सम्वाददाता लिखते हैं कि यहां हैदरगंज में पं० लक्ष्मीनारायण जी कथा बांचते थे, इसी बीचमें समाजियोंने कुछ प्रश्न भेजे जिनका उत्तर सनातन-धर्म सभाका एक विशेष अधिवेशन करके दिया गया और समाजियोंके उत्सवमें जाकर सनातनधर्मी विद्वानोंने उनको शास्त्रार्थ में परास्त किया; बाद २६ । ३० दिस को पयागपुर ज़ि० गोंडा में आर्यसमाज का उत्सव था उसमें आर्यसमाजकी तरफसे शास्त्रार्थ का आह्वान सुनकर पं० लक्ष्मीनारायण जी आदि विद्वानोंने उनको परास्त किया; । फैजाबाद में समाजियों का पानी पीने वालेको और उनकी सभामें जाने वाले को जातिबाह्य कर देनेकी भी व्यवस्था की गई है ।

मरुदेशीय विद्वत्समिति का

परीक्षाफल

१९७३—मि० आ० शु० ७-८-६

कर्मकाण्डमें पुरोहित ।

प्रथम श्रेणी

(१) रामचन्द्र सारस्वत रजतपदक गगसीणा (करनाल) (२) कुम्भारामशर्मा रा० ब० भगवानदास बागला सं० पाठ० (चूरू) (३) रामचन्द्र गौड़ (प्राइवेट) चूरू ।

द्वितीय श्रेणी ।

(१) बेनीप्रसाद त्रिवेदी दीक्षित पुरा (जबलपुर) (२) नानकचन्द रायबहादुर भगवानदास बा० सं० पाठ० चूरू (३) बाबूलाल चतुर्वेदी साठिया कुआ जबलपुर । (४) नन्दलाल राय० बहा० भगवा० बागला पाठशाला (चूरू) (५) पन्नालाल———सिंहानिया पाठ० रामगढ़ सीकर--

तृतीयश्रेणी ।

(१) रामेश्वर खेतान पाठशाला रामगढ़ (२) कृष्णदत्त कूईंकूट पाठशाला (३) कालीचरण सनाढ्य मुनरदाई जबलपुर (४) भगवानदत्त चौरासिया सिंहानियां पाठ० (रामगढ़) (५) बिहारी लाल भूथन (हिस्सार) (६) जगन्नाथ शुक्ल गोहलपुर (जबलपुर) (७) शिवशंकर तिवारी ।

आयुर्वेद वैद्य—२ श्रेणी ।

(१) ओंकार शर्मा आभूसर (जयपुर) (२) गौरीदत्त शर्मा H. N. R. कालेज (रामगढ़) (३) गजानन शर्मा दाधीच उदयपुर (जयपुर)

३ श्रेणी ।

(१) बलदेवप्रसाद-परोपकारी औषधालय चूरू

व्याकरणे विद्याभूषण ।

(१) पं० गंगाविष्णु पाण्डेय अध्यापक हितकारिणी सं० पा० जबलपुर ।

परिश्रम ।

(१) रामचन्द्र गौड़ विद्यावर्द्धिनी पाठशाला रामगढ़ (२) मथुराप्रसाद हरनन्द कालेज (रामगढ़) (३) जेसराज वि० व० पाठशाला (रामगढ़)

विद्याधर शर्मा गौड़

मन्त्री० म० वि० स० चूरू

विज्ञापन का प्रतिवाद ।

प्रिय धर्मसेवक महाशयो! आप लोगोने अगस्त मासके ब्रा०स०में आवश्यक सूचना, नामक विज्ञापन अवश्य देखा होगा, और उसपर विचारभी किया होगा मुझको पत्रिका प्राप्त होते समय इस विज्ञापन का लेशमात्र भी ध्यान न था, पत्र पाने के एक सप्ताह बाद पं० नन्दकिशोर जी उपदेशकने मुझको इस उक्त सूचना का ध्यान दिलाया, तब मैंने उसपर विचार किया, यद्यपि इस कार्यमें न मुझसे परामर्श किया गया था और न यह दिखलाया गया था, ऐसी दशा में मुझको बडी चिन्ता हुई । तत्पश्चात् मैंने इस की खोज की तो मुझ को विदित हुआ कि इस श्रेष्ठ कार्य को मेरे एक सुयोग्य मित्र पं० लालमणि जी ने मेरे नाम द्वारा चलाना चाहा है अतएव मुझको अत्यन्त प्रसन्नता प्राप्त हुई, और मैंने अपना बहुत सा समय भी इस धर्मक्षेत्र में लगाना स्वीकार किया, तदनन्तर मैंने उक्त सूचना का सम्पूर्ण भार अपने ऊपर समझकर कुछ संसारी प्रथा के अनुसार नियम बनाये, गत कार्तिक कृष्ण द्वादशी को अन्तरंग द्वारा यह सम्पूर्ण नियम समस्त उपदेशक महाशयों पर (जिनके नाम विज्ञापन में प्रकाशित हैं) प्रगट किये, दो एक उपदेशकों के अतिरिक्त और किसी महाशय को स्वीकार न थें, केवल प० आत्माराम जी शास्त्री ने इन बातों के देखते हुये स्वतन्त्र रूप मे धर्मोपदेश करना स्वीकार किया । मैं कदापि ऐसी दशा में इस विज्ञापन के भार को अपने ऊपर नही लेना चाहता हूं, इस धर्मकार्य के विरुद्ध प्रतिवाद प्रकाशित करने के लिये यह लेखनो कदापि उद्यत नही थी, परन्तु यह दृष्टान्त इस समय चरितार्थ आता है कि " सांप मरे न लाठी टूटे " यदि दो एक भी सुयोग्य विद्वान् इस धर्म कार्य को पालन करने के लिये निस्वार्थ भाव से उद्यत होते तो इस धर्मकार्य के विरुद्ध यह प्रतिवाद रूपी लेखनी कभी न उठती । आपका—बैजनाथ सनाढ्य मुरादावाद ।

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS-ETAWAH.

प्लेगसे बचने का उपाय।

इस समय भारतवर्ष में प्लेग की अत्यधिक वृद्धि होरही है कितने ही गांव और नगर इससे तबाह होरहे हैं। विचारशीलों का कर्त्तव्य है कि अशिक्षित और निर्धन मनुष्यों को प्लेग से बचने का उपाय बतावें हम भी सर्वसाधारण के लाभार्थ एक उपाय यहां प्रकाशित करते हैं॥

(१) निम्नलिखित औषधियां खरल करके कालीमिर्च से कुछ बड़ी गोलियां बनालो; केशर १ तोला, बीजा बोल ६ माशे, एलुवा ६ माशे, अर्क गुलाब ४ तोले, सेवनविधि-पूरी उम्र वाले को एक एक गोली बच्चों को आधी गोली सुबह और शाम प्लेगके दिनोंमें पानीके साथ खाना चाहिये, यदि गोली गर्मी लावे तो थोड़ा सा दूध पीलें, यदि किसी को प्लेग होजावे तो यह गोली एक एक घण्टा के अन्तर पर खिलाना चाहिये, यदि ज्वर अधिक होवे तो यह गोली आध २ घण्टे के बाद ज्वर कम होने तक खिलावें। यदि गिल्टी निकल आवे तो इन्हीं गोलियों को गरम पानीमें पीसकर लेप करें, और जहां तक होसके गिल्टीको सेकें अथवा चीताकी जड़ बारीक पीसकर लेप करें, और दिन में कई बार सेकें।

(२) निम्नलिखित औषधियों को कूट पीसकर रख छोड़ें, और सुबह शाम मकान में धूनी देवें, इससे चूहे जो इस बबाके फैलने का एक कारण है, भागते हैं और हवा स्वच्छ होती है, बच ऽ= कूट ऽ= जौ ऽ। बड़ी हर्र ऽ= सरसों ऽ। नीमके पत्ते सूखे ऽ॥ घी ऽ=

(३) निम्नलिखित बातों पर और ध्यान रक्खें—
बदन भरमें कड़ुआ तेल कमसे कम देरदे घुटनों तक मलो जहां तक होसके मोजे जूते पहिने रहो और नंगे बदन न रहो, खाना जल्द हजम होने वाला खाओ, बासा खाना कभी न खावो और गरम दूध पीओ।

(४) अगर नाबदान इत्यादि बदबू देता हो तो फौरन साफ करावो, और २ छटांक मिट्टीका तैल ५ सेर पानी में मिलाकर धुलवा दो।

सर्व हितैषी—

डा० सीताराम गुप्ता—इटावा।

भूल-सुधार।

पाठकों को स्मरण होगा कि, ब्राह्मणसर्वस्व के अगस्त के अङ्क में एक आवश्यक सूचना प्रकाशित हुई थी उसका तात्पर्य यह था, कि यहांके उपदेशक तथा भजनोपदेशक निःस्वार्थ सनातनधर्म का प्रचार करने बाहर जाया करेंगे इसमें विशेष धन की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु मार्गव्यय का प्रबन्ध सभाओं को अवश्य करना होगा, उसमें पं० आत्माराम जी का नाम और पं० वैजनाथ जी सनाढ्य का पता भूलसे छप गया था अतः हमारे पाठक उसको सुधारलें और अब पं० दीनानाथ उपाध्याय मो० धर्मशाला मुरादाबाद के पते पर सूचना दिया करें।

निवेदक—लालमणि पूठिया।

आत्मा की ख़ुराक ।

नीचे लिखे ग्रन्थ आत्माको हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ बनाने के लिये उत्तम शुद्ध और पवित्र भोजन है । मंगाकर पढ़िये और मानसिक शारीरिक आध्यात्मिक और पारिवारिक आनन्द भोगिये ।

स्वर्ग के रत्न-आत्मसुधार के फड़कते हुए १०१ लेख ४०० पृष्ठ १)

स्वर्ग की सड़क-नवजीवन, मन की दृढ़ता, भक्ति, कुटुम्ब, सुख, सम्बन्धी १६६ लेख ५५८ पृष्ठ दाम १॥।)

स्वर्ग की सुन्दरियां-स्त्रियों के योग्य कहानियों का आनन्द देने वाली सहज भाषा में नये जमानेके अनुकूल ऊंचे विचार बताने वाली शिक्षाप्रद पुस्तक ६०० पृष्ठ मू० २)

भाग्य फेरने की कुञ्जी-ग़रीबी, रोग, शोक बुढ़ापा और मृत्यु के नाम के जो पांच महा कष्टदायक हैं उन पर विजय पाकर भाग्य पलटने के उपाय । कीमत ॥=)

स्वामी रामतीर्थ के सदुपदेश ।) सफल गृहस्थ ॥≠) शान्ति वैभव ।) गुरुशिष्य संवाद ।) जीवन के महत्त्व पूर्ण प्रश्नों पर प्रकाश ॥) मानव जीवन १।≠) युवाओं को उपदेश ॥-) मितव्ययिता ॥।≠) स्वामी विवेकानन्द नाटक १) चरित्रगठन ≠)॥

मिलने का पता—

प्रकाशक स्वर्गमाला गहमर (गाजीपुर) ।

चन्द्र—प्रभा ।

हिन्दी संसारमें एक अपूर्व सचित्र मासिक पत्रिका ।

आपने हिन्दीके अनेकों अच्छे २ मासिक पत्रोंको देखा होगा । परन्तु ऐसी सर्व गुण सम्पन्नता कहीं न पाई होगी । हिन्दी नभोमंडलमें एक अपूर्व प्रभा उत्पन्न हो गई है-यदि यह कहदें तो अत्युक्ति न होगी

इसका प्रत्येक लेख मनमें नई जागृति पैदा करने वाला, प्रभावोत्पादक होता है । इसमें हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ लेखकोंकी लेखनीसे निकले हो लेख प्रकाशित होकर पाठकों के मनको चुरा लेते हैं । पद्यांश इसमें इतना बढ़िया होता है कि बार २ उसे पढ़े बिना रहा नहीं जाता । चित्र भी बहुत बढ़िया और सुन्दर रहते हैं । यदि आपको थोड़ा भी प्रेम हिन्दीसे है तो प्रथम इस पत्रिकाको अवश्य मँगा देखिये । वार्षिक मूल्य केवल २॥) रु० मात्र-एक संख्याका ।) बिना मूल्य नमूना नहीं भेजा जाता ।

मैनेजर चन्द्र-प्रभा कार्यालय

सनावद (नीमार)

विचित्र विधि ! अद्भुत उपाय !

वीर्यरक्षा का अपूर्व साधन !

आपने समाचार पत्रोंमे (विचित्र विधि) के विज्ञापन पढ़े होंगे। इस विधि के यावत् साधने से वीर्य सम्बन्धी यावत् दोष दूर होने सम्भव हैं। स्वप्नदोष, शीघ्र पतन, वीर्यका पतलापन आदि युवा पुरुषोंका जीवन नष्ट करने वाले रोगोंको दूर करने का यह अपूर्व साधन बतलाया जाता है। इस विधि को लोग पाच २ और दश २ रुपये लेकर दूसरों को बताते हैं, पर हम यह विधि उन सज्जनों को जो हमारी नीचे लिखी हुई औषधों में से कम से कम २) रुपये की औषध एक साथ खरीदेंगे, उनको मुफ्त बतायेंगे, और साथ ही में इस विधि के साथ २ एक सप्ताह तक सेवन करने योग्य गोलियां भी मुफ्त देंगे। हम अपनी औषधों के गुणों के विषय मे कुछ नहीं लिखना चाहते, क्योंकि उन का आश्चर्योत्पादक प्रभाव प्रयोग करने वालों को स्वयं ही शीघ्र विदित हो सकता है॥

(१) चन्द्रमुखी सुरमा-आंखो की रोशनी क़ायम रखने और नेत्रों को रोगों से बचाये रखने के लिये, यह सुरमा खास तौर से मुफ़ीद है। इस का प्रतिदिन का इस्तेमाल बहुत ही प्रभावोत्पादक होता है कीमत १) रु० तोला डाकव्यय।)

(२) सुधारस-कफ़ खांसी दमा हैजा शूल संग्रहणी, अतिसार आदि रोगों में अति लाभदायक दवा है। इसकी एक शीशी घर में रखना समय पर सैकडों रुपये का काम देती है। जिन्हों ने इस दवा को अपना संगी बनाया उन्हों ने समय पर सदा लाभ उठाया। मू० ॥) शी० डा०।)

(३) कासहरवटी-खांसीके लिये यह गोलियां रामबाण हैं। जाड़ेके मौसममें खांसी का रोग बहुत सताता है इसलिये इसका सग्रह अवश्य कीजिये, मूल्य ५० गोली।~)

(४) अग्निवर्धक चूर्ण-मन्दाग्नि, अजीर्ण, अफारा, पतला दस्त, पेट फूलना, दर्द खट्टी डकार आना, अपान वायु का रुकना, अरुचि, जी मिचलाना, इन सब रोगों को अति लाभदायक है। कीमत एक शीशी।≠) छः आना

(५) अग्निसंदीपन चूर्ण-मन्दाग्नि का नाश करके पाचन शक्ति को बढ़ाता है बहुत ही स्वादिष्ट ु- का दाम १)

(६) सरस्वती चूर्ण-विद्यार्थियों के लिये पाठ याद करनेमें मदद देता है, १० खु० ॥)

(७) अङ्गराज चूर्ण-पेटके समस्त रोगोंमे लाभदायक प्रमाणित हुआ है मू० १ शी०॥)

(८) पानकी खुशबूदार गोली-पानमे खानेकी, बडी सुन्दरता झलकती है २० गो०।)

(९) महायोगराजवटी-वायुके समस्त रोगोंमें लाभदायक है १०० गोली १)

मिलनेका पता-भानुदत्त शर्मा मालिक-सुन्दर कम्पनी मेरठ सिटी

॥ कोला टानिक ॥

कोला-से कम्मरत दूनी वढती है। कोला दिमागको पुष्ट करता है। कोला-से चिन्ता शक्ति बढ़ती है। कोला यह पुष्ई है दवा नहीं। कोला-कलेजेको जोड देता है। कोला दीलदिल धडकन को कलेजेकी कमजोरी मिटाता है। कोला से कभी मेहनत गढाती नही, थकावट आती नहीं। काला अफ्रिका देशके कोला फलसे वनी हुई पुष्ई है। कोला दिमाग लड़ानेमे सुन्दर बल देता है। कोला वालक, वडे बूढ़े सभी पी सकते हैं।

३२ पूरी खुराक की १ शीशी दाम १) एक रुपया डा० म० १ से २ तक ।-) ४ शीशी ।≠) छः आने।

खून साफ करने की दवा।

खूनसे मनुष्यका जीवन है, इसलिये खून साफ रक्खो सालसा खून साफ करने की प्रसिद्ध दवा है। इसी सालसेका शोधकर उसमे पोटास आईओडाइजड् आदिक कई एक परीक्षित दवाए मिलाकर यह सालसा वना है। जिससे यह साधारण सालसाओंसे अधिक गुण करता है गर्मी (आतशक) गठिया वा पारा मिली हुई दवाओंसे खून विगड़ा हुआ होवे तो सालसाका सेवन करो। खूनकी हालतको सुधारनेके लिये यह सालसा वना है और प्रसिद्ध है मू० २) दो रुपये शीशी पै० व डा० म० ।≠) आने, २ शीशी तक ॥)

एक शीशीमें ३२ खुराक (१६ दिन सेवन योग्य) सालसा रहता है।

दमेकी दवा—बहुत दमेवालोंके अच्छे न होनेका कारण यह है कि उनके चिकित्सक दमेको कफका रोग समझते हैं, और गरम दवायें दिया करते हैं। जिससे कुछ समयके लिये दमा दव भी जाता है, परन्तु रोगका जाना दूर रहा उसकी जड़ और भी जम जाती है। दमा वायुका रोग है और डाक्टर बर्म्मनकी वनाई "दमेकी दवा, विगड़ी हुई वायुको फिर अपनी अच्छी हालतमे ला सकती है।

इस दवाके दो विशेष गुण देखनेमें आते हैं।

१-दमा चाहे जैसे जोरसे उछलता हो इस दवाके दो-एक मौताज पीने ही से दव जाता है। २-कुछ दिन तक इस दवा के लगातार खानेसे वहुतों का दमा जड़से चला जाता है और जव तक दवा पी जाती है दमा जोर नही करता। जो दमेके रोगी संखिया या दूसरे रसादिक अफीम धतूरा व डाक्टरी दवाएं ब्रोमाइड, क्लोरेल आदिक खाकर निराश हुए हैं उनको चाहिये इस दवा की जांच करे। मोल १।) डा० म० व पै: १ से ३ शीशी तक ।-) ६ शीशी ।≋) आने।



सनातनधर्मी विद्वान् ध्यान दें।

श्रुति स्मृति पुराण प्रतिपादित सनातनधर्मके पवित्र और महत्त्वशाली सिद्धान्तों पर पूर्वकाल से ही धर्म विरोधियोंके आक्षेप होते आये हैं। समय २ पर स्वामी शङ्कराचार्य जैसे आचार्यों ने विधर्मियों से वैदिक धर्म की रक्षा की थी, पर वर्त्तमान समय में यह त्रुटि पूर्णरूप से दृष्टिगोचर हो रही है। संघशक्तिका अभाव होना भी इसमें एक प्रधान कारण है। नमाजी, समाजी (दयानन्दी) किरानी और जैनियों के द्वारा सत्य सनातन वैदिक धर्म पर जो आक्षेप किये जा रहे हैं उन के निवारणका उपाय सैकड़ों सनातनधर्म सभाओं और प्रान्तीय मण्डलोंके होते हुए भी नहीं हो रहा है। यह दुरवस्था बहुत काल तक उपेक्षणीय नहीं है। यह ठीक है कि कतिपय सनातनधर्मके महोपदेशकोंके द्वारा इस धर्मकी श्लाघ्य सेवा हो रही है। वे समय २ पर शास्त्रार्थ द्वारा भी विधर्मियोंको [विशेषतः समाजियोंको] परास्त करते हैं यह ठीक है पर सनातनधर्म के प्रचार कार्यकी सीमा का यहीं पर अन्त नहीं है। प्रत्येक महीने में विधर्मियोंकी ओरसे जो सनातनधर्म के विरुद्ध पुस्तकें निकल रही हैं इन का उत्तर कहां दिया जा रहा है यद्यपि समाजियोंकी छपाई पुस्तकों का उत्तर ब्रा० स० में यथाशक्य दिया जाता है पर पुस्तकरूपमें भी उनके छपनेकी बड़ी आवश्यकता है। हमारे कार्यालयमें समाजियोंकी बनाई कितनी ही पुस्तकें पड़ी हैं जिनका उत्तर अभी तक सनातनधर्म की ओर से नहीं दिया गया है। जो विद्वान् इन पुस्तकोंका उत्तर लिखना चाहें वे सूचित करें। उन्हें प्रकाशित करने के लिये ब्रह्मप्रेस तय्यार है नीचे हम उन पुस्तकोंके नाम देते हैं जिनके उत्तर छपने की शीघ्र आवश्यकता है॥

नाम पुस्तक	लेखक
१–आदिम सत्यार्थ प्रकाश और आर्य समाजके सिद्धान्त—	ला० मुंशीराम कांगड़ी
२–शङ्काकोश	पं० हनुमानप्रसाद शिवली
३–नवग्रहसमीक्षा	पं० सन्तराम वेदरत्न
४–भीम प्रश्नोत्तरी	ले० पं० छुट्टनलाल स्वामी
५–सनातनधर्म सभाकी पोल	श्री व्रजमोहन झा
६–कालूराम मुखमर्दन	श्री व्रजमोहन झा
७–अद्भुत फल	पं० आशादत्त त्रिपाठी

इनके सिवाय भास्कर प्रेस मेरठ से एक पुस्तकमाला निकलनी प्रारम्भ हुई है इसमें अभी तक तीन चार पुस्तकें सनातनधर्मके विरुद्ध निकल चुकी हैं इनका उत्तर छपनेकी भी आवश्यकता है। यद्यपि समाजियोंकी लिखी इन पुस्तकोंमें सिवाय

पिष्ट पेषणके और कुछ सार नही है तथापि उत्तर छपनेकी आवश्यकता है। जो विद्वान् उत्तर लिखना चाहें और धर्म रक्षामें सहायक होना चाहें वे पत्र व्यवहार करें। जो उत्तर लिखे वे जिस पुस्तक का उत्तर लिखना चाहे उसे हमारे यहांसे मंगाले हमने ऊपर नमूनेके लिये कुछ पुस्तकोंके नाम लिखे है। अन्वेषण करने पर और भी कितनी ही पुस्तकें मिलेंगी, जिनका उत्तर सनातनधर्मकी ओर से होनेकी आवश्यकता है।

इस सम्बन्धमें निम्नलिखित पतेसे पत्र व्यवहार करना चाहिये।

मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा।

वेदत्रयी समालोचन।

यह पुस्तक अभी नई छपी है इसमे आर्यसमाजके भूतपूर्व नेता कविरत्न प० अखिलानन्द शर्माने आर्यसमाजके गुप्त रहस्योंको अच्छी तरह खोला है। वेदत्रयीके प्रमाणोंसे भी आर्यसमाजी मत की अवैदिकता सिद्ध की है। पुस्तक रोचक है और प्रत्येक सनातनधर्मीके लेने योग्य है क्योंकि इसमे सनातनधर्मके सभी सिद्धान्तोकी पुष्टिकी गई है।

पता—मैनेजर सरस्वती सदन—इटावा।

सर्वसाधारण को सूचना,

सम्पूर्ण सनातनधर्मावलम्बी सज्जनो तथा अन्य सर्वसाधारण सज्जनो से प्रार्थना है कि प्रबन्ध की सुगमता के लिये ब्रह्मप्रेस इटावा का पुस्तक विभाग पृथक् करदिया गया है। पुस्तक मगाने वाले सज्जनो को अब ठीक समय पर पुस्तकें मिलेगी, जो पुस्तके निबट गई हैं और ग्राहक सज्जन जिन को न पाने से असन्तोष प्रकट करते हैं उनके भी छपने का शीघ्र प्रबन्ध किया जायगा। इसलिये आगे से सब सज्जन पुस्तक मंगाने के लिये निम्न पते से पत्र व्यवहार करें। ब्राह्मणसर्वस्व तथा छपाई के सम्बन्ध मे पूर्ववत् मैनेजर ब्रह्मप्रेस इटावा से ही पत्र व्यवहार करना चाहिये।

पुस्तकें मंगानेका पता—

मैनेजर—

सरस्वती सदन—इटावा।

P. O. REGISTERED No. . 242.

धर्मोधनंब्राह्मणसत्तमानां, तदेवतेषांस्वपदप्रवाच्यम् ।
धनस्यतस्यैवविभाजनाय, पत्रप्रवृत्तिःशुभदासदास्यात् ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

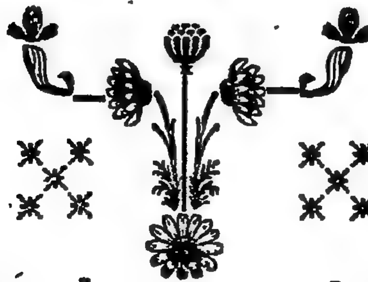
सनातनधर्मका सर्वोपयोगी

मासिकपत्र ।



भाग १४	धन पौष वि० १९७४ दिसम्बर १९१७	अङ्क १२

सम्पादक—पण्डित भीमसेन शर्मा



वार्षिक मूल्य २।)] [प्रति संख्या ≡)

विषय-सूची।

ब्राह्मणसर्वस्व के नियम।

(१) ब्राह्मणसर्वस्व प्रतिमास प्रकाशित होता है।

(२) डाकव्यय सहित इसका वार्षिक मू० २।) और नगरके ग्राहकोंसे २) रु० लिया जाता है।

(३) नमूने की एक प्रति ≠) का टिकट आने पर भेजी जाती है।

(४) आगामी अङ्क पहुंचजाने तक जो पिछला अङ्क न पहुंचनेकी सूचना देंगे उन्हें पिछला अङ्क विना मूल्य मिलेगा। देर होनेपर ≠) प्रतिके हिसाबसे मू० लिया जावेगा।

(५) राजा रईस लोगों से उनके गौरवार्थ वार्षिक ५) रु० लिया जाता है।

(६) पता अधिक काल के लिये बदलवाना चाहिये थोड़े दिनोंके लिये अपना प्रबन्ध करना चाहिये।

(७) विज्ञापन एक पेजसे कम छपाने पर प्रतिलाइन ≠)॥ तीन मास तक ≠)। ६ मास तक ≠) लिया जायगा।

(८) एकबार १ पेज पूरा छपाने पर ३) तीन मास तक ८) ६ मास तक १४) और १ वर्ष तक छपाने पर २४) होगा।

(६) विज्ञापन बंटाई एक वार की ८) रुपया होगी अश्लील और झूंठे विज्ञापन नही बांटे जांयगे ।

श्रीहरिः ।

ब्राह्मणसर्वस्व

उत्तिष्ठतजाग्रतप्राप्यवरान्निबोधत

भाग १४	धन पौष सौर वि० १९७४ दिसम्बर १९१७	अङ्क १२

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे ॥

अथ—मङ्गलाचरणम्

गौरीर्मिमायसलिलानितक्षती—एकं-पदीद्विपदीसाचतुष्पदी । अष्टापदीनवं-पदीबभूवुषी—सहस्राक्षरापरमेव्योमन् ॥

ऋ० सं० २।३।२२।१॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षती कुर्वत्येकपदीमध्यमेन, द्विपदीमध्यमेन चादित्येन च, चतुष्पदी दिग्भिरष्टापदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भिश्च, नवपदी दिग्भिश्चावान्तरदिग्भिश्चादित्येन च, सहस्राक्षरा बहूदका परमे व्यवने ॥

निरु० ११ । ४० ॥

केचिदेवमाहुः—गौरी—गरणशीला शब्दब्रह्मात्मिका वाक् मिमाय मिमतिः प्रतिष्ठार्थे धातुः, प्रतिष्ठितानि घटादिद्रव्याणि तक्षती तत्तद्वाचकत्वेन निष्पादयन्ती । एकपदी—अव्याकृतत्वेनैकप्रतिष्ठानैकरूपा वात्मना । द्विपदी सुप्तिङ्भेदेन पादद्वयवती । चतुष्पदी नामाख्यातोपसर्गनिपातभेदेन । अष्टापदी—आमन्त्रितसहिताष्टविभक्तिभेदेन । नवपदी—बभूवुषीसाव्ययैरुक्तैरष्टभिर्नवपदी । अथवा सनाभिकेषूरःकण्ठादिषु नवसु पदेषु भवन्ती पश्चाद् बहुविधामभिव्यक्तिमुपेयुषी । परमे व्योमन्—उत्कृष्टे हृदयाकाशे मूलाधारे । सहस्राक्षरा—अनेकाकारेण व्याप्ता—अनेकध्वनिप्रकारा भवतीत्यर्थः—इति सायणः ॥

अन्यच्च—मायात्मिका देवी जगन्निगरणशीला गौरी महामाया सर्गारम्भे सलिलानि तक्षती व्यञ्जयन्ती सर्वं चराचरं निर्ममे—सा प्रकृत्यात्मनैकपदी, स्त्रीपुरुषरूपेण चराचरात्मरूपेण वा द्विपदी, देवमनुष्यतिर्यक्स्थावररूपेण चतुष्पदी, वर्णाश्रमभेदैश्चाष्टापदी, वर्णाश्रमभेदैः सामान्येन मायाभेदेन च नवपदी बभूवुषी—भवति स्म । एवं परमे व्योमन् परमव्यापके परमात्मन्यधिष्ठातरि सहस्रसंख्यानि रूपाणि धारयन्ती स्वीयेन वास्तवेन परमात्मरूपेणाक्षराऽविनाशिन्यस्ति । एवं वेदात्मिका वागप्यत्र व्याख्यातुं शक्या ॥

भावार्थ-(गौरीः) अन्तरिक्षस्थ गर्जनादिरूप शब्दात्मिका वाणी (एकपदी बभूवुषी) मेघमण्डल के साथ वा विद्युत् अधिष्ठान वाले इन्द्र के साथ एकाकार अभिन्नरूप से रहती हुई एकपदी कहाती (द्विपदी) मेघमण्डल और आदित्यके साथ तादात्म्यरूप से विद्यमान रहती हुई द्विपदी कही जाती (सा चतुष्पदी) वह माध्यमिक

वाणी चार दिशाओं के साथ तदाकार होती हुई चतुष्पदी कहाती (अष्टापदी) चार मुख्य दिशा और ईशानादि चार अवान्तर दिशाओं के साथ आठ रूपों वाली होती हुई अष्टापदी कहाती और (नवपदी) चार दिशा चार अवान्तर दिशा और एक आदित्य इन नवों के साथ नव रूपों वाली होती हुई नवपदी कहाती है (सहस्राक्षरा) अक्षर नाम निघण्टुमें जल का है, सहस्र नाम असंख्य वा अपरिमित जल वाली होती हुई (परमे व्योमन्) अत्यन्त विस्तृत आकाशमण्डल में (सलिलानि तक्षती) जलों को वर्षाती हुई (मिमाय) सब चराचर का निर्माण करती है अर्थात् वर्षा से हुए अन्न घासादि से चराचर पदार्थोंकी उत्पत्ति स्थिति होती है और मध्यम वाणी वर्षोत्पादिका होने से सब को रचने वाली है॥

यह पूर्वोक्त मन्त्रार्थ निरुक्तकार यास्काचार्यके अनुसार है, सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्य जी ने निम्नलिखित द्वितीयार्थ दिखाया है यथा-(सागौरीः) वह शब्दरूपा वाणी (मिमाय सलिलानि तक्षती) अपने २ स्वरूप से प्रतिष्ठित घटादि पदार्थों को उस २ के वाचक पदों द्वारा प्रकट करती हुई (एकपदी) अव्यक्तनादरूप से अव्याकृत एक रूप वाली वा एक आत्मरूप वाली होने से एक पदी (द्विपदी) सुबन्त तिङन्त इन दो भेदों से द्विपदी (चतुष्पदी) नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार भेदों से चतुष्पदी (अष्टापदी) सम्बोधन सहित आठ विभक्ति रूपों द्वारा अष्टापदी (नवपदी बभूवुषी) अव्यय, सम्बोधन और सात विभक्ति इन नव भेदों से नव पदी कहाती, अथवा ताल्वादि आठ स्थान और नाभि इन नव के साथ वर्णात्मक शब्द की उत्पत्ति सम्बन्ध होने से शब्दात्मिका वाणी नवपदी होती हुई प्रसिद्ध है। नाभि आदि से उत्पन्न होकर वर्णात्मिका वाणी बहुत प्रकारों से प्रकट होती है (परमे व्योमन् सहस्राक्षरा) हृदयरूप परमोत्तम आकाश में अनेक ध्वन्यात्मक प्रकारों वाली होती हुई व्याप्त रहती है॥ इति द्वितीयोर्थः॥

अथ तृतीयार्थः।

और मायारूप देवी प्रलय के समय (गौरीः) जगत् को निगलने वाली होने से गौरी कहाती हुई (सलिलानि तक्षती) सृष्टि के आरम्भ में प्रथम जलों को प्रकट करती हुई (मिमाय) सब चराचर संसार को उत्पन्न करती है वह गौरी देवी प्रकृति रूप से (एकपदी) एक नामरूप वाली (द्विपदी) स्त्री पुरुष इन दो रूपों से वा चर अचर इन दो रूपों से दो नाम रूपों वाली (सा चतुष्पदी) वह देवी देव, मनुष्य, पश्वादि तथा स्थावर इन चार नाम रूपों वाली होने से चतुष्पदी कहाती (अष्टापदी) चार वर्ण और चार आश्रम इन आठरूपों वाली होने से अष्टापदी कहाती (नवपदी बभूवुषी) चार २ वर्णाश्रम भेद और नवम सामान्य माया भेद से नवपदी हुई भी

या होती है । इस प्रकार (परमे व्योमन्) परम व्यापक परमेश्वर अधिष्ठाता में (सहस्राक्षरा) असंख्य रूपोंको धारण करती हुई अपने वास्तविक परमात्मरूपसे अक्षरा नाम अविनाशिनी रहती है ॥ इति तृतीयोऽर्थः ॥

अथ चतुर्थोऽर्थः ॥

इसीके अनुसार वेद वाणी का वर्णन भी इस ऋचा द्वारा हो सकता है कि वह उपदेशात्मिका होने से गौरी कहाने वाली वेद वाणी वर्षकामेष्टि आदि द्वारा जलोंको वर्षाती हुई चराचरकी उत्पादिका होती है। वह वेद वाणी एक वेदत्व सामान्यरूप होने से एकपदी, मन्त्र ब्राह्मण दो रूपों वाली होने से द्विपदी, ऋग्यजुः साम अथर्व इन चार भेदों वाली होने से वह चतुष्पदी, चार वेद चार उपवेद रूपों से अष्टापदी, छः वेदांग, विधि, विधेय, तर्क इन भेदों वाली होने से नवपदी होती हुई परम व्यापक परमेश्वर में अनेक रूपों वाली होने पर भी अपने वास्तविक स्वरूप से विनाश रहित है ॥ इत्यादि प्रसंगानुसार अन्यांश में भी इस मन्त्र का भिन्न २ अर्थ संघटित हो सकता है ॥

वेदसर्वस्वालोचन ।

(गताङ्क से आगे)

अब वैदिक मुनिके लिखे अथर्ववेद सम्बन्धी विचार का संक्षेप से आलोचन करेंगे वास्तव में अथर्वनाम अहिंसक ईश्वरकृत होने से इस वेद का नाम अथर्ववेद कहना यह आर्यसमाजियों की कल्पना शास्त्र विरुद्ध है इसीलिये इस की पुष्टिमें प्राचीन कोई भी प्रमाण नहीं मिल सकता इसी से इस अंशमें वैदिक मुनिका कहना सर्वथा सत्य है। पृष्ठ ८७ में वैदिक मुनि ने कहा है कि-तत्त्व यह है कि गोपथ ब्राह्मण के मत से प्रचलित २० बीस काण्ड वाली अथर्व वेद संहिता में आदिके दश काण्ड अथर्व वेद और अन्तके दश काण्ड उसका परिशिष्ट हैं। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो यह मत कुछ मूल्यवान् जान पड़ता है, क्योंकि अन्तिम दश काण्डोंमें जितने मन्त्र हैं, उनमें से कुछ मन्त्र तो ऋग्वेद से उद्धृत हुये हैं, शेष मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय पहिले दश काण्डो से कुछ विभिन्न तथा गम्भीर प्रतीत नहीं होता, जिससे उनको संहिता के अन्तर्गत माना जाय।

समीक्षक-अनुमान होता है कि अन्य आर्यसमाजियों की प्रमाण शून्य कल्पनाओं का खण्डन करते हुए भी वैदिकमुनि का यह आ० समाजीपन नहीं छूटा कि प्रमाण

शून्य मनमानी नूतन कल्पनायें खड़ी करके सर्व वेदाचार्य विद्वदभिमत अटल सिद्धान्तोंमें बाधा डालना। अथर्ववेद संहिता के पूर्वार्द्ध को ही पूरा अथर्ववेद मान बैठना, ११ ग्यारहवें काण्ड से लेकर पिछले दश काण्डों का परिशिष्ट कहदेना कैसा बड़ा अन्याय है ?। यह मत किस २ अन्य आचार्य का है और किन २ पुष्ट अकाट्य युक्ति प्रमाणोंसे यह मत मूल्यवान् होगया ऐसा कुछ भी न लिखकर अपनी कल्पना को मूल्यवान् कहदेना कैसा अनर्थ है ?। ऋग्वेद के मन्त्रोंके होने से यदि परिशिष्ट हो जाय तो यजुर्वेद में जितना अंश ऋग्भाग है वह सभी परिशिष्ट क्यों नहीं हुआ ? और सामवेद की मन्त्र संहिता में तो सबकी सभी ऋचा हैं, जिनमें ऋचाओं से भिन्न एकभी मन्त्र यजु आदि नहीं है तब सामवेदका सर्वथा अभावही क्यों नहीं मानलिया।

वैदिक मुनि कहते हैं कि "अथर्वके ११–२० तक दशकांडों में शेष मंत्रों का प्रतिपाद्य विषय पहिले दश कांडों से कुछ विभिन्न और गम्भीर नहीं प्रतीत होता." सो यह वै० मु० की बड़ी भूल है क्योंकि अथर्वके ११ एकादश काण्ड के द्वितीयानुवाक में जो ब्रह्मौदन का माहात्म्य और प्राणसूक्त में जो प्राण की महिमा लिखी है, तृतीयानुवाक में जो ब्रह्मचर्य का महत्त्व वर्णन किया गया है क्या इत्यादि विषय नूतन नहीं हैं !। यदि ओदन माहात्म्य आदि विषय पहिले दश काण्डों में कहीं आचुके हैं तो वैदिक मुनिको वहां का पता देकर इनको पिष्टपेषणवत् निरर्थक ठहराना था। सो जब पहिले दश काण्डों में ओदनका ऐसा माहात्म्य वा ब्रह्मचर्यका महत्त्व कहीं नहीं है तब अथर्व के उत्तरार्द्ध को परिशिष्ट ठहराने की वै० मु० की चेष्टा ऐसी ही उपहास योग्य होगी कि जैसे व्याकरण अष्टाध्यायी के ५–से ८ तक उत्तरार्द्ध के अध्यायों को परिशिष्ट ठहरानेवाले की चेष्टा विद्वानोंमें उपहास के योग्य हो सकती है। तथा चतुर्दश काण्डमें जैसा विवाह विषय का व्याख्यान किया गया है वैसा अथर्व के अन्य किसी काण्ड में नहीं है। और अष्टादशकाण्ड में यमयमी सूक्त, यमराज का वर्णन, पितृयोनिकी व्याख्या और मृत पितरोंका श्राद्धादि द्वारा होनेवाला उद्धार भी जब अथर्व के पहिले दशकाण्डों में कहीं नहीं हैं तब यदि दश काण्डका अथर्ववेद माना जाय तो उक्त विषयोंसे शून्य खण्डित वेद मानने पड़ेगा। जब कि इसके लिये कोई एक भी पुष्ट प्रमाण नहीं है तव वैदिक मुनि की यह कल्पना वेदानुयायियोंको सदा उपेक्षणीय होगी॥

गोपथ ब्राह्मण में जो कुछ कहा है उसका अभिप्राय बहुत गम्भीर है, अभिश्रान्त, तप्त, सन्तप्त करने का वार २ विवरण अनेक प्रकार से सृष्टि प्रक्रिया की बिलक्षणता दिखाने के लिये किया है, वरुणरूप जलात्मक मृत्यु को अभिश्रान्त, तप्त सन्तप्त, करने से उसके सब अङ्गोंसे जो रस नाम सार निकला उसका प्रत्यक्ष नाम अङ्गरस हुआ था देवता परोक्षप्रिय होने से उन्होंने अंगरस को परोक्ष नाम नाम बनाया तो अंगिरस हो गया यही अंगिरा ऋषि की प्रशस्त उत्पत्ति है, जिस को वैदिक मुनि ने घृणित करके

दिखाने की चेष्टाकी है सो अनुचित है। कुछ भेद होने पर भी वास्तव में अथर्वा और अंगिरस्ऋषि एकही हैं, कर्म वा योग्यताशक्ति का भेद होनेसे नाम का भेद है, अथर्ववेद तथा अंगिरोवेद यह भिन्न२ दो वेद नहीं हैं किन्तु दोनों एक ही हैं, जिसको पहिले आथर्वण वेद नामसे गोपथ ब्राह्मण में कहा है उसीको अंगिरोवेदसे भी कहा जानो। ऐसा मानकर ही मनुस्मृति अ० ११। ३३ में लिखागया है कि——

श्रुतीरथर्वाङ्गिरसीः कुर्यादित्यविचारयन् ॥

यहां अथर्ववेद की अंगिराऋषि वाली श्रुतियोंका शत्रुके मारणमें विनियोग दिखाया है, इस मनुके प्रमाणसे भी यह सिद्ध है कि अथर्ववेद और अंगिरोवेद भिन्न२ नहीं हैं। गोपथ में अथर्ववेदकी उत्पत्ति दिखानेके अनन्तर पुनः किये अभिश्रम तप और सन्तप से तीनलोक तीन देव, त्रिविध ऋग्यजुः साम मंत्र और तीन व्याहृतियों की उत्पत्ति दिखाकर जो अंगिरस् का प्रादुर्भाव दिखाया है उसका अभिप्राय यही है कि अथर्वा तो प्रजापति का ही एक रूपान्तर था जिसके द्वारा सृष्टिके आरम्भ में अथर्ववेद प्रकट हुआ। तदनन्तर तीन२ लोकादिको अभिश्रान्त तप्त और सन्तप्त कर २ के सार निकालते २ उन सब सारोंके सार अङ्गरस —अङ्गिरस् नाम वाले तेजोमय ऋषि हुये। अर्थात् अथर्वा प्रजापति के ही अशावतार अंगिरा हुए। सृष्टि के आरम्भ में अथर्वा नाम रूप वाले पुरुष विशेषसे इस वेदका प्रादुर्भाव हुआ और अवान्तर प्रलयोंके बाद तिरोभूत हुए इस वेदका अंगिरा ऋषिके द्वारा विशेष कर प्रादुर्भाव हुआ। ऐसे विचारसे तीनलोक, देव, वेद, तथा व्याहृतियों के प्रादुर्भावानन्तर अङ्गिरा का प्रादुर्भाव दिखाना उचित ही था ॥

गोपथ और सायणाचार्य का अभिप्राय एक ही है वैदिकमुनि का विचार दोनोंसे विरुद्ध मनमाना है। मिष्ट जल से अथर्वा की और क्षार जलसे अङ्गिरा की उत्पत्ति गोपथ ब्राह्मण में कही नहीं है, किन्तु वैदिक मुनि ने मनमानी कल्पना करली है ॥

आगे वैदिक मुनि ने पृष्ठ ६० में लिखा है कि–शतपथ ब्राह्मण के अश्वमेध प्रकरण का अवलोकन करने से उक्त निश्चय और भी दृढ हो जाता है। उक्त प्रकरण में अश्वमेध समाप्त हो जाने पर प्रथम दिन गृहस्थोंको ऋग्वेद का, दूसरे दिन वृद्धावस्था वालों को यजुर्वेद का, तीसरे दिन युवावस्था वालो को अथर्व वेदका उपदेश करे और चौथे दिन सुन्दर युवतियों को अंगिरो वेद का उपदेश करे ॥

समीक्षक–शतपथ ब्रा० काण्ड १३ के अ० ४ का यह लेख है और अ० ५ की समाप्ति में अश्वमेध समाप्त हुआ है इसलिये "अश्वमेध समाप्त होने पर" ऐसा लिखना सर्वथा अशुद्ध अज्ञान मूलक है। प्रथमादि दिनों मे ऋग्वेदादि का उपदेश करे यह बात भी मिथ्या है क्योंकि वहा शतपथ ब्रा० कां० १३ अ० ४ के तीसरे ब्राह्मण मे लिखा है कि अश्व को छोड़के यज्ञ की वेदि से दक्षिण में सुवर्ण जटित चौकी विछावे उस

पर ऋग्वेदी ऋत्विज् होता बैठे होता से दक्षिण में सुवर्णजटित कौंच पर यजमान राजा बैठे यजमानसे दक्षिणमें ब्रह्मा और उद्गाता बैठें और उनसे पूर्वमें सुवर्णके कौंच पर अध्वर्यु बैठे इस प्रकार सबके बैठजाने पर अध्वर्यु कहे कि—

होतर्भूतान्याचक्ष्व भूतेष्विमं यजमानमध्यूह ॥

हे होता! प्राणियोंका उपाख्यान कहो और उनमें इस यजमानका सम्बन्ध दिखाओ वह संप्रेषित हुआ होता पुकार के कहै कि—हे अध्वर्यो! पारिप्लव आख्यान करते हुए कहो तब कहै कि वैवस्वत मनु राजा हुए उनकी प्रजा मनुष्य हैं वे ये सब बैठे हैं, तब वेद न पढ़े हुये गृहस्थ समीपमें आकर मिलते हैं उनको जो ऋग्वेद उपदेश करता है वही यह यजमान है। द्वितीय में वृद्धलोग उपसंगत होते हैं उनको यजुर्वेद उपदेश करता है वही यह यजमान है। तीसरे में युवावस्थावाले अच्छे युवकों को यजमानात्मक अथर्ववेद उपदेश करता है। चौथे दिन युवती स्त्रियां उपसंमेत होतीहैं उनको यजमानरूप अंगिरोवेद उपदेश करता है। अर्थात् यहां एक प्रकार के ऋत्विजों के वचन प्रति वचन हैं। इस ऊपरके लेख से यह तो कदापि सिद्ध नहीं होता कि अथर्ववेदके दशही काण्ड हैं और उत्तरार्द्ध के दशकाण्ड परिशिष्ट हैं, किन्तु यहतो सिद्ध हो सकता है कि अथर्वसे अंगिरोवेद भिन्न भी है, सो इसका सिद्धान्त यह मानना चाहिये कि पहिले समयमें अंगिरोवेद नामसे अथर्व की मुख्य शाखा मानी जाती थी उसीका विशेष नाम (अथर्वाङ्गिरसोमुखम्) इत्यादि प्रमाणों में आता है। और सामान्य दशा में अथर्व नाम था। अथवा अङ्गिरा ऋषिके दृष्ट अथर्वके काण्डोंका नाम अंगिरो वेद है। इस दशामें समुदाय के तुल्य अथर्व के ही एकांश का नाम अङ्गिरो वेद मान लेने पर कुछ दोष नहीं आता। ऐसी दशा में यदि पहिले ऐसा व्यवहार होता रहा हो कि २० काण्ड वाले अथर्ववेदमें पहिले दश काण्डोंका पृथक् अथर्व नाम आता हो और अन्तिम दश काण्डों का नाम अंगिरोवेद भी आता हो तथा दोनों का सम्मिलित नाम-अथर्वाङ्गिरस माना जाता हो तो आश्चर्य नहीं परन्तु अब वैसा नहीं है, अब अथर्व और अथर्वाङ्गिरस दोनों नाम वीसों काण्ड एक ही पुस्तकके सर्वसम्मत सिद्ध हैं, पिछले दस काण्डोंको परिशिष्ट कहना सर्वथा अनुचित है॥

ऊपर लिखे अभिप्राय का सारांश यह है कि अथर्ववेद और अंगिरोवेद दोनों नाम भिन्न २ एक ही प्रसंग में आगे पीछे आने से जैसे यह प्रतीत होता है कि ये दो पुस्तकों के नाम हैं किन्तु दोनों नाम एक पुस्तक के नहीं हैं, और अथर्वाङ्गिरस ऐसा एक सम्मिलित नाम आने से प्रतीत होता है कि एक ही पुस्तकके दोनों नाम हैं, इसमें हमारा लिखा समाधान ठीक न भी हो तथा अन्य कोई उत्तम समाधान किसी महा-

शय को जान पड़े तो उसके विरोधी हम नहीं हैं। परन्तु अङ्गिरो वेदनामक भाग भी परिशिष्ट नहीं किन्तु मूल ही है यही अटल सिद्धान्त जानो ॥

सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखम् (अथर्व० १० । ७ । २०) अथर्वाङ्गिरस एव मधुकृतः (छान्दोग्य ३ ।४।१) अथर्वाङ्गिरसः,इतिहासः पुराणम् (बृहदा०४.५।११)

इत्यादि प्रमाणोंसे स्पष्ट सिद्ध है कि जो अङ्गिरोवेद अथर्वसे भिन्न कहीं २ कहा गया है उस का अथर्व में अन्तर्भाव है। आगे पृष्ठ ६६ में वैदिक मुनिने लिखा है कि कोई पण्डित ब्रह्म वेद का अर्थ ब्रह्माका वेद करते हैं, यह ठीक नहीं क्योंकि अङ्गोपाङ्ग सहित चारों वेदों के ज्ञाता को ब्रह्मा कहते हैं, केवल अथर्ववेद का ज्ञाता ब्रह्मा नहीं कहा जासकता ॥

समीक्षक-यहां भी वैदिक मुनि बहुत भूले हैं क्योंकि जैसे ऋक्, यजु., साम, अथर्व ये चारों वेद के चार नाम हैं, वैसे ही चतुर्विध ऋत्विजों के नामसे भी वेदों के चार नाम ग्रन्थोंमें प्रयुक्त होते हैं यथा-होतृवेद, अध्वर्यु वेद, उद्गातृवेद, ब्रह्मवेद। इस कारण ब्रह्मा नामक ऋत्विजों का वेद ही ब्रह्मवेद कहाता है। ऋग्यजुः साम वेदोंसे विहित यज्ञों में-होने वाले विघ्न वा त्रुटियों का निवारण वा प्रायश्चित्त करना ब्रह्मा ऋत्विज् का मुख्य काम है। वह ब्रह्मा अथर्व को जानने के साथ ही अन्य वेदों का भी जानकार अवश्य होता है, तभी प्रायश्चित्त रूप औषध कर सकता है। इस अथर्व के-विषय में वैदिक मुनिकी अन्य बातें भी अनेक हैं जिनका विचार दिखाना हमने आवश्यक नहीं समझा। मनुष्य से भूल होसकती है इस कारण इस आलोचक के हमारे लेख मे जो कुछ भूल होगी उसको ठीक समझा देने पर हम मान लेंगे ॥

आदिम-सत्यार्थप्रकाश और आर्यसमाजके सिद्धान्त ।

हमारे पाठकों को अवश्य ज्ञात होगा कि लाला मुंशीराम जी-उर्फ-श्रद्धानन्द संन्यासी ने उक्त नाम का एक पुस्तक बनाकर छपाया है, जिसमें प० कालूराम शास्त्री के छपाये सन् १८७५ वाले सत्यार्थप्र० के सम्बन्धमें अनेक प्रकार का व्यर्थ लेख किया है। ला० मुंशीराम जी शिर मुंडा के अब श्रद्धानन्द संन्यासी बन गये हैं, इसलिये अब हम भी उनको आगे २ श्रद्धानन्द के ही नाम से लिखेंगे। संन्यासी शब्द रूढ़ि नहीं किन्तु योगरूढ होगया है अर्थात् आंखों के अन्धेको नयनसुख कहने के तुल्य संन्यासी शब्द निरर्थक नहीं है किन्तु सार्थक है। अच्छे २ भोजन वस्त्र धन ऐश्वर्य भोगसे विरक्त पुरुष संन्यासी कहाते थे और कहाते हैं। परन्तु स्वा० दयानन्द जी ने अपने सत्यार्थप्रकाश में मनुस्मृति के नाम से बनावटी निम्न प्रमाण—

त्रिविधानिचरत्नानि विविक्तेषूपपादयेत् ॥

इसलिये दिया था कि संन्यासियों को उत्तमोत्तम हीरा मोती आदि धन देना चाहिये और संन्यासियों को जोर मिले सोर लेकर सग्रह करना चाहिये। अर्थात् स्वामी दयानन्दजीने संन्यासी के त्यागार्थ का खण्डन करके अपने मत से संन्यासी शब्द को रूढ़ि निरर्थक बताया और स्वा० द० जी वास्तवमें संग्राही बने। इसीके अनुसार स्वा० दयानन्दजीके जोर कनफुका चेले [आत्मानन्द, सहजानन्द, ईश्वरानन्द] हुए थे जिन चेलोंके कानके पास मुख करके स्वा० दयानन्द ने गुप्त मन्त्र दिया था उन आत्मानन्दादि ने भी संन्यासी शब्द को निरर्थक करके संग्राही शब्द को ही सार्थक किया। परन्तु नित्यानन्द विश्वेश्वरानन्द नामक मनुष्यों ने संन्यासी शब्द के निरर्थक करनेमें उत्तरोत्तर बड़ी उन्नति की थी। अर्थात् प्रधान गुरु स्वा० दयानन्द जीने मरण पर्यंत केवल १६००० सोलह हजार रुपयों का संग्रह कर पाया था; परन्तु नित्यानन्द विश्वेश्वरानन्दने १००००० एक लाख रु० संग्रह करलिया था।

अब श्रद्धानन्द संन्यासी के विषय में दो प्रश्न उपस्थित होते हैं, उनमें एक तो यह है कि ये श्रद्धानन्द निरर्थक संन्यासी हैं वा सार्थक? यदि निरर्थक हैं तो अपनी गुरुपरम्परा की उन्नति कैसी करेंगे? अर्थात् कितने लाखों वा करोड़ों रुपया संग्रह करेंगे यह अभी गुप्त हैं। और सार्थक संन्यासी हुए तो अपनी गुरु परम्परा के विरोधी होंगे इसीसे प्रश्न होना है कि श्रद्धानन्द सार्थक वा निरर्थक कैसे संन्यासी हुए हैं ?। पहिले प्रश्नका अभिप्राय यही है कि (त्रिविधानिचरत्नानि) प्रमाण गढ़के स्वा०द०ने सार्थक संन्यास का निरादर किया था और निरर्थक संन्यास का आदर किया था, त्यागी होना सार्थक संन्यास है और धन जोड़ना निरर्थक संन्यास है। द्वितीय प्रश्न यह होता है कि स्वा० शंकराचार्यजीके शिष्यों के नामसे चले दशविध संन्यासियों में स्वा०-द०जी तो सरस्वती नामक फिर्केके संन्यासी थे; तदनन्तर उसी मार्गका अनुसरण आत्मानन्दादि चेलोंने भी किया अर्थात् वे लोग भी सरस्वती पद को लगाते आये, परन्तु अब नूतन संन्यासी श्रद्धानन्द के अन्त में सरस्वती शब्द नहीं दीखता किन्तु आनन्द शब्द दीखता है, इसपर प्रश्न होसकता है कि ला० मुंशीराम ने सरस्वती बनने में परमगुरुका संग क्यों छोड़ा?॥

हमें इस बात पर बड़ी शंका है कि वेदविरुद्ध अनेक विध वायुके झकोरोंसे अनेक तरगोंवाले संसारात्मक महासागर में डगमगाती हुई आर्यसमाजी सिद्धान्तरूपी नौका क्या कहीं कभी पार लगेगी? वा अगाध अज्ञानान्धकाररूप समुद्र में सदाके लिये डूब जायगी? शंका होनेका कारण यह है कि अबतक संसार में जितने मतों का प्रादुर्भाव हुआ, जिन मतोंका अस्तित्व सुनने जानने में अबतक आया है, उनसब में विना पेंदीके

लोटाके तुल्य वा विना नींव की भित्तिके तुल्य कोई भी मत सर्वथा निर्मूल नहीं देखा जाता, किन्तु किसी सत्यांशके आधारपर उन२ मतोंमें कल्पितांश भी ठहरा रहता है। कबीर, दादू, नानक, साहब आदि के कितने ही मतोंमें वेदका अद्वैत सिद्धान्त ही उन सबका आधार है। श्रीवैष्णवादि मतों में भगवद्भक्ति एक बड़ा आधार है। किन्हीं २ मतोंमें उनरे के प्रधान सचालक ही ईश्वरवत् पूज्य माने जाते हैं, जोकुछ उन लोगों ने कह दिया वही पत्थरकी लीक होजाती है।

परन्तु इस आर्यसमाजी मतमें कोई सत्यांश नही है जिसके अवलम्बसे इस मतकी सत्ता संसारमें बनी रहै, इस आ०समाजी मतके प्रधान सञ्चालक स्वा० दयानन्द जी के कथन परभी अटल विश्वास नहीं है। यदि स्वा० दयानन्दजी पर अटल विश्वास हो तो अब उनने मनुस्मृति में बताया कि-(विविधानिचरत्नानिविविक्तेषूपपादयेत्) यह लिखा है तो मनुस्मृतिमे ऐसा आधा श्लोक अब मिलादेना चाहिये। तथा स्वा०दयानन्दजीने लिखा है कि (ततोमनुष्या अजायन्त) यह यजुर्वेदका वचन है अब यजुर्वेदमें उक्त वचन नही है तो उसमे मिला देना चाहिये। यदि आ०समाजी लोग ऐसा न करके अन्य प्रकार का हीला हवाला करते हैं तब सिद्ध होगया कि उनलोगों को स्वा०द० पर भी अटलविश्वास।नहीं है॥

यदि कोई मनुष्य कहे कि जैसे कबीरादि के मतों का आधार वेद का अद्वैत सि-द्धान्त है वैसेही आ०समाजी मत का सत्यावलम्ब साक्षात् वेद है, जिसका अवलम्ब वेद है वह मझधार में क्योंकर डूब सकता है! तब इसका उत्तर सक्षेप से यही है कि आ०समाजी मत रु० में ।।।ऽ)।।। आना वेद विरुद्ध है, मिथ्याही वेदका नाम ले २ कर अपना मनमाना कल्पित मत मूर्खमण्डली में चलायाजाता है, जिनलोगों ने वेद विषय को जाना ही नही और न जानने की चेष्टा करते हैं वे लोग यदि आ० समाजी मत को वेदानुकूल कहदें वा मानलें तो आश्चर्य कुछ नही है परन्तु जिन लोगोंने अब तक वेद को जानकर आ०समाजी मत को वेद से मिलाया हैं उनने जान लिया है कि यह मत पौने सोलह आना वेद विरुद्ध है तथा आगे भी जो वेद को जानकर मिलावेंगे वे भी इसको वेद विरुद्ध जानलेंगे॥

उक्त आदिम सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक का समाधान करते हुए श्रद्धानन्द संन्यासीने ऐसी कोई भी नई बात नही लिखी, तथा न कोई पुष्ट युक्ति प्रमाण ही उपस्थित किया कि जिसका खण्डन करने की आवश्यकता समझी जावे। श्रद्धानन्द जीने १०४ पृष्ठके पुस्तक में केवल डेढ़ बात कही है कि "प्रथम सत्यार्थप्रकाश में लेखकादि ने विरु-द्धांश मिला दिया, स्वा० द० का मत वेद था,, सो यह बात पहिले से ही सब समाजी कहते लिखते हैं इस से पिष्टपेषणवत्त निरर्थक है। इस पुस्तक में सैकड़ोंवार स्वा० द० जी को ऋषि वा आचार्य लिखकर मिथ्या प्रशंसा कर डाली है। परन्तु वेदादि

शास्त्रों के प्रमाणानुसार ऋषि तथा आचार्य का कोई एक भी लक्षण स्वा० दयानन्दमें नहीं घटाया गया और लक्षण तथा प्रमाण के विना ही स्वा० द० को ऋषि तथा आचार्य मनमाना लिखा होने से मान्य नहीं हो सकता-ऋषिका लक्षण—

अजान्ह वै पृश्नींस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत्तदृषयोऽभवन् ॥ तैत्तिरीयारण्यके अ० २। खं० ८।

युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्-सेतिहासान्महर्षयः ।
लेभिरेतपसापूर्व-मनुज्ञाताःस्वयम्भुवा ॥ महाभारते।

वेद प्राप्ति के लिये घोर तप करते २ जिनके शरीर में केवल त्वगस्थिमात्र शेष रह गया था ऐसे जिन तपस्वी कृश प्रजापत्यंशरूप तेजस्वी ब्राह्मणोंको सर्गारम्भ में स्वयं प्रकट होने वाला वेद प्राप्त हुआ था इस कारण वे तपस्वी लोग ऋषि कहाये अर्थात् बीच २ में होने वाले अवान्तर प्रलयों में जब २ वेद लुप्त हो जाते हैं तब २ विधाता प्रजापति की आज्ञानुसार जो सिद्ध तपस्वी लोग तपोऽनुष्ठान के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध निर्मल करके जितने २ सूक्त अनुवाकादिको जो २ तपस्वी प्रकट करता है उतने २ वेदांशका वह ऋषि कहाता है। चाहें यों कहो कि वेदके पैगम्बरों का नाम ऋषि हुआ है, इसी कारण उन २ सूक्तानुवाकादि पर उन २ तपस्वियोंका नाम अति प्राचीन काल से लिखा चला आता है। जैसे गायत्री मन्त्र का विश्वामित्र ऋषि और सविता देवता है। इस प्रकार के वेदर्षियोंको स्वा० दयानन्द जी ने भी माना था, इसीलिये वेदभाष्य करते हुए बीच २ ऋषियोंके नाम लिखे हैं। यदि स्वा० दयानन्द जी चाहते होते कि हम भी ऋषि बनें तो किन्हीं २ सूक्तों पर अपना नाम लिखकर छपा देते कि (अस्य सूक्तस्य दयानन्दऋषिः) जब स्वा० द० ने ऐसा नहीं किया तो सिद्ध हो गया कि स्वा० द० अपनेको ऋषि बनने योग्य नहीं मानते थे। अतएव स्वा०द० को ऋषि कहना लक्षण प्रमाणों से विरुद्ध है॥

उपनीयतुयःशिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पंसरहस्यञ्च तमाचार्यंप्रचक्षते ॥ मनु० २। १४० ।

जो वेद का विद्वान् शिष्य को यथाविधि उपनयनसंस्कार कराके यज्ञविधि और आत्मज्ञानविधि के सहित पूरे २ वेद को पढ़ाता है उस को आचार्य कहते हैं। अब सनातनधर्मियों को उचित है कि वे श्रद्धानन्द संन्यासी से साग्रह प्रश्न करें कि मनुजी के लेखानुसार किन २ शिष्यों को स्वा० द० ने साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ाया था ? यदि नहीं पढ़ाया था तो उनको आचार्य कहना मिथ्या क्यों नहीं है॥

अभी तक भारतवर्ष में जो मत चले हैं वे प्रायः दो प्रकारों में विभक्त हैं, उन से एक तो ऐसे हैं जिन के आदि गुरु कबीर दादू नानक आदि संस्कृत के विद्वान् नही थे, इसी कारण उन की शिष्य-परम्परा में भी संस्कृतभाषाका आदर नही है किन्तु साधारण मनुष्यों मे उन २ कबीरादि के मतों का प्रचार हुआ है किन्तु विद्वानों में नही हुआ। तथा द्वितीय प्रकारके रामानुज सम्प्रदायादि मत संस्कृतके विद्वान् गुरुओं से चले हैं उनमे संस्कृतके विद्वान् ही अब भी नेता माने जाते हैं, दार्शनिक विचारों के साथ उन विद्वत्सञ्चालित मतों का विद्वानों ने मेल भी कराया है। परन्तु यह आर्यसमाजी एक मत ऐसा विलक्षण है जो उन दोनोंमें से किसी के साथ सघटित नही होता। अर्थात् यह मत केवल मूर्खमण्डली के अधिकार में होता हुआ भी पूर्ण विद्वत्ता का दावा करता है यही विलक्षणता है। इस मत में कुछ भी न पढ़े वा साधारण अल्प हिन्दी भाषा जानने वाले मनुष्य अधिक हैं, द्वितीय अंगरेजी फारसी आदि अन्य भाषा पढ़े उनसे कम हैं, उनसे भी कम अल्प संस्कृतज्ञ हैं, [इन्ही अल्पसंस्कृतज्ञोंमे ला० मुंशीरामके लडके हैं जिनके लिये आ० समाजियों के लाखों रु० खर्च हो गए तो भी विद्वान् न हो सके] और इस समाजमें सबसे कम मध्यम संस्कृतज्ञ मनुष्य जीविकादिके लोभ से फंस गये हैं। उत्तम संस्कृतज्ञ मनुष्यों का इस आ० समाजी मतमे सदासे अत्यन्ताभाव था और है। इस मतके उपदेशकरूप घोडों की लगाम अंग्रेजी फारसी पढ़े बाबू लोगों के हाथ में पहिले से ही चली आती है क्योंकि परोपकारिणी सभामे किसी भी संस्कृतके मध्यम विद्वान् को भी नही रक्खा था। अंगरेजी फारसी भाषाओं के जानकार होने परभी आ० समाजके नेता बाबूलोग वेदादि शास्त्रों मे एक प्रकारके मूर्ख अनभिज्ञ ही हैं। इन्ही नेताओं मे से एक श्रद्धानन्द जी हैं जो अपने को भिक्षुक कहते मानते हैं। यदि श्रद्धानन्द जी वास्तव मे सार्थक संन्यासी भिक्षुक रहे और विविध रत्नों का सग्रह करने की चेष्टा न की तो परम गुरु स्वा० दयानन्द जी से इस अंश मे विरुद्ध अवश्य रहेंगे। ऐसी दशा में विचारना चाहिये कि जिस आर्य समाजी मत रूप नौका के मल्लाह ला० मुन्शीराम जैसे बाबू लोग हों जिनके हाथ मे अंग्रेजी फारसी को बल्ली नौका को पार ले जाने के लिये विद्यमान हो, जो वास्तव मे ब्रह्मद्रोही हो, ऐसे लोग इस नौका को अपने सहित अज्ञानान्धमहासागर के बीच अवश्य डुबो देंगे ऐसा सभी विचार शील जान सकते हैं॥

अभिप्राय यह है कि इस आ० समाज मे मत का ठिकाना कुछ नही, जो कुछ कल्पित मत माना गया है वह भी हल चल दशामे है, उसके विषय मे कोई कुछ कहता अन्य कुछ कहता है, सबकी एकानुमति नही है। अब जो कुछ २ संस्कृत पढ़े हुए ब्राह्मण लोग है वे यद्यपि कुछ २ ब्राह्मण जाति के निन्दक हैं इसी से आ० समाज में

कुछ समझे जाते हैं और अपने ब्राह्मण होने का अभिमान रखते हुए ब्राह्मण जाति के पूरे निन्दक नहीं बनते इसी कारण उन लोगोंका बाबू लोगोंसे ठीक मेल नहीं मिलता इसीसे धीरे २ उपदेशक विद्वान् लोग आर्यसमाजको तिलाञ्जलि दे रहे हैं, अभी कवि-रत्न पं० अखिलानन्द जी ने आ० समाजी मत को सदा के लिये तिलाञ्जलि दे दी है। आगे अन्य उपदेशक भी ऐसा करेंगे तब संस्कृत विद्यासे शून्य मूर्खमंडली शूद्रप्राय लोग ही इस मतमें रह जावेंगे इसी कारण इस मतकी नौका मझधार में डूब जावेगी ऐसा विश्वास उन सभी विचारशीलों को हो जायगा कि जो इस आर्यसमाजी मत का ठीक २ पूर्वापर अनुसन्धान करेंगे॥

श्रद्धानन्दजी ने आदिम सत्यार्थप्रकाश की भूमिकाके छः पृष्ठोंमें क, ख, ग, घ, ङ च, ये छः अङ्क डाले हैं, यह चाल प्राचीन नहीं किन्तु नूतन है। आंग्लभाषा में ऐसे प्रसङ्ग में ए, बी, सी, इत्यादि अङ्क डालते होंगे वा फारसी वाले अलिफ, बे, ते, से, डालते होंगे उन्हीं का अनुकरण यहां किया जान पड़ता है, और यदि किसी कारण उन लोगों का अनुकरण न हो तो भी प्रश्न यह है कि संस्कृत और नागरी की वर्ण-माला में अक्षरारम्भ अकार से माना जाता है तब श्रद्धानन्द ने सब स्वरों को छोड़कर व्यञ्जनोंसे गणनाको आरम्भ क्यों किया? अकार से आरम्भ क्यों नहीं किया? अस्तु।

हम इस ग्रन्थ को लिख चुके हैं कि आर्य समाजी मत का कुछ भी मूल वा पुष्ट आधार वा प्रमाण नहीं है किन्तु बिना नींव की भित्ति के समान धींगा धींगी से खड़ा किया समाजी मत ठहर नहीं सकता। वेद हमारा मत है, ऐसा कहदेने लिख देने से भी समाजी मतका अस्तित्व तब तक सिद्ध नहीं हो सकता कि जब तक पुष्ट युक्ति प्रमाणों से वेदका सार सिद्धान्त निश्चित न हो जावे। वेदमतसे ईश्वर और जीवका लक्षण क्या २ है, ऐसा विचार उपस्थित होने पर आर्यसमाजका सिद्धान्त कुछ स्थिर नहीं होता। आर्यसमाजियोंने ईश्वरको निराकार माना है। यद्यपि वेदमें कुछ प्रमाण ऐसे भी मिलते हैं जिनसे ईश्वरकी निराकारता सिद्ध हो परन्तु निराकारता के प्रति-पादक प्रमाणोंकी अपेक्षा सैकड़ों गुने प्रमाण वेदमें ऐसे विद्यमान हैं जिन का आर्य-समाजी अर्थ भी साकारमें ही घटता है। जैसे (तेषांपाहिश्रुधीहवम्) हे ईश्वर! उन सोम रसों का तुम पान करो और हमारी पुकार वा प्रार्थना को सुनो। यह अर्थ स्वा० द० ने किया है यदि ईश्वर वास्तव में निराकार है तो वह सोमरस को कदापि नहीं पी सकता यदि पी सकता और प्रार्थना सुन सकता है तो निराकार होना कदापि सिद्ध नहीं होता और जब निराकार का पीना सुनना दोनों असम्भव हैं तो उस ईश्वर को पीने सुनने के लिये कहना उन्मत्त वाक्यवत् असंबद्ध प्रलाप क्यों नहीं है। ईश्वर के चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ, मन से चन्द्रमा, कानों से दिशा, शिर से, स्वर्गलोक, मुखसे अग्नि उसकी नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ इत्यादि वर्णन वेद में स्पष्ट है, सीधा अर्थ लौट देने के लिये समाजी लोग नई २ कल्पना किया करते हैं। स्वा० दयानन्द ने ईश्वरसे

कहा है कि दोनों हाथ से हमको धन दीजिये इससे भी ईश्वर का साकार होना सिद्ध है। ऐसे प्रमाण वेद में सैकड़ों नहीं किन्तु सहस्रों हैं जिन का सीधा २ अक्षरार्थ साकार में घट सकता है, निराकार में कदापि नहीं घट सकता। इस प्रकार ईश्वर का स्वरूप निर्णय आ० समाज में अब तक नहीं हो पाया और न कभी हो सकेगा। क्योंकि आ० समाजी लोग उसको शरीर रहित कहते हैं परन्तु बृहदारण्यक के अन्तर्यामि ब्राह्मण में और मनुस्मृत्यादि आर्ष प्रामाणिक ग्रन्थों में ईश्वर का शरीर अनेक विध लिखा है यथा—

यः पृथिव्यां तिष्ठन् पृथिव्या अन्तरो यं पृथिवी न वेद यस्य पृथिवी शरीरम्। यस्यापः शरीरम्। यस्याग्निः शरीरम्। यस्य वायुः शरीरम्। इत्यादि—तथा मनुस्मृतौ—

सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः॥

असंख्यामूर्त्तयस्तस्य निष्पतन्तिशरीरतः॥ अ० १॥

जो परमेश्वर पृथिवीमें ठहरा हुआ पृथिवीके रोम २ में व्यापक है, जिसको पृथिव्यभिमानिनी चेतन देवता भी नहीं जानती और जिसका पृथिवी शरीर है, जिस का जल शरीर है, जिसका अग्नि शरीर है, जिसका वायु शरीर है, इत्यादि ईश्वरके अनेक शरीर बृहदारण्यक में लिखे हैं तथा मनुस्मृति अ० १ में लिखा है कि उस ईश्वर ने अनेकविध प्रजा रचने की इच्छासे सम्यक् आलोचन करके अपने शरीर [नाम माया वा प्रकृति से आकाशादि क्रमानुसार] पहिले जल को रचा। मनुष्यादि शरीर रूप असंख्य मूर्त्तियां उस परमेश्वर के शरीर से उत्पन्न वा प्रकट होती हैं। इत्यादि सैकड़ों प्रमाणों द्वारा परमेश्वर का शरीर धारी साकार होना स्पष्ट सिद्ध है। निराकार वादीपक्ष की ओर से ऐसे प्रमाणों का सन्तोषजनक समाधान न कभी मिला और न मिल सकता है। परन्तु सनातनधर्म की ओर से साकार निराकार प्रतिपादक उभयविध वेद प्रमाणों की सन्तोषजनक व्यवस्था हो चुकी है कि जैसे जीव शरीर धारण करता हुआ भी अच्छेद्य-अभेद्य-अविनाशी नित्य बना रहता है, और जिस जीव के लिये भ० गीता में यह कहा गया है कि—

नजायतेम्रियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावानभूयः।

अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यतेहन्यमानेशरीरे॥

जीव जैसे अब जन्मता मरता नहीं वैसे भविष्यत् काल में भी उसका जन्म मरण नहीं होगा इससे वह अजन्मा नित्य निरन्तर और अनादि है, वह जीव शरीरका वध किये जाने पर मारा नहीं जाता है, इसी के अनुसार परमेश्वर भी पृथिव्यादि रूप

अनेक शरीरों को धारण करता हुआ भी सदा अजर अमर नित्य शुद्ध बना रहता है। ईश्वर जिन पृथिव्यादि रूप वा मानुषादि रूप जिन २ शरीरोंको धारण करता है उन२ में अज्ञान से बद्ध नहीं होता परन्तु जीव शरीरों के साथ अज्ञान में बंद्ध होता है यही जीव ईश्वर में भेद है। जैसे पत्थर वा काष्ठादि में व्यापक अग्नि का किसी प्रकार का आकार नहीं कहा जाता इसलिये वह व्यापक अग्नि निराकार है क्योंकि वह ऐसा है-इस प्रकार निर्देश नहीं किया जा सकता। और जो अग्नि प्रज्वलित वा अङ्गारादि रूप से प्रसिद्ध है वह साकार है, यहां जैसे एक ही अग्नि एक ही काल में साकार निराकार दोनों रूप से विद्यमान है। वैसे परमेश्वर भी एक ही काल में साकार निराकार दोनों रूप से विद्यमान है, यही उसका महत्त्व है॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ शु० यजु० अ० ३२।१॥

अग्नि, वायु, आदित्य, चन्द्रमा, शुक्र, ब्रह्म-शब्दात्मकवेद, जल और प्रजापति विधाता इन इत्यादि रूपोंसे परमेश्वर सदा ही साकार है, इसीलिये भ० गीतामें कहा है कि-

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥
रसोऽहमप्सु कौन्तेय ! प्रभास्मि शशिसूर्ययोः ।

सूर्यनारायण के अन्तर्गत रहता हुआ जो तेज तीनों लोकोंको प्रकाशित करता है तथा जो चन्द्रमामें और जो तेज अग्निमें है, हे अर्जुन ! वह तेज मुझ परमेश्वरका जानो, हे अर्जुन ! मैं [ईश्वर] जल में रसस्वरूप और सूर्य चन्द्रमा में प्रकाश स्वरूप हूं। इत्यादि प्रकार से साकार होता हुआ भी एक ही काल में निराकार व्यापक अखण्ड स्वरूप से विद्यमान रहता है। परमेश्वर सृष्टिकाल में आदित्यादि रूप से साकार रहता और कभी २ आवश्यकताके अनुसार निराकारादि रूप भी धारण कर लेता है। इस प्रकार सनातनधर्ममें परमेश्वरके साकार निराकार नराकार नीराकार अनेक रूपों का एक कालमें होना सिद्ध है॥

द्वितीय जैसे जीव परिच्छिन्न है वा अपरिच्छिन्न अर्थात् व्यापक विभु है या व्याप्य इन बातोंका अभी तक कुछ भी निश्चय आ० समाजियोंने नहीं कर पाया। श्रद्धानन्द ने आदिम सत्यार्थप्रकाशकी भूमिका के (ग) पृष्ठ की १७ पं० से लिखा है कि "इन लेखोंको मिलाकर पढ़नेसे स्पष्ट दिखाई देता है कि न तो जीवात्मा को स्वामी दयानन्द परिच्छिन्न मानते थे और न उत्पत्ति वाला,, इस लेख में ला० मुंशीराम ने जीव

को अपरिच्छिन्न मान लिया है क्योंकि स्वा० द० जी जीव को परिच्छिन्न नहीं मानते थे ऐसे कथनकी अर्थापत्ति स्पष्ट यही है कि स्वा० द० जीव को अपरिच्छिन्न मानते थे। परन्तु सन् १८८४ के बने छपे द्वितीय नये सत्यार्थप्रकाश सप्तम समुल्लास पृ० १६४ में लिखा है कि—

"(प्रश्न) जीव शरीरमें भिन्न विभु है वा परिच्छिन्न ? (उत्तर) परिच्छिन्न, जो विभू होता तो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, जन्म, संयोग, वियोग, जाना, आना, कभी नहीं हो सकता इसलिये जीव का स्वरूप अल्पज्ञ अल्प अर्थात् सूक्ष्म है, और परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात् सूक्ष्मतर अनन्त, सर्वज्ञ, और सर्वव्यापक स्वरूप है, इसी लिये जीव और परमेश्वरका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है ॥"

स्वा० दयानन्दजीने स्पष्ट ही यहां जीव को परिच्छिन्न मान लिया है, तब ला० मुंशीराम का लेख स्वा० द० के लेखसे दिन रात के तुल्य सर्वथा ही विरुद्ध सिद्ध हो गया। हमारा अनुमान है कि ला० मुंशीराम जी धीरे २ करके स्वा० द० के सिद्धान्त को बदल कर अपना नया मत चलाना चाहते है। क्योंकि जीवका परिच्छिन्न होना आ० समाजके सभी उपदेशक स्वा० द० के मतानुसार मानते हुए श्वेताश्वतर उपनिषद्‌की निम्न श्रुतिका प्रमाण देते हैं कि—

वालाग्रशतभागस्य शतधाकल्पितस्यच ।

भागोजीवःसविज्ञेयः सचानन्त्यायकल्पते ॥

वाल के सूक्ष्म अग्रभागके शतांशका शतांश जो भाग है वह जीव कहाता है यही अनन्त मोक्षको प्राप्त हो जाता है। सनातनधर्म के सिद्धान्तानुसार इस श्वेताश्वतर की श्रुतिका अभिप्राय यह है कि प्रकृति वा मायाका विशुद्ध सत्त्वगुणात्मक अंश जो बुद्धि तत्त्व है कि जिसको विज्ञानात्मा भी कहते हैं, यह बुद्धि तत्त्व वास्तव में तो जड है, परन्तु सर्वत्र व्यापक अनन्त विभु एक ही चेतनात्मा परमेश्वरमें जहां २ असंख्य परिच्छिन्न सूक्ष्म बुद्धि तत्त्व रहते हैं वहां २ चेतनात्मा का आभास सदा उनके साथ ही रहता है। जैसे काले लोहे के टुकड़े मे व्यापक हुआ अग्नि लोहेके रूप को छिपा कर अपने अग्नि रूप में लोहे को कर देता है, वैसे ही सत्त्वगुणात्मक परिच्छिन्न बुद्धि तत्त्व में व्यापक हुआ चेतनात्मा बुद्धि को चेतन बनाये रहता है, इसी बुद्ध्यवच्छिन्न चेतन का नाम जीव है, यह जीव उपाधिरूप बुद्धि के परिच्छिन्न होने से परिच्छिन्न माना जाता है, परन्तु जिस चेतनात्मा का यह जीव आभास मात्र है वह चेतनात्मा सदा विभु व्यापक है मनुस्मृति अ० १२ के १३।१४ श्लोकों में महत्तत्त्वात्मिका बुद्धि का नाम जीव रक्खा है, वेदान्त में जीव का स्वरूप निम्नलिखित माना जाता है कि—

मुखाभासको दर्पणे दृश्यमानो मुखत्वात्पृथक्त्वेन नैवास्ति वस्तु।
चिदाभासकोधीषुजीवोऽपितद्वत् सनित्योपलब्धिस्वरूपोऽहमात्मा॥

हस्तामलकस्तोत्र में कहा है कि जैसे मुखका आभास स्वच्छ दर्पण में दीखता हुआ असली मुख से भिन्न दर्पण वाला मुख नहीं है क्योंकि दर्पण के अभाव में दर्पण वाला मुख भी नहीं दीखता, वैसे ही दर्पणस्थानिनी बुद्धिमें जो व्यापक चेतन का आभास है वही जीव है, वह परमेश्वर से भिन्न वास्तव में नहीं है क्योंकि बुद्धि के अभाव में वह चिदाभास रूप जीव नहीं रहता। उस बुद्धितत्त्व का अपने प्रकृतिरूप कारण में मोक्ष के समय लय हो जाता है। इसी बात को योगसूत्र कैवल्यपाद के अन्त में कहा है कि—

प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तेः।

चित्त वा अन्तःकरण रूप बुद्धितत्त्व का अपने कारण में लय हो जाना कैवल्य मोक्ष कहाता है, अथवा चेतनात्मा का बुद्धि के साथ प्रवृत्ति को छोड़ के अपने स्वरूप निर्बीज समाधि रूप से सदा के लिये स्थित हो जाना कैवल्य कहाता है। न्याय वैशेषिक शास्त्रों में ईश्वर से भिन्न स्वतन्त्र मानते हुए जीवात्मा को विभु व्यापक अपरिच्छिन्न माना है, स्वा० दयानन्द का ऊपर दिखाया सप्तम समुल्लास वाला लेख न्याय वैशेषिक शास्त्रों से विरुद्ध है, वेदान्त के भी अनुकूल नहीं है। परन्तु ला० मुंशीराम स्वा० दयानन्द जी को ऋषि तथा आचार्य्य लिखते हुए भी स्वा० दयानन्द के मत से विरुद्ध जीव को अपरिच्छिन्न लिखते हैं। ऐसी दशा में विचारणीय यह हो गया कि ला०मुन्शीराम जी का जीव को अपरिच्छिन्न लिखना ठीक है? वा स्वामी दयानन्द का वा अन्य आर्य समाजी उपदेशकों का जीव को परिच्छिन्न मानना ठीक है?। जैसे पूर्व लिखे अनुसार ईश्वर विषय में आर्य समाज का कुछ भी मत स्थिर नहीं हो पाया वैसा ही जीव के मानने में जानो॥

वेद प्रतिपादित जीव ईश्वरादि विषयों में आर्य समाज का वा स्वामी दयानन्दका कुछ भी सिद्धान्त स्थित नहीं हो पाया तब स्वा० द०का मत वेद था और आर्यसमाज का मत वेद है ऐसा ला० मुंशीराम का लिखना सरासर अज्ञान है। यदि जीव को अपरिच्छिन्न मानने का मत कदाचित् ठीक हो जाय और आर्यसमाजी इसीको अपना मत मानने लगें तो स्वा० दयानन्द जी के लेख का स्पष्ट खण्डन हो जायगा। जब ईश्वर जीवादि किसी भी विषय में आर्य समाज का स्थायी मत ही सिद्ध नहीं होता तब प्रथम सत्यार्थ प्रकाश के समाधानार्थ १०४ पृष्ठ का ला० मुन्शीराम का पुस्तक लिखना सर्वथा व्यर्थ होगय

प्रथम सत्यार्थप्रकाश के समाधान का आरम्भ करते हुए श्रद्धानन्द जी ने लिखा है कि "पांच सहस्र वर्षों के पश्चात् वैदिक धर्म का यदि कोई उद्धारक आचार्य हुआ है तो वह ऋषि दयानन्द ही हैं" इस पर श्रद्धानन्द से पूछना चाहिये कि अब से पांच सहस्र वर्ष पहिले क्या आर्यसमाज था। क्या भीष्म पितामह और राजा युधिष्ठिरादि में ब्रह्मर्षियों के से शम दमादि उत्तम गुण नहीं थे क्या वे लोग संस्कृत के पूर्ण विद्वान् नहीं थे? यदि थे तो वे लोग गुणकर्मानुसार ब्राह्मण क्यों नहीं बने वा बनाये गये? और द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, परशुराम और अश्वत्थामादि अति प्रबल योधा गुणकर्मानुसार ब्राह्मण से क्षत्रिय क्यों नहीं बने?। जब नहीं बने तब ५ सहस्र वर्ष पहिले भी आर्यसमाजीपन का न होना सिद्ध हो गया। और जब इस कालमें आ०समाजीपन का नाम निशान भी नहीं था तब वैदिक धर्म के उद्धारक सनातनधर्मी राजा थे जिनके न रहने से ला० मुंशीराम खत्री जैसे मनुष्यों को यह अवसर मिल गया कि हे मेरे पुत्रो! तुम अब ब्राह्मण बन जाओ। हम स्वा० दयानन्द को वैदिकधर्म का उद्धारक तो कदापि नहीं कह सकते किन्तु अपधारक वा अधःपातक कहें तो अनुचित नहीं, क्योंकि वैदिक धर्मका खण्डन प्रकारान्तरों से स्वा०द०ने किया है इससे वैदिक धर्म की अधोगति के कारण स्वा० दयानन्द जी को कहना सर्वथा उचित ही है॥

यज्ञों द्वारा देवताओं को और पितृयज्ञों के द्वारा पितरों को संतुष्ट तृप्त करके उनके वरदान से मनुष्यों को स्वर्ग मोक्षादि का प्राप्त होना संसार के असह्य दुःखों से मनुष्यों की रक्षा होना यही वैदिक धर्म का मुख्य प्रयोजन था इसी बातको भ० गीता में कहा है कि-

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

परमश्रेय प्राप्त करना ही मनुष्यों का अभीष्ट था उसका खण्डन स्वा० दयानन्द ने इस प्रकार किया कि परोक्ष देवता वा पितर कोई नहीं हैं विद्वान् मनुष्य ही पितर और देवता हैं, दुर्गन्ध की निवृत्ति के लिये जहां २ अधिक दुर्गन्ध हो वहां २ होम करो। मृत पितरों को श्राद्ध तर्पण का फल नहीं पहुंचता इससे श्राद्ध तर्पण कोई मत करो। आलस्य निवृत्ति के लिये मार्जन है। कण्ठ में कफ न आने के लिये आचमन है। यज्ञों का विशेष रूप से विधान पोप लीला है। इत्यादि प्रकार से वेदोक्त सब कर्मों में कुतर्क के द्वारा अश्रद्धा अविश्वास करा देना ही वेद का खण्डन करना है। इसलिये यह कहना अनुचित नहीं कि विक्रमीय संवत् की इस बीसवीं शताब्दी में वेदोक्त धर्म से डिगाने वाले सब से अधिक स्वा० दयानन्द जी हुए॥

यदि इस कलियुग में वेदोक्त धर्म का उद्धारक सब से अधिक कोई हुआ है तो श्रीमान् पूज्यपाद भगवान् शंकराचार्यजी हुएहैं कि जब वेदका नाम लेनेवाला भी प्रायः

द्रोही समझा जाता था, जब राजा प्रजा सभी प्रायः जैन बौद्ध हो चुके थे। कहीं २ छिपे हुए कुछ ब्राह्मण रह गये थे ऐसे समय में वेदोक्त धर्म को पुनरुज्जीवित किया। जैन बौद्ध मतावलम्बियों को अपने विद्याबल से परास्त करके निर्बल किया, वेदोक्त धर्म का प्रचार किया, उस समय के सुधन्वादि राजाओं को वेद मत के संरक्षक फिर से बनाया, ऐसे वैदिक धर्म के उद्धारक भगवान् शंकर स्वामी की जितनी प्रशंसा की जाय वह सभी थोड़ी है॥

उक्त पुस्तकके सातवें पृष्ठ तक तो श्रद्धानन्दजीने स्वा० द० की मिथ्या प्रशंसा की पुष्टि में पं० लेखराम कृत जीवन चरित्र के प्रमाण दिये हैं। सो ये प्रमाण साध्य सम-हेत्वाभासोंके तुल्य हैं क्योंकि जैसे स्वा० द०की प्रशंसा सिद्ध नहीं किन्तु साध्य है वैसे ही जीवनचरित्रके वे हवाले भी मनमाने होने से साध्य हैं। पृ० ८ में मृत पितादिका श्राद्ध तर्पण और यज्ञमें पशुहिंसा इन दो बातों का उल्लेख जो प्रथम सत्यार्थ प्रकाश में छपगया है उसको श्रद्धानन्द जी ने लिखने शोधने वालों की भूलसे छपगया मान लिया है। इस लेख से सर्वसाधारण लोगोंको जताया गया है कि जानो प्रथम स-त्यार्थप्रकाशमें अबके नूतन सत्यार्थप्रकाश से पूर्वोक्त दो ही बातों का विरोध है। वह भी लिखने और शोधने वालों की भूलसे हो गयी हैं। सो यह बात पहिले २ विक्र-मीय संवत् १९३४ में प्रकट हुई थी, यद्यपि प्रथम सत्यार्थप्रकाश वि० संवत् १९३२ में छपचुका था तथापि उसका प्रचार कुछ भी नहीं हुआ था क्योंकि उस समय न तो आर्यसमाज था और नागरी के नये छपने वाले पुस्तकों को देखने की रुचि भी नहीं थी, न टिसबाजी भी अबकी सी तब नहीं होती थी और पुस्तक छपाने वाले राजा जयकृष्णदासको शीघ्र २ बिकवा कर रुपयों संग्रह करनेका लालच भी नहीं था। इस कारण छपा हुआ पुस्तक सत्यार्थप्रकाश अनुमान एक वर्ष तक पड़ा रहा। जब सं-वत् ३३ के अन्तमें आर्यसमाजका आरम्भ लाहौरमें हुआ उसी समय से स्वा० द० जी अपने भ्रमण में दोनों काम करने लगे थे, एक तो आर्यसमाजों को कायम करना द्वि-तीय राजा जयकृष्णदास के यहांसे मंगा २ कर सत्यार्थप्रकाश बेंचकर रु० जमा क-रना। पंजाबमें हिन्दीभाषाका पहिले बहुत ही कम प्रचार था इस से प्रथम सत्यार्थ प्र० को कुछ कालमें किसी २ ने पढ़के जाना कि इसमें मृतकश्राद्धादि लिखा है तबतक सत्यार्थप्रकाश बिकते कुछ महीने बीत गये थे। जब वि० संवत् १९३४ में पञ्जाब के सनातनियोंने ही प्रथम स्वा० द० से कहा कि आप मृतकश्राद्ध का खण्डन करते हैं और सत्यार्थप्रकाशमें आप ही छपा चुके हैं। तब कुछ दिन तो स्वा० द० किसी प्र-कार टालते रहे, पीछे टालाटूलीसे काम चलते न देख कर वेदभाष्य के अंक पर वि-ज्ञापन छपाया गया कि लिखने और शोधने वालोंकी भूलसे मरोंका श्राद्ध तर्पण छप

गया है, सो यह विज्ञापन छपाना वीसों विश्वे मिथ्या था क्योंकि स्वा० द० के सभी मेली जानते थे कि फर्रुखावादादि नगरों में स्वा० द० जी स्वयं बैठ २ कर मरोंके लिये पिण्डदानादि कराते थे। मृतकश्राद्धपद्धति बनाई थी, झूंठा विज्ञापन छपाने का अभिप्राय यही था कि यदि ऐसा कहदें वा छपादें कि हम पहिले मृतकश्राद्ध मानते थे पीछे वेदविरुद्ध जानके छोड़दिया तो सब लोग कहेंगे कि जैसे तुम्हारे पहिले मन्तव्य में भूल थी वैसे अबके मन्तव्य में भी हो सकती है इससे हम तुम्हारे मत को नहीं मानते, इस भयसे स्वा० द० ने जानते हुए भी झूंठ छपाया था यह बात वीसों विश्वे सत्य है, जिस के अनेक प्रमाण विद्यमान हो सकते हैं॥

१- उनमें एक प्रमाण तो यह है कि यदि लिखने शोधने वालोंने विरुद्ध छपादिया था तो पुस्तक छपजाने पर जब स्वा० द० ने चार पृष्ठका शुद्धिपत्र बनाके छपाया था तभी मृतकश्राद्धादि की अशुद्धि का भी शुद्धिपत्र बन सकता था, वैसा न करने से सिद्ध है कि स्वा० द० वैसा ही मानते थे॥

२-छपने के वाद दो वर्षके भीतर जब ज्ञात होगया था कि मृतक श्राद्धादि स्वा०द० के मत से विरुद्ध छपा है और यह अनर्थ लिखने शोधने वालों ने किया है तब जिस कापी में स्वा० द० ने ठीक लिखवाया था उसका अन्वेषण करके विज्ञापन में प्रमाण दिया जाता और लिखने शोधने वालोंको गिरफ्तार कराके राजदण्ड दिलाया जाता सो क्यों नहीं किया गया?। जब द्वितीय सत्यार्थप्रकाश की लिखित कापी अबतक ३२ वर्ष वीतजाने पर भी विद्यमान है तब पहिले सत्यार्थप्रकाश की कापी दो वर्ष तक भी छापेखानेमें न रही हो यह सम्भव नहीं हो सकता॥

३- फर्रुखावाद कर्णवासादिमें जहां २ स्वा० द० ने मृतकश्राद्ध और होमादि का निमित्त लेकर हिंसा कराई थी वहां २ के वैश्य क्षत्रियादि लोगोंमें अबतक सब २ वृत्तान्त प्रसिद्ध है कि अमुक २ मनुष्योंको स्वा० द० ने अमुक २ काम कराये थे॥

४-पहिले सत्यार्थप्रकाश के बनते समय तक स्वा०द० का अनेक विषयों में मतभेद था उन सभी विषयोंका लेख पहिले मतानुसार ही प्रथम सत्यार्थप्र०में छपा है। तथा १-मृतपितरों का श्राद्धतर्पण मानना। २-स्वर्गलोकस्थ देवयोनि का मानना। ३-होम के द्वारा उन देवोंकी पूजा मानना प्रतिमा द्वारा नही। ४-परोक्ष मृतपितरोंका मानना ५-यज्ञ में पशुहिंसा को अच्छा सत्य मानना। ६-मुक्ति से पुनरावृत्ति नही मानना। इत्यादि अन्य भी अनेक बातें हैं जिनका विचार सत्यार्थप्र० का पूरा २ आलोचन करने पर होसकता है॥

५-किसी की बनाई हुई इबारत को जब तक सबकी सब न लौटदी जावे तब तक किन्हीं पद वाक्यों के मिलादेने से वा कोई २ पद वाक्य बदल देने से मिलानेवाले की

चोरी कदापि छिप नहीं सकती किन्तु सभी जान सकते हैं। हम आगे उदाहरणार्थ स्वा०द० की बनाई इबारत दिखाते हैं—प्रथम सत्यार्थप्र० पृष्ठ ४२ में-

ओं—ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् । १ ।

ओं—ब्रह्मादिदेवपत्न्यस्तृप्यन्ताम् । १ ॥

इत्यादि चार वाक्योंमें प्रत्येकके अन्तमें एक २ संख्या लिखकर-इति देवतर्पणम्। लिखा फिर -

अथर्षि तर्पणम्—ओंमरीच्यादय ऋषयस्तृप्यन्ताम् ॥२॥

इत्यादि चार वाक्यों में से प्रत्येक के अन्त में-दो २ संख्या लिखकर- इति ऋषितर्पणम् लिखा फिर-

अथ पितृतर्पणम्—ओंसोमसदःपितरस्तृप्यन्ताम् ॥३॥

इत्यादि सात वाक्यों में से प्रत्येक के अन्त में तीन२ संख्या लिखकर यमादि, पिता, पितामह, प्रपितामह, माता, पितामही, प्रपितामही, स्वपत्नी इन आठों के लिये उन २ के वाक्यान्तमें तीन २ संख्या लिखकर तर्पयामि क्रियापद अन्तमें रखकर तर्पण लिखा गया है। तदनन्तर सब के अन्त में निम्नलिखित दो वाक्य लिखे गये हैं, तथा-

ओं सम्बन्धिभ्यो मृतेभ्यः स्वधानमः । सम्ब[न्धिनो]न्धीन्मृतांस्तर्पयामि ॥३॥

ओं सगोत्रेभ्यो मृतेभ्यः स्वधानमः सगोत्रान्मृतांस्तर्पयामि ॥३॥ इति तर्पणविधिः ॥

पित्रादिकों में जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करै और जितने मर गये होंय उनका तो अवश्य करै ॥

उद्धृतेदक्षिणेपाणावुपवीत्युच्यतेद्विजः ।
सव्येप्राचीनआवीतीनिवीतीकण्ठसज्जने ॥ अ० २

यह मनुस्मृतिका श्लोक है इसका यह अर्थ है कि वाम स्कन्धके ऊपर यज्ञोपवीत सदा रहता ही है परन्तु उस यज्ञोपवीत को दहिने हाथके अंगूठामें लगाले इस क्रिया के करने से द्विजोंका नाम उपवीती होता है सो सब देव कर्मोंको उपवीती होकर करे पूर्वाभिमुख होके देव तर्पण करै और देवतीर्थ से। कण्ठ में जब यज्ञोपवीत रक्खे

और दोनों हाथके अंगूठामें यज्ञोपवीतको लगावे तो द्विजों की निवीति संज्ञा होती है ब्रह्मतीर्थ से उत्तराभिमुख होके ऋषि तर्पण करना चाहिये। और दक्षिण स्कन्ध में यज्ञोपवीत रक्खे और वाम अंगुष्ठमें यज्ञोपवीत लगानेसे द्विजों का नाम प्राचीनावीती होता है दक्षिणाभिमुख प्राचीनावीती और पितृतीर्थ से पितृकर्म तर्पण और श्राद्ध करना चाहिये देवतर्पण में एक वार मन्त्र पढ़के एक अञ्जलि देवें ऋषि तर्पण में दो वार मन्त्र पढ़के दो अञ्जलि देवें दूसरी वार मन्त्र पढ़के दूसरी अञ्जलि देवें और पितृ तर्पण में एक वार मन्त्र पढ़के एक अंजलि देवे दूसरी वार मन्त्र पढ़के दूसरी अञ्जलि देवे और तीसरी वार मन्त्र पढ़के तीसरी अंजलि देवे॥

यहां ऊपर की भाषा प्रथम स० प्र० के पृष्ठ ४२। ४३ से ज्यों की त्यों लिख दी है प्रथम स० प्र० के तृतीय समुल्लास में उक्त सब लेख है। परन्तु द्वितीय स० प्र० में यही विषय चतुर्थ समुल्लास में ब्रह्मादि देवोंके ऋषियों के और सोमसदादि पितरों के तर्पणमें वे ही सब वाक्य वैसेही लिखे हैं, वहां एक तो भेद यह है कि द्वितीय सत्यार्थ प्र० में देवतर्पण वाक्योंके अन्तमें एक २ संख्या ऋषितर्पण के वाक्यान्तों में दो २ संख्या और पितृतर्पण के वाक्यान्तों में तीन २ संख्या नहीं लिखी, द्वितीय पितृतर्पणके अन्त में जो सम्बधी और सगोत्रों के दो वाक्यों में पहिले सत्यार्थ प्र० में मृतेभ्यः और मृतान् शब्द दो २ जगह लिखे थे वे द्वितीय सत्यार्थ प्र० में निकाल दिये गये। तृतीय पहिले स० प्र० में सम्बन्धीन्मृतांस्तर्पयामि—ऐसा व्याकरणसे अशुद्ध पाठ छपा था उसको द्वितीय स० प्र० में सम्बधिनस्तर्पयामि ऐसा शुद्ध पाठ छपा दिया। चतुर्थ पित्रादिकों मे जो कोई जीता हो उसका तर्पण न करे० इत्यादि ऊपर लिखी सभी इबारत मनु० के (उद्धृते दक्षिणे०) श्लोक सहित निकाल दी गयी और उसके स्थान मे मनमानी कल्पना भाषा में लिखी है॥

अब पाठक महाशय विचार पूर्वक ध्यान देकर श्रद्धानन्दजी से पूछें कि देव ऋषि और पितरों के तर्पण में जो जो एक २ दो २ और तीन २ संख्या के अङ्क लिखाये, छपाये गये थे क्या उनसे यह स्पष्ट सिद्ध नहीं होता कि देवोंके नामसे एक २ ऋषियोंके लिये दो २ और पितरों के लिये तीन २ अञ्जलि जल पृथिवी मे वा पात्रमें छोड़ना जो सर्वत्र प्रसिद्ध है और तर्पण की पद्धतियों में सर्वत्र उन २ वाक्यों के अन्त में एक २ दो २ और तीन २ संख्या के अङ्क जो उक्त अभिप्राय से दिये जाते हैं उसी अभिप्राय से स्वा० दयानन्दजी ने भी लिखवाये थे सो क्या ये अङ्क लिखने वालेने बढ़ा दिये थे?।

२–चार वाक्यों में मृत शब्द को चार जगह क्या लेखक ने मिला दिया इस बात का शपथ क्या श्रद्धानन्द कर देंगे कि मैं वेद को हाथ में लेकर सत्य कहता हूं कि स्वा० द० पहिले कभी मृतपितरों का श्राद्ध तर्पण नहीं मानते थे।

२-क्या यह बात पहिले से प्रसिद्ध नहीं थी कि जो २ मरगये उन्हींके नाम से तर्पण किया जाता था। तदनुसार स्वा० द० ने भी लिखकर छपाया जैसा कि उन दिनों वे मानते और कराते थे। इसी लिये-अस्मत्पत्न्यैस्वधानमः-अस्मत्पत्नीं तर्पयामि ३। ऐसा छपाया गया था कि जिस की पत्नी जीवित हो वह न करै।

४-"पित्रादिकोंमें जो कोई जीता हो" इत्यादि दो पङ्क्ति लेख यदि किसी लेखक ने मिला दिया तो क्या उससे आगे का (उद्धृते दक्षिणे०) इत्यादि इस मनुके श्लोक सहित १८ पङ्क्ति का सब लेख भी क्या किसी ने मिला दिया है?। पहिली दो पङ्क्ति भामा निकाल देने पर भी क्या पिछले १८ पंक्ति लेख से यह सिद्ध नहीं होता कि मृतकश्राद्ध स्वा० द० मानते थे।

५-प्रथम सत्यार्थ प्र० के पृष्ठ ४७ से ४६ तकमें मृतोंके लिये किये श्राद्ध तर्पण के जो सात प्रयोजन लिखे छपे हैं उनमें से कई प्रयोजन स्पष्ट ही मृतकों के श्राद्धपरक हैं क्या ये सब भी किसी ने मिला दिये थे?।

६-यदि ऐसे २ अबके पिछले विचारसे विरुद्ध पहिले सत्यार्थप्रकाशके सभी लेखों को किसी के मिलाये मानकर कोई निकाल देना चाहे तो आधा भी पुस्तक नहीं बचेगा क्या श्रद्धानन्द के मतसे अनेक विषयों में लिखने शोधने वालों ने आधा पुस्तक मिला दिया यह सत्य है?।

प्रथम सत्यार्थ प्र० पृ० ३८ पं० ६ में जो यह लिखा है कि "कन्या लोगों का यज्ञोपवीत कदापि नहीं कराना चाहिये और संस्कार तो सब कराना चाहिये" यह लेख स्वा० द० ने मनुजी का अभिप्राय वैसा ही मानते हुए लिखा छपाया था अर्थात् उस समय तक कन्याओंका यज्ञोपवीत नहीं मानते थे। पृष्ठ ४५ की पं० १५ में स्वा० द० ने दूध घी और मांसादिक पुष्टिकारक पदार्थों का ह्रास लिखा है सो यह भी उनका मत उस समय वैसा ही था। कर्णवास के क्षत्रियों को स्वा० द० ने आज्ञा दी थी कि मुख बन्द कर के मुक्कों से मारे हुए बकरे के मांस से प्रथम होम करके तब मांस खाया करो। स्वा० द० के उपदेश से वहां के क्षत्रियों ने वैसा किया भी था यह बात कर्णवासादि में अब तक प्रसिद्ध है इसी लिये इसी बात की पुष्टि करने के लिये प्रथम सत्यार्थप्रकाश दशम समुल्लास पृ० ३०३ में निम्न लेख छपा है कि—

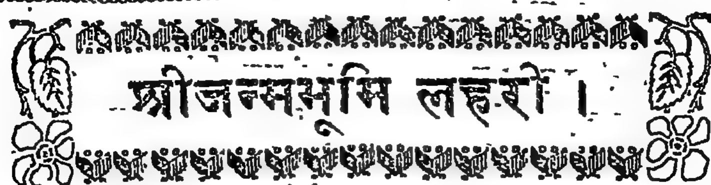
"और मनुष्यों के मरने से घृतादिक पदार्थ और पशुओंकी उत्पत्तिभी नष्ट हो जाती हैं इससे जहां २ गोमेधादिक लिखे हैं वहां २ पशुओं में नरों को मारना लिखा है इस से इस अभिप्राय से, नरमेध लिखा है मनुष्य नर को मारना कहीं नहीं क्योंकि जैसी पुष्टि बैलादिक नरों में है वैसी स्त्रियों में नहीं है। और एक बैल से हजारहां गौयें गर्भवती होती हैं इससे हानि भी नहीं होती सोई लिखा है। (गौरनुबन्ध्योऽग्नीषोमीयः), यह ब्राह्मण की श्रुति है, इसमें पुल्लिङ्ग निर्देश से यह जाना जाता है कि बैल आदिक

को मारना गैया को नहीं सो भी गोमेधादिक यज्ञों में अन्यत्र नहीं क्योंकि बैल आदि से भी मनुष्यों का बहुत उपकार होता है इससे इनकी भी रक्षा करनी चाहिये और जो वन्ध्या गाय होती हैं उसको भी गोमेध में मारना लिखा है। (स्थूलपृषतीमग्निवारुणीमनड्वाहीमालभेत्) यह ब्राह्मण की श्रुति है इसमें स्त्रीलिङ्ग और स्थूलपृषती विशेषण से वन्ध्या गाय ली जाती है क्योंकि वन्ध्या से दुग्ध और वत्सादिकों की उत्पत्ति होती नहीं और जो मांस न खाय तो घृत दुग्धादिकों से निर्वाह करे क्योंकि घृत दुग्धादिकों से भी बहुत पुष्टि होती है सो जो मांस खाय अथवा घृतादिकों से निर्वाह करे वे भी सब अग्नि में होम के बिना न खांय क्योंकि जीवको मारने के समय पीडा होती है उससे कुछ पाप भी होता है फिर जब अग्नि में वे होम करेंगे तब परमाणु से उक्त प्रकार सब जीवों को सुख पहुंचेगा एक जीवकी पीडा से पाप भया था सो भी थोड़ा सा गिना जायगा अन्यथा नहीं" । इनका अभिप्राय यह है कि नर पशु बैल वा वन्ध्या गौ को यज्ञ में मारने से संसार की विशेष हानि कुछ नहीं ऐसा स्वा० दयानन्द ने सिद्ध किया है। इससे लेखक ने वैसा लेख मिला दिया यह श्रद्धानन्दादि का बहाना वास्तव में मिथ्या है॥

प्रथम स० प्र० पृष्ठ ६१, ६२, ६३ तीन पृष्ठों में तैत्तिरीयोपनिषद् के आनन्दमीमांसा का एक खण्ड लिखकर उसका व्याख्यान लिखा है उसमें देवगन्धर्व, पितर, आजानदेव, कर्मदेव, सामान्यदेव, इन्द्र, बृहस्पति इत्यादि देवोंको मनुष्यों से भिन्न स्पष्ट ही मान लिया है, इस सन् १८८४ वाले द्वितीय सत्यार्थप्रकाश में वह आनन्दमीमांसा का सभी लेख निकाल दिया है॥

प्रथम स० प्र० के नवम समुल्लास में मुक्ति सदा के लिये नित्य लिखी है किन्तु पुनरावृत्ति नहीं मानी है परन्तु नये सत्यार्थप्रकाश में पुनरावृत्ति जिसमें से न हो ऐसी मुक्ति को जन्म कैद लिख दिया है। इत्यादि अनेक लेख पहिले स० प्रकाश में इस नूतन सत्यार्थ प्रकाश से विरुद्ध हैं जिनको छांटकर पृथक् किया जाय तो प्रथम स० प्र० पुस्तक आधा भी नहीं बच सकता। इस लिये लिखने शोधने वालों पर मिथ्या दोषारोप अनुचित है॥

यद्यपि इस आदिम स० प्र० के आलोचन पर बहुत सा विचार और भी लिखा जा सकता है तथापि अब यहां नहीं लिखेंगे, पाठकों को यहां उदाहरण दिखाने के लिये थोडा सा लिख दिया है कि यदि कोई मनुष्य किसी निर्मूल असत्य बात को मानकर उसको किन्हीं प्रमाणों से सिद्ध करना चाहता है तो एक झूंठ सिद्ध करने के लिये अनेक झूंठे प्रमाणों की कल्पना करता है तब उसकी और भी पोल खुलती है यही दशा श्रद्धानन्द की हुई कि वे जीव को अपरिच्छिन्न कहते हुए कैसे पछाड़ खाकर गिरे हैं सो ऊपर दिखा दिया है॥ इति शम्॥



श्रीजन्मभूमि लहरी।

कहां शास्त्रव्याख्या ? सकल शुभ धर्माश्रम कहां ? । कहां राजश्री हैं ? अब वह प्रथा पौरुष
कहां यज्ञोंकी है ? अमल परिपाटी अब यहां । हुई स्वप्नावस्था सदृश सब बातें अब यहां ॥३५॥
बढ़ी भेदावस्था विकट सबमें फूट पड़के । लड़ाई छाई है कलह करके लूट लड़के ॥
लड़े भाई भाई अटल कठिनाई पड़रही । मही में माया में प्रकट लड़ने की जड़ रही ॥ ३६ ॥
लगा मेला सा है प्रति दिवस न्यायालय खड़े । चलाये जाते हैं प्रति दिन नये गूढ़ झगड़े ॥
लखो वाक्कीलोंको मुदित धन संसाधन करें । चहैं जीते हारें तुरत अपना प्राकट भरें ॥ ३७ ॥
यहीं ईर्ष्या ने भी कटु कलहने दम्भ मदने । किया सत्यानाशी व्यसन कितने दुस्त्यज घने ॥
सहस्रों बाधायें सब कर रहीं बाधित उसे । किया था देवोंने प्रणत मन आराधित जिसे ॥ ३८ ॥
हुई क्या से क्या है ? अह वह वही भारत मही । महादीना हीना नयन जलधारा बहरही ॥
किये कर्मोंकाही प्रतिफल मिला है सब कहीं । रहा एकावस्था पर यह जगद्वैभव नहीं ॥ ३९ ॥
खिलाड़ी विश्वात्मा भुवनभरमें खेल करके । दिखाता लीलायें प्रबल रिपुता मेल करके ॥
बली जो होता है सतत बनता भूपति वही । सदा से पृथ्वी की अटल रहती है गति यही ॥ ४० ॥
बढ़ाया क्यों ? स्वामिन् ! इसविधि घटाना जब रहा । बनाया क्यों? मिथ्याइसविधिमिटाना जबरहा ।
तुम्हींने छोड़ा है अब नर हरे ! मोह इसका । इसी से औरों ने अतिशय किया द्रोह इस का ॥ ४१ ॥
दया की छाया में अबतक रही पालित लता । उसीका दुःखों से प्रतिदिवस है अंग जलता ॥
तुम्हीं स्वामिन् ऐसे यदि बनगये निष्ठुर महा । गया जाताही है अब वह कहां भारत रहा ? ॥४२॥
दया की भिक्षा दो कुसमय सुधा वर्षण करो । सुधारो विश्वात्मन् ! भरत धरती बीच विहरो ॥
स्वदेश प्रेमी हों अटल उस का सेवन करें । सुधारें औरों को हम सब भलीभांति सुधरें ॥ ४३ ॥
जहां की भूमीमें पलकर हुए लालितलला ? वहीं धीरे धीरे चपल मन की कोमल कला ॥
वहांकी भूमीमें हम सब करें क्यों न ममता । बढ़ी माता से भी अनुचित नहीं स्वर्ग समता ॥४४॥
तजो ईर्ष्या जागो अब सब मिलो भारत हो । जगाओ माता को अटल पथ हो एक मत हो ॥
बनाओ संस्थायें विकट झगड़े छोड़ करके । बनो एकाकांक्षी हृदय अपना जोड़ करके ॥ ४५ ॥
बिना कष्टों के है सुख नर कभी पा न सकता । कभी ऊंचा होके प्रगतिपथ पै जा न सकता ॥
मनस्वी जो होते अटल डटके पौरुष करें । महत्वाकांक्षा के हितवश चहे निर्भय मरें ॥ ४६ ॥
तजीं सारी बातें विधुर कितने दुःख सहके । गही धैर्य्यावस्था विकट विपदाक्रान्त रहके ॥
किया कर्तव्यों को अटल अपने मार्ग पर थे । अभी ऐसे भी हैं हर समय में दिव्य नर थे ॥ ४७ ॥
सदा सन्तानों के सुधर सकने से सुधरना । धरित्री माता का उचित चरिताचार करना ॥
न भूलो औरों के मत पर कभी मित्र जग में । पुराने लोगों के उचित चलना शुद्ध मग में ॥ ४८ ॥
न छोड़ो धर्म्मों को प्रचलित रहे जो अबतक । निराकारा धारा अभिनव बहेगी कबतक ॥
सदा सत्कर्मों से फलित रहता धर्म अपना । तजो प्राणों को भी पर मत तजो धर्म अपना ॥४९॥

विना धर्मोत्कर्षठा उचित अपनी उन्नति नही। विना धर्मोके क्या ? मनुज लहता सद्गति कहीं ॥
अधर्मों से पृथ्वी विदलित हुई दुःख सहती। नही कोई आभा विधिवश वहां शेष रहती ॥ ५० ॥
इसी से हे मित्रो ! अब सुकृत धर्मोन्नति करो। विभिन्नावस्था को तजकर सभी एक विहरो ॥
बढो विद्याओं में अवनति हटावो अब जगो। न भूलो भोगों में सुकृत करने में सब लगो ॥ ५१ ॥
तभी विश्वात्मा भी लखकर तपो योग नरके। दया की भिक्षा से उदित करते कष्ट हरके ॥
यही आशा भारी नरतनु विहारी गिरिधर ! । करेंगे पूरी ही यदि हरि चहेंगे हितकर ॥ ५२ ॥
प्रभो ! हे विश्वात्मन् ! नरचरितधारिन् ! नरहरे ! । सदा आपो मेरे हितकर रहे हो दुख परे ॥
हमारे पापों को अब सब क्षमा नाथ करिये। हमारे कष्टों को प्रभुवर रमानाथ ! हरिये ॥ ५३ ॥
हमें कर्म्मों का ही प्रकृति गत है स्वत्त्व मिलता। विना तेरी आज्ञा प्रभुवर ! नही पत्र हिलता ॥
दया हो हे स्वामिन् ! हृदयतलमें दिव्य बल हो। करें सत्कर्मोंको उचित उनका पूर्ण फल हो ॥५४॥
वही दिव्य ज्योत्स्ना जनित फिर भी तेज वर दो। धराके दुःखोंका जलनिधिप्रभो ! पार करदो ॥
तुम्हारी ही आशा वश यह धरा जीवित रही। दया से आपीकी फिर यह बने भारत मही ॥ ५५ ॥
उसी के तत्त्वों से फलित अपना देह यह है। उसी की सेवा में उचित करना स्नेह यह है ॥
सदा से प्यारी थी प्रभुवर ! यही धर्म्मधरणी। दया है आपीकी सब विधि प्रभो ! दुःखहरणी ॥५६॥
जबतक जगती में जीवितात्मा हमारा। तबतक जननी के प्रेम की दिव्यधारा ॥
अविरत बहती हो चित्तमें भी हमारे। अभिलषित यही है दो हमें हे मुरारे ! ॥५७॥

कविकुमार पं० महेश्वरप्रसाद शास्त्री

साहित्याचार्य्य

आर्यसमाज और एक अध्यापक

नेटाल प्रान्त में मारित्स वर्ग नाम का एक प्रधान शहर है। इसी शहर में एक वेद धर्मसभा आर्यसमाजियोंने लगातार तीन चार वर्ष हुये तब सर्वसाधारणसे भिक्षा मांग कर बनाई थी। क्योंकि इस देश में जिसको भिक्षा मांगना न आता हो वह समाज में शीघ्र ही जाकर-इस हुनर में उत्तीर्ण हो जाता है। प्रायः एक प्रकार की जीविका समाजियोंने भिक्षा को ही ठीक कर लिया हैं। और जितनी सभाओं का जन्म यहां पर हुआ है, उन सबोंमें अधिकांश धन सनातनियोंने ही दिया हैं। उन्हीके दानसे आज अनेकों समाजियों के स्कूल चल रहे हैं। हमारे समाजी भाई बड़ी चालाकी से काम करते हैं, एक मातृभाषाका प्रचार करना इन्हें अच्छा बहाना मिलगया है, पर नाममात्र ही विद्या प्रचार करते हैं, यदि ऐसी२ चाल पट्टियोंको उपयोग न करें तो इनकी सभा में एक भी मनुष्य न जावे। इसी लिये तो यहां की हर एक सभा में प्रति रविवार को जब कि समाजी लोग एकत्रित होते हैं तो चाय तथा बिस्कुट और सिगरेटों से सत्कार होता है। इतना प्रलोभन देने पर भी समाजियो के हाथ मे अधिकांश नीच

जाति चमार कोरी ही अपना. सिर मुड़ाते हैं। शिक्षितों का तो समाज में पूरा अभाव सा है। झूठ बोलने में तथा बहकाने में यहां की समाज खूब ही समर्थ है। एक बात बड़ी श्रेष्ठ यह है कि चाहे महा मूर्ख क्यों न हो परन्तु आर्य समाज के रजिष्टर में जहां नाम लिखवाया कि उसी दिन समाज की महिमा से वह महाविद्वान् होगया। मैंने खुद हाविक की वेद धर्मसभा में एक चमार को मन्त्री देखा। और भी कई जगहों पर चमार ही सभा में उच्चासन पर विराजमान हैं क्योंकि उन्हें यज्ञोपवीत एक ही रुपया देने से मिल जाता है। इसी भेड़ियाधसान में गत वर्ष में एक दशरथ पांड़े जी भी गिर गये थे। हमारे पांड़े जी का जन्म इसी देश में हुआ था और बीस वर्ष की उम्र में आप श्री काशी क्षेत्र में जाकर हिन्दी पढ़कर तीन ही साल में इस लिये पीछे लौट आये कि समाजियों के स्कूल में अध्यापक बनकर खूब चैन की वंशी बजावेंगे। वास्तव में आपका विचार बहुत उत्तम था. और स्वदेश से शिक्षित होकर आने पर आप उसी दम सर्वोत्तम पाठशाला पी० एम० वर्ग को चुनकर उस में मास्टर बन बैठे। परन्तु इस पद पर बैठने में आपकी मन चाही इच्छा पूर्ण होने भी न पाई कि आप को समाजियों का अवैदिक मत मालूम हो गया। जूता पहिने हुए अछूत जातियों के बालकों को गायत्री मन्त्र का उपदेश देना, एवं मोचियों के आने पर उठ कर मस्तक नवाकर नमस्ते बोलना आप को कलंकसा प्रतीत हो गया था। तभी तो गत मास में बिना सूचना दिये ही आप ने पाठशाला से सदा के लिये अपना नाता तोड़ डाला।

पाठक वृन्द! मैं कल उक्त पांडे जी से मिला था और इस प्रकार निकल आने का कारण पूंछा तो पांड़े जी समाजियों की निन्दा करते हुए कहने लगे कि मुझे पूर्व यह न मालूम था कि दयानन्द के अखाड़े में जितने मनुष्य हैं वे सब के सब ही नास्तिक हैं। समाजियों ने मुझे पूरा धोखा देकर वेद धर्म का निरा बहाना बतलाया था, परन्तु कुशल हुई जो इनकी अधर्म पार्टी से ईश्वर ने हमको थोड़े ही काल में मुक्त कर दिया। इस सभामें असभ्यों का गुजरान हो सकता है। विद्वान् कभी भी इनकी मीठी २ बातों में आने के नहीं हैं। मुझे गुजरातियोंने जो कि इस मुल्कमें जूता बनाने का काम करते हैं इस प्रकार अपनी मूर्खता के भरे बचनों से सताया है कि मैं जीवन पर्यन्त न भूलूंगा। हमेशा मेरे को यही उपदेश समाजी लोग दिया करते थे कि तुम यथावकाश जा-जा कर सनातनियों को समाज में शामिल करने की कोशिश किया करो। परन्तु मैंने उनकी बातोंको न माना इस लिये वे मुझे कठोर शब्दों से भर्त्सना करने लगे। अन्त में अपनी खुशी से मैंने सभा को तिलाञ्जलि दे दी है"।

इतनी कथा उक्त अध्यापक जी से हमने सुनकर नोट की थी।

शिवशंकर दुबे।

विप्र निवेदन ।

(१)

विभवहीन हुए अब हे सखे !
सद् सुधर्म तजे तब क्या हुए ।
जगत्-पूज्य कभी तुम ही रहे,
अमिट गौरव खोकर क्या हुए ।

(२)

निगम आगम से नहिं प्रेम है,
सदुपदेश नहीं तब क्या हुए ।
वचनबद्ध रहे तब मान्य थे,
तज दिये तबसे अब क्या हुए ।

(३)

सब यही कहते द्विज शत्रु हैं,
सुमति खोकर के तुम क्या हुए ।
गुरु यही वह भारत देश है,
वरण आश्रम को तज क्या हुए ।

(४)

नहिं नियोग प्रचार करो कभी,
न तरु "शंकर" के फिर क्या हुए ।
कुछ बिचार करो सद्धर्म से,
गुरु रहे पहले अब क्या हुए ।

(५)

विपति से भयभीत न हो कभी,
धरम त्याग कहो अब क्या हुए ।
कवि महेश प्रभो न महेश है,
अहह ! माया लखो द्विज क्या हुए ।

उपाध्याय-महेशदत्त शर्मा

वर्तमान युगमें भूत विद्याका प्रारम्भ।

("मस्ताना जोगी" शहर फ़ीरोज़पुर के दिसम्बर के अङ्कसे अनूदित.)

कालचक्र के कारण लुप्तप्राय होकर यह विद्या एक नए रूप में अमेरिका देशमें ५१ वर्ष हुए कि पुनरुज्जीवित हुई है। हमारे पूर्वजों और साधुओं को यह विद्या प्रकारान्तर से ज्ञात हुई थी किन्तु हम इस समय यह बताते हैं कि अमेरिका में इसका प्रारम्भ क्योंकर हुआ।

सन् १८४२ ई० में अमेरिका के न्यूयार्क नगरके एक मुहल्ले में फ़ाक्स नामक एक अंगरेज ने एक घर किराये लिया। घर तो अति विशाल और सुन्दर था पर लोग उसमें भूत प्रेतों का निवास बताते थे अतएव कोई उसके निकट न जाता था और न कोई उसे किराये पर लेता था। जब मिस्टर फ़ाक्स मकान किराये लेकर उसमें रहने लगे तो स्थान २ पर नाना प्रकार के शब्द सुनाई देने लगे। पहले तो मि० फ़ाक्सने सोचा कि कदाचित् कोई मूषकादि होगा पर दो ही चार दिन में ऐसा प्रतीत होने लगा मानों बहुत से मनुष्य घरमें चल फिर रहे हैं। फ़ाक्स साहब के दो पुत्रियां भी थी एक सातवर्ष की और दूसरी दश वर्ष की। एक दिन उनकी माता ने देखा कि बड़ी लड़की के पैर पर एक बहुत बड़ा कुत्ता बैठा है पर जब वह उसके पास गई तो वह वायु में अदृश्य होगया और फिर मेज़ कुर्सियों पर उछलने कूदने लगा। दिनोंदिन खटखट का शब्द अधिक होने लगा और कभी २ ऐसा भी लगता मानों कोई किवाड़ों में धक्का मारता है पर द्वार खोलकर देखने से कुछ दीख न पड़ता और द्वार बन्द करने पर फिर वही शब्द होता। पड़ोसियोंकी सहायतासे फ़ाक्स साहबने घरके चारों ओर पहरा बिठा दिया लेकिन शरारत में कोई फ़र्क न हुआ। लड़कियां जब २ करतलध्वनि करतीं तभी कोई उत्तर में ताली बजा देता जब बोलतीं तब वही बात दोहरा देता। इन बातों से लोग इस अर्थ को पहुंचे कि शरारत करने वाला लड़कियों की बातें अवश्य समझता है अतएव लड़कियों द्वारा कहलाया गया कि तुम जो कुछ कहना चाहते हो वह कह दो। हम लोगों की बात यदि समझ लो तो एक बार "खट" कर दो यदि न समझो तो दो बार यदि तीन बार "खट" करोगे तो हम समझलेंगे कि तुम कुछ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते हो जो इतनी बार शरारत कर चुका था उसने उत्तर में केवल एक बार "खट" कर दिया मानों यह कहा कि यह बातें मुझे अच्छी लगती हैं।

तब इन लोगोंको चिन्ता हुई कि और बातें इनसे किस प्रकार करें। तदनन्तर यह उपाय सूझा कि अंगरेज़ी वर्णमालाको इनके सामने पढ़ा जावे निदान जिस वर्ण पर

खटका हुआ वही लिख लिया एव (तार के नियमोंके सदृश) शब्द और वाक्य बनाए इस प्रकार सब अर्थ जान लिया। उस व्यक्तिके आत्मा (अर्थात् भूत) ने कहा कि "तीसवर्ष हुए जब मैं बहुत सा धन लेकर इस घरमें आया था उस समय बेलनामक एक मनुष्य यहां रहता था और उसकी आयु ३१ वर्षकी थी एक दिन मङ्गलवार को आधीरात के समय उसने मेरी हत्या कर के मेरा सब माल ले लिया। उस दिन घरमें और कोई न था दूसरे दिन सवेरे तहखाने में दश फ़ीट नीचे पृथ्वी में मेरे शव को गाड़ दिया।

सब लोगों ने जाकर तहखाने को खोला। मिट्टी हटने से (इस बात की पुष्टिमें) बहुत सी नरास्थि वहां मिली। बेलनामक मनुष्य वहांसे दूर स्थान में रहता था उसे वहां लाए। उसने शपथ की कि मैं निर्दोष हूं मैं यह कुछ नहीं जानता। उसने अपनी सफ़ाई की गवाही स्वयं दी थी अतः उसके विरुद्ध कोई प्रमाण न मिलने से वह छोड दिया गया।

निदान उसी दिनसे भूतविद्या की चर्चा अमेरिका में होने लगी। अनन्तर यह भी सिद्ध हुआ कि फाक्स की लड़कियों के अतिरिक्त अन्य पुरुषों और स्त्रियोंके समक्षभी इसी प्रकार के शब्द और विचित्र घटनायें होती हैं। इसी समय में रटलैण्ड प्रान्तके चिट्‌पेण्डन नगरमें एक कृषकघराने में भूतात्मायें नाना घटनाएं करती और सामने आती थीं। अमेरिका के मुख्य २ समाचारपत्रों ने बड़े २ विद्वान् सम्वाददाताओंको इन बातों के सत्यासत्य का निर्णय करने को वहां भेजा था। उन सब ने वहां जाकर इन बातों के प्रत्यक्ष प्रमाण दिये।

मेरे मस्ताना जोगी के प्रिय पाठको! आप इन बातों को अनावश्यक न समझें। मैं देशान्तर की भूतात्माओंके सम्बन्धमें अभी बहुत से प्रमाण आपके सामने रक्खूंगा जिन (अन्य देश वालों) के अनुयायी होना नई रोशनी वाले अपना परम धर्म समझते हैं। इसी कारण मुझे आवश्यक जान पड़ा कि अपने धार्मिक सिद्धान्तों और उपदेश को अन्य देशीयों के द्वारा समर्थित कराके आप के धर्म की सत्यता की मुहर आपके हृदयों पर लगा दूं कि जिनसे आप इस समय अविश्वासी हो रहे हैं।

अनुवादक—इस समय प्रायः थियासोफी, राधास्वामी आदि सभी मतों वाले भूत विद्या में विश्वास करते हैं। अविश्वास आर्य समाजियों जैसे हठ धर्मियों को ही होता है। कितने तो मेस्मरिज़िम आदिको प्रत्यक्ष देखकर भी नहीं मानते॥

श्री रघुवर मिट्ठलाल श्रीवास्तव्य वेदान्ततीर्थ,
बी० ए० क्लास, के० पी० कालेज प्रयाग

हे नाथ! भारतेश्वर

[ले० पं० जगन्नारायणदेव मिश्र "कविपुष्कर" रामनगर]

(शार्दूल विक्रीडित वृत्तम्)

(१)

हे हे नाथ! हरो अपार विपदा, आनन्द सम्प्राप्त हो।
पीवैं शान्ति फुजै रहैं सुमन से, लक्ष्मी सुपर्याप्त हो॥
नाना कार्य करें लगाय बल को, सच्चा हमें ज्ञान हो।
सारी देश कुरीतियां विलग हों, देशोन्नती ध्यान हो॥

(२)

वेदों का सुप्रचार हो मनुज में, सत्प्रेम आधार हो।
ऐसी मोदित लालसा प्रकट हों, देशस्थ व्याहार हो॥
माता भारत भूमिजन्म पद को, ध्याया करें चित्त में।
सीधा मार्ग दिखा स्वदेशजन को, कल्याण हो चित्त में॥

(३)

थे कैसे अब क्या हुये तनिक तो, लावैं प्रभो! ध्यान में।
ज्ञानोद्गार प्रकाशिये हृदय में, दो मुक्ति सम्मान में॥
किंकर्त्तव्यविमूढता विघट दें, जो हैं निकम्मे बने।
कोई भीरु कहै न नाथ! अब से कर्मण्यता को ठनें॥

(४)

शिक्षा भारत की लहै सफलता, उद्योग सम्भारि लें।
फैलावें फिर भारतादि महिमा, ऐसा हिये धारि लें॥
प्राणाधार! रमेश! भारत प्रभो! जो वस्तुतः राम हो।
कीजै दृष्टि कृपा सुहिन्द अधुना, विद्या कला धाम हो॥

(५)

भिक्षा से प्रति पालना दुखद है, सो आज ही छोड़ दें।
हां मैं हूं कहना कदापि न पड़े, झूंठे तिन्हें होड़ दें॥
मिथ्या भाषण में न चित्त उमहैं, सत्यार्थ व्यौहार हो।
सत्यासत्य विचार कार्य सुलझैं, औ सत्य आचार हो॥

(६)

छोड़े छेद प्रपञ्च देश भर में, आ एकता में बधें ।
मेली हो इक एक के गर लगें जो कार्य सारे सधें ॥
पूरे भक्त बनें स्वदेश जन मे, चीन्हें पुरातत्त्व को ।
हे विश्वेश ! दिनेश ! लेश हमको, आदेश दे सत्त्व को ॥

तीर्थराज प्रयाग में

सनातनधर्मका संयुक्त सम्मेलन ।

श्रुति स्मृति पुराण प्रतिपादित सनातनधर्म के परम पवित्र और लोकोपकारी सिद्धान्तों का भारतवर्ष में उचित प्रचार तथा व्यवहार दृढ रखने के उद्देश्य से देश में चिरकाल से समय २ पर आन्दोलन होता चला आया है, और कई धर्मसंस्थाए समय २ पर स्थापित हुई हैं। इसी उद्देश्य से सं० १९६२ के कुम्भ के अवसर पर तीर्थराज प्रयागमे सनातन धर्म महासभा बडे समारोहके साथ एकत्र हुई थी। महा सभा ने उस समय दो कार्यों को विशेष रूप से कर्तव्य निश्चित किया था। पहिला यह कि हिन्दू धर्म और जातीयता की रक्षा और वृद्धिके लिये पुण्यक्षेत्र काशी मे एक "विश्वविद्यालय" स्थापित किया जाय, और दूसरा यह कि सनातन धर्म शास्त्र के समुद्र से एक ऐसा ग्रन्थ सगृहीत किया जाय जो सर्वसाधारण मे धर्म की शिक्षा और धर्म के साधन में सहायक हो। ईश्वर के अनुग्रह से इन दो बडे उद्देश्यों में से पहिले मे महासभा को सफलता प्राप्त हुई है। काशी में विश्वविद्यालय स्थापित हो गया है और वहां सनातनधर्म के भाण्डाररूपी शास्त्र-समूह के पढ़ने पढ़ाने का प्रबन्ध हो रहा है। दूसरे कार्यके विषयमे महासभा होनेके समय "सनातनधर्म-सग्रह" नामक ग्रन्थ प्रस्ताव रूप में प्रकाशित किया गया था। सभा होने के उपरान्त सभा के मन्त्रीके निवेदन पर विद्वन्मण्डली-मण्डन चिरस्मरणीय पडित उमापति शास्त्रीजी महाशयने अनेक वर्ष परिश्रम कर "सनातनधर्मोद्धार" नामक अत्युत्तम ग्रन्थ संस्कृत में लिखा, और उसका भाषानुवाद भी कर दिया। इस ग्रन्थरत्न के दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं और आशा है कि दो भाग भी शीघ्र प्रकाशित हो जायगे। महासभा के संचालकों को खेद है कि इस विभागमें वे अपना कर्तव्य अब तक पूरा नही कर सके किन्तु वे आशा करते है कि विश्वविद्यालय के स्थापित होजाने से वे अब इस विषय मे अधिक सेवा कर सकेंगे।

संवत् १९७२ में श्रीहरिद्वार में महाकुम्भ का सुयोग था। इसलिये धर्मप्रचार की आवश्यकता को विचार कर संवत् १९७० के माघ मास मे महासभाके वार्षिको-

स्मत में यह निश्चित हुआ था कि कुम्भके समय श्रीहरिद्वारमें सनातनधर्मियोंका एक सम्मेलन हो। श्रीमान् महाराजा बहादुर दर्भंगा ने भी इस प्रस्तावके साथ सहानुभूति प्रगट की, और भिन्न २ प्रान्तोंकी सभाओंने इसका समर्थन किया। उस निर्णय के अनुसार संवत् १९७२ में कुम्भ के समय पतितपावनी भगवती भागीरथी के तट पर श्रीहरिद्वार क्षेत्र में "अखिल भारतीय सनातनधर्म महासम्मेलन" का अधिवेशन बड़े समारोह के साथ हुआ। सम्मेलन की सफलता से प्रसन्न होकर श्रीमान् महाराजा काश्मीर नरेश ने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन प्रतिवर्ष होना चाहिये और सम्मेलनमें इकट्ठे हुए सज्जनों ने उस का समर्थन किया। उसी प्रस्तावके अनुसार सम्मेलनके दो महाधिवेशन क्रमशः भगवान् श्रीकृष्णकी लीलाभूमि श्रीमथुरापुरी और पंजाबकी राजधानी लाहौर में भारी धूमधाम से हुए। इन तीनों उत्सवोंसे धार्मिक सज्जनोंको बहुत सन्तोष हुआ, साम्प्रदायिक एकता का शुभ विचार कार्य्यमें परिणत हुआ, बम्बई और बिहार में "प्रान्तीय सम्मेलनोंकी योजना हुई, लाहौरमें "सनातनधर्म कालेज" की स्थापना हुई सम्मेलन के कार्यकर्त्ताओं ने भारत के सब प्रान्तों में भ्रमण कर धर्मका उपदेश और प्रचार किया। अब इस वर्ष तीर्थराज प्रयाग में माघ मास में फिर महाकुम्भका सुयोग है। उस अवसर पर सनातनधर्म महासभा का अधिवेशन वहां होना निश्चित है। महासभाके ही एक उत्सवमें श्रीहरिद्वार में सम्मेलन का प्रस्ताव हुआ था, और उसीके अनुसार महासम्मेलन का कार्यारम्भ हुआ था; महासम्मेलन और महासभा का एक ही उद्देश्य और एक ही कर्त्तव्यपथ है। इस कारण इस वर्ष इन दोनों का सम्मिलित महाधिवेशन भगवती गङ्गा और यमुना के पवित्र संगम पर होगा। यह संयुक्त महाधिवेशन गुरुवार माघ कृष्ण ११ से बुधवार माघ शुक्ल २ (७ फर्वरी से १३ फर्वरी) तक होगा। समस्त सनातनधर्म सभा, सनातनधर्ममण्डल, प्रान्तीय धर्ममण्डल और सनातनधर्म संस्थाओंसे निवेदन है कि वे अपने योग्य से योग्य प्रतिनिधियोंके द्वारा महाधिवेशन में सम्मिलित होकर धर्म की रक्षा और उन्नतिमें सहायक हों।

इस सम्बन्धमें सब प्रकारका पत्रव्यवहार मन्त्री, सनातनधर्म, महासभा, भारतीभवन प्रयाग, के पते पर होना उचित है।

निवेदक { मदनमोहन मालवीय । दीनदयालु शर्मा ।

नोट सनातनधर्म महासभा और सम्मेलन के संयुक्त अधिवेशन के सिवाय इस प्रयागराज के कुम्भपर्व पर संस्कृत साहित्य सम्मेलन का भी पञ्चम अधिवेशन होगा, संस्कृत साहित्य सम्मेलन की बैठकें मेयो हाल में १२ और १३ फरवरी सन् १९१८ को होंगीं। इन अधिवेशनों में सभी संस्कृतज्ञ विद्वानों को सम्मिलित होना चाहिये अपने २ आने की सूचना मन्त्री संस्कृत साहित्य सम्मेलन स्वागत कारिणी समिति दारागंज प्रयाग को देनी चाहिये।

आर्यप्रतिनिधि सभा यू० पी० के नाम शास्त्रार्थ का खुला चैलेंज ।

आर्यसमाज और सनातनधर्म सभाओं में अब तक बहुतसे शास्त्रार्थ हुए, परन्तु बहुत सा धन और परिश्रम व्यय करनेपर भी अब तक कुछ परिणाम नही निकला, क्योंकि आर्यसमाजी सर्वथा पराजित होने पर भी दूसरे दिन समाजी पत्रों में अपनी विजय छपा देते हैं। दूसरी बात यह है कि सनातनधर्मसभाओं में जब तक बाहर के विद्वान् उपस्थित रहते हैं, तब तक आर्यसमाजी मौन बैठे रहते हैं, और विद्वानोंके विदा होते ही शास्त्रार्थका कोलाहल मचाते हैं। तीसरी बात यह है कि भिन्न२ स्थानों मे शास्त्रार्थ होने से सभाओं का बहुतसा रुपया व्यर्थ व्यय होजाता है। और भी ऐसे ही अनेक कारण हैं जिनका विचार कर हमने यह निश्चय किया है कि मेरठ में एक बड़े शास्त्रार्थ का प्रबन्ध किया जावे, वह शास्त्रार्थ लेखबद्ध होना चाहिये। आशा है कि आर्यसमाज की प्रतिनिधिसभा इस खुले चलैंज को अवश्य स्वीकार करेगी, और नियमादि निश्चित करके शास्त्रार्थ के लिये उद्यत हो जावेगी। यदि प्रतिनिधिसभा ने इस को स्वीकार न किया तो सदा के लिये आर्यसमाजियों की पराजय समझी जायगी और फिर किसी आर्यसमाज का किसी धर्मसभा को शास्त्रार्थ के चैलेंज देने का कोई अधिकार न होगा। जिस पत्रमें इसका उत्तर छपाया जाय उसकी एक कापी नीचे लिखे पते पर अवश्य भेजने की कृपा करें। शास्त्रार्थ निम्नलिखित विषयों पर होगा॥

१—आर्यसमाज वेदोक्त मत है वा वेदविरुद्ध।

२—स्वामी दयानन्द ऋषि महर्षि थे या नही।

३—नियोग श्रेष्ठधर्म है वा पशुधर्म।

४—विधवा विवाह वेदोक्त धर्म है या वेदविरुद्ध और वह द्विजातियों में होसकता है या नही।

५—वर्णव्यवस्था जन्म से है या कर्म से।

६—ईश्वर निराकार साकार दोनों है या केवल निराकार।

७—श्राद्ध मृतपितरों का होना चाहिये या जीवित माता पितादि का।

आवश्यक होने पर अन्य विषय भी इस सूची में सम्मिलित होसकेंगे।

निवेदक—

अवधबिहारीलाल बी० ए० एल० एल० बी० वकील हाईकोर्ट,

महामन्त्री श्री सनातनधर्मयुक्तप्रदेशमण्डल प्रधानकार्यालय मेरठ शहर।

सहयोगियों के विचार।

वर्णाश्रमधर्म पर आघात

भारतीय सोशल कान्फ्रेंस का जो अधिवेशन पिछले दिसम्बर मास में कलकत्ते में हुआ था उसके सभापति प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर पी० सी० राय ने अपने भाषण में वर्त्तमान अधोगति का मुख्य कारण यहां के जाति भेद तथा वर्णाश्रम धर्म को बताया। आपने कहा कि इस जाति भेदके कारण ही हमारे देशमें इस समय 'स्वराज्य; के इतने विरोधी दीख पड़ते हैं। जो लोग निम्न जातिके कहे जाते हैं उन्हें इस बात का भय है कि स्वराज्य प्राप्त होने पर उच्च जाति के लोग ही उससे लाभ उठावेंगे। इस वर्णाश्रम धर्म के कारण ही देश में मूर्खों की संख्या इतनी बढ़ी हुई है। क्योंकि ब्राह्मण जाति शूद्रों को लिखने पढ़ने नहीं देती। अतएव जिस प्रकार जापान ने अपने यहां का जातिभेद उठा दिया है उसी प्रकार हिन्दुओं को भी चाहिये कि वह अपने यहांका वर्णविभाग तोड़ दें। जाति भेदको उठाने के पक्ष में डाक्टर साहब ने इसी प्रकारकी दलीलें पेश की हैं। उनकी इन दलीलों पर कुछ भी विचार करने से पता लग जायगा कि उनका कथन कहां तक युक्तिसंगत है। पहिली बात स्वराज्य के विरोधियोंके सम्बन्ध में है। जिन लोगों को इस बातका भय है कि स्वराज्य मिलने पर उच्च जाति के लोगों को विशेषतः ब्राह्मण जाति की प्रधानता बढ़ जायगी, उन के सम्बन्ध में हमारा कहना है कि सामाजिक स्थिति का उन्हें कुछ भी ज्ञान नहीं है। प्राचीन समय में ब्राह्मणों का प्राधान्य इस लिये था कि वे विद्वान् तथा स्वार्थ त्यागी होते थे और सदा परोपकार तथा देश सेवामें लगे रहते थे। आज भी यही बात है ब्राह्मण से भिन्न वर्ण होने पर भी जो लोग अपना तन मन धन सार्वजनिक सेवा के लिये उत्सर्ग करते हैं उनका आदर सन्मान प्राचीन समय के ऋषि मुनियों के तुल्य ही होता है। महात्मा गांधी इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

देश में जो मूर्खता फैल रही है इसके उत्तरदायी ब्राह्मण नहीं हैं। क्या राजा भोज और विक्रमादित्य के समय ब्राह्मणों की प्रधानता नहीं थी तो फिर क्या कारण है कि उस समय कोई भी व्यक्ति निरक्षर नहीं था। इधर कई सौ वर्षों से ब्राह्मणों की प्रधानता बिलकुल नहीं है। समाज के ऊपर उनका कुछ भी शासन नहीं रहा विद्यादान का अधिकार भी उनके हाथ से जाता रहा। छापाखाना तथा स्कूल कालेजों की वृद्धि होनेके कारण लोगोंको पढ़ने लिखने का बहुत कुछ सुभीता मिल गया है तो भी जनसाधारण में मूर्खता तथा अज्ञान अब तक बना ही है यह आश्चर्य्य की बात है। बताइये इसमें ब्राह्मणों का क्या दोष।

एक बात और डाक्टर पी० सी० राय कहते हैं कि वर्णाश्रम धर्म बहुत बुरी प्रथा है और इससे हिन्दुओं का पिण्ड जितना शीघ्र छूटे उतना ही अच्छा है। बहुत खूब किन्तु कोई समाज सुधारक इसके गुप्त रहस्य को बतावेगा कि हिन्दूजाति, हिन्दूधर्म तथा हिन्दुस्थान पर सदियों से वैदेशिक आक्रमण होते रहे, तौभी हिन्दूजाति अबतक जीती जागती संसार में खड़ी है इसका कारण क्या है? विदेशियों की बात तो जाने दीजिये, राजा राममोहनराय के समय से लेकर आजतक अपने ही देश के कितने ही लोगोंने हिन्दुओं के जातिभेद को नष्ट करने में कोई उद्योग बाकी नही छोडा; तथापि हिन्दुओं का वर्णविभाग अभी तक बना ही हुआ है। जिन लोगों ने इसे तोड़ने का उद्योग किया उनका एक दल अलग। कायम हो गया किन्तु जातिभेद का कुछ भी नहीं बिगड़ा। इसी से पता लगता है कि इस जाति भेद की प्रथा में कोई ऐसी शक्ति विद्यमान है कि जिसके द्वारा यह प्रथा समय २ पर अपने विरुद्ध होने वाले आक्रमणों और आन्दोलनों का मुकाबला करती हुई अब तक सुदृढ बनी है। डाक्टर राय विज्ञानवेत्ता हैं क्या वह अपने अनुसन्धान के द्वारा यह बता सकते हैं कि वह शक्ति क्या है?।

वह इस वर्णाश्रम धर्म का ही प्रताप है कि भिन्न २ धर्मावलम्बी विजेताओं के लाख उद्योग करने पर भी हिन्दू जाति उन मे मिल नही गई किन्तु उस का व्यक्तित्व तथा प्राचीन स्वरूप अब तक कायम है। यदि वर्णाश्रम धर्म नहीं होता तो आज हिन्दू जाति का पता भी नहीं लगता। यह इस देश के नवागत लोगों मे मिल जुल कर एक नवीन जाति बन गई होती। अतएव कहना पड़ता है कि वर्णाश्रम धर्म की रक्षा से हिन्दू जाति की रक्षा हुई है अतः उसके नाश से हिन्दू जाति-हिन्दूराष्ट्र-का नाश हो जायगा।

(मिथिला मिहिर)

नियोग और समाजी महात्मा।

घास, मांस, कालेज और 'परकाश,' आदि को लेकर अब तक आर्य समाज की कई पार्टियां हो चुकी हैं। अब देखते हैं कि नियोग के प्रश्न पर भी समाजियों में भारी मतभेद पैदा हो गया है। संन्यास धारण करने के पूर्व तो हमारे समाजी महात्मा ला० मुन्शीराम जी भी नियोग के पूर्ण पक्षपाती थे, परन्तु संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के पश्चात् इस विषय मे स्वा० श्रद्धानन्द जी की राय एक दम कलाबाजी खा गई है। अब आप नियोग का पूर्ण विरोध करने लगे हैं। इस पर लाहौर का सनातनधर्मावलम्बी उर्दू पत्र "अखबारे आम" कहता है कि "यह शायद सन्यास लेने का माहात्म्य है कि इनकी आखें खुली और आप यह कहने पर मजबूर हुए कि

नियोग 'आर्यों, के लिये नहीं हैं और न शरीफ लोगों को इसकी जरूरत है। यहां तक तो खैरियत थी कि आप नियोग से मुनकिर हो गये लेकिन इसके अलावा वे यह भी लिखते हैं कि नियोग पौराणिक लोगों अर्थात् सनातनधर्मावलम्बी हिन्दुओंके लिये है"।

धन्य हो महात्मा! नियोग की गन्दगी अपने समाज में तो फैला चुके अब बेचारे सनातनधर्मावलम्बी समाज को अपने साथ ले डूबने का विचार किया है इस पर "अख़बारे आम" यह बहुत ठीक कहता है कि सनातनधर्मावलम्बी दुनियां तो आपके नियोगके मसले पर शुरूसे लानत भेजती आई है और वह बराबर कह रही है कि नियोग साबित करने के लिये जो मन्त्र आप के स्वा०दयानन्द जी ने दर्ज किये हैं वह बिलकुल एक अनोखी किस्मका धोखा है। अब ला०मुंशीराम साहब इस नियोगके खोटे पैसे को अपनी पोटली में से निकालकर सनातनी हिन्दुओं के पास क्यों भेजते हैं? यह आप को ही मुबारक रहे। जिस समाज में गुलाम हैदर सत्यदेव और अब्दुलगफूर धर्मपाल बनाये जा सकते हैं उसमें नियोग की भी समाई हो सकती है। सनातनधर्म के दूध में इस कांजी की खपत नहीं है। "महात्माजी की राय इस प्रकार बदलने से समाजी तवेले में बड़ी ले दे मच गई है परन्तु हमारा विश्वास है कि आर्यसमाज के विचारवान् दूरदर्शी लोग इस विषय में स्वा० श्रद्धानन्दजी के मतका ही समर्थन करेंगे और यही होना चाहिये। (श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार)

मस्तराम का सन्देह।

मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मण अगर छोटी उमरका भी हो तो भी क्षत्रिय और वैश्य उसको पिता के तुल्य समझें। पं० इन्द्र और हरिश्चन्द्र इन दोनों ने गुरुकुल कांगड़ी की विद्वत्सभा में ब्राह्मणत्व की परीक्षा देकर ब्राह्मण होनेका सार्टीफिकेट हासिल किया है। किन्तु म० मुन्शीरामने न तो ब्राह्मणत्वकी परीक्षा दी और न उस को ब्राह्मण होने का सार्टीफिकेट ही मिला। इसलिये महात्मा जी अब तक वैश्य बना हुआ है। इसपर मस्तराम पूंछता है कि जहां ऐसा झगड़ा आ के पड़े वहां मनुकी कही हुई पिता पुत्र की व्यवस्था कैसे की जाय। अगर कोई गुरुकुल का स्नातक इसबात का निर्णय शास्त्रानुसार कर देवे तो उसको पक्का आर्यसमाजी होने का खिताब स्वा०श्रद्धानन्द से हम दिला देवें। (सिन्धु समाचार)

आर्यसमाज और शुद्धि।

आर्यसमाजी लोग समय२ पर किसी भूले भटके ईसाई व मुसलमान को अपने में मिला के समाचारपत्रों में हल्ला मचाया करते हैं कि हमने एक विधर्मीको वेदानुयायी बनाया। लेकिन ये विधर्मी आर्यसमाज में क्यों आते हैं इसका मतलब हमारे आर्य भाई इन स्वधर्मत्यागी नवीन वेदानुयायियों से कई बार ठगे जाकर भी अब तक नहीं समझे; इन बनावटी वेदानुयायियों के हाथसे ही लेखराम जैसे बहादुर का खून हुआ।

एक वैदिक धर्म पर मोहित होने वाले महात्मा धर्मपालने अपने धर्मपिता मुंशीराम को जिस तरह आसमानके तारे दिखाये वह किसी से छिपा नहीं लेकिन इतनी चोटें खाने पर भी आर्यसमाजियों की अकल ठिकाने नहीं आई। अबतक भी वे मुसलमानोंको अपने मे मिलाके शुद्ध हिन्दू जाति को वर्णसङ्कर बनारहे हैं अब एक और मुसलमान को काशी के आर्यसमाजने शुद्धि की मेशीन में डाल आर्य बनाना चाहा था। परन्तु उस शुद्ध हुए आर्यमहाशय ने जैसी वैदिकधर्म की उन्नति की उसका समाचार लाहौर का "अखबारे आम" इस प्रकार देता है। "बनारस के आर्यसमाज ने एक मौलवी गुलाम हैदर नामी मुसलमान को शुद्ध करके आर्य बनाया था; जिसका नाम सत्यदेव रक्खा गया। सत्यदेव ने दिवाली के दिन काशीमें एक ऐसी हिन्दू लड़की के साथ शादी रचाई जो थोड़े रोज से व्याही हुई थी और उसका शौहर स्कूल मे तालिब इल्म था, मगर म० सत्यदेवने गरीब लडकीको फुसलाकर उस को अपने पतिसे फारखती दिलवाई। जब यह मामला आर्यसमाजके अन्तरङ्ग सभा मे पेश हुआ तो उस ने एक रेज्यूलेशन के द्वारा म० सत्यदेव को शादी से बाज रखने की कोशिश की मगर उस ने न माना अन्तमें वहांकी समाजने सत्यदेव को बुलाकर के भी समझाया और व्याह करादेने का दो मास में वादा भी किया पर इस का भी कुछ असर नही हुआ। एक मासूल हिन्दू लड़की म० सत्यदेव ने हाथ में कर रक्खी है। इस वृत्तान्तको पढ़कर कौन ऐसा कमवख्त हिन्दू होगा जिसको अपनी कौमकी हालत पर ठण्डी आह न भरनी पड़े। इन समाजियों की शुद्धि क्या हुई, गोया अविवाहित मुसलमानोंकी शादी करानेका कण्ट्रक्ट हुआ। जब ये लुच्चे लफंगे मुसलमान अपनी शादीका ठिकाना नहीं देखते तब शादीके लोभ में दयानन्दी झण्डेके नीचे आ जाते हैं, किन्तु शादीमें थोड़ासा विघ्न पडते ही इनका वैदिक प्रेम काफूर हो जाता है खबर नही ऐसे लफंगोंकी भरती कर आर्यसमाज कौन से आसमानमें उडना चाहता है। क्या किसी विवाहित कन्याको उसके पतिसे छुडाके अपने कब्जे में करना भी स्वा० दयानन्द का सिद्धान्त है ॥ —— (सिन्धु समाचार)

साहित्य-चर्चा

वर्णव्यवस्था। श्री पं० कालूराम शास्त्री मिलने का पता—पं० कामताप्रसाद दीक्षित अमरौधा (कानपुर) मू० ।।।)

इस पुस्तक में १-प्रमाध्याय २-उपनयनाध्याय ३-विज्ञानाध्याय ४-वैदिकाध्याय ५-इतिहासाध्याय और ६ ठा तर्काध्याय है इन सभी अध्यायों में विविध प्रमाण और युक्तियों से वर्ण व्यवस्था को जन्माधीन प्रतिपादित किया है। साथ ही उन तर्कों और आक्षेपों का उचित समाधान भी किया है जिन्हें आ० समाजी आदि विधर्मी

करते हैं इस पुस्तक के टाइटिल में यह भी घोषित किया गया है कि इस पुस्तक का विद्वत्तायुक्त खण्डन करने वाले को १०००) इनाम दिया जायगा। पुस्तक की छपाई सफाई सुन्दर है।

गौड़ ब्राह्मणवंशेतिवृत्तम् । ब्राह्मण जाति के इतिहास रूप से इस ग्रन्थ को पं० परशुराम शास्त्री अम्बाला निवासी लिख रहे हैं यह पुस्तक का प्रथम भाग है इसमें ७१ पृष्ठ (भूमिका आदि को छोड़कर) हैं यद्यपि नाम से यह पुस्तक केवल गौड़ ब्राह्मणों का ही इतिवृत्त परिचायक मालूम होती है पर इसका उत्थान सम्पूर्ण ब्राह्मण जाति के इतिहास शोधनार्थ ही हुआ है इस में ब्रह्मावर्त्त को ही ब्राह्मणों का आदि निवास स्थान माना है। इसमें ब्राह्मणों के गोत्र और प्रवर तथा उनके अवान्तर भेदों के नाम और स्थान भी दिये गये हैं। पर इतिहास का मुख्य तात्पर्य वर्त्तमान-समय के प्रचलित भेदों का रहस्य निरूपण करना होना चाहिये था उसका इसमें अभाव सा है देशिक भेद कब २ क्या २ किन २ के क्यों हुए इन बातों को खोज के साथ लिखना चाहिये था। केवल नाम लिख देने से पुस्तक विशेष महत्त्व की नहीं हो सकती, संभव है आगामी भागों को लिखने समय हमारी इस उचित सम्मति पर ध्यान दिया जायगा। सन्दिग्ध जातियों को भी इस पुस्तक में ब्राह्मण लिखा गया है इस विषय पर गम्भीर विवेचन करना चाहिये था, पुस्तक प्रारम्भ में शेखूपुराधीश राजा फतहसिंह जी शर्मा गौड़ का एक चित्र भी है। पुस्तक उपर्युक्त पते से मिलेगी।

भजन-तरङ्ग । निर्माता चतुर्धरी रूपसिंह त्रिपाठी मिलनेका पता बकेवर जि० इटावा मू० ।=)

यह पुस्तक भगवद्भक्ति तथा नाना प्रकार के शिक्षा पूर्ण भजनों में बनाई गई है पुस्तक का उद्देश्य सुन्दर है। भजन यद्यपि प्राचीन ढंग के हैं पर उन में मनोरञ्जन की मात्रा यथेष्ट है।

श्री सत्यनारायण कथा । फर्रुखाबाद निवासी स्वामी भागीरथ जी वैद्यने इस पुस्तक की रचना की है सत्यनारायण कथा प्रसिद्ध है और प्रायः शुभावसरों पर हिन्दुओं में यह कथा होती है कथावाचक पण्डितों को दक्षिणा दी जाती है और उपस्थित जनों को प्रसाद दिया जाता है ऐसी ही इस कथा की रचना हरिगीतिका छन्दोंमें उक्त वैद्य जी ने कर डाली है अच्छा ही है अब सभी लोग बिना कथा कराये ही इस कथाको जान लेंगे। भाषा नई और पुरानी का इस में सम्मिश्रण है कविताका नमूना—

योगीश नारद एकदा शुभ, कर अनुग्रह कामना। अति भ्रमणकर नरलोकमें वे आगये जहां दुःख घना॥
अति दुःखसे युत देख सबको, प्राप्त चिन्ता हो गई। हे ईश कैसे नष्ट हो यह पापकी गति नित नई॥

पुस्तक डाकव्यय भेजदेने से विना मूल्य मिल सकती है मिलने का पता—पं० भागीरथ स्वामी वैद्य फर्रुखाबाद वाले चोराखाना देहली।

श्रीसनातन हिन्दुधर्म पाठमाला। यह उक्त माला की प्रथम मणिका है रचयिता श्री नगीनदास पुरुषोत्तमदास सघवी अहमदावाद निवासी तथा प्रकाशक नारायण जी पुरुषोत्तम सांगाणी चाइना बिल्डिंग भिण्डी बाजार बम्बई हैं मू० ≈)॥ अधिक है पुस्तक में सनातनधर्म के विशेष २ सिद्धान्तों की प्रश्नोत्तर रूप में व्याख्या की गई है पृष्ठसंख्या १६ है भाषा गुजराती है॥

कर्मवीर गान्धी का उपदेश। कर्मवीर गान्धी ने गुजरात की राजनीतिक परिषद् में सभापतिरूप से जो व्याख्यान दिया था वही इसमें उद्धृत किया गया है। यह व्याख्यान साप्ताहिक भारत मित्र मे भी निकल चुका है। पुस्तक के प्रकाशक गोपीनाथ गुप्त हैं मू० ⁻) आना और मिलने का पता गुप्ता कार्यालय इटावा यू० पी० है। पुस्तकमें भारत की उन्नति के सम्बन्धमें सर्वाङ्गीण विचार किया गया है। गुप्त महाशयको (जिस पत्रसे व्याख्यान उद्धृत किया हो) उस पत्रका नाम देना चाहिये था।

भारत स्वराज्य क्यों चाहता है? । यह पुस्तक भी गुप्ताकार्यालय इटावा से प्रकाशित हुई है मू० ⁻) है सर विलियम वेडरवर्न ने किसी विलायती पत्र में भारतीय प्रश्नोत्तरी छपाई थी उस का हिन्दी अनुवाद अभ्युदय में निकल चुका है प्रस्तुत पुस्तक अभ्युदय से उद्धृत की गई है इस में सर विलियम वेडरवर्न की संक्षिप्त जीवनी भी है। पृष्ठसंख्या ३२ है॥

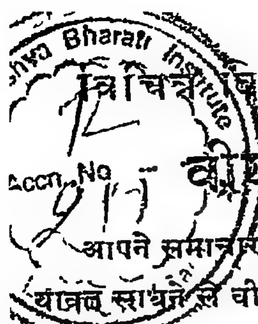
भजनावली। नाथूराम जी वैरागी रचित तथा वी० पी० शर्मा एण्ड० को० मन्दसौर मालवा द्वारा प्रकाशित मूल्य)॥ इसमें ईश्वरभक्ति तथा वैराग्य सम्बन्धी भजन हैं।

बालरक्षा घुटी। अलीगढ़के सुप्रसिद्ध वैद्य पं० रामचन्द्रजी वैद्य शास्त्री ने अपनी अनुभूत तथा प्रसिद्ध बालरक्षा घुटीकी एक शीशी कई महीनें हुए हमारे पास समालोचनार्थ भेजी थी, कई बालकों के रोगों में इस दवाई ने अच्छा लाभ दिखाया इसमें सन्देह नही कि वैद्यशास्त्री जी ने इस ओषधि के निर्माण करने में जो श्रम किया है वह सफल हुआ है। बालकोंके रोगोंके लिये यह अनुभूत दवा है। मू० ॥) पता-पं० रामचन्द्र वैद्यशास्त्री सुधावर्षक औषधालय अलीगढ सिटी।

विश्वमित्र। इस नामका एक नया दैनिकपत्र कलकत्ते से बा० मूलचन्द्र जी अग्रवाल के सम्पादकत्व तथा स्वामित्व में निकलने लगा है इसमें रायल साइजके ४ पृष्ठ रहते हैं वार्षिकमूल्य ८) है पत्र मूल्यके हिसाब से भी सस्ता है। विशेषतः इस कागज के अकाल के समय में, प्रत्येक अङ्कमें एक चित्र भी रहता है। पत्र स्वराज्यवादी है। सम्पादकीय टिप्पणियें भी अच्छी रहती हैं। हम इस की उत्तरोत्तर उन्नतिके अभिलाषी हैं। इस पत्र के प्रकाशित होने से कलकत्ते में ३ दैनिक होगये।

मिलनेका पता-मैनेजर विश्वमित्र १३ नारायणप्रसाद बाबू लैन कलकत्ता।

PRINTED BY BRAHMADEVA MISRA AT THE BRAHMA PRESS—ETAWAH.



Bharati Institute
Accn. No

कोलाटानिक ।

कोला से कसरत दूनी बढ़ती है कोला दिमागको पुष्ट करता है कोला से चिन्ता शक्ति बढ़ती हैं कोला यह पुष्टई है दवा नहीं कोला कलेजे को जोड़ देता है। कोला हौलदिल धड़कन वो कलेजेकी कमजोरी मिटाता है। कोलासे कभी मिहनत गढ़ाती नहीं थकावट आती नहीं। कोला अफ्रीका देशके कोला फलसे बनी हुई पुष्टई है। कोला दिमाग लड़ाने में सुन्दर बल देता है। कोला बालक बढ़े बूढ़े सभी पी सकते हैं ३२ पूरी खुराक की १ शीशीका दाम १) एक रुपया डा० म० १ से २ तक।-) ४ शी० ।≈) छः आने।

खून साफ करने की दवा ।

खून से मनुष्य का जीवन है-इस लिये खून साफ रक्खो सालसा खून साफ करने की प्रसिद्ध दवा है। इसी सालसे को शोधकर उस में पोटास आईओडाईजड् आदिक कई एक परीक्षित दवाएं मिलाकर यह सालसा बना है। जिस में यह साधारण सालसाओंसे अधिक गुण करता हैं गर्मी (आतशक) गठिया वा पारा मिली हुई दवाओंसे खून बिगड़ा हुआ होवे तो सालसाका सेवन करो। खून की हालत को सुधारने के लिये यह सालसा बना है और प्रसिद्ध है। मू० २) रुपये शीशी पै० व डा० म० ।≈) आने २ शीशी तक ॥)

एक शीशीमें ३२ खुराक (१६ दिन सेवन योग्य) सालसा रहता है।

दमेकी दवा—बहुत दमे वालोंके अच्छे न होनेका कारण यह है कि उन के चिकित्सक दमे को कफका रोग समझते हैं और गरम दवायें दिया करते हैं। जिससे कुछ समयके लिये दमा दब भी जाता है परन्तु रोग का जाना दूर रहा उसकी जड़ और भी जम जाती है। दमा वायु का रोग है और डाक्टर वर्मन की बनाई 'दमेकी दवा' बिगड़ी हुई वायुको फिर अपनी अच्छी हालत में ला सकती है।

इस दवा के दो विशेष गुण देखने में आते हैं।

१-दमा चाहे जैसे जोर में उछलता हो इस दवाके दो, एक मौताज पीने हीसे दब जाता हैं। २-कुछ दिन तक इस दवा के लगातार खानेसे बहुतों का दमा जड़ से चला जाता है और जब तक दवा पी जाती है दमा जोर नहीं करता। जो दमे के रोगी संखिया या दूसरे रसादिक अफीम धतूरा वा डाक्टरी दवाएं ब्रोमाइड, क्लोरेल आदिक खाकर निराश हुए हैं उनको चाहिये इस दवा की जांच करें। मोल १।) डा० म० व पै० १ से ३ तक।-) ६ शीशी।≈) आने।

विविध-विषय

स्वामी आलाराम जी का भ्रमण

भारतवर्ष के प्रसिद्ध वक्ता स्वामी आलाराम जी सागर संन्यासी जी आज कल मिथिला प्रान्त में भ्रमण कर रहे हैं आपका व्याख्यान हाजीपुर में ता० १७ से १८ जनवरी तक सनातनधर्म के विविध विषयों में हुआ, श्रोताओं की बड़ी भीड़ होती थी इसके उपरान्त उक्त स्वामी-जी ने मौ० दिघी में पहुंचकर दो दिन तक काम, क्रोध लोभ मोह खण्डन तथा धर्ममण्डन पर व्याख्यान दिया, पश्चात् दर्भंगा ज़िले के अन्तर्गत भ्रमण करते हुए दलसिंहकी सरायमें पहुंचे अब आपके वहीं व्याख्यान होरहे हैं।

सूचना।

निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ को परीक्षायें फाल्गुण सु० २ गुरुवारसे सु० ६ सोमवार सं० १९७४ तक अर्थात् १४ से १८ मार्च सन् १९१८ तक होंगी। इस साल परीक्षाओं के लिये प्रयाग, दिल्ली, बम्बई, मदरास, बांकीपुर, कलकत्ता, लखनऊ कानपुर, हरद्वार, चूरू, लाहौर, पटियाला, अजमेर और अमरावती ये केन्द्र निश्चित हुए हैं। इन में प्रथमोक्त ६ स्थानों में आचार्य परीक्षा होगी। इस साल उपयुक्त पुस्तकों के अभाव से आचार्य परीक्षा "व्यवहार आयुर्वेद" और "पदार्थ विज्ञान" में नहीं ली जायगी। विशेष विवरण जानने के लिये मन्त्री आयुर्वेद विद्यापीठ दारागंज प्रयाग को लिखकर पूरी सूचना मंगा लेनी चाहिये।

मन्त्री आयुर्वेद विद्यापीठ दारागंज-प्रयाग।

होशंगाबाद में ऋषिकुल

श्री रेवातटस्थ ऋषिकुल होशंगाबाद (मध्यभारत) में पं० सत्यदेव जी विद्यासागर प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए हैं, यहां विद्यार्थियों को भोजनाच्छादन सहित निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। काव्य कोश, व्याकरण, दर्शन, ज्योतिष, पुराण और कर्मकाण्ड पढ़ाने की पूर्ण व्यवस्था हैं। आगामी चैत्रमास में वार्षिकोत्सव होगा।

नारायण प्रसाद द्विवेदी मन्त्री।

आवश्यक सूचना

श्री भारतवर्षोपयोगी चतुर्वेद आचार्यकुल कुरुक्षेत्र ब्रह्मचर्याश्रममें माघ शु० वसन्त पञ्चमी शुक्रवारके दिन ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णोंके कुमारों का उपनयन कराते हुए ब्रह्मचर्य व्रतपूर्वक आश्रम में प्रवेश किया जायगा। जिन महाशयों को अपने बालकों को प्रवेश कराना अभीष्ट हो ४ रोज पूर्व आश्रम में बालकों को लेकर पधारें और अपने आने की सूचना दो सप्ताह पूर्व दें।

निवेदक-मुख्याधिष्ठाता आचार्य कुल कुरुक्षेत्र।

आर्यसमाज का इतिहास ।

इस पुस्तक के शीघ्र छपने की कितनी बड़ी आवश्यकता है सो हम गताङ्क
...पत्र में मुद्रित कर चुके हैं पर दुःख की बात है कि अभी तक इस विषय में
यथेष्ट सहायता नही मिली। पुस्तक का विज्ञापन प्रकाशित होने के बाद कई प...
तो हमें ऐसे मिले जिनमें इस पुस्तक के मुद्रित करने के विचार पर हर्ष प्रकट किय...
गया है पर एक प० कल्याणदत्त जी शर्मा कासगज जिला एटाने अवश्य ही विज्ञ...
निकलने के बाद कुछ नकलें, विज्ञापन और कासगंज में हुए शास्त्रार्थ का विव...
भेजा है एतदर्थ पं० जी को धन्यवाद है पर अभी इस इतिहास के लिये एक पया...
सामग्री की आवश्यकता है। सनातनधर्म के उपदेशक महोपदेशक यदि कुछ अ...
अमूल्य समय इधर लगावें तो बड़ी कृपा हो उन्हें उचित है कि वे ऐसे सज्जनों...
नाम पता लिखें जिन्हों ने आर्यसमाज को छोड़ दिया हो। सनातनधर्म सभा...
और आर्य्य समाजों में जो शास्त्रार्थ हुए हों उनका पूर्ण विवरण मिलने की भी
आवश्यकता है। आशा है कि अब आलस्य त्याग कर उपर्युक्त सज्जन अपने
स्थानों के महत्त्वपूर्ण वृत्तान्त लिखकर हमें भेजेंगे।

खण्डनीय पुस्तकों के विषय में विचार

गताङ्क में हमने सनातनधर्मी विद्वानों से निवेदन शीर्षक जो एक विज्ञप्ति छा...
थी उसका अच्छा सुफल हुआ है। कई सनातनधर्मी विद्वानों ने इधर ध्यान आक...
र्षित किया है। नवग्रहसमीक्षा का उत्तर पं० रामदत्त जी ज्योतिर्विद् भीमताल नि...
वासी लिख रहे हैं और वह आगामी संख्यासे मुद्रित होगा। सनातनधर्म की पो...
जिसे कानपुर के समाजी व्रजमोहन झा ने लिखा है उसका उत्तर जगनेर जि० अ...
निवासी पं० शालिग्राम जी उपदेशक लिख रहे हैं। ला० मुंशीराम उर्फ श्रद्धान...
संन्यासी के लिखे "आदिम सत्यार्थप्रकाश और आर्य समाज के सिद्धान्त" नाम...
पुस्तक के उत्तर में इसी अङ्क में एक सम्पादकीय लेख मुद्रित किया गया है औ...
सारदृष्टि के विचार से इतना ही पर्याप्त है। अन्य भी दो एक छोटी २ पुस्तकों...
उत्तर कई विद्वानों ने लिखना स्वीकृत किया है। अब सनातनधर्मी विद्वानों क...
उचित है कि वे स्वयं उद्योग कर जहां ऐसी पुस्तकें मिलें उनका उत्तर लिखें। ...
उन्हें छपानेका सुभीता न हो तो हमारे पास भेज दें। यथा सम्भव हम छपा देंगे हाल...
शकाकोष नामक पं० हनुमानप्रसाद शिवली निवासीकी बनाई पुस्तकका उत्तर छप...
की बड़ी आवश्यकता है यदि किन्हीं सज्जनो ने उत्तर लिखा हो तो हमें सूचना दें।

निवेदक—मैनेजर ब्रह्मप्रेस—इटावा।